પ્રકાશક . પ્રાપ્તિસ્થાન
મગનલાલ છગનલાલ શેઠ
માનદ્મંત્રી
શ્રી અ ભા. શ્વે સ્થાનકવાસી
જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ
ગ્રીન લૉજ પાસે, રાજકોટ.

*

બીજી આવૃત્તિ . પ્રત ૧૦૦૦
વીર સંવત . ૨૪૮૩
વિક્રમ સવત · ૨૦૧૩
ઇસ્વી સન્ . ૧૯૫૭

*

મુદ્રક : મુદ્રણસ્થાન :
જયતિલાલ દેવચંદ મહેતા
જય ભારત પ્રેસ,
ગરેડીયા કુવા રોડ
શાક મારકીટ પાસે, રાજકોટ.

શ્રી વર્ધમાન શ્રમણ સંઘના આચાર્યશ્રી

પૂજ્ય આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ

શ્રી દશવૈકાલીક સૂત્ર માટે

*

આપેલ

સમ્મતિપત્ર

*

ઉપરાંત

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનાં

બનાવેલાં બીજા સૂત્રો માટે તેઓશ્રીનાં મંતવ્યો

*

તેમજ

અન્ય મહાત્માઓ, મહાસતીજીઓ, અદ્યતન પદ્ધતિવાળા કોલેજના પ્રોફેસરો

તેમજ

શાસ્ત્રજ્ઞ શ્રાવકોના અભિપ્રાયો

ઠે. ગ્રીન લૉજ પાસે
ગરેડીયા કુવા રોડ
રાજકોટ : સૌરાષ્ટ્ર.

શ્રી. અખિલ ભારત શ્વે. સ્થા. જૈન-
શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ.

અત્યાર સુધીમાં બહાર પડેલાં શાસ્ત્રો

*

૧	શ્રી ઉપાસક દશાંગ સુત્ર	પહેલી આવૃતી ખલાસ
૨	,, દશવૈકાલિક સુત્ર ભાગ–૧	પહેલી આવૃતી ખલાસ
૩	,, વિપાક સુત્ર	પહેલી આવૃતી ખલાસ
૪	,, આચારાંગ સુત્ર ભાગ–૧	પહેલી આવૃતી ખલાસ
૫	,, અનંતકૃત	પહેલી આવૃતી ખલાસ
૬	,, આવશ્યક	પહેલી આવૃતી ખલાસ
૭	,, અનુત્તરોપપાતિક	૩–૮–૦
૮	,, દશાશ્રુત સ્કન્ધ	૭–૦–૦
૯	,, નિરયાવલિકા સુત્ર (ભાગ ૧થી ૫)	૭–૮–૦
૧૦	,, દશવૈકાલિક ભાગ–૨ બીજો	૭–૮–૦
૧૧	,, ઉપાસકદશાંગ બીજી આવૃતી	૮–૮–૦
૧૨	,, આચારાંગ ભાગ–૨ બીજો	૧૦–૦–૦
૧૩	,, દશવૈકાલિક ભાગ–૧ બીજી આવૃતી	૧૦–૦–૦

(હાલમાં છપાય છે.)

૧	શ્રી આચારાગ ભાગ–૧ લો	બીજી આવૃતી
૨	,, વિપાક સુત્ર	,, ,,
૩	,, અનંતકૃત	,, ,,
૪	,, આવશ્યક	,, ,,
૫	,, ઉવવાઈ સુત્ર	
૬	,, આચારાંગ ભાગ–૩જો	
૭	,, કલ્પ સુત્ર છુટાં પાના	

છાપવા માટે તૈયાર છે

૧ ઉત્તરાધ્યાયન સુત્ર ૨ નન્દી સુત્ર ૩ જ્ઞાતા સુત્ર ૪ સમવાયાંગ સુત્ર
૫ પ્રશ્ન વ્યાકરણ સુત્ર ૬ અનુયોગદ્વાર સુત્ર ૭ રાયપસેણી સુત્ર ૮ સ્થાનાંગ સુત્ર

નોટઃ–ઘાટકોપરના શ્રીયુત શેઠ માણેકલાલ એ. મહેતા તરફથી એક સુત્રની પ્રસિદ્ધિ માટે રૂા. ૩૦૦૦ ત્રણ હજાર સમિતિને તા. ૧૦–૫–૫૭ ના દિને મળ્યા છે. તે માટે તેમના આભારી છીએ.

प्रस्तावना.

कषायलिप्त कर्मबन्ध से बन्धे हुए संसारी प्राणियों के हितार्थ जगत हितैषी भगवान् श्री वर्धमान स्वामीने श्रुतचारित्ररूप दो प्रकार का धर्म कहा है। इन दोनों धर्म की आराधना करने वाला मोक्षगति को प्राप्त कर सकता है, इसलिये मुमुक्षु को दोनों धर्मों की आराधना अवश्य करनी चाहिये! क्यों कि-"ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः" ज्ञान और क्रिया इन दोनों से मोक्ष होता है। यदि ज्ञान को ही विशेषता देकर क्रिया को गौण कर दिया जाय तो वीतराग-कथित श्रुतचारित्र धर्म की आराधना अपूर्ण और अपंग मानी जायगी, और अपूर्ण कार्य से मोक्ष प्राप्ति होना सर्वथा असंभव है, एतदर्थ वीतरागप्रणीत सरल और सुबोध मार्ग में निश्चय और व्यवहार दोनों नयों को मानना ही आवश्यक है। कहा भी है—

"व्यवहारं विना केचिद् भ्रष्टाः केवलनिश्चयात्।
निश्चयेन विना केचित्, केवलं व्यवहारतः ॥१॥

द्वाभ्यां दृग्भ्यां विना न स्यात् सम्यग् द्रव्यावलोकनम्।
यथा तथा नयाभ्यां चे,-त्युक्तं स्याद्वादवादिभिः ॥२॥

स्याद्वादके स्वरूप को निरूपण करने वाले भगवानने निश्चय और व्यवहार, इन दोनों को यथास्थान आवश्यक माना है। जैसे दोनों नेत्रों के विना वस्तु का अवलोकन बराबर नहीं होता है वैसे ही दोनों नयों के विना धर्म का स्वरूप यथार्थ नहीं जाना जा सकता, और इसी कारण व्यवहार नय के विना केवल निश्चयवादी मोक्ष मार्ग से पतित हो जाते हैं और कितनेक-व्यवहारवादी केवल व्यवहार को ही मानकर धर्म से च्युत हो जाते हैं।

आत्मा का ध्येय यही है कि सर्व कर्मसे मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करना; परन्तु उसमें कर्मों से छुटकारा पानेके लिये व्यवहाररूप चारित्रक्रिया का आश्रय जरूर लेना पडता है, क्यों कि विना व्यवहार के कर्मक्षय की

कार्यसिद्धि नहीं हो सकती ! जो ज्ञानमात्रही को प्रधान मानकर व्यवहार क्रिया को उठाते हैं वे अपने जन्म को निष्फल करते हैं । जैसे पानी में पडा हुआ पुरुष तैरने का ज्ञान रखता हुवा भी अगर हाथ पैर हिलाने रूप क्रिया न करे तो वह अवश्य डूब ही जाता है, जिस प्रकार नाइट्रोजन और ओक्सीजन के मिश्रण विना विजली प्रगट नहीं होती उसी प्रकार ज्ञान के होते हुए भी क्रिया विना मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती, इसीलिए भगवानने इस दशवैकालिक सूत्र में मुनिको ज्ञानसहित आचार धर्म के पालन करनेका निरूपण किया है ।

जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर पूज्यश्री घासीलालजी महाराज साहवने दशवैकालिक सूत्र की आचारमणिमञ्जूषा नाम की टीका तैयार करके सर्व साधारण एवं विद्वान् मुनियों के अध्ययन के लिये पूर्ण सरलता कर दी है, पूज्यश्री के द्वारा जैनागमों की लिखी हुई टीकाओं में श्री दशवैकालिक सूत्रका प्रथम स्थान है । इस के दश अध्ययन हैं—

(१) प्रथम अध्ययन में भगवानने धर्म का स्वरूप अहिंसा, संयम और तप वतलाया है । इसकी टीका में धर्म शब्द की व्युत्पत्ति और शब्दार्थ तथा अहिंसा, संयम और तप का विवेचन विशदरूपसे किया है। वायुकाय-संयमके प्रसंग में, मुनि को सदोरकमुखवस्त्रिका मुखपर वांधना चाहिये इस वात को भगवती सूत्र आदि अनेक शास्त्रों से तथा ग्रन्थों से सप्रमाण सिद्ध किया है । मुनि के लिए निरवद्य भिक्षा लेनेका विधान है । तथा भिक्षाके मधुकरी आदि छह भेदों का निरूपण किया है ।

(२) दूसरे अध्ययन में संयम मार्ग में विचरते हुए नवदीक्षित का मन यदि संयम मार्गसे वाहर निकल जाय तो उसको स्थिर करनेके लिये रथनेमि और राजीमती के संवाद का वर्णन है । एवं त्यागी अत्यागी कौन है वह भी समझाया है ।

(३) तीसरे अध्ययन में संयमी मुनि को वावन (५२) अनाचीर्णोंका निवारण वतलाया गया है, क्यों कि वावन अनाचीर्ण संयम के घातक है। इन अनाचीर्णों का त्याग करने के लिये आज्ञा निर्देश है ।

(४) चौथे अध्ययन में–'जो बावन अनाचीर्णों का निवारण करता है वही छह काया का रक्षक हो सकता है' इसलिये छहकाय के स्वरूप का निरूपण तथा उनकी रक्षा का विवरण है । मुनि अयतना को त्यागे यतना को धारण करे। यतना मार्ग वही जान सकता है जिसे जीव अजीव का ज्ञान है। जो जीवादि का ज्ञाता है वह क्रम से मोक्ष को प्राप्त करता है। पिछली अवस्था में भी चारित्र ग्रहण करनेवाला मोक्ष का अधिकारी हो सकता है ।

(५) पांचवें अध्ययन में छहकाया का रक्षण निरवद्य भिक्षा ग्रहण से होता है, अतः भिक्षा की विधि कही गई है ।

(६) छठवें अध्ययनमें 'निरवद्य भिक्षा लेनेसे अठारह स्थानोंका शास्त्रानुसार आराधन करता है, उन अठारह स्थानों का वर्णन है । उनमें सत्य और व्यवहार भाषा बोलनी चाहिये ।

(७) सातवें अध्ययन में 'अठारहस्थानों का आराधन करने वाले मुनिको कौनसी भाषा बोलनी चाहिये' इसके लिये ४ भाषाओं का स्वरूप कहा गया है । उनमें सत्य और व्यवहार भाषा बोलना चाहिये ।

(८) आठवें अध्ययन में–'निरवद्य भाषा बोलनेवाला पांच आचाररूप निधान को पाता है' अतः उस आचाररूप निधान का वर्णन है ।

(९) नववें अध्ययन में 'पांच आचार का पालन करने वाला ही विनयशील होता है' अतः विनय के स्वरूप का निरूपण किया है ।

(१०) दशवें अध्ययन में–'पहले कहे हुए नवों अध्ययनों में कही हुई विधिका पालन करने वाला ही भिक्षु हो सकता है' इस लिए भिक्षु के स्वरूप का वर्णन किया है ॥

निवेदक
समीर मुनि.



(श्री दशवैकालिकसूत्रका सम्मतिपत्र.)

॥ श्रीवीरगौतमाय नमः ॥

सम्मति–पत्रम्.

मए पंडियमुणि-हेमचंदेण य पंडिय-मूलचन्दवासवारापत्ता पंडिय-रयण–मुणि–घासीलालेण विरइया सक्कय-हिंदी-भासाहिं जुत्ता सिरि–दसवेयालिय–नाम सुत्तस्स आयारमणिमंजूसा वित्ती अवलोइया, इमा मणोहरा अत्थि, एत्थ सद्दाणं अइसयजुत्तो अत्थो वण्णिओ विउजणाणं पाययजणाण य परमोवयारिया इमा वित्ती दीसइ ! आयारविसए वित्तीकत्तारेण अइसयपुव्वं उल्लेहो कडो, तहा अहिंसाए सरूवं जे जहा-तहा न जाणंति तेसिं इमाए वित्तीए परमलाहो भविस्सइ, कत्तुणा पत्तेयविसयाणं फुडरूवेण वण्णणं कडं, तहा मुणिणो अरहत्ता इमाए वित्तीए अवलोयणाओ अइसयजुत्ता सिज्झइ ! सक्कयछाया सुत्तपयाणं पयच्छेओ य सुबोहदायगो अत्थि, पत्तेयजिण्णासुणो इमा वित्ती दट्ठव्वा। अम्हाणं समाजे एरिसविज्ज–मुणिरयणाणं सब्भावो समाजस्स अहोभग्गं अत्थि, किं ? उत्तविज्जमुणिरयणाणं कारणाओ जो अम्हाणं समाजो सुत्तप्पाओ, अम्हकेरं साहिच्चं च लुत्तप्पायं अत्थि तेसिं पुणोवि उदओ भविस्सइ जस्स कारणाओ भवियप्पा मोक्खस्स जोग्गो भवित्ता पुणो निव्वाणं पाविहिइ अओहं आयारमणि–मंजूसाए कत्तुणो पुणो पुणो धन्नवायं देमि– ॥

वि. सं. १९९० फाल्गुन– शुक्लत्रयोदशी मङ्गले (अलवर स्टेट)	इइ– उवज्झाय-जइण-मुणी, आयारामो (पचनईओ)

શ્રી દશવૈકાલિક સૂત્રનું સમ્મતિ પત્ર.

શ્રમણ સંઘના મહાન આચાર્ય આગમ વારિધિ સર્વતન્ત્ર સ્વતંત્ર જૈનાચાર્ય પૂજ્યશ્રી આત્મા રામજી મહારાજે આપેલા સમ્મતિ પત્રનો ગુજરાતી અનુવાદ.



મેં તથા પંડિત મુનિ હેમચંદ્રજી એ પંડિત મૂલચંદ વ્યાસ (नागौर मारवाड वाला) દ્વારા મળેલી પંડિત રત્ન શ્રી. ઘાસીલાલજી મુનિ વિરચિત સંસ્કૃત અને હિન્દી ભાષા સહિત શ્રી દશવૈકાલિક સૂત્રની આચાર મણિમંજૂષા ટીકાનું અવલોકન કર્યું. આ ટીકા સુંદર બની છે. તેમાં પ્રત્યેક શબ્દનો અર્થ સારી રીતે વિશેષ ભાવ લઇને સમજાવવામાં આવેલ છે.

તેથી વિદ્વાનો અને સાધારણ બુદ્ધિવાળાઓ માટે પરમ ઉપકાર કરવાવાળી છે. ટીકાકારે મુનિના આચાર વિષયનો સારો ઉલ્લેખ કરેલ છે જે આધુનિક મતાવલંબી અહિંસાના સ્વરૂપ ને નથી જાણતા, દયામાં પાપ સમજે છે તેમને માટે 'અહિંસા શું વસ્તુ છે' તેનું સારી રીતે પ્રતિપાદન કરેલ છે વૃત્તિકારે સૂત્રના પ્રત્યેક વિષયને સારી રીતે સમજાવેલ છે. આ વૃત્તિના અવલોકનથી વૃત્તિકારની અતિશય યોગ્યતા સિદ્ધ થાય છે.

આ વૃત્તિમાં એક બીજી વિશેષતા એ છે કે મૂલ સૂત્રની સંસ્કૃત છાયા હોવાથી સૂત્ર, સૂત્રનાં પદ અને પદચ્છેદ સુબોધ દાયક બનેલ છે.

પ્રત્યેક જીજ્ઞાસુએ આ ટીકાનું અવલોકન અવશ્ય કરવું જોઇએ. વધારે શું કહેવું અમારી સમાજમાં આવા પ્રકારના વિદ્વાન મુનિ રત્નનું હોવું એ સમાજનું અહોભાગ્ય છે આવા વિદ્વાન મુનિ રત્નોના કારણે સુપ્તપ્રાય સુતેલો સમાજ અને લુપ્તપ્રાય એટલે લોપ પામેલું સાહિત્ય એ બંન્નેનો ફરીથી ઉદય થશે. જેનાથી ભાવિતાત્મા મોક્ષ યોગ્ય બનશે અને નિર્વાણ પદને પામશે. આ માટે અમો વૃત્તિકારને વારવાર ધન્યવાદ આપીએ છીએ

વિક્રમ સંવત ૧૯૯૦ ફાલ્ગુન શુકલ
તેરસ મંગળવાર
(અલવર સ્ટેટ)

ઇઇ
ઇવજઝાય જઇણ
મુણી આયારામો
પંચનઇઓ

पराक्रमवाद हरएकको अवश्य देखना चाहिये। कहांतक कहें इस टीकामें प्रत्येक विषय सम्यक् प्रकारसे बताये गये हैं। हमारी सुप्तप्राय (सोई हुईसी) समाजमें अगर आप जैसे योग्य विद्वान् फिर भी कोई होंगे तो ज्ञान चारित्र तथा श्रीसंघका शीघ्र उदय होगा, ऐसा मैं मानता हूँ-

आपका
उपाध्याय जैनमुनि आत्माराम पंजाबी.

••••••••••••

इसी प्रकार लाहोरमें विराजते हुए पण्डितवर्य विद्वान् मुनिश्री १००८ श्री भागचन्दजी महाराज तथा पं. मुनिश्री त्रिलोकचन्दजी महाराजके दिये हुए, श्री उपाशकदशाङ्ग सूत्रके प्रमाणपत्रका हिन्दी सारांश निम्न प्रकार है-

श्री श्री स्वामी घासीलालजी महाराज कृत श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रकी संस्कृत टीका व भाषाका अवलोकन किया, यह टीका अतिरमणीय व मनोरञ्जक है, इसे आपने बड़े परिश्रम व पुरुषार्थसे तैयार किया है सो आप धन्यवादके पात्र हैं। आप जैसे व्यक्तियोकी समाजमें पूर्ण आवश्यकता है। आपकी इस लेखनीसे समाजके विद्वान् साधुवर्ग पढकर पूर्ण लाभ उठावेंगे, टीकाके पढनेसे हमको अत्यानन्द हुवा, और मनमें ऐसे विचार उत्पन्न हुए कि हमारी समाजमें भी ऐसे २ सुयोग्य रत्न उत्पन्न होने लगे-यह एक हमारे लिये बड़े गौरवकी बात है।

वि. सं. १९८९ मा. आश्विन
कृष्णा १३ वार भौम लाहोर.

*

श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र की 'अनगार धर्मामृतवर्षिणी' टीका पर
जैनदिवाकर साहित्यरत्न जैनागमरत्नाकर परमपूज्य श्रद्धेय
जैनाचार्य श्री आत्मारामजी महाराजका

सम्मतिपत्र

लुधियाना, ता. ४-८-५१.

मैंने आचार्यश्री घासीलालजी म. द्वारा निर्मित 'अनगार-धर्माऽमृत-वर्षिणी' टीका वाले श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्रका मुनि श्री रत्नचन्द्रजीसे आद्योपान्त श्रवण किया।

यह निःसन्देह कहना पड़ता है कि यह टीका आचार्यश्री घासीलालजी म. ने बड़े परिश्रम से लिखी है। इसमें प्रत्येक शब्दका प्रामाणिक अर्थ और कठिन स्थलों पर सार-पूर्ण विवेचन आदि कई एक विशेषतायें हैं। मूल स्थलोंको सरल बनानेमें काफी प्रयत्न किया गया है, इससे साधारण तथा असाधारण सभी संस्कृतज्ञ पाठकों को लाभ होगा ऐसा मेरा विचार है।

मै स्वाध्यायप्रेमी सज्जनों से यह आशा करूँगा कि वे वृत्तिकारके परिश्रम को सफल बनाकर शास्त्रमें दीगई अनमोल शिक्षायों से अपने जीवनको शिक्षित करते हुए परमसाध्य मोक्षको प्राप्त करेंगे।

श्रीमान्‌जी जयवीर

आपकी सेवामें पोष्ट द्वारा पुस्तक भेज रहे हैं और इसपर आचार्यश्रीजी की जो सम्मति है वह इस पत्रके साथ भेज रहे हैं पहुचने पर समाचार देवें।

श्री आचार्यश्री आत्मारामजी म. ठाने ६ सुखशान्तिसे विराजते हैं। पूज्य श्री घासीलालजी म. सा. ठाने ४ को हमारी ओरसे वन्दना अर्जकर सुखशाता पूछें।

पूज्य श्री घासीलालजी म.जी का लिखा हुआ (विपाकसूत्र) महाराजश्रीजी देखना चाहते हैं इसलिये १ कॉपी आप भेजने की कृपा करें; फिर आपको वापिस भेज देवेंगे। आपके पास नहीं हो तो जहां से मिले वहांसे १ कॉपी जरूर भिजवाने का कष्ट करें, उत्तर जल्द देनेकी कृपा करें। योग्य सेवा लिखते रहें।

लुधियाना ता. ४-८-५१

निवेदक
प्यारेलाल जैन

जैनागमवारिधि-जैनधर्मदिवाकर - उपाध्याय - पण्डित-मुनि श्रीआत्मारामजी महाराज (पंजाब) का आचाराङ्गसूत्र की आचारचिन्तामणि टीका पर

सम्मति-पत्र।

मैंने पूज्य आचार्यवर्य श्रीघासीलालजी (महाराज)की बनाई हुई श्रीमद् आचाराङ्गसूत्र के प्रथम अध्ययन की आचारचिन्तामणि टीका सम्पूर्ण उपयोगपूर्वक सुनी।

यह टीका-न्याय सिद्धान्त से युक्त, व्याकरण के नियम से निबद्ध है। तथा इसमें प्रसंङ्ग २ पर क्रम से अन्य सिद्धान्त का संग्रह भी उचित रूप से मालूम होता है।

टीकाकारने अन्य सभी विषय सम्यक् प्रकार से स्पष्ट किये हैं, तथा प्रौढ विषयों का विशेषरूप से संस्कृत भाषा में स्पष्टतापूर्वक प्रतिपादन अधिक मनोरंजक है, एतदर्थ आचार्य महोदय धन्यवाद के पात्र हैं।

मैं आशा करता हूँ कि-जिज्ञासु महोदय इसका भलीभाँति पठन द्वारा जैनागम-सिद्धान्तरूप अमृत पी-पी कर मन को हर्षित करेंगे, और इसके मनन से दक्ष जन चार अनुयोगों का स्वरूपज्ञान पावेंगे। तथा आचार्यवर्य इसी प्रकार दूसरे भी जैनागमों के विशद विवेचन द्वारा श्वेताम्बर-स्थानकवासी समाज पर महान उपकार कर यशस्वी बनेंगे।

वि. सं. २००२
मृगसर सुदि १

जनमुनि-उपाध्याय आत्माराम
लुधियाना (पंजाब)

—:*:— शुभमस्तु ॥

बीकानेरवाळा समाजभूषण शास्त्रज्ञ भेरुदानजी शेठिआनो अभिप्राय

*

आप जो शास्त्रका कार्य कर रहे हैं यह बडा उपकारका कार्य है। इससे जैनजनता को काफी लाभ पहुँचेगा.

(ता. २८-३-५६ ना पत्रमांथी)

॥ श्रीः ॥

जैनागमवारिधि- जैनधर्मदिवाकर-जैनाचार्य-पूज्य-श्री आत्मारामजी-
महाराजनां पञ्चनद-(पंजाब)स्थानामनुत्तरोपपातिकसूत्राणा-
मर्थबोधिनीनामकटीकायामिदम्-

सम्मतिपत्रम्.

आचार्यवर्यैः श्री घासीलालमुनिभिः सङ्कलिता अनुत्तरोपपातिकसूत्राणामर्थ-बोधिनीनाम्नी संस्कृतवृत्तिरुपयोगपूर्वकं सकलाऽपि स्वशिष्यमुखेनाऽश्रावि मया, इयं हि वृत्तिर्मुनिवरस्य वैदुष्यं प्रकटयति। श्रीमद्भिर्मुनिभिः सूत्राणामर्थान् स्पष्टयितुं यः प्रयत्नो व्यधायि तदर्थमनेकशो धन्यवादानर्हन्ति ते। यथा चेयं वृत्तिः सरला सुबोधिनी च तथा सारवत्यपि। अस्याः स्वाध्यायेन निर्वाणपदमभीप्सु-भिर्निर्वाणपदमनुसरद्भिर्ज्ञान-दर्शन-चारित्रेषु प्रयतमानैर्मुनिभिः श्रावकैश्च ज्ञान-दर्शन-चारित्राणि सम्यक् सम्प्राप्याऽन्येऽप्यात्मानस्तत्र प्रवर्तयिष्यन्ते।

आशासे श्रीमदाशुकविर्मुनिवरो गीर्वाणवाणीजुषां विदुषां मनस्तोषाय जैनागमसूत्राणां सारावबोधाय च अन्येषामपि जैनागमानामित्थं सरलाः सुस्पष्टाश्च वृत्तीर्विधाय तांस्तान् सूत्रग्रन्थान् देवगिरा सुस्पष्टयिष्यति।

अन्ते च "मुनिवरस्य परिश्रमं सफलयितुं सरलां सुबोधिनीं चेमां सूत्रवृत्तिं स्वाध्यायेन सनाथयिष्यन्त्यवश्यं सुयोग्या हंसनिभाः पाठकाः।" इत्याशास्ते—

विक्रमाब्द २००२
श्रावणकृष्णा प्रतिपदा
लुधियाना.

उपाध्याय आत्मारामो जैनमुनिः।

ऐसेही :—

मध्यभारत सैलाना-निवासी श्रीमान् रतनलालजी डोसी श्रमणोपासक जैन लिखते हैं कि :—

श्रीमान की की हुई टीकावाला उपासकदशांग सेवक के दृष्टि-गत हुवा, सेवक अभी उसका मनन कर रहा है यह ग्रन्थ सर्वांग-सुन्दर एवम् उच्चकोटि का उपकारक है।

निरयावलिकासूत्रका सम्मतिपत्र.
आगमवारिधि-सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-जैनाचार्य-पूज्यश्री
आत्मारामजी महाराजकी तरफ का आया हुवा

सम्मतिपत्र

लुधियाना. ता. ११ नवम्बर ४८

श्रीयुत गुलाबचन्दजी पानाचंदजी । सादर जयजिनेन्द्र ॥

पत्र आपका मिला! निरयावलिका विषय पूज्यश्रीजीका स्वास्थ्य ठीक न होने से उनके शिष्य पं. श्री हेमचन्द्रजी महाराजने सम्मति पत्र लिख दिया है आपको भेज रहै हैं! कृपया एक कोपी निरयावलिका की और भेज दीजिये और कोई योग्य सेवा कार्य लिखते रहें!!

भवदीय.
गुजरमल-वलवंतराय जैन

॥ सम्मतिः ॥

(लेखक जैनमुनि पं. श्री हेमचन्द्रजी महाराज)

सुन्दरबोधिनीटीकया समलङ्कृतं हिन्दी–गुर्जरभाषानुवादसहितं च श्रीनिरयावलिकासूत्रं मेधाविनामल्पमेधसां चोपकारकं भविष्यतीति सुदृढं मेऽभिमतम्, संस्कृतटीकेयं सरला सुबोधा सुललिता चात एव अन्वर्थनाम्नी चाप्यस्ति। सुविशदत्वात् सुगमत्वात् प्रत्येकदुर्बोधपद–व्याख्यायुतत्वाच्च टीकैषा संस्कृतसाधारणज्ञानवतामप्युपयोगिनी भाविनीत्यभिप्रैमि । हिन्दी–गुर्जरभाषानुवादावपि एतद्भाषाविज्ञानां महीयसे लाभाय भवेतामिति सम्यक् संभावयामि।

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री घासीलालजी महाराजानां परिश्रमोऽयं प्रशंसनीयो धन्यवादार्हाश्च ते मुनिसत्तमाः। एवमेव श्री–समीरमल्लजी-श्री कन्हैयालालजी मुनिवरेण्ययोर्नियोजनकार्यमपि श्लाघ्यं, तावपि च मुनिवरौ धन्यवादार्हौ स्तः।

सुन्दरप्रस्तावनाविषयानुक्रमादिना समलङ्कृते सूत्ररत्नेऽस्मिन् यदि शब्दकोषोऽपि दत्तः स्यात्तर्हि वरतर स्यात्। यतोऽस्यावश्यकतां सर्वऽप्यवेपक्वविद्वांसोऽनुभवन्ति।

पाठकाः सूत्रस्यास्याध्ययनाध्यापनेन लेखकनियोजकमहोदयानां परिश्रमं सफलयिष्यन्तीत्याशास्महे। इति।

श्री उपासकदशाङ्ग सूत्र परत्वे जैन समाजना अग्रगण्य जैनधर्मभूषण महान विद्वान संतोए तेमज विद्वान श्रावकोए सम्मतिओ समर्पी छे तेमना नामो नीचे प्रमाणे छे.

(१) लुधियाना– सम्वत् १९८९, आश्विन पूर्णिमा का पत्र, श्रुतज्ञान के भंडार आगमरत्नाकर जैनधर्मदिवाकर श्री १००८ श्री उपाध्याय श्री आत्मारामजी महाराज, तथा न्यायव्याकरणवेत्ता श्री १००७ तच्छिष्य श्री मुनि हेमचन्दजी महाराज.

(२) लाहौर–वि० सं० १९८९ आश्विन वदि १३ का पत्र, पण्डित रत्न श्री १००८ श्री भागचन्दजी महाराज तथा तच्छिष्य पण्डित रत्न श्री १००७ श्री त्रिलोकचंदजी महाराज.

(३) खिचन से ता. ९–११–३६ का पत्र, क्रियापात्र स्थविर श्री १००८ श्री भारतरत्न श्री समरथमलजी महाराज.

(४) वालाचोर–ता. १४–११–३६ का पत्र, परम प्रसिद्ध भारतरत्न श्री १००८ श्री शतावधानीजी श्री रतनचन्दजी महाराज.

(५) बम्बई–ता. १६–११–३६ का पत्र, प्रसिद्ध कवीन्द्र श्री १००८ श्री कवि नानचन्द्रजी महाराज.

(६) आगरा–ता. १८–११–३६, जगत् वल्लभ श्री १००८ श्री जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज, गुणवन्त गणीजी श्री १००७ श्री साहित्यप्रेमी श्री प्यारचन्दजी महाराज.

(७) हैद्राबाद (दक्षिण) ता. २५–११–३६ का पत्र, स्थिवरपदभूषित भाग्यवान पुरुष श्री ताराचन्दजी महाराज तथा प्रसिद्ध वक्ता श्री १००७ श्री सोभागमलजी महाराज.

(८) जयपुर–ता. २६–११–३६ का पत्र, संप्रदाय के गौरवर्धक शांत-स्वभावी श्री १००८ श्री पूज्य श्री खूबचन्दजी महाराज.

(९) अम्बाला–ता. २९–११–३६ का पत्र, परम प्रतापी पंजाब केशरी श्री १००८ श्री पूज्य श्री रामजी महाराज.

निरयावलिकासूत्रका सम्मतिपत्र.
आगमवारिधि-सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-जैनाचार्य-पूज्यश्री
आत्मारामजी महाराजकी तरफ का आया हुवा

सम्मतिपत्र

लुधियाना. ता. ११ नवम्बर ४८

श्रीयुत गुलाबचन्दजी पानाचंदजी । सादर जयजिनेन्द्र ॥

पत्र आपका मिला! निरयावलिका विषय पूज्यश्रीजीका स्वास्थ्य ठीक न होने से उनके शिष्य पं. श्री हेमचन्द्रजी महाराजने सम्मति पत्र लिख दिया है आपको भेज रहै हैं! कृपया एक कोपी निरयावलिका की और भेज दीजिये और कोई योग्य सेवा कार्य लिखते रहें ? !

भवदीय.
गुजरमल-वलवंतराय जैन

॥ सम्मतिः ॥

(लेखक जैनमुनि पं. श्री हेमचन्द्रजी महाराज)

सुन्दरबोधिनीटीकया समलङ्कृतं हिन्दी-गुर्जरभाषानुवादसहितं च श्रीनिरयावलिकासूत्रं मेधाविनामल्पमेधसां चोपकारकं भविष्यतीति सुदृढं मेऽभिमतम्, संस्कृतटीकेयं सरला सुबोधा सुललिता चात एव अन्वर्थनाम्नी चाप्यस्ति। सुविशदत्वात् सुगमत्वात् प्रत्येकदुर्बोधपद-व्याख्यायुतत्वाच्च टीकैषा संस्कृतसाधारणज्ञानवतामप्युपयोगिनी भाविनीत्यभिप्रैमि । हिन्दी-गुर्जरभाषानुवादावपि एतद्भाषाविज्ञानां महीयसे लाभाय भवेतामिति सम्यक् संभावयामि।

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री घासीलालजी महाराजानां परिश्रमोऽयं प्रशंसनीयो धन्यवादार्हाश्च ते मुनिसत्तमाः। एवमेव श्री-समीरमल्लजी-श्री कन्हैयालालजी मुनिवरेण्ययोर्नियोजनकार्यमपि श्लाघ्यं, तावपि च मुनिवरौ धन्यवादार्हौ स्तः।

सुन्दरप्रस्तावनाविषयानुक्रमादिना समलङ्कृते सूत्ररत्नेऽस्मिन् यदि शब्दकोषोऽपि दत्तः स्यात्तर्हि वरतरं स्यात्। यतोऽस्यावश्यकतां सर्वेऽप्यवेक्षकविद्वांसोऽनुभवन्ति।

पाठकाः सूत्रस्यास्याध्ययनाध्यापनेन लेखकनियोजकमहोदयानां परिश्रमं सफलयिष्यन्तीत्याशास्महे। इति।

श्री उपासकदशाङ्ग सूत्र परत्वे जैन समाजना अग्रगण्य जैनधर्मभूषण महान विद्वान संतोए तेमज विद्वान श्रावकोए सम्मतिओ समर्पी छे तेमना नामो नीचे प्रमाणे छे.

(१) लुधियाना- सम्वत् १९८९, आश्विन पूर्णिमा का पत्र, श्रुतज्ञान के भंडार आगमरत्नाकर जैनधर्मदिवाकर श्री १००८ श्री उपाध्याय श्री आत्मारामजी महाराज, तथा न्यायव्याकरणवेत्ता श्री १००७ तच्छिष्य श्री मुनि हेमचन्दजी महाराज.

(२) लाहौर-वि० सं० १९८९ आश्विन वदि १३ का पत्र, पण्डित रत्न श्री १००८ श्री भागचन्दजी महाराज तथा तच्छिष्य पण्डित रत्न श्री १००७ श्री त्रिलोकचंदजी महाराज.

(३) खिचन से ता. ९-११-३६ का पत्र, क्रियापात्र स्थविर श्री १००८ श्री भारतरत्न श्री समरथमलजी महाराज.

(४) वालाचोर-ता. १४-११-३६ का पत्र, परम प्रसिद्ध भारतरत्न श्री १००८ श्री शतावधानीजी श्री रतनचन्दजी महाराज.

(५) बम्बई-ता. १६-११-३६ का पत्र, प्रसिद्ध कवीन्द्र श्री १००८ श्री कवि नानचन्द्रजी महाराज.

(६) आगरा-ता. १८-११-३६, जगत् वल्लभ श्री १००८ श्री जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज, गुणवन्त गणीजी श्री १००७ श्री साहित्यप्रेमी श्री प्यारचन्दजी महाराज.

(७) हैद्राबाद (दक्षिण) ता. २५-११-३६ का पत्र, स्थिवरपदभूषित भाग्यवान पुरुष श्री ताराचन्दजी महाराज तथा प्रसिद्ध वक्ता श्री १००७ श्री सोभागमलजी महाराज.

(८) जयपुर-ता. २६-११-३६ का पत्र, संप्रदाय के गौरववर्धक शांत-स्वभावी श्री १००८ श्री पूज्य श्री खूबचन्दजी महाराज.

(९) अम्बाला-ता. २९-११-३६ का पत्र, परम प्रतापी पंजाब केशरी श्री १००८ श्री पूज्य श्री रामजी महाराज.

(१०) सेलाना-ता. २९-११-३६ का पत्र, शास्त्रों के ज्ञाता श्रीमान् रतनलालजी डोसी.

(११) खीचन-ता. ९-११-३६ का पत्र, पंडितरत्न न्यायतीर्थ सुश्रावक श्रीयुत् माधवलालजी.

••••••o•••••

ता. २५-११-३६

सादर जय जिनेन्द्र

आपका भेजा हुवा उपासक दशांग सूत्र तथा पत्र मिला यहां विराजित प्रवर्तक वयोवृद्ध श्री १००८ श्री ताराचंदजी महाराज पण्डित श्री किशनलालजी महाराज आदि ठाणा १४ सुख शांती में विराजमान हैं आपके वहां विराजित जैनशास्त्राचार्य पूज्यपाद श्री १००८ श्री घासीलाल जी महाराज आदि ठाणा नव से हमारी वन्दना अर्ज कर सुख शांति पूछे आपने उपासकदशांग सूत्र के विषय में यहां विराजित मुनिवरों की सम्मती मंगाई उसके विषय में वक्ता श्री सोभागमलजी महाराज ने फरमाया है कि वर्तमान में स्थानकवासी समाज में अनेकानेक विद्वान मुनि महाराज मौजूद हैं मगर जैनशास्त्र की वृत्ति रचने का साहस जैसा घासीलालजी महाराज ने किया है वैसा अन्य ने किया हो ऐसा नजर नहीं आता दूसरा यह शास्त्र अत्यन्त उपयोगी तो यों है संस्कृत प्राकृत हिन्दी और गुजराती भाषा होने से चारों भाषा वाले एक ही पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं जैन समाज में ऐसे विद्वानों का गौरव बढे यही शुभ कामना है आशा है कि स्थानकवासी संघ विद्वानों की कदर करना सीखेगा।

योग्य लिखें शेष शुभ

भवदीय

जमनालाल रामलाल कीमती

*

आगरा से:—

श्री जैनदिवाकर प्रसिद्धवक्ता जगद्वल्लभ मुनि श्री चोथमलजी महाराज व पंडितरत्न सुव्याख्यानी गणीजी श्री प्यारचन्द जी महाराज ने इस पुस्तक को अतीव पसन्द की है।

श्रीमान् न्यायतीर्थ पण्डित

माधवलालजी खीचन से लिखते हैं कि:—

उन पंडितरत्न महाभाग्यवंत पुरुषों के सामने उनकी अगाध-तत्त्वगवेषणा के विषय में मैं नगण्य क्या सम्मति दे सकता हूं।

परन्तु :—

मेरे दो मित्रों ने जिन्होंने इसको कुछ पढा है बहुत सराहना की है वास्तव में ऐसे उत्तम व सबके समझाने योग्य ग्रन्थों की बहुत आवश्यकता है और इस समाज का तो ऐसा ग्रन्थ ही गौरव वढा सकते हैं—ये दोनों ग्रन्थ वास्तव में अनुपम है ऐसे ग्रन्थरत्नों के सुप्रकाश से यह समाज अमावास्या के घोर अन्धकार में दीपावली का अनुभव करती हुई महावीर के अमूल्य वचनों का पान करती हुई अपनी उन्नति में अग्रसर होती रहेगी।

—: ❀ :—

ता. २९-११-३६
अम्बाला (पंजाब)

पत्र आपका मिला श्री श्री १००८ पंजाब केशरी पूज्य श्री काशीरामजी महाराज की सेवा में पढ कर सुना दिया। आपकी भेजी हुई उपासकदशाङ्ग सूत्र तथा गृहिधर्मकल्पतरु की एक प्रति भी प्राप्त हुई। दोनों पुस्तकें अति उपयोगी तथा अत्यधिक परिश्रम से लिखी हुई हैं, ऐसे ग्रन्थरत्नों के प्रकाशित करवाये की बडी आवश्यकता है। इन पुस्तकों से जैन तथा अजैन सबका उपकार हो सकता है। आपका यह पुरुषार्थ सराहनीय है।

आपका
शशिभूषण शास्त्री
अध्यापक जैन हाई स्कूल
अम्बाला शहर.

शान्त स्वभावी वैराग्य मूर्ति तत्व वारिधि, धैर्यवान श्री जैनाचार्य पूज्यवर श्री श्री १००८ श्री खुवचन्दजी महाराज साहेवने सूत्र श्री उपासक दशाङ्गजी को देखा। आपने फरमाया कि पण्डित मुनि घासीलालजी महाराज ने उपासक दशाङ्ग सूत्रकी टीका लिखने में वडा ही परिश्रम किया है। इस समय इस प्रकार प्रत्येक सूत्रोंकी संशोधक पूर्वक सरल टीका और शुद्ध हिन्दी अनुवाद होने से भगवान निग्रन्थों के प्रवचनों के अपूर्व रस का लाभ मिल शकता है.

*

वालाचोर से भारतरत्न शतावधानी पंडित मुनि श्री १००८ श्री रतनचन्दजी महाराज फरमाते हैं कि :-

उत्तरोत्तर जोतां मूल सूत्रनी संस्कृतटीकाओ रचवामां टीकाकारे स्तुत्य प्रयास कर्यो छे, जे स्थानकवासी समाज माटे मगरुरी लेवा जेवुं छे, वली करांचीना श्री संघे सारा कागलमां अने सारा टाइपमां पुस्तक छपावी प्रगट कर्यू छे जे एक प्रकारनी साहित्य सेवा वजावी छे.

*

वम्बई शहेर में विराजमान कवि मुनि श्री नानचन्दजी महाराजने फरमाया है कि पुस्तक सुन्दर है प्रयास अच्छा है।

*

खीचन से स्थविर क्रिया पात्र मुनि श्री रतनचन्दजी महाराज और पंडितरत्न मुनि समर्थमलजी महाराज श्री फरमाते हैं कि-विद्वान महात्मा पुरुषोका प्रयत्न सराहनीय है क्या जैनागम श्रीमद् उपासक दशाङ्ग सूत्र की टीका, एवं उसकी सरल सुवोधनी शुद्ध हिन्दी भाषा वडी ही सुन्दरता से लिखी है।

*

श्री वीतरागाय नमः ॥

श्री श्री श्री १००८ जैनधर्म दिवाकर जैनागमरत्नाकर श्रीमज्जैनाचार्य श्री पूज्य घासीलालजी महाराज चरणवन्दन स्वीकार हो।

अपरञ्च समाचार यह है कि आपके भेजे हुए ९ शास्त्र मास्टर सोभालालजी के द्वारा प्राप्त हुए, एतदर्थ धन्यवाद! आपश्रीजीने तो ऐसा कार्य किया है जो कि हजारों वर्षों से किसी भी स्थानकवासी जैनाचार्य ने नहीं किया।

आपने स्थानकवासीजैनसमाज के ऊपर जो उपकार किया है वह कदापि भुलाया नहीं जा सकता और नहीं भुलाया जा सकेगा।

हम तीनों मुनि भगवान महावीर से अथवा शासनदेव से प्रार्थना करते हैं कि आपकी इस वज्रमयी लेखनी को उत्तरोत्तर शक्ति प्रदान करें ता कि आप जैन समाज के ऊपर और भी उपकार करते रहें और आप चिरञ्जीव हों।

हम हैं आप के मुनि तीन

उदेपुर. मुनि सत्येन्द्रदेव–मुनि लखपतराय–मुनि पद्मसेन



इतवारी बाजार
नागपुर ता. १९–१२–५६

प्रखर विद्वान जैनाचार्य मुनिराज श्री घासीलालजी महाराजद्वारा जो आगमोद्धार हुआ और हो रहा है सचमुच महाराजश्री का यह स्तुत्य कार्य है। हमने प्रचारकजी के द्वारा नौ सूत्रों का सेट देखा और कइ मार्मिक स्थलोंको पढा, पढ कर विद्वान मुनिराजश्री की शुद्ध श्रद्धा तथा लेखनीके प्रति हार्दिक प्रसन्नता फूट पडी।

वास्तव में मुनिराज श्री जैन समाज पर ही नहीं इतर समाज पर भी महा उपकार कर रहे हैं। ज्ञान किसी एक समाज का नहीं होता वह सभी समाज की अनमोल निधि है जिसे कठिन परिश्रम से तैयार कर जनता के सम्मुख रक्खा जा रहा है जिसका एक एक सेट हर शहर गांव और घर घर में होना आवश्यक है।

साहित्यरत्न
मोहनमुनि सोहनमुनि जैन.

શ્રમણ સંઘના પ્રચાર મંત્રી પંજાબ કેશરી મહારાજ **શ્રી પ્રેમચંદજી મહારાજ** જેઓશ્રી રાજકોટમાં પધારેલા હતા ત્યારે તેઓના તરફથી શાસ્ત્રોને માટે મળેલો અભિપ્રાય

*

શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી પૂજ્યપાદ શાસ્ત્ર વારિધિ પંડિતરાજ સ્વામીશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજદ્વારા શાસ્ત્રોદ્ધારનું જે કાર્ય થઈ રહ્યુ છે તે કાર્ય જૈન સમાજ તેમાં ખાસ કરીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજને માટે મૂળભૂત મૌલિક સંસ્કૃતિની જડને મજબુત કરવાવાળુ છે.

એટલા ખાતર આ કાર્ય અતિ પ્રશંસનીય છે માટે દરેક વ્યકિતએ તેમાં યથાશકિત ભોગ દેવાની ખાસ આવશ્યકતા છે અને તેથી એ ભગીરથ કાર્ય જલ્દીથી જલ્દી સંપૂર્ણપણે પાર પાડી શકાય અને જનતા શ્રુતજ્ઞાનનો લાભ મેળવી શકે

*

દરીયાપુરી સંપ્રદાયના પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઈશ્વરલાલજી મહારાજ સાહેબના

સૂત્રો સંબંધે વિચારો

નમામિ વીરં ગિરી સાર ધીરં

પૂજ્ય પાદ જ્ઞાન પ્રવરશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તથા પંડિતશ્રી કનૈયાલાલજી મહારાજ આદિ થાણા છની સેવામા–

અમદાવાદ શાહપુર ઉપાશ્રયથી મુનિ દયાનંદજીના ૧૦૮ પ્રણિપાત

આપ સર્વે થાણાઓ સુખ સમાધિમાં હશો નિરંતર ધર્મધ્યાન ધર્મારાધનમા લીન હશો

સૂત્ર પ્રકાશન કાર્ય ત્વરીત થાય એવી ભાવના છે દશવૈકાલિક તથા આચારાંગ એક એક ભાગ અહીં છે ટીકા ખૂબ સુંદર, સરળ અને પંડિતજનોને સુપ્રિય થઈ પડે તેવી છે. સાથે સાથે ટીકા વીનાના મુળ અને અર્થ સાથે પ્રકાશન થાય તો શ્રાવકગણુ તેનો વિશેષ લાભ લઈ શકે અત્રે પૂજ્ય આચાર્ય ગુરૂદેવને આંખે મોતીયો ઉતરાવ્યો છે અને સારૂં છે એજ.

આસો શુદ ૧૦, મંગળવાર તા ૨૫–૧૦–૫૫

પુનઃ પુનઃ શાતા ઈચ્છતો,
દયા મુનિના પ્રણિપાત.

દરીયાપુરી સંપ્રદાયના પંડિત રત્ન ભાઈચંદજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શ્રી

રાણપુર તા. ૧૯–૧૨–૧૯૫૫

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનપ્રવર પંડિતરત્ન પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આદિ-મુનિવરોની સેવામાં આપ સર્વ સુખ સમાધીમાં હશો.

સૂત્ર પ્રકાશનનું કામ સુંદર થઈ રહ્યું છે તે જાણી અત્યંત આનંદ. આપના પ્રકાશીત થયેલાં કેટલાંક સૂત્રો જોયાં. સુદર અને સરલ સિદ્ધાંતના ન્યાયને પુષ્ટિ કરતી ટીકા પડિતરત્નોને સુપ્રિય થઈ પડે તેવી છે. સૂત્ર પ્રકાશનનું કામ ત્વરિત પૂર્ણ થાય અને ભાવિ આત્માઓને આત્મકલ્યાણ કરવામાં સાધનભૂત થાય એજ અભ્યર્થના.

લી. પંડિતરત્ન બાળબ્રહ્મચારી
પૂ. શ્રી ભાઇચંદ મહારાજની
આજ્ઞાનુસાર શાન્તિમુનીના
પાયવંદન સ્વીકારશો

*

તા. ૧૧–૫–૫૬
વીરમગામ

ગચ્છાધિપતિ પૂજ્ય મહારાજ શ્રી જ્ઞાનચંદ્રજી મહારાજના સંપ્રદાયના આત્માર્થી, ક્રિયાપાત્ર, પંડિતરત્ન, મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજનો અભિપ્રાય

ખીચનથી આવેલ તા ૧૧–૨–૫૬ના પત્રથી ઉદ્ધ્રિત

પૂજ્ય આચાર્ય ઘાસીલાલજી મહારાજના હસ્તક જે સૂત્રોનું લખાણુ સુંદર અને સરળ ભાષામાં થાય છે તે સાહિત્ય, પડિત મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજ, સમય ઓછો મળવાને કારણે સંપૂર્ણ જોઇ શકયા નથી. છતાં જેટલું સાહિત્ય જોયું છે, તે બહુ જ સારૂ અને મનન સાથે લખાયેલું છે તે લખાણુ શાસ્ત્ર આજ્ઞાને અનુરૂપ લાગે છે આ સાહિત્ય દરેક શ્રદ્ધાળુ જીવોને વાંચવા યોગ્ય છે આમાં સ્થાનકવાસી સમાજની શ્રદ્ધા, પ્રરુપણા અને ફરસણાની દઢતા શાસ્ત્રાનુકુળ છે. આચાર્ય શ્રી અપૂર્વ પરિશ્રમ લઈ સમાજ ઉપર મહાન ઉપકાર કરે છે

લી. કીશનલાલ પૃથ્વીરાજ માલુ
મુ. ખીચન

*

લીંબડી સંપ્રદાયના સદાનંદી મુનીશ્રી છોટાલાલજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શ્રી વીતરાગદેવે–જ્ઞાનપ્રચારને તીર્થંકર નામ ગોત્ર બાંધવાનું નિમિત્ત કહેલ છે. જ્ઞાન પ્રચાર કરનાર, કરવામાં સહાય કરનાર, અને તેને અનુમોદન આપનાર જ્ઞાનાવર્ણિય કર્મને ક્ષય કરી–કેવળ જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરી પરમપદનાં અધિકારી બને છે. શાસ્ત્રજ્ઞ–પરમ શાન્ત, અને અપ્રમાદિ પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે અવિશ્રાન્તપણે જ્ઞાનની ઉપાશના અને તેની પ્રભાવના અનેક વિકટ પ્રસંગોમાં પણ કરી રહ્યા છે તે માટે તેઓશ્રી અનેકશઃ ધન્યવાદના અધિકારી છે. વંદનિય છે–તેમની જ્ઞાન પ્રભાવનાની ધગશ ઘણા પ્રમાદિઓને અનુકરણીય છે જેમ પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે જ્ઞાનપ્રચાર માટે અવિશ્રાન્ત પ્રયત્ન કરે છે તેમજ–શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના કાર્યવાહકો પણ એમાં સહાય કરીને જે પવિત્ર સેવા કરી રહેલ છે. તે પણ ખરેખર ધન્યવાદના પૂર્ણ અધિકારી છે

એ સમિતિના કાર્યકરોને મારી એક સુચના છે કે :–

શાસ્ત્રોદ્ધારક પ્રવર પંડિત અપ્રમાદિ સત ઘાસીલાલજી મહારાજ જે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ કરી રહેલ છે તેમાં સહાય કરવા માટે–પંડિતો વિગેરેના માટે જે ખર્ચો થઇ રહેલ છે. તેને પહોંચી વળવા માટે સારૂં સરખું ફંડ જોઇએ એના માટે મારી એ સુચના છે કે:–શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના મુખ્ય કાર્યવાહકો,–જો બની શકે તો પ્રમુખ પોતે અને બીજા બે ત્રણ જણાઓ ગુજરાત, સૌરાષ્ટ્ર, અને કચ્છમાં પ્રવાસ કરી મેમ્બરો બનાવે અને આર્થિક સહાય મેળવે

જો કે અત્યારની પરિસ્થિતિ વિષમ છે. વ્યાપારીઓ, ધંધાદારીઓને પોતાના વ્યવહાર સાચવવા પણ મુશ્કેલ બન્યા છે. છતાં જો સંભાવિત ગૃહસ્થો પ્રવાસે નીકળે તો જરૂર કાર્ય સફળ કરે એવી મને શ્રદ્ધા છે.

આર્થિક અનુકુળતા થવાથી શાસ્ત્રોદ્ધારનુ કામ પણ વધુ સરલતાથી થઇ શકે. પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જ્યા સુધી આ તરફ વિચરે છે ત્યાં સુધીમા એમની જ્ઞાન શકિતનો જેટલો લાભ લેવાય તેટલો લઇ લેવો કદાચ સૌરાષ્ટ્રમાં વધુ વખત રહેવાથી તેમને હવે બહાર વિહરવાની ઇચ્છા થતી હોય તો શાન્તિભાઈ શેઠ જેવાએ વિનંતી કરી અમદાવાદ પધરાવવા. અને ત્યાં–અનુકુળતા મુજબ–બે ત્રણ વર્ષની સ્થિરતા કરાવીને તેમની પાસે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પૂર્ણ કરાવી લેવું જોઇએ.

થોડા વખતમાં જામજોધપુરમા શાસ્ત્રોદ્ધાર કમીટી મળવાની છે. તે વખતે ઉપરની સુચના વિચારાય તો ઠીક

ફરી શાસ્ત્રોદ્ધારક પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજને એમની આ સેવા અને પરમ કલ્યાણકારક પ્રવૃત્તિને માટે વારંવાર અભિનંદન છે. શાસનનાયક દેવ તેમના શરિરાદીને સશકત અને દીર્ઘાયુ રાખી સમાજ ધર્મની વધુ ને વધુ સેવા કરી શકે. ॐ અસ્તુ.

ચાતુર્માસ સ્થળ. લીંબડી | લિ
સાં. ૨૦૧૦ શ્રાવણ વદ ૧૩. ગુરૂ | સદાનંદી જૈનમુનિ **છોટાલાલજી**

*

શ્રી વર્ધમાન સંપ્રદાયના પૂજ્ય શ્રી પુનમચંદ્રજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શાસ્ત્ર વિશારદ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ જૈન આગમો ઉપર જે સસ્કૃત ટીકા વગેરે રચેલ છે. તે માટે તેઓશ્રી ધન્યવાદને પાત્ર છે. તેમણે આગમો ઉપરની સ્વતંત્ર ટીકા રચીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજનું ગૌરવ વધાર્યું છે આગમો ઉપરની તેમની સંસ્કૃત ટીકા ભાષા અને ભાવની દૃષ્ટિએ ઘણીજ સુંદર છે. સસ્કૃત રચના માધુર્ય તેમજ અલકાર વગેરે ગુણોથી યુકત છે. વિદ્વાનોએ તેમજ જૈન સમાજના આચાર્યો, ઉપાધ્યાયો વગેરે એ શાસ્ત્રો ઉપર રચેલી આ સંસ્કૃત રચનાની કદર કરવી જોઇએ અને દરેક પ્રકારનો સહકાર આપવો જોઇએ.

આવા મહાન કાર્યમા પંડિતરત્ન પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જે પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે તે અલૌકિક છે. તેમનું આગમ ઉપરની સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચવાનું ભગીરથ કાર્ય શીઘ્ર સફળ થાય એજ શુભેચ્છા સાથે

અમદાવાદ
તા. ૨૨-૪-૫૬ રવિવાર
મહાવીર જયતિ | મુનિ પૂર્ણચંદ્રજી

*

ખંભાત સંપ્રદાયના મહાસતી શારદાબાઇ સ્વામીનો અભિપ્રાય

લખતર તા ૨૫-૪-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાંતીલાલભાઇ મંગળદાસભાઇ
પ્રમુખ સાહેબ અખિલ ભારત શ્વે. સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ
મુ. અમદાવાદ

અમો અત્રે દેવગુરૂની કૃપાએ સુખરૂપ છીએ વિ માં આપની સમિતિ દ્વારા પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ સાહેબ જે સુત્રોનું કાર્ય કરે છે તે પૈકીનાં સુત્રોમાંથી ઉપાસક દશાગ સુત્ર, આચારંગ સુત્ર, અનુત્તરોપપાતિક સુત્ર

દશવૈકાલિક સુત્ર વિગેરે સુત્રો જોયાં તે સુત્રો સંસ્કૃત હીન્દી અને ગુજરાતી ભાષાઓમાં હોવાને કારણે વિદ્વાન અને સામાન્ય જનોને ઘણુંજ લાભદાયિક છે. તે વાંચન ઘણુ જ સુંદર અને મનોરંજન છે. આ કાર્યમાં પૂજ્ય આચાર્યશ્રી જે અઘાત પુરૂષાર્થે કાર્ય કરે છે તે માટે વારંવાર ધન્યવાદને પાત્ર છે. આ સુત્રોથી સમાજને ઘણું લાભનુ કારણ છે

હંસ સમાન બુદ્ધીવાળા આત્માઓ સ્વપરના ભેદથી નિખાલસ ભાવનાએ અવલોકન કરશે તો આ સાહિત્ય સ્થાનકવાસી સમાજ માટે અપૂર્વ અને ગૌરવ લેવા જેવું છે માટે દરેક ભવ્ય આત્માઓને સુચન કરૂ છુ કે આ સુત્રો પોતપોતાના ઘરમાં વસાવાની સુંદર તકને ચુકશો નહિ કારણુ આવા શુદ્ધ પવિત્ર અને સ્વપરંપરાને પુષ્ટીરૂપ સુત્રો મળવા બહુ મુશ્કેલ છે. આ કાર્યને આપશ્રી તથા સમિતિના અન્ય કાર્યકરો જે શ્રમ લઇ રહ્યા છો તેમાં મહાન નિર્જરાનુ કારણુ જોવામા આવે છે તે બદલ ધન્યવાદ. એજ

લી. શારદાબાઇ સ્વામી

ખંભાત સંપ્રદાય.

*

બરવાળા સંપ્રદાયના વિદુષી મહાસતીજી મોંઘીબાઇ સ્વામીનો અભિપ્રાય

ધંધુકા તા. ૨૭-૧-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તીલાલ મંગળદાસભાઇ
પ્રમુખ અ૦ ભ૦ શ્વે૦ સ્થા૦ જૈનશાસ્ત્ર ઉદ્ધાર સમિતિ
મુ. રાજકોટ

અત્રે બીરાજતા ગુ૦ ગુણના ભંડાર મહાસતિજી વિદુષી મોંઘીબાઇ સ્વામી તથા હીરાબાઇ સ્વામી આદિઠાણા બન્ને સુખશાતામાં બીરાજે છે આપને સુચન છે કે અપ્રમત અવસ્થામાં રહી નિવૃત્તિ ભાવને મેળવી ધર્મધ્યાન કરશોજી એજ આશા છે

વિશેષમાં અમને પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના રચેલાં સુત્રો ભાઇ પોપટ ધનજીભાઇ તરફથી ભેટ તરીકે મળેલા તે સુત્રો તમામ આદ્યોઉપાન વાંચ્યાં મનન કર્યા અને વિચાર્યા છે તે સુત્રો સ્થાનકવાસી સમાજને અને વિતરાગ માર્ગની ખૂબજ ઉન્નત્ત બનાવનાર છે. તેમાં આપણી શ્રદ્ધા એટલી ન્યાય રુપથી ભરેલી છે તે આપણા સમાજ માટે ગૌરવ લેવા જેવું છે. હંસ સમાન

આત્માઓ જ્ઞાન ઝરણાઓથી આત્મરુપ વાડીને વિકસીત કરશે. ધન્ય છે આપને અને સમિતિના કાર્યકરોને જે સમાજ ઉત્થાન માટે કોઈની પણ પરવા કર્યા વગર જ્ઞાનનું દાન ભવ્ય આત્માઓને આપવા નિમિત્તરુપ થઇ રહ્યા છો આવા સમર્થ વિદ્વાન પાસેથી સંપૂર્ણ કાર્ય પુરૂં કરાવશો તેવી આશા છે.

એજ લિ ખરવાળા સંપ્રદાયના વિદુષી
મહાસતીજી **મોંઘીબાઈ સ્વામી**
ના ફરમાનથી લી ખોડીદાસ ગણેસભાઇ–ધંધુકા
સ્થાનકવાસી જૈન સંઘના પ્રમુખ

*

અદ્યતન પદ્ધતિને અપનાવનાર વડોદરા કોલેજના એક વિદ્વાન પ્રોફેસરનો અભિપ્રાય.

સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયના મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જૈનશાસ્ત્રોના સંસ્કૃત ટીકાબદ્ધ, ગુજરાતીમા અને હિન્દીમાં ભાષાંતરો કરવાના ઘણા વિકટ કાર્યમાં વ્યાપ્ત થયેલા છે શાસ્ત્રો પૈકી જે શાસ્ત્રો પ્રસિદ્ધ થયાં છે તે હું જોઇ શક્યો છું, મુનિશ્રી પોતે સસ્કૃત, અર્ધમાગધી હિંદી ભાષાઓના નિષ્ણાત છે, એ એમનો ટુંકો પરિચય કરતાં સહજ જણાઇ આવે છે શાસ્ત્રોનું સપાદન કરવામાં તેમને પોતાના, શિષ્ય-વર્ગનો અને વિશેષમાં ત્રણ પંડિતોનો સહકાર મળ્યો છે, તે જોઈ મને આનદ થયો. સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયના અગ્રેસરોએ પંડિતોનો સહકાર મેળવી આપી મુનિશ્રીના કાર્યને સરળ અને શિષ્ટ બનાવ્યું છે સ્થાનકવાસી સમાજમા વિદ્વતા ઘણી ઓછી છે. તે દિગંબર, મૂર્તિપૂજક શ્વેતાંબર વગેરે જૈનદર્શનના પ્રતિનિધિઓના ઘણા સમયથી પરિચયમાં આવતા હું વિરોધના ભય વગર, કહી શકું. પૂ મહારાજનો આ પ્રયાસ સ્થાનકવાસી સપ્રદાયમાં પ્રથમ છે એવી મારી માન્યતા છે. સંસ્કૃત સ્પષ્ટીકરણો સારાં આપવામાં આવ્યાં છે ભાષા શુદ્ધ છે એમ હું ચોક્કસ કહી શકુ છું. ગુજરાતી ભાષાતરો પણ શુદ્ધ અને સરળ થયેલાં છે મને વિશ્વાસ છે કે મહારાજ-શ્રીના આ સ્તુત્ય પ્રયાસને જૈનસમાજ ઉત્તેજન આપશે અને શાસ્ત્રોના ભાષાંતરોને વાચનાલયમાં અને કુટુબોમાં વસાવી શકાય તે પ્રમાણે વ્યવસ્થા કરશે.

પ્રતાપગંજ, **વડોદરા** — **કામદાર કેશવલાલ હિંમતરામ,**
તા. ૨૭–૨–૧૯૫૬ — એમ એ

*

મુંબઈની બે કોલેજોના પ્રોફેસરોનો અભિપ્રાય.

મુંબઈ તા ૩૧-૩-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાંતીલાલ મંગળદાસ
પ્રમુખ : શ્રી અખિલ ભારત શ્વે. સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ,
રાજકોટ

પૂજ્યાચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે તૈયાર કરેલા આચારાંગ, દશવૈકાલીક આવશ્યક, ઉપાસકદશાંગ વગેરે સૂત્રો અમે જોયા આ સૂત્રો ઉપર સંસ્કૃતમાં ટીકા આપવામાં આવી છે અને સાથે સાથે હીંદી અને ગુજરાતી ભાષાંતરો પણ આપવામાં આવ્યા છે સંસ્કૃત ટીકા અને ગુજરાતી તથા હીંદી ભાષાંતરો જોતાં આચાર્યશ્રીના આ ત્રણે ભાષા પરના એકસરખા અસાધારણ પ્રભુત્વની સચોટ અને સુરેખ છાપ પડે છે. આ સૂત્ર ગ્રંથોમાં પાને પાને પ્રગટ થતી આચાર્યશ્રીની અપ્રતિમ વિદ્વતા મુગ્ધ કરી દે તેવી છે. ગુજરાતી તથા હીંદીમાં થયેલા ભાષાંતરમાં ભાષાની શુદ્ધિ અને સરળતા નોંધપાત્ર છે. એથી વિદ્વદજન અને સાધારણ માણસ ઉભયને સંતોષ આપે એવી એમની લેખિનીની પ્રતીતિ થાય છે. ૩૨ સૂત્રોમાંથી હજુ ૧૩ સૂત્રો પ્રગટ થયાં છે બીજાં ૭ સૂત્રો લખાઈને તૈયાર થઇ ગયાં છે. આ બધાં જ સૂત્રો જ્યારે એમને હાથે તૈયાર થઇને પ્રગટ થશે ત્યારે જૈન સૂત્ર-સાહિત્યમાં અમૂલ્ય સંપત્તિરૂપ ગણાશે એમાં સંશય નથી આચાર્યશ્રી આ મહાન કાર્યને જૈન સમાજનો-વિશેષત: સ્થાનકવાસી સમાજનો સંપૂર્ણ સહકાર સાંપડી રહેશે એવી અમે આશા રાખીએ છીએ

પ્રો. રમણુલાલ ચીમનલાલ શાહ
સેંટ ઝેવિયર્સ કોલેજ, **મુંબઈ.**
પ્રો તારા રમણુલાલ શાહ.
સોફીયા કોલેજ, **મુંબઈ.**

*

રાજકોટની ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજના પ્રોફેસર સાહેબનો અભિપ્રાય.

જયમહાલ
જાગનાથ પ્લોટ
રાજકોટ, તા ૧૮-૪-૫૬

પૂજ્યાચાર્ય પં. મુનિ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આજે જૈન સમાજ માટે એક એવા કાર્યમાં વ્યાપ્ત થએલા છે કે જે સમાજ માટે બહુ ઉપયોગી થઇ પડશે. મુનિશ્રીએ તૈયાર કરેલાં આચારાંગ, દશવૈકાલિક, શ્રી વિપાકશ્રુત વિ. મેં જોયા.

આ સૂત્રો જોતાં પહેલીજ નજરે મહારાજશ્રીનો સંસ્કૃત, અર્ધમાગધી, હિન્દી તથા ગુજરાતી ભાષાઓ ઉપરનો અસાધારણ કાબુ જણાઇ આવે છે. એક પણ ભાષા મહારાજશ્રીથી અજાણી નથી. આપણે જાણીએ છીએ કે એ સૂત્રો ઉચ્ચ અને પ્રથમ કોટિના છે તેની વસ્તુ ગંભીર, વ્યાપક અને જીવનને તલસ્પર્શી છે આટલા ગહન અને સર્વગ્રાહ્ય સૂત્રોનુ ભાષાંતર પૂ ઘાસીલાલજી મહારાજ જેવા ઉચ્ચ કોટિના મુનિરાજને હાથે થાય છે તે આપણા અહોભાગ્ય છે યંત્રવાદ અને ભૌતિકવાદના આ જમાનામાં જ્યારે ધર્મભાવના ઓસરતી જાય છે એવે વખતે આવા તત્ત્વજ્ઞાન આધ્યાત્મિકતાથી ભરેલાં સૂત્રોનું સરળ ભાષામાં ભાષાંતર દરેક જીજ્ઞાસુ, મુમુક્ષુ અને સાધકને માર્ગદર્શક થઈ પડે તેમ છે. જૈન અને જૈનેતર, વિદ્વાન અને સાધારણ માણસ, સાધુ અને શ્રાવક દરેકને સમજણ પડે તેવી સ્પષ્ટ, સરળ અને શુદ્ધ ભાષામાં સૂત્રો લખવામાં આવ્યા છે. મહારાજશ્રીને જ્યારે જોઇએ ત્યારે તેમના આ કાર્યમાં સંકળાયેલા જોઇએ છીએ એ ઉપરથી મુનિશ્રીના પરિશ્રમ અને ધગશની કલ્પના કરી શકાય તેમ છે. તેમનું જીવન સૂત્રોમાં વણાઇ ગયું છે.

મુનિશ્રીના આ અસાધારણ કાર્યમાં પોતાના શિષ્યોનો તથા પંડિતોનો સહકાર મળ્યો છે. મને આશા છે કે જો દરેક મુમુક્ષુ આ પુસ્તકોને પોતાના ઘરમાં વસાવશે અને પોતાના જીવનને સાચા સુખને માર્ગે વાળશે તો મહારાજશ્રીએ ઉઠાવેલો શ્રમ સંપૂર્ણપણે સફળ થશે

પ્રો. રસિકલાલ કસ્તુરચંદ ગાંધી
એમ એ એલ. એલ. બી.
ધર્મેન્દ્રસિંહજી કૉલેજ
રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર)

*

મુંબઈ અને ઘાટકોપરમાં મળેલી સભાએ ભિનાસર કોન્ફરન્સ તથા સાધુ સંમેલનમાં મોકલાવેલ ઠરાવ.

હાલ જે વખતે શ્રી શ્વેતાંબર સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ માટે આગમ-સંશોધન અને સ્વતંત્ર ટીકાવાળા શાસ્ત્રોદ્ધારની અતિ આવશ્યકતા છે અને જે મહાનુભાવોએ આ વાત દીર્ઘ દ્રષ્ટિથી પહેલી પોતાના મગજમા લઇ તે પાર પાડવા મહેનત લઇ રહ્યા છે તેવા મુનિ મહારાજ પંડિતરત્ન શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કે જેઓને સાદડી અધિવેશનમાં સર્વાનુમતે સાહિત્ય મંત્રી નીમ્યા છે તેઓશ્રીની દેખરેખ નીચે અ ભા શ્વે. સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ જે એક મોટી વગવાળી કમિટી છે તેની મારફતે કામ થઇ રહ્યુ છે જેને પ્રધાનાચાર્યશ્રી તથા પ્રચાર મંત્રીશ્રી

તથા અનેક અનુભવી મહાનુભાવોએ પોતાની પસંદગીની મહોર છાપ આપી છે અને છેલ્લામાં છેલ્લા વડોદરા યુનિવર્સીટીના પ્રોફેસર કેશવલાલ કામદાર એમ એ એ પોતાનું સવિસ્તર પ્રમાણપત્ર આપ્યુ છે તે શાસ્ત્રોદ્ધાર કમિટીના કામને આ સમેલન તથા કોન્ફરન્સ હાર્દિક અભિનંદન આપે છે અને તેમના કામને જ્યાં જયાં અને જે જે જરૂર પડે-પડિતની અને નાણાંની-પોતાની પાસેના ફંડમાંથી અને જાહેર જનતા પાસેથી મદદ મળે તેવી ઇચ્છા ધરાવે છે.

આ શાસ્ત્રો અને ટીકાઓને જ્યારે આટલી બધી પ્રશંસાપૂર્વક પસંદગી મળી છે ત્યારે તે કામને મદદ કરવાની આ કોન્ફરન્સ પોતાની ફરજ માને છે અને જે કાંઇ ત્રુટી હોય તે પ ર શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજની સાનિધ્યમાં જઇ, બતાવીને સુધારવા પ્રયત્ન કરવો આ કામને ટલ્લે ચઢાવવા જેવું કોઇપણ કામ સત્તા ઉપરના અધીકારીઓના વાણી કે વર્તનથી ન થાય તે જોવા પ્રમુખ સાહેબને ભલામણ કરે છે.

(સ્થા જૈન પત્ર તા ૪-૫-૫૬)

*

સ્વતંત્ર વિચારક અને નિડર લેખક 'જૈન સિદ્ધાંત'ના તંત્રીશ્રી શેઠ નગીનદાસ ગીરધરલાલનો અભિપ્રાય

શ્રી સ્થાનકવાસી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સ્થાપીને પૂ શ્રી. ઘાસીલાલજી મહારાજને સૌરાષ્ટ્રમા બોલાવી તેમની પાસે બત્રીસે સૂત્રો તૈયાર કરવાની હિલચાલ ચાલતી હતી ત્યારે તે હિલચાલ કરનાર શાસ્ત્રજ્ઞ શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઇ સાથે મારે પત્રવ્યવહાર ચાલેલો ત્યારે શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઇએ તેમનાં એક પત્રમાં મને લખેલું કે—

> "આપણા સૂત્રોના મૂળ પાઠ તપાસી શુદ્ધ કરી સંસ્કૃત સાથે તૈયાર કરી શકે તેવા સ્થાવકવાસી સપ્રદાયમાં મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મ. સિવાય મને કોઇ વિશેષ વિદ્વાન મુનિ જોવામાં આવતા નથી. લાંબી તપાસને અતે મે મુનિ શ્રી ઘાસીલાલજીને પસદ કરેલા છે"

શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઇ પોતે વિદ્વાન હતા. શાસ્ત્રજ્ઞ હતા તેમ વિચારક પણ હતા. શ્રાવકો તેમજ મુનિઓ પણ તેમની પાસેથી શીક્ષા વાંચના લેતા, તેમ જ્ઞાન ચર્ચા પણ કરતા એવા વિદ્વાન શેઠશ્રીની પસંદગી યથાર્થ જ હોય એમાં

નવાઇ નથી. અને પૂ. શ્રી. ઘાસીલાલજીના બનાવેલાં સૂત્રો જોતાં સૌ કોઇને ખાત્રી થાય તેમ છે કે દામોદરદાસભાઇએ તેમજ સ્થાનકવાસી સમાજે જેવી આશા શ્રી ઘાસીલાલજી મ. પાસેથી રાખેલી તે બરાબર ફળીભૂત થયેલ છે

શ્રી વર્ધમાન શ્રમણસંઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજે શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સૂત્રો માટે ખાસ પ્રશંસા કરી અનુમતિ આપેલ છે તે ઉપરથી જ શ્રી ઘાસીલાલજી મ ના સૂત્રોની ઉપયોગિતાની ખાત્રી થશે

આ સૂત્રો વિદ્યાર્થીને, અભ્યાસીને તેમજ સામાન્ય વાંચકને સર્વને એક સરખી રીતે ઉપયોગી થઇ પડે છે વિદ્યાર્થીને તેમજ અભ્યાસીને મૂળ તથા સસ્કૃત ટીકા વિશેષ કરીને ઉપયોગી થાય તેમ છે ત્યારે સામાન્ય હિંદી વાંચકને હિંદી અનુવાદ અને ગુજરાતી વાંચકને ગુજરાતી અનુવાદથી આખું સૂત્ર સરળતાથી સમજાય જાય છે

કેટલાકોને એવો ભ્રમ છે કે સૂત્રો વાંચવાનુ આપણું કામ નહિ, સૂત્રો આપણને સમજાય નહિ આ ભ્રમ તદ્દન ખોટો છે બીજા કોઇપણ શાસ્ત્રીય પુસ્તક કરતાં સૂત્રો સામાન્ય વાચકને પણ ઘણી સરળતાથી સમજાઇ જાય છે. સામાન્ય માણસ પણ સમજી શકે તેટલા માટે જ ભ. મહાવીરે તે વખતથી લોક ભાષામાં (અર્ધ માગધી ભાષામા) સૂત્રો બનાવેલાં છે. એટલે સૂત્રો વાંચવાં તેમજ સમજવામાં ઘણાં સરળ છે

માટે કોઇ પણ વાંચકને એનો ભ્રમ હોય તો તે કાઢી નાંખવો. અને ધર્મનું તેમજ ધર્મના સિદ્ધાતોનુ સાચું જ્ઞાન મેળવવા માટે સૂત્રો વાંચવાને ચૂકવું નહિ એટલું જ નહિ પણ જરૂરથી પહેલા સૂત્રોજ વાંચવા.

સ્થાનકવાસીઓમાં આ શ્રી સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ જે કામ કર્યુ છે અને કરી રહી છે તેવું કોઇ પણ સંસ્થાએ આજ સુધી કર્યું નથી સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના છેલ્લા રિપોર્ટ પ્રમાણે બીજા છ સૂત્રો લખાયેલ પડયાં છે, બે સૂત્રો–અનુયોગદ્વાર અને ઠાણાંગ સૂત્રો–લખાય છે તે પણ થોડા વખતમાં તૈયાર થઇ જશે. તે પછી બાકીના સૂત્રો હાથ ધરવામાં આવશે

તૈયાર સૂત્રો જલ્દી છપાઇ જાય એમ ઇચ્છીએ છીએ અને સ્થા બધુઓ સમિતિને ઉત્તેજન અને સહાયતા આપીને તેમનાં સૂત્રો ઘરમાં વસાવે એમ ઇચ્છીએ છીએ 'જૈન સિદ્ધાન્ત' પત્ર – મે ૧૯૫૫.

*

શ્રુત ભક્તિ

(પૂ. આચાર્ય શ્રી ઈશ્વરલાલજી મ. સા. ની આજ્ઞા અનુસાર લખનાર)

દ. સં. ના જૈન મુનિ શ્રી દયાનંદજી મહારાજ

તા. ૨૩–૬–૫૬ શાહપુર, અમદાવાદ.

આજે લગભગ ૨૦ વર્ષથી શ્રદ્ધેય પરમપૂજ્ય, જ્ઞાન દિવાકર પં. મુનિશ્રી **ઘાસીલાલજી** મ ચરમ તીર્થંકર ભગવાન મહાવીરના અનુત્તર, અનુપમ ન્યાય યુક્ત, પૂર્વાપર અવિરોધ, સ્વપર કલ્યાણકારક, ચરમ શીતળ વાણીના દ્યોતક એવા **શ્રી જિનાગમ** પર પ્રકાશ પાડે છે. તેઓશ્રી પ્રાચીન, પૌર્વાત્ય સંસ્કૃતાદિ અનેક ભાષાના પ્રખર પડિત છે અને જિન વાણીનો પ્રકાશ સંસ્કૃત, ગુજરાતી અને હિંદીમાં મૂળ શબ્દાર્થ, ટીકા, વિસ્તૃત વિવરણ સાથે પ્રકાશમાં લાવે છે એ જૈન સમાજ માટે અતિ ગૌરવ અને આનંદનો વિષય છે.

ભ૦ મહાવીર અત્યારે આપણી પાસે વિદ્યમાન નથી પરંતુ તેમની વાણી રૂપે અક્ષરદેહ ગણધર મહારાજોએ શ્રુત પરંપરાએ સાચવી રાખ્યો શ્રુત પરંપરાથી સચવાતુ જ્ઞાન જ્યારે વિસ્મૃત થવાનો સમય ઉપસ્થિત થવા લાગ્યો ત્યારે શ્રી દેવર્દ્ધિગણિ ક્ષમાશ્રમણે વલ્લભીપુર–વળામાં તે આગમોને પુસ્તકો રૂપે આરૂઢ કર્યો. આજે આ સિદ્ધાતો આપણી પાસે છે તે અર્ધ માગધી પાલી ભાષામાં છે અત્યારે આ ભાષા ભગવાનની, દેવોની તથા જનગણની ધર્મ ભાષા છે તેને આપણા શ્રમણો અને શ્રમણીઓ તથા મુમુક્ષુ શ્રાવક શ્રાવિકાઓ મુખપાઠ કરે છે, પરન્તુ તેનો અર્થ અને ભાવ ઘણા થોડાઓ સમજે છે

જિનાગમ એ આપણાં શ્રદ્ધેય પવિત્ર ધર્મસૂત્રો છે. એ આપણી આંખો છે. તેનો અભ્યાસ કરવો એ આપણી સૌની–જૈન માત્રની ફરજ છે. તેને સત્ય સ્વરૂપે સમજાવવા માટે આપણાં સદ્ભાગ્યે જ્ઞાન દિવાકર શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે સત્સંકલ્પ કર્યો છે અને તે લિખિત સૂત્રોને પ્રગટાવી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમીતી દ્વારા જ્ઞાન પરબ વહેતી કરી છે. આવા અનુપમ કાર્યમા સકળ જૈનોનો સહકાર અવશ્ય હોવો ઘટે અને તેનો વધારેમાં વધારે પ્રચાર થાય તે માટે પ્રયત્નો કરવા ઘટે

ભ૦ મહાવીરને ગણધર ગૌતમ પૂછે છે કે હે ભગવાન, સૂત્રની આરાધના કરવાથી શું ફળ પ્રાપ્ત થાય છે? ભગવાન તેનો પ્રતિ ઉત્તર આપે છે કે શ્રુતની આરાધનાથી જીવોના અજ્ઞાનનો નાશ થાય છે. અને તેઓ સસારના કલેશોથી નિવૃત્તિ મેળવે છે અને સસાર કલેશોથી નિવૃત્તિ અને અજ્ઞાનનો નાશ થતાં મોક્ષ ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે.

આવા જ્ઞાન કાર્યમા મૂર્તિપૂજક જૈનો, દિગંબરો અને અન્ય ધર્મીઓ હજારો અને લાખો રૂપીયા ખર્ચે છે હિંદુ ધર્મમાં પવિત્ર મનાતા ગ્રંથ ગીતાના સેંકડો નહિ પણ હજારો ટીકા ગ્રથો દુનિયાની લગભગ સર્વ ભાષાઓમા પ્રગટ થયા છે. ઈસાઇ ધર્મના પ્રચારકો તેમના પવિત્ર ધર્મગ્રન્થ બાઇબલના પ્રચારાર્થે તેનું જગતની સર્વ ભાષાઓમાં ભાષાંતર કરી, તેને પડતર કરતા પણ ઘણી ઓછી કિંમતે વેચી ધર્મ-

સૂત્રોનો પ્રચાર કરે છે. મુસ્લીમ લોકો પણ તેમના પવિત્ર મનાતા ગ્રન્થ કુરાનનું પણ અનેક ભાષાઓમા ભાષાંતર કરી સમાજમાં પ્રચાર કરે છે. આપણે પૈસા પરનો મોહ ઉતારી ભગવાનના સિદ્ધાંતોનો પ્રચાર કરવા માટે તન, મન, ધન સમર્પણ કરવાં જોઇએ. અને સૂત્ર પ્રકાશનના કાર્યને વધુ ને વધુ વેગ મળે તે માટે સક્રિય પ્રયત્નો કરવા જોઇએ આવા પવિત્ર કાર્યમાં સાંપ્રદાયિક મતભેદો સૌએ ભૂલી જવા જોઇએ અને શુદ્ધ આશયથી થતા શુદ્ધ કાર્યને અપનાવી લેવું જોઇએ. સમિતિના નિયમાનુસાર રૂ. ૨૫૧) ભરી સમીતીના સભ્ય બનવું જોઇએ. ધાર્મિક અનેક ખાતાંઓના મુકાબલે સૂત્ર પ્રકાશનનું-જ્ઞાન પ્રચારનું આ ખાતું સર્વશ્રેષ્ઠ ગણાવું જોઇએ

આ કાર્યને વેગ આપવાની સાથે સાથે એ આગમો-ભગવાનની એ મહાવાણીનું પાન કરવા પણ આપણે હરહમેશ તત્પર રહેવું જોઇએ જેથી પરમ શાન્તિ અને જીવન સિદ્ધિ મેળવી શકાય. (સ્થા જૈન. તા. ૫-૭-૫૯)

શ્રી. અ ભા શ્વે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનાં પ્રમુખશ્રી વગેરે

રાણપુર

પરમ પવિત્ર સૌરાષ્ટ્રની પુણ્ય ભૂમિ પર જ્યારથી શાન્ત-શાસ્ત્રવિશારદ અપ્રમાદિ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનાં પુનિત પગલાં થયા છે ત્યારથી ઘણા લાંબા કાળથી લાગુ પડેલ જ્ઞાનાવરણિય કર્મનાં પડળ ઉતારવાનો શુભ પ્રયાસ થઇ રહ્યો છે અને જે પ્રવચનની પ્રભાવના તેઓશ્રી કરી રહ્યા છે તે અનંત ઉપકારક કાર્યમાં તમે જે અપૂર્વ સહાય આપી રહ્યા છો તે માટે તમો સર્વને ધન્ય છે અને એ શુભ પ્રવૃત્તિના શુભ પરિણામોનો જનતા લાભ લ્યે છે. મને તો સમજાય છે કે સાધુજી છઠે ગુણસ્થાનકે હોય છે પણ પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તો બહુધા સાતમેં અપ્રમત ગુણસ્થાનકે જ રહે છે. એવા અપ્રમત માત્ર પાંચ-સાત સાધુઓ જો સ્થાનકવાસી જૈન સમાજમાં હોય તો સમાજનું શ્રેય થતાં જરાએ વાર ન લાગે. સમાજાકાશમાં સ્થા. જૈન સપ્રદાયનો દિવ્ય પ્રભાકર જળહળી નીકળે ૫...ણ વો દિન........

શ્રી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને મ્હારી એક નમ્ર સુચના છે કે-પૂજ્યશ્રીની વૃદ્ધાવસ્થા છે, અને કાર્યપ્રણાલિકા યુવાનોને શરમાવે તેવી છે તેમને ગામોગામ વિહાર કરવા અને શાસ્ત્રોદ્ધારનુ કાર્ય કરવું તેમાં ઘણી શારીરિક-માનસિક અને વ્યવહારિક મુશ્કેલી વેઠવી પડે છે તો કોઇ યોગ્ય સ્થળ કે જ્યાંના શ્રાવકો ભક્તિવાળા હોય. વાડાના રાગના વિષથી અલીપ્ત હોય એવા કોઇ સ્થળે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય પુર્ણ થાય ત્યાં સુધી સ્થીરતા કરી શકે એના માટે પ્રબંધ કરવો જોઇએ બીજા કોઇ એવા સ્થળની અનુકુળતા ન મળે તો છેવટ અમદાવાદમાં યોગ્ય સ્થળે રહેવાની સગવડતા કરી અપાય તો વધુ સારૂં મ્હારી આ સુચના પર ધ્યાન આપવા ફરી યાદ આપું છું. ફરીવાર પુજ્ય આચાર્યશ્રીને અને તેમના સત્કાર્યના સહાયકોને મારા અભિનંદન પાઠવું છું તે સ્વીકારશોજી.

લિ. સદાનંદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી.

"જૈન સિદ્ધાંતના" તંત્રીશ્રીનો અભિપ્રાય.

સ્થાનકવાસીઓમાં પ્રમાણભૂત સૂત્રો બહાર પાડનારી આ એકની એક સંસ્થા છે અને એના આ છેલ્લા રિપોર્ટ ઉપરથી જણાય છે કે તેણે ઘણી સારી પ્રગતિ કરી છે તે જોઇ આનંદ થાય છે.

મૂળ પાઠ, ટીકા, હિંદી તથા ગુજરાતી અનુવાદ સહિત સુત્રો બહાર પાડવાં એ કાંઇ સહેલુ કામ નથી. એ એક મહાભારત કામ છે અને તે કામ આ શાસ્રોદ્ધાર સમિતિ ઘણી સફળતાથી પાર પાડી રહી છે તે સ્થાનકવાસી સમાજ માટે ઘણા ગૌરવનો વિષય છે અને સમિતિ ધન્યવાદને પાત્ર છે

સમિતિ તરફથી નવસૂત્રો બહાર પડી ચૂકયાં છે, હાલમાં ત્રણ સૂત્રો છપાય છે. નવ સૂત્રો લખાઇ ગયા છે અને જંબુદ્વીપ પ્રજ્ઞપ્તિ તથા નંદીસૂત્ર તૈયાર થઇ રહ્યાં છે.

હાલમાં મંત્રી શ્રી સાકરચંદ ભાઇચંદ સમિતિના કામમાં જ તેમનો આખો વખત ગાળે છે અને સમિતિના કામકાજને ઘણો વેગ આપી રહ્યા છે. તેમની ખંત માટે ધન્યવાદ.

અને આ મહાભારત કામના મુખ્ય કાર્યકર્તા તો છે વયોવૃદ્ધ પંડિત મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ. મૂળ પાઠનું સંશોધન તથા સંસ્કૃત ટીકા તેઓશ્રી જ તૈયાર કરે છે મુનિશ્રીનો આ ઉપકાર આખાય સ્થા જૈન સમાજ ઉપર ઘણો મહાન છે. એ ઉપકારનો બદલો તો વાળી શકાય તેમજ નથી

પરંતુ આ સમિતિના મેમ્બર બની, તેના બહાર પડેલા સૂત્રો ઘરમાં વસાવી તેનું અધ્યયન કરવામાં આવે તો જ મહારાજશ્રીનું થોડું ઋણ અદા કર્યું ગણાય.

ભગવાને કહ્યું છે કે **पढमं णाणं तओ दया** પહેલું જ્ઞાન પછી દયા, દયા ધર્મને યથાર્થ સમજવો હોય તો ભગવાનની વાણીરૂપ આપણા સૂત્રો વાંચવાંજ જોઇએ તેનું અધ્યયન કરવું જોઇએ અને તેનો ભાવાર્થ યથાર્થ સમજવો જોઇએ.

એટલા માટે આ શાસ્રોદ્ધારસમિતિના સર્વ સૂત્રો દરેક સ્થા જૈને પોતાના ઘરમાં વસાવવાંજ જોઇએ સર્વ ધર્મજ્ઞાન આપણા સૂત્રોમાંજ સમાયલું છે અને સૂત્રો સહેલાઇથી વાંચીને સમજી શકાય છે, માટે દરેક સ્થા જૈન આ સૂત્રો વાંચે એ ખાસ જરૂરનું છે.

"જૈન સિદ્ધાંત" ડીસેમ્બર– ૫૬



શ્રી ઉપાશક દશાંગ સૂત્રને માટે અભિપ્રાય.

મૂળ સૂત્ર તથા પૂ. મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીએ બનાવેલ સંસ્કૃત છાયા તથા ટીકા અને હિંદી તથા ગુજરાતી–અનુવાદ સહિત.

પ્રકાશક– અ. ભા. શ્વે. સ્થાનકવાસી જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ, ગરેડીઆ કુવા રોડ, ગ્રીન લોજ પાસે, રાજકોટ. (સૌરાષ્ટ્ર) પૃષ્ઠ ૬૧૬ બીજી આવૃત્તિ બેવડું (મોટુ) કદ પાકું પુઠું. જેકેટ સાથે સને ૧૯૫૬ કિંમત રૂા ૮–૮–૦

આપણા મૂળ બાર અંગ સૂત્રોમાંનું ઉપાશકદશાંગ એ સાતમું અંગ સૂત્ર છે, એમાં ભગવાન મહાવીરના દશ ઉપાસકો શ્રાવકોનાં જીવનચરિત્રો આપેલાં છે તેમાં પહેલું ચરિત્ર આનંદ શ્રાવકનું આવે છે.

આનંદ શ્રાવકે જૈન ધર્મ અંગીકાર કર્યો અને બારવ્રત ભગવાન મહાવીર પાસે અંગીકાર કરી પ્રતિજ્ઞા (પ્રત્યાખ્યાન) લીધાં તેનુ સવિસ્તર વર્ણન આવે છે. તેની અંતર્ગત અનેક વિષયો જેવા કે, અભિગમ, લોકાલોકસ્વરૂપ, નવતત્ત્વ, નરક દેવલોક વગેરેનું વર્ણન પણ આવે છે

આનંદ શ્રાવકે બાર વ્રત લીધાં તે બારે વ્રતની વિગત અતિચારની વિગત વગેરે બધુ આપેલું છે તે જ પ્રમાણે બીજા નવ શ્રાવકોની પણ વિગત આપેલ છે.

આનંદ શ્રાવકની પ્રતિજ્ઞામાં **अरिहंत चेइयाई** શબ્દ આવે છે. મૂર્તિપૂજકો મૂર્તિપૂજા સિદ્ધ કરવા માટે તેનો અર્થ અરિહંતનું ચૈત્ય (પ્રતિમા) એવો કરે છે. પણ તે અર્થ તદ્દન ખોટો છે. અને તે જગ્યાએ આગળ પાછળના સંબંધ પ્રમાણે તેનો એ ખોટો અર્થ બંધ બેસતો જ નથી તે મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીએ તેમની ટીકામાં અનેક રીતે પ્રમાણો આપી સાબિત કરેલ છે અને **अरिहंत चेइयाई** નો અર્થ સાધુ થાય છે તે બતાવી આપેલ છે.

આ પ્રમાણે આ સૂત્રમાથી શ્રાવકના શુદ્ધ ધર્મની માહિતી મળે છે તે ઉપરાંત તે શ્રાવકોની ઋદ્ધિ, રહેઠાણ, નગરી વગેરેના વર્ણનો ઉપરથી તે વખતની સામાજિક સ્થિતિ, રીતરિવાજ રાજવ્યવસ્થા વગેરે બાબતોની માહિતી મળે છે
એટલે આ સૂત્ર દરેક શ્રાવકે અવશ્ય વાંચવું જોઇએ એટલું જ નહિ પણ વારંવાર અધ્યયન કરવા માટે ઘરમાં વસાવવુ જોઇએ

પુસ્તકની શરૂઆતમાં વર્દ્ધમાન શ્રમણ સંઘના આચાર્યશ્રી આત્મારામજી મહારાજનુ સંમતિ પત્ર તથા બીજા સાધુઓ તેમજ શ્રાવકોના સંમતિ પત્રો આપેલા છે, તે સૂત્રની પ્રમાણભૂતતાની ખાત્રી આપે છે.

"જૈન સિદ્ધાંત" જાન્યુઆરી, ૫૭

*

સમિતિના પ્રમુખ અને આદ્ય મુરબ્બીશ્રી, શેઠ શાન્તિલાલ મંગળદાસનો ટુંક પરિચય

*

શ્રી શાન્તિલાલ મંગળદાસનો જન્મ ઈ. સ. ૧૯૦૧ નાં ઓગષ્ટની ત્રીજી તારીખે તેમનાં મોસાળ ચોરવડોદરામાં થયો હતો.

વિદ્યાર્થી અવસ્થામાંજ એમનામાં રહેલી તિવ્ર બુધ્ધિ જુદી તરી આવતી હતી ઈ. સ. ૧૯૧૯મા અમદાવાદ કેન્દ્રમાંથી મેટ્રીકમા પાસ થનાર પ્રથમ દસ વિદ્યાર્થીઓમાંના તેઓ એક હતાં. ત્યારબાદ ઈ. સ. ૧૯૨૩માં અર્થશાસ્ત્રનો વિષય લઈ તેઓ B. A. થયા. એ જમાનામાં બહુ થોડાં ધનિક કુટુંબો ઊચ્ચ અભ્યાસમાં રસ લેતા હતા.

ગ્રેજ્યુએટ થયા બાદ તુરતજ એમના ઉપર ધંધાની જવાબદારી આવી પડી. યુવાન વય, તિવ્ર બુધ્ધિ, વિશાળ વાંચન અને મનને તેમને નવીજ દૃષ્ટિ આપી હતી અને તેમની સમક્ષ આવતા ઉદ્યોગના અનેક વિકટ સવાલોને તેમણે બહુ કુશળતાથી ઉકેલવા માંડયા. ૧૯૪૫માં એ અમદાવાદ મિલ માલિક મંડળના પ્રમુખ બન્યા. હિંદના તેમજ ખાસ કરીને ગુજરાત-સૌરાષ્ટ્રનાં વેપારનાં પ્રાણ પ્રશ્નોના તળપદા અભ્યાસે મિલમાલિક મંડળના પ્રમુખ તરીકેની કામગરીને વધુ દીપાવી.

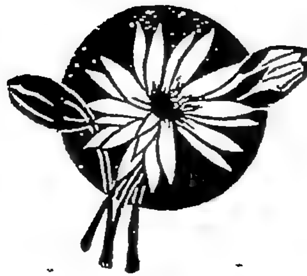
૧૯૪૮થી હિંદી વેપારી મહામંડળના તેઓ સભ્ય છે અને ૧૯૫૪-૫૫ અને ૧૯૫૫-૫૬નાં વર્ષ માટેના દેશના આ સૌથી મોટા વેપારી મહામંડળના તેઓ અનુક્રમે ઉપપ્રમુખ અને પ્રમુખ હતા આજે તો ગુજરાત-સૌરાષ્ટ્રને ખૂબજ ઉપયોગી નિવડેલી તેમની અસાધારણ શકિતઓને દેશવ્યાપી ક્ષેત્ર મળ્યું છે.

૧૯૩૮-૩૯માં તેઓ ઇન્ટરનેશનલ લેબર ઓર્ગેનીઝેશન (I. L. O) માં ભાગ લેવા ગયેલ ભારતીય પ્રતિનિધિ મંડળના તેઓ સરકાર તરફથી નિયુકત થયેલ સલાહકાર હતા. ૧૯૪૬મા અને ૧૯૪૮માં બ્રુસેલ્સ અને જીનીવા મુકામે ભરાયેલ I. L. O. માં તેઓએ માલિકોના પ્રતિનિધિ તરીકે અગત્યનો ભાગ લીધો હતો.

સામાન્ય નિયમ છે કે શ્રી અને સરસ્વતીને બહુ સંબધ હોતો નથી. શ્રી શાન્તિલાલ અને તેમનું કુટુંબ આમાં અપવાદરૂપ છે. ધનપતિ હોવા છતાં એ સાહિત્ય અને સસ્કારીતાના પૂજક છે. એમની વિનમ્રતા અને સાદાઇ હજુએ એ જાળવી રહ્યા છે. અનેક શિક્ષણ સંસ્થાઓ માટે આજે પણ એ પોતાની અનેકવિધ પ્રવૃત્તિ-ઓમાંથી સમય બચાવી લે છે, એજ તેમનાં વિદ્યાપ્રેમનો સચોટ પુરાવો છે ઉદ્યોગ તો તેમને વારસામાંજ મળ્યો છે અને એ વારસાને તેમણે શોભાવ્યો છે.

એમની દૃષ્ટિ આજનાં પ્રશ્નોને વૈજ્ઞાનીક રીતે છણવાની તો છે જ પણ આવતી કાલને પણ તેઓ એજ વૈજ્ઞાનીક અને વ્યવહારીક દૃષ્ટિથી નિહાળતાં હોય છે અને એટલે જ તો એમના સંચાલન તળે ચાલતી ચાર મિલો કાપડ ઉદ્યોગમાં સુંદર પ્રતિષ્ઠા જમાવી શકેલ છે. આ ઉપરાંત જુદી જુદી વ્યાપારી પ્રવૃત્તિઓ કરતી ઘણી કંપનીઓમાં તેઓ ડીરેકટર તરીકે રહી યોગ્ય માર્ગદર્શન અને દોરવણી આપી રહ્યા છે સૌરાષ્ટ્ર ફાઇનેન્સીયલ કોરપરેશનનાં તેઓ ડીરેકટર છે સૌરાષ્ટ્ર મિલ માલિક મંડળમાં તો તેઓ તેની સ્થાપના થઇ ત્યારથી ઊંડો રસ દાખવે છે. હજુ હમણાં સુધી સતત પાચ પાચ વર્ષ સુધી તેના પ્રમુખપદે રહી તેમણે સૌરાષ્ટ્રનાં આ ઉદ્યોગની કરેલી સેવાઓ ખરેખર અભિનંદનને યોગ્ય છે. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના તેઓ પ્રમુખ છે અને તેની પ્રવૃત્તિમાં ઘણા ઉત્સાહથી હંમેશાં મદદ કરી રહ્યા છે આ ઉપરાત અનેક જૈન ને જૈનેતર સામાજીક સંસ્થાઓને તેઓ સેવાઓ આપી રહ્યા છે

*



આદ્ય સુરબ્બીશ્રી,

ભાણુવડ નિવાસી શેઠ હરખચંદ કાલીદાસ વારીઆનું જીવન ચરિત્ર.

આ સંસ્થાને રૂા. ૬૦૦૦) છ હજાર જેવી રકમનું વાતવાતમા દાન અર્પનાર સ્વ શ્રીમાન્ હરખચંદ કાલીદાસ વારીયા ભાણુવડ નિવાસીનું ટુંક જીવનચરિત્ર અત્રે આપવા પ્રયાસ કરીએ છીએ. સૂત્રમાં તેઓશ્રીનો ફોટો આપવા માટે તેઓશ્રીની હયાતીમાં વાત થયેલ, પરંતુ તેઓ આ જાતની જાહેરાતથી વિરૂદ્ધ હતા. તેમના અવસાન બાદ તેમના સુપુત્રો આગળ પણ ફોટાની માગણી કરી પરંતુ તેઓએ પણ તેમના પૂ. પિતાજીના પગલે ચાલી ફોટો આપવામાં નારાજી બતાવી. એટલે તેઓશ્રીનું ટુંક જીવન આપીએ છીએ. આશા છે કે આવા ઉદાર અને વિચારશીલ મહાનુભાવના જીવનમાંથી વાચકોને ઘણું મળી રહેશે.

જન્મ સ્થાન : ઘડેચી (ઓખા મંડળ) તા. ૨૫-૧૧-૧૮૮૫.

પિતાનું નામ : વારીયા કાલીદાસ મેઘજીભાઈ

માતાનું નામ : કેશરબાઈ

અભ્યાસ :

ભાણુવડમા અને પોરબંદરમાં રહી ફક્ત જરૂર પુરતું ભણ્યા.

પરદેશગમનઃ

માત્ર બારવર્ષની વયે તેમના કાકા નથુભાઈ મેઘજીને ત્યાં જેલા ખાતે અનુભવ મેળવવા રહ્યા દરમ્યાન **જેલા** (બ્રી. સોમાલીલેન્ડ) **જીબુટી** (ફ્રેન્ચ સોમાલી લેન્ડ) **એડન** અને **ઈથીઓપીઆ** તરફ પણ અનુભવ મેળવ્યો

પ્રથમ ભાગીદારી :

બુલહારમાં શ્રી કાલીદાસ વેલજીના ભાગમાં ભળ્યા પરંતુ સંવત ૧૯૬૭માં તે દુકાન વીટી લીધી અને લગ્ન માટે સ્વદેશ આવ્યા.

લગ્ન :

સંવત ૧૯૬૭મા તેમના લગ્ન બાજુના ગામ ગુંદા મુકામે ખૂબ જ પ્રતિષ્ઠિત કુટુંબ મહેતા સુંદરજી પ્રેમજીના જ્યેષ્ટ પુત્ર ભોવાન સુદરજીનાં સુપુત્રી મણીબેન સાથે થયા

પરિવાર :

અત્યારે તેમના પાંચે પુત્રો શ્રી લાલચંદભાઈ, જયચંદ્રભાઇ, નગિનદાસભાઇ, વૃજલાલભાઇ અને વલ્લભદાસભાઇ એ પાંચે ભાઇઓ તેઓશ્રીનો બહોળો વ્યવહાર અને વ્યાપાર બરાબર સુયોગ્ય રીતે સંભાળી રહ્યા છે.

ભાગીદારી :

લગ્ન પછી સાં ૧૯૬૮માં પાછા પરદેશ ગમન થયું. શરૂમાં વસનજી નથુભાઈ કુાંના નામથી પેઢી ચાલતી હતી તેમાં તેઓ ભાગમાં ભળ્યા તેમાંશ્રી વારીયા નથુભાઇ મેઘજી, શ્રી વારીયા નથુભાઈ મુળજી, શ્રી વારીયા હરખચંદ કાલીદાસ, ફોફરીયા દેવજી જીવાભાઈ તથા શા વસનજી હીરજીભાઇ એમ પાંચ ભાગીદાર હતા. તે પેઢી સંવત ૧૯૭૨માં જુદી થઇ અને શ્રી વસનજી હીરજી કે જે સ્વબળે આગળ વધ્યા હતા તેમણે પોતાની પેઢી શા. વસનજી હીરજીના નામથી જુદી કરી અને શા નથુભાઇ મુળજીના નામથી પેઢી ખોલવામાં વારીયા નથુભાઈ મુળજી જેટલો જ હીસ્સો હરખચદભાઇનો હતો

ઉપરની પેઢી :

ઉપરોકત નામથી એટલે કે શા નથુભાઈ મુળજીના નામથી જે પેઢી શરૂ થઈ તેના પ્રાણસમા શ્રીયુત હરખચંદભાઇ તેમના જીવનના અત સુધી રહ્યા હતા. અત્યારે પણ તે નામને શ્રી નથુભાઇ મુળજી તેમજ શ્રી હરખચંદ કાલીદાસના વારસો ઝળહળાવી રહ્યા છે દૂર દૂરના દેશાવરોમાં એકધારૂં લગભગ ૪૫ વર્ષ થયાં કામકાજ ચાલે છે. તેના સચાલનની દોર શ્રી હરખચદભાઇના હાથમા અંત સુધી રહી હતી અને તેઓશ્રીના અવસાન પછી પણ તેમના દોરેલા ચીલા ઉપર પેઢીનો વ્યવહાર સરળ રીતે અત્યારે પણ ચાલે છે અત્યારના સુકાનીઓએ પોતાના પૂર્વજ શ્રી નથુભાઇ તથા શ્રી હરખચદભાઈના અકિત કરેલ માર્ગે પોતાની સફર ચાલુ રાખી છે અને તે સદાયે અવિચળ રહે તેવું આશિર્વચન કોઇપણ હિન્દી ઉચાર્યા વિના રહી શકે નહીં તેવી તેની ઉત્તમ છાપ ત્યા પડી છે અને તે નર્યું સત્ય જ છે.

હિન્દની શાન :

વર્ષો થયા એકધારૂ 'બીઝનેસ' ચાલતું હોવા છતાં એક શાહ સોદાગરની જેમ નથુભાઇ મુળજીની પેઢી ઉત્તરોત્તર ફુલતી ફાલતી રહી છે વ્યાપારી આંટ અને ઈજ્જતનો એ નાદર નમુનો આજે પણ એ જ ધીર ગંભીરપણે પોતાનું કાર્ય ધપાવ્યે જાય છે. એકધારી લગભગ અડધી સદી થયાં ચાલતી આ પેઢીને રજ માત્ર ડાઘ લાગ્યો નથી તે તો સૌકોઇ જાણે છે અને શાહ નથુભાઈ મુળજીની પુરાણી પેઢી

માટે આજે પ્રત્યેક હિન્દી અભિમાન લઇ શકે છે તેમાં શ્રી નથુભાઇ વારીયાનું ધર્મપ્રધાનપણું અને શ્રી હરખચંદભાઇનું દુરંદેશીપણું, કાર્યપ્રણાલીની ઉત્તમતા અને એકનિષ્ઠા મુખ્ય ગણાય

વાંચન અને મનન:

ઉપરની વાતો તો તેમના વ્યાપારી જીવનની સફળતા અને એક નાનામાં નાની વ્યક્તિ આગળ કઇ રીતે વધી શકે છે તેનો આછો ખ્યાલ આપવા પૂરતી થઇ, ત્યારે તેની બીજી એક ખાસ બાજુ છે. અતિ સામાન્ય અભ્યાસ પરંતુ સ્વાનુભવે મેળવેલ જ્ઞાનસિદ્ધિ. જે કાળમાં અણુખેડાયેલા દેશોમા આવવા જવાનાં સાધનો પણ ન હતાં. એડન સુધીની મુસાફરી પછી જેલા બરબરા જવામાં નાના વહાણોથી સફર થતી. જીબુટીથી ઈથોપિયા જવામાં દીરદવા પછી (બગલ) ખચ્ચરો ઉપર અને પગપાળા મુસાફરી થતી. દેશો બધા ખુબજ જંગલી અવસ્થામાં હતા તેવા યુગમાં હિમ્મત હાર્યા વિના આંગળીને વેઢે ગણાય તેટલા હિન્દીઓ વ્યાપારમાં આગળ વધ્યા હતા તે યુગમા શ્રી હરખચદભાઇ હતા. ખુબ જ અંધકારમાંથી પ્રકાશ મેળવવાનો હતો. અત્યારે ઈથોપિયાના પાટનગર આડીસઅબાબા જવા માટે Air રસ્તે ૧૦ થી ૧૨ કલાકમા પહોંચાય છે ત્યારે તે જમાનામા આગબોટ વહાણ ખડખડ પાચમ જેવી રેલ્વે અને તે પછી ખચ્ચરો ઉપર અને થોડુંક પગપાળા અગર તો ગધેડા ઉપર પણ સફર કરવી પડતી. જુનો જમાનો હતો એટલે હિન્દુ તરીકેનો ધર્મ જાળવવામાં પણ લોકો ચુસ્ત હતા, કોઇનું અડેલું ખવાય નહીં રસોઇ તૈયાર હોય પણ એક **સોમાલી** કે **આરબ** અગર **ઇથોપિયનનો** હાથ અડકી જાય એટલે ખાવાનું તેને આપી દઇ કડાકા કરવા પડે અગર તો પલાળેલા ચણા કે મકાઈ ખાઇને ગુજારો કરવો પડે તેવા જમાનામા શ્રી હરખચંદજીભાઇએ ખુબ જ ધંધાકિય સફળતા મેળવી હતી તે સામાન્ય વાત તો નથીજ, અને પોતે ખુબજ ઓછું ભણ્યા હોવા છતાં ભણતર કરતાં ગણતર તેઓમાં ઘણું હતું સાહિત્ય અને તે પણ ધાર્મિક અને ગુજરાતી શિષ્ટ સાહિત્યનૃં વાંચન મનન એટલું બધું તેઓએ કરેલું કે પોતાનો અભ્યાસ ઓછો છે એમ તેઓ ખુલાસો કરે ત્યારેજ ખબર પડે, અજાણ્યા માણસને તો તેમનુ અંગ્રેજી જ્ઞાન પણ સારૂ હશે તેમ લાગતું વ્યાપારી તાર લખવા ઓછા શબ્દોમાં ઘણું સમજાવી દેવું ઉપરાત અગ્રેજી પત્ર વ્યવહારના બહારથી આવતા પત્રો આંટીઘુંટી સહિત હોય તો પણ યથેચ્છ રીતે સમજી લેવામાં તેઓ એટલા બધા પારંગત થઇ ગયેલા કે જોનારને તેમની શકિત ઉપર માન થઇ જતું. અને તેઓ નિખાલસ ભાવથી જ્યારે કહેતા કે હુ માત્ર ગુજરાતી ચાર પાંચ ચોપડી ભણ્યો છું એમ વાત થતી ત્યારે તે માન અનેકગણુ વધી જતું.

અભ્યાસી :

ધાર્મિક ઉંડામાં ઉંડુ જ્ઞાન તેમણે વાંચનથી મેળવેલું. દેશ પરદેશની વાતો થતી હોય ત્યારે તેમના આગળ પ્રખર અભ્યાસીઓ પણ ઝાંખા પડતાં, વર્તમાન પત્રોનો શોખ તેમનો અજોડ હતો. દેશ પરદેશના નાણાકિય વહેવારો અને હુંડિયામણની વાતો સાંભળીએ ત્યારે તેમના જ્ઞાનના અગાધપણાની સાંભળનારને અતિ ઉત્તમ છાપ પડતી.

ધાર્મિક :

ધાર્મિક અભ્યાસ તેમનો એટલો બધો બહોળો હતો કે તેમના આગળથી રોજ અવનવું જાણવા મળતું દરેક ધર્મનો અભ્યાસ તેમણે જીજ્ઞાસાવૃત્તિથી કર્યો હતો ધર્મે તેઓ ચુસ્ત સ્થાનકવાસી શ્વેતાંબરી જૈન હતા છતાં ધર્માંધતાનો તેમનામાં અંશ પણ ન હતો મારૂં એટલું સારૂં એમ નહીં પણ સારૂં એટલુ મારૂં એમ માનતા તેથી કદાગ્રહીપણું તેમનામાં જન્મ્યું જ ન હતું. જૈનધર્મના દરેક ફીરકા ઉપર તેમને માન હતુ. શ્વેતાંબર મંદિરમાર્ગિ ભાઇઓના વરઘોડાઓમાં તેઓ આનંદ અને ઉત્સાહથી જતા, પ્રસંગ આવે ભાઇચારો નભાવવા વ્યવહારૂપણાનો ઉપયોગ કરી દેરાસરમાં ઘી બોલવાનો પ્રસંગ આવે ત્યારે પણ તેઓ ઉત્સાહથી બોલતા. વરઘોડામાં પોતાના ઘરની પુત્રવધુઓને કળશ લેવડાવતાં તેમને અનેરો આનંદ મળતો, જૈનધર્મના દરેક ફીરકાઓની એકતાના તેઓ પ્રખર ચાહક હતા છેલ્લે છેલ્લે સૌરાષ્ટ્રમા જૈન શ્વેતામ્બર તેરાપંથી સાધુઓ આવતા અને એમને સૌરાષ્ટ્રના જૈનો અને જૈન સાધુઓ તેરાપથી સાધુને સ્થાન અને આહારપાણી ન આપવાં તેવો પ્રયાસ જોર શોરથી કરતા તે બાબતને પોતે ગાંડપણ માનતા અને પોતાના ઘેર તેરાપંથી સાધુઓને માનથી ગોચરી આપતા સમાજથી જરાપણ ડરતા નહીં 'વિચારભેદ તો દરેક જગ્યાએ બુદ્ધિવાદી લોકોમાં હોય મુર્ખાને વિચારભેદ શાનો ?' આમ તેઓ કહેતા પરંતુ એવા વિચાર ભેદોને લઇને સાધુનું અને તે પણ પરદેશી સાધુઓનું અપમાન કરવું તેમા માનવતા ક્યાં રહી ? જૈનત્વ ક્યાં રહ્યું ? તેમ તેઓએ જામનગરમા એક વખત કહેલું તે મને બરાબર યાદ છે

પ્રેમાળ :

અસત્ય અગરતો જુઠ દગો આચરનાર તરફ તેમને ઘણોજ રોષ હતો એટલે ઉગ્રતાથી આવા લોકોની ખબર લઈ નાખતા છતાં તેનું દિલ દુભાવ્યુ તે ઠીક ન કર્યું તેમ માની તે જ વ્યકિત સાથે પ્રેમ અને મમત્વથી વાતો કરતા. બીજાનુ સારૂં જોઇ તેઓ ખરેખર રાચતા, તેમની આખમાં પ્રેમનું અમૃત ભારોભાર ભર્યું હતું

પોતાને ત્યાં નોકરી કરી ગએલ મુનિમ કે કોઇપણ વ્યકિત કમાણી કરીને ખુબજ આગળ આવે, સારા અને સંસ્કારી થાય વ્યવહારમાં સવાયા થાય તેને ત્યાં લગ્ન પ્રસંગ હોય અગર તો સારામાં સારા મકાનો તેણે કર્યાં હોય તેવા પ્રસંગે જવાનું થાય ત્યારે તેમના આનંદનો અવધી થઇ જતો તે વખતે તેઓની આંખોનું અમૃત જેમણે નજરોનજર જોયું હશે તે તેમને જીવન ભર નહીં ભૂલે આવી એક મહાન વિભૂતિના જીવનનો ટુંક સાર જ આપી શકાય સાંગોપાંગ જીવન તો કયાંથી લખાય?

કાળ :

જનમ્યું તે જવાનું જ તે કુદરતનો ક્રમ છે તેને આધીન તો સારા નરસા દરેકને થવું જ પડે. સંવત ૨૦૦૭ માં તેઓશ્રી ૬૮ વર્ષનું આયુષ્ય ભોગવી ક્ષણુ-ભંગુર દેહને છોડી ગયેલા. પરતુ તેમની સુવાસ સદાય પ્રસરતી જ રહેવાની. ભાણુવડ જેવડા નાનકડા ગામમાં અને આસપાસના ગામોમા જ્યાં જ્યાં તેઓ ગએલા અગર તો તેમનું કાર્યક્ષેત્ર હતું ત્યાં ત્યાં તેમના અવસાનથી સન્નાટો છાઈ ગયેલો. એમનું મૃત્યુ વીશવર્ષના કંધોતરનો શોક હોય તેવો શોક સર્વત્ર આપતું ગયેલું. નામ ઠામના લોભ વિના કરેલાં તેમનાં ગુપ્તદાનો એટલાં બધાં હતાં કે તેમના જવાથી નાના મોટા દરેકને એક સરખી ખોટ લાગતી હતી. છતાં તેઓ જીવતર જીવી ગયાં. આવું ધન્ય જીવન અને ધન્ય મૃત્યુ જોઇને આર્તધ્યાન રૌદ્રધ્યાન ધરવું તે કરતા તેમના જેવા થવાના પ્રયત્નો કરવા. અને તેમના અમર આત્માની શાન્તિ માટે પ્રાર્થના કર્યા સિવાય બીજો માર્ગ જ કયાં છે?

ॐ શાન્તિ ! શાન્તિ !! શાન્તિ !!!



આદ્ય મુરબ્બીશ્રી કોઠારી હરગોવીંદભાઈ જેચંદનો
ટુંક પરિચય

*

પુ. શ્રી ૧૦૦૮ ઘાસીલાલજી મહારાજ રાજકોટ પધારતાં **પ્રાતઃ સ્મરણીય સ્તવનાવલી** રાજકોટના રહીશ શુદ્ધ શ્રાવક વૃતધારી જેચંદ અજરામર કોઠારીના સુપુત્ર હરગોવિંદકાકા તરફથી ૨૦૦૩માં છપાવવામાં આવી અને તે હિંદભરમાં જાહેરમાં મૂકી તેનો ઉપયોગ હાલ સર્વ જૈન જૈનેતર કરી રહેલ છે. કાકા રાજકોટમાંજ નહિ પણ સૌરાષ્ટ્ર, કચ્છ, ગુજરાત, મુંબઇ, દીલ્હી સુધી એક અજોડ ઉત્સાહી પુરૂષ છે એમનો પ્રજા અને રાજા ઉપર ઘણોજ સારો પ્રભાવ છે વેસ્ટર્ન ઇન્ડીયા સ્ટેટ એજન્સી અને ગુજરાત સ્ટેટસ મહીકાંઠા સાબરકાંઠા બનાસકાંઠામાં રેસીડેન્સીમાં પણ કાકા પ્રત્યે ઘણોજ સારો ભાવ છે. તેઓને ધર્મ પ્રત્યે ઘણીજ સારી ધગશ હોઇ અંગત ખર્ચે પોતાના ઘર આંગણે ધર્મ ધ્યાન માટે પોષધશાળા બંધાવી છે તેમજ આજી નદીને કિનારે વિશાળ વ્યાખ્યાન ભુવન હોલ બે માળનો પાંચ હજાર માણસો વ્યાખ્યાન સાભળી શકે તેવો બંધાવેલ છે. ઉદાર દીલના સખી માણસ છે. કોઇ પણ ગરીબ ગુન્હાહિત માણસ દાદ માગવા આવે તો તરતજ બનતા ઉપાયે તેમને મદદ આપવા ચોવીસ કલાક 'તૈયાર રહે છે કાકાનું કુટુંબ પણ ઘણુંજ ધર્મીષ્ઠ છે. તેમનાં ધર્મપત્નિ શ્રીમતી અખંડ સૌભાગ્યવતી રૂક્ષ્મણીબેન વહેવારદક્ષ પ્રેમાળુ અને પૂર્ણ ધર્માત્મા છે સાધુ સાધ્વી પ્રત્યે તથા દરેક કુટુંબ સજ્જન સ્નેહી અને સ્વધર્મીઓ મહેમાનો સાથે ઘણોજ સારો ઉચીત વહેવાર રાખવામા પુર્ણ નિષ્પન છે. નિત્ય પોતાની ધર્મ પરાયણતા પ્રત્યેજ વફાદાર રહે છે.

પુ ઘાસીલાલજી મહારાજ આદી થાણા છ (સમીરમુની, કનૈયાલાલ મુની, દેવમુની, તપસ્વી માંગીલાલ, મદનલાલજી) મેવાડથી દામનગરના રહીસ દામોદરભાઇના આગ્રહથી પાલનપુર નહિ રોકાતાં તેમણે વિહાર શરૂ કર્યો, અને મોરબી મુકામે તપસ્વી મદનલાલજી અને માંગીલાલજીની ૭૧ ઉપવાસની તપશ્ચર્યા ચાતુર્માસમાં થયેલી જે પ્રસંગે રાજકોટથી હરગોવિંદકાકા કુટુંબ સહિત ગોકળ અષ્ટમીને દીવસે દર્શનાર્થે આવ્યા અને રાજકોટ પધારવાની વિનંતી કરી અને નવેમ્બર ૧૯૪૬માં ઘાસીલાલજી મહારાજ રાજકોટ પધાર્યા કાકાના વ્યાખ્યાન ભુવનમાં બીરાજ્યા બને તપસીજી માસખમણાની તપશ્ચર્યા કરી સ્થાનિક રાજકોટ સકલ સંઘે ઘણોજ ભક્તિભાવ બતાવ્યો અને રતાગઢ ખેડાના રહીશ જવાહીરલાલજી ઉર્ફે ચાંદમલજી ભંડારીની ૨૦૦૨ તા. ૨૭-૧-૪૭ના રોજ દીક્ષા વસતપંચમીને દીવસે હોવાથી સંઘમાં વધારે ઉત્સાહ આનદ આવ્યો મહાસુદી એકમથી પાચમ સુધી ૬ વરઘોડાઓ જુદે

જુદે ઠેકાણેથી ચડયા મહા સુદી ૪ના દીવસે કાકાને ઘેરથી દીક્ષા ઓત્સવનો વરઘોડો રાજકોટ ઠાકોર સાહેબ પ્રદ્યુમ્નસિંહજી અને કુ શ્રી બનેસીહજીની સંપૂર્ણ મદદથી રાજેશ્રીના ઠાઠને પણ વટાવી જાય તે રીતે સરકારી અને સ્ટેટ બેન્ડ પોલીસ ઘોડેસ્વાર ગાડીઘોડા મોટરો તથા હજારો જૈન જૈનેતર માનવમેદની સાથે આખા શહેર સદરના રસ્તા પર ફર્યો હતો. પાંચમના દીવસે તપગચ્છના ચાંદીના રથમા દીક્ષાર્થીને બેસાડી ૪ ચાર બેલ જોડેલ રથને કાકા પોતે સારથી બની હાકતા હતા. બંને દીવસે સોના રૂપાનાં ફુલ તથા પૈસા દિક્ષીત ઉડાવી રહેલ હતા. ઠેકાણે ઠેકાણે પોલીસો ગોઠવવામાં આવેલ હતી આ સરઘસ શહેર સદરમાં ફરી જુંબીલી બાગમા આવ્યુ અને દસ હજાર માણસોની હાજરીમાં પૂ શ્રી ઘાસીલાલજીની જે નેશ્રાય નીચે દીક્ષા આપવામાં આવી તે પ્રસંગે શાંતિ જળવાયેલી. આ પ્રસગે બને દીવસોએ ફોટાઓ તથા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિની કમીટીના ફોટાઓ લેવામાં આવ્યા. અને ૩૦-૧-૪૭ના દીવસે શાસ્ત્રોદ્ધારની મીટીગ મળી જેમા કાકા તરફથી સુત્રને માટે રૂપીઆ પાચ હજારની ભેટ મળી તે ઉપરાત પ્રસગોપાત સુત્ર માટે જુદી ભેટ રોકડી રકમની આપવામાં આવી છે તેમજ જીવદયાના પ્રખર હિમાયતી પૂ શ્રી ૧૦૦૮ જેઠમલજી મ. ની નેશ્રાય નીચે તન મન ધનથી જીવદયાનું કાર્ય કરે છે અને જીવદયાનું પત્ર પોતાને ખર્ચે છપાવી પ્રસિદ્ધ કરી હિંદભરમા તેમજ યુરોપ અમેરીકા આફ્રીકામા મોકલે છે હાલ પોતે સેવાભાવી કાર્યની પ્રવૃત્તિ કાયમ કર્યા કરે છે

રાજકોટની ફ્લોર મીલોના ઓનરરી પ્રમુખ : જૈન બોર્ડીંગના ઓનરરી કાર્યકર્તા તથા જીવદયા મડળના મંત્રી અને S. P. C. A.ના મંત્રી, રાજકોટ શહેરી મંડળના સેક્રેટરી તરીકે ઓનરરી સેવા કરી દરેકને પોતાની સેવાનો સાથ આપવામાં તન મન ધનથી કોઇની પણ સેવા કરવામા કાયમ તત્પર રહે છે.

*

આદ્ય મુરબ્બીશ્રી મહુર્મ ધારશીભાઈ જીવનભાઇ શાહનો ટુંક પરિચય

મહુર્મ ધારશીભાઇ જીવનભાઈ શાહ, જેનો ઓઇલ જીનપ્રેસ સાથે આ સૈકાની શરૂઆતથી સંબંધ, પુના સાતે ડીવીઝનના જુદા જુદા સ્થળોના જુનામાં જુના અને અગ્રગણ્ય એજન્ટ તરીકે, જાણીતા છે. તેનો જન્મ કાઠિયાવાડમાં પીપળીયા ગામમાં થયેલ માત્ર પ્રાથમીક કેળવણી લઇ, ૧૧ વર્ષની નાની ઉંમરે આગળ વધવાની ધગશ સાથે, માત્ર ખીસ્સામાં ૨ રૂ. જેટલી નજીવી રકમ સાથે વતન છોડયું મુંબઈ આવી મનજી નથુભાઇની પેઢીમાં ઓફીસ બોય તરીકે નોકરી લીધી, ત્યાં ઉત્તરોતર દરેક કામમાં ખંત રાખી સંતોષ આપતાં તેમને પુના મોકલવામાં આવ્યાં. પુનાથી કરમાલા આવી ખભા ઉપર તેલ ઉપાડી ફેરી પણ કરી અને ત્યાંના સબ એજન્ટોને એકદમ પ્રમાણીકપણે સખત કામ બતાવી, કરમાલા ગામમાં તેલની સબડીલરશીપ પ્રાપ્ત કરી ધીરે ધીરે તેજ પ્રમાણે મહેનત ચાલુ રાખતાં ૧૯૩૧માં જ્યારે બર્માશેલ અને એસ. વી. ઓ સી વચ્ચે ભાવની હરીફાઇ ઉપડી ત્યારે પોતાની સતત સેવા બતાવી બર્માશેલ પાસેથી ઘડીયાલ બક્ષીસ મેળવી અને તે લાઇનના તમામ કાર્યવાહીઓની ચાહના પ્રાપ્ત કરી.

ધીરે ધીરે પોતાની ખંતથી તેવીજ એજન્સીઓ લીપ્ટન કું. સીમેન્ટ કું, આઈ સી. આઇ. વિગેરેની પણ મેળવી પોતાના વ્યાપારની સારી જમાવટ કરી.

સોલાપુર ડીસ્ટ્રીકટમાં સારા આબરૂદાર શહેરી તરીકે વગ તેમજ ચાહના મેળવી અને લોકસેવા પણ સાથો સાથ ચાલુ રાખી કરમાલા મ્યુ ના પ્રેસીડન્ટ થયા. સોલાપુર ડીસ્ટ્રીકટમાં દેશ હિતના અનેક કામોમાં તન, મન, ધનથી સારી સેવા બજાવી.

તેનું ખાનગી જીવન પણ બહુ સાદું હોવાથી બધા તેને ચાહતા અને ધંધામાં પણ સારો લાભ મળ્યો અને તેજ પ્રમાણે સેવાના તથા ધર્માદાના અનેક કાર્યોમાં સારી રકમો વાપરી.

પોતાના કુટુંબના વડા તરીકે પણ કુટુંબીજનો, સગાં, સબંધીઓને દરેક રીતે માર્ગદર્શન આપી જુદા જુદા ધંધા તેમજ એજન્સીઓ વિગેરે મેળવી સ્થિરતા પ્રાપ્ત કરવામા ઘણો પરિશ્રમ લીધો.

યાત્રિક ખેતીની પ્રગતીના કાર્યસર વિલાયત જઈ આવ્યા, અમેરીકા જવા પણ ધારણા હતી ત્યાં લંડનમા ૧૪-૭-૪૯ના રોજ હૃદય બંધ પડી જતાં સ્વર્ગવાસ કર્યો. તેમની પાછળ બહોળું કુટુંબ, ઘણાં સગાં તેમજ સ્નેહીઓ મુકી ગએલ છે. જેઓ સર્વને પોતાની મીઠી યાદગીરી મુકી જીવનનું સાર્થક કરી ગએલ છે.

*

|| श्रीः ||

श्रीदशवैकालिकसूत्रस्य विषयानुक्रमः

पञ्चमाध्ययनम्

(प्रथमोद्देशः)

। इति ।

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥



जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्रीघासीलालव्रतिविरचितया

आचारमणिमञ्जूषाख्यया व्याख्यया समलङ्कृतं

श्रीदशवैकालिकसूत्रम्

卐

मङ्गलाचरणम्.

नम्रीभूतपुरन्दरादिमुकुट,-भ्राजन्मणिच्छायया,
चित्रानन्दकरी सदा भगवतो, यस्याङ्घ्रिलक्ष्मीः परा ।

यद्विज्ञाननिरन्तसिन्धुलहरी,-मग्नाः स्वकर्मक्षयं,
कृत्वाऽनन्तसुखस्य धाम भविनः, प्रापुः श्रये तं जिनम् ॥१॥

विमलः केवलाऽऽलोक,-प्रभासंभारभासुरः ।
त्रिजगन्मुकरो धीरो, वीरो विजयतेतराम् ॥ २ ॥

श्रीसुधर्मा महावीर-लब्धरत्नोज्ज्वलो गणी ।
निबबन्ध तदुक्तार्थं, नमस्तस्मै दयालवे ॥ ३ ॥

अथैतत्करुणालब्ध,-विवेकामृतबिन्दुना ।
दशवैकालिकव्याख्या, घासीलालेन तन्यते ॥ ४ ॥

अथ सूत्रमाह—

मूलम्–धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ॥१॥

छाया–धर्मो मङ्गलमुत्कृष्टम्, अहिंसा संयमस्तपः।
देवा अपि तं नमस्यन्ति, यस्य धर्मे सदा मनः ॥ १ ॥

सान्वयार्थः–अहिंसा=प्राणव्यपरोपणका त्याग करने तथा जीवोंकी रक्षा करनेरूप अहिंसा, संजमो=संयम और तवो=तप (यह) धम्मो=धर्म उक्किट्ठं=उत्कृष्ट–सबसे श्रेष्ठ मंगलं=मङ्गल है–कल्याणकारी है। जस्स=जिसका मणो=मन सया=सदा–हमेशां धम्मे=धर्ममें (लगा रहता है) तं=उसको देवावि=देवताभी नमंसंति=नमस्कार करते हैं, अर्थात् निरन्तर धर्ममें लीन प्राणी देवोंद्वारा भी पूज्य हो जाते हैं ॥ १ ॥

टीका—'धम्मो मंगल'–मित्यादि। धर्मः=धरति=प्राणिनो दुर्गतौ पतनाद् रक्षति शुभे स्थाने च स्थापयति यः स तथोक्तः। उक्तञ्च—

"दुर्गतिप्रसृतान् जन्तून, यस्माद्धारयते पुनः।
धत्ते चैतान् शुभे स्थाने, तस्माद्धर्म्म इति स्मृतः ॥ १ ॥" इति।

हिन्दी–भाषानुवाद.

'धम्मो मंगल' मित्यादि। जो नरक आदि दुर्गतिमें गिरते हुए प्राणियोंको बचावे और स्वर्ग–मोक्ष आदि शुभस्थानोंमें पहुंचावे उसे धर्म कहते हैं।

कहा भी है–"दुर्गतिमें पड़ते हुए जीवोंकी रक्षा करता है और फिर उन्हें शुभगतिमें पहुंचाता है, इसीसे वह धर्म कहलाता है" ॥ अर्थात् जो

ગુજરાતી–ભાષાનુવાદ.

'धम्मोमंगल' मित्यादि જે નરક આદિ દુર્ગતિમાં પડતા પ્રાણીઓને બચાવે અને સ્વર્ગ મોક્ષ આદિ શુભ સ્થાનોમાં પહોંચાડે તેને ધર્મ કહે છે

કહ્યું પણ છે કે–" દુર્ગતિમાં પડતા જીવોની રક્ષા કરે છે અને પછી તેમને શુભ ગતિમાં પહોંચાડે છે, તેથી તે ધર્મ કહેવાય છે." અર્થાત્ દુઃખોથી

उत्कृष्टम्=उत्तमं, मङ्गलं=मङ्गलस्वरूपम्, कस्तादृशो धर्मः ? इत्यत आह–अहिंसा संयमस्तप इति। तत्राऽहिंसा नाम हिंसावर्जनं प्राणिप्राणरक्षणं तदिच्छा चेति। न हिंसा–अहिंसेति विग्रहे अहिंसाया अभावरूपत्वेनाऽवस्तुतया किमपि कार्यं प्रति कारणत्वाऽनापत्तिरतोऽहिंसाऽपि भावरूपैव, तेन प्राणरक्षणमप्यहिंसा-शब्दार्थः सिध्यति। ये तु स्वतः परतो वा प्राणिप्राणरक्षणमहिंसेति न मन्यन्ते ते तु अहिंसाशब्दरहस्यानभिज्ञा एवेति बोध्यम्।

दुःखोंसे छुडाकर प्राणियोंको अनन्त सुखकी प्राप्ति कराता है वही धर्म है।

धर्म उत्कृष्ट मङ्गल है। अहिंसा, संयम और तप, ये तीनों उसके लक्षण हैं।

अहिंसा

हिंसाका त्याग करना अर्थात् प्राणियोंके प्राणोंकी रक्षा करना और उनके प्राणों के रक्षण की इच्छा रखना अहिंसा है।

हिंसा के अभाव को अहिंसा कहा जाय तो अहिंसा अभावरूप हो जायगी। अभाव किसी कार्य के प्रति कारण नहीं हो सकता, इस कारण अहिंसा से स्वर्ग मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी, अतएव अहिंसा को भावरूप (वस्तुरूप) मानना उचित है, और जब कि वह वस्तु-रूप है तो प्राणों की रक्षा करना अहिंसाशब्द का अर्थ सिद्ध हुआ।

जो जीवोंकी रक्षा करने कराने को अहिंसा नहीं मानते वे अहिंसा के यथार्थ तत्त्वको नहीं जानते।

છોડાવીને પ્રાણીઓને અનંત સુખની પ્રાપ્તિ જે કરાવે છે, તે ધર્મ છે.

ધર્મ ઉત્કૃષ્ટ મંગલ છે. અહિંસા, સંયમ અને તપ, એ ત્રણ તેનાં લક્ષણો છે.

અહિંસા

હિંસાનો ત્યાગ કરવો અર્થાત્ પ્રાણીઓના પ્રાણની રક્ષા કરવી અને તેમના પ્રાણોની રક્ષા કરવાની ઇચ્છા રાખવી એ અહિંસા છે.

હિંસાના અભાવને અહિંસા કહેવામાં આવે તો અહિંસા અભાવ–રૂપ થઈ જશે. અભાવ કોઈ કાર્યને પ્રતિ કારણ થઈ શકતું નથી, તેથી કરીને અહિંસાથી સ્વર્ગ મોક્ષની પ્રાપ્તિ નહિ થાય એટલે અહિંસાને ભાવરૂપ (વસ્તુરૂપ) માનવી જ ઉચિત છે. અને જો તે વસ્તુરૂપ છે, તો પ્રાણોની રક્ષા કરવી એવો અહિંસા શબ્દનો અર્થ સિદ્ધ થયો.

જેઓ જીવોની રક્ષા કરવી–કરાવવી એને અહિંસા નથી માનતા તેઓ અહિંસાના યથાર્થ તત્વને જાણતા નથી.

उक्तं हि भगवता प्रश्नव्याकरणे प्रथमसंवरद्वारे—

" इम च णं सव्वजीवरक्खणदयट्ठाए पावयणं भगवया सुकहियं " इत्यादि।

सकलजीवानां रक्षणं प्राणव्यपरोपणवारणं प्राणरक्षणोपयोगी व्यापार इति यावत् तदर्थं, दया=परदुःखप्रहाणेच्छा तदर्थं चेदं प्रवचनं भगवता सुकथितमित्यर्थः,

उक्तश्च दयाशब्दार्थो वाचस्पत्याभिधाने—

" यत्नादपि परक्लेशं, हर्तुं या हृदि जायते ।
इच्छा भूमिसुरश्रेष्ठ ! सा दया परिकीर्तिता ॥ १ ॥ " इति।

तस्मात् सर्वप्राणिनां रक्षणं रक्षणेच्छा चेति द्वयमेवाहिंसातत्त्वं सकलधर्ममूलश्चेति। उक्तश्च संस्तारकप्रकीर्णकटीकायाम्—

" न तद्दानं न तद्ध्यानं, न तज्ज्ञानं न तत्तपः ।
न सा दीक्षा न सा भिक्षा, दया यत्र न विद्यते ॥ १ ॥ इति।

भगवानने प्रश्नव्याकरणके प्रथम संवरद्वार में कहा है—" समस्त जीवों की रक्षा (मरते हुएको, अपने या दूसरोंके द्वारा बचाना) और दया (दुःखोंसे छुडानेकी इच्छा) के लिए इस प्रवचनका उपदेश दिया है " ।

वाचस्पत्य महाकोशमें कहा भी है-" हे भूमिसुरश्रेष्ठ ! प्रयत्नसे पर प्राणियोंके क्लेशको निवारण करनेके लिए हृदयमें जो इच्छा उत्पन्न होती है उसे दया कहते हैं " ॥ १ ॥

संथारगपइन्नाकी टीकामें कहा है-" वह दान दान नहीं, वह ध्यान

ભગવાને પ્રશ્નવ્યાકરણના પ્રથમ સંવરદ્વારમાં કહ્યું છે કે- " બધા જીવોની રક્ષા (મરતા જીવોને પોતે અથવા બીજાઓ દ્વારા બચાવવા) અને દયા (દુઃખથી છોડાવવાની ઇચ્છા)ને માટે આ પ્રવચનનો ઉપદેશ આપ્યો છે. "

વાચસ્પત્ય મહાકોશમાં પણ કહ્યુ છે કે- " હે ભૂમિસુરશ્રેષ્ઠ ! પ્રયત્ન વડે પર પ્રાણીઓના ક્લેશનુ નિવારણ કરવાને માટે હૃદયમા જે ઇચ્છા ઉત્પન્ન થાય છે તેને દયા કહે છે. " ॥ ૧ ॥

સંથારગપઇન્નાની ટીકામા કહ્યું છે કે- " એ દાન દાન નથી, એ ધ્યાન

तथा—“ मूलं धम्मस्स दया, तयणुगयं सव्वमेवऽणुट्ठाणं ।
सिद्धं जिणिंदसमए, मग्गिज्जइ तेणिह दयालू ॥ १ ॥ ”
इति धर्मरत्नप्रकरणे ।

भगवतीसूत्रेऽपि पञ्चदशे शतके प्रोक्तम्—
“ तए णं अहं गोयमा ? गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अणुकंपणट्ठयाए वेसियायणस्स बालतवस्सिस्स तेयपडिसाहरणट्ठयाए एत्थ णं अंतरा अहं सीयलियं तेयलेस्सं निसिरामि, जाए सा ममं सीयलियाए तेयलेस्साए वेसियायणस्स बालतवस्सिस्स सा उसिणा तेयलेस्सा पडिहया ” इति ।

ध्यान नहीं, वह ज्ञान ज्ञान नहीं, वह तप तप नहीं, वह दीक्षा दीक्षा नहीं और वह भिक्षा भिक्षा नहीं, जहाँ कि दया नहीं है। अर्थात् दया-रहित सब क्रियाएं मिथ्या यानी निष्फल हैं ” ॥ २ ॥

धर्मरत्नप्रकरणमें भी कहा है-“ धर्मका मूल दया है; दयापूर्वक की हुई समस्त क्रियाएं सफल होती हैं, इसलिए जिनेन्द्रके मार्गमें दयावान् ही धर्मका अधिकारी हो सकता है ” ॥ ३ ॥

उक्त कथनसे यह स्पष्ट हो गया कि मरते हुए प्राणीको बचाना भी अहिंसा है ।

भगवतीसूत्रके पन्द्रहवें शतकमें भगवान् श्रीगौतमसे कहते हैं-
“ हे गौतम ! मंखलिपुत्र गोशालककी अनुकम्पा करनेके लिए मैंने शीतल तेजोलेश्यासे बालतपस्वी वैश्यायनके द्वारा निकाली हुई उष्ण तेजोलेश्याका तेज शान्त करके उसे बचाया ” ।

ધ્યાન નથી, એ જ્ઞાન જ્ઞાન નથી, એ તપ તપ નથી, એ દીક્ષા દીક્ષા નથી, અને એ ભિક્ષા ભિક્ષા નથી કે જ્યાં દયા નથી, અર્થાત્ દયારહિત બધી ક્રિયાઓ મિથ્યા એટલે નિષ્ફળ છે ” ॥ ૨ ॥

ધર્મરત્નપ્રકરણમાં પણ કહ્યુ છે કે—“ ધર્મનુ મૂળ દયા છે, દયાપૂર્વક કરેલી બધી ક્રિયાઓ સફળ થાય છે, તેથી જીનેન્દ્રના માર્ગમાં દયાવાન જ ધર્મનો અધિકારી થઇ શકે છે ” ॥ ૩ ॥

ઉક્ત કથનથી એ સ્પષ્ટ થઇ ગયું કે મરતા પ્રાણીને બચાવવો એ પણ અહિંસા છે. ભગવતીસૂત્રના પંદરમા શતકમાં ભગવાન્ શ્રી ગૌતમને કહે છે કે—“ હે ગૌતમ ! બાલતપસ્વી વૈશ્યાયન દ્વારા કાઢવામાં આવેલી ઉષ્ણુ તેજોલેશ્યાના તેજને શીતલ તેજોલેશ્યાથી શાંત કરીને; મખલિપુત્ર ગોશાલકની ઉપર દયા કરવા માટે મે તેને બચાવ્યો ”

हे गौतम ! मङ्खलिपुत्रस्य गोशालकस्यानुकम्पनार्थं बालतपस्विनो वैश्यायनस्य तेजःप्रतिसंहरणार्थं च मया शीतलां तेजोलेश्यामुद्भाव्य तदीयोष्णा तेजोलेश्या प्रतिहतेत्यर्थः। तत्र 'अणुकंपणट्ठयाए' 'तेयपडिसाहरणट्ठयाए' इति पदद्वयेन गोशालकरक्षणार्थं भगवतस्तेजोलेश्यासमुद्भव इति स्पष्टीभवति।

न च रक्षणं यदि धर्मस्तर्हि स्वसमवसरणे वर्तमानौ सर्वानुभूतिसुनक्षत्रनामानौ शिष्यौ किं न भगवता रक्षितौ ? इति वाच्यम्, भगवतः सर्वज्ञतया तयोरायुःसमाप्तिसन्दर्शनात्। ननु यथा समाप्तायुषं कोऽपि नैव रक्षितुं प्रभवति तथा विद्यमानायुषं न कोऽपि हन्तुं शक्नुयात्? इति चेन्न, त्रिषष्टिशलाकापुरुषान् देवान्

यहां यह संदेह हो सकता है कि यदि बचाने में धर्म होता तो भगवान्ने अपने समवसरणमें स्थित सर्वानुभूति और सुनक्षत्र नामक शिष्यों को क्यों न बचाया ?

इसका समाधान यह है कि-भगवान् सर्वज्ञ थे, इसलिए किसका आयुष्य कितना अवशेष है या समाप्त हो चुका है इसे वे अपने निर्मल केवल ज्ञानसे जानते थे। सर्वानुभूति और सुनक्षत्र शिष्योंका वर्तमान आयुष्य समाप्त हो चुका था।

प्रश्न—जैसे वर्तमान आयुष्य समाप्त होने पर कोई किसीको बचा नहीं सकता वैसे ही आयुष्य रहते हुए कोई किसीको प्राणरहित भी नहीं कर सकता ?

અહીં એવો સંદેહ થઇ શકે છે કે—જો બચાવવામાં ધર્મ થાય છે તો ભગવાને પોતાના સમવસરણમાં રહેલા સર્વાનુભૂતિ અને સુનક્ષત્ર નામના શિષ્યોને કેમ ન બચાવ્યા ?

એનુ સમાધાન એ છે કે-ભગવાન્ સર્વજ્ઞ હતા, તેથી કોનું આયુષ્ય કેટલું અવશેષ રહ્યુ છે અથવા સમાપ્ત થઇ ચૂક્યું છે તે ભગવાન્ પોતાના નિર્મળ કેવળ જ્ઞાનથી જાણતા હતા સર્વાનુભૂતિ અને સુનક્ષત્ર શિષ્યોનું વર્તમાન આયુષ્ય સમાપ્ત થઇ ચૂક્યું હતું.

પ્રશ્ન—જેમ વર્તમાન આયુષ્ય સમાપ્ત થવાથી કોઇ કોઇને બચાવી શકતું નથી; તેમજ આયુષ્ય બાકી હોય તો કોઇ કોઇને પ્રાણરહિત પણ કરી શકતું નથી

नारकांश्च विहायान्येषां प्राणिनामायुषः सत्त्वेऽपि विषशस्त्रादिभिरकालमरण-संभवात्, ईदृशस्याकालमरणस्य बहुशः शास्त्रे प्रतिपादितत्वाच्च, अत एवाऽऽयुषः सत्त्वेऽपि प्राणिनां प्राणव्यपरोपणं संभवतीति ग्रन्थविस्तरभिया विरमामः। एवञ्चाहिंसाशब्दस्योक्तार्थः सुस्पष्ट एव।

अथ प्राणिप्राणरक्षणं तदिच्छा चेति द्वयम् 'अहिंसे'-ति सिद्धान्तितम्। अहिंसा-इत्यत्र का नाम हिंसेति चेदुच्यते—

हिंसा नाम प्रमादपारवश्यात् प्राणव्यपरोपणम्। प्रमादश्च मद्य-विषय-कषाय-निद्रा-विकथाभेदात्पञ्चधा, यद्वा अज्ञान-संशय-विपर्यय-राग-द्वेष-

---

उत्तर-एसी शङ्का करना भी उचित नहीं है। क्योंकि त्रिषष्टि-शलाकापुरुष, देवता और नारकोंके सिवाय समस्त प्राणियोंकी आयु रहते हुए भी विष शस्त्र आदि कारणोंसे अकालमृत्यु भी हो सकती है, यह बात शास्त्रसिद्ध है, अत एव आयुष्य के सद्भावमें भी प्राणोंका व्यपरोपण हो सकता है। विस्तार भयसे इस प्रकरणको यहाँ ही समाप्त करते हैं।

प्राणिप्राणरक्षण और उसकी इच्छाको अहिंसा कहते हैं। यह सिद्धान्त हुआ।

अहिंसा शब्द घटक जो हिंसा शब्द है उसका अभिप्राय क्या है? इस पर कहते हैं- प्रमादके वश होकर प्राणका अतिपात करना हिंसा है।

प्रमाद—(१) मद्य, (२) विषय, (३) कषाय, (४) निद्रा और (५) विकथाके भेदसे पांच प्रकारका, अथवा (१) अज्ञान, (२) संशय,

---

ઉત્તર—એવી શકા કરવી જ ઉચિત નથી, કેમકે ત્રિષષ્ટિશલાકાપુરૂષ, દેવતા અને નારકીઓ સિવાય બીજા બધા પ્રાણીઓનું આયુષ્ય બાકી હોય તો પણ વિષ, શસ્ત્ર, આદિ કારણોથી તેમનું અકાળમૃત્યુ પણ થઇ શકે છે. એ વાત શાસ્ત્રસિદ્ધ છે. એટલે આયુષ્યનો સદ્ભાવ હોવા છતાં પણ પ્રાણોનું વ્યપરોપણ થઇ શકે છે

વધારે વિસ્તાર નહિ કરવાને આ પ્રકરણને અહીં જ સમાપ્ત કરીએ છીએ.

પ્રાણિપ્રાણરક્ષણ અને તેની ઇચ્છાને અહિંસા કહે છે એવો સિદ્ધાન્ત થયો.

અહિંસા શબ્દમાં જે હિંસા શબ્દ છે એનો અભિપ્રાય શુ છે? આ સંબંધમાં કહે છે— પ્રમાદને વશ થઇને પ્રાણનો અતિપાત કરવો તે હિંસા છે

(૧) મદ્ય, (૨) વિષય, (૩) કષાય, (૪) નિદ્રા અને (૫) વિકથા, એ ભેદે કરીને પ્રમાદ પાંચ પ્રકારનો; અથવા (૧) અજ્ઞાન, (૨) સંશય, (૩) વિપર્યય.

स्मृतिभ्रंश-योगदुष्प्रणिधान-धर्मानादरभेदादष्टविधः। सा च हिंसा त्रिविधा-द्रव्यतो भावत उभयतश्चेति, तत्र—

द्रव्यतो हिंसा=आत्मनो विशुद्धपरिणामस्य सत्त्वेऽप्यकस्मादनिच्छया जन्तुविराधनं, यथा-भिक्षाचर्यादौ प्रवृत्तस्य समितिगुप्त्यादिधारकस्य चलनार्थं पादोत्थाने कृते एकेन चरणेन तिष्ठतः साधोरुत्थापितचरणतले तदानीं कुतश्चिद्भयाद् दुर्लक्ष्यकारणवशाद्वा वेगेन समागतस्य कस्य चिद् द्वीन्द्रियादिजन्तोरितस्ततः साधुना तद्रक्षणप्रयासे कृतेऽपि अकस्माच्चरणतलसंलग्नतया विराधनम्।

---

(३) विपर्यय, (४) राग, (५) द्वेष, (६) स्मृति-भ्रंश, (७) योगदुष्प्रणिधान, (८) धर्मानादर, के भेदसे आठ प्रकारका है।

हिंसा तीन प्रकारकी है—(१) द्रव्यहिंसा, (२) भावहिंसा और (३) उभयहिंसा।

(१) द्रव्यहिंसा—आत्माके परिणाम विशुद्ध होने पर भी अकस्मात् इच्छाके विना ही जन्तुको पीडा हो जाना द्रव्यहिंसा है, जैसे-आहार विहार आदिमें प्रवृत्त, समिति और गुप्तिके धारण करनेवाले मुनिने जब एक चरण उठाया तो उठाये हुए चरणके नीचे किसी भयसे या अन्य कारणसे कोई द्वीन्द्रिय आदि लघुकाय जीव अचानक नीचे आ जाय और साधु उसकी रक्षा करनेका प्रयत्न भी कर रहे हों, फिर भी अचानक दब जानेसे विराधना होना। इस प्रकारकी हिंसा, शरीरके

---

(४) રાગ, (૫) દ્વેષ, (૬) સ્મૃતિભ્રંશ, (૭) યોગદુષ્પ્રણિધાન, (૮) ધર્મનો અનાદર, એ ભેદે કરીને પ્રમાદ આઠ પ્રકારનો છે.

હિંસા ત્રણ પ્રકારની છેઃ— (૧) દ્રવ્યહિંસા, (૨) ભાવહિંસા, અને (૩) ઉભયહિંસા.

(૧) દ્રવ્યહિંસા—આત્માના પરિણામ વિશુદ્ધ હોવા છતાં અકસ્માત્ ઇચ્છા વિના જંતુઓની વિરાધના થઇ જાય તે દ્રવ્યહિંસા છે. જેમકે—આહાર વિહાર આદિમા પ્રવૃત્ત, સમિતિ અને ગુપ્તિને ધારણ કરવાવાળા મુનિએ જ્યારે એક પગ ઉપાડયો ત્યારે ઉપાડેલા પગની નીચે કાંઇ ભયને લીધે અથવા બીજા કોઇ કારણથી કોઇ બેઇંદ્રિય આદિ લઘુકાય જીવ અચાનક પગ નીચે આવી જાય, અને મુનિ એની રક્ષા કરવાનો પ્રયત્ન પણ કરી રહ્યા હોય, તો પણ અચાનક દબાઇ જવાથી વિરાધના થાય. આ પ્રકારની હિંસા, શરીરના યોગની ચપલતાને

एवंविधा च हिंसा काययोगस्य चपलतया सर्वथा परिहर्तुमशक्येति व्यवहार-नयमात्रगम्या ।

भावतो हिंसा=प्राणव्यपरोपणेच्छालक्षण आत्मनोऽशुद्धपरिणामः, यथा-मकरनाम्नो जलजन्तुविशेषस्य भ्रूप्रदेशे लब्धजन्मा तण्डुलदघ्नोऽन्तर्मुहूर्त्तायुष्को-ऽन्तर्मुहूर्त्तमात्रगर्भनिवासानन्तरमुत्पादशीलस्तण्डुलाभिधानो मत्स्यविशेषस्तत्र स्थित एवावलोकयति—

मकरोऽयं मत्स्यानशितुं तावत्तुण्डतस्तोयमाकर्षति, ततश्च जलवेगादान-नान्तःसमागतेषु प्रचुरतरेषु मीनेषु पश्चात्तानवरुध्याऽऽस्यगतं नीरं निस्सार-

---

योगकी चपलताको सर्वथा दूर करना अत्यन्त कठिन होनेके कारण व्यवहारनयमात्र है।

(२) भावहिंसा–प्राणोंसे रहित करनेकी इच्छारूप आत्माका अविशुद्ध परिणाम, भावहिंसा कहलाती है।

जैसे–मगर नामके जलचर-जीव-विशेषकी भौंह पर बारीक चाँवलके समान शरीरवाला एक तन्दुल नामका मत्स्य होता है; वह अन्तर्मुहूर्त्त गर्भमें रहकर जन्म लेता है; उसकी आयु अन्तर्मुहूर्त्तमात्रकी ही होती है। गर्भज होनेके कारण उसको मन होता है। वह वहाँ (भौंह पर) बैठा हुआ मगरका कृत्य देखता है कि वह मगर जलजन्तुओंको खानेके लिए पहले अपने मुँहमें पानीको खींचता है, फिर पानीके वेगसे आई-हुई मछलियोंको मुँहमें रोककर जब पानीको निकालता है तब दांतोंके

સર્વથા દૂર કરવી અત્યંત કઠિન હોવાને કારણે વ્યવહારનયમાત્ર છે.

(૨) ભાવહિંસા—પ્રાણથી રહિત કરવાની ઇચ્છારૂપ આત્માનો અવિશુદ્ધ પરિણામ એ ભાવહિંસા કહેવાય છે.

જેમકે—મગર નામના એક જળચર પ્રાણીની ભમ્મર પર ચોખા જેવા બારીક શરીરવાળો એક તંદુલ નામનો મત્સ્ય થાય છે. એ મત્સ્ય અંતર્મુહૂર્ત ગર્ભમાં રહીને જન્મ લે છે. તેનું આયુષ્ય અંતર્મુહૂર્ત જેટલું હોય છે તે ગર્ભજ જીવ હોવાને લીધે તેને મન થાય છે તે મગરની ભમ્મર પર બેઠાબેઠા મગરનું કૃત્ય જુએ છે કે આ મગર જળમાંના જીવોને ખાવાને માટે પહેલાં પોતાના મ્હોમાં પાણીને ખેંચે છે, પછી પાણીના વેગથી આવેલી માછલીઓને મ્હોમાં રોકીને જ્યારે પાણીને કાઢી નાખે છે, ત્યારે દાંતના છિદ્રો દ્વારા પાણીની

यति तदा दशनान्तरावकाशनिर्गतोदकवेगतो बहुतरं मीना लघुतरा निस्सरन्त्येव। एवं बहिर्व्रजतस्तान्निरीक्ष्यासौ तण्डुलमत्स्यो मनसि विभावयति-
"यदि मम वपुरीदृशं बृहत् स्यात् तर्हि मम मुखान्निर्गन्तुमेकोऽपि मत्स्यो न शक्नुयात्, मया सर्वेऽपि भक्षिता भवेयुः" इति।

इत्थं कलुपिताध्यवसायरूपया भावहिंसया स्वकीयमन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणमायुष्यं समाप्य त्रयस्त्रिंशत्सागरप्रमाणं नरकायुष्यं निबध्यासौ (तण्डुलमत्स्यः) तमस्तमाऽभिधायां सप्तम्यां नरकपृथिव्यां नारकत्वेन समुत्पद्यते।

यद्वा-अल्पीयसि प्रकाशे रज्जुमालोक्य 'व्यालोऽय'-मित्यालोचयतः

छिद्रों द्वारा पानीके साथ-साथ बहुतसी छोटी२ मछलियां निकल जाती हैं, तब उन निकलती हुई मछलियोंको देखकर तन्दुलमत्स्य विचारता है कि—

इस (मगर) के तो दांतोंके छिद्रों द्वारा बहुतसी मछलियां निकल जाती हैं, किन्तु, अगर मेरा शरीर मगरके बराबर बड़ा होता तो मैं इनमेंसे एकको भी नहीं निकलने देता-सबको भक्षण कर जाता।

इस प्रकार वह परम कलुषित अध्यवसायरूप भावहिंसासे तेंतीस-सागरप्रमाण नरकायुष्य बांधकर अन्तर्मुहूर्त्तकी अपनी आयुष्यको समाप्त करके तमतमा नामकी सातवीं नरकपृथिवीके अन्दर नारकीपनमें उत्पन्न होता है।

अथवा जैसे-मन्द-मन्द प्रकाशमें किसी हिंसकने रस्सीको सर्प

સાથે સાથે ઘણીય નાની નાની માછલીઓ બહાર નીકળી જાય છે. એ નીકળી જતી માછલીઓને જોઇને તંદુલ મત્સ્ય વિચારે છે કે આ મગરના દાંતનાં છિદ્રોની વાટે ઘણીય માછલીઓ બહાર નીકળી જાય છે, પરન્તુ જો મારૂં શરીર મગરના જેટલું મોટું હોત તો હું એમાંથી એક પણ માછલીને બહાર નીકળવા ન દેત-બધીયનું ભક્ષણ કરી જાત.

આ પ્રમાણે એ પરમ કલુષિત અધ્યવસાયરૂપ ભાવહિંસાથી તેત્રીસ સાગરનું નરકાયુષ્ય બાંધીને અંતર્મુહૂર્તનું આયુષ્ય સમાપ્ત કરે છે અને તમતમા નામની સાતમી નરકપૃથિવીની અંદર નારકીપણે ઉત્પન્ન થાય છે.
અથવા જેમ-મંદ મંદ પ્રકાશમાં કોઇ હિંસકે દોરડાને સર્પ સમજીને ક્રૂર

शस्त्रादिना तत्प्रहरणं तदभिलापमात्रं वा रज्जोरचेतनत्वेन प्राणव्यपरोपणाऽभावेऽपि आत्मन उक्तस्वरूपाऽशुद्धपरिणामोदयाच्चतुर्गतिभवभ्रमणहेतुर्बन्धो नियतं भवति ।

उभयतो हिंसा=आत्मनोऽशुद्धपरिणामपूर्वकं प्राणव्यपरोपणं, यथा=केनचिद् व्याधेन मृगजिघांसया शरप्रक्षेपेण कृतं तद्धननम् ।

संयमः ।

संयमः=संयमनं=सम्यगुपरमणं सावद्ययोगादिति संयमः, स च सप्तदशविधः,

---

समझकर क्रूर परिणामसे मारा, या मारनेका प्रयास किया तो वहाँ रस्सीके अचेतन होनेके कारण यद्यपि प्राणोंका व्यपरोपण नहीं हुआ तथापि आत्मामें अशुद्ध परिणामके उदय होनेसे वह भी भावहिंसा है। उस हिंसासे निश्चय ही चतुर्गतिमें परिभ्रमण करानेवाले कर्मोंका बन्ध होता है।

(३) उभयहिंसा-अशुद्ध परिणामोंसे जीवका घात करना उभयहिंसा है, क्योंकि इस हिंसामें आत्माके अशुद्ध परिणाम और प्राणोंका नाश दोनों पाये जाते हैं, जैसे-कोई व्याध हरिणको मारनेकी इच्छासे बाण चलाता है और उससे उसके प्राणोंका नाश हो जाता है।

संयम।

सावद्ययोगसे सम्यक्प्रकारसे निवृत्त होनेको संयम कहते हैं। वह

પરિણામથી માર્યો, અથવા મારવાનો પ્રયાસ કર્યો, તો તેમાં દોરડું અચેતન હોવાથી જો કે પ્રાણનું વ્યપરોપણ થયું નહિ, તો પણ આત્મામાં અશુદ્ધ પરિણામનો ઉદય હોવાથી એ પણ ભાવહિંસા છે. આ હિંસાથી નિશ્ચિતપણે ચતુર્ગતિમાં પરિભ્રમણ કરનારા કર્મોનો બંધ થાય છે.

(૩) **ઉભયહિંસા—** અશુદ્ધ પરિણામોથી જીવનો ઘાત કરવો એ ઉભયહિંસા છે, કેમકે એ હિંસામાં આત્માના અશુદ્ધ પરિણામ તથા પ્રાણનો નાશ બન્ને રહેલા હોય છે જેમકે-કોઈ પારધી હરણને મારવાની ઇચ્છાથી બાણ છોડે છે અને એ રીતે હરણના પ્રાણનો નાશ થઈ જાય છે.

સંયમ

સાવદ્યયોગથી સમ્યક્ પ્રકારે નિવૃત્ત થવું તેને સંયમ કહે છે. સંયમ સત્તર

तदुक्तं समवायाङ्गे—

" सत्तरसविहे संजमे पण्णत्ते तंजहा—(१) पुढवीकायसंजमे (२) आउकायसंजमे (३) तेउकायसंजमे (४) वाउकायसंजमे (५) वणस्सइकायसंजमे (६) वेइंदियसंजमे (७) तेइंदियसंजमे (८) चउरिंदियसंजमे (९) पंचिंदियसंजमे (१०) अजीवकायसंजमे (११) पेहासंजमे (१२) उवेहासंजमे (१३) अवहट्टु-(परिट्ठावणा)संजमे (१४) पमज्जणासंजमे (१५) मणसंजमे (१६) वयसंजमे (१७) कायसंजमे " इति ।

छाया—सप्तदशविधः संयमः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—(१) पृथिवीकायसंयमः (२) अप्कायसंयमः (३) तेजस्कायसंयमः (४) वायुकायसंयमः (५) वनस्पतिकायसंयमः (६) द्वीन्द्रियसंयमः (७) त्रीन्द्रियसंयमः (८) चतुरिन्द्रियसंयमः (९) पञ्चेन्द्रियसंयमः (१०) अजीवकायसंयमः (११) प्रेक्षासंयमः (१२) उपेक्षासंयमः (१३) अपहृत्यसंयमः (१४) प्रमार्जनासंयमः (१५) मनःसंयमः (१६) वाक्संयमः (१७) कायसंयमः ।

तत्र (१) पृथिवीकायसंयमः=सचित्तपृथिव्या हस्तपादादिना संघट्टनादि-

---

सतरह प्रकारका है । समवायाङ्गके सतरहवें समवायमें कहा है—(१) पृथिवीकायसंयम, (२) अप्कायसंयम, (३) तेजस्कायसंयम, (४) वायुकायसंयम, (५) वनस्पतिकायसंयम, (६) द्वीन्द्रियसंयम, (७) त्रीन्द्रियसंयम, (८) चतुरिन्द्रियसंयम, (९) पञ्चेन्द्रियसंयम, (१०) अजीवकायसंयम, (११) प्रेक्षासंयम, (१२) उपेक्षासंयम, (१३) अपहृत्यसंयम (परिष्ठापनासंयम), (१४) प्रमार्जनासंयम, (१५) मनःसंयम, (१६) वाक्संयम, (१७) कायसंयम ।

(१) पृथिवीकायसंयम=हाथ पैर इत्यादिसे सचित्त पृथिवीका संघट्टन (संघट्टा) आदिका वर्जन करना ।

પ્રકારનો છે. સમવાયાંગના સત્તરમા સમવાયમાં તે પ્રકારો કહ્યા છે. (૧) પૃથિવીકાયસંયમ, (૨) અપ્કાયસંયમ, (૩) તેજસ્કાયસંયમ, (૪) વાયુકાયસંયમ, (૫) વનસ્પતિકાયસંયમ, (૬) દ્વીન્દ્રિયસંયમ, (૭) ત્રીન્દ્રિયસંયમ, (૮) ચતુરિન્દ્રિયસંયમ, (૯) પંચેન્દ્રિયસંયમ, (૧૦) અજીવકાયસંયમ (૧૧) પ્રેક્ષાસંયમ, (૧૨) ઉપેક્ષાસંયમ, (૧૩) અપાહૃત્યસંયમ (પરિષ્ઠાપનાસંયમ), (૧૪) પ્રમાર્જનાસંયમ, (૧૫) મનઃ સંયમ, (૧૬) વાક્‌સંયમ, (૧૭) કાયસંયમ.

(૧) પૃથિવીકાયસંયમ—હાથ પગ ઇત્યાદિથી સચિત્ત પૃથિવીનું સંઘટ્ટન વગેરેને વર્જવું

विरतिः (२) अप्कायसंयमः=सचित्तजलस्य संघट्टनाद्यकरणम्, (३) तेजस्कायसंयमः=पचनपाचनादिनिमित्तकाऽनलारम्भनिवर्त्तनम्; (४) वायुकायसंयमः=वस्त्रपात्रव्यजनवक्त्रादिसमुत्पन्नवायुजनितवायुकायोपमर्दननिवृत्तिः, तत्र वस्त्रपात्राणामयतनया निक्षेपणादानप्रक्षेपनिपातनादिकारणवशात्, तथा तेषां (वस्त्रपात्राणां) व्यजनपर्णशाखादीनां च विधूननेन वायुकायविराधनं भवति। अनावृतमुखेन संभाषणे च तन्निर्गतोष्णवायुना तद्विराधनं जायते।

(५) वनस्पतिकायसंयमः=तरुलतिकादिहरितकायमात्रस्य संघट्टनादिवर्जनम्।

---

(२) अपूकायसंयम=सचित्त जलका संघटा आदि न करना।

(३) तेजस्कायसंयम=पचन पाचन आदि किसी प्रयोजनके लिए अग्निके संघटा आदिका वर्जन करना।

(४) वायुकायसंयम=वस्त्र, पात्र, पंखा, फूंक आदिसे उत्पन्न हुए वायुद्वारा वायुकायकी विराधनाका वर्जन करना।

वस्त्र, पात्रोंको अयतनासे रखनेसे, अयतनासे लेनेसे, फेंकनेसे, गिरानेसे, तथा वस्त्र, पात्र, पंखा आदिको हिलाकर वायुकायकी उदीरणा करनेसे तथा बोलते समय उष्णवायु निकलनेके द्वारा मुखसे वायुकायकी विराधना होती है।

(५) वनस्पतिकायसंयम–वृक्ष, लता आदि हरित कायके संघटा आदिसे निवृत्त होना।

---

(૨) અપ્‌કાયસંયમ—સચિત્ત જલનું સંઘટન આદિ ન કરવું

(૩) તેજસ્કાયસંયમ—રાંધવું, રંધાવવું વગેરે કોઈ પ્રયોજનને માટે અગ્નિનું સંઘટન આદિને વર્જવું

(૪) વાયુકાયસંયમ—વસ્ત્ર, પાત્ર, પંખો, ફૂંક ઈત્યાદિથી ઉત્પન્ન થએલા વાયુદ્વારા વાયુકાયની વિરાધના વર્જવી.

વસ્ત્ર, પાત્રો ઈત્યાદિને અયતનાપૂર્વક રાખવાથી, અયતનાપૂર્વક લેવાથી, ફેંકવાથી, પાડવાથી, તથા વસ્ત્ર–પાત્ર–પંખો વગેરેને હલાવીને વાયુકાયની ઉદીરણા કરવાથી તથા બોલતી વખતે મુખના ઉના વાયુથી વાયુકાયની વિરાધના થાય છે.

(૫) વનસ્પતિકાયસંયમ—વૃક્ષ, લતા આદિ હરિતકાયના સંઘટન આદિથી નિવૃત્ત થવું.

एवं (६) द्वीन्द्रियादि- (९) पञ्चेन्द्रियपर्यन्तानां सर्वथाऽनुपमर्दनं तत्तत्संयमः (१०) अजीवकायसंयमः=बहुमूल्यवतां वस्त्रपात्रादीनामनुपादानम्, उपादेयवस्त्रपात्रादीनां सयत्नमुपादानं स्थापनं च, (११) प्रेक्षासंयमः=वसतिवस्त्रपात्रादीनां सयतनं सविधि प्रतिलेखनम्, (१२) उपेक्षासंयमः=संयममार्गे क्लेशमाकलयतोऽ संयममार्गे प्रवर्तमानस्य वा स्वात्मनः परस्य वा असंयमदोषान् संयम-

---

(६-७-८-९) द्वीन्द्रियादिसंयम=द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और पञ्चेन्द्रिय जीवोंका सर्वथा उपमर्दन न करना तत्तत्संयम, अर्थात् द्वीन्द्रियसंयम, त्रीन्द्रियसंयम, चतुरिन्द्रियसंयम, पञ्चेन्द्रियसंयम कहलाता है।

(१०) अजीवकायसंयम=बहुत मूल्यवाले वस्त्र पात्र आदिका ग्रहण न करना, तथा कल्पनीय वस्त्र पात्र आदि को यतनाके साथ लेना और रखना।

(११) प्रेक्षासंयम=वसती, वस्त्र, पात्र, पाट, पाटला आदिका यतनापूर्वक सविधि प्रतिलेखन करना।

(१२) उपेक्षासंयम=संयममार्गमें अनुकूल प्रतिकूल परिषहोंसे क्लेशका अनुभव करनेवाले, अथवा असंयममें प्रवृत्ति करनेवाले स्वपरकी आत्माको संयमके गुण और असंयमके दोष समझाकर फिर संयममार्गमें प्रवृत्त

(६-७-८-९) द्वीन्द्रियादिसंयम—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, અને પંચેન્દ્રિય જીવોનું સર્વથા ઉપમર્દન ન કરવું, તે તે પ્રકારનો સંયમ, અર્થાત્ દ્વીન્દ્રિયસંયમ, ત્રીન્દ્રિયસંયમ, ચતુરિન્દ્રિયસંયમ અને પંચેન્દ્રિયસંયમ કહેવાય છે

(૧૦) અજીવકાયસંયમ—મૂલ્યવાન વસ્ત્ર પાત્ર આદિને ગ્રહણ ન કરવાં, તથા કલ્પે તેવાં જ વસ્ત્ર પાત્ર આદિને યતનાપૂર્વક લેવાં તથા રાખવાં.

(૧૧) પ્રેક્ષાસંયમ—વસતી, વસ્ત્ર, પાત્ર, પાટ, પાટલા ઇત્યાદિને યતનાપૂર્વક તથા વિધિસર પ્રતિલેખન કરવું.

(૧૨) ઉપેક્ષાસંયમ—સંયમમાર્ગમાં અનુકૂળ-પ્રતિકૂળ પરિષહોથી ક્લેશનો અનુભવ કરનારા, અથવા અસંયમમાં પ્રવૃત્તિ કરનારા, સ્વપરના આત્માઓને સંયમના ગુણ તથા અસંયમના દોષ સમજાવીને પછી સંયમમાર્ગમાં

गुणांश्चावबोध्य संयमयोगेषु प्रवर्त्तनं संयमसमीपानयनलक्षणं संयमसामीप्यदर्शनमित्यर्थः। यद्वा प्रेक्षासंयमः=सकृत्प्रतिलेखनम्। उपेक्षासंयमः=पुनः पुनः प्रतिलेखनम्। (१३) अपहृत्य (परिष्ठापना) संयमः=उच्चारादीनां विधिना समुत्सर्गः परिष्ठापनमित्यर्थः। (१४) प्रमार्जनासंयम=विधिना वसतिपात्रादेः परिशोधनम्। (१५-१६-१७) मनोवाक्कायसंयमः=अकुशलानां मनोवाक्कायानां निरोधेन कुशलानामुदीरणम्। तत्राऽऽर्त्तरौद्रध्यानपरिहारपूर्वकधर्मशुक्लध्यानप्रवर्त्तनं मनःसंयमः। सावद्यपरिहारपूर्वकनिरवद्यभाषणं वाक्संयमः। अयतनापरि-

---

करना। अथवा वस्त्र पात्र आदिके उपभोग करते समय एक बार प्रतिलेखन करना प्रेक्षासंयम है, और बारंबार चारों ओरसे प्रतिलेखन करना उपेक्षासंयम है।

(१३) अपहृत्य(परिष्ठापना)संयम=यतनापूर्वक उच्चार-प्रस्रवणको त्यागना।

(१४) प्रमार्जनासंयम=यतनाके साथ वसती वस्त्र पात्र आदिको पूँजना (प्रमार्जन करना)।

(१५) मनःसंयम=अकुशल मनका निरोध करके कुशल मनकी प्रवृत्ति करना, अर्थात् आर्त्तध्यान और रौद्रध्यानका त्याग करके धर्म और शुक्लध्यानमें मनको लगाना।

(१६) वचनसंयम=अशुभ (सावद्य) वचनका त्यागकर शुभ (निरवद्य) वचन बोलना।

પ્રવૃત્ત કરવા અથવા વસ્ત્ર-પાત્ર આદિનો ઉપભોગ કરતી વખતે એકવાર પ્રતિલેખન કરવું એ પ્રેક્ષાસંયમ છે, અને વારવાર ચારે બાજુએથી પ્રતિલેખન કરવું- એ ઉપેક્ષાસંયમ છે

(૧૩) **અપહૃત્ય (પરિષ્ઠાપના) સંયમ**—યતનાપૂર્વક ઉચ્ચાર-પ્રસ્રવણને પરિઠવવાં-ત્યજવાં

(૧૪) **પ્રમાર્જનાસંયમ**—યતનાપૂર્વક વસતી વસ્ત્ર પાત્ર આદિને પૂજવાં (પ્રમાર્જવાં)

(૧૫) **મનઃ સંયમ**—અકુશળ મનનો નિરોધ કરીને કુશળ મનની પ્રવૃત્તિ કરવી, અર્થાત્ આર્તધ્યાન અને રૌદ્રધ્યાનનો ત્યાગ કરીને ધર્મધ્યાન તથા શુકલ-ધ્યાનમા મનને લગાડવું

(૧૬) **વચનસંયમ**—અશુભ વચનનો ત્યાગ કરીને શુભ વચન બોલવાં.

हारेण यतनापुरस्सरकायप्रवर्त्तनं कायसंयम इति विवेकः ।

प्रकारान्तरेणापि संयमः सप्तदशविधः, यथा—

"पञ्चास्रवाद्विरमणं, पञ्चेन्द्रियनिग्रहः कषायजयः ।
दण्डत्रयविरतिश्चेति संयमः सप्तदशभेदः ॥१॥" इति ।

तत्र पञ्चास्रवविरमणं=पञ्चास्रवाः प्राणातिपातादय एतेभ्यो विरमणं=निवृत्तिः (५),पञ्चेन्द्रियनिग्रहः=तत्तद्विषयेष्वप्रवर्त्तनम् , इष्टानिष्टेषु शब्दादिषु रागद्वेषाकरणमित्यर्थः (१०), कषायजयः=उदयभावमप्राप्नुवतां क्रोधादीनां चतुर्णां निरोधः, उदयभावं प्राप्तानां च तेषां निष्फलीकरणम् (१४) दण्डत्रयविरतिः=दण्ड्यते= रत्नत्रयैश्वर्यापहारादसारीक्रियते आत्मा यैरिति दण्डास्तेषां त्रयं दण्डत्रयं=मनोदण्ड–वचोदण्ड–कायदण्ड–लक्षणास्त्रयो दण्डा इत्यर्थः, तस्माद्विरतिः=निवृत्तिः(१७)।

---

(१७) कायसंयम=अयतनाको छोडकर यतनापूर्वक ही कायकी प्रवृत्ति करना।

संयमके सत्तरह भेद दूसरे प्रकारसे भी होते हैं, जैसे–प्राणातिपात आदि पांच आस्रवोंका विरमण (५), पांच इन्द्रियोंके इष्ट विषयोंमें राग न करना, अनिष्ट विषयोंमें द्वेष न करना (१०), उदयमें न आए हुए क्रोध आदि चार कषायोंका निरोध करना और उदयमें आये हुएको निष्फल करना, जैसे–क्रोधका उदय होने पर क्षमा रखना, मानका उदय होनेपर मार्दव भाव रखना, मायाका उदय होने पर सरलता रखना, और लोभकषायका उदय होने पर निर्लोभता धारण करना (१४), ज्ञान आदि गुणोंका अपहरण (नाश) करके आत्माको दरिद्र बनानेवाले मनदण्ड वचनदण्ड, और कायदण्डका त्याग करना (१७),

---

(१७) કાયસંયમ—અયતનાને ત્યજીને યતનાપૂર્વકજ કાયાની પ્રવૃત્તિ કરવી.

સંયમના સત્તર ભેદ બીજે પ્રકારે પણ થાય છે. જેમકે પ્રાણાતિપાત આદિ પાંચ આસ્રવોનું વિરમણ (૫), પાંચ ઇન્દ્રિયોના ઇષ્ટ વિષયોમાં રાગ ન કરવો, અનિષ્ટ વિષયોમાં દ્વેષ ન કરવો (૧૦), ઉદયમાં ન આવેલા ક્રોધ આદિ ચાર કષાયોનો નિરોધ કરવો અને ઉદયમાં આવેલાને નિષ્ફળ કરવા જેમકે ક્રોધનો ઉદય થતા ક્ષમા રાખવી, માનનો ઉદય થતાં માર્દવભાવ રાખવો, માયાનો ઉદય થતાં સરલતા રાખવી, અને લોભકષાયનો ઉદય થતાં નિર્લોભતા ધારણ કરવી (૧૪), જ્ઞાન આદિ ગુણોનું અપહરણ (નાશ) કરીને આત્માને દરિદ્ર બનાવનારા મનદંડ, વચનદંડ અને કાયદંડનો ત્યાગ કરવો (૧૭),

पूर्वं वायुकायसंयमविषये प्रोक्तं यत्-'अनावृतमुखेन संभाषणे मुख-निर्गतोष्णवायुना वायुकायविराधनं जायते' इति, तत्र केचिदेवं वदन्ति-आत्मा हि भाषणकाले चतुःस्पर्शवतो भाषावर्गणापुद्गलान् गृह्णाति तैर्वायुकायस्य विराधना न संभवति तस्यापि चतुःस्पर्शवत्त्वादिति.

तेषामपर्याप्तमेतत्कथनम्, वस्तुतस्तु आत्मा पूर्वं चतुःस्पर्शकपुद्गलानेव गृह्णाति किन्तु संभाषणसमये तैजसशरीरं संगृह्यैव भाषापुद्गला निस्सरन्तीति तैजसशरीर-सम्बन्धेन तेऽष्टस्पर्शवन्तो जायन्ते तस्मादनिवार्या वायुकायविराधना।

पहले वायुकायसंयममें कहा है कि-बोलते समय मुखसे निकलने-वाली वायु गर्म होती है और इसी कारण उससे वायुकायके जीवोंकी विराधना होती है।

यहां कुछ लोगोंका कहना है कि आत्मा चार स्पर्शवाले भाषावर्गणाके पुद्गलोंको ग्रहण करती है और चार स्पर्शवाले पुद्गलों से वायुकायकी विराधना नहीं हो सकती, क्योंकि वायुकायके जीवभी चार स्पर्शवाले होते हैं। उनका यह कथन अधूरा है। बात वास्तव में यह है कि आत्मा ग्रहण तो चार स्पर्शवाले पुद्गलों का ही करती है किन्तु भाषण करते समय तैजस शरीरको ग्रहण करके ही भाषा-पुद्गल निकलते हैं। तैजस शरीरके सम्बन्धसे भाषा-पुद्गल आठ स्पर्शवाले हो जाते हैं, और आठ स्पर्शवाले होने से उनसे वायुकाय आदि की विराधना अवश्य होती है।

પૂર્વે વાયુકાય-સંયમમા જે કહ્યુ છે કે— ખુલે મોંઢે બોલવામાં મુખમાથી નીકળતા ગરમ વાયુ વડે વાયુકાયના જીવોની વિરાધના થાય છે. ત્યાં કેટલાક લોકોનું કહેવું એવું છે કે આત્મા ચાર સ્પર્શવાળા ભાષાવર્ગણાના પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરે છે અને ચાર સ્પર્શવાળા પુદ્ગલોથી વાયુકાયની વિરાધના થઈ શકતી નથી કેમકે વાયુકાયના જીવો પણ ચાર સ્પર્શવાળા હોય છે. એમનું એ કથન અધૂરૂં છે. વસ્તુતઃ વાત એવી છે કે આત્મા ગ્રહણ તો ચાર સ્પર્શવાળા પુદ્ગલોનું જ કરે છે, કિન્તુ બોલતી વખતે તૈજસ શરીરને ગ્રહણ કરીને જ ભાષાપુદ્ગલો નીકળે છે તૈજસ શરીરના સંબંધથી ભાષા-પુદ્ગલ આઠ સ્પર્શવાળા થઈ જાય છે, અને આઠ સ્પર્શવાળા થવાથી, તેનાથી વાયુકાય આદિની વિરાધના અવશ્ય થાય છે.

। मुखवस्त्रिकाविचारः ।

ननु मुखोष्णवायुनाऽपि यदि वायुकायविराधनं तर्हि मुनीनां कथं वायुकायसंयमः? इति चेत् न, यतो भगवता श्रीतीर्थङ्करेण मुनीनां वायुकायसंयमार्थं मुखवस्त्रिकाबन्धनं प्रतिपादितम् ।

तद्विना हि श्रीव्याख्याप्रज्ञप्तौ षोडशतमशतकस्य द्वितीयोद्देशे भगवता शक्रेन्द्रस्यापि भाषणं सावद्यत्वेन परिकथितं, तथाहि—

'गोयमा! जाहे णं सक्के देविंदे देवराया सुहुमकायं अणिजूहित्ताणं भासं भासति ताहे णं सक्के देविंदे देवराया सावज्जं भासं भासइ। जाहे णं सक्के देविंदे देवराया सुहुमकायं णिजूहित्ताणं भासं भासइ ताहे सक्के देविंदे देवराया असावज्जं भासं भासइ' इत्यादि ।

'गौतम! यदा शक्रो देवेन्द्रो देवराजः सूक्ष्मकायमपोह्य भाषां भाषते तदा शक्रो देवेन्द्रो देवराजः सावद्यां भाषां भाषते। यदा शक्रो देवेन्द्रो देवराजः सूक्ष्मकायं दत्त्वा भाषां भाषते तदा शक्रो देवेन्द्रो देवराजः असावद्यां भाषां भाषते' इति संस्कृतम् ।

मुखवस्त्रिकाविचार.

जब मुखसे निकलनेवाली वायुसे वायुकाय की विराधना होती है, तो मुनि वायुकायका संयम कैसे पाल सकते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर यही है कि वायुकायके संयमके लिए ही तीर्थंकर गणधर भगवानने मुखवस्त्रिका धारण करना बताया है । भगवतीसूत्र सोलहवें शतक के दूसरे उद्देशमें भगवानने विना मुखवस्त्रिकाके इन्द्र महाराजके भाषणको भी सावद्य बताया है; यथा—" गोयमा ! " इत्यादि ।

મુખવસ્ત્રિકાવિચાર

જો મુખમાંથી નિકળનારા વાયુથી વાયુકાયની વિરાધના થાય છે, તો મુનિ વાયુકાયનો સંયમ કેવી રીતે પાળી શકે છે ? એ પ્રશ્નનો ઉત્તર એ છે કે વાયુકાયના સંયમને માટે જ તીર્થંકર ગણુધર ભગવાને મુખવસ્ત્રિકા ધારણુ કરવાનું બતાવ્યું છે. ભગવતી-સૂત્રના સોળમા શતકના બીજા ઉદ્દેશમા મુખવસ્ત્રિકા વિનાના ઇન્દ્ર મહારાજના ભાષણુને પણુ ભગવાને સાવદ્ય બતાવ્યું છે- 'ગોયમા' ઇત્યાદિ.

अयमाशयः—मुखवस्त्रिकाधारणं विना भाषणे वायुकायादिविराधनस्य दुर्वारतया भाषा सावद्या भवतीति।

एतद्व्याख्याने अभयदेवसूरिणाऽपि—"जीवसंरक्षणतोऽनवद्या भाषा भवति, अन्या तु सावद्ये" त्युक्तम्। 'सुहुमकायं अणिज्जूहित्ताणं' इत्यस्य हि वस्त्रमपोह्य मुखोपरि वस्त्रमदत्त्वे (मवदूध्वे) त्यर्थः। यदन्वयव्यतिरेकाभ्यां भाषाया निरवद्यत्वं सावद्यत्वं च भवति, भाषाभिव्यक्तिश्च मुखाद्भवतीति मुखे ध्रियमाणं वस्त्रं 'मुखवस्त्रिका' शब्देन शास्त्रे व्यवह्रियते।

'शक्र' इत्येव वक्तव्ये 'देवेन्द्रो देवराजः' इति विशेषणोक्त्या दिव्यशक्ति-

---

तात्पर्य यह है कि मुखवस्त्रिका धारण किये विना भाषण करनेसे वायुकायकी विराधना अनिवार्य है, अत एव वह भाषा सावद्य है। इसका व्याख्यान करते हुए अभयदेवसूरि लिखते हैं—"जीव संरक्षणतोऽनवद्या भाषा भवति अन्या तु सावद्या।"—अर्थात् जीवों की रक्षा होनेसे भाषा निरवद्य होती है और इससे भिन्न (जीवों की घात करने वाली) भाषा सावद्य होती है। मूल पाठके 'सुहुमकायं अणिज्जूहित्ताणं' इस पदका अर्थ यह है कि—'मुख पर वस्त्र न धारण करके' जहाँ वस्त्र धारण नहीं वहाँ भाषा सावद्य होती है, और जहां वस्त्र धारण होता है वहाँ भाषा निरवद्य होती है। भाषा मुखसे निकलती है, इसलिए मुख पर धारण किया जानेवाला वस्त्र 'मुखवस्त्रिका' कहलाता है।

मूलमें 'शक्र' कहनेसे ही इन्द्रका बोध हो सकता था; किन्तु

તાત્પર્ય એ છે કે મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કર્યા વિના ભાષણ કરવાથી વાયુકાયની વિરાધના અનિવાર્ય છે, તેથી કરીને એ ભાષા સાવદ્ય છે. એનું વ્યાખ્યાન કરતાં અભયદેવ સૂરિ લખે છે કે "जीवसंरक्षणतोऽनवद्या भाषा भवति अन्या तु सावद्या" અર્થાત્ જીવોની રક્ષા થવાથી ભાષા નિરવદ્ય થાય છે અને એથી ભિન્ન (જીવોની ઘાત કરવાવાળી) ભાષા સાવદ્ય હોય છે. મૂળ પાઠનાં 'सुहुमकायं अणिज्जूहित्ताणं' પદનો અર્થ એ છે કે 'મુખ પર વસ્ત્ર ન ધારણ કરીને', જ્યાં વસ્ત્ર ધારણ નથી, ત્યાં ભાષા સાવદ્ય છે અને જ્યાં વસ્ત્ર ધારણ થાય છે ત્યાં ભાષા નિરવદ્ય છે. ભાષા મુખમાંથી નીકળે છે તેથી મુખ પર ધારણ કરવામાં આવનારૂં વસ્ત્ર 'મુખવસ્ત્રિકા' કહેવાય છે.

મૂળમાં 'શક્ર' કહેવાથી ઇન્દ્રનો બોધ થઇ શકતો હતો, પરન્તુ દેવેન્દ્ર

मत्त्वेऽपि तस्य मुखवस्त्रिकाधारणाभावे यदि सावद्या भाषा तर्हि औदारिकशरीरधारिणां का वार्त्ते? ति ध्वनितम्।

सा च मुखवस्त्रिका वायुकायादिप्राणिप्राणसंरक्षणोपयोगि-मुखोपरिबन्धनीय-मुखपरिमित-सदोरकाऽष्टपुटवस्त्रखण्डविशेषः। अत्रायं सङ्ग्रहः—

"वाउकायाइरक्खट्ठं, वज्झई जं सया मुहे।
सदोरट्ठपुडं वत्थं, वुत्ता सा मुहवत्थिया॥१॥
मुहमाणा जईलिंगं, सव्वसंजमकारणं।
पसत्थभावणावुड्ढी-हेऊ य मुहवत्थिया॥२॥" इति।

देवेन्द्र और देवराज विशेषणों का देना यह सिद्ध करता है कि जब दिव्य शक्तिमान् होने पर भी मुखवस्त्रिका न धारण करने से उसकी भाषा सावद्य होती है तो औदारिक-शरीर-धारियों की बात ही क्या है? उनकी भाषा अवश्य ही सावद्य होगी।

वह मुखवस्त्रिका वायुकाय आदिके प्राणियोंकी रक्षाके लिये उपयोगी, मुख पर बांधने योग्य, मुखके बराबर डोरा सहित आठ पुटवाला, वस्त्रका खण्डविशेष है। यहां संग्रहगाथाएँ हैं-'वाउ' इत्यादि,

अर्थात्-वायुकाय आदिकी रक्षाके लिये जो सदा मुख पर बांधी जाती है, वह डोरासहित आठ पुटवाला वस्त्र "मुखवस्त्रिका" कहलाती है॥१॥ वह मुखवस्त्रिका मुख-प्रमाण होती है, यह मुनिका चिह्न सर्व संयमका कारण तथा प्रशस्त भावना की वृद्धिका कारण है॥२॥

અને દેવરાજ વિશેષણો એ સિદ્ધ કરે છે કે જો દિવ્ય શક્તિમાન હોવા છતાં પણ મુખવસ્ત્રિકા ન ધારણ કરવાથી એની ભાષા સાવદ્ય થાય છે તો ઔદારિક-શરીરધારીઓની વાત જ શી? એની ભાષા પણ જરૂર જ સાવદ્ય જ થાય.

એ મુખવસ્ત્રિકા વાયુકાય આદિના પ્રાણીઓની રક્ષાને માટે ઉપયોગી, મુખ પર બાંધવા યોગ્ય, મુખની બરાબર, દોરાસહિત આઠપુટવાળો વસ્ત્રનો ખંડવિશેષ છે. અહીં સંગ્રહ ગાથાઓ છે-'વાઉ૦' ઇત્યાદિ

અર્થાત્-વાયુકાય આદિની રક્ષાને માટે જે સદા મુખ પર બાંધવામાં આવે છે, તે દોરાસહિત આઠપુટવાળું વસ્ત્ર 'મુખવસ્ત્રિકા' કહેવાય છે (૧) એ મુખવસ્ત્રિકા મુખ-પ્રમાણ હોય છે. એ મુનિનું ચિહ્ન સર્વ સંયમનું કારણ તથા પ્રશસ્ત ભાવનાની વૃદ્ધિનું કારણ છે (૨)

पुनरपि—

"मुखे वांधी ते मुंहपती, हेठे पाटो धारी।
अति हेठी दाढी थई, जोतर गले निवारी ॥ १ ॥
"एक काने धजसम कही, खंधे पछेड़ी ठाम।
केड़े खोसी कोथली, नावे पुण्यने काम ॥ २ ॥" इति।
(श्रावक-ऋषभदासकृते हितशिक्षारासे पृ॰ ३८ पं॰ १६)

"सुल्लभ बोधी जीवड़ा, मांडे निज पटकर्म।
साधु जन मुख मोंपती, वांधी है जिन-धर्म ॥१॥"
(मुनिलब्धिविजयकृते हरिवलमच्छीरासे पृ॰ ७३ दोहा ५)

और भी कहा है—

" मुखे बांधी ते मुंहपती, हेठे पाटो धारी।
अति हेठी दाढी थई, जोतर गले निवारी ॥१॥
एक काने धज सम कही, खंधे पछेडी ठाम।
केडे खोसी कोथली, नावे पुण्यने काम" ॥२॥
(श्रावक-ऋषभदास-कृत हितशिक्षारासे पृ॰ ३८ पं १६)
" सुलभ-बोधी जीवडा, मांडे निज षट-कर्म।
साधुजन मुख मोंपती बांधी है जिन-धर्म" ॥१॥
(हरिवलमच्छीरास-मुनिलब्धिविजयकृत पृ॰ ७३ दोहा ५)

વળી કહ્યું છે કે—

"મુખે બાંધી તે મુંહપતી હેઠે પાટો ધારી,
અતિ હેઠી દાઢી થઇ જોતર ગળે નિવારી. (૧)
એક કાને ધજ સમ કહી, ખંધે પછેડી ઠામ,
કેડે ખોસી કોથળી, નાવે પુણ્યને કામ" (૨)
(શ્રાવક-ઋષભદાસ-કૃત 'હિત-શિક્ષા-રાસ'
પૃષ્ઠ ૩૮ પં. ૧૬)

"સુલભ બોધી જીવડા, માંડે નિજ ષટ્-કર્મ.
સાધુ જન મુખ મોંપતી બાંધી હૈ જિન-ધર્મ" (૧)
(હરિબલ-મચ્છી-રાસ-મુનિ લબ્ધિવિજય કૃત
પૃષ્ઠ ૭૩, દોહા ૫)

ननु भाषणसमये हस्तेनापि वस्त्रमादाय मुखाच्छादने उक्तजीवरक्षा निर्वहति किमन्यदापि मुखवस्त्रिकाबन्धनेन ? इति चेदुच्यते—

न केवलं भाषणसमय एव जीवविराधनासंभवः, यतो हस्तेन वस्त्रमादाय मुखाच्छादने जीवरक्षा संभवेत्, किन्तु दीर्घश्वासनिःश्वासाभ्यां, जृम्भातः, स्वभावादकस्मादपि च, तथा निद्रावस्थायां मुखव्यादानाच्च तत्सम्भव इति न हस्तेन मुखोपरि वस्त्रं धारयन्तः सम्यग् जीवरक्षां सर्वदा कर्त्तुं प्रभवन्ति, वस्त्रेण मुखमाच्छाद्य प्रसुप्तस्यापि निद्रायां पार्श्वपरिवर्त्तनेन वस्त्रापसरणे सति क उपायस्तदानीं सूक्ष्म-

यहाँ यह आशङ्का की जा सकती है कि जब बोलनेका काम पडे तब हाथमें कपडा लेकर मुँह ढँक लेनेसे वायुकाय आदि जीवोंकी रक्षा हो सकती है, जब बोलते नहीं उस समय भी मुखवस्त्रिका बांध रखनेसे क्या लाभ है ?

इसका उत्तर यह है कि केवल बोलते समय ही मुखसे हवा नहीं निकलती जिससे हाथमें वस्त्र लेकर मुँह ढँक लेनेसे जीवोंकी रक्षा हो जाय। किन्तु दीर्घ श्वासोच्छ्वास लेनेसे, जंभाई लेनेसे, स्वभावसे, अकस्मात्, तथा निद्रावस्था में मुख खुला रहनेसे भी हवा निकलती है। अतएव मुख पर हाथसे वस्त्र लगानेसे जीवोंकी सम्यक् प्रकार सर्वदा रक्षा नहीं हो सकती। वस्त्रसे मुँह ढाँक कर सोया हुवा व्यक्ति नींद में करवट (पसवाडा) बदलता है तब वस्त्र खिसक जाता है। उस समय सूक्ष्म,

અહીં એવી આશંકા કરી શકાય છે કે જ્યારે બોલવાનું કામ પડે ત્યારે હાથમાં કપડું લઈને મ્હોં ઢાંકી લેવાથી વાયુકાય આદિ જીવોની રક્ષા થઇ શકે છે. જ્યારે બોલતા ન હોઇએ, ત્યારે પણ મુખવસ્ત્રિકા બાંધી રાખવાથી શો લાભ છે ?

એનો ઉત્તર એ છે કે કેવળ બોલતી વખતે જ મુખમાંથી હવા નીકળતી નથી કે જેથી હાથમાં વસ્ત્ર લઇને મ્હોં ઢાંકી લેવાથી જીવોની રક્ષા થઇ જાય. કિન્તુ દીર્ઘ શ્વાસોચ્છ્વાસ લેવાથી, બગાસું ખાવાથી, સ્વભાવથી, અકસ્માત તથા નિદ્રાવસ્થામાં મ્હોં ખુલ્લું રહેવાથી પણ હવા નીકળે છે. તેથી મ્હોં પર હાથ વડે વસ્ત્ર લગાડવાથી જીવોની સમ્યક્ પ્રકારે સર્વદા રક્ષા થઇ શકતી નથી. વસ્ત્રથી મ્હોં ઢાંકીને સૂતેલી વ્યક્તિ ઉંઘમાં જ્યારે પાસું બદલાવે છે ત્યારે વસ્ત્ર ખસી

व्यापिसम्पातिमजीवसचित्तरजःप्रवेशवारणार्थं दीर्घोष्णनिःश्वासोच्छ्वासजनित-वायुकायविराधनापरिहारार्थं च ।

तथा चोक्तं योगशास्त्रे तृतीयप्रकाशे सप्ताशीतितमश्लोकस्य स्वोपज्ञविवरणे हेमचन्द्राचार्येण—

"मुखवस्त्रमपि सम्पातिमजीवरक्षणादुष्णमुखवातविराध्यमानवाह्य-वायुकायजीवरक्षणान्मुखे धूलिप्रवेशरक्षणाच्चोपयोगी"ति ।

तथा चोत्तराध्ययनसूत्रे तृतीयाध्ययने श्रीलक्ष्मीवल्लभीयायां नवमगाथा-व्याख्यायां सप्तमनिह्नवोदाहरणेऽपि—

"तथा सम्पातिमाः सत्त्वाः, सूक्ष्माश्च व्यापिनोऽपरे ।
तेषां रक्षानिमित्तं च, विज्ञेया मुखवस्त्रिका ॥१॥" इति ।

व्यापी और संपातिम जीव तथा सचित्त रज आदि मुखमें जानेसे कैसे रुक सकते हैं ?, तथा दीर्घश्वासोच्छ्वाससे होनेवाली वायुकायकी विराधना का क्योंकर परिहार हो सकता है ? इन्हें रोकने का उपाय ही क्या है ? हेमचन्द्राचार्य कहते हैं "मुखवस्त्र०" इत्यादि—

अर्थात् "मुखवस्त्र, संपातिम जीवोंकी रक्षा करता है, मुख से निकलने वाले उष्ण वायु द्वारा विराधित होनेवाले बाह्य वायुकायके जीवोंकी रक्षा करता है, तथा मुँहमें धूली नहीं घुसने देता, इसलिये वह उपयोगी है।"

उत्तराध्ययन सूत्र के तीसरे उद्देशकी टीकामें कहा है—"सन्ति०" इत्यादि,

अर्थात् "संपातिम, सूक्ष्म और व्यापी जीवोंकी रक्षाके लिये मुख-

જાય છે. તે સમયે સૂક્ષ્મ, વ્યાપિ અને સંપાતિમ જીવ તથા સચિત્ત રજ આદિ મુખમાં જવાથી કેવી રીતે રોકાઇ શકે ? તથા દીર્ઘ શ્વાસોચ્છ્વાસથી થનારી વાયુકાયની વિરાધનાનો કેવી રીતે પરિહાર થઇ શકે ? તેને રોકવાનો ઉપાય જ શો છે ? હેમચંદ્રાચાર્ય કહે છે કે "મુખવસ્ત્ર૦" ઇત્યાદિ.

અર્થાત્–મુખવસ્ત્ર સંપાતિમ જીવોની રક્ષા કરે છે, મુખથી નીકળતા ઉષ્ણ વાયુ દ્વારા વિરાધિત થતા વાયુકાયના જીવોની રક્ષા કરે છે, તથા મુખમા ધૂળ પેસવા દેતું નથી, તેથી તે ઉપયોગી છે."

ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રના ત્રીજા ઉદ્દેશની ટીકામાં કહ્યું છે કે "સન્તિ" ઇત્યાદિ અર્થાત્–"સંપાતિમ, સૂક્ષ્મ અને વ્યાપી જીવોની રક્ષાને માટે મુખવસ્ત્રિકા

ओघनिर्युक्तौ द्वादशाधिकसप्तशततम (७१२)–गाथाऽप्येवमेव बोधयति–

" संपातिमरयरेणू,–पमज्जणट्ठा वयंति मुहपत्तिं ।
नासं मुहं च बंधइ, तीए वसहिं पमज्जंतो ॥ ७१२ ॥"

" संपातिमरजोरेणुप्रमार्जनार्थं वदन्ति मुखपत्रीम् ।
नासिकां मुखं च बध्नाति, तया वसतिं प्रमार्जयन् ॥७१२॥

इति संस्कृतम् ।

वसतिं प्रमार्जयता घ्राणे मुखे चैतद्द्वयेऽपि मुखवस्त्रिका बन्धनीया, अन्यदा मुख एवेत्याशयः, अन्यथा भगवतीसूत्राद्यनेकागमविरोधापत्तिर्दुर्वारा स्यात् ।

एवमेव प्रवचनसारोद्धारे त्रयोविंशत्यधिकपञ्चशततमगाथा विद्यते, तथा प्रकरणरत्नाकरस्यापि तृतीयभागे, उत्तराध्ययनसूत्रस्य कमलसंयमोपा-

---

वस्त्रिका समझनी चाहिये" ॥१॥

ओघनिर्युक्ति ७१२ वीं गाथामें कहा है–" संपातिम० " इत्यादि । अर्थात् "संपातिम जीव, सचित्त रज तथा रेणुकी रक्षा करनेके लिये मुखवस्त्रिका का कथन करते हैं । और जब वसतिकी प्रमार्जना करे तब नाक और मुख दोनों बांधे ।"

अर्थात् अन्य समयमें सिर्फ मुखही बांधे, यह तात्पर्य हुआ, अन्यथा भगवतीसूत्र आदि अनेक आगमोंका विरोध अनिवार्य होगा ।

इसीप्रकार प्रवचनसारोद्धारकी ५२३ वीं गाथामें कहा है । तथा प्रकरणरत्नाकरके तीसरे भागमें, फिर उत्तराध्ययनसूत्रकी कमलसंयमो-

---

સમજવી જોઇએ " (૧)

ઓઘનિર્યુક્તિ ૭૧૨ મી ગાથામાં કહ્યું છે કે–संपातिम० ઇત્યાદિ અર્થાત્– " સંપાતિમ જીવ, સચિત્ત રજ, તથા રેણુની રક્ષા કરવાને માટે મુખવસ્ત્રિકાનું કથન કરે છે. અને જ્યારે વસતિની પ્રમાર્જના કરે ત્યારે નાક અને મુખ બેઉ બાંધે "

અર્થાત્–અન્ય સમયમાં સિર્ફ મુખજ બાંધે, એ તાત્પર્યાર્થ થયું, અગર એવું અર્થ નહીં કરવામાં આવે તો ભગવતીસૂત્ર આદિ અનેક આગમોનો વિરોધ અનિવાર્ય આવશે.

એવીજ રીતે પ્રવચનસારોદ્ધારની ૫૨૩ મી ગાથામાં કહ્યું છે તથા પ્રકરણ-રત્નાકરના ત્રીજા ભાગમાં, અને ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રની કમલસંયમોપાધ્યાયરચિત

ध्यायविरचित-सर्वार्थसिद्धि-टीकायां तृतीयाध्ययनेऽप्येवमेव । एवं विशेषावश्यकबृहद्वृत्तावप्युक्तम् ।

किञ्चाऽऽगमविरोधोऽपि तेषां (अबद्धमुखवस्त्रिकाणां) दुर्वार एव, तथाहि –भगवतीसूत्रे द्वितीयशतकस्य प्रथमोद्देशके स्कन्दकानगारस्यानशनकाले 'नमोत्थु णं' पाठविधौ—

"पुरत्थाभिमुहे संपलियंकनिसण्णे करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी" इत्याद्युक्तम्,

तत्राञ्जलिबद्धस्य करद्वयस्य शिरसि स्थापने पद्मासनसंस्थः स्कन्दकोऽनगारः कथं तन्मते 'नमोत्थु णं' पाठमनावृतमुखेन व्यधात्। अनावृतमुखेन हि मुनयो न भाषन्ते, तथाविधभाषणस्याऽऽगमप्रतिषिद्धत्वात् ।

पाध्यायरचित सर्वार्थसिद्धि नामकी तीसरे अध्ययनकी टीकामें भी इसी प्रकार कहा है और ऐसेही विशेषावश्यक बृहद्वृत्तिमें भी कहा है।

जो मुख पर मुखवस्त्रिका नहीं बांधते, उनके मतमें आगम–विरोध अनिवार्य है। भगवतीसूत्र २ श०, १ उ० में स्कन्दक अनगारके अनशन समय में 'नमोत्थु णं' के पाठकी विधिमें कहा है–"पुरत्था०" इत्यादि।

इसमें विचारणीय विषय यह है कि अञ्जलि बांध कर दोनों हाथ सिर पर धर कर पद्मासन लगाकर पूर्व दिशाकी ओर मुख करके बैठे हुवे स्कन्दक अनगारने 'नमोत्थु णं' पाठ खुले मुखसे कैसे उच्चारण किया, क्योंकि दोनों हाथ सिर पर रखे हुए थे। और खुले मुखसे तो मुनि बोलते नहीं, क्योंकि ऐसा बोलना तो शास्त्रसे निषिद्ध है।

सर्वार्थ–सिद्धि नामनी त्रीजा अध्ययननी टीकामां पण એવું જ કહ્યું છે, એવીજ રીતે વિશેષાવશ્યક બૃહદ્‌વૃત્તિમાં પણ કહ્યું છે

જેઓ મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાંધતા નથી, તેમના મતમાં આગમ–વિરોધ અનિવાર્ય છે. ભગવતીસૂત્ર ૨ શ ૧ ઉ. માં સ્કંદક અનગારના અનશન સમયમાં 'नमोत्थु णं' ના પાઠની વિધિમાં કહ્યુ છે–"पुरत्था०" ઇત્યાદિ.

એમાં વિચારણીય વિષય એ છે કે અંજલિ બાંધીને, બેઉ હાથ શિર પર ધારણ કરીને, પદ્માસન લગાવીને, પૂર્વ દિશા તરફ મુખ કરીને બેઠેલા સ્કંદક અનગારે 'नमोत्थु णं' પાઠનું ખુલ્લા મુખે કેવી રીતે ઉચ્ચારણ કર્યું ? કેમકે બેઉ હાથ માથા પર રાખેલા હતા. અને ખુલ્લે મુખે તો મુનિ બોલે નહિ, કારણ કે એમ બોલવું શાસ્ત્રથી નિષિદ્ધ છે.

किञ्च–अन्तकृद्दशाङ्गषष्ठे वर्गेऽतिमुक्ताख्ये पञ्चदशाध्ययने—

" तए णं अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी–एह णं भंते ! तुब्भे जाणं अहं तुब्भं भिक्खं दवावेमि त्ति कट्टु भगवं गोयमं अंगुलीए गेण्हइ, गिण्हित्ता जेणेव सए गेहे तेणेव उवागए " इत्यभिहितम् ।

तत्र भिक्षाचर्यां गतस्य गौतमस्वामिनो भिक्षापात्रधारणप्रतिबद्धैकहस्तावरुद्धत्वं सुतरामेव सिद्धम् । इतरस्य तु करस्याङ्गुलौ अतिमुक्तकुमारेण गृहीतायां सत्यां तस्य भगवतो गौतमस्वामिनो हस्तेन मुखोपरि मुखवस्त्रिकाधारणं नोपपद्यते, सूक्ष्मव्यापिसम्पातिमजीवसचित्तरजःप्रवेशादिवारणाय तदानीमपि मुखवस्त्रिका-धारणमावश्यकमेव ।

किञ्चावश्यके ' इच्छामि खमासमणो ! वंदिउं ' इत्यादि–क्षमाश्रमण-

---

अन्तकृतदशाङ्गके ६ वर्गमें 'अतिमुक्त' शीर्षक पन्द्रहवें अध्ययनमें कहा है–" तए णं इत्यादि ।

इस कथनसे भिक्षाचरी (गोचरी) के लिए गये हुवे गौतमस्वामीने हाथमें भिक्षाका पात्र लिया था, यह बात स्वयं सिद्ध है और दूसरे हाथ की अंगुली अतिमुक्त कुमारने पकड़ ली थी। इस प्रकार जब दोनों हाथ गौतमस्वामीके रुंधे हुए थे तो मुखवस्त्रिका नहीं रही होगी ?। किन्तु सूक्ष्म, व्यापी, संपातिम जीव तथा सचित्त रजका प्रवेश रोकनेके लिए मुखवस्त्रिकाकी उस समय भी आवश्यकता थी।

आवश्यक सूत्रमें " इच्छामि खमासमणो ! वंदिउं " इत्यादि क्षमा-

અન્તકૃતદશાંગના ૬ વર્ગમાં 'अतिमुक्त' શીર્ષક પંદરમા અધ્યયનમાં કહ્યું છે 'तए णं' ઇત્યાદિ

આ કથન મુજબ ભિક્ષાચરી (ગોચરી) ને માટે ગએલા ગૌતમ સ્વામીએ હાથમાં ભિક્ષાનું પાત્ર લીધું હતું એ વાત સ્વયંસિદ્ધ છે અને બીજા હાથની આંગળી અતિમુક્ત કુમારે પકડી લીધી હતી એ પ્રકારે જો ગૌતમ સ્વામીના બેઉ હાથ રોકાઇ ગયા હતાં, તો તે વખતે હાથવડે મુખવસ્ત્રિકા મુખ પર કેવી રીતે રાખી હોય ? કિન્તુ સૂક્ષ્મ, વ્યાપી, સંપાતિમ જીવો તથા સચિત્ત રજનો પ્રવેશ રોકવાને માટે એ સમયે પણ મુખવસ્ત્રિકાની આવશ્યકતા હતી.

આવશ્યક–સૂત્રમાં 'इच्छामि खमासमणो वंदिउं' ઇત્યાદિ ક્ષમાશ્રમણુદાન

दानसूत्रस्य व्याख्यायां तट्टीकाकारेण हरिभद्रसूरिणाऽभिहितम्—

"अयं च प्रकृतसूत्रार्थः—अवग्रहाद्बहिःस्थितो विनेयोऽर्द्धावनतकायः करद्वय-गृहीतरजोहरणो वन्दनायोद्यत एवमाह—इच्छामि—अभिलषामि हे क्षमाश्रमण ! वन्दितुं नमस्कारं कर्त्तुं भवन्तमिति गम्यते" इत्यादि ।

अत्र 'करद्वयगृहीतरजोहरणः' इति विशेषणं कथयता हरिभद्रसूरिणा 'मुखोपरि मुखवस्त्रिकाबन्धनं भगवदभिमेत'मिति प्रकटीकृतम्, अन्यथा क्षमाश्रमण-सूत्रोच्चारणकाले करद्वयस्य रजोहरणग्रहणे प्रतिबद्धतया मुखोपरि मुखवस्त्रिका-स्थापनस्योपायान्तरासम्भवात् क्षमाश्रमणदानमेव निर्विषयं स्यात् । अनावृतमुखेन तु मुनीनां भाषणमेवाऽऽगमप्रतिषिद्धमिति नात्र केषाञ्चिद्विवादः ।

किञ्च क्षमाश्रमणदाने सम्बोधनशब्दप्रयोगे गुरोः स्वाभिमुखीकरणार्थं सवि-

---

श्रमणदान सूत्रकी व्याख्यामें व्याख्याकार हरिभद्रसूरिने भी कहा है—"अयं" इत्यादि,

यहाँ "दोनों हाथोंमें रजोहरण लेकर" ऐसा कहनेवाले हरिभद्रसूरिने यह प्रगट किया है कि मुख पर मुखवस्त्रिका बांधनेकी भगवानकी आज्ञा है। अन्यथा जब दोनों हाथोंमें रजोहरण ले लिया तब मुख पर मुख-वस्त्रिका धारण करनेके लिए अन्य उपाय असंभव है। और खुले मुख बोलनेसे क्षमाश्रमण देना ही व्यर्थ हो जायगा। साधुओंको खुले मुखसे बोलना शास्त्रविरुद्ध है, इस विषयमें किसीको विवाद नहीं है। दूसरी बात यह है कि क्षमाश्रमणदानमें 'हे क्षमाश्रमण!' इस सम्बोधनका प्रयोग किया है। इसलिए गुरुको अपनी ओर अभिमुख करनेके लिए

સૂત્રની વ્યાખ્યામાં વ્યાખ્યાકાર હરિભદ્રસૂરિએ પણ કહ્યું છે કે—'अयं' ઇત્યાદિ.

અહીં 'બેઉ હાથમાં રજોહરણ લઇને' એમ કહેતાં હરિભદ્રસૂરિએ એમ પ્રકટ કર્યું છે કે મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાંધવાની ભગવાનની આજ્ઞા છે. નહિ તો જો બેઉ હાથમાં રજોહરણ લઈ લીધો એટલે મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરવાને માટે અન્ય ઉપાય અસંભવિત છે, અને ખુલ્લે મુખે બોલવાથી ક્ષમા-શ્રમણ આપવાનું જ વ્યર્થ બની જાય સાધુઓએ ખુલ્લે મુખે બોલવું એ શાસ્ત્રવિરૂદ્ધ છે, એ સંબંધમાં તો કોઇનો વાંધો નથી બીજી વાત એ છે કે ક્ષમા-શ્રમણદાનમાં 'હે ક્ષમાશ્રમણ' એવો સંબોધનનો પ્રયોગ કહેલો છે. તેથી કરીને ગુરૂને પોતાની તરફ અભિમુખ કરવાને માટે વિશેષ–પ્રયત્ન–પૂર્વક સ્પષ્ટ

शेषप्रयत्नपूर्वकोच्चैःस्वरेण सुस्पष्टोच्चारणं विधेयमस्ति न त्वव्यक्तध्वनिनेत्युपायान्तरेण मुखावरणस्य कर्तुमशक्यतयोक्तजीवविराधना परिहर्तुमशक्यैव।

अन्यच्च तत्रैव क्षमाश्रमणदाने गुरुनिर्देशानन्तरम्–"अहोकायं, कायसंफासं" इत्यस्य व्याख्यायां तत्रैव हरिभद्रसूरिणा व्याख्यातं, तथाहि—

"ततः शिष्यो नैषेधिक्यां प्रविश्य गुरुपादान्तिकम्, निधाय तत्र रजोहरणम्, तत् (रजोहरणं) ललाटं च कराभ्यां संस्पृशन्निदं भणति–अधस्तात्कायः अधःकायः=पादलक्षणस्तमधःकायं प्रति कायेन=निजदेहेन संस्पर्शः=कायसंस्पर्शस्तं करोमि, एतच्चानुजानीते–"ति।

तत्र संमिलितकरद्वयेन रजोहरण–ललाटयोः संस्पर्शे सति 'अहोकायं, कायसंफासं' इत्यस्योच्चारणं मुखवस्त्रिकाबन्धनं विना नोपपद्यते, हस्तेन मुखोपरि मुखवस्त्रिकास्थापनं तदानीं न संभवति, हस्तद्वयस्यापि रजोहरणललाटसंस्पर्शप्रतिबद्धत्वात्।

अपि च–ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्रे चतुर्दशाध्ययने—

विशेषप्रयत्नपूर्वक स्पष्ट उच्चारण करनेकी आवश्यकता है। अव्यक्त भाषासे संबोधन करना संभव नहीं है। इस प्रकार जब दूसरे उपायसे मुख नहीं ढँका जा सका तो उल्लिखित जीवोंकी विराधना अनिवार्य है। इसके सिवाय इसी क्षमाश्रमणदानमें गुरुकी आज्ञाके अनन्तर "अहोकायं कायसंफासं" इसका उच्चारण मुखवस्त्रिका बांधे विना नहीं हो सकता और हाथसे मुख पर मुखवस्त्रिका धारण करना उस समय संभव नहीं है, क्योंकि दोनों हाथ रजोहरणको ग्रहण करके ललाटमें लगाये जाते हैं।

ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्रके चौदहवें अध्ययनमें कहा है-"तए णं" इत्यादि।

ઉચ્ચારણ કરવાની જરૂર છે. અવ્યક્ત ભાષાથી સંબોધન કરવાનો સંભવ નથી. એ રીતે જો બીજા ઉપાયથી મુખ નથી ઢાંકી શકાય તો ઉપર લખ્યા મુજબ જીવોની વિરાધના થયા વિના રહે નહિ એ ઉપરાંત એ ક્ષમાશ્રમણદાનમાં ગુરૂની આજ્ઞાની પછી 'अहोकायं, कायसंफासं' એનું ઉચ્ચારણ મુખવસ્ત્રિકા બાંધ્યા વિના થઇ શકતું નથી. અને એ સમયે હાથથી મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરવાનું સંભવિત નથી, કારણ કે બેઉ હાથ રજોહરણને ગ્રહણ કરીને કપાળે અડાડવાના હોય છે.

જ્ઞાતાધર્મકથાંગ સૂત્રના ચૌદમા અધ્યયનમાં કહ્યું છે કે– तए णं ઇત્યાદિ.

"तएणं ताओ अज्जाओ पोट्टिलाए एवं वुत्ताओ समाणीओ दोवि कन्ने ठाइंति, ठाइत्ता पोट्टिलं एवं वयासी-अम्हे णं देवाणुप्पिए! समणीओ निग्गंथीओ जाव गुत्तवंभयारिणीओ, नो खलु कप्पइ अम्हं एयप्पयारं कन्नेहिवि निसामित्तए किमंग पुण उवदिसित्तए वा" इत्याद्युक्तम्।

पोट्टिलया भिक्षार्थं स्वगृहमनुप्रविष्टासु साध्वीषु काचित् पतिं वशीकर्त्तुं चूर्णयोग-मन्त्रयोगादिकानुपायान् पृष्टा सती कर्णौ पिधाय प्रोवाच-हे देवानुप्रिये! वयं श्रमण्यो निर्ग्रन्थ्यो यावद् गुप्तब्रह्मचारिण्यः स्मः, नो खलु कल्पते अस्माकमेतत्प्रकारं कर्णाभ्यामपि निशामयितुं किमङ्ग पुनरुपदेष्टुमित्यर्थः।

लोके हि अनुचितवार्त्ताश्रवणसमये झटिति कर्णपिधानं हस्ताभ्यामेव विधीयमानं दृश्यते तस्मात् साध्व्या हस्ताभ्यां कर्णौ पिधाय प्रतिवचनदाने मुखवस्त्रिकाधारणं बन्धनं विना नोपपद्यते, तदभावे वायुकायादिजीवविराधनाऽवश्यम्भाविनी।

अर्थात्-"पोट्टिलाके घरमें साध्वियाँ भिक्षाके लिए गईं। उसने अपने पतिको वश करनेके लिए एक साध्वीसे चूर्णयोग और मंत्रयोग आदि उपाय पूछे। तब साध्वीने तत्काल दोनों कान मूंद कर कहा-हे देवानुप्रिये! हम निर्ग्रन्थ आर्यिका हैं यावत् गुप्तब्रह्मचारिणी हैं। ऐसी बात सुनना भी हमें नहीं कल्पता तो उपदेश देनेकी बात ही क्या है?"

अनुचित बात सुनते समय लोकमें भी झटपट हाथोंसे कान मूंदना देखा जाता है। ऐसी हालतमें दोनों हाथोंसे दोनों कान मूंद लेने पर विना मुखवस्त्रिका बांधे उत्तर देना युक्त नहीं हो सकता। यदि मुखवस्त्रिका के बांधे बिना उत्तर दिया तो वायुकाय आदि जीवोंकी विराधना अवश्य हुई।

અર્થાત્-"પોટ્ટિલાના ઘરમાં સાધ્વીઓ ભિક્ષાને માટે ગઈ. તેણે પોતાના પતિને વશ કરવાને માટે એક સાધ્વીને ચૂર્ણયોગ અને મંત્રયોગ આદિ ઉપાયો પૂછયા, ત્યારે સાધ્વીએ તત્કાળ બેઉ કાને હાથ મૂકીને કહ્યુ-હે દેવાનુપ્રિયે! અમે નિર્ગ્રંથ આર્યિકા છીએ તેમજ યાવત્ ગુપ્તબ્રહ્મચારિણી છીએ. આવી વાત સાંભળવી પણ અમને કલ્પતી નથી તો પછી ઉપદેશ આપવાની તો વાત જ શી?"

અનુચિત વાત સાંભળતી વખતે લોકોમાં પણ ઝટપટ હાથથી કાન ઢાંકવામાં આવે એવું જોવામાં આવે છે એવી હાલતમાં બેઉ હાથથી બેઉ કાન ઢાંકી લેતાં, મુખવસ્ત્રિકા બાંધ્યા વિના ઉત્તર આપવો યુકત નથી હોતો જો મુખવસ્ત્રિકા બાધ્યા વિના ઉત્તર આપવામાં આવે તો વાયુકાય આદિ જીવોની વિરાધના અવશ્ય થાય.

किञ्च–मुखवस्त्रिकाबन्धनमन्तरेण षट्कायविराधना दुष्परिहार्या, तथाहि–मुखे सूक्ष्मसचित्तरजःप्रवेशेन पृथिवीकायस्य, वृष्ट्यादिवशात्सचित्तजलकणानामाकस्मिकनिपातेन धूमिकायाः प्रवेशेन चाऽप्कायस्य, तथा यत्र कुत्रापि स्फुलिङ्गा उत्पतन्ति तत्राऽऽकस्मिकसूक्ष्मस्फुलिङ्गनिपातेन तेजस्कायस्य, मुखस्योष्णश्वासनिःश्वासाभ्यां बाह्यवायुकायस्य, 'जत्थ जलं तत्थ वणं' इतिप्रामाण्याज्जलनान्तरीयकतया मुखे सचित्तजलविन्दुनिपातेनैव वनस्पतिकायस्यापि, तथा सम्पातिम–व्यापि–सूक्ष्म–जीवसम्पातेन त्रसकायस्य विराधना भवतीति।

किञ्च मुखवस्त्रिकाबन्धने प्रमादवतः षट्कायविराधना दुर्वारा, यतः प्रति-

---

मुखवस्त्रिकाके बांधे विना षट्कायकी विराधनाका परिहार नहीं हो सकता। मुखमें सूक्ष्म सचित्त रजका प्रवेश होनेसे पृथ्वीकायकी विराधना होती है। बरसा होने पर सचित्त जलकणोंके अकस्मात् ही मुखमें चले जानेसे अथवा मुखमें धूँअर के चले जाने से अप्कायकी विराधना होती है। इधर–उधर उड़नेवाली अग्निकी चिनगारी कदाचित् मुखमें घुस जाय तो तेजस्कायकी हिंसा होती है। मुखसे निकलती हुई गर्म सांससे बाह्य वायुकायकी विराधना होती है। 'जहाँ अप्काय है वहाँ वनस्पतिकाय भी होता है" (जत्थ जलं तत्थ वणं) इस प्रमाणसे मुखमें सचित्त जल गिरनेसे ही वनस्पति कायकी विराधना होती है। तथा संपातिम, व्यापी और सूक्ष्म जीवोंके घुसनेसे त्रसकायकी भी विराधना होती है।

मुखवस्त्रिकाके बांधनेमें जो साधु प्रमादी होता है उसको षट्कायकी

મુખવસ્ત્રિકા બાંધ્યા વિના ષટ્કાયની વિરાધનાનો પરિહાર નથી થઈ શકતો. મુખમાં સૂક્ષ્મ સચિત્ત રજનો પ્રવેશ થવાથી પૃથ્વીકાયની વિરાધના થાય છે (૧). વરસાદ પડતાં સચિત્ત જલકણો અકસ્માત્ મુખમાં જવાથી અથવા મોઢામાં ઝાકળ જવાથી અપ્કાયની વિરાધના થાય છે (૨). અહીં–તહીં ઉડતી અગ્નિની ચિણગારી કદાચ મુખમાં પેસી જાય તો તેજસ્કાયની હિંસા થાય છે (૩) મુખમાથી નીકળતા ગરમ શ્વાસથી બાહ્ય વાયુકાયની વિરાધના થાય છે (૪) જ્યા અપ્કાય છે ત્યાં વનસ્પતિકાય પણ હોય છે' (जत्थ जलं तत्थ वणं) એ પ્રમાણથી મુખમાં સચિત્ત જલ પડવાથી વનસ્પતિકાયની પણ વિરાધના થાય છે (૫) તથા સંપાતિમ, વ્યાપી અને સૂક્ષ્મ જીવો પેસી જવાથી ત્રસકાયની પણ વિરાધના થાય છે (૬).

મુખવસ્ત્રિકા બાંધવામાં જે સાધુ પ્રમાદી હોય છે તેને ષટ્કાયની વિરાધના

लेखनकालेऽन्यस्मै तत्प्रत्याख्यानदानेऽपि प्रतिलेखनोपयोगाभावेन प्रमाद-दोषाविष्टः सन् षट्कायविराधको भवतीति भगवतोत्तराध्ययनसूत्रे प्रतिपादितम्, तथाहि—

"पडिलेहणं कुणंतो, मिहो कहं कुणइ जणवयकहं वा।
देइ व पच्चक्खाणं वाएइ सयं पडिच्छइ वा ॥ १ ॥

पुढवी-आउक्काए, तेऊ-वाऊ-वणस्सइ-तसाणं।
पडिलेहणापमत्तो, छण्हपि विराहओ होइ ॥ १ ॥" इति।

तर्हि का वार्त्ता ये मुखवस्त्रिकाबन्धनमन्तरेण तिष्ठन्ति तेषां प्रमाददोषस्त-ज्जनितषट्कायविराधना नापतेत्? आगमे हि मुखवस्त्रिकाबन्धनपरित्यागे दोष-बाहुल्यं प्रदर्शितं तच्च प्रागेव प्रतिपादितम्।

इत्थं च यथा नौकादौ सूक्ष्मेऽपि सुषिरे सति नद्यादौ तन्निमज्जनान्महती

विराधना अवश्य लगेगी क्योंकि भगवानने उत्तराध्ययनसूत्रमें कहा है कि-"प्रतिलेखन करनेमें जो साधु प्रमादी है तथा प्रतिलेखनके समय साधु परस्पर बातें करे, जनपद आदिकी कथा करे, पचक्खाण देवे, बांचे अथवा बंचावे तो वह षट्कायका विराधक होता है" तो जो मुखवस्त्रिका बांधे विना रहते हैं उनको प्रमाद-दोष तथा प्रमादजन्य षट्कायकी विरा-धनाका दोष कैसे नहीं लगेगा? अर्थात् जरूर लगेगा। मुखवस्त्रिकाके नहीं बांधनेमें आगमोंमें जो बहुतसे दोष कहे हैं वे तो पहले प्रतिपादित कर ही चुके हैं।

इस प्रकार जैसे नावमें छोटासा छेद होनेपर नदी आदिमें डूब जानेसे

અવશ્ય થાય છે કેમકે ભગવાને ઉત્તરાધ્યયનસૂત્રમાં કહ્યું છે કે-" પ્રતિલેખન કરતી વખતે જો સાધુ પરસ્પર વાર્ત્તાલાપ કરે, દેશકથા આદિ કથા કરે, પચક્ખાણ કરાવે, પોતે વાંચે અને વંચાવે તો તે ષટ્કાયનો વિરાધક થાય છે" જો એમ છે તો જે મુખવસ્ત્રિકા બાંધ્યા વગર રહે છે તેને પ્રમાદદોષ અને પ્રમાદજન્ય ષટ્કાયની વિરાધનાનો દોષ કેમ નહી લાગે? અર્થાત્ અવશ્ય લાગે. મુખવસ્ત્રિકા નહીં બાંધવામાં આગમોમાં દોષ બતાવ્યા છે તે તો પહેલાં કહી ચુકયા છીએ

એ પ્રકારે જેમ નાવમાં નાનું છિદ્ર પડવાથી તે નદી આદિમાં ડૂબી

किञ्च विधिमपाग्रन्थे चारित्रातिचारप्रायश्चित्ताधिकारे मुखवस्त्रिकामन्तरेण भाषणनिषेधः प्रतिपादितः ।

किञ्च पूर्वोक्तदिशा षट्कायविराधकस्य तद्विराधनावर्जनपरकभगवदाज्ञाभङ्ग-दोषप्रसङ्गः ।

तथा च सति अविधिविधानं, ततो मिथ्यात्वं, तस्माच्चारित्रविराधना, ततश्च दीर्घसंसारित्वं प्रपद्येत, अत एवाऽऽज्ञाभङ्गकर्त्तुर्गुरुतरप्रायश्चित्तं प्रदर्शितम् ।

उक्तं हि बृहत्कल्पभाष्ये—

" अवराहे लहुगयरो, आणाभंगंमि गुरुतरो किहणु ? ।
आणाए चिय चरणं, तब्भंगे किं न भग्गं तु ? ॥१॥" इति।

सर्वमेव चारित्रं भगवदाज्ञायामेव व्यवस्थितम्, अतस्तद्भङ्गे मूलोत्तरगुणादिकं वस्तु किं न भग्नम्? अपि तु सर्वमपि भग्नमिति हेतोस्तत्र गुरुतरप्रायश्चित्तं युक्तमे-

---

फिर 'विधिप्रपा' नामके ग्रन्थमें भी चारित्रके अतिचारोंका प्रायश्चित्त कहते समय मुखवस्त्रिकाके विना बोलनेका स्पष्ट निषेध किया गया है ।

तथा—पूर्वोक्त रीतिसे षट्कायकी विराधना करनेवालेको भगवान्‌की "षट्कायकी विराधनाका त्याग करना" इस आज्ञाके भंग करनेका दोष लगता है । यह दोष लगनेसे अविधिका विधान, अविधिका विधान करनेसे मिथ्यात्व, मिथ्यात्वसे चारित्रकी विराधना और चारित्रकी विराधनासे दीर्घसंसारित्वकी प्राप्ति होती है । इसीसे आज्ञाभंगका गुरुतर प्रायश्चित्त लगता है ।

बृहत्कल्पभाष्यमें कहा है–"अवराहे" इत्यादि,

समस्त चारित्र भगवान्‌की आज्ञामें ही है । भगवान्‌की आज्ञाका भंग होने पर मूलगुण उत्तरगुण आदि सभी नष्ट हो जाते हैं । अतः

વળી 'વિધિપ્રપા' નામના ગ્રન્થમાં પણ ચારિત્રનાં અતિચારોની શુદ્ધિના પ્રકરણમાં મુખવસ્ત્રિકા વગર બોલવાનો નિષેધ કર્યો છે !

તથા—પૂર્વોક્ત રીતિથી ષટ્કાયની વિરાધના કરનારને ભગવાનની "ષટ્કાયની વિરાધનાનો ત્યાગ કરવો" આ આજ્ઞાનો ભંગ કરવાનો દોષ લાગે છે આ દોષ લાગવાથી અવિધિનું વિધાન, અવિધિ–વિધાનથી મિથ્યાત્વ, મિથ્યાત્વથી ચારિત્રની વિરાધના અને ચારિત્રની વિરાધનાથી દીર્ઘસંસારિત્વની પ્રાપ્તિ થાય છે. એથી આજ્ઞાભંગનું ગુરુતર પ્રાયશ્ચિત્ત લાગે છે

બૃહત્કલ્પભાષ્યમાં કહ્યું છે– 'अवराहे' ઇત્યાદિ.

સમસ્ત ચારિત્ર ભગવાનની આજ્ઞામાં જ રહેલું છે. ભગવાનની આજ્ઞાનો ભંગ થવાથી મૂળગુણ ઉત્તરગુણ આદિ બધું નષ્ટ થઈ જાય છે. તેથી આજ્ઞા-

वेति भावः। तस्मात्–मुखोपरि मुखवस्त्रिकाबन्धनं सकलजैनागमप्रतिपाद्यमिति सिद्धम्। एवं च भगवतीसूत्रे 'सुहुमकायं अणिज्जूहित्ताणं' इति वाक्यस्य सूक्ष्मकायं=मुखवस्त्रिकाम् 'अणिज्जूहित्ता'=अपोह्य परित्यज्य=अबद्ध्वेत्यर्थो बोध्यः, एवमन्यत्राऽप्यूहनीयम्।

यत्तु–आचाराङ्गसूत्रे उच्छ्वासादिकाले मुखपिधानोपदेशेन मुखवस्त्रिका करेणैव धारणीया न तु दोरकेणेति तत्तत्समये एव मुखवस्त्रिकया घ्राणमुखादिपिधानं विधेयमिति च प्रतीयते, दोरकावलम्बेन मुखवस्त्रिकायाः सदा धारणीयत्वे तु पुनर्मुखपिधानोपदेशो व्यर्थः स्यादिति वदन्ति तदज्ञानमूलम्। आचाराङ्ग–

आज्ञाभंगमें गुरुतर प्रायश्चित्त देना युक्त ही है। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि मुख पर मुखवस्त्रिका बांधना सब जैनशास्त्रोंमें प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार भगवती-सूत्रके 'सुहुमकायं अणिज्जूहित्ताणं' वाक्यका अर्थ यह समझना चाहिये कि 'मुखवस्त्रिकाका त्याग करके अर्थात् न बांध करके।' ऐसा सब जगह समझना चाहिए।

प्रश्न–आचाराङ्गसूत्रमें उच्छ्वास आदि लेते समय मुख ढँकने का उपदेश दिया है। इससे यह प्रतीत होता है कि मुखवस्त्रिका हाथमें ही रखनी चाहिए डोरेसे नहीं बाँधनी चाहिए; अमुक–अमुक समय पर ही जब उच्छ्वास आदि आवे तब ही नाक या मुख ढँक लेना चाहिए। डोरेसे मुखवस्त्रिका धारण करना उचित हो तो पुनः मुख ढंकनेका उपदेश व्यर्थ हो जायगा।

ભંગમાં ગુરુતર પ્રાયશ્ચિત્ત આવે છે એ રીતે સિદ્ધ થયું કે મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાંધવી એવું બધાં જૈનશાસ્ત્રોમાં પ્રતિપાદન કરેલું છે. એટલા માટે ભગવતી-સૂત્રના 'सुहुमकायं अणिज्जूहित्ताणं' એ વાકયનો અર્થ એમ સમજવો જોઈએ કે 'મુખવસ્ત્રિકાનો ત્યાગ કરીને અર્થાત્ ન બાંધીને' એજ પ્રમાણે બધી જગ્યાએ સમજવું

પ્રશ્ન–આચારાંગ–સૂત્રમાં ઉચ્છ્વાસ આદિ લેતી વખતે મુખ ઢાંકવાનો ઉપદેશ આપ્યો છે. એથી એમ પ્રતીત થાય છે કે મુખવસ્ત્રિકા હાથમાં જ રાખવી જોઈએ, દોરાથી બાંધવી જોઈએ નહિ. અમુક અમુક સમયે જ જ્યારે ઉચ્છ્વાસ આદિ આવે ત્યારે જ નાક યા મુખ ઢાંકી લેવું જોઈએ, દોરાથી મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરવી ઉચિત હોય તો પછી પુનઃ મુખ ઢાંકવાનો ઉપદેશ વ્યર્થ થઈ જશે.

सूत्रपाठो हि तावदेवं विद्यते—

"से भिक्खू वा २ उस्सासमाणे वा नीसासमाणे वा कासमाणे वा छीयमाणे वा जंभायमाणे वा उड्डोए वा वायनिसग्गं वा करेमाणे पुव्वामेव आसयं वा पोसयं वा पाणिणा परिपेहित्ता तओ संजयामेव ऊससिज्ज वा जाव वायनिसग्गं वा करेज्जा" (सूत्र १०९) इति।

छाया—"स भिक्षुर्वा२ उच्छ्वसन् वा, निःश्वसन् वा, कासमानः (कासं कुर्वन्) वा, क्षुवन् (क्षुतं कुर्वन्) वा, जृम्भमाणो वा, उद्गिरन् वा, ((अधिष्ठानेन) वातनिसर्गं वा कुर्वन् पूर्वमेव आस्यकं वा पोषकं वा पाणिना परिपिधाय ततः संयत एव उच्छ्वसेद् वा यावद् वातनिसर्गं वा कुर्यात्." इति संस्कृतम्।

अत्र "आसयं" इति लक्षणावृत्त्या घ्राणस्यापि बोधकम्, "उस्सासमाणे वा नीसासमाणे वा छीयमाणे वा" इति पदानि लक्षणायां तात्पर्यग्राहकाणि। 'आसयं' इत्यस्य मुखमात्रपरत्वे तु पाणिना तत्परिविधानेऽपि घ्राणजन्योच्छ्वा-

---

उत्तर—ऐसा प्रश्न करना अज्ञानता है। आचाराङ्ग सूत्रका पाठ ऐसा है—

"भिक्षु श्वासोच्छ्वास लेते समय, खांसते समय, छींकते समय, जंभाते समय, डकारते समय तथा अधोवायुका त्याग करते समय, पहले मुख अथवा मलद्वारको हाथसे ढँककर फिर यतनापूर्वक श्वास लेवे यावत् अधोवायुका त्याग करे"।

यहाँ 'आसयं' (मुख) पद लक्षणाके द्वारा घ्राणकाभी बोधक है। 'उस्सासमाणे वा निस्सासमाणे वा छीयमाणे वा' ये पद लक्षणामें तात्पर्यके ग्राही हैं। 'आसयं' पदसे केवल मुखका अर्थ लिया जाय तो हाथसे

ઉત્તર—એવો પ્રશ્ન કરવો અજ્ઞાનતા છે. આચારાંગ—સૂત્રનો પાઠ એવો છે—"ભિક્ષુ શ્વાસોચ્છ્વાસ લેતી વખતે, ઉધરસ ખાતી વખતે, છીંકતી વખતે, બગાસું ખાતી વખતે, ઓડકાર ખાતી વખતે તથા અધોવાયુનો ત્યાગ કરતી વખતે, પહેલાં મુખ અથવા મળદ્વારને હાથથી ઢાંકીને પછી યતનાપૂર્વક શ્વાસ લે યાવત્ અધોવાયુનો ત્યાગ કરે"

અહીં 'आसयं' (મુખ) શબ્દ લક્ષણાદ્વારા ઘ્રાણનો પણ બોધક છે 'उस्सासमाणे वा निस्सासमाणे वा छीयमाणे वा' એ પદો લક્ષણામાં તાત્પર્યનાં ગ્રાહી છે. आसयं શબ્દથી કેવળ મુખનો અર્થ લેવામાં આવે તો હાથથી મુખ ઢાંકી

सादियतनाया अनुपपत्तेः ।

अनेन सूत्रेण 'उच्छ्वासादिकाले आस्यकपोषकपरिपिधानं पाणिना विधेय' मिति बोधयतो भगवतस्तात्पर्यं मुखवस्त्रिकया पिधाने कल्पयन्तः पण्डिताभिमानिन एवमनुयोक्तव्याः–'पाणि' शब्दस्य मुखवस्त्रिकारूपोऽर्थः किं वाच्यो लक्ष्यो व्यङ्ग्यो वा ? । नाद्यः, अभिधाशक्तिग्राहकव्याकरणकोशादिभिरुक्तार्थालाभात्, 'पञ्च-शाखः शयः पाणि'–रित्यमरकोशव्याख्यायां पञ्च शाखा इवाङ्गुलयोऽस्येति पञ्चशाखः, शेतेऽस्मिन् सर्वमिति शयः, ('पुंसि' ३।३।१२१।) घः । पणाय-

---

मुख ढँक लेनेपर भी नाकसे निकलनेवाले उच्छ्वास आदिकी यतना नहीं हो सकती।

इस सूत्रसे 'उच्छ्वास लेते समय आस्यक और पोषक (मलद्वार)को हाथसे ढँक लेना चाहिए,' ऐसा भगवान् बताते हैं, फिरभी नामधारी पंडित 'मुखवस्त्रिकासे ढँकना चाहिए' ऐसा अर्थ निकालते हैं। उनसे हम पूछते हैं कि तुम हाथका अर्थ मुखवस्त्रिका करते हो सो वह अर्थ वाच्य है, या लक्ष्य है या व्यङ्ग्य है ?। पहला पक्ष तो ठीक नहीं है, क्योंकि अभिधा शक्तिके ग्राहक व्याकरण कोश आदिकोंमें यह अर्थ नहीं मिलता। अमरकोशमें हाथके तीन नाम दिये हैं–(१) पञ्चशाख (२) शय और (३) पाणि। व्याख्यामें बताया है कि शाखा जैसी पाँच अंगुलियाँ होती हैं इसलिए इसे पञ्चशाख कहते हैं। उसमें सब वस्तुएँ सोती (रखी जाती) हैं इसलिए शय कहते हैं। उससे सब लेनदेन

લેવા છતાં પણ નાકથી નીકળનાર ઉચ્છ્વાસ આદિની યતના થઇ શકતી નથી.

આ સૂત્રથી ઉચ્છ્વાસ લેતી વખતે આસ્યક અને પોષક (મલદ્વાર) ને હાથથી ઢાંકી લેવું જોઇએ એમ ભગવાન્ બતાવે છે, છતાં પણ નામધારી પંડિત 'મુખવસ્ત્રિકાથી ઢાંકવું જોઇએ' એવો અર્થ કાઢે છે. એમને અમે પૂછીએ છીએ કે તમે હાથનો અર્થ મુખવસ્ત્રિકા કરો છો, તો એ અર્થ વાચ્ય છે, યા લક્ષ્ય છે કે વ્યંગ્ય છે ? પહેલો પક્ષ તો બરાબર નથી કારણ કે અભિધા શક્તિના ગ્રાહક વ્યાકરણ કોશ આદિમાં એ અર્થ નથી મળતો અમરકોશમાં હાથનાં ત્રણ નામ આપ્યાં છે. (૧) પંચશાખ, (૨) શય અને (૩) પાણિ. વ્યાખ્યામાં બતાવ્યું છે કે શાખા જેવી પાંચ આંગળીઓ હોય છે તેથી તેને 'પંચશાખ' કહે છે. એમાં બધી વસ્તુઓ સૂએ (રાખવામાં આવે) છે તેથી તેને 'શય'

न्त्यनेनेति पाणिः 'पण व्यवहारे स्तुतौ च' इत्यस्मात् 'अशिपणाय्योरुड्डायलुकौ च' (उ० ४।१३३) इतीण्, 'आयप्रत्ययस्य लुक् चे'-ति व्युत्पादनेन तत्र करवाचकत्वस्यैव लाभाच्च ।

नापि द्वितीयः, मुख्यार्थकरकरणकपिधानतात्पर्यस्य निर्बाधेन तात्पर्यानुपपत्तिरूपलक्षणाबीजस्याभावात् ।

नापि तृतीयः, मुख्यार्थतात्पर्यकत्वेनैवककरेण पायुपिधानस्यापरकरेण मुखघ्राणपिधानस्य चोपपत्त्या व्यङ्ग्यार्थमुखवस्त्रिकातात्पर्यकत्वकल्पनाया अनावश्यकत्वात्, अनौचित्याच्च । वायुनिसर्गानन्तरं क्षुते जायमाने पायुनिर्गतवायु-

---

आदि व्यवहार होते हैं अतः उसे पाणि कहते हैं। "अशिपणाय्यो रुडायलुकौ च" (उ० ४।१३३) इस सूत्रसे 'इण्' होता है और 'आय' प्रत्ययका लुक् होता है । ऐसी व्युत्पत्ति करनेसे 'कर'का वाचक ही होता है ।

दूसरा भी पक्ष (लक्ष्य अर्थ मानना) ठीक नहीं है । लक्ष्य अर्थ वहाँ माना जाता है जहाँ मुख्य (शाब्दिक) अर्थ लेनेमें किसी प्रकारकी बाधा आती हो । यहाँ पर 'हाथसे ढँक कर' ऐसा अर्थ करनेमें कोई बाधा नहीं आती, इसलिए लक्षणा नहीं हो सकती, अतः यह लक्ष्य अर्थ भी नहीं है।

तीसरा (व्यङ्ग्य अर्थ मानना) भी पक्ष बाधित है । जब प्रधान अर्थ लेनेसे एक हाथसे मलद्वार ढँकना और दूसरे हाथसे नाक-मुखका ढँकना युक्त है तो व्यङ्ग्य अर्थ (मुखवस्त्रिकाके तात्पर्यकी कल्पना करना) अनावश्यक और अनुचित है । अधोवायु निकलते ही किसीको छींक आने

કહે છે. તે વડે બધો લેણદેણ વગેરેનો વહેવાર થાય છે તેથી એને 'પાણિ' કહે છે. अशिपणाय्यो रुडायलुकौ च (उ० ४ । १३३) એ સૂત્રથી इण् થાય છે અને आय પ્રત્યયનો लुक् થાય છે. એવી વ્યુત્પત્તિ કરવાથી कर નો વાચક જ બને છે.

બીજો પક્ષ પણ (લક્ષ્ય અર્થ માનવો) બરાબર નથી લક્ષ્ય અર્થ ત્યાં માનવામાં આવે છે કે જ્યાં મુખ્ય (શાબ્દિક) અર્થ લેવામાં કોઈ પ્રકારની બાધા આવે. અહીં 'હાથથી ઢાંકીને' એવો અર્થ કરવામાં કોઇ બાધા આવતી નથી, તેથી લક્ષણા થઇ શકતી નથી, એટલે એ લક્ષ્ય અર્થ પણ નથી.

ત્રીજો પક્ષ (વ્યગ્ય અર્થ માનવો) પણ બાધિત છે જ્યારે પ્રધાન અર્થ લેવાથી એક હાથથી મળદ્વાર ઢાકવું અને બીજા હાથે નાક-મુખને ઢાકવું યુક્ત છે તો વ્યગ્યાર્થ (મુખવસ્ત્રિકાના તાત્પર્યની કલ્પના કરવી) અનાવશ્યક અને અનુચિત છે અધોવાયુ નીકળતી વખતે જ કોઇને છીંક આવવા લાગે તો

संसृष्टया मुखवस्त्रिकया मुखघ्राणपिधानस्यानौचित्यमापामरमतीतमेव ।

पाणिशब्देऽजहल्लक्षणावृत्तिं स्वीकृत्य 'पाणिस्थितमुखवस्त्रिकये' त्यर्थकल्पनेऽपि नोक्तानौचित्यदोषनिस्तारः । अपिच–आस्यक-पोपकैतदुभयपरिपिधाने पाणिनेत्येकमेव साधनमुक्तं, तत्र पाणिस्थितमुखवस्त्रिकयेत्यर्थाङ्गीकारे दीर्घोच्छ्वासादीनामधोवायुनिसर्गस्य च यौगपद्ये सति कथमेकयैव पाणिस्थितया मुखवस्त्रिकया युगपदेव घ्राणं मुखं पायुश्चाऽऽवरीतुं शक्यत इति "पाणिणा परिपेहित्ता" इति भगवद्वाक्यस्यानुपपत्तिः। न च 'एकपाणिस्थितया मुखवस्त्रिकयाऽऽस्यकम्, अपरपा-

---

लगे तो उसी अधोवायुवासित मुखवस्त्रिकासे 'मुख' और नाक मूंदना बिलकुल अनुचित है और इस अनौचित्यको हरेक समझ सकता है ।

यदि 'पाणि' शब्दमें अजहल्लक्षणा वृत्ति मानकर 'पाणि' (हाथ) से पाणिमें स्थित मुखवस्त्रिका अर्थ लोगे तो भी अनौचित्य दोष नहीं हट सकता । दूसरी बात यह है कि मुख और मलद्वार ढँकनेका पाणिरूप एक ही साधन बताया है। यदि इसका अर्थ मुखवस्त्रिका किया जावे तो जब एक ही साथ अधोवायु और दीर्घ उच्छ्वास आवेगा तब एक ही मुखवस्त्रिका मलद्वार पर लगाई जावेगी या मुँहपर ? और यदि साथ ही छींक भी आयगी तो वही नाकमें कैसे लगाई जावेगी ? क्योंकि एक मुखवस्त्रिकासे एक साथ ही सब द्वार नहीं ढाँके जा सकते । अतः 'पाणिणा परिपेहित्ता' यह भगवान्का वचन ठीक नहीं बैठेगा । यदि ऐसा समाधान करना चाहो कि एक हाथकी मुँहपत्तीसे मुँह और दूसरे

એ અધોવાયુથી વાસિત મુખવસ્ત્રિકાથી મુખ અને નાક ઢાંકવાં એ બિલકુલ અનુચિત છે. અને એ અનૌચિત્યને સૌ કોઇ સમજી શકે છે

જો 'પાણિ' શબ્દમાં અજહલ્લક્ષણા વૃત્તિ માનીને, 'પાણિ' (હાથ) થી પાણિમાં સ્થિત મુખવસ્ત્રિકાનો અર્થ લેશો તોપણ અનૌચિત્ય દોષ દૂર થઇ શકતો નથી. બીજી વાત એ છે કે મુખ અને મળદ્વાર ઢાંકવાનું પાણિરૂપ એકજ સાધન બતાવ્યું છે. જો એનો અર્થ મુખવસ્ત્રિકા કરવામા આવે તો જ્યારે એકી સાથે અધોવાયુ અને દીર્ઘ ઉચ્છ્વાસ આવશે ત્યારે એક જ મુખવસ્ત્રિકા મળદ્વાર પર લગાડવામાં આવશે કે મુખ પર ? અને જો સાથે જ છીંક પણ આવશે તો તે નાક પર કેવી રીતે લગાડવામાં આવશે ? કારણ કે એક મુખવસ્ત્રિકાથી એકી સાથે બધાં દ્વાર ઢાંકી શકાતાં નથી તેથી 'पाणिणा परिपेहित्ता' એવું ભગવાનનું વચન બરાબર બંધ બેસશે નહિ. જો એવું સમાધાન કરવા ઇચ્છો કે એક હાથની

णिस्थितया पायुवस्त्रिकया पोषकं परिपिधाये' त्यर्थाङ्गीकारेण समाधानं सुशकमिति वाच्यम्, सकृदुच्चरितन्यायविरोधेन तादृशार्थकल्पनायाः कर्तुमशक्यत्वात्।

किञ्च तेषामयौगपद्येऽपि पायुपिधायकवस्त्रखण्डे मुखवस्त्रिकात्वकल्पनं परमभ्रान्तिमूलम्, मुखपाय्वोरैक्याभावात्। अनावृतस्यैव मुखादेरावरणे तात्पर्यसत्त्वे परिपिधायेत्यत्र परीत्युपसर्गप्रयोगस्याऽऽनर्थक्यापत्तिश्च, अपिपूर्वकादपि ल्यप्प्रत्ययसिद्धेः।

किञ्च-'आवृतस्य पुनरावरणं व्यर्थमेवेति हेतोरनावृतस्यैवाऽऽवरणार्थमयमुपदेशः' इति वदतस्तव हस्तवस्त्रिकाधारकस्य मते पोषकस्य परिधानवसनानावरणीय-

---

हाथके पायुवस्त्रसे मलद्वार ढक लेवेंगे, सो ठीक नहीं है। 'सकृदुच्चरितन्याय'से ऐसी कल्पना करना शक्य नहीं है।

अधोवायु और छींक आदि एक साथ न भी हों तो भी अधोवायुकी यतना करनेवाले वस्त्रको मुखवस्त्रिका कहना भारी भूल है, क्योंकि मुख और मलद्वार एक चीज नहीं हैं-दोनों अलग अलग हैं। यदि खुले मुख बोलनेका तात्पर्य हो तो 'परिपेहित्ता' पदमें 'परि' उपसर्ग व्यर्थ हो जायगा, क्योंकि 'अपि' उपसर्गपूर्वक धातुसे भी ल्यप् प्रत्यय होता है।

'ढँके हुएको फिर ढाँकना वृथा ही है, इसलिए वगैर ढँके हुए को ढँकनेके लिए यह उपदेश दिया है।'-यदि हाथमें मुँहपत्ति रखने वाले ऐसा कहेंगे तो यह सिद्ध हो जायगा कि उनका मलद्वार सदा अनावृत (उघड़ा हुआ) रहता है। नहीं तो आवृतको

મુહપત્તિથી મુખ અને બીજા હાથના પાયુવસ્ત્રથી મળદ્વાર ઢાકી લેવાશે, તો તે બરાબર નથી, કારણ કે सकृदुच्चरितन्यायથી એવી કલ્પના કરવી શકય નથી.

અધોવાયુ અને છીંક આદિ એકી સાથે ન હોય તોપણ અધોવાયુની યતના કરનારા વસ્ત્રને મુખવસ્ત્રિકા કહેવી એ મોટી ભૂલ છે, કારણ કે મુખ અને મળદ્વાર એક ચીજ નથી. બેઉ અલગ અલગ છે જો ખુલ્લે મુખે બોલવાનું તાત્પર્ય હોય તો परिपेहित्ता શબ્દમાં परि ઉપસર્ગ વ્યર્થ થઈ જશે કારણ કે अपि ઉપસર્ગ પૂર્વક ધાતુથી પણ ल्यप् પ્રત્યય થાય છે

'ઢંકિલાને ફરીથી ઢાંકવું એ વૃથા છે, તેથી ઢાંકયા વગરનાને ઢાંકવાને માટે આ ઉપદેશ આપ્યો છે.'-જો હાથમાં મુહપત્તી રાખનાર એમ કહેશે તો એમ સિદ્ધ થશે કે એનું મળદ્વાર સદા અનાવૃત (ઉઘાડું) રહે છે

तापत्तिः, अन्यथा परिधानवस्त्रावृतपोषकावरणोपदेशस्य वैयर्थ्यापत्तिरित्युभयथाऽपि न दोषनिस्तारः। तस्मात्—"आसयं वा पोसयं वा पाणिणा परिपेहित्ता" इति भगवद्वाक्यस्य 'मुखवस्त्रिका करेणैव धारणीया नतु दोरकेणे'–त्यर्थकल्पनं साहसमात्रम्।

मम तु सूक्ष्मव्यापिसम्पातिमवायुकायादिजीवविराधनापरिहारार्थं बद्धमुखवस्त्रिकस्योच्छ्वासादिकाले मुखोद्गतवायुवेगेन मुखतो दोरकावलम्बिततदपगमसम्भावनायाः सत्त्वेन तन्निवारणाय मुखवस्त्रिकाऽऽवृतस्यापि मुखस्य पाणिना परिपिधानमावश्यकमेव। एवं परिधानवस्त्राऽऽवृतस्यापि पोषकस्य परिपिधानं विधेयमेव, उच्छ्वासादीनां यौगपद्येऽयौगपद्ये वा एकेन करेण घ्राणमुखपिधानम्,

---

फिर आवरण करनेका उपदेश व्यर्थ हो जायगा। अतएव "आसयं वा पोसयं वा पाणिणा परिपेहित्ता" इस भगवद्वाक्य का यह अर्थ निकालना कि-'मुखवस्त्रिका हाथ ही में रखनी चाहिए डोरेसे मुख पर नहीं बांधना चाहिए,' ऐसी कल्पना करना साहसमात्र है।

हमारे मतसे सूक्ष्म, व्यापी, संपातिम तथा वायुकाय आदि जीवोंकी विराधनासे बचनेके लिए मुखवस्त्रिका बँधी हुई होने पर भी उच्छ्वास आदिके समय मुखसे निकलने वाले वायुके वेगसे मुखवस्त्रिकाके खिसक जानेकी संभावना रहती है, इसलिए उस संभावनाको दूर करनेके वास्ते मुखवस्त्रिकासे आवृत मुखको फिर हाथसे आवृत करना आवश्यक है। इसी प्रकार चोलपट्ट होने पर भी अधोवायुके विषयमें समझना चाहिए। उच्छ्वास आदि यदि एक ही साथ होवें तो एक हाथसे मुख

નહિ તો આવૃતને ફરી આવરણ કરવાનો ઉપદેશ વ્યર્થ બની જશે. તેથી કરીને 'आसयं वा पोसयं वा पाणिणा परिपेहित्ता' એ ભગવદ્‌વાક્યનો એવો અર્થ કાઢવો કે 'મુખવસ્ત્રિકા હાથમાં જ રાખવી જોઈએ, દોરાથી મુખ પર બાંધવી ન જોઈએ' એવી કલ્પના કરવી એ સાહસમાત્ર છે

અમારે મતે સૂક્ષ્મ, વ્યાપી, સંપાતિમ તથા વાયુકાય આદિ જીવોની વિરાધનાથી બચવાને માટે મુખવસ્ત્રિકા બાંધી હોવા છતાં ઉચ્છ્‌વાસ આદિને સમયે મુખથી નીકળતા વાયુના વેગથી મુખવસ્ત્રિકા ખસી જવાની સંભાવના રહે છે તેથી એ સંભાવનાને દૂર કરવાને માટે મુખવસ્ત્રિકાથી ઢાંકેલા મુખને પણ હાથથી ઢાંકવાની આવશ્યકતા છે એજ રીતે ચોલપટ્ટ હોવા છતાં પણ અધોવાયુના વિષયમાં સમજવું ઉચ્છ્‌વાસ આદિ જો એકી સાથે જ થાય તો એક હાથથી

अपरेण पायुपिधानं विधेयमिति भावः ।

पाणिनेत्यत्रैकवचनमपि पाणित्वजातावन्वयविवक्षयेत्युभयपाणिबोधकत्वेऽप्यनुकूलमेव ।

किञ्च पाणिशब्दस्य मुख्यार्थबाधाऽभावेन मुख्यार्थबाधमूलिका लक्षणापि नाङ्गीकरणीया भवति । तथा चोक्तसूक्ष्मव्यापिप्रभृतिविविधजीवहिंसावारणाय सदैव सदोरकमुखवस्त्रिकाधारणं नैतत्सूत्रतो विरुध्यते, किन्तु परिपिधायेत्यत्र परिशब्दप्रयोगेण भगवान् मुखवस्त्रिकापिहितस्यैव मुखस्य पिधानमावेदयतीत्यलं पल्लवितेन।

केचित्तु–'विपाकसूत्रे मृगापुत्राध्ययने–"तए णं सा मिया देवी तं कट्ठसगडियं अणुकड्ढेमाणी२ जेणेव भूमिघरे तेणेव उवागच्छति, उवाग-

---

और नाक ढँक ले और दूसरे हाथसे अधोवायुकी यतना करे ।

"पाणिणा" यद्यपि एक वचन है तथापि पाणित्वजातिमें अन्वय होनेसे दोनों हाथोंका बोधक होता है, इसलिए हमारे मतके अनुकूल ही है ।

यहाँ 'पाणि' शब्दके मुख्य अर्थमें बाधा नहीं है अतः लक्षणा भी मानने योग्य नहीं है, क्योंकि लक्षणा वहीं होती है जहाँ मुख्य अर्थ में बाधा आती हो । इसलिए उक्त सूक्ष्म व्यापी वगैरह विविध जीवोंकी विराधनासे बचने के वास्ते सदैव डोरा सहित मुखवस्त्रिका मुख पर बाँधना इस सूत्रसे विरुद्ध नहीं है । परन्तु 'परिपेहित्ता' में 'परि' उपसर्गके प्रयोगसे प्रगट है कि महावीर प्रभुने मुँहपत्ति से पिहित (ढँके हुए) मुखको पुनः पिधान करना प्रतिपादित किया है ।

कोई कोई ऐसा कहते हैं कि विपाकसूत्रमें मृगापुत्रके अध्ययनमें

મુખ અને નાક ઢાકી લેવાં અને બીજા હાથથી અધોવાયુની યતના કરવી.

पाणिणा જો કે એકવચન છે તોપણ પાણિત્વ જાતિમાં અન્વય થવાથી બેઉ હાથને બોધક થાય છે તેથી અમારે મતે તે શબ્દ અનુકૂળ જ છે.

અહીં पाणि શબ્દના મુખ્ય અર્થમાં બાધા નથી તેથી લક્ષણા પણ માનવા યોગ્ય નથી, કારણ કે લક્ષણા ત્યા થાય છે કે જ્યાં મુખ્ય અર્થમાં બાધા આવતી હોય તેથી કરીને ઉક્ત સૂક્ષ્મ, વ્યાપી વગેરે વિવિધ જીવોની વિરાધનાથી બચવાને માટે સદૈવ દોરા સાથે મુખવસ્ત્રિકા બાંધવી એ સૂત્રથી વિરૂદ્ધ નથી પરન્તુ परिपेहित्ता અહીં परि. ઉપસર્ગના પ્રયોગથી સ્પષ્ટ થાય છે કે મહાવીર પ્રભુએ મુહુપત્તિથી પિહિત (ઢાકેલા) મુખને પુનઃ પિધાન કરવાનું પ્રતિપાદિત કર્યું છે.

કોઈ કોઇ એમ કહે છે કે વિપાકસૂત્રમાં મૃગાપુત્રના અધ્યયનમાં લખ્યું છે–

च्छित्ता चउप्पुडेणं वत्थेणं मुहं बंधमाणी भगवं गोयमं एवं वयासि-तुब्भे-वि णं भंते ! मुहपोत्तियाए मुहं बंधेह । तए णं से भगवं गोयमे मियाए देवीए एवं वुत्ते समाणे मुहपोत्तियाए मुहं बंधइ " इत्युक्तं, तस्यायमाशयः-मृगापुत्रं दर्शयितुं प्रवृत्ता मृगादेवी भूमिगृहद्वारोद्घाटनकाले दुर्गन्धाघ्राणवारणाय चतुष्पुटेन वस्त्रेण स्वमुखं बध्नती भगवन्तं गौतमं जगाद-हे भदन्त ! त्वमपि मुख-पोतिकया मुखं बधान, ततः स भगवान् गौतमो मृगादेव्यैवमुक्तः सन् मुखपोति-कया मुखं बध्नाति (स्म) इति । इदमनेन सुस्पष्टं प्रतीयते-गौतमस्वामिनो मुखो-परि मुखवस्त्रिका बद्धा नासीत् किन्तु हस्त एव धृतेति, अत एव मृगादेवी दुर्गन्धा-घ्राणप्रतिबन्धाय "तुब्भेवि णं भंते! मुहपोत्तियाए मुहं बंधेह" इति प्रार्थित-वतीत्याहुः' तन्न सम्यक्-उष्णमुखवायुतः सम्पातिमसूक्ष्मव्यापिजीवानां रक्षणार्थं

ऐसा लिखा है-" तए णं सा " इत्यादि।

इसका आशय यह है कि मृगादेवी जब मृगापुत्रको आहार देनेके लिए भोंयरेके किवाड़ खोलने लगी तब नाकमें दुर्गन्ध आनेका निवारण करनेके लिए चार पड़वाला वस्त्र मुख पर बांधकर भगवान् गौतमस्वामीसे कहने लगी-' हे भदन्त । आप भी मुखवस्त्रिकासे मुख बांध लीजिये'। मृगादेवीका कथन सुनकर भगवान् गौतम मुखवस्त्रिकासे मुख बांधते हैं (बांध लिया)। 'इससे यह बिलकुल स्पष्ट है कि पहले गौतमस्वामीके मुख पर मुखवस्त्रिका नहीं बंधी हुई थी, किन्तु हाथमें थी, इसीसे मृगादेवीने मुखवस्त्रिका बांधनेकी प्रार्थना की थी । उनका यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि मुखकी उष्ण वायुसे संपातिम, सूक्ष्म और व्यापी जीवोंकी रक्षा करनेके लिए तथा बाह्य वायुकायकी

'तए णं सा' ઇત્યાદિ એનો આશય એ છે કે મૃગાદેવી જ્યારે મૃગાપુત્રને આહાર દેવાને માટે ભોયરાના કમાડ ખોલવા લાગી ત્યારે નાકમાં દુર્ગંધ આવતી નિવાર-વાને માટે ચાર પડવાળું વસ્ત્ર મુખ પર બાંધીને ભગવાન્ ગૌતમ સ્વામીને કહેવા લાગી કે-હે ભદન્ત ! આપ પણ મુખવસ્ત્રિકાથી મુખ બાંધી લ્યો. મૃગાદેવીનું કથન સાંભળીને ભગવાન્ ગૌતમ મુખવસ્ત્રિકાથી મુખ બાંધે છે (બાંધી લીધુ) આથી એ તદ્દન સ્પષ્ટ થાય છે કે પહેલાં ગૌતમ સ્વામીના મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાંધેલી નહોતી, કિન્તુ હાથમા હતી, તેથી મૃગાદેવીએ મુખવસ્ત્રિકા બાંધવાની પ્રાર્થના કરી હતી એમનું એ કહેવું બરાબર નથી, કારણ કે મુખના ઉષ્ણ વાયુથી સંપાતિમ, સૂક્ષ્મ અને વ્યાપી જીવોની રક્ષા કરવાને માટે તથા બાહ્ય વાયુકાયની

बाह्यवायुकायरक्षार्थं च मुखवस्त्रिकाबन्धनस्य सकलजैनागमतात्पर्यविषयतया मुखवस्त्रिका बद्धा नासीदिति कल्पनं तावन्मिथ्यात्वविलसितं सकलागमविरुद्धं च। इदमत्र तत्त्वम्-दुर्गन्धाघ्राणवारणाय 'मुहं बंधेह' इति प्रार्थनाऽनुपपन्ना, मुखेन गन्धग्रहणानुपपत्तेः, तस्मादत्र 'मुह' शब्दो न मुखमात्रपरः किन्तु यथा 'गङ्गायां घोषः' इत्यत्र गङ्गाशब्दस्य प्रवाहरूपे शक्यार्थे (मुख्यार्थे) घोषान्वय-तात्पर्यानुपपत्त्या तत्समीपवर्त्तिनि तीरे लक्षणावृत्त्या तात्पर्यमिति मन्यते, तथा मुखे बद्धाया एव तस्याः पुनस्तत्रैव बन्धनार्थप्रार्थना निष्फलतया नोपपद्यते,

रक्षा करनेके लिए मुखवस्त्रिका बांधना सब जैन-आगमोंमें तात्पर्यरूपसे विधान किया गया है, इसलिए 'उनके मुख पर मुखवस्त्रिका नहीं बंधी थी' ऐसा कहना मिथ्यात्वका ही प्रताप है और सब शास्त्रोंसे विरुद्ध है। तात्पर्य यह है कि दुर्गन्धसे बचनेके लिए मुख बांधनेकी प्रार्थना उचित नहीं है, क्योंकि मुखसे गन्धका ग्रहण नहीं होता। अतएव यहाँ मुखसे केवल मुखही अर्थ नहीं है। जसे "गंगामें घोष (अहीरोंकी वसती) है। इस वाक्यसे ऐसा मतलब नहीं निकल सकता कि गंगाकी बीचधारमें अहीरोंकी वसती है, क्योंकि ऐसा होना अनुपपन्न है। अतएव जब वाक्यके मुख्य (शाब्दिक) अर्थमें बाधा आती हो तब लक्षणासे दूसरा मतलब लेना पडता है कि-गंगाके किनारे अहीरोंकी वसती है। इसीप्रकार मुखवस्त्रिकाका जब पहलेसे बंधी हुई है तब पुनः बांधनेकी प्रार्थना व्यर्थ पडती है, तथा दुर्गन्ध नाकमें न घुसने देनेके

રક્ષા કરવાને માટે મુખવસ્ત્રિકા બાંધવી એવું બધાં જૈન-આગમોમાં તાત્પર્યરૂપે વિધાન કરવામાં આવ્યું છે તેથી એમના મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાંધેલી નહોતી એમ કહેવું એ મિથ્યાત્વનો જ પ્રતાપ છે અને બધાં શાસ્ત્રોથી વિરૂદ્ધ છે. તાત્પર્ય એ છે કે દુર્ગંધથી બચવાને માટે મુખ બાંધવાની પ્રાર્થના ઉચિત નથી, કારણ કે મુખથી ગંધનું ગ્રહણ થતું નથી એટલે અહીં મુખથી કેવળ મુખનો જ અર્થ થતો નથી. જેમ "ગંગામાં ઘોષ (આહીરોની વસતી) છે" એ વાકયથી એવી મતલબ નથી નીકળી શકતી કે ગંગાની વચ્ચે પાણીના પ્રવાહમાં આહીરોની વસતી છે, કેમકે એમ હોવું અનુપપન્ન છે. એટલે કે જ્યારે વાકયના મુખ્ય (શાબ્દિક) અર્થમાં બાધા આવે છે ત્યારે લક્ષણાથી બીજી મતલબ લેવી પડે છે, કે ગંગાને કિનારે અહીરોની વસતી છે. એ રીતે મુખવસ્ત્રિકા જો પહેલેથી બાંધી રાખેલી છે તો પુનઃ બાંધવાની પ્રાર્થના વ્યર્થ બને છે તથા દુર્ગંધ નાકમાં ન

किञ्च दुर्गन्धाघ्राणवारणोद्देशेनापि तत्प्रार्थना नोपपद्यते, मुखमात्रबन्धने कृतेऽपि घ्राणेन्द्रियस्याऽनावरणेन तदुद्देशसिद्ध्यसंम्भवादिति मुखमात्रे बन्धनान्वयतात्पर्यस्यानुपपत्त्या तत्समीपवर्तिनि घ्राणेऽपि लक्षणावृत्त्या तात्पर्यमिति गम्यते। लक्षणाश्रयणस्याऽऽवश्यकत्वादेवाऽऽचाराङ्गसूत्रेऽपि–"**से भिक्खू वा२ उस्सासमाणे वा नीसासमाणे वा कासमाणे वा छीयमाणे वा जंभायमाणे वा उड्डोए वा वायनिसग्गं वा करेमाणे पुव्वामेव आसयं वा पोसयं वा पाणिणा परिपेहित्ता**" इत्यादिपाठः संगच्छते, तत्राप्यास्यकशब्दे लक्षणाश्रयणाऽभावे तु पाणिनाऽऽस्यकपरिपिधाने सति तज्जन्योच्छ्वासादियतनाया उपपत्तावपि घ्राणजन्योच्छ्वासनिःश्वासक्षुतयतनाया अनुपपत्त्या तेषामागमविरोधः सुस्पष्ट एव।

लिए मुख बांधनेकी प्रार्थना करना युक्त नहीं है, क्योंकि मुख बांध लेने पर भी दुर्गन्धका आना नहीं रुक सकता, अतः यहाँ मुख बाँधनेका अर्थ अयुक्त होनेसे मुखके समीपवर्ती नासिका बाँधनेका तात्पर्य लक्षणासे विदित होता है। लक्षणाका आश्रय लेना आवश्यक होनेसे ही आचाराङ्गसूत्रका "से भिक्खू वा०" इत्यादि पाठ ठीक बैठता है।

वहाँ पर भी यदि 'आसयं' (मुख) शब्दमें लक्षणाका आश्रय न लिया जाय तो हाथसे मुख ढँक लेने पर मुखजन्य उच्छ्वास निःश्वास आदिकी यतना संभव हो सकती है किन्तु घ्राणजन्य उच्छ्वास-निःश्वास छींककी यतना नहीं हो सकती। अतः उन लोगोंके मतमें आगमसे विरोध होना स्पष्ट है।

પેસવા દેવાને માટે મુખ બાંધવાની પ્રાર્થના કરવી યુક્ત નથી. કારણ કે મુખ બાંધી લેવા છતાં દુર્ગંધ આવવાનું રોકી શકાતું નથી એટલે અહીં મુખ બાંધવાનો અર્થ અયુક્ત હોવાથી મુખની નિકટ આવેલું નાક બાંધવાનું તાત્પર્ય લક્ષણાથી વિદિત થાય છે. લક્ષણાનો આશ્રય લેવો આવશ્યક હોવાથી જ આચારાંગ સૂત્રનો "से भिक्खू वा०" ઇત્યાદિ પાઠ બરાબર બંધ બેસે છે.

તેમાં પણ જો आसयं (મુખ) શબ્દમાં લક્ષણાનો આશ્રય લેવામાં ન આવે તો હાથથી મુખ ઢાંકી લેતા મુખજન્ય ઉચ્છ્વાસ નિઃશ્વાસ આદિની યતના સંભવિત થઇ શકે છે, કિંતુ ઘ્રાણજન્ય ઉચ્છ્વાસ–નિઃશ્વાસ છીંકની યતના થઈ શકતી નથી. એટલે એ લોકોના મતમાં આગમથી વિરોધ થાય છે એ સ્પષ્ટ છે.

नन्वेवं मुखवस्त्रिका भवतु बन्धनीया तथापि दोरकस्य बन्धने निबन्धनता-ऽऽगमतो न लभ्यते, तथा च तत्प्रान्तभागेनापि बन्धनं सुसम्पादम्, अलमेतेन दोरकपरिग्रहेणेति चेन्न, मुखवस्त्रिकाबन्धनस्य शास्त्रप्रतिपाद्यतायां सिद्धायां तत्रा-ल्पमेव दोरकमपेक्ष्य निरवद्यप्रकारेण तद्बन्धनसिद्धौ सत्यां चारित्रमालिन्यापादक-प्रकारान्तराश्रयणस्यानौचित्यात्, मुखवस्त्रिकाप्रान्तभागेन शिरःपश्चाद्भागे न्यून-तावशाद्ग्रन्थिविरहप्राप्तावुचिताधिकतन्मानकल्पनायामुत्सूत्रप्ररूपणापत्तेश्च ।

किञ्च-मुखोपरि मुखवस्त्रिकाया बन्धनं दोरकेणैव समुचितं भगवदभिप्रेतं च,

---

प्रश्न-उक्त प्रकारसे मुख पर मुखवस्त्रिका बाँधना तो सिद्ध हुआ किन्तु डोरा लगाकर बाँधना आगममें कहीं नहीं पाया जाता। इसलिए मुखवस्त्रिकाके छोर (पल्ला) से भी उसे बाँध सकते हैं, डोराकी क्या आवश्यकता है ?

उत्तर-उनका यह कथन ठीक नहीं है। क्योंकि जब यह सिद्ध हो चुका कि आगममें मुखवस्त्रिकाका बाँधना प्रतिपादित किया गया है तो छोटेसे डोरेसे निर्दोषतापूर्वक बन्धनकी सिद्धि होने पर चारित्रको मलिन करने वाले दूसरे तरीके काममें लाना अनुचित है। मुखवस्त्रिकाके छोरसे, सिरके पीछे न्यूनताके वशसे गांठ न लगा सकनेसे मुख-वस्त्रिकाके उचित प्रमाणसे अधिककी कल्पना करनी पडेगी, और ऐसी कल्पना करनेसे उत्सूत्रप्ररूपणाका दोष लगेगा।

दूसरी बात यह है कि डोरेसे ही मुख पर मुखवस्त्रिका बांधना

પ્રશ્ન—એ પ્રકારે મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાંધવાનું તો સિદ્ધ થયું, પરન્તુ દોરો લગાવીને બાધવાનું આગમમાં ક્યાંય મળી આવતું નથી. તેથી કરીને મુખ-વસ્ત્રિકાના છેડાથી પણ તેને બાંધી શકાય છે. દોરાની શી આવશ્યકતા છે.

ઉત્તર—એનું કથન બરાબર નથી, કારણ કે જો એ સિદ્ધ થઇ ચૂકયું કે આગમમાં મુખવસ્ત્રિકા બાંધવાનુ પ્રતિપાદિત કરવામાં આવ્યું છે તો નાના સરખા દોરાથી નિર્દોષતા—પૂર્વક બંધનની સિદ્ધિ થતાં ચારિત્રને મલિન કરનારો બીજો પ્રકાર કામમાં લેવો એ અનુચિત છે, મુખવસ્ત્રિકાના છેડાથી શિરની પાછળ ન્યૂનતાને કારણે ગાંઠ ન બાધી શકાવાથી મુખવસ્ત્રિકાને ઉચિત પ્રમાણથી વધારે (લાંબી) રાખવાની કલ્પના કરવી પડશે, અને એવી કલ્પના કરવાથી ઉત્સૂત્ર-પ્રરૂપણાનો દોષ લાગશે

બીજી વાત એ છે કે દોરાથી જ મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાંધવી ઉચિત છે

लोके हि बन्धनं गुणेनैव प्रसिद्धं तत्रापि यथायोग्यमेव सूत्रदोरकादयस्तदर्थमादीयन्ते, यथा पुष्पपुस्तकवसनादिवन्धनार्थी यथाक्रमं मृदुमेव दोरकमुपादत्ते।

किञ्च–सामाचारीग्रन्थे–"मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्य मुखे बद्ध्वा प्रतिलेखयति रजोहरणम्" इत्युक्तं देवचन्द्रसूरिणाऽपि। अत्र मुखवस्त्रिकाया बन्धनक्रियाकर्मत्वेन प्रतिपादनात् तदौचित्याच्च सा दोरकरूपमनुरूपं करणमपेक्षत एव। तत्प्रान्तभागेन ग्रन्थिदाने तु तत्र करणत्वकल्पनं देवचन्द्रसूरिविरुद्धमयुक्तं च, कर्मत्व-करणत्वयोर्विरोधात्।

उचित है और यही बात भगवानको भी इष्ट है। लोकमें किसी वस्तुका बाँधना डोरेसे ही प्रसिद्ध है। उसमें भी यथायोग्य सूत्रका डोरा आदि बाँधनेके काम में लाये जाते हैं, जैसे फूल, पुस्तक या कपड़ा बाँधने वाले क्रमशः कोमल डोरेको ही काममें लाते हैं।

(सामाचारी ग्रन्थ में देवचन्द्रसूरिने लिखा है–"मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्य मुखे बद्ध्वा प्रतिलेखयति रजोहरणम्।") इस वाक्य में मुखवस्त्रिकाको बाँधनेरूप क्रियाका कर्म बताया है और वह उचित भी है। इसलिये वह (क्रिया) मुखवस्त्रिकाके अनुरूप डोरारूप करणकी अपेक्षा रखती है। तात्पर्य यह है कि जब मुखवस्त्रिका कर्म है तब करण भी कोई होना चाहिये और वह करण अर्थात् जिससे बाँधनारूप क्रिया होती है, डोरा ही होना चाहिए। गांठ लगानेमें करणत्वकी कल्पना करना देवचन्द्रसूरिसे विरुद्ध है और अयुक्त है, क्योंकि कर्मत्व और करणत्वका विरोध है।

અને એ જ વાત ભગવાનને પણ ઇષ્ટ છે. લોકોમાં કોઇ વસ્તુને બાંધવાનું કાર્ય દોરાથી જ પ્રસિદ્ધ છે. તેમાં પણ યથાયોગ્ય સૂતરનો દોરો, વગેરે બાંધવાના કામમાં લેવામાં આવે છે, જેમકે ફૂલ, પુસ્તક યા કપડું બાંધનારા ક્રમશઃ કોમળ દોરાને જ કામમાં લે છે.

સામાચારી ગ્રંથમાં દેવચન્દ્રસૂરિએ લખ્યું છે: " मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्य मुखे बद्ध्वा प्रतिलेखयति रजोहरणम् " એ વાક્યમાં મુખવસ્ત્રિકાને બાંધવારૂપ ક્રિયાનુ કર્મ બતાવ્યું છે. અને તે ઉચિત પણ છે તેથી કરીને એ (ક્રિયા) મુખવસ્ત્રિકાને અનુરૂપ દોરારૂપ કરણની અપેક્ષા રાખે છે તાત્પર્ય એ છે કે જો મુખવસ્ત્રિકા કર્મ છે તો કરણ પણ હોવું જોઇએ અને એ કરણ અર્થાત્ જેવડે બાધવારૂપ ક્રિયા થાય છે તે દોરો જ હોવો જોઇએ ગાઠ બાંધવામાં કરણત્વની કલ્પના કરવી એ દેવચન્દ્રસૂરિથી વિરૂદ્ધ છે અને અયુક્ત છે, કારણ કે કર્મત્વ અને કરણત્વનો વિરોધ છે.

नन्वेवं मुखवस्त्रिका भवतु वन्धनीया तथापि दोरकस्य वन्धने निवन्धनताऽऽगमतो न लभ्यते, तथा च तत्प्रान्तभागेनापि वन्धनं सुसम्पादम्, अलमेतेन दोरकपरिग्रहेणेति चेन्न, मुखवस्त्रिकावन्धनस्य शास्त्रप्रतिपाद्यतायां सिद्धायां तत्राल्पमेव दोरकमपेक्ष्य निरवद्यप्रकारेण तद्बन्धनसिद्धौ सत्यां चारित्रमालिन्यापादकप्रकारान्तराश्रयणस्यानौचित्यात्, मुखवस्त्रिकाप्रान्तभागेन शिरःपश्चाद्भागे न्यूनतावशाद्ग्रन्थिविरहप्राप्तावुचिताधिकतन्मानकल्पनायामुत्सूत्रप्ररूपणापत्तेश्च ।

किञ्च-मुखोपरि मुखवस्त्रिकाया वन्धनं दोरकेणैव समुचितं भगवदभिप्रेतं च,

---

प्रश्न-उक्त प्रकारसे मुख पर मुखवस्त्रिका बाँधना तो सिद्ध हुआ किन्तु डोरा लगाकर बाँधना आगममें कहीं नहीं पाया जाता । इसलिए मुखवस्त्रिकाके छोर (पल्ला) से भी उसे बाँध सकते हैं, डोराकी क्या आवश्यकता है ?

उत्तर-उनका यह कथन ठीक नहीं है । क्योंकि जब यह सिद्ध हो चुका कि आगममें मुखवस्त्रिकाका बाँधना प्रतिपादित किया गया है तो छोटेसे डोरेसे निर्दोषतापूर्वक वन्धनकी सिद्धि होने पर चारित्रको मलिन करने वाले दूसरे तरीके काममें लाना अनुचित है। मुखवस्त्रिकाके छोरसे, सिरके पीछे न्यूनताके वशसे गांठ न लगा सकनेसे मुखवस्त्रिकाके उचित प्रमाणसे अधिककी कल्पना करनी पडेगी, और ऐसी कल्पना करनेसें उत्सूत्रप्ररूपणाका दोष लगेगा ।

दूसरी बात यह है कि डोरेसे ही मुख पर मुखवस्त्रिका बांधना

પ્રશ્ન—એ પ્રકારે મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાંધવાનું તો સિદ્ધ થયું, પરન્તુ દોરો લગાવીને બાંધવાનું આગમમાં કયાંય મળી આવતું નથી. તેથી કરીને મુખવસ્ત્રિકાના છેડાથી પણ તેને બાંધી શકાય છે. દોરાની શી આવશ્યકતા છે.

ઉત્તર—એનું કથન બરાબર નથી; કારણ કે જો એ સિદ્ધ થઈ ચૂકયુ કે આગમમાં મુખવસ્ત્રિકા બાંધવાનુ પ્રતિપાદિત કરવામાં આવ્યું છે તો નાના સરખા દોરાથી નિર્દોષતા-પૂર્વક બંધનની સિદ્ધિ થતાં ચારિત્રને મલિન કરનારો બીજો પ્રકાર કામમાં લેવો એ અનુચિત છે, મુખવસ્ત્રિકાના છેડાથી શિરની પાછળ ન્યૂનતાને કારણે ગાઠ ન બાધી શકાવાથી મુખવસ્ત્રિકાને ઉચિત પ્રમાણથી વધારે (લાંબી) રાખવાની કલ્પના કરવી પડશે, અને એવી કલ્પના કરવાથી ઉત્સૂત્ર-પ્રરૂપણાનો દોષ લાગશે

બીજી વાત એ છે કે દોરાથી જ મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાંધવી ઉચિત છે

लोके हि बन्धनं गुणेनैव प्रसिद्धं तत्रापि यथायोग्यमेव सूत्रदोरकादयस्तदर्थमादीयन्ते, यथा पुष्पपुस्तकवसनादिबन्धनार्थी यथाक्रमं मृदुमेव दोरकमुपादत्ते।

किञ्च–सामाचारीग्रन्थे–"मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्य मुखे बद्ध्वा प्रतिलेखयति रजोहरणम्" इत्युक्तं देवचन्द्रसूरिणाऽपि। अत्र मुखवस्त्रिकाया बन्धनक्रियाकर्मत्वेन प्रतिपादनात् तदौचित्याच्च सा दोरकरूपमनुरूपं करणमपेक्षत एव। तत्प्रान्तभागेन ग्रन्थिदाने तु तत्र करणत्वकल्पनं देवचन्द्रसूरिविरुद्धमयुक्तं च, कर्मत्व-करणत्वयोर्विरोधात्।

उचित है और यही बात भगवानको भी इष्ट है। लोकमें किसी वस्तुका बाँधना डोरेसे ही प्रसिद्ध है। उसमें भी यथायोग्य सूत्रका डोरा आदि बाँधनेके काम में लाये जाते हैं, जैसे फूल, पुस्तक या कपड़ा बाँधने वाले क्रमशः कोमल डोरेको ही काममें लाते हैं।

(सामाचारी ग्रन्थ में देवचन्द्रसूरिने लिखा है–"मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्य मुखे बद्ध्वा प्रतिलेखयति रजोहरणम्।") इस वाक्य में मुखवस्त्रिकाको बाँधनेरूप क्रियाका कर्म बताया है और वह उचित भी है। इसलिये वह (क्रिया) मुखवस्त्रिकाके अनुरूप डोरारूप करणकी अपेक्षा रखती है। तात्पर्य यह है कि जब मुखवस्त्रिका कर्म है तब करण भी कोई होना चाहिये और वह करण अर्थात् जिससे बाँधनारूप क्रिया होती है, डोरा ही होना चाहिए। गांठ लगानेमें करणत्वकी कल्पना करना देवचन्द्रसूरिसे विरुद्ध है और अयुक्त है, क्योंकि कर्मत्व और करणत्वका विरोध है।

અને એ જ વાત ભગવાનને પણ ઈષ્ટ છે. લોકોમાં કોઈ વસ્તુને બાંધવાનું કાર્ય દોરાથી જ પ્રસિદ્ધ છે. તેમાં પણ યથાયોગ્ય સૂતરનો દોરો વગેરે બાંધવાના કામમાં લેવામાં આવે છે, જેમકે ફૂલ, પુસ્તક યા કપડું બાંધનારા ક્રમશઃ કોમળ દોરાને જ કામમાં લે છે

સામાચારી ગ્રંથમાં દેવચન્દ્રસૂરિએ લખ્યું છે: " मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्य मुखे बद्ध्वा प्रतिलेखयति रजोहरणम् " એ વાક્યમાં મુખવસ્ત્રિકાને બાંધવારૂપ ક્રિયાનું કર્મ બતાવ્યું છે. અને તે ઉચિત પણ છે. તેથી કરીને એ (ક્રિયા) મુખવસ્ત્રિકાને અનુરૂપ દોરારૂપ કરણની અપેક્ષા રાખે છે તાત્પર્ય એ છે કે જો મુખવસ્ત્રિકા કર્મ છે તો કરણ પણ હોવું જોઈએ અને એ કરણ અર્થાત્ જેવડે બાંધવારૂપ ક્રિયા થાય છે તે દોરો જ હોવો જોઈએ ગાઠ બાંધવામાં કરણત્વની કલ્પના કરવી એ દેવચન્દ્રસૂરિથી વિરૂદ્ધ છે અને અયુક્ત છે, કારણ કે કર્મત્વ અને કરણત્વનો વિરોધ છે.

मुखवस्त्रिकाबन्धनार्थं कर्णयुगले शस्त्रेण छिद्रकरणं तु अतीवाऽज्ञानविजृम्भितम्, छिद्रकरणस्य शास्त्रानुक्ततया शस्त्रप्रयोगसाध्यतया दुष्करतया च तदपेक्षया निरवद्यत्वेन दोरकाश्रयणस्यैवौचित्यात् ।

नन्वेवं दोरकाश्रयणे सदोरकमुखवस्त्रिकाधारकाणां भाषणकाले मुखोत्पतितजलकणैरार्द्रीभूतायां मुखवस्त्रिकायामशुचिस्थानतया संमूर्च्छिमजीवा उत्पद्येरन्, हस्तेन मुखवस्त्रिकाधारणे तु न तथाविधजीवोत्पत्तिसम्भवः, तथा च दोरकपरिग्रहो दुराग्रहमात्रमिति चेन्न, मुखोत्पन्नजलकणानां भगवता जीवोत्पत्तिस्थानतयाऽनुक्त-

मुखवस्त्रिका बाँधनेके लिए-कानों में छेद कर लेना तो बड़ी भारी अज्ञानता है। क्योंकि साधुपनेके लिए किसी अवयवको छेदना शास्त्रों में निषिद्ध है और शस्त्रसाध्य होनेसे दुष्कर भी है। उसकी अपेक्षा निर्दोषरूपसे डोरेका आश्रय लेना ही उचित है।

प्रश्न-डोरेका आश्रय लेनेसे डोरा सहित मुखवस्त्रिका मुख पर धारण करनेवालोंकी मुखवस्त्रिका भाषण करते समय मुखसे निकलनेवाले पानी के कणोंसे गीली हो जायगी और गीली होनेसे अशुचिस्थान हो जानेके कारण वहाँ संमूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्ति होगी। हाथमें मुखवस्त्रिका धारण करनेसे संमूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। इसलिए डोराका ग्रहण करना दुराग्रहमात्र है।

उत्तर-ऐसा कहना उचित नहीं है। क्योंकि मुखसे निकलने वाले जलके कणोंको भगवान्ने जीवोत्पत्तिका स्थान नहीं बताया है। ऐसा भी

મુખવસ્ત્રિકા બાધવાને માટે કાનમાં છિદ્ર પડાવી લેવા એ તો ભારે અજ્ઞાનતા છે, કારણ કે સાધુપણાને માટે કોઇ અવયવને છેદવું શાસ્ત્રમાં નિષિદ્ધ છે અને શસ્ત્રસાધ્ય હોવાથી દુષ્કર પણ છે. એને બદલે નિર્દોષ રૂપે દોરાનો આશ્રય લેવો જ ઉચિત છે

પ્રશ્ન—દોરાનો આશ્રય લેવાથી દોરા-સહિત મુખવસ્ત્રિકા મુખ પર ધારણ કરનારાઓની મુખવસ્ત્રિકા ભાષણ કરતી વખતે મુખમાંથી નીકળતા પાણીના કણોથી ભીની થઇ જશે અને ભીની થવાથી અશુચિસ્થાન થઇ જવાને કારણે ત્યાં સંમૂર્ચ્છિમ જીવોની ઉત્પત્તિ થશે. હાથમાં મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરવાથી સંમૂર્ચ્છિમ જીવોની ઉત્પત્તિ થતી નથી તેથી કરીને દોરાનું ગ્રહણ કરવું એ દુરાગ્રહ થાય છે

ઉત્તર—એમ કહેવું ઉચિત નથી, કારણ કે મુખથી નીકળતાં જળનાં કણોને ભગવાને જીવોત્પત્તિનું સ્થાન બતાવ્યું નથી, એમ પણ ન કહી શકાય

त्वात्। न चैतेषां जलकणानां खेलांशतयाऽशुचिस्थानतया वा जीवोत्पत्तिस्थानत्वं प्रतीयत इति वाच्यम्, तत्र खेलांशताप्रतीतेर्भ्रान्तिमूलकत्वात्। वैद्यकशास्त्रे हि खेलस्य मुखजलकणानां च भेदः सुस्पष्टः, तथाहि खेलशब्दः श्लेष्मण्यर्थे वर्त्तते, आमाशयो, हृदयं, कण्ठः, शिरः, सन्धयश्चैतानि श्लेष्मणः स्थानानि, तथाचोक्तं भावप्रकाशे—

"आमाशयेऽथ हृदये, कण्ठे शिरसि सन्धिषु।
स्थानेष्वेषु मनुष्याणां, श्लेष्मा तिष्ठत्यनुक्रमात्॥" इति,

अस्य स्वरूपं धर्माश्चोक्ताः सुश्रुतसंहितायां यथा—

"श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः, पिच्छलः शीत एव च।
मधुरस्त्वविदग्धः स्याद्, [1]विदग्धो लवणः स्मृतः॥" इति,

नहीं कहना चाहिए कि वे जलकण खेलके अंश हैं, इसलिए अशुचिस्थान हैं और अशुचिस्थान होनेसे जीवोत्पत्तिके स्थान हैं। क्योंकि उन जलकणोंको खेल (कफ) का अंश समझना भ्रान्तिमूलक है। 'खेल' शब्दका अर्थ श्लेष्म है। आमाशय, हृदय, कठ, सिर और सन्धियाँ श्लेष्म के स्थान हैं। भावप्रकाश में लिखा है—

आमाशयेऽथ हृदये, कण्ठे शिरसि सन्धिषु।
स्थानेष्वेषु मनुष्याणां, श्लेष्मा तिष्ठत्यनुक्रमात्॥१॥

अर्थात्—"आमाशय, हृदय, कण्ठ, शिर और संधिभाग; इन स्थानों में मनुष्यों को अनुक्रम से कफ रहता है।"

सुश्रुतसंहितामें श्लेष्मका स्वरूप और गुण इस प्रकार बताये हैं—

કે એ જળકણ ખેલ (કફ) ના અંશરૂપ હોય છે અને તેથી અશુચિ-સ્થાન છે અને અશુચિસ્થાન હોવાથી જીવોત્પત્તિના સ્થાન છે. એ જળકણોમાં કફનો અંશ સમજવો એ ભ્રાન્તિમૂલક છે खेल શબ્દનો અર્થ શ્લેષ્મ છે. આમાશય, હૃદય, કંઠ, શિર અને સંધિ એ શ્લેષ્મનું સ્થાન છે. ભાવપ્રકાશમાં લખ્યુ છે કે—

आमाशयेऽथ हृदये, कण्ठे शिरसि सन्धिषु।
स्थानेष्वेषु मनुष्याणां, श्लेष्मा तिष्ठत्यनुक्रमात्॥

અર્થાત્—"આમાશય હૃદય કંઠ શિર અને સંધિભાગ એ સ્થાનોમાં મનુષ્યોને અનુક્રમથી કફ રહે છે"

સુશ્રુતસંહિતામાં શ્લેષ્મનું સ્વરૂપ અને ગુણ આ પ્રકારે બતાવ્યા છે:—

---

१ विदग्ध—पका या जला हुआ।

मुखजलस्य तु रसनामूलं तदग्रभागश्चेतिद्वयमुत्पत्तिस्थानम्, इदं च चर्वितस्यान्नस्य पिण्डीभवने कण्ठनलिकयाऽधोनयने पाचने च निमित्तम्। अत एव **योगचिन्तामणौ** प्रथमाध्याये–

"रसाऽसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः।

इत्युक्त्वा कस्य धातोः किं मलम्? इति प्रदर्शयितुं पुनरभिहितम्–

"जिह्वानेत्रकपोलानां जलं पित्तं च रञ्जकम्," इत्यादि।

श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः पिच्छलः शीत एव च।
मधुरस्त्वविदग्धः स्याद्, विदग्धो लवणः स्मृतः ॥१

अर्थात्–श्लेष्म (कफ) सफेद, गुरु, चिकना, पिच्छल और शीत होता है। नहीं जला हुआ या कचा कफ मधुर होता है और पका या जला हुआ नमकीन होता है।

मुखजलके केवल दो उत्पत्तिस्थान हैं–(१) जिह्वाका मूल और (२) जिह्वाका अग्रभाग। यह मुखजल चवाये हुए अन्नको पिण्ड बनाने तथा कण्ठकी नलीके नीचे लेजाने तथा पचानेका कारण है। इसीसे योगचिन्तामणि ग्रन्थके प्रथम अध्यायमें "रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः" ऐसा कह कर किस धातुका क्या मल है, सो बतानेके लिए फिर कहा है–"जिह्वानेत्रकपोलानां, जलं पित्तं च रञ्जकम्"। अर्थात्

श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः पिच्छलः शीत एव च।
मधुरस्त्वविदग्धः स्यात् विदग्धो लवणः स्मृतः ॥

અર્થાત્–"શ્લેષ્મ (કફ) સફેદ, ગુરૂ, ચિકણો, પિચ્છલ, અને શીત હોય છે. નહિ બળેલો યા કાચો કફ મધુર હોય છે અને પાકો યા બળેલો કફ ખારો હોય છે."

મુખજળનાં માત્ર બે ઉત્પત્તિ સ્થાન હોય છે: (૧) જીહ્વાનું મૂળ અને (૨) જીહ્વા (જીભ)નો અગ્રભાગ. એ મુખજળ ચાવેલા અન્નનો પિંડ બનાવવાનું તથા કંઠની નળીની નીચે લઇ જવાનું તથા પચાવવાનુ કારણ છે તેથી યોગચિન્તામણિ ગ્રંથના પ્રથમ અધ્યાયમા रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः એમ કહીને કઇ ધાતુનો કયો મળ છે તે બતાવવાને માટે પછી કહ્યું છે કે जिह्वानेत्रकपोलानां जलं पित्तं च रञ्जकम्। અર્થાત્—જીભ નેત્ર અને ગાલનું જલ

जिह्वानेत्रकपोलानां जलं रसधातोर्मलं, रञ्जकं पित्तं रुधिरस्य मलमिति तदर्थः। इत्थं जिह्वाकपोलदेशे जायमानं जलं मुखजलं, तदीयकणिका एव भाषणकाले कदाचिद् वहिरुत्पतन्तीति विशदीभवति, श्लेष्मा तु न कस्यचिद् धातोर्मलं, स हि दोषत्रयान्तःपातित्वात्तत्स्वरूपम् , अत एव योगचिन्तामणौ प्रथमाध्याये धातुमलतः पृथक्कृत्य दोषत्रयोपादानं कृतं, यथा शारीरकप्रकरणे—

" कलाः सप्ताशयाः सप्त, धातवः सप्त तन्मलाः।
सप्तोपधातवः सप्त, त्वचः सप्त प्रकीर्त्तिताः ॥ १ ॥
त्रयो दोषा नवशतं, स्नायूनां सन्धयस्तथा।
दशाधिकं च द्विशतमस्थ्नां च द्विशतं मतम् ॥ २ ॥
सप्तोत्तरं मर्मशतं, शिराः सप्तशतं तथा।
चतुर्विंशतिराख्याता, धमन्यो रसवाहिकाः ॥ ३ ॥
मांसपेश्यः समाख्याता, नृणां पञ्चशतं बुधैः।
स्त्रीणां च विंशत्यधिकाः, कण्डराश्चैव षोडश ॥ ४ ॥
नृदेहे दश रन्ध्राणि, नारीदेहे त्रयोदश।
एतत्समासतः प्रोक्तं, विस्तरेणाधुनोच्यते ॥ ५ ॥" इति।

जीभ, नेत्र और गालका जल रसधातुका मल है तथा रंजक पित्त रुधिरका मल है। इसप्रकार जीभ और गालोंमें उत्पन्न होनेवाला जल मुखका जल कहलाता है और उसीकी कणिका भाषण करते समय कभी-कभी बाहर निकल जाती है, यह बात स्पष्ट है। श्लेष्मा किसी धातुका मल नहीं है, वह तीन दोषोंमेंसे एक दोष है, इसीसे योगचिन्तामणिमें धातुओंके मलोंसे पृथक् करके तीन दोष अलग बताये हैं, देखो शारीरक प्रकरण "कलाः सप्ताशयाः" इत्यादि श्लोक ५।

રસ ધાતુનો મલ છે તથા રંજક પિત્ત રૂધિરનો મલ છે. એ રીતે જીભ અને ગાલમાં ઉત્પન્ન થનારૂં જલ મુખનું જલ કહેવાય છે અને તેની કણિકાઓ ભાષણ કરતી વખતે કોઇ-કોઇ વાર બહાર નીકળી જાય છે તે વાત સ્પષ્ટ છે. શ્લેષ્મ કોઇ ધાતુનો મલ નથી, તે ત્રણ દોષોમાંનો એક દોષ છે. તેથી યોગચિન્તામણિમાં ધાતુઓના મલોથી જૂદા પાડીને ત્રણ દોષ અલગ બતાવેલા છે. જુઓ શારીરક પ્રકરણ " कलाः सप्ताशयाः " ઈત્યાદિ શ્લોક ૫.

एवं च मुखजलस्य खेलतो भेदः स्पष्ट एव। न च खेलशब्दस्य निष्ठीवनार्थकतया निष्ठीवनात्मके मुखजले खेलशब्दप्रवृत्त्या तस्यापि जीवोत्पत्तिस्थानत्वं दुर्वारमेवेति वाच्यम्, निष्ठीव्यते=निरस्यते=प्रक्षिप्यते यत्तन्निष्ठीवनमिति 'नि'पूर्वकात् 'ष्ठीवु निरसने' इति धातोर्बाहुलकात् कर्मणि ल्युटि निष्पन्नस्य निष्ठीवनशब्दस्य योगेन मुखनिर्गतपदार्थमात्रे प्रयोगो भवति, एवं च निष्ठीवनशब्दस्यैव प्रक्षिप्तखेलाद्यर्थकत्वं सिध्यति न तु खेलशब्दस्य निष्ठीवनार्थकत्वम्, तथा च मुखनिर्गतजलकणेषु न जीवोत्पत्तिसिद्धिः, जीवोत्पत्तिस्थानपरिगणने निष्ठीवन-

---

इस प्रकार स्पष्ट है कि मुखका जल श्लेष्मसे भिन्न है।

प्रश्न—'खेल' शब्दका अर्थ 'थूक' है, और थूक तथा मुखजल एक ही है। अतः मुखजलमें खेल शब्दकी प्रवृत्ति होनेसे वह जीवोत्पत्तिका स्थान होगा ही।

उत्तर—ऐसा कहना ठीक नहीं है। क्योंकि 'निष्ठीवन' शब्द 'नि'-उपसर्गपूर्वक 'ष्ठीवु निरसने' धातुसे बना है। अतः मुखसे निकलने वाला कोई भी पदार्थ निष्ठीवन कहलाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि त्यागा हुआ खेल आदि निष्ठीवन कहला सकता है किन्तु निष्ठीवन 'खेल' नहीं कहला सकता। इसलिए मुखसे निकलने वाले जलकणोंमें जीवोत्पत्तिकी सिद्धि नहीं होती, क्योंकि जीवोत्पत्तिके स्थानोंमें 'निष्ठीवन' शब्द नहीं दिया है। वास्तवमें निष्ठीवन शब्द भावल्युडन्त होनेसे प्रक्षेपणरूप निरसन क्रियाका वाची है, ऐसा मानना युक्त है। अर्थात्

એ રીતે સ્પષ્ટ થાય છે કે મુખનુ જલ એ શ્લેષ્મથી ભિન્ન છે.

પ્રશ્ન—'ખેલ' શબ્દનો અર્થ 'થૂંક' છે, અને થૂંક તથા મુખજલ એક જ છે. એટલે મુખજલમાં ખેલ શબ્દની પ્રવૃત્તિ થવાથી તે જીવોત્પત્તિનું સ્થાન થશે જ.

ઉત્તર—એમ કહેવું બરાબર નથી. નિષ્ઠીવન શબ્દ 'નિ'-ઉપસર્ગ-પૂર્વક ष्ठीवु निरसने ધાતુથી બન્યો છે એટલે મુખથી નીકળતો કોઇ પદાર્થ નિષ્ઠીવન કહેવાય છે. તેથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે ત્યાગેલો ખેલ આદિ નિષ્ઠીવન કહી શકાય છે, પરન્તુ નિષ્ઠીવન 'ખેલ' નથી કહી શકાતો તેથી મુખથી નીકળતા જલકણોમાં જીવોત્પત્તિની સિદ્ધિ થતી નથી, કારણ કે જીવોત્પત્તિનાં સ્થાનોમાં 'નિષ્ઠીવન' શબ્દ આપ્યો નથી વસ્તુતઃ નિષ્ઠીવન શબ્દ ભાવલ્યુડન્ત હોવાથી પ્રક્ષેપણરૂપ નિરસન ક્રિયાનો વાચક છે. એમ માનવું યુક્ત છે. અર્થાત્ નિષ્ઠીવનનો વાસ્તવિક

शब्दानुपादानात् । वस्तुतस्तु निष्ठीवनशब्दस्य भावल्युडन्ततया प्रक्षेपणात्मकनिरसनक्रियावाचित्वं युक्तम्, अतएव—

"रक्तनिष्ठीवनं दाहो, मोहश्छर्दन-विभ्रमौ ।
प्रलापः पिटिका तृष्णा, रक्तप्राप्ते ज्वरे नृणाम् ॥" इति,

रक्तज्वरलक्षणं प्रतिपादयता माधवनिदानकृता निर्गमनेऽप्यर्थे निष्ठीवनशब्दः प्रयुक्तः । कवलीकृतस्य द्रव्यस्य मुखान्निरसनेऽपि निष्ठीवनत्वमुक्तं, भावप्रकाशे यथा—

"वातपित्तकफघ्नस्य द्रव्यस्य कवलं मुखे ।
अर्धं निःक्षिप्य संचर्व्य, निष्ठीवेत् कवले विधिः ॥" इति,

तिब्बअकब्बराख्ये वैद्यकग्रन्थे पञ्चमाध्याये प्रथमप्रकरणेऽपि जिह्वामूलतो

निष्ठीवनका वास्तविक अर्थ है क्षेपण करना, या त्यागना। इसीसे 'माधवनिदान' कर्ताने रक्तज्वर के लक्षण बताते समय निकलनेके अर्थमें निष्ठीवन शब्दका प्रयोग किया है-

रक्तनिष्ठीवनं दाहो, मोहश्छर्दनविभ्रमौ ।
प्रलापः पिटिका तृष्णा, रक्तप्राप्ते ज्वरे नृणाम् ॥ १ ॥

भावप्रकाशमें कौर (कवल)के बाहर निकालनेको निष्ठीवन कहा है- "वातपित्त०" इत्यादि,

"तिब्ब अकब्बर" नामक यूनानी वैद्यक ग्रन्थमें भी जिह्वाके मूलसे मुखजलकी उत्पत्ति स्पष्टरूपसे बताई गई है "जीभकी जड़में एक मांसका लोथडा है जिसमेंसे लुआब और मुखका पानी निकलता है और जीभको तर रखता है और खानेकी चीजोंमें मिला करता है।" तथा

અર્થ છે-ક્ષેપણ કરવુ યા ત્યાગવું. તેથી 'માધવનિદાન' કર્તાએ રક્તજ્વરનાં લક્ષણો બતાવતી વખતે નીકલવાના અર્થમા નિષ્ઠીવન શબ્દનો પ્રયોગ કર્યો છે :

रक्तनिष्ठीवनं दाहो, मोहश्छर्दनविभ्रमौ ।
प्रलापः पिटिका तृष्णा, रक्तप्राप्ते ज्वरे नृणाम् ॥ १ ॥

ભાવપ્રકાશમાં કોળીયાનુ બહાર નીકાળવું એને નિષ્ઠીવન કહેલ છે — वातपित्त० ઇત્યાદિ

"તિબ્બ અકબ્બર" નામક યૂનાની વૈદ્યક ગ્રથમાં પણ જીહ્વાના મૂલમાંથી મુખજલની ઉત્પત્તિ સ્પષ્ટરૂપે બતાવી છે. "જીભના મૂળમાં માંસનો લોચો છે જેમાંથી લુઆબ અને મુખનુ પાણી નીકળે છે અને જીભને તર રાખે છે અને

मुखजलोत्पत्तिः स्पष्टं प्रतिपादिता। शरीरविज्ञाने च मुखजलस्य पाचनशक्तिमत्त्वं प्रकटितम्।

अशुचिस्थानतया मुखजलस्य जीवोत्पत्तिस्थानत्वापादनं तु सर्वथा निर्मूलमेव, तथाहि–यावन्ति जीवोत्पत्तिस्थानानि सन्ति तानि प्रज्ञापनासूत्रे निर्दिष्टानि, यथा–

" उच्चारेसु वा पासवणेसु वा खेलेसु वा सिंघाणएसु वा वंतेसु वा पित्तेसु वा पूयेसु वा सोणिएसु वा सुक्केसु वा सुक्कपुग्गलपरिसाडेसु वा विगयजीवकलेवरेसु वा थीपुरिससंजोएसु वा णगरनिद्धमणेसु वा सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु, एत्थ णं संमुच्छिममणुस्सा संमुच्छंति " इति।

' शरीर विज्ञान ' नामक ग्रन्थमें मुखजलके विषयमें लिखा है कि उसमें पचानेकी शक्ति होती है।

' अशुचिस्थान होनेसे मुखजल जीवोत्पत्तिका स्थान है ' ऐसा कहना बिलकुल बेजड़ है। जीवोत्पत्तिके जितने स्थान हैं उन सबका निर्देश प्रज्ञापनासूत्रमें किया है " उच्चारेसु वा " इत्यादि,

अर्थात् " उच्चार (विष्ठा) में, प्रस्रवण (मूत्र) में, कफमें, नाकके मैलमें, कैमें, पित्तमें, पीवमें, खूनमें, शुक्रमें, शुक्रपुद्गलपरिशाट (शुष्क शुक्र-पुद्गलोंके फिर भीने होने) में, प्राणीकी लाशमें, स्त्रीपुरुषके संयोगमें, नगरकी गटरमें, इन सब अशुचियोंके स्थानोंमें संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं। "

ખાવાની ચીજોમાં મળ્યા કરે છે " અને " શરીરવિજ્ઞાન " નામના ગ્રંથમાં મુખજલના વિષયમાં લખ્યું છે કે એમાં પચાવવાની શક્તિ હોય છે

' અશુચિસ્થાન હોવાથી મુખજલ જીવોત્પત્તિનું સ્થાન છે ' એમ કહેવું બિલકુલ અમૂલક છે જીવોત્પત્તિનાં જેટલા સ્થાનો છે એ બધાંનો નિર્દેશ પ્રજ્ઞાપના-સૂત્રમાં કરેલો છે : उच्चारेसु वा ઇત્યાદિ " ઉચ્ચાર (વિષ્ઠા)માં, પ્રસવણ (પિસાબ)માં, કફમાં, નાકના લીંટમાં, વમન-ઉલટીમા, પિત્તમા, પરૂમાં, લોહીમાં, શુક્ર-વીર્યમાં, શુક્રપુદ્ગલપરિશાટમાં (શુક્રના સુકાયેલા પુદ્ગલ ભીના થવામાં), પ્રાણીના મુડદામાં, સ્ત્રીપુરૂષના સમાગમમાં, નગરની ખાળો (ગટરો)મા, એ બધાં અશુચિનાં સ્થાનોમાં સંમૂર્ચ્છિમ મનુષ્ય ઉત્પન્ન થાય છે. "

अत्र " सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु " इत्यस्य " सर्वेषु चैव अशुचिस्थानेषु " इति संस्कृतम्, अशुचीनां स्थानानि अशुचिस्थानानि तेषु=अशुचिस्थानेषु, यत्रानेकेषामशुचीनामुच्चारादीनां स्थितिस्तत्रेत्यर्थः ।

अयमाशयः—यथा पृथिव्यादीनां परकायशस्त्रेण परिणतत्वे सति सचित्तत्वमपगच्छति तथोच्चारादीनां प्रस्रवणादिसाङ्कर्ये सति संमूर्च्छिमजीवोत्पत्तिस्थानत्वापगमः स्यादिति शिष्यशङ्कासंभावनायां तन्निरसनार्थमेव पृथक्कृत्येदमुक्तम्—"सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु " इति, न त्वत्रानुक्तानामशुचीनां स्थानेषु, इति तदाशयः । एतेनोच्चारादीनां संमूर्च्छिमजीवोत्पत्तिस्थानत्वादेव तत्साङ्कर्येऽपि तादृशजीवोत्पत्ति-

---

यहाँ सब अशुचियोंके स्थानोंसे तात्पर्य यह है कि जहाँ उच्चार आदि अनेक अशुचियोंकी स्थिति हो वह स्थान ।

मतलब यह कि–परकाय शस्त्रसे परिणत होने पर पृथिवीकाय आदि अचित्त हो जाते हैं, उसी प्रकार जब उच्चार आदि प्रस्रवण आदिके साथ मिल जाते हैं, तब उनमें संमूर्च्छिम जीवोंको उत्पन्न करनेकी शक्ति रहती है या नहीं ? शिष्यके ऐसे प्रश्नकी संभावना होने पर खुलासा करनेके लिए अलग कहा है कि "सब अशुचिस्थानोंमें।" इस वाक्यका "उक्त अशुचियोंके स्थानोंके सिवाय अन्य स्थानोंमें" यह अर्थ नहीं है। उपर्युक्त कथन करनेसे यह स्वयं सिद्ध हो गया कि जब उच्चार आदि संमूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्तिके स्थान हैं तब उन स्थानोंमेंसे यदि दो या तीन आदि मिल जावें तो भी वे जीवोंकी उत्पत्तिके स्थान रहेंगे। अतएव जो लोग

અહીં સર્વ અશુચિઓનાં સ્થાનોનુ તાત્પર્ય એ છે કે જ્યાં ઉચ્ચાર આદિ અનેક અશુચિઓની સ્થિતિ હોય તે સ્થાન

મતલબ એ છે કે–પરકાય શસ્ત્રથી પરિણત થતાં પૃથિવીકાય આદિ અચિત્ત થઇ જાય છે, એ રીતે જ્યારે ઉચ્ચાર આદિ પ્રસ્રવણ આદિની સાથે મળી જાય છે, ત્યારે તેમાં સંમૂર્ચ્છિમ જીવોને ઉત્પન્ન કરવાની શકિત રહે છે કે નહિ ? શિષ્યના એવા પ્રશ્નની સંભાવના હોવાથી ખુલાસો કરવાને માટે જૂદુ કહ્યું છે કે " સર્વ અશુચિસ્થાનોમાં " આ વાકયનો અર્થ "ઉકત અશુચિઓનાં સ્થાનો સિવાય અન્ય સ્થાનોમાં" એવો નથી ઉપર મુજબ કથન કરવાથી એ સ્વય સિદ્ધ થઇ ગયુ કે જો ઉચ્ચાર આદિ સંમૂર્ચ્છિમ જીવોની ઉત્પત્તિનાં સ્થાન છે તો એ સ્થાનોમા જો બે યા ત્રણ આદિ મળી જાય તો પણ તે જીવોની ઉત્પત્તિનાં સ્થાનો રહેશે તેથી કરીને જે લોકો એમ કહે છે કે પૂર્વોકત અર્થ કરવાથી

स्थानत्वं सुतरां सिद्धमिति "सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु" इति पुनरभिधानमसङ्गतं व्यर्थं च स्यादितिवादिनः परास्ताः, उक्तशङ्कावारणाय तथाऽभिधानस्याऽऽवश्यकत्वात् ।

अयमर्थश्च भगवद्वाक्यादेव स्फुटीभवति, तथाहि-सर्वेषां मुखनिर्गतपदार्थानां जीवोत्पत्तिस्थानत्वे लाघवानुरोधेन "मुहनिग्गएसु सव्वेसु चेव दव्वेसु" इत्येव वक्तव्ये पुनः "खेलेसु वा वंतेसु वा पित्तेसु वा" इति तत्तन्नामनिर्देशप्रयत्नो भगवत्कृतो व्यर्थः स्यात्, तस्मान्निर्दिष्टेतरपदार्थे जीवोत्पत्तिर्न भवतीति स्पष्टं प्रतीयते । अथवा अणीयस्सु भाषणकालिकेषु मुखोत्पतितजलकणेषु जीवो-

---

ऐसा कहते हैं कि पूर्वोक्त अर्थ करनेसे 'सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु" कहना व्यर्थ और असंगत हो जायगा, वे परास्त हो गये। क्योंकि शिष्यकी पूर्वोक्त शंकाका निवारण करनेके लिए उस कथनकी आवश्यकता है।

यह अर्थ भगवान्के वचनसे ही निकलता है, क्योंकि यदि मुखसे निकलने वाले सब पदार्थ जीवोत्पत्तिके स्थान होते तो संक्षेप करनेके लिए केवल इतना कह देते कि 'मुहनिग्गएसु सव्वेसु चेव दव्वेसु' अर्थात् मुखसे निकलने वाले सब पदार्थोंमें संमूर्च्छिम जीव उत्पन्न होते हैं। "खेलेसु वा वंतेसु वा पित्तेसु वा" इस प्रकार अलग अलग भगवान् न फरमाते। इसलिए सूत्रमें निर्देश किये हुए पदार्थोंके सिवाय अन्य किसी पदार्थमें जीवोंकी उत्पत्ति नहीं होती, यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है। अथवा यदि भाषण करते समय निकले हुए थोड़ेसे जलकणोंमें जीवोंकी

सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु કહેવું વ્યર્થ અને અસંગત થઈ જશે, તેઓ પરાસ્ત થઈ ગયા. કારણ કે શિષ્યની પૂર્વોક્ત શંકાનું નિવારણ કરવા માટે એ કથનની આવશ્યકતા છે

આ અર્થ ભગવાનનાં વચનોમાંથી જ નીકળે છે કારણ કે જો મુખથી નીકળનારા બધા પદાર્થો જીવોત્પત્તિનાં સ્થાનો હોત તો સંક્ષેપ કરવાને કેવળ એટલું જ કહી દેત કે मुहनिग्गएसु सव्वेसु चेव दव्वेसु અર્થાત્ મુખથી નીકળનારા બધા પદાર્થોમાં સંમૂર્ચ્છિમ જીવો ઉત્પન્ન થાય છે. खेलेसु वा वंतेसु वा पित्तेसु वा એ પ્રમાણે ભગવાન્ અલગ અલગ કહેત નહિ. તેથી કરીને સૂત્રમાં નિર્દેશેલા પદાર્થો સિવાય અન્ય કોઈ પદાર્થમા જીવોની ઉત્પત્તિ થતી નથી એ વાત સ્પષ્ટ પ્રતીત થાય છે અથવા જો ભાષણ કરતી વખતે નીકળતા થોડા જલકણોમાં જીવોની

त्पत्तौ सत्यां भगवता शिष्याणां स्पष्टप्रतिपत्तये- "खेलेसु वा वंतेसु वा" इत्यादिवत् "मुहजलकणेसु वा" इति वाक्येन तेऽपि पृथक्कृत्य निर्देष्टव्याः स्युः, इति मुखजलकणानां भगवदनुक्तत्वान्न तत्र जीवोत्पत्तिर्भवतीति निश्चीयते। इदमत्र तत्त्वम्—

शिष्याणां जीवोत्पत्तिस्थानप्रतीतिं विना सम्यक् संयमपालनं न स्यादिति हेतोः स्पष्टीकृत्य सकलानि संमूर्च्छिमजीवोत्पत्तिस्थानानि बोधयितुं भगवता तत्तन्नामनिर्देशप्रयत्नोऽङ्गीकृतः, साकल्येन संमूर्च्छिमजीवोत्पत्तिस्थानपरिगणनतात्पर्याभावे तु भगवान्-" सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु " इत्येव ब्रूयात्, उच्चारप्रस्रव-

---

उत्पत्ति होती तो शिष्योंको स्पष्ट बोध करानेके लिए भगवानने जैसे 'खेलेसु वा वंतेसु वा' इत्यादि अलग अलग नाम गिनाये हैं वैसे ही "मुहजलकणेसु वा" ऐसा और एक सूत्रपाठ रख देते। अतः निश्चित है कि मुखसे निकलने वाले जलकणोंमें संमूर्च्छिम जीव उत्पन्न नहीं होते, क्योंकि भगवान्ने उसे जीवोत्पत्तिका स्थान नहीं बताया है। तात्पर्य यह है कि-

शिष्य जबतक यह न जानलें कि जीवोंके उत्पत्तिस्थान कौन कौन हैं? तब तक संयमका सम्यक् प्रकार परिपालन नहीं कर सकते। इसीसे भगवान्ने जीवोत्पत्तिके स्थानोंका खुलासा ज्ञान करानेके लिए अलग अलग नाम गिनाये हैं। यदि संमूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्तिके सब स्थान गिनानेका मतलब न होता तो सिर्फ 'सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु' (अशुचि

ઉત્પત્તિ થતી હોત તો શિષ્યોને સ્પષ્ટ બોધ કરાવવાને ભગવાને જેમ खेलेसु वा वंतेसु वा ઇત્યાદિ અલગ અલગ નામ ગણાવ્યા છે તેમ मुहजलकणेसु वा એવો એક વધારે સૂત્રપાઠ રાખ્યો હોત. તેથી કરીને નિશ્ચિત છે કે મુખથી નીકળનારાં જલકણોમાં સંમૂર્ચ્છિમ જીવો ઉત્પન્ન થતા નથી, કારણ કે ભગવાને એને જીવોત્પત્તિનું સ્થાન બતાવ્યું નથી

તાત્પર્ય એ છે કે-જ્યા સુધી શિષ્ય જાણી ન લે કે જીવોનાં ઉત્પત્તિ સ્થાન ક્યાં ક્યાં છે, ત્યાં સુધી તે સંયમનું સમ્યક્ પ્રકારે પરિપાલન કરી શકતો નથી. તેથી ભગવાને જીવોત્પત્તિનાં સ્થાનોનું ખુલાસાથી જ્ઞાન કરાવવાને અલગ અલગ નામો ગણાવ્યાં છે જો સંમૂર્ચ્છિમ જીવોની ઉત્પત્તિનાં બધાં સ્થાનો ગણાવવાની મતલબ ન હોત તો માત્ર सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु (અશુચિનાં બધાં સ્થાનોમા)

णादीनामप्यशुचिस्थानतयैव तादृशजीवोत्पत्तिस्थानत्वप्रतीतिसिद्धेः, तथा च तत्तदशुचिस्थाननिर्देशस्य वैयर्थ्यापत्तिः। जीवोत्पत्तिस्थानपरिगणनतात्पर्याङ्गीकारे तु कियत्स्वशुचिस्थानेषु संमूर्च्छिमजीवा उत्पद्यन्ते? इति जिज्ञासोपशमो न स्यादिति तत्तदशुचिस्थाननिर्देशस्य नानर्थक्यं, प्रत्युताऽऽवश्यकतया सार्थक्यमेव, अतएव " उवत्थिदियनिग्गएसु दव्वेसु वा " (उपस्थेन्द्रियनिर्गतेषु द्रव्येषु) इत्यनुक्त्वा पुनः पुनः-" पासवणेसु वा सुक्केसु वा सुक्कपुग्गलपरिसाडेसु वा सोणिएसु वा थीपुरिससंजोएसु वा " इति तत्तन्नाम्ना भगवानुपादिशत्,

---

के सब स्थानोंमें) इतना ही कह देते। क्योंकि उच्चार प्रस्रवण आदि सभी अशुचिस्थान होनेके कारण संमूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्तिके स्थान हैं, यह बात प्रतीतिसे सिद्ध है। ऐसी अवस्थामें अलग-अलग नाम गिनाना अकारथ हो जायगा। अगर ऐसा मानें कि जीवोंकी उत्पत्तिके स्थान गिनानेका मतलब है तो जिज्ञासु शिष्योंका सन्देह तब तक दूर नहीं हो सकता जब तक उन्हें साफ न बता दिया जाय कि किन-किन जगहोंमें संमूर्च्छिम जीवोंका जन्म होता है। इसलिए अलग-अलग गिनाना वृथा नहीं है, किन्तु आवश्यक होनेसे सार्थक है, इसी कारण "उवत्थिदियनिग्गएसु वा" (उपस्थेन्द्रियनिर्गतेषु) ऐसा न कहकर बारंबार 'पासवणेसु वा सुक्केसु वा सुक्कपुग्गलपरिसाडेसु वा सोणिएसु वा थीपुरिससंजोएसु वा" इस प्रकार हरेकका अलग-अलग नाम गिना कर भगवान्ने कथन किया है। ऐसा कथन न करते तो यह संशय बना रहता

એટલું જ કહી દેત કારણ કે ઉચ્ચાર પ્રસવણ આદિ બધા અશુચિસ્થાનો હોવાને કારણે સંમૂર્ચ્છિમ જીવોની ઉત્પત્તિનાં સ્થાન છે, એ વાત પ્રતીતિથી સિદ્ધ છે એવી સ્થિતિમાં અલગ અલગ નામો ગણાવવાં અહેતુક થઇ જાય. અગર એમ માનો કે જીવોની ઉત્પત્તિનાં સ્થાનો ગણાવવાની મતલબ છે તો જિજ્ઞાસુ શિષ્યોનો સંદેહ ત્યાં સુધી દૂર નહિ થઇ શકે કે જ્યાં સુધી તેમને સાફ ન બતાવી દેવામાં આવે કે કઇ કઇ જગ્યાઓમાં સંમૂર્ચ્છિમ જીવોનો જન્મ થાય છે. તેથી કરીને અલગ અલગ ગણાવવું એ વૃથા નથી, કિન્તુ આવશ્યક હોવાથી સાર્થક છે. એ કારણે उवत्थिदियनिग्गएसु वा (उपस्थेन्द्रियनिर्गतेषु) એમ ન કહેતા વારવાર पासवणेसु वा सुक्केसु वा सुक्कपुग्गलपरिसाडेसु वा सोणिएसु वा थीपुरिससंजोएसु वा એ રીતે દરેકનાં અલગ અલગ નામો ગણાવીને ભગવાને કથન કર્યું છે એવું કથન ન કરત તો એ સંશય પડત કે સ્ત્રી-પુરૂષના સંભોગ વિના કેવળ શુક્રશોણિત

अन्यथा "स्त्रीपुरुषसंयोगातिरिक्तेषु केवलशुक्रशोणितादिषु संमूर्च्छिमजीवा उत्पद्यन्ते न वा?" इति संशयानपगमे सति मुनीनां संयमपालनं संकटापन्नं स्यादिति ।

वस्तुतस्तु भाषणकाले मुखोत्पतितानां जलकणानामशुचित्वमेव निर्मूलतया दुर्वचम्, शास्त्रे प्रज्ञापनासूत्रोक्तेषूच्चारादिष्वेवाशुचिशब्दप्रयोगदर्शनात्, मुखोत्पतितजलकणार्थे तत्प्रयोगानुपलब्धेश्च, तथाहि व्यवहारसूत्रभाष्ये तृतीयोद्देशके—

"दव्वे भावे असुई भावे आहारवंदणादीहिं" इत्यादिगाथा-(२८६) व्याख्यानावसरे—"अशुचिर्द्विधा–द्रव्यतो भावतश्च, तत्र योऽशुचिना लिप्तगात्रो

कि स्त्रीपुरुषके संभोगके सिवाय केवल शुक्र शोणित आदिमें संमूर्च्छिम जीव उत्पन्न होते हैं या नहीं? इस प्रकारके सन्देहसे मुनियोंको संयमपालन करना मुश्किल हो जाता।

वास्तवमें मुखसे निकलने वाले जलकणोंको अशुचि कहना ही खोटा है, क्योंकि शास्त्रमें प्रज्ञापनासूत्रोक्त उच्चार आदि ही 'अशुचि' शब्दसे कहे गये हैं, और मुखसे निकलने वाले जलकणके अर्थमें 'अशुचि' शब्दका प्रयोग नहीं पाया जाता। व्यवहारसूत्रके भाष्यमें, तीसरे उद्देशमें "दव्वे भावे असुई" इत्यादि २८६ वीं गाथाका व्याख्यान करते समय कहा है– अशुचि दो प्रकारकी है (१) द्रव्य अशुचि और (२) भाव अशुचि। जिस व्यक्तिका शरीर अशुचिसे लिप्त हो अथवा जो विष्ठाका त्याग

આદિમાં સંમૂર્ચ્છિમ જીવો ઉત્પન્ન થાય છે કે નહિ? એ પ્રકારના સંદેહથી મુનિઓને સંયમ પાલન કરવાનુ મુશ્કેલ થઇ પડત.

વાસ્તવમા મુખમાંથી નીકળનારા જળકણોને અશુચિ કહેવા એ ખોટું છે, કારણ કે શાસ્ત્રમાં પ્રજ્ઞાપનાસૂત્રોકત ઉચ્ચાર આદિને જ અશુચિ શબ્દથી ઓળખવામાં આવ્યાં છે અને મુખમાથી નીકળનારા જળકણુના અર્થમાં અશુચિ શબ્દનો પ્રયોગ મળી આવતો નથી. વ્યવહાર સૂત્રના ભાષ્યમાં, ત્રીજા ઉદ્દેશમાં दव्वे भावे असुई ઇત્યાદિ ૨૮૬ મી ગાથાનું વ્યાખ્યાન કરતી વખતે કહ્યું છે—

અશુચિ બે પ્રકારની છે: (૧) દ્રવ્ય અશુચિ અને (૨) ભાવ અશુચિ. જે વ્યકિતનું શરીર અશુચિથી લેપાયલુ હોય અથવા જે વિષ્ઠાનો ત્યાગ કરીને (જાજરૂ

यो वा पुरीषमुत्सृज्य पुतौ न निर्लेपयति स द्रव्यतोऽशुचिः" इत्युक्तम्, किञ्च—" दव्वे भावे असुई दव्वंमि विट्ठमादिलित्तो उ।" इत्यादिगाथा-(२८७) व्याख्यानावसरे "अशुचिर्द्विधा द्रव्ये भावे च, तत्र द्रव्ये विष्ठादिना लिप्तः, आदिशब्दान्मूत्रश्लेष्मादिपरिग्रहः" इत्यभिहितम्। प्रज्ञापनासूत्रोक्ता उच्चाराद्य एवाशुचिपदस्यार्थ इत्याशयेनैव प्रकृते द्रव्यभावभेदेन द्विधा विभाजितेऽप्यशुचिपदार्थे मुखनिर्गतविप्रुषामनुपादानं कृतम्। आवश्यकसूत्रे वन्दनाख्य-तृतीयाध्ययने एकादशाधिकैकशततम-(१११)-गाथाव्याख्यायां हरिभद्रसूरिणाऽप्यशुचिस्थानशब्दस्य विट्प्रधानस्थानार्थकत्वमुक्तम्। एवमेव दर्शनशुद्धि-

---

करके (टट्टी जाकर) मलद्वार नहीं धोता उस व्यक्तिको द्रव्यसे अशुचि कहते हैं, इत्यादि।

तथा इसी व्यवहार भाष्यके तीसरे उद्देशेकी 'दव्वे भावे असुई दव्वंमि विट्ठमादिलित्तो उ" इस २८७वीं गाथाकी व्याख्या करते समय टीकाकारने कहा है–विष्ठा आदिसे लिप्तको द्रव्य अशुचि कहते हैं। यहाँ आदि शब्दसे मूत्र और श्लेष्म आदिको ग्रहण करना चाहिए, ऐसा कहा है। प्रज्ञापनासूत्रमें कहे हुए उच्चार आदि ही अशुचि पदका अर्थ है, इसी आशयसे प्रकृतमें द्रव्य भावका भेद कर देने पर भी अशुचि पदार्थोंमें मुखसे निकलने वाले जलकणोंका ग्रहण नहीं किया है।

आवश्यकसूत्रके वन्दना नामक तीसरे अध्ययनमें हरिभद्रसूरिने १११वीं गाथाकी व्याख्या करते समय अशुचि शब्दका अर्थ विट्प्रधान स्थान

જઈને) મળદ્વાર નથી ધોતો એ વ્યકિતને દ્રવ્યથી અશુચિ કહે છે; ઇત્યાદિ.

તથા—એ વ્યવહારસૂત્ર ભાષ્યની दव्वे भावे असुई दव्वंमि विट्ठमादिलित्तो उ એ ૨૮૭ મી ગાથાની વ્યાખ્યા કરતી વખતે કહ્યુ છે—

વિષ્ઠાઆદિથી લિપ્તને દ્રવ્ય અશુચિ કહે છે અહીં 'આદિ' શબ્દથી મૂત્ર અને શ્લેષ્મ આદિનું ગ્રહણ કરવું જોઈએ એમ કહ્યુ છે પ્રજ્ઞાપનાસૂત્રમાં કહેલા ઉચ્ચાર આદિ જ અશુચિ શબ્દનો અર્થ છે, એ આશયથી પ્રકૃતમાં દ્રવ્યભાવનો ભેદ કરતાં છતાં પણ અશુચિ પદાર્થોમાં મુખથી નીકળતા જળકણોને ગ્રહણ કર્યાં નથી

આવશ્યક સૂત્રના વંદના નામક ત્રીજા અધ્યયનમાં હરિભદ્ર સૂરિએ ૧૧૧ મી ગાથાની વ્યાખ્યા કરતાં અશુચિ શબ્દનો અર્થ વિટ્પ્રધાન સ્થાન કર્યો છે. દર્શન-

नामके ग्रन्थेऽपि प्रतिपादितम् । उत्तराध्ययनसूत्रे एकोनविंशेऽध्ययने द्वादशगाथाव्याख्यायां भावविजयगणिनाऽपि–"अशुचिभ्यां=शुक्रशोणिताभ्यां संभवम्=उत्पन्नम् अशुचिसम्भवम्" इत्युक्तम् । तत्रैव कमलसंयमोपाध्यायेनापि सर्वार्थसिद्धिटीकायाम्—"अशुचिसम्भवम् = अशुचिरूपशुक्रशोणितोत्पन्नम्"–इति व्याख्यातम्, सूत्रकृताङ्गे द्वितीयश्रुतस्कन्धे द्वितीयाध्ययने नरकवर्णने षट्षष्टितम-(६६) सूत्रे–'असुई' इत्यस्य टीकायाम्–" अशुचयो विष्ठासृक्क्लेदप्रधानत्वात्" इति शीलाङ्काचार्येण कथितम् । क्लेदः प्रस्वेदः (पसीना) इति हिन्दीशब्दसागरकोशः । स च मुखजलाद्भिन्न इत्यतिरोहितमेव सर्वेषाम् । प्रस्वेदेऽपि

किया है । दर्शनशुद्धि नामक ग्रन्थमें भी ऐसा ही प्रतिपादन किया है । उत्तराध्ययनसूत्रमें उन्नीसवें अध्ययनकी बारहवीं गाथाकी व्याख्या करते समय भावविजयगणिने कहा है–"अशुचिभ्यां=शुक्रशोणिताभ्यां संभवम्=उत्पन्नम् अशुचिसंभवम् ।" इसी सूत्रकी सर्वार्थसिद्धि नामक टीकामें कमलसंयम उपाध्यायने ऐसा व्याख्यान किया है–" अशुचिसंभवम्=अशुचिरूप-शुक्रशोणितोत्पन्नम् ।

सूत्रकृताङ्गसूत्रमें द्वितीय श्रुतस्कन्धके द्वितीय अध्ययनमें नरकके वर्णनमें ६६ वें सूत्रमें 'असुई' पदकी टीकामें शीलाङ्काचार्यने कहा है–"अशुचयो विष्ठासृक्क्लेदप्रधानत्वात् ।" यहाँ क्लेद पसीनाको कहा है । यह बात सबको विदित ही है कि मुखसे निकलने वाले जलकण और पसीना एक नहीं हैं दोनों अलग-अलग हैं। पसीनेमें भी संमूर्च्छिम जीव उत्पन्न नहीं होते, क्योंकि संमूर्च्छिम जीवोंके उत्पत्ति–स्थानोंकी गिनती

શુદ્ધિ નામક ગ્રંથમાં પણ એવું જ પ્રતિપાદન કર્યું છે. ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રમાં ૧૯ મા અધ્યયનની બારમી ગાથાની વ્યાખ્યા કરતાં ભાવવિજયગણિએ કહ્યું છે કે– अशुचिभ्यां = शुक्रशोणिताभ्यां संभवम् = उत्पन्नम् अशुचिसंभवम् । આ સૂત્રની સર્વાર્થસિદ્ધિ નામક ટીકામાં કમલસંયમ ઉપાધ્યાયે એવું વ્યાખ્યાન કર્યું છે કે– अशुचिसंभवम्=अशुचिरूप–शुक्रशोणितोत्पन्नम् ।

સૂત્રકૃતાગ સૂત્રમાં દ્વિતીય શ્રુતસ્કંધના બીજા અધ્યયનમાં નરકના વર્ણનમાં ૬૬ મા સૂત્રમાં असुई શબ્દની ટીકામાં શીલાગાચાર્યે કહ્યું છે કે अशुचयो विष्ठासृक्क्लेदप्रधानत्वात् । અહીં ક્લેદ પસીનાને કહ્યો છે. એ વાત સૌ જાણે છે કે મુખથી નીકળતા જળકણ અને પસીનો એક નથી–બેઉ જૂદા–જૂદા છે. પસીનામાં પણ સંમૂર્ચ્છિમ જીવો ઉત્પન્ન થતા નથી, કારણ કે સંમૂર્ચ્છિમ જીવોનાં ઉત્પત્તિ–

न संमूर्च्छिमजीवोत्पत्तिः, तत्परिगणने तस्यानुक्तत्वात्। पिण्डनिर्युक्तौ च पूतिकर्मदोषभेदस्य द्रव्यपूतेरुदाहरणे अशुचिगन्धशब्दस्य पुरीषगन्धार्थकत्वं निगदितम्।

मानवधर्मशास्त्रेऽपि भाषणकालिकमुखोद्गतविप्रुषां मेध्यत्वमेवोक्तं नत्वशुचित्वं, यथा मनुस्मृतौ पञ्चमाध्याये—

" मक्षिका विप्रुषश्छाया, गौरश्वः सूर्यरश्मयः।
रजो भूर्वायुरग्निश्च, स्पर्शे मेध्यानि निर्दिशेत् ॥ ५ ॥" १३३ ॥इति।

किञ्च दोरकाश्रयणमेव हिंसानिदानं मत्वा हस्तेन शिरःपश्चाद्भागे ग्रन्थिदानेन वा मुखवस्त्रिकां धारयताऽपि भाषणकालिकमुखोत्पतितजलकणेषु संमूर्च्छिमजीवोत्पत्तिस्थानत्वाभावोपपादनाय प्रकृतोपात्तानि प्रमाणान्यवश्यं शरणीकरणीयानि,

---

करते समय भगवान्ने पसीना नहीं कहा है। पिण्डनिर्युक्तिमें पूतिकर्म-दोषके भेद द्रव्यपूतिके उदाहरणमें 'अशुचिगन्ध' शब्दको विष्ठा-गन्ध वाले अर्थमें प्रयोग किया है।

मानवधर्मशास्त्रमें भाषण करते समय निकलने वाले जलकणोंको अशुचि नहीं कहा है। मनुस्मृति पाँचवाँ अध्याय–

" मक्षिका विप्रुषश्छाया, गौरश्वः सूर्यरश्मयः।
रजो भूर्वायुरग्निश्च, स्पर्शे मेध्यानि निर्दिशेत् ॥" १३३।

डोरा धारण करनेको ही हिंसाका कारण मान कर हाथसे अथवा सिरके पीछे गांठ लगा कर मुखवस्त्रिका धारण करने वालोंको भी इन प्रमाणोंकी शरण लेनी चाहिए; जो यह बतानेके लिए यहाँ दिये गये हैं कि भाषण करते समय मुखसे निकलने वाले जलकणोंमें संमूर्च्छिम जीव

સ્થાનોની ગણત્રી કરતી વખતે ભગવાને પસીનો કહેલો નથી. પિંડનિર્યુક્તિમાં પૂતિકર્મદોષના ભેદ દ્રવ્યપૂતિના ઉદાહરણમાં अशुचि-गंध શબ્દનો વિષ્ઠા-ગંધવાળા અર્થમાં પ્રયોગ કર્યો છે

માનવધર્મશાસ્ત્રમાં ભાષણ કરતી વખતે નીકળતા જળકણોને અશુચિ કહ્યા નથી. મનુસ્મૃતિના પાંચમા અધ્યાયમાં કહ્યું છે—

मक्षिका विप्रुषश्छाया, गौरश्वः सूर्यरश्मयः।
रजो भूर्वायुरग्निश्च, स्पर्शे मेध्यानि निर्दिशेत् ॥१३३॥

દોરો ધારણ કરવાને જ હિંસાનું કારણ માનીને હાથથી અથવા શિરની પાછળ ગાંઠ વાળીને મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરનારાઓએ પણ આ પ્રમાણોનું શરણ લેવું જોઇએ, જે એ બતાવવાને માટે અહીં આપવામાં આવ્યાં છે કે-ભાષણ કરતી વખતે મુખથી નિકળતા જળકણોમાં સંમૂર્ચ્છિમ જીવ ઉત્પન્ન નથી થતા, અન્યથા વ્યાખ્યાન

अन्यथा तेषामपि धर्मोपदेशकाले द्वित्रहोरापर्यन्तं भाषणे मुखोपरि मुखवस्त्रिकाधारणस्याऽऽवश्यकतया तत्र मुखोत्पतितजलकणैरार्द्रतापत्तिर्वारयितुमशक्यैव, लोके हि अनावृतमुखेन पुस्तकं पठतां परं प्रति ब्रुवतां च मुखविप्रुषः पुस्तके परदेहे च पतन्त्यो लक्ष्यन्ते, पुनः समीतरवर्त्तिमुखवस्त्रिकायां न ताः पतिष्यन्तीति कल्पना किं दुराग्रहं नावेदयेदित्यलम् ।

नन्वेवं सूक्ष्मव्यापिसम्पातिमवायुकायादिजीवविराधनापरिहारार्थमेव यदि सदा सदोरकमुखवस्त्रिकाबन्धने सावधानता विधीयते तर्हि भोजनकाले तदपसारणावश्यकतया कथं तादृशजीवविराधनापरिहारः ?, इति चेच्चित्तमवधेहि ।

उत्पन्न नहीं होते । अन्यथा धर्मोपदेश देते समय वे दो-दो तीन तीन घण्टे बोलते हैं उस समय मुखवस्त्रिका धारण करना आवश्यक होनेके कारण मुखसे निकलने वाले जलकणोंसे मुखवस्त्रिका गीली हो जायगी और इस आपत्ति का निवारण करना शक्य नहीं है ।

लोकमें खुले मुँह पुस्तक पढनेवालोंके तथा दूसरोंसे वार्तालाप करने वालोंके मुखसे जलकण निकल कर पुस्तक पर तथा दूसरेकी देह पर गिरते हुए देखे जाते हैं । फिर मुखके पास ही रहनेवाली मुखवस्त्रिका पर कण नहीं गिरेंगे, ऐसी कल्पना करना दुराग्रहको ही प्रगट करता है ।

प्रश्न–सूक्ष्म, व्यापी, संपातिम तथा वायुकाय आदि जीवोंकी विराधनासे बचनेके लिए ही यदि सदा डोरा सहित मुखवस्त्रिका बाँधनेमें सावधानी रखी जाती है तो भोजन करते समय उन जीवोंकी विराधनासे कैसे बच सकते हैं? क्योंकि उस समय मुखवस्त्रिका खोल लेना आवश्यक है ।

વાંચતી વખતે બબ્બે ત્રણ-ત્રણ કલાક સુધી બોલે છે, ત્યારે મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરવી આવશ્યક હોવાથી મુખથી નીકળતા જલકણોથી મુખવસ્ત્રિકા ભીની થઈ જશે અને એ આપત્તિ નિવારવાનુ શકય નથી

લોકોમાં ખુલ્લે મુખે પુસ્તક વાંચનારના તથા બીજાઓ સાથે વાર્તાલાપ કરનારના મુખમાંથી જલકણ નીકળીને પુસ્તક પર તથા બીજાના શરીર પર પડતા જોવામાં આવે છે તો પછી મુખની પાસે જ રહેનારી મુખવસ્ત્રિકા પર કણ નહિ પડે, એવી કલ્પના કરવી એ દુરાગ્રહને પ્રકટ કરે છે.

પ્રશ્ન–સૂક્ષ્મ, વ્યાપી, સંપાતિમ તથા વાયુકાય આદિ જીવોની વિરાધનાથી બચવાને માટે જ જો સદા દોરા સાથે મુખવસ્ત્રિકા બાંધવામાં સાવધાની રાખવામાં આવે છે તો ભોજન કરતી વખતે એ જીવોની વિરાધનાથી કેવી રીતે બચી શકાય ? કારણ કે એ વખતે મુખવસ્ત્રિકા છોડી નાંખવાની જરૂર પડે છે.

अत्रैव चतुर्थाध्ययने-" जयं भुंजंतो भासंतो पावं कम्मं न बंधइ " इति भगवताऽभिहितम् , [1]प्रागुक्तरीत्या मुखवस्त्रिकाबन्धनस्याऽऽवश्यकत्वेऽपि तदपसारणमन्तरेण ' भुंजंतो ' इति पदबोध्याया भोजनक्रियाया अनुपपत्त्या भोजनकाले मुनिना मुखवस्त्रिका मोचनीयेति गम्यते, अत एवात्र-' जयं भुंजंतो ' इत्यस्य यथाकल्पलब्धान्तप्रान्ताद्येवाशनं मण्डलदोपवर्जनपूर्वकमभ्यवहरमाणः' इत्येवाशयो न तु मुखवस्त्रिकां बद्ध्वैव भुञ्जान इति, तथा चोक्तयतनापूर्वकभोजनकाले मुखवस्त्रिकापसारणमागमानुकूलमेवेति न तस्य पापकर्मबन्धनहेतुत्वम् , अनेनैवाऽऽ-

१ ' पूर्वोक्तप्रमाणानुसारेण ' इत्यर्थः ।

उत्तर-चित्त लगाकर सुनो। इसी (दशवैकालिक) के चौथे अध्ययनमें भगवान्ने कहा है "जयं भुंजंतो भासंतो पावं कम्मं न बंधइ। " अर्थात् यतनापूर्वक आहार करने और भाषण करनेसे पापकर्मका वन्ध नहीं होता है पहले कहे गये प्रमाणोंसे मुखवस्त्रिका बांधना सिद्ध होने पर भी उसके निकाले विना 'भुंजंतो' पदसे बोध्य भोजनक्रिया नहीं हो सकती। इससे ऐसा तात्पर्य निकलता है कि भोजन करते समय मुनिको मुखवस्त्रिका हटा देनी चाहिये। अतः ' जयं भुंजंतो " पदका " कल्पके अनुसार प्राप्त हुआ अन्त प्रान्त आदि आहार मण्डलदोपोंका त्याग करके भोगता हुआ" ऐसा अर्थ समझना चाहिए। ऐसा नहीं कि मुखवस्त्रिका बाँधे-बाँधे आहार करे। अत एव उक्त-यतना-पूर्वक भोजनकालमें मुखवस्त्रिका त्याग देना आगमके अनुकूल है, अतः उससे पापकर्मका बन्ध

ઉત્તર-ચિત્ત રાખીને સાંભળો એના (દશવૈકાલિકના) જ ચોથા અધ્યયનમાં ભગવાને કહ્યું છે કે जयं भुंजंतो भासंतो पावं कम्मं न बंधइ અર્થાત્ યતનાપૂર્વક આહાર કરવાથી પાપકર્મનો બંધ થતો નથી પૂર્વોક્ત પ્રમાણોથી મુખવસ્ત્રિકા બાંધવી એ સિદ્ધ થયા છતાં પણ એને કાઢી નાખ્યા વિના भुंजंतो શબ્દથી બોધ્ય ભોજન-ક્રિયા થઈ શકતી નથી. તેથી એવું તાત્પર્ય નીકળે છે કે ભોજન કરતી વખતે મુનિએ મુખવસ્ત્રિકા હટાવી દેવી જોઈએ. એટલે जयं भुंजंतो પદનો અર્થ "કલ્પને અનુસારે પ્રાપ્ત થએલો અંત પ્રાંત આદિ આહાર મંડલ-દોષોનો ત્યાગ કરીને ભોગવતાં" એ પ્રમાણે સમજવો જોઈએ. એમ ન સમજવું જોઈએ કે મુખવસ્ત્રિકા બાંધી રાખીને આહાર કરે. એટલે ઉક્ત-યતનાપૂર્વક ભોજનકાળમાં મુખવસ્ત્રિકાનો ત્યાગ કરવો એ આગમને અનુકૂળ છે, તેથી પાપકર્મનો બંધ થતો નથી

शयेन च–" पावं कम्मं न बंधइ " इत्युक्तं भगवता।

एवं च भगवत्तीर्थङ्करगणधरादिवचनपर्यालोचनेन निरवशेषसंशयतिमिरापगमपुरस्सरं प्रकाशमाने मानसे वायुकायादिविराधनापरिहाराय सदोरकमुखवस्त्रिकाबन्धनं साह्लादं स्थानमासादयति। रागद्वेषदोषाकलितचेतसां भगवद्वचनामृत-रसास्वादवञ्चितानां विविधसंशयपराहते चेतसीममर्थं दुर्लक्ष्यमभिलक्ष्य हस्तदुष्प्राप्य-मर्थमाकलयितुं सोपानमिवालम्बनं तेभ्यः पुरस्कर्त्तुं सप्रमाणमेतत् सम्यगुपपादितम्।

नहीं होता। इसी आशयसे भगवान्ने 'पावं कम्मं न बन्धइ' कहा है।

इस प्रकार भगवान् तीर्थङ्कर गणधरादिकोंके वचनोंकी पर्यालोचना करनेसे सकलसंशयरूप अन्धकारके दूर हो जानेके कारण प्रकाशमान ऐसे हृदयमें वायुकाय आदिकी विराधनाका दोष टालनेके लिए दोरासहित मुखवस्त्रिकाका बान्धना आल्हादपूर्वक स्थानको धारण करता है।

रागद्वेषरूपी दोषसे दूषित भगवद्वचनामृतके रसास्वादसे वञ्चित पुरुषोंके अनेक दुर्विकल्पोंसे पराहत हुए चित्तमें इस अर्थको दुर्लक्ष्य समझकर उनके लिए हाथसे न प्राप्त होनेवाली वस्तुकी प्राप्तिके लिए सोपान (सीढी) की तरह आलम्बन अगाडी रखकर यह सब सप्रमाण प्रतिपादित किया गया है।

એ આશયથી ભગવાને पावं कम्मं न बंधइ કહ્યુ છે.

એ પ્રકારે ભગવાન્ તીર્થંકર ગણુધરાદિનાં વચનોની પર્યાલોચના કરવાથી સકલ સંશયરૂપ અંધકાર દૂર થઇ જવાને લીધે પ્રકાશમાન એવા હ્રદયમાં, વાયુકાય આદિની વિરાધનાનો દોષ ટાળવાને માટે દોરાસહિત મુખવસ્ત્રિકાનું બાંધવું તે આહ્લાદપૂર્વક સ્થાનને ધારણુ કરે છે.

રાગદ્વેષ રૂપી દોષથી દૂષિત, ભગવદ્વચનામૃતના રસાસ્વાદથી વંચિત એવા પુરૂષોના અનેક દુર્વિકલ્પોથી પરાહત એવા ચિત્તમાં આ અર્થને દુર્લક્ષ્ય સમજીને તેમને માટે હાથથી ન પ્રાપ્ત થનારી વસ્તુની પ્રાપ્તિને માટે સોપાન (સીડી)ના જેવું આલંબન આગળ રાખીને આ બધું સપ્રમાણ પ્રતિપાદિત કર

अत्र प्रमाणतयोपन्यस्तग्रन्थनामानि विनेयबुद्धिवैमल्याय निर्दिश्यन्ते—

(१) श्री-भगवतीसूत्रम् ।
(२) हितशिक्षारासः ।
 (श्रावकऋषभदासकृतः)
(३) हरिबलमच्छीरासः
 (मुनिलब्धिविजयकृतः)
(४) योगशास्त्रम् (हेमचन्द्राचार्य०)
(५) ओघनिर्युक्तिः ।
(६) प्रवचनसारोद्धारः ।
(७) प्रकरणरत्नाकरः ।
(१०) उत्तराध्ययनसूत्रटीकाः ३ ।
 (१) सर्वार्थसिद्धिटीका ।
 (२) भावविजयकृतवृत्तिः ।
 (३) पाईटीका ।
(११) विशेषावश्यकबृहद्वृत्तिः
(१२) अन्तकृद्दशाङ्गम् ।
(१३) आवश्यकसूत्रटीका ।
 (हारिभद्रीया)
(१४) ज्ञाताधर्मकथाङ्गम् ।
(१५) निशीथसूत्रम् ।
(१६) बृहत्कल्पभाष्यम् ।
(१७) व्यवहारभाष्यम् ।
(१८) आचाराङ्गसूत्रम् ।
(१९) विपाकसूत्रम् ।
(२०) सामाचारी ।
 (देवचन्द्रसूरिकृता)
(२१) प्रज्ञापनासूत्रम् ।
(२२) भावप्रकाशः ।
(२३) सुश्रुतसंहिता ।
(२४) योगचिन्तामणिः ।
(२५) माधवनिदानम् ।
(२६) तिब्बअकब्बर ।
(२७) शरीरविज्ञानम् ।
(२८) मानवधर्मशास्त्रम् ।
(२९) पिण्डनिर्युक्तिः ।
(३०) सूत्रकृताङ्गम् ।
(३१) दशवैकालिकसूत्रम् । इति ।

॥ इति मुखवस्त्रिकाविचारः ॥

यहां विनीत शिष्यकी बुद्धिका विकाशके लिए प्रमाणरूपसे दिये गये ग्रन्थोंकी कुछ नामावली संस्कृत टीकामें दी गई है, पाठकगण वहां देख लेवें ॥

॥ इति मुखवस्त्रिकाविचार ॥

અહીં વિનીત શિષ્યની બુદ્ધિના વિકાસને માટે પ્રમાણરૂપે આપેલા ગ્રંથોની નામાવલી સંસ્કૃતટીકામાં આપવામાં આવી છે, ત્યાંથી પાઠકોએ જોઇ લેવી.

ઇતિ મુખવસ્ત્રિકાવિચાર.

तपः

तपः=तपति–ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधं कर्म दहतीति तपः, तत्तु बाह्याभ्यन्तर-भेदाद्द्विधा, तत्र बाह्यं तपः षड्विधम् , तथा चोक्तम्—

"अणसणमूणोयरिया, भिक्खायरिया य रसपरिच्चाओ।
कायकिलेसो संलीणया य बज्झो तवो होइ ॥ १ ॥" इति।

छाया–"अनशनमूनोदरिका, भिक्षाचर्या च रसपरित्यागः।
कायक्लेशः संलीनता च, बाह्यं तपो भवति ॥ १ ॥"

(१) अनशनं=चतुर्थभक्तादिषाण्मासिकान्तं यावज्जीवनं वाऽशेषाहारपरिहारः।

। तप ।

जिससे ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्म भस्म हो जावें उसे तप कहते हैं। वह दो प्रकारका है–(१) बाह्य और (२) आभ्यन्तर। बाह्य तप छह प्रकारका है–

(१) अनशन, (२) ऊनोदरी, (३) भिक्षाचर्या, (४) रसपरित्याग, (५) कायक्लेश, (६) संलीनता।

(१) अनशन=इहलोक परलोक सम्बन्धी कामनारहित चतुर्थभक्त, षष्ठभक्त, अष्टमभक्त आदि छहमासी तप पर्यन्त, अथवा यावज्जीवन संपूर्ण आहारका परित्याग करना अनशन तप कहलाता है।

તપ.

જેથી જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મ ભસ્મીભૂત થઇ જાય તેને તપ કહે છે. તપ બે પ્રકારનો છે. (૧) બાહ્ય અને (૨) આભ્યંતર બાહ્ય તપ છ પ્રકારનો છે—(૧) અનશન, (૨) ઊનોદરી, (૩) ભિક્ષાચર્યા, (૪) રસપરિત્યાગ, (૫) કાયકલેશ, (૬) સંલીનતા.

(૧) **અનશન**—ઇહલોક પરલોક સંબંધી કામના રહિતપણે, ચતુર્થ ભક્ત, ષષ્ઠ ભક્ત, અષ્ટમ ભક્ત (સળંગ એક ઉપવાસ, બે ઉપવાસ, ત્રણ ઉપવાસ) આદિ છ માસી તપ સુધી અથવા જીવનપર્યંત સંપૂર્ણ આહારનો પરિત્યાગ કરવો એ અનશન-તપ કહેવાય છે.

(२) ऊनोदरिका=यावताऽन्नादिनोदरं परिपूर्यते तत्र कवलमात्रमपि न्यूनयित्वाऽभ्यवहरणम् । (३) भिक्षाचर्या=स्वाध्यायाविरोधियथाविधिविशुद्धभिक्षाकृते चरणम् (४) रसपरित्यागः=दुग्धादिविकृतित्यागः । (५) कायक्लेशः=शीतोष्णादिसहिष्णुत्वं केशलुञ्चनं च । (६) संलीनता=स्त्रीपशुपण्डकरहितवसतौ कूर्मवदङ्गोपाङ्गाद्याकुञ्चनपूर्वकावस्थानम् ।

(२) ऊनोदरी=जितने अन्नसे उदरकी पूर्ति हो जाती है उससे एक ग्रास भी कम आहार करनेको ऊनोदरी तप कहते हैं। इससे स्वाध्याय, ध्यान आदि क्रियाएँ अच्छीतरह निभती हैं।

(३) भिक्षाचर्या=जिससे स्वाध्याय, ध्यान आदि क्रियाओंमें विघ्न न आवे, इसप्रकार शास्त्रानुकूल विधिसे विशुद्ध भिक्षाके लिए पर्यटन करना भिक्षाचर्या तप कहलाता है।

(४) रसपरित्याग=दूध, दही, घृत, तेल, मीठेका त्याग करनेको रसपरित्याग कहते हैं।

(५) कायक्लेश= शीत, उष्ण आदिका सहन करना, अथवा केशलोच करनेको कायक्लेश तप कहते हैं।

(६) संलीनता=स्त्री-पशु-पण्डकरहित वसतीमें कछुवेकी तरह अङ्गोपाङ्ग संकुचित करके स्थित होना संलीनता तप कहलाता है।

(२) ઊનોદરી—જેટલા અન્નથી ઉદર ભરાય તેથી એક કોળિયો માત્ર પણ ઓછો આહાર કરવો તે ઊનોદરી તપ કહેવાય છે. તેથી સ્વાધ્યાય, ધ્યાન, આદિ ક્રિયાઓનો સારી રીતે નિભાવ થાય છે

(૩) ભિક્ષાચર્યા—જેથી સ્વાધ્યાય, ધ્યાન આદિ ક્રિયાઓમાં વિઘ્ન ન આવે, એ પ્રકારે શાસ્ત્રાનુકૂલ વિધિથી વિશુદ્ધ ભિક્ષાને માટે પર્યટન કરવું એ ભિક્ષાચર્યા તપ કહેવાય છે

(૪) રસપરિત્યાગ—દૂધ, દહીં, ઘી, તેલ, મીઠાઈનો ત્યાગ કરવો એને રસપરિત્યાગ કહે છે.

(૫) કાયક્લેશ—ટાઢ, તાપ, આદિને સહન કરવાં. અથવા કેશલોચ કરવો એ કાયક્લેશ તપ કહેવાય છે.

(૬) સંલીનતા—સ્ત્રી-પશુ-પંડક-રહિત વસતીમા (સ્થાનમાં) કાચબાની પેઠે અંગોપાંગ સંકોચીને રહેવું તે સંલીનતા તપ કહેવાય છે.

आभ्यन्तरमपि तपः षड्विधं, तथा चोक्तम्—

"पायच्छित्तं विणओ वेयावच्चं तहेव सज्झाओ।
झाणं च विउस्सग्गो एसो अब्भिंतरो तवो ॥ १ ॥" इति।

छाया—"प्रायश्चित्तं विनयः, वैयावृत्यं तथैव स्वाध्यायः।
ध्यानं च व्युत्सर्गः, एतदाभ्यन्तरं तपः ॥ १ ॥"

तत्र (१) प्रायश्चित्तम्=उपचिताऽतीचारशोधनं, यथाऽऽलोचनाप्रतिक्रमणादि। (२) विनयः=गुर्वाद्याराधनं, यथाऽभ्युत्थानाऽऽसनप्रदानाभिवादनतन्मनोऽनुकूलप्रवृत्त्यादि। (३) वैयावृत्त्यं=साधूनामशनपानाद्यानयनादिना साहाय्यकरणम्। (४) स्वाध्यायः=श्रुतधर्माराधनं, स च वाचना-प्रच्छना-परिवर्त्तनाऽनुप्रेक्षा-धर्म-

---

आभ्यन्तर तपके भी छह भेद हैं-(१) प्रायश्चित्त, (२) विनय, (३) वैयावृत्य, (४) स्वाध्याय, (५) ध्यान, (६) व्युत्सर्ग।

(१) प्रायश्चित्त=लगेहुए अतिचारोंकी विशुद्धि करना प्रायश्चित्त तप है, जैसे आलोचना, प्रतिक्रमण आदि करना।

(२) विनय=गुरु आदिकी आराधना करना विनय है। गुरु आदिके आने पर खड़ा होना, आसन देना, वन्दना करना, उनके मनके अनुकूल प्रवृत्ति करना आदि अनेक प्रकारका विनय होता है।

(३) वैयावृत्य=अशन पान आदि लाकर मुनियोंको सहायता पहुंचाना वैयावृत्य (वेयावच्च) तप कहलाता है।

(४) स्वाध्याय=श्रुतज्ञानकी आराधना करना स्वाध्याय है। स्वाध्यायके पांच भेद हैं—(१) वाचना, (२) पृच्छना, (३) परिवर्त्तना, (४) अनुप्रेक्षा

આભ્યંતર તપના પણ છ ભેદો છે. (૧) પ્રાયશ્ચિત્ત, (૨) વિનય, (૩) વૈયાવૃત્ય, (૪) સ્વાધ્યાય, (૫) ધ્યાન, (૬) વ્યુત્સર્ગ.

(૧) **પ્રાયશ્ચિત્ત**—લાગેલા અતિચારોની વિશુદ્ધિ કરવી એ પ્રાયશ્ચિત્ત તપ છે, જેમકે આલોચના, પ્રતિક્રમણ વગેરે કરવાં.

(૨) **વિનય**—ગુરૂ આદિની આરાધના કરવી એ વિનય છે. ગુરૂ આદિ આવે ત્યારે ઊભા થવું, આસન આપવું, વંદના કરવી, એમના મનને અનુકૂળ પ્રવૃત્તિ કરવી વગેરે અનેક પ્રકારે વિનય થાય છે

(૩) **વૈયાવૃત્ય**—અશન પાન આદિ લાવીને મુનિઓને સહાય આપવી આદિ વૈયાવૃત્ય (વૈયાવચ્ચ) તપ કહેવાય છે

(૪) **સ્વાધ્યાય**—શ્રુતજ્ઞાનની આરાધના કરવી એ સ્વાધ્યાય છે. સ્વાધ્યાયના પાંચ ભેદો છે. (૧) વાચના, (૨) પૃચ્છના, (૩) પરિવર્તના, (૪) અનુપ્રેક્ષા,

कथाभेदात् पञ्चविधः। (५) ध्यानम्=एकमात्रावलम्बनेन पवनासंपृक्तदीपशिखाया इव चित्तस्य स्थिरीकरणम्।

यद्यपि तच्चतुर्विधम् आर्त्त-रौद्र-धर्म-शुक्लभेदात्, तथापि धर्म-शुक्ल-लक्षणं द्वयमेवोपादेयं पूर्वद्वयस्य कर्मबन्धहेतुत्वात्। (६) व्युत्सर्गः=कायादिसंचालन-

---

और (५) धर्मकथा।

शिष्योंको आगम पढ़ानेको 'वाचना' कहते हैं। सद्भावसे संशय दूर करनेके लिए, अथवा तत्त्वका निश्चय करनेके लिए पूंछना 'पृच्छना' कहलाता है। शुद्ध उच्चारण करके वार-वार मनन करना 'अनुप्रेक्षा' है। धर्मकी चर्चा या उपदेश करनेको 'धर्मकथा' कहते हैं।

(५) ध्यान=वायुके स्पर्श नहीं होनेसे जैसे दीपककी ज्योति स्थिर हो जाती है, वैसेही मनको किसी एक विषयमें स्थिर करलेनेको ध्यान कहते हैं। ध्यान यद्यपि आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल भेदसे चार प्रकारका है, तथापि यहाँ धर्म और शुक्ल ये दो शुभ ध्यान ही उपादेय हैं, यही दोनों तपमें अन्तर्गत हैं, पहलेके दो अशुभ ध्यान कर्मबन्धनके कारण हैं।

(६) व्युत्सर्ग=काय आदिके व्यापारको, तथा कषाय आदिको त्याग-कर उपयोगसहित रहनेको 'व्युत्सर्ग' कहते हैं।

અને (૫) ધર્મકથા.

શિષ્યોને આગમ ભણાવવા અને પોતે ભણવું એ વાચના કહેવાય છે. સદ્‌ભાવ-પૂર્વક સંશય દૂર કરવા માટે, અથવા તત્ત્વનો નિશ્ચય કરવા માટે પૃચ્છા કરવી-પૂછવું એ પૃચ્છના કહેવાય છે શુદ્ધ ઉચ્ચારણ કરીને વારવાર આવૃત્ત કરવું તે પરિવર્તના કહેવાય છે ભણેલા અર્થનું વારંવાર મનન કરવું એ અનુપ્રેક્ષા છે. ધર્મની ચર્ચા અથવા ઉપદેશ કરવો એ ધર્મકથા કહેવાય છે

(૫) ધ્યાન—વાયુનો સ્પર્શ નહિ થવાથી જેમ દીવાની જ્યોત સ્થિર રહે છે, તેવી રીતે મનને કોઇ એક અવલંબનમાં સ્થિર કરી લેવુ એ ધ્યાન કહેવાય છે. ધ્યાન આર્ત, રૌદ્ર, ધર્મ અને શુકલ એવા ભેદે કરીને ચાર પ્રકારનો છે, તો પણ અહીં ધર્મ અને શુકલ એ બે શુભ ધ્યાન જ ઉપાદેય છે એ બે ધ્યાન તપમાં અંતર્ગત છે, પહેલાં બે અશુભ ધ્યાન કર્મબંધના કારણ છે.

(૬) વ્યુત્સર્ગ—કાયા આદિના વ્યાપારને તથા કષાય આદિને ત્યજીને ઉપયોગ સહિત રહેવું એ વ્યુત્સર્ગ કહેવાય છે.

निवृत्तिपूर्वकसोपयोगावस्थानम् । एवं बाह्याभ्यन्तरभेदेन द्वादशविधं तपः सिद्धम् ।

ननु अहिंसा-संयम-तपः-स्वरूपस्य धर्मस्योत्कृष्टमङ्गलत्वं प्रतिपाद्यते तत्र तपसोऽनशनादिलक्षणदुःखरूपत्वेन मोक्षहेतुत्वं न प्राप्नोति, तद्धि अशातवेदनीय-कर्मोदयात्मकम्, भगवताऽपि क्षुत्पिपासादयः परीषहा वेदनीयकर्मोदयस्वरूपत्वे-नाऽभ्यधायिषत ।

कर्मक्षयो हि यद्यपि मोक्षाङ्गत्वेन श्रूयतेऽपि शास्त्रे, कर्मोदयस्य तु न क्वचिन्मोक्ष-हेतुत्वं शास्त्रे लोके वा प्रथितम् । एवं सति तस्योत्कृष्टमङ्गलात्मकधर्मरूपत्वकथन-मयुक्तम् ।

इस प्रकार बाह्य और आभ्यन्तरके भेद मिलकर तपके सब बारह भेद होते हैं ।

प्रश्न—अहिंसा, संयम और तपरूप धर्मको उत्कृष्ट मंगल बतलाया है, लेकिन अनशन आदि तप भोजन आदिका त्याग करनेसे होते हैं, इसलिए वे दुःख हैं और दुःख मोक्षका कारण नहीं हो सकता, क्योंकि दुःख असातवेदनीय कर्मके उदयसे होता है । भगवान्ने भी यही प्रति-पादन किया है कि–"क्षुधा पिपासा आदि परिषह वेदनीय कर्मके उदयसे होते हैं ।" कर्मका क्षय तो मोक्षका कारण हो सकता है, परन्तु यह कहीं नहीं सुना कि कर्मका उदय भी मोक्षका कारण है । यह बात न किसी शास्त्रमें है और न लोकमेंही प्रसिद्ध है, इसलिए जब कि तप, कर्मोदय-जन्य होनेसे मोक्षका कारण नहीं हो सकता तो उसे उत्कृष्ट मंगल क्यों

એ પ્રમાણે બાહ્ય અને આભ્યંતરના ભેદ મળીને તપના એકંદર બાર ભેદ થાય છે

પ્રશ્ન—અહિંસા, સયમ અને તપ રૂપ ધર્મને ઉત્કૃષ્ટ મંગલ બતલાવેલ છે, પરન્તુ અનશન આદિ તપ ભોજનાદિનો ત્યાગ કરવાથી થાય છે, તેથી એ દુઃખ છે અને દુ.ખ મોક્ષનું કારણ થઇ શકતું નથી; કારણ કે દુઃખ અસાતા-વેદનીય કર્મના ઉદયથી ઉત્પન્ન થાય છે ભગવાને પણ એમ જ પ્રતિપાદન કર્યું છે કે–" ભૂખ તરસ આદિ પરિષહ વેદનીય કર્મના ઉદયથી જ થાય છે." કર્મનો ક્ષય તો મોક્ષનું કારણ હોઈ શકે છે પરંતુ એવું ક્યાય સાભળ્યુ નથી કે કર્મનો ઉદય પણ મોક્ષનું કારણ છે એ વાત કોઇ શાસ્ત્રમા નથી તેમજ લોકમાં પ્રસિદ્ધ નથી, તેથી જો તપ કર્મોદયજન્ય હોઇને મોક્ષનું કારણ થઇ શકતો નથી તો

दुःखरूपत्वेन तपसो मोक्षसाधनत्वस्वीकारे तु व्याधिनाऽऽतुरस्य, राजदण्डेन तस्करस्य, कशादिघातेनाश्वादेः, दशविधक्षेत्रवेदनया नारकाणां, श्वासोच्छ्वासमात्रमितकालेऽपि सार्द्धसप्तदशमितजन्ममरणनिमित्तकाऽनन्तघोरवेदनायुक्तानां निगोदजीवानां च मोक्षापत्तिः, तेषामपि भवदभिमतमोक्षहेतुदुःखसद्भावादिति।

किञ्चालमेतेन विशेषविचारेण जन्मजरामरणेष्टवियोगाऽनिष्टसंयोगाद्यनेकविधदुःखयुक्ताः सर्व एव संसारिण इत्यविशेषेण सर्वेषां मोक्षापत्तिः स्यात्।

एतदुक्तं भवति–तपः समाचरतः क्षुत्पिपासादयः समुद्भवन्ति, ततश्च भवल-

---

कहा है ?, यदि दुःखरूप तपको मोक्षका कारण मानलिया जाय तो अनेक दोष आते हैं, वे ये हैं कि–जो पुरुष रोगसे अत्यन्त पीड़ा पा रहा है उसे मोक्ष होजाना चाहिये, राजदण्डसे दुःख भोगनेवाले चोर डाकुओंको मोक्ष होना चाहिए, घोडोंपर कोड़ोंकी मार पड़ती है, वे दुःखी होते हैं; अतः उन्हेंभी मोक्ष मिलना चाहिये। इसी प्रकार, क्षेत्रवेदनासे दुःखी नारकी जीवोंको तथा एक श्वासोच्छ्वासमें साढ़े सतरह वार जन्ममरणके अनन्त काल तक दुःख पाने वाले निगोदिया जीवोंको मुक्तिकी प्राप्ति होनी चाहिये। अधिक कहां तक कहें ? संसारके समस्त प्राणी जन्म, मरण, इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग आदि भांति-भांतिके दुःखोंसे दुःखी हैं अत एव सबहीको मोक्ष मिलजाना चाहिये, क्योंकि दुःखको यहां मोक्षका कारण माना है।

जो अनशन आदि तप करता है उसे क्षुधा पिपासा आदि परिषह

તેને ઉત્કૃષ્ટ મંગલ કેમ કહ્યો છે ? જો દુઃખરૂપ તપને મોક્ષનું કારણ માનવામાં આવે તો અનેક દોષો આવે છે, જેમકે–જે પુરૂષ રોગથી અત્યંત પીડા પામી રહ્યો હોય તેનો મોક્ષ થઇ જવો જોઇએ, રાજદંડથી દુઃખ ભોગવવા વાળા ચોર ડાકુઓનો મોક્ષ થવો જોઇએ, ઘોડા પર ચાબૂકનો માર પડે છે તેથી તે દુઃખી થાય છે, તેથી તેને પણ મોક્ષ મળવો જોઇએ એજ પ્રમાણે ક્ષેત્રવેદનાથી દુઃખી એવા નારકી જીવોને તથા એક શ્વાસોચ્છ્વાસમાં સાડી સત્તરવાર જન્મ–મરણનાં દુઃખો અનંતકાળ સુધી પામનાર નિગોદિયા જીવોને પણ મુક્તિની પ્રાપ્તિ થવી જોઇએ વધારે શું કહીએ ? જગતનાં બધાં પ્રાણીઓ જન્મ, મરણ, ઇષ્ટનો વિયોગ, અનિષ્ટનો સંયોગ વગેરે તરેહ તરેહનાં દુઃખોથી દુઃખી છે એટલે એ બધાને મોક્ષ મળી જવો જોઇએ, કારણ કે દુઃખને અહીં મોક્ષના કારણ રૂપ માન્યો છે.

જે અનશન આદિ તપ કરે છે તેને ભૂખ–તરસ આદિ પરિષહ થાય છે

दुःखम् , एतच्च चित्तविक्षेपस्य हेतुः, सति च तस्मिन् अप्रशस्तं ध्यानं, तस्माच्चावश्यं कर्मबन्धः, ततश्च चतुर्गतिकसंसारपरिभ्रमणरूपं महदमङ्गलमिति कथंकथमप्यहिंसा-संयमविशिष्टस्यापि तपसो मोक्षहेतुत्वरूपमुत्कृष्टमङ्गलत्वं न सम्भवदुक्तिकमिति ।

अत्रोच्यते–तपो न तावद्दुःखात्मकं, दुःखं हि नामाऽशातवेदनीयकर्मोदय-विपाकः पीडालक्षण आत्मपरिणामः, तपश्चर्यागर्भिताऽनशनादिव्यापारस्य न पीडात्मकाऽऽत्मपरिणामरूपत्वम् ।

किञ्च तपः पक्षीकृत्य मोक्षसाधनत्वाभावसाध्ये यदुक्तं दुःखरूपत्वसाधनं

होते हैं। परिषह होनेसे तीव्र दुःख होता है। दुःखसे चित्तका विक्षेप होता है। चित्तके विक्षेपसे अशुभ ध्यान होता है। अशुभ ध्यानसे कर्मका बन्ध होता है। कर्मबन्धसे चार गतियोंमें भ्रमण करना पड़ता है, इसप्रकार यह बड़ा अमंगल है। जो प्रबल अमंगल है वह अहिंसा और संयमसे युक्त होनेपर भी उत्कृष्ट मंगल नहीं हो सकता। अमृतमें विष मिला देनेसे क्या विष अमृत हो सकता है। कदापि नहीं। इसलिए तपको मोक्षका कारण मानना उचित नहीं है।

उत्तर—तपको दुःख कहना युक्त नहीं है, वह दुःखरूप नहीं है। क्योंकि असातावेदनीय कर्मके फलको, जो आत्माका ही एक विभाव परिणाम है, और पीड़ारूप है उसे दुःख कहते हैं। अनशन आदि तप पीड़ारूप परिणाम नहीं है, अतः उन्हें दुःख नहीं कहा जा सकता। दूसरी बात यह है–शंकाकारने कहा है कि तप मोक्षका कारण नहीं है। क्योंकि वह दुःख है। यहां "तप मोक्षका कारण नहीं" यह

પરિષહથી તીવ્ર દુઃખ થાય છે દુઃખથી ચિત્તનો વિક્ષેપ થાય છે ચિત્તના વિક્ષેપથી અશુભ ધ્યાન થાય છે અશુભ ધ્યાનથી કર્મનો બંધ થાય છે કર્મબંધથી ચારે ગતિઓમાં પરિભ્રમણ કરવું પડે છે એ રીતે એ મોટું અમંગળ છે જે પ્રબળ અમંગળ છે તે અહિંસા અને સંયમથી યુક્ત થવા છતાં પણ ઉત્કૃષ્ટ મંગળ થઈ શકતું નથી અમૃતમાં વિષ મેળવવાથી શું વિષ અમૃત થઈ શકે છે ? કદાપિ નહિ તેથી તપને મોક્ષનું કારણ માનવું એ ઉચિત નથી

ઉત્તર—તપને દુઃખ કહેવું એ યુ નથી તે દુઃખરૂપ નથી કારણ કે એ સાતાવેદનીય કર્મ કે જે આત્માનો જ એક વિભાવ પરિણામ છે અને પીડારૂપ છે, તેને દુઃખ કહે છે અનશન આદિ તપ પીડારૂપ પરિણામ નથી, તેથી તેને દુઃખ કહી શકાય નહિ. બીજી વાત આ છે શંકાકારે કહ્યું કે તપ મોક્ષનું કારણ નથી, કારણ કે તે દુઃખ છે, પરન્તુ અહીં "તપ મોક્ષનું કારણ નથી" એ

तदयुक्तं, तस्य दुःखजयरूपत्वेन स्वरूपासिद्धेः ।

तत्र (तपसि) जायमानाः क्षुत्पिपासादयः आत्मनः प्रवर्द्धमानविशुद्धपरिणामेन विजिताः सन्तः पीडालक्षणं कार्यं न जनयन्ति। एतेन क्षुत्पिपासादीनां कर्मोदयस्वरूपत्वेऽपि स्वकार्यकरणाऽक्षमतया चित्तविक्षेपाजनकत्वं सिद्धम् ।

प्रतिज्ञा है और "क्योंकि वह दुःख है" यह हेतु है। हेतुका सदा ऐसा ही प्रयोग करना चाहिए जो प्रतिवादीको भी सिद्ध होवे। यदि "वह दुःख है" यह हेतु सिद्ध होता तो शंकाकारका साध्य सिद्ध हो सकता, परन्तु वह सिद्ध नहीं है। क्योंकि पहले बतला चुके हैं कि तप दुःख नहीं है। अत एव यह हेतु स्वरूपसेही असिद्ध है। तप दुःखरूप नहीं, बल्कि दुःखको विजय करना तप कहलाता है।

अनशन आदि तपसे होनेवाले क्षुधा आदि परिषह आत्माके बढ़ते हुए विशुद्ध परिणामसे जीत लिये जाते हैं। क्षुधा दुःख अवश्य है परन्तु उसे तप नहीं कहते, बल्कि क्षुधा पर विजय पानेको तप कहते हैं। क्षुधाको जीतना दुःख नहीं परन्तु सुख है अत एव तप सुखरूप है। क्योंकि तपश्चर्या करनेवालेको भूखकी परवाह ही नहीं रहती। इसलिए शंकाकारका यह कहना ठीक नहीं है कि तपसे पीड़ा उत्पन्न होती है। इस कथनसे यह बात अच्छीतरह सिद्ध हो गई कि क्षुधा आदि परिषह

પ્રતિજ્ઞા છે અને "કારણ કે તે દુઃખ છે" એ હેતુ છે. હેતુનો પ્રયોગ સદા એવો કરવો જોઇએ કે જે પ્રતિવાદીને મતે પણ સિદ્ધ હોય જો "તે દુઃખ છે" એ હેતુ સિદ્ધ હોત તો શંકાકારનું સાધ્ય સિદ્ધ કરી શકાત, પરંતુ એ સિદ્ધ નથી, કારણ કે પહેલા બતાવી ચૂક્યા છીએ કે તપ એ દુઃખ નથી. એટલે એ હેતુ સ્વરૂપથી જ અસિદ્ધ છે. તપ દુઃખરૂપ નથી, બલ્કે દુઃખ ઉપર વિજય મેળવવો એ તપ કહેવાય છે

અનશન આદિ તપથી થનારા ક્ષુધા આદિ પરિષહ આત્માના વધતા જતા વિશુદ્ધ પરિણામથી જીતાઇ જાય છે. ક્ષુધા એ દુઃખ અવશ્ય છે, પરન્તુ તેને તપ કહી શકાય નહિ, બલ્કે ક્ષુધા પર વિજય પ્રાપ્ત કરવો એ તપ કહેવાય છે ક્ષુધાને જીતવી એ દુઃખ નથી પરન્તુ સુખ છે એટલે તપ સુખરૂપ છે, કેમકે તપશ્ચર્યા કરનારાઓને ભૂખની પરવા જ નથી હોતી તેથી શંકાકારનું એ કહેવું બરાબર નથી કે–'તપથી પીડા ઉત્પન્ન થાય છે' આ કથનથી એ વાત સારી રીતે સિદ્ધ થઇ ગઇ કે ક્ષુધા આદિ પરિષહ વેદનીય કર્મના ઉદયથી થાય છે પરન્તુ

अतएव भगवताऽपि क्षुत्पिपासादिपरीषहस्य तपसश्च पृथक्त्वेन प्रतिपादनं विहितम्।

यद्यनशनादिकं सर्वत्र दुःखात्मकमेव मन्येत तदा–सिद्धानामपि अशनाद्य–ग्राहितयाऽनन्तदुःखसद्भावप्रसङ्गः केन वार्येत। एवं च मोक्षमार्गे प्रवर्त्तकस्य शास्त्रस्य तदुक्तधर्मानुष्ठानस्य च वैयर्थ्यापत्तिः।

अयं भावः–यथा व्याधितस्य व्याधिपरिजिहीर्षया स्वयमेव लङ्घनादिप्रवृत्तिः

वेदनीय कर्मके उदयसे होते हैं, परन्तु वे पीड़ा नहीं उत्पन्न कर सकते। और जब उनसे पीड़ा नहीं उत्पन्न हो सकती तो चित्तमें विक्षेप भी नहीं हो सकता। चित्तमें विक्षेप न होनेसे कर्मका बन्ध भी नहीं हो सकता। उल्टा क्षुधा आदिको जीतनेसे कर्मोंकी निर्जरा होती है और आते हुए कर्मोंका निरोध होनेसे संवर भी होता है। इसलिए भगवान् महावीर स्वामीने क्षुधा आदि परिषह और तपको अलग अलग कहा है।

एक बात और भी है–सिद्ध भगवान् कभी आहार नहीं लेते। यदि अनशनको दुःख मानलिया जाय तो उन्हें भी दुःखी मानना पड़ेगा। जब सिद्ध भी दुःखी होंगे तो मोक्षमार्गकी प्ररूपणा करनेवाले शास्त्र व्यर्थ होजावेंगे, और उन शास्त्रोंके अनुसार की हुई क्रियाएँ भी व्यर्थ जायँगी। क्योंकि दुःखी बननेके लिए कोई बुद्धिमान तैयार नहीं होगा। मतलब यह है कि–जैसे अपना रोग दूर करनेके लिए रोगीकी स्वयं ही लंघनमें

તે પીડા ઉત્પન્ન કરી શકતો નથી અને જો તેથી પીડા ઉત્પન્ન નથી થતી તો ચિત્તમા વિક્ષેપ પણ થઇ નથી શકતો, ચિત્તમા વિક્ષેપ નહિ થવાથી કર્મનો બંધ પણ નથી થઇ શકતો ઉલ્ટુ ક્ષુધા આદિને જીતવાથી કર્મની નિર્જરા થાય છે અને આવતાં કર્મોનો નિરોધ થવાથી સંવર પણ થાય છે. તેથી ભગવાન્ મહાવીર સ્વામી ક્ષુધા આદિ પરિષહ અને તપને જુદાં–જુદા કહેલાં છે

એક બીજી વાત એમ છે કે–સિદ્ધ ભગવાન્ કદાપિ આહાર લેતા નથી. જો અનશનને દુ.ખ માની લેવામાં આવે તો તેમને પણ દુ.ખી જ માનવા પડે. જો સિદ્ધ પણ દુ.ખી હોય તો મોક્ષમાર્ગની પ્રરૂપણા કરનારૂં શાસ્ત્ર વ્યર્થ બની જાય, અને એ શાસ્ત્રોને અનુસરીને કરવામાં આવતી ક્રિયાઓ પણ વ્યર્થ થાય, કારણ કે દુ.ખી થવાને કોઇ બુદ્ધિમાન તૈયાર નહિ થાય મતલબ એ છે કે–જેમ પોતાનો રોગ દૂર કરવાને માટે રોગી પોતાની મેળે જ લાઘણુ કરવામાં પ્રવૃત્ત

मणि-मौक्तिक-प्रवाल-हेम-हीरक-रजतादीनां व्यवहर्त्तुः स्वयमेव सिन्धुतरणगहन-भयानकवनगमनदुर्गमपथभ्रमणप्रवृत्तिः पीडालक्षणात्मपरिणामं न जनयति, अन्यथा हि प्रतिकूलकर्मणि समुत्साहपूर्वकस्वतःप्रवृत्तिर्नोपपद्यते, तथा मुनयोऽपि वक्ष्यमाणभावनया तपसि पीडां नानुभवन्ति, तथाहि–

इह संसारे (१) स्वकृतदुष्कृतसन्ततिवशान्नरकेषु नारकाः कियन्तो भिद्यन्ते,

---

प्रवृत्ति होती है । अथवा हीरे, मोती, मूंगे, सोने, चांदी आदिकी प्राप्तिके लिए मनुष्य, दुस्तर समुद्र तरते हैं, अथवा अपनी इच्छासे ही मोती आदिकी प्राप्तिके लिए गहरे समुद्रमें गोते लगाते हैं। बड़े बड़े गहन और भयानक जंगलोंमें गर्मी आदि अनेक कष्ट उठाते हैं, दुर्गम मार्गमें लाभके लिए घूमते फिरते हैं, फिरभी अपने मनमें उसे दुःख नहीं मानते न पीड़ाका अनुभव करते हैं, यदि लंघन करनेमें और गोते लगाने आदिमें कष्ट मालूम होता तो विना किसीके दबावके अपनी इच्छासेही उत्साह-पूर्वक क्यों प्रवृत्ति करते ? इसी प्रकार मुनिराज भी अपनी आत्माकी विशुद्धिके लिए अपने आपही प्रमुदित भावसे अनशन आदि तपस्या करते हैं । ऐसा करनेमें उन्हें तनिकभी दुःख नहीं होता ।

(१) संसारमें अपने किये हुए कर्मोंके कारण कईएक नरकमें जाकर परमाधर्मीद्वारा भाले आदिसे भेदे जाते हैं । कईएक घानीमें तिल या

થાય છે, અથવા હીરા, મોતી, માણેક, સોનું, ચાંદી આદિની પ્રાપ્તિ માટે મનુષ્ય દુસ્તર સમુદ્રને તરે છે; અથવા પોતાની ઇચ્છાથી જ મોતી આદિની પ્રાપ્તિ માટે ઉંડા સમુદ્રમા ડુબકી મારે છે, મોટાં મોટાં ગીચ અને ભયાનક જંગલોમાં ટાઢ તાપનાં અનેક કષ્ટો ઉઠાવે છે, દુર્ગમ રસ્તાઓમા લાભને માટે ભટકતો ફરે છે, તોપણ પોતાના મનમા તેને દુઃખ માનતો નથી કે પીડાનો અનુભવ કરતો નથી; જો લંઘન કરવામાં અને ડુબકી મારવા આદિમાં કષ્ટનો અનુભવ થતો હોત તો કોઇએ દબાવ્યા કે આગ્રહ કર્યા વિના પોતાની જ ઇચ્છાથી મનુષ્ય ઉત્સાહ પૂર્વક કેમ પ્રવૃત્તિ કરત ? એજ રીતે મુનિરાજ પણ પોતાના આત્માની વિશુદ્ધિને માટે પોતાની મેળે જ પ્રમુદિત ભાવથી અનશન આદિ તપશ્ચર્યા કરે છે. એમ કરવામાં તેને જરા પણ દુઃખ થતું નથી

(૧) જગતમા પોતાના કરેલા કર્મોને કારણે કઈ કંઈ જીવો નરકમાં જઈને પરમાધર્મીદ્વારા ભાલાં આદિથી છેદાય-ભેદાય છે. કેટલાક ઘાણીમાં તલ અથવા

कियन्तस्तैलयन्त्रे तिलसर्षपादिवन्निष्पीडयन्ते, ताम्रादिभाजनवच्च कियन्तः कुट्यन्ते, कियन्तो दारुवद्विदार्यन्ते, कियन्तः शूलशय्यायां स्वाप्यन्ते, कियन्तः शिलोपरि वस्त्रवत्ताडयन्ते, अनन्तक्षुत्पिपासादिभिः परिभूयन्ते, इत्येवं विविध-दुःखसन्ततिमनुभवन्ति ।

(२) अथ तिर्यञ्चोऽपि केचित् सक्लेशं शीतोष्णे सहमानाः, केचिद् गुरुतरं भारं वहमानाः, केचित्तोत्रादिना ताड्यमानाः, केचिन्मांसार्थिभिर्विविधैस्तीक्ष्णाग्र-शस्त्रैश्छिद्यमानाः, केचिच्च शङ्कुनिबद्धाः प्रबलैः क्षुत्पिपासादिभिः परिभूयमाना लक्ष्यन्ते ।

सरसोंकी तरह पीले जाते हैं। कईएक तांबे पीतल आदिके वर्त्तनोंकी तरह कूटे जाते हैं। कईएक काठकी भाँति करवतसे चीरे जाते हैं। कईएक तीक्ष्ण कांटोंके बिछौने पर सुलाये जाते हैं। कईएक शिलापर कपड़ोंकी तरह पछाड़े जाते हैं, और अनन्त भूख प्यास आदि नाना प्रकारके असह्य क्लेश पाते हैं। इस प्रकार भाँति-भाँतिके दुःखोंका अनु-भव करते हैं।

(२) तिर्यञ्च गतिमें भी कोई२ तिर्यञ्च दुःखके साथ गर्मी सर्दी सहते हैं, किसी पर भारी बोझ लादा जाता है, कोई-कोई कोड़ोंकी मार खाते हैं, कोई२ पैने (तीखे) शस्त्रोंसे छेदे जाते हैं, कोई-कोई खूंटीसे बंधे हुए भूख-प्यास आदि नाना प्रकारके दुःख भोगते हुए देखे जाते हैं।

સરસવની પેઠે પીલાય છે કેટલાકો તાંબા-પીતળનાં વાસણોની જેમ કુટાય-પીટાય છે કેટલાકો લાકડાની પેઠે કરવતથી વહેરાય છે કેટલાકને તીક્ષ્ણ કાંટાના બિછાના પર સુવાડવામા આવે છે. કેટલાકને કપડાની પેઠે શિલાપર પછાડવામા આવે છે, અને અનંત ભૂખ-તરસ આદિ નાના પ્રકારના અસહ્ય કલેશ પમાડ-વામાં આવે છે. એ પ્રમાણે તરેહ તરેહનાં દુઃખોનો અનુભવ એ જીવો કરે છે.

(૨) તિર્યંચ ગતિમાં પણ કોઇ કોઇ તિર્યંચ દુઃખ સાથે ટાઢ-તાપ સહન કરે છે, કેટલાક પર ભારે બોજો લાદવામાં આવે છે, કોઇ કોઇ ચાબૂકના માર ખાય છે, કોઇ કોઇને કાતીલ શસ્ત્રોથી છેદવામા આવે છે, કોઇ કોઇ ખૂંટે બંધાએલા ભૂખ-તરસ આદિ નાના પ્રકારનાં દુઃખો ભોગવતા જોવામાં આવે છે

(३) एवं मनुष्यगतिं प्राप्ता अपि केचिदन्धत्वं, केचिद्बधिरत्वं, केचित् पङ्गुत्वं, केचित्कासश्वासादिरोगं, केचिद्दारिद्र्यं च संप्राप्य, हीना दीनास्तत्तत्पीडापरिहाराक्षमा विविधदुर्दशामापन्नाः, स्थाविरे कलत्रपुत्रादिभिरप्यनादृताः क्षुत्पिपासादिभिर्बाध्यमाना म्रियन्ते ।

(४) देवा अपि परोत्कर्षनिरीक्षणेर्ष्याद्वेषादिजनिताऽन्तस्तापस्य प्रतिकर्तुमशक्यतया प्रायो दुःखभाज एव दृश्यन्ते ।

---

(३) यदि भाग्योदयसे मनुष्यगति मिल जाय तो उसमें भी सैकड़ों दुःख भोगने पड़ते हैं। कोई मनुष्य अन्धा होजाता है, कोई बहिरा हो जाता है, कोई लंगड़ा होजाता है। किसीको श्वास या खाँसीका रोग हो जाता है। कोई दरिद्रताके दुःखोंसे दीन हीन होकर अनेक प्रकारकी दुर्दशाका अनुभव करता है। वृद्धावस्थामें पत्नी पुत्र आदि तिरस्कार करते हैं। अन्तमें क्षुधा-पिपासा आदिके भी दुःख उठाकर मरणकी शरणमें जाना पड़ता है।

(४) कभी देवगति पाकर देवता होजाय तो वहां भी तरह-तरहके दुःख विद्यमान हैं।

किसी देवाताकी विभूति अधिक होती है, किसीकी कम होती है, कम विभूतिवाला अधिकविभूतिवाले देवताको देखकर ईर्ष्या-द्वेष करता है, ऐसा करनेसे मनमें अत्यन्त सन्ताप होता है। उस सन्तापको मिटाने में जब अपनेको असमर्थ पाता है तो दुःखी होता है। इसलिये संसारमें कहींभी सुख नहीं दिखलाई पड़ता है।

---

(૩) જો ભાગ્યોદયથી મનુષ્યગતિ મળી જાય તો તેમાં પણ સેંકડો દુઃખો ભોગવવાં પડે છે. કોઈ માણસ આંધળો થઈ જાય છે, કોઈ બહિરો બની જાય છે, કોઈ લંગડો થાય છે. કોઈને શ્વાસ યા ખાંસીનો રોગ થાય છે. કોઈ દરિદ્રતાનાં દુઃખોથી દીન-હીન થઈને અનેક પ્રકારની દુર્દશાનો અનુભવ કરે છે. વૃદ્ધાવસ્થામા પત્ની પુત્ર આદિ તેનો તિરસ્કાર કરે છે છેવટે ભૂખ-તરસ આદિનાં દુઃખો પણ વેઠીને તેને મરણ શરણ થવું પડે છે.

(૪) કદાચ દેવગતિ પામીને દેવતા થઈ જાય તો ત્યાં પણ તરેહ તરેહનાં દુઃખો વિદ્યમાન હોય છે. કોઈ દેવતાની વિભૂતિ અધિક હોય છે, કોઈની ઓછી હોય છે. ઓછી વિભૂતિવાળા અધિક વિભૂતિવાળા દેવતાને જોઈને ઈર્ષા-દ્વેષ કરે છે. એમ કરવાથી મનમા અત્યંત સંતાપ થાય છે. એ સંતાપને શમાવવાને જ્યારે તે પોતાને અસમર્થ જુએ છે ત્યારે તે દુઃખી થાય છે. તેથી સંસારમાં ક્યાંય પણ સુખ જોવામાં આવતું નથી

इत्येवमपारपारावारतरलतरतरङ्गभङ्गमालायमानजन्मजरामरणाधिव्याधीष्ट-वियोगाऽनिष्टसंयोगादिजनितविविधसन्तापकलापमाकलयन्तः 'कथमेतस्मात्क्लेशकदम्बकादुन्मुक्ता भविष्यामः?' इत्युपायं समन्तात् संमार्गयन्तो मुनयोऽपि जिनेन्द्रप्रतिपादितं मोक्षमार्गमारुह्य, तत्रापि शुक्लध्यानाहितकेवलज्ञानसमनन्तरजायमानाऽव्याबाधामन्दानन्दसन्दोहलक्षणमोक्षस्याऽपुनरावृत्तिलक्षणं महिमानं विनिश्चित्य, ईषत्क्षुत्पिपासाऽऽपादितदुःखं मनागपि न गणयन्ति, अत एव तदनशना-

जिसतरह अपार सागरमें चञ्चल तरंगे उत्पन्न होती हैं उसी तरह संसारमें जन्म, मरण, बुढ़ापा, मानसिक चिन्तायें, शारीरिक व्याधियाँ, इष्टवस्तुओंका वियोग, अनिष्टका संयोग आदि अनेक प्रकारके नये-नये दुःख उत्पन्न होते रहते हैं। इन विविध प्रकारके दुःखोंको भली भाँति सम्यग्ज्ञानद्वारा जाननेसे यह जिज्ञासा होती है कि इस दुःखसमूहसे हम कैसे छूटेंगे? इसप्रकार छूटनेका उपाय ढूँढ़ते २ मुनिमहात्मा जिनेन्द्र भगवान् द्वारा प्रतिपादित मोक्षके मार्ग पर आरूढ़ हो जाते हैं। फिर क्रमशः शुक्लध्यान द्वारा केवलज्ञान पाकर अव्याबाध अनन्त आत्मिक-सुख और पुनरागमनरहित मोक्षको प्राप्त करते हैं। ऐसा अपने मनमें विचार कर तपमें लीन होनेवाले तपस्वी जन क्षुधा-पिपासाके थोड़ेसे दुःखको तनिक भी नहीं गिनते। उनके सामने अनन्त सुखका स्थान मोक्षका ध्येय सदा रहता है और उस ध्येयकी प्राप्तिमें क्षुधा आदि

જેવી રીતે અપાર સાગરમાં ચંચલ તરંગો ઉત્પન્ન થાય છે, તેવી રીતે સંસારમાં જન્મ, મરણ, બુઢાપો, માનસિક ચિંતાઓ, શારીરિક વ્યાધિઓ, ઇષ્ટ વસ્તુઓનો વિયોગ, અનિષ્ટનો સંયોગ આદિ અનેક પ્રકારનાં નવાં નવાં દુઃખો ઉત્પન્ન થતાં રહે છે એ વિવિધ પ્રકારનાં દુઃખોને સારી પેઠે સમ્યગ્જ્ઞાનદ્વારા જાણવાથી એવી જિજ્ઞાસા થાય છે કે આ દુખસમૂહથી આપણે કેવી રીતે છૂટીશું? એ રીતે છૂટવાનો ઉપાય શોધતાં મુનિ મહાત્મા જિનેન્દ્ર ભગવાને પ્રતિપાદિત કરેલા મોક્ષના માર્ગ પર આરૂઢ થઇ જાય છે પછી ક્રમશઃ શુકલ-ધ્યાનદ્વારા કેવલ જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરીને અવ્યાબાધ અનંત આત્મિકસુખ અને પુનરાગમનરહિત મોક્ષને પ્રાપ્ત કરે છે. પોતાના મનમાં એવો વિચાર કરીને તપમાં લીન થનાર તપસ્વીજન ભૂખ-તરસના થોડા દુખને લગારે ગણતા નથી. તેમની સામે અનંત સુખના સ્થાન મોક્ષનું ધ્યેય સદા રહે છે અને એ ધ્યેયની પ્રાપ્તિમાં ક્ષુધા આદિ પરિષહોથી થનારૂ દુખ નહિવત્ બને છે તે પોતાના

दिलक्षणं तपः परिणामपरमपदसुखजनकतया मुनीनामात्मपरिणामविकृतिकारणं न भवितुमीष्टे नापि च तत्कर्मोदयस्वरूपमिति प्राक् प्रतिपादितमिति तपसः सर्वथा मोक्षाङ्गत्वेनोत्कृष्टमङ्गलात्मकधर्मरूपत्वं सिद्धम् ।

अथोत्कृष्टमङ्गलत्वसम्पादकं धर्मस्य महिमानमावेदयति–'देवा वि' इत्यादि ।

धर्मे=अहिंसादित्रयस्वरूपे यस्य प्राणिनः मनः=चित्तं सदा=निरन्तरं तिष्ठतीति शेषः, तं=धर्मचित्तं प्राणिनं देवा अपि=भवनपत्यादिचतुर्निकाया अपि

परिषहोंसे होनेवाला दुःख नहीं के बराबर है । वे उन तुच्छ दुःखोंको अपने अन्तकरणमें स्मरण भी नहीं करते । तात्पर्य यह है कि–अनशन-आदि तप, परमपद मोक्षके अनन्त अविनाशी सुखका प्रबल कारण होनेसे मुनियोंकी आत्माके परिणामोंमे विकार उत्पन्न नहीं कर सकता है और न औदयिक भावमें ही है, अर्थात् तप क्षायोपशमिक भावोंमें है । इस विषयका विस्तारसे प्रतिपादन पहले किया जा चुका है । अब यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो चुकी कि तप मोक्षका कारण है और उत्कृष्ट मंगलरूप धर्म है ।

धर्म उत्कृष्ट मंगल है, किन्तु धर्ममें ऐसी कौनसी विचित्र महिमा है जिससे उसे उत्कृष्ट मंगल कहते हैं ?, इस प्रश्नका समाधान करनेके लिए कहते हैं—

जिस प्राणीके मनमें अहिंसा, संयम और तपरूप धर्मका निरन्तर निवास रहता है, उस धर्मात्मा प्राणीको भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी

અંતઃકરણમાં એ તુચ્છ દુઃખોનું સ્મરણ પણ કરતા નથી. તાત્પર્ય એ છે કે–અનશન આદિ તપ, પરમપદ મોક્ષના અનંત અવિનાશી સુખનું પ્રબલ કારણ હોવાથી મુનિઓના આત્માના પરિણામોમાં વિકાર ઉત્પન્ન કરી શકતું નથી અને એ ઔદયિક ભાવમાં પણ નથી અર્થાત્ તપ ક્ષાયોપશમિક–ભાવમાં છે આ વિષયનું પ્રતિપાદન પહેલાં વિસ્તારથી કરવામાં આવ્યું છે હવે એ વાત સારી રીતે સિદ્ધ થઈ ચૂકી કે તપ મોક્ષનું કારણ છે અને ઉત્કૃષ્ટ મંગલરૂપ ધર્મ છે

ધર્મ ઉત્કૃષ્ટ મંગલ છે, પરંતુ ધર્મમા એવો કયો વિચિત્ર મહિમા છે જેથી તેને ઉત્કૃષ્ટ મંગલ કહ્યો છે ? આ પ્રશ્નનું સમાધાન કરવાને કહે છે'—

જે પ્રાણીના મનમાં અહિંસા, સંયમ અને તપરૂપ ધર્મનો નિરંતર નિવાસ રહે છે, તે ધર્માત્મા પ્રાણીને ભવનવાસી, વ્યન્તર, જ્યોતિષી અને વૈમાનિક એ

नमस्यन्ति=नमस्कुर्वन्ति सम्मानयन्तीति यावत्, किं पुनश्चक्रवर्त्यादयो मनुष्या इत्यर्थः ।

एतादृशोऽयं समुत्कृष्टो धर्मः स्वसमाराधनबद्धपरिकराणां वृन्दारकवृन्दवन्दनीयपदारविन्दतां जनयति, यदि पुनस्त्रिविधकरणयोगेन तदाराधनपरायणो भवेत् तदा शिवमचलमरुजमनन्तमक्षयमव्याबाधमपुनरावृत्ति सिद्धिगतिनामधेयं मोक्षपदमपि समासादयेदेव, कैव कथा तदपेक्षया तुच्छतरदेवेन्द्रचक्रवर्त्यादिपदप्राप्तिजनितसौख्यस्य सस्यानुगतपलालवदिति ।

और वैमानिक इस प्रकार चारों निकायोंके देवता नमस्कार करते हैं अर्थात् संमान करते हैं । गाथामें आये हुए 'अपि' शब्दसे प्रकट है कि जब देवताभी धर्मात्मा प्राणीका संमान करते हैं तो राजा, महाराज, सम्राट् और चक्रवर्ती आदिकी बात ही क्या है ? वे भी उसके चरणोंमें गिरते हैं । इस प्रकार इस उत्कृष्ट धर्मकी आराधना करनेवाले प्राणी देवोंके द्वारा वन्दनीय हो जाते हैं । यदि कोई तीन करण और तीन योगसे उस धर्मकी आराधना भली-भाँति करे तो वह अवश्यही ऐसी सिद्धिगति (मोक्ष)को प्राप्त करेगा जो परम कल्याणरूप है, अचल है, जिसमें किसी प्रकारका रोगदोष नहीं है, जिसका कभी अन्त नहीं होता, जिसमें पहुँच कर क्षय नहीं होता, और न किसी प्रकारकी बाधा शेष रहती है। अहो ! उस मोक्षका क्या कहना है, जिसके आगे नरेन्द्र, इन्द्र, अहमिन्द्र आदिका सुख इतना तुच्छ है जैसे धान्यके आगे भूसा तुच्छ होता है ।

ચારે નિકાયોના દેવતા નમસ્કાર કરે છે અર્થાત્ તેમનુ સમાન કરે છે ગાથામાં આવેલા 'अपि' શબ્દથી સ્પષ્ટ થાય છે કે જ્યારે દેવતા પણ ધર્માત્મા પ્રાણીનું સંમાન કરે છે તો રાજા, મહારાજા, સમ્રાટ અને ચક્રવર્તી આદિની તો વાત જ ક્યાં રહી ? તેઓ પણ તેમના ચરણુમાં પડે છે એ રીતે આ ઉત્કૃષ્ટ ધર્મની આરાધના કરનારો પ્રાણી દેવો વડે વંદનીય બને છે જો કોઇ ત્રણ કરણ અને ત્રણ યોગથી એ ધર્મની આરાધના ભલી પેઠે કરે તો તે અવશ્ય એવી સિદ્ધિગતિ (મોક્ષ) ને પ્રાપ્ત કરે કે જે પરમ કલ્યાણરૂપ છે, અચલ છે, તેમાં કોઈ પ્રકારનો રોગદોષ નથી, જેનો કદાપિ અત આવતો નથી જેમાં પહોચવાથી ક્ષય થતો નથી અને કોઈ પ્રકારની બાધા–પીડા થતી નથી અહા ! એ મોક્ષની શી વાત કહીએ, જેની આગળ નરેદ્ર, ઇંદ્ર અહમિંદ્ર આદિનું સુખ એવું તુચ્છ છે કે જેમ ધાન્ય આગળ ફોતરાં તુચ્છ છે.

ननु सर्वधर्माणामहिंसामूलकत्वादहिंसायामेव संयमतपसोरपि धर्मयोः समावेशे सति किं पुनस्तयोः पृथङ्निर्देशः ? इति चेन्न,—

तपो विना संयमो यथावत्स्वरूपनैर्मल्यं न लभते, संयममन्तरेणाऽहिंसाऽपि न परिशुद्धिमेति इत्याशयेनाहिंसां प्रतिपाद्य तन्निर्मलीकरणार्थं संयमस्य प्रतिपादनम्, तस्य च प्रभूतशक्तिसम्पादनाय तपसः समाराधनमावश्यकमित्याशयेन, त्रयाणां पृथङ्निर्देशः कृतः ।

किञ्च संयमतपसोर्विषयेऽपरोऽपि विशेषो दृश्यते–संयमात्संवरः, तपस्तु मुख्यतो निर्जरामुद्भावयत् संवरमपि निष्पादयति । संयमस्तपश्चैते द्वे-राज्ञ आत्म-

प्रश्न—संयम तप आदि सब धर्मोंका मूल अहिंसा है, इसलिए संयम और तपका अहिंसामें ही समावेश हो जाता है तो फिर संयम और तपको अलग अलग क्यों कहा है ? सुनो—

उत्तर—अलग अलग कहनेका कारण यह है कि तपके विना संयम की जैसी चाहिए वैसी निर्मलता नहीं होती और विना संयमके अहिंसाका ठीक २ पालन नहीं हो सकता । इस अभिप्रायसे अहिंसाका प्रतिपादन करके उसे निर्मल बनानेके लिए तपका अलग कथन किया गया है । इससे तीनोंका अलग २ कथन उचित है ।

संयम और तपके अर्थमें और भी विशेषता है और वह यह है कि- संयमसे संवर होता है, परंतु तपसे संयम और निर्जरा दोनों होते हैं ।

अथवा यह समझना चाहिये कि संयम और 'तप' ये दोनों

પ્રશ્ન—સંયમ તપ આદિ સર્વ ધર્મોનું મૂલ અહિંસા છે, તેથી સંયમ અને તપનો સમાવેશ અહિંસામાં 'જ થઇ જાય છે. તો સંયમ અને તપને જુદા-જુદા કેમ કહ્યા છે ? સાંભળો—

ઉત્તર—જુદા જુદા કહેવાનું કારણ એ છે કે તપ વિના સંયમની જોઇએ તેવી નિર્મળતા થતી નથી અને સંયમ વિના અહિંસાનું બરાબર પાલન થઇ શકતું નથી એ કારણથી અહિંસાનું પ્રતિપાદન કરીને તેને નિર્મળ બનાવવાને માટે તપનું જુદું કથન કરવામાં આવ્યું છે એથી ત્રણેનું જુદું-જુદું કથન ઉચિત છે

સયમ અને તપના અર્થમાં બીજી પણ વિશેષતા છે અને તે એ કે- સંયમથી સવર થાય છે, પણ તપથી સંયમ અને નિર્જરા બેઉ થાય છે.

અથવા એમ સમજવું જોઇએ કે સંયમ અને તપ એ બેઉ રાજાના

रक्षकाविवाऽहिंसाव्रतस्य संरक्षके। यद्वा एतद्द्वयस्याहिंसापरिपोषकतया पृथङ्-निर्देशः संगच्छते ।

अन्यच्च अहिंसा प्राणव्यपरोपणनिवृत्तिप्रधाना, संयमस्तु श्रोत्रादीन्द्रियनिग्रह-प्रधान इति महद्वैलक्षण्यमुपलभ्य पृथङ्निर्देशः। तपसो वैलक्षण्यं तु न कस्यचित् संशयगोचरः स्वरूपत एव परस्परं भेदात्, तथाहि—अहिंसा नाम स्वतः परतो वा प्राणव्यपरोपणनिवृत्तिकरणं, तपस्तु क्षुत्पिपासाशीतोष्णादिसहिष्णुत्वरूपमिति ।

राजाके आत्मरक्षकोंकी तरह अहिंसाव्रतके रक्षक हैं, जबतक संयम और तप न हों तबतक अहिंसाका सम्यक् पालन नहीं हो सकता।

एक समाधान औरभी है-अहिंसामें प्राणोंके व्यपरोपणकी निवृत्तिकी प्रधानता है, और संयममें श्रोत्र आदि इन्द्रियोंके निग्रहकी प्रधानता है। इस प्रकार इनमें कितनी ही प्रकारकी बड़ी २ विशेषताएँ देखकर सूत्र-कारने पृथक् कथन किया है। तपके स्वरूपमें तो इतना भेद है कि किसीको सन्देह हो ही नहीं सकता। अपने या दूसरेके द्वारा प्राणव्यपरोपणकी निवृत्ति रनेको अहिंसा कहते हैं, और क्षुधा पिपासा शीत उष्ण आदिको सहन करना तप कहलाता है ।

प्रश्न—भगवान्ने अहिंसा संयम और तप इन तीनोंमें तपको ही अन्तमें क्यों कहा ?

આત્મરક્ષકોની પેઠે અહિંસાવ્રતના રક્ષક બને છે. જ્યાં સુધી સયમ અને તપ ન થાય ત્યાં સુધી અહિંસાનું સમ્યક્ પાલન થઈ શકતું નથી

એક સમાધાન બીજું પણ છે અહિંસામાં પ્રાણોના વ્યપરોપણની નિવૃત્તિની પ્રધાનતા છે. અને સંયમમાં શ્રોત્ર આદિ ઇંદ્રિયોના નિગ્રહની પ્રધાનતા છે. એ રીતે એમાં અનેક પ્રકારની મોટી મોટી વિશેષતાઓ જોઈને સૂત્રકારે પૃથક્ કથન કર્યું છે. તપના સ્વરૂપમાં તો એટલો ભેદ છે કે કોઈને સદેહ થઈ શકે નહિ પોતાની અથવા બીજાની દ્વારા પ્રાણના વ્યપરોપણની નિવૃત્તિ કરવી તેને અહિંસા કહે છે, અને ભૂખ તરસ ટાઢ તાપ આદિને સહેવાં તે તપ કહેવાય છે.

પ્રશ્ન—ભગવાને અહિંસા, સંયમ અને તપ એ ત્રણમાં તપને છેલ્લું કેમ કહ્યું ?

कोटिभवसञ्चितानि कर्कशतमान्यपि कर्माणि तपसाऽऽशुतरं विनश्यन्तीति दुस्तरसंसारसागरं शीघ्रमुत्तर्तुमभिलष्यतामहिंसासंयमाऽऽराधनतत्पराणां मुमुक्षूणामुग्रतपोऽवश्यमाश्रयणीयमित्याशयेनान्ते तपसः पृथङ्निर्देशः कृत इति भावः। इति प्रथमगाथार्थः ॥ १ ॥

ननु धर्मः शरीरेण रक्ष्यते, शरीररक्षणं चाहारेण भवति, स च षड्जीवनिकायोपमर्दनरूपाऽऽरम्भेण निष्पाद्यते, यत्र चारम्भो न तत्र धर्मः संभवति, यथोक्तं श्रीस्थानाङ्गसूत्रे—

"दो ठाणाइं अपरियाणित्ता आया णो केवलिपन्नत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए, तंजहा–आरंभे चेव परिग्गहे चेव" इति, अस्य हि–"द्वे वस्तुनी अपरिज्ञाय आत्मा न केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं श्रोतुं लभेत, तद् यथा–आरम्भश्च परिग्रहश्च"

उत्तर—करोड़ों भवोंमें संचित किये हुए अत्यन्त कठोर कर्म, तपके द्वारा शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। इसलिए दुस्तर संसाररूपी सागरको शीघ्र पार करनेकी अभिलाषा रखनेवाले, अहिंसा और संयमकी आराधनामें तत्पर रहनेवाले मोक्षाभिलाषियोंको अवश्य ही उग्र तपस्या करनी चाहिये, इस उद्देश्यसे भगवान्ने तपको अन्तमें अलग कहा है ॥१॥

धर्मका रक्षण शरीरसे होता है और शरीरका निर्वाह आहारसे होता है। आहार पृथिवी आदिक षड्जीवनिकायके आरंभके विना नहीं बन सकता, और 'जहां आरम्भ है वहां धर्म नहीं' यह सर्वज्ञ भगवान्ने कहा है, क्योंकि ठाणांग (स्थानाङ्ग) सूत्रके दूसरे ठाणेसे यह बात स्पष्ट है।

ઉત્તર—કરોડો ભવોમાં સંચિત કરેલાં અત્યંત કઠોર કર્મ તપની દ્વારા શીઘ્ર નષ્ટ થઇ જાય છે. એથી દુસ્તર સંસારરૂપી સાગરને શીઘ્ર પાર કરવાની અભિલાષા રાખનારા, અહિંસા અને સંયમની આરાધનામાં તત્પર રહેનારા, મોક્ષાભિલાષીઓએ અવશ્ય ઉગ્ર તપસ્યા કરવી જોઇએ એ ઉદ્દેશથી ભગવાને તપને છેલ્લું જુદું કહ્યુ છે ॥ ૧ ॥

ધર્મનું રક્ષણ શરીરથી થાય છે અને શરીરનો નિર્વાહ આહારથી થાય છે આહાર પૃથિવી આદિ છ જીવનિકાયના આરંભ વિના નથી બની શકતો, અને 'જ્યાં આરંભ છે ત્યા ધર્મ નથી' એમ સર્વજ્ઞ ભગવાને કહ્યું છે. ઠાણાંગ (સ્થાનાંગ) સૂત્રના બીજા ઠાણામાં એ વાત સ્પષ્ટ છે. અર્થાત્ આરંભ અને

अर्थादारम्भ-परिग्रहौ ज्ञ-परिज्ञया जन्ममरणादिदुःखहेतू विज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया तयोस्त्यागमकृत्वा जिनोक्तं धर्मं श्रोतुमपि न शक्नोति, पालयितुं शक्नोतीति तु दूरापास्तमित्यर्थः, तस्मादुक्तरीत्या त्यागसम्पन्नस्यापि श्रमणस्य शरीरसंरक्षणावश्यकता वर्तते तदर्थं चाहारो ग्रहीतव्यः, तत्र का वृत्तिः समादर्तव्ये ? त्याह-' जहा दुमस्स ' इत्यादि

मूलम्-जहा[१] दुमस्स[३] पुप्फेसु[४], भमरो[२] आवियइ[६] रसं[५]।
ण[९] य[७] पुप्फं[८] किलामेइ[१०], सो[१२] अ[११] पीणेइ[१४] अप्पयं[१३] ॥२॥

छाया-यथा द्रुमस्य पुष्पेषु, भ्रमर आपिवति रसम् ।
न च पुष्पं क्लामयति, स च प्रीणात्यात्मानम् ॥ २ ॥

अर्थात् आरंभ और परिग्रह इन दोनोंके यथार्थ स्वरूपको आत्मा ज्ञपरिज्ञासे सम्यक् प्रकार जानकर कि ये ही दोनों जन्म जरा मरणके दाता चतुर्गतिरूप अनन्त संसारमें परिभ्रमण करानेवाले, छेदन-भेदन-आधि-व्याधि-क्लेशरूप दुःखोंके कारण तथा आत्माके विशुद्ध स्वरूपके घातक हैं, परंतु जबतक प्रत्याख्यानपरिज्ञा द्वारा तीन करण और तीन योगसे इनको त्याग न देवे तब तक जिनेन्द्र भगवान् द्वारा प्ररूपित धर्मको सुनने योग्य भी नहीं होता, पालनेकी तो बात ही कहां है ? तात्पर्य यह है कि आरंभ और परिग्रहका त्याग किये विना धर्मका पूर्ण पालन नहीं हो सकता। इसलिए धर्मके आराधक मुनियोंको निरवद्य आहारकी विधि कहते हैं—'जहा दुमस्स' इत्यादि ।

પરિગ્રહ એ બેઉના યથાર્થ સ્વરૂપને આત્મા, જ્ઞપરિજ્ઞાથી સમ્યક્-પ્રકારે જાણે કે એ બેઉ જન્મ જરા મરણના દાતા, ચતુર્ગતિરૂપ અનંત સંસારમાં પરિભ્રમણ કરાવનારા, છેદન-ભેદન-આધિ-વ્યાધિ-કલેશરૂપ દુઃખોના કારણ તથા આત્માના વિશુદ્ધ સ્વરૂપના ઘાતક છે, પરંતુ જ્યાં સુધી પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાદ્વારા ત્રણ કરણ અને ત્રણ યોગથી તેને ત્યજી ન દેવાય ત્યાં સુધી જિનેન્દ્રભગવાને પ્રરૂપેલા ધર્મને સાંભળવા યોગ્ય પણ થવાતું નથી, પછી પાળવાની તો વાત જ કયાં ? તાત્પર્ય એ છે કે આરંભ અને પરિગ્રહનો ત્યાગ કર્યા વિના ધર્મનું પૂર્ણ પાલન થઇ શકતું નથી તેથી ધર્મના આરાધક મુનિઓને નિરવદ્ય આહારની વિધિ કહે છે—"जहा दुमस्स" ઇત્યાદિ

सान्वयार्थः—जहा=जैसे, भमरो=भौंरा, दुमस्स=वृक्षके पुप्फेसु=फूलोंमें (रहे हुए) रसं=रसको आवियइ=मर्यादानुसार पीता है, य=और पुप्फं=फूलको ण कीलामेइ=पीडित नहीं करता है, अ=तोभी सो=वह भौंरा अप्पयं=अपनेको पीणेइ=सन्तुष्ट कर लेता है। अर्थात्-जैसे भौंरा अनेक वृक्षोंके फूलोंसे थोड़ा थोड़ा रस उचित मात्रामें लेता है, ऐसा करनेसे वह सन्तुष्ट भी होजाता है और फूलोंकोभी कष्ट नहीं देता ॥ २ ॥

टीका—यथा भ्रमरः-भ्राम्यति=एकत्र नावतिष्ठत इति भ्रमरः=चतुरिन्द्रिय-जातिमान् भृङ्गपर्यायवाच्यः प्राणिविशेषः। द्रुमस्य, जात्येकत्वादेकवचनम्, 'सर्वो गच्छति' इत्यादिवत्, तेन द्रुमाणामित्यर्थः, द्रुमपदेन योगमर्यादया लतादीना-मपि ग्रहणं बोद्धव्यम्, पुष्पेषु स्थितमित्यस्याध्याहारः, रसं=मकरन्दम् आपिबति= आ=मर्यादा-पूर्वकम् उचितादधिकं परित्यज्य पिबति=पानविषयं करोति, अल्पं गृह्णातीति भावः। चकारो हेत्वर्थे, तेन-च=अत एव पुष्पं न क्लामयति=न पीड-यति-लेशतोऽपि न म्लानयतीति यावत्, च=किञ्च सः=भ्रमरः आत्मानं=स्वं प्रीणाति=तोषयतीत्यर्थः।

पुष्पाणि तु द्रुमलतादीनामेव भवन्ति पुनर्द्रुमपदोपादानम्-यथा भ्रमरः सर्वे-षामेव द्रुमलतादीनां पुष्पेषु रसमापिबति न चोच्चनीचादिभेदभावं रक्षति 'वृक्षोऽय-

---

जैसे भ्रमर, भ्रमण करके अनेक वृक्ष लता आदिकोंके पुष्पोंका थोडा२ रस मर्यादासे लेता है, अधिक नहीं, यानी ऐसा कि किसीको भी पीडा न देते हुए वह अपनी आत्माको तृप्त कर लेता है।

प्रश्न—वृक्ष और लताओंमें ही फूल होते हैं फिर द्रुम (वृक्ष) शब्द देनेका क्या अभिप्राय है?।

उत्तर—जैसे भौंरा सभी वृक्षों और लताओंके फूलोंका रस पीता है, ऊंच-नीच भेद-भाव नहीं रखता कि-इस वृक्षमें कम फूल हैं और

જેમ ભ્રમર ભ્રમણ કરીને અનેક વૃક્ષ લતા આદિનાં પુષ્પોનો થોડો થોડો રસ મર્યાદાપૂર્વક લે છે, વધુ લેતો નથી, અને એવી રીતે લે છે કે કોઇ પણ પુષ્પને જરાએ પીડા થાય નહિ; એમ તે પોતાના આત્માને તૃપ્ત કરી લે છે.

પ્રશ્ન—વૃક્ષ અને લતાઓ પર જ ફૂલ થાય છે, તો વળી દ્રુમ (વૃક્ષ) શબ્દ કહેવાનો શો હેતુ છે

ઉત્તર—જેમ ભમરો બધાં વૃક્ષો અને લતાઓનાં ફૂલોનો રસ પીએ છે, ઉંચ-નીચનો ભેદભાવ રાખતો નથી કે-આ વૃક્ષ પર ઓછાં ફૂલો છે અને

मल्पपुष्पफलोऽयं च बहुपुष्पफलसमृद्धः' इति, तथा साधुरप्युच्चनीचादिभेदभावं विहाय सर्वत्र समानभावो गृहस्थकुलानां सकाशाद् यथोचितां भिक्षामाददीतेति सूचनार्थम् ।

यद्वा 'दुमस्स' इत्यत्र सम्बन्धसामान्यषष्ठ्या द्रुमसम्बन्धिष्विति, अर्थादयं दृष्टान्तो द्रुमसंसक्तपुष्परसग्राहिणो भ्रमरस्य बोद्धव्यो नेतरस्य, ततश्च यथा भ्रमरो द्रुमसम्बद्धेषु स्थितं रसमापिबति तथा साधुरपि गृहस्थसम्बन्धिनमेव, अर्थात् तत्स्वत्वयुक्तमेवाऽऽहारं गृह्णीयान्न तु स्वामिविरहितमित्यर्थः ।

इसमें अधिक, इसी प्रकार साधुभी द्रव्य-भावसे ऊंच-नीच भेद-भाव न रखकर समानदृष्टिसे गृहस्थियोंके कुलोंमें भिक्षा-वृत्तिके लिए भ्रमण करते हैं। इस आशयको प्रगट करनेके लिए गाथामें 'द्रुम' शब्द दिया गया है ।

अथवा यों समझिये कि गाथामें 'द्रुम' शब्दके साथ षष्ठी विभक्तिका प्रयोग किया गया है, षष्ठी विभक्तिका अर्थ है 'सम्बन्ध'।

इसलिए यह दृष्टान्त द्रुममें लगे हुए पुष्पके रसको ग्रहण करनेवाले भौंरेका ही समझना चाहिए, दूसरे भौंरेका नहीं। इससे यह अर्थ निकलता है कि जैसे भ्रमर, द्रुम (वृक्ष) सम्बन्धी पुष्परसको ही ग्रहण करता है, अन्य रसको नहीं, इसीभाँति साधुभी गृहस्थसे सम्बन्ध रखनेवाले अर्थात् जिसपर गृहस्थका अधिकार है उसी आहारको ग्रहण करते हैं; जिस आहारका कोई गृहस्थ स्वामी नहीं होता उसे नहीं ग्रहण करते।

આ પર વધારે છે; એ પ્રમાણે સાધુ પણ દ્રવ્ય—ભાવથી ઉચ-નીચનો ભેદભાવ ન રાખીને સમાન દૃષ્ટિથી ગૃહસ્થોના કુળોમા ભિક્ષાવૃત્તિને માટે ભ્રમણ કરે છે એ આશયને પ્રકટ કરવા માટે ગાથામાં द्रुम (વૃક્ષ) શબ્દ આપેલો છે.

અથવા એમ સમજવું કે ગાથામા द्रुम શબ્દની સાથે છઠ્ઠી વિભક્તિનો પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે છઠ્ઠી વિભક્તિનો અર્થ સબધ થાય છે એથી આ દૃષ્ટાંત દ્રુમમાં લાગેલા પુષ્પોના રસને ગ્રહણ કરનારા ભમરાનું જ સમજવું જોઈએ, બીજા ભમરાઓનું નહિ એટલે એ અર્થ થાય છે કે જેમ ભ્રમર, द्रुम (વૃક્ષ) સંબધી પુષ્પરસને જ ગ્રહણ કરે છે, બીજા રસને નહિ, તેમ સાધુ પણ ગૃહસ્થથી સબંધ રાખનારા અર્થાત્ જેની ઉપર ગૃહસ્થનો અધિકાર હોય તે આહારનેજ ગ્રહણ કરે છે જે આહારનો કોઇ ગૃહસ્થ સ્વામી નથી હોતો તેને સાધુ ગ્રહણ કરતો નથી

'पुष्फेसु' इति प्रसूनकुसुमादिपर्यायान्तरं परिहाय पुष्पपदोपादाने विकसितार्थोऽभिप्रेतस्ततश्च यथा भ्रमरो विकसितेष्वेव पुष्पेषु स्थितं रसं गृह्णाति तथा साधुरपि दातृत्वभावप्रसन्नेभ्यो निर्जुगुप्सेभ्यश्च कुलेभ्य आहारं गृह्णीयादित्यर्थः।

'भमरो' इत्यनेन इतस्ततो भ्रमणेन किञ्चित्किञ्चिदाहारग्रहणं सूचितम्। मर्यादार्थकेनोपसर्गेणाऽऽङा 'यावानाहारोऽपेक्षितस्तावानेव ग्रहीतव्यः' इति सूचितम्।'

'पुष्प' शब्दके प्रसून कुसुम आदि अनेक पर्याय शब्द होनेपर भी गाथामें प्रसून या कुसुम आदि अन्य शब्द न देकर 'पुष्प' शब्द ही दिया है, इससे सूत्रकारका आशय खिलेहुए फूलोंसे है ऐसा स्पष्ट होता है, क्योंकि खिले हुए फूलका ही नाम पुष्प है, इसलिए भ्रमर, जैसे खिलेहुए फूलों पर ही ठहरता है और उन्हींका रसपान करता है उसी प्रकार साधुभी उन्हीं गृहस्थोंसे आहार लेते हैं जिनका साधुओंको आहार देनेका भाव हो, तथा जो कुल दुगुंछित न हो।

भ्रमरके भी षट्पद द्विरेक आदि अनेक नाम हैं, उनमेंसे दूसरा कोई शब्द न देकर 'भ्रमर' पद दिया है, 'भ्रमर' शब्दका अर्थ है भ्रमण करनेवाला–एक स्थानपर न ठहरने वाला; इस शब्दको देनेका आशय यह है कि साधुको इधर–उधर भ्रमण करके थोड़ा२ आहार लेना चाहिए, जिससे गृहस्थ फिर आरंभ न करें। मर्यादा अर्थवाले 'आ' उपसर्गको देनेका तात्पर्य यह है कि जितने आहारकी आवश्यकता हो उतनाही लेवे, अधिक नहीं।

પુષ્પ શબ્દના પ્રસૂન કુસુમ આદિ અનેક પર્યાય શબ્દો હોવા છતા ગાથામા પ્રસૂન કે કુસુમ આદિ અન્ય શબ્દ ન આપતાં પુષ્પ શબ્દ જ આપ્યો છે એમાં સૂત્રકારનો આશય ખીલેલાં ફૂલોનો છે એમ સ્પષ્ટ થાય છે, કારણ કે ખીલેલા ફૂલનુ જ નામ પુષ્પ છે એથી ભ્રમર, જેમ ખીલેલા ફૂલો પર જ બેસે છે અને તેનું રસપાન કરે છે, તેમ સાધુ પણ એવા ગૃહસ્થો પાસેથી આહાર લે છે કે જેમનો ભાવ સાધુઓને આહાર આપવાનો હોય અને જે કુળ દુગુછિત ન હોય

ભ્રમરનાં પણ ષટ્પદ દ્વિરેફ આદિ અનેક નામો છે, તેમાંથી બીજો કોઇ શબ્દ ન આપતાં 'ભ્રમર' શબ્દ આપ્યો છે ભ્રમર શબ્દનો અર્થ થાય છે ભ્રમણ કરનાર–એક સ્થાનપર બેસી ન રહેનાર, એ શબ્દ આપવાનો આશય એ છે કે સાધુએ અહીં–તહીં ભ્રમણ કરીને થોડો થોડો આહાર લેવો જોઇએ, જેથી ગૃહસ્થ ફરી આરભ ન કરે મર્યાદા અર્થવાળો આ ઉપસર્ગ આપવાનુ તાત્પર્ય એ છે કે જેટલા આહારની આવશ્યકતા હોય એટલો જ લેવો વધારે નહિ

'पुप्फं' इत्येकवचनेन 'यथा भ्रमर एकमपि पुष्पं न क्लामयति तथा साधुरपि कञ्चिदेकमपि दातारं न विपादयेदिति सूचितम् ।

यथा जलधरो न कञ्चिदुद्दिश्य जलं मुञ्चति, यथा वा शाखिनः स्वीयनामगोत्रकर्मोदयेन पुष्प-फलानि स्वभावत एव समुत्पादयन्ति तथा गृहस्था अपि स्वक्षुधावेदनीयोदयेन यथासमयं दिवसे निशायां वा रन्धयन्ति, यथा च यत्र भ्रमरा न गन्तुं शक्नुवन्ति तत्रापि द्रुमाः पुष्प्यन्त्येव तथा साधूनां तपोऽवस्थायां रात्रौ साधुसंस्थितिरहितेषु ग्रामनगरनिगमादिषु च गृहस्थाः पाकं सम्पादयन्त्येवेति नास्ति गृहस्थसम्पादितपाकस्य साधुभिक्षाहेतुत्वम् ।

गाथाके उत्तरार्द्धमें 'पुप्फं' इस एकवचनसे ऐसा सूचित होता है कि जैसे भौंरा एकभी पुष्पको पीड़ा नहीं पहुंचाता है वैसे ही साधु किसी एकभी दाताको कष्ट न पहुंचावे ।

जैसे मेघ, किसीको उद्देश्य करके पानी नहीं वरसाता अथवा जैसे वृक्ष, अपने नाम-गोत्र कर्मके उदयसे ही विना किसीको उद्देश्य करके स्वभावसे ही फल-फूल उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार गृहस्थ अपने क्षुधावेदनीय कर्मके उदयसे जब आवश्यकता होती है भोजन बनाते हैं । अथवा जैसे जहाँ भौंरे नहीं जा सकते वहां परभी वृक्ष फूलते ही हैं, वैसे ही साधु जब तपस्या करते हैं, या जहां साधु नहीं होते उस ग्राम नगर आदिमें भी दिन या रात्रिमें गृहस्थ भोजन बनाते ही हैं, इसलिए 'गृहस्थ जो भोजन बनाते हैं वह साधुओंके निमित्त होता है' ऐसा नहीं समझना चाहिये ।

ગાથાના ઉત્તરાર્ધમા 'पुप्फं' એ એકવચનથી એમ સૂચિત થાય છે કે જેમ ભમરો એક પણ પુષ્પને પીડા ઉપજાવતો નથી, તેમજ સાધુએ કોઇપણ દાતાને કષ્ટ ન ઉપજાવવો

જેમ મેઘ, કોઇને ઉદ્દેશ્ય કરીને પાણી વરસાવતો નથી, અથવા જેમ વૃક્ષ, પોતાના નામ-ગોત્ર કર્મના ઉદયથી જ કોઇને ઉદ્દેશ્ય કર્યા વિના સ્વભાવથી જ ફળ-ફૂલ ઉત્પન્ન કરે છે, તેમ ગૃહસ્થ પોતાના ક્ષુધા–વેદનીય કર્મના ઉદયથી જ્યારે આવશ્યકતા લાગે છે ત્યારે ભોજન બનાવે છે અથવા જેમ જ્યાં ભમરા ન જઇ શકે તેવે સ્થળે પણ વૃક્ષ ફૂલે છે, તેમ જ સાધુ જ્યારે તપસ્યા કરે છે ત્યારે, અને જ્યા સાધુ નથી હોતા તે ગ્રામ નગર આદિમાં પણ દિવસે યા રાત્રિએ ગૃહસ્થો ભોજન તો બનાવે જ છે, એથી 'ગૃહસ્થ જે ભોજન બનાવે છે તે સાધુઓને નિમિત્તે હોય છે' એમ ન સમજવુ જોઇએ

ननु विषमोऽयं भ्रमरदृष्टान्तः, तथाहि—भ्रमरो द्रुमाज्ञामन्तरेणैव पुष्परसमादत्त भिक्षुः पुनर्याचित्वैव, किञ्च तदर्थं कदाचिदेकस्मिन्नपि दिने मुहुर्मुहुरेकं द्रुममुपैति तत्किं साधवोऽपि तथैव गृहस्थेभ्यो भिक्षां गृह्णीयुः? किञ्च भ्रमरोऽसञ्ज्ञी, साधवस्तु सञ्ज्ञिनो जिनवचननिपुणाश्च, भ्रमरोऽव्रती साधवस्तु व्रतिनः, भ्रमरोऽप्रत्याख्यानी साधवस्तु प्रत्याख्यानिनः, भ्रमरोऽसंयतः साधवस्तु संयताः, इत्यादिविरुद्धधर्मशालित्वादिति चेन्न, सर्वत्र दृष्टान्तस्यैकदेशिरूपत्वात्, अनेकपुष्पतः पुष्पाऽक्रान्तिपूर्वककिञ्चित्किञ्चिदुपादानमात्रे दृष्टान्ततात्पर्यमिति निष्कर्षः, स्फुटी-

---

प्रश्न—भ्रमरका उदाहरण विषम है, कारण यह कि उसका साधुओंके साथ ठीक मिलान नहीं होता। क्योंकि, भ्रमर वृक्षकी आज्ञा प्राप्त किये विना ही पुष्परस पीता है, साधु याचना करके ही भिक्षा लेते हैं, भ्रमर एक दिनमें एकही वृक्षके पास वारम्वार जाता है और पुष्परसको पीता है, साधु एक दिनमें वारम्वार एक गृहस्थके घरसे भिक्षा नहीं ले सकते, भ्रमर असञ्ज्ञी होता है, साधु सञ्ज्ञी होते हैं, भ्रमर अप्रत्याख्यानी होता है, साधु प्रत्याख्यानी होते हैं, भ्रमर असंयत होता है, साधु संयत होते हैं, इत्यादि अनेक भिन्नताएँ पायी जाती हैं।

उत्तर—ऐसी शंका ठीक नहीं है, क्योंकि दृष्टान्त सब जगहोंमें एकदेशीय ही होता है, 'पीड़ा न पहुंचाते हुए अनेक पुष्पोंसे थोड़ा थोड़ा लेना' इतने अंशोमें यह दृष्टान्त समझना चाहिये। इस विषयका स्पष्टी-

---

પ્રશ્ન—ભ્રમરનું ઉદાહરણ વિષમ છે, કારણ કે તે સાધુઓની સાથે બરાબર બંધ બેસતું નથી ભ્રમર વૃક્ષની આજ્ઞા પ્રાપ્ત કર્યા વિના જ પુષ્પનો રસ પીએ છે. સાધુ યાચના કરીને જ ભિક્ષા લે છે ભ્રમર એક દિવસમાં એક જ વૃક્ષની પાસે વારંવાર જાય છે અને પુષ્પરસને પીએ છે, સાધુ એક દિવસમાં વારંવાર એક ગૃહસ્થના ઘેરથી ભિક્ષા નથી લઈ શકતા, ભ્રમર અસંજ્ઞી હોય છે, સાધુ સંજ્ઞી હોય છે, ભ્રમર અવ્રતી હોય છે, સાધુ વ્રતી હોય છે, ભ્રમર અપ્રત્યાખ્યાની હોય છે, સાધુ પ્રત્યાખ્યાની હોય છે ભ્રમર અસંયત હોય છે, સાધુ સયત હોય છે ઇત્યાદિ અનેક ભિન્નતાઓ રહેલી છે

ઉત્તર—એ શકા બરાબર નથી, કારણકે દૃષ્ટાન્ત બધી જગ્યાએ એકદેશીય જ હોય છે 'પીડા ઉપજાવ્યા વિના અનેક પુષ્પોમાથી થોડો થોડો રસ લેવો' એટલા અંશમાં જ આ દૃષ્ટાન્ત સમજવું જોઇએ આ વિષયનું સ્પષ્ટી-

करिष्यति चैतत्सूत्रकारः स्वयम्-'महुगारसमा' इति पञ्चमगाथया ॥२॥

एतदेव विशेषेण स्फोरयितुं दार्ष्टान्तिकमाह-'एमेए' इत्यादि

मूलम्-एमेए समणा मुत्ता, जे लोए संति साहुणो।
विहंगमा व पुप्फेसु, दाणभत्तेसणे रया ॥३॥

छाया-एवमेते श्रमणा मुक्ता, ये लोके सन्ति साधवः।
विहङ्गमा इव पुष्पेषु, दानभक्तैषणे रताः ॥३॥

सान्वयार्थः—एमेए=इसीप्रकार ये लोए=लोकमें जे=जो मुत्ता=द्रव्यभाव-परिग्रहरहित समणा=तपस्वी साहुणो=साधु संति=हैं, (वे) पुप्फेसु=फूलोंमें विहंगमा व=पक्षियों-भमरोंकी तरह दाणभत्तेसणे=दाता द्वारा दियेजाने वाले आहारकी गवेषणामें रया=लीन रहते हैं। अर्थात्-जैसे पूर्वोक्त प्रकारसे भौंरा पुष्परसका पान करता है उसी प्रकार साधु गृहस्थियोंको असुविधा न पहुंचाते हुए अनेक घरोंसे थोड़ा-थोड़ा आहार ग्रहण करते हैं ॥ ४ ॥

टीका—एवम्=उक्तप्रकारेण ये लोके=समयक्षेत्रे सन्ति=वर्तन्ते एते=ते सर्वे श्रमणाः। 'श्रमणाः, शमनाः समनसः, समणाः' इत्येतेषां प्राकृते 'समणा' इति रूपं

करण सूत्रकार स्वयं 'महुगारसमा' इस पांचवीं गाथामें करेंगे ॥२॥

अब विशेष खुलासा करनेके लिए दार्ष्टान्तिक कहते हैं-

इस प्रकार अढ़ाइ द्वीपमें जितने श्रमण, मुक्त, साधु हैं वे सब दाताद्वारा दिये जाते हुए आहारकी एषणामें इस प्रकार प्रयत्न करें जैसे भ्रमर पुष्पोंके रसके अन्वेषणमें लीन होता है।

श्रमण, शमन, समनस्, समण, इन सब शब्दोंका प्राकृत भाषामें

કરણ સૂત્રકાર પોતે જ महुगारसमा એ પાંચમી ગાથામાં કરશે. (૨)

હવે વિશેષ ખુલાસો કરવાને દાર્ષ્ટાન્તિક કહે છે—

આ પ્રમાણે અઢી દ્વીપમાં જેટલા શ્રમણ, મુક્ત, સાધુઓ છે તેઓ બધા દાતા દ્વારા આપવામાં આવતા આહારની એષણામાં એવો પ્રયત્ન કરે કે જેમ ભ્રમર પુષ્પોના રસના શોધનમાં લીન થાય છે.

શ્રમણ, શમન, સમનસ્, સમણ, એ બધા શબ્દોનું પ્રાકૃત ભાષામાં

भवति, तत्र श्राम्यन्ति=तपस्यन्त्याहारादिनिरासेन शरीरं क्लेशयन्तीति, भवभ्रमणहेतुभूतविषयेषु खिद्यन्तीति, यद्वा अन्तर्भावितण्यर्थत्वात् श्राम्यन्ति=दमनेन श्रमयन्तीन्द्रियनोइन्द्रियाणीति श्रमणाः, शमयन्ति=शान्ति नयन्ति कषायनोकषायरूपाऽनलमिति, शाम्यन्ति=विशङ्कटभवाटवीपर्यटद्भोगानलोज्ज्वलज्वालामालाजनितसन्तापकलापतो निवृत्ता भवन्तीति वा शमनाः । समानानि=स्वपरेषु तुल्यानि मनांसि येषामिति, कुशलमयैर्मनोभिः सह वर्त्तन्त इति वा समनसः, सम्=सम्यक् अणन्ति=प्रवचनं ब्रुवत इति, सम्यक् अण्यन्ते=कषायचतुष्टयं जित्वा

'समण' रूप होता है । इनमें 'श्रमण' का अर्थ यह है कि जो अनशन आदि तप करते हैं-परिषह सहते हैं, संसारमें परिभ्रमण करानेवाले इन्द्रियोंके विषयोंसे उदास रहते हैं, अथवा जो पांच इन्द्रियोंका तथा मनका दमन करते हैं । 'शमन'का अर्थ यह होता है कि कषाय-क्रोध मान माया और लोभ तथा नोकषाय-हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्रीवेद पुरुषवेद और नपुंसकवेद-रूपी अग्निको शान्त कर देते हैं, विशाल भवाटवीमें पर्यटन करते हुए भोगरूपी अग्निकी धधकती हुई ज्वालाओंसे उत्पन्न हुए संतापके समूहको शुद्ध भावनासे शान्त कर-देते हैं । 'समनस्' शब्दका यह अर्थ है कि जिनका मन स्व और पर में समान है, अथवा जिनके मनोयोग सदा शुद्ध रहते हैं । 'समण'शब्दका अर्थ यह है कि-जो सम्यक् प्रकारसे प्रवचनका प्रतिपादन करते हैं अथवा चारों कषायोंको जीत लेते हैं ।

'સમણ' રૂપ થાય છે 'શ્રમણ'નો અર્થ એવો છે કે-જે અનશન આદિ તપ કરે છે-પરિષહ સહે છે, સંસારમાં પરિભ્રમણ કરાવનારા ઇન્દ્રિયોના વિષયોથી ઉદાસ રહે છે, અથવા જે પાંચ ઇન્દ્રિયોનું તથા મનનું દમન કરે છે, 'શમન' નો અર્થ એવો થાય છે કે-કષાય-ક્રોધ માન માયા અને લોભ, તથા નોકષાય-હાસ્ય રતિ અરતિ શોક ભય જુગુપ્સા સ્ત્રીવેદ પુરૂષવેદ અને નપુંસકવેદ રૂપી અગ્નિને શાન્ત કરી નાંખે છે, વિશાળ ભવાટવીમાં પર્યટન કરતાં ભોગરૂપી અગ્નિની ભભકતી જ્વાલાઓમાંથી ઉત્પન્ન થતાં સંતાપના સમૂહને શુદ્ધ ભાવનાથી શાન્ત કરી નાખે છે 'સમનસ્' શબ્દનો અર્થ એવો છે કે-જેનું મન સ્વ અને પરમાં સમાન હોય અથવા જેનાં મનોયોગ હમેશ શુદ્ધ રહે. 'સમણ' શબ્દનો અર્થ એવો થાય છે કે-જે સમ્યક્ પ્રકારે પ્રવચનનું પ્રતિપાદન કરે છે અથવા ચારે કષાયોને જીતી લે છે

जीवन्तीति वा समणाः। मुक्ताः=परिग्रहबन्धनरहिताः धर्मोपकरणं विहाय सूची-कुशाग्रमात्रेणापि परिग्रहेण रिक्ता इति यावत्, तत्र परिग्रहो बाह्याभ्यन्तरभेदाद्द्वि-विधः, तयोराद्यो धनधान्यादिरूपो नवविधः। द्वितीयस्तु—

"मिच्छत्तं वेयतिगं, हासाइयछक्कगं च नायव्वं।
कोहाईण चउक्कं, चउदस अब्भितरा गंठी ॥" इत्युक्तरूपः।

साधवः=साध्नुवन्ति=निष्पादयन्ति स्वपरशिवसुखं ये ते, पुष्पेषु=व्याख्यात-पूर्वेषु विहङ्गमा इव, विहायसा=गगनेन गच्छन्तीति तथोक्ताः, प्रकरणादत्र भ्रमरा इत्यर्थः, त इव, भ्रमरतुल्या इति यावत्।

एवं दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोर्मिथः सादृश्यं प्रदर्श्य सम्प्रति यः कश्चिद् भेदस्तमाह-

---

परिग्रहके बन्धनसे रहित अर्थात् धर्मके उपकरणोंके सिवाय सुई या कुशकी नोंकके बराबर भी परिग्रह न रखनेवालोंको मुक्त कहते हैं।

परिग्रहके दो भेद हैं-(१) बाह्य और (२) आभ्यन्तर। पहला बाह्य परिग्रह धन-धान्य आदि नौ प्रकारका है। दूसरा आभ्यन्तर परिग्रह-(१) मिथ्यात्व, (२) स्त्रीवेद, (३) पुरुषवेद, (४) नपुंसकवेद, (५) हास्य, (६) रति, (७) अरति, (८) शोक, (९) भय, (१०) जुगुप्सा, (११) क्रोध, (१२) मान, (१३) माया और (१४) लोभके भेदसे चौदह प्रकारका है।

स्व और परके मोक्ष सम्बन्धी सुखको साधनेवाले साधु कहलाते हैं। ऐसे साधु, दिये जानेवाले अशन आदिकी एषणामें प्रवृत्त होवें -आहार-पानी की विशुद्धिमें लीन रहें।

यहां तक दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिककी परस्परमें समानता बतलाई है।

પરિગ્રહના બંધનથી રહિત અર્થાત્ ધર્મના ઉપકરણો સિવાય એક સોય કે તણખલા જેટલો પણ પરિગ્રહ ન રાખનારાઓને મુક્ત કહે છે

પરિગ્રહના બે ભેદ છે (૧) બાહ્ય અને (૨) આભ્યંતર. પહેલો બાહ્ય પરિગ્રહ ધન-ધાન્યાદિ નવ પ્રકારનો છે. બીજો આભ્યંતર પરિગ્રહ-(૧) મિથ્યાત્વ, (૨) સ્રીવેદ, (૩) પુરૂષવેદ, (૪) નપુંસકવેદ, (૫) હાસ્ય, (૬) રતિ, (૭) અરતિ, (૮) શોક, (૯) ભય, (૧૦) જુગુપ્સા, (૧૧) ક્રોધ, (૧૨) માન, (૧૩) માયા, અને (૧૪) લોભ, એ ભેદોએ કરીને ૧૪ પ્રકારનો છે.

સ્વ અને પરના મોક્ષ સબંધી સુખને સાધનારા સાધુ કહેવાય છે. એવા સાધુ, આપવામાં આવતા અશન આદિની એષણામા પ્રવૃત્ત થાય, આહાર પાણીની વિશુદ્ધિમાં લીન રહે

અહીં સુધી દૃષ્ટાન્ત અને દાર્ષ્ટાન્તિકની પરસ્પર સમાનતા બતાવી છે. હવે

यद्वा यथा विहङ्गमाः पुष्पेषु तथा साधवः कुत्र रताः ? इत्याह–'दानभक्तैषणे रताः' इति, दीयत इति, अदायीति वा दानं=दीयमानमथवा दत्तं, तच्च तद्भक्तम्=अन्नादिकं च दानभक्तं तस्य एषणम्=अन्वेषणं तस्मिन्, अथवा दानं=दत्तं, भक्तं=प्रासुकम्, एषणा=अन्वेषणम् एतेषां समाहारद्वन्द्वे दानभक्तैषणं तस्मिन् रताः=आसक्ता इत्यर्थः ।

बोटिक-शाक्य-तापस-गैरिका-ऽऽजीवा अपि लोके श्रमणपदेनोच्यन्ते तेषां निरासार्थमुक्तं 'मुत्ता' इति । निह्नवादिष्वपि व्यवहारतो मुक्तत्वमस्त्यतस्तद्व्यावृत्त्यर्थमाह–'साहुणो' इति । मधुकरा अदत्ताऽऽदानवृत्त्या कुसुमरसं पिबन्ति श्रमणास्तु दातृभिरदत्तस्यान्नादेर्जिघृक्षामपि न कुर्वते ग्रहणस्य तु कथैव केति भ्रमरापेक्षया साधूनां व्यतिरेकं दर्शयितुमाह–'दाण' इति । 'भत्त' पदेन सचित्त-

---

अब उनमें जो अन्तर है उसेभी बतलाते हैं । वह अन्तर यह है कि जैसे भ्रमर पुष्पोंमें अनुरक्त होता है वैसे साधु गृहस्थद्वारा दिये जाने वाले अशन पान आदिके अन्वेषणमें प्रवृत्त होवें ।

बोटिक, शाक्य, तापस, गैरिक और आजीविक आदिभी, लोकमें श्रमण कहलाते हैं, उनका निराकरण करनेके लिए गाथामें 'मुत्ता' (मुक्ताः) कहा है । निह्नव आदिभी व्यवहारसे मुक्त कहलाते हैं अतः उनका निराकरण करनेके लिए 'साहुणो' (साधवः) पद दिया है । भ्रमर विना दिये हुए पुष्पके रसका पान करते हैं किन्तु श्रमण विना दिये हुएको ग्रहण करनेकी इच्छाभी नहीं करते, ग्रहण करनेकी तो बात ही दूर है, इस भेदको प्रगट करनेके लिए 'दान' शब्द, सचित्त आहारका

તેમાં જે અંતર રહેલુ છે તે બતાવે છે તે અંતર એ છે કે–જેમ ભ્રમર પુષ્પોમાં અનુરક્ત થાય છે તેમ ગૃહસ્થે આપેલા અનશન પાન આદિના શોધનમાં સાધુ પ્રવૃત્ત થાય બોટિક, શાકય, તાપસ, ગૈરિક અને આજીવિક આદિ પણ જનતામાં શ્રમણ કહેવાય છે, તેનું નિરાકરણ કરવા માટે ગાથામાં मुत्ता (मुक्ताः) કહ્યું છે નિહ્નવ આદિ પણ વ્યવહારે કરીને મુક્ત કહેવાય છે, તેથી તેનું નિરાકરણ કરવાને साहुणो (साधवः) પદ આપેલું છે. ભ્રમર અણઆપેલા પુષ્પના રસનું પાન કરે છે, કિન્તુ શ્રમણ અણઆપેલા ભોજનનું ગ્રહણ કરવાની ઈચ્છા પણ કરતા નથી, પછી ગ્રહણ કરવાની વાત જ કયાં રહી ? આ ભેદને પ્રકટ કરવાને માટે दान શબ્દ, સચિત્ત આહારનું નિરાકરણ કરવાને માટે भत्त શબ્દ, અને

मपि व्यवच्छिद्यते । आधाकर्मादिदोषव्यावृत्तये ' एसणा '—पदमुपात्तम् ।

एवमुक्तगाथाभ्यां दृष्टान्त-दार्ष्टान्तिकप्रदर्शनपुरस्सरं साधुभिः कथं भिक्षा ग्रहीतव्येत्युक्तं, तत्र भिक्षा द्विविधा—लौकिकी लोकोत्तरा च । तयोराद्या दीनवृत्ति-—पौरुषघ्नी-भेदाद् द्विविधा, तत्र स्वोदरभरणासमर्थानां हीना-ऽनाथ-पङ्गुप्रभृतीनामाद्या, पञ्चास्रवभाजामिन्द्रियपञ्चकविषयासक्तचित्तानां प्रमादपञ्चकप्रवृत्तानां भोगामिषगृध्नूनां सन्ततिसमुत्पादकानां निरुद्यमानां द्वितीया । लोकोत्तराऽपि

निराकरण करनेके लिए 'भत्त' शब्द और आधाकर्मी आदि दोषवाले आहारका व्यवच्छेद करनेके लिए 'एषणा' शब्द गाथामें दिया गया है।

इन दो गाथाओंमें दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक बतलाकर यह प्रगट किया है कि साधुओंको किस प्रकार भिक्षा लेनी चाहिये?, अतःभिक्षाके भेद कहते हैं—

भिक्षा दो प्रकारकी है—लौकिक भिक्षा और लोकोत्तर भिक्षा। लौकिक भिक्षाके भी दो भेद हैं—(१) दीनवृत्ति, (२) पौरुषघ्नी । अपना पेट भरनेमें असमर्थ, दीन, हीन, अनाथ, लूलों, लंगड़ोंकी भिक्षा दीनवृत्ति कहलाती है। पांच आस्रवोंका सेवन करनेवाले, पांचों इन्द्रियोंके विषयोंमें चित्तको सदा आसक्त रखनेवाले, पांचों प्रकारके प्रमादोंमें प्रवृत्ति करनेवाले, भोगरूपी आमिषमें अभिलाषा रखनेवाले, बाल-बच्चोंको उत्पन्न करनेवाले निकम्मे मनुष्योंको दी जानेवाली भिक्षा पौरुषघ्नी कहलाती है, क्योंकि इससे उनका पौरुष नष्ट हो जाता है ।

આધાકર્મી આદિ દોષવાળા આહારનો વ્યવચ્છેદ કરવાને માટે एषणा શબ્દ ગાથામાં આપવામાં આવેલો છે.

આ બે ગાથાઓમાં દૃષ્ટાંત અને દાર્ષ્ટાન્તિક બતાવીને એમ પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે કે સાધુઓએ કેવા પ્રકારની ભિક્ષા લેવી જોઇએ. માટે ભિક્ષાના ભેદો કહે છે—

ભિક્ષા બે પ્રકારની છે. લૌકિક ભિક્ષા અને લોકોત્તર ભિક્ષા. લૌકિક ભિક્ષાના પણ બે ભેદો છે. (૧) દીનવૃત્તિ, (૨) પૌરૂષઘ્ની પોતાનું પેટ ભરવામા અસમર્થ દીન, હીન, અનાથ, લૂલા, લગડાની ભિક્ષા દીનવૃત્તિ કહેવાય છે. પાંચ આસ્રવોનું સેવન કરનારા, પાચે ઇન્દ્રિયોના વિષયોમાં ચિત્તને સદા આસકત રાખનારા પાચે પ્રકારના પ્રમાદોમાં પ્રવૃત્તિ કરનારા, ભોગરૂપી આમિષમા અભિલાષા રાખનારા, બાળ-બચ્ચાને ઉત્પન્ન કરનારા, એવા નકામા મનુષ્યોને આપવામાં આવતી ભિક્ષા પૌરૂષઘ્ની કહેવાય છે, કારણ કે તેથી એમનું પૌરૂષ નષ્ટ થઇ જાય છે.

द्विविधा–अप्रशस्ता प्रशस्ता च, तत्राऽवसन्न-पार्श्वस्थादीनामप्रशस्ता भिक्षा, प्रशस्ता पुनः पञ्चमहाव्रतधारिणां षट्कायरक्षकाणां समितिपञ्चक-गुप्तित्रयवतां मुनीनां प्रतिमाधारिश्रावकाणां च, यत एवंभूताः श्रावका अपि श्रमणकल्पा एव। इयमेव 'सर्वसम्पत्करी'–त्युच्यते, अस्या अन्यान्यपि षड् नामानि यथा–(१) माधुकरी, (२) गोचरी, (३) गड्डुलेपा, (४) अक्षाञ्जना, (५) गर्तापूरणी, (६) दाहोपशमनी चेति। तासु माधुकरी–समनन्तरसूत्रोक्तस्वरूपा (१)।

लोकोत्तरभिक्षा भी दो प्रकारकी है–(१) अप्रशस्त और (२) प्रशस्त। अवसन्न और पार्श्वस्थ आदिकी भिक्षा अप्रशस्त और पंचमहाव्रतधारी, षट्कायरक्षक, पांचसमिति तीनगुप्तिका पालन करनेवाले मुनिकी तथा प्रतिमा-(पडिमा)-धारी श्रावकोंकी भिक्षा प्रशस्त कहलाती है।

प्रतिमा-(पडिमा)-धारी श्रावकोंकी भिक्षा प्रशस्त इस कारण है कि वे श्रावक होते हुए भी साधुसरीखी उत्कृष्ट क्रियाका पालन करते हैं। इस भिक्षाको 'सर्वसम्पत्करी' भी कहते हैं, क्योंकि इससे आत्माकी समस्त सम्पत्ति ज्ञान दर्शन सुख आदिकी प्राप्ति होती है। इस भिक्षाके छह नाम और भी कहते हैं—

(१) माधुकरी (भ्रामरी), (२) गोचरी, (३) गड्डुलेपा, (४) अक्षाञ्जना, (५) गर्तापूरणी और (६) दाहोपशमनी।

(१) माधुकरी (भ्रामरी) का स्वरूप इससे पहलेकी गाथामें कहा जाचुका है।

લોકોત્તર ભિક્ષા બે પ્રકારની છે. (૧) અપ્રશસ્ત, (૨) પ્રશસ્ત અવસન્ન અને પાર્શ્વસ્થ આદિની ભિક્ષા અપ્રશસ્ત અને પંચ મહાવ્રતધારી, ષટ્કાયરક્ષક, પાંચ સમિતિ ત્રણ ગુપ્તિનું પાલન કરનારા મુનિની તથા પ્રતિમા–(પડિમા)–ધારી શ્રાવકોની ભિક્ષા પ્રશસ્ત કહેવાય છે.

પ્રતિમા–(પડિમા)–ધારી શ્રાવકોની ભિક્ષા પ્રશસ્ત એ કારણથી છે કે એ શ્રાવકો હોવા છતાં સાધુના જેવી ઉત્કૃષ્ટ ક્રિયાનું પાલન કરે છે. આ ભિક્ષાને 'સર્વસમ્પત્કરી' પણ કહે છે, કારણ કે તેથી આત્માની સમસ્ત સમ્પત્તિ જ્ઞાન દર્શન સુખ આદિની પ્રાપ્તિ થાય છે એ ભિક્ષાનાં બીજાં છ નામ પણ કહેલાં છે. (૧) માધુકરી (ભ્રામરી), (૨) ગોચરી, (૩) ગડ્ડુલેપા, (૪) અક્ષાંજના, (૫) ગર્તાપૂરણી, અને (૬) દાહોપશમની.

(૧) માધુકરી (ભ્રામરી)નું સ્વરૂપ પહેલાંની ગાથામાં કહ્યું છે.

द्वितीया–यथा गौर्यत्र लघुतृणादिकं पश्यति तत्राऽल्पं यत्र चाधिकं तत्र पूर्वापेक्षयाऽधिकं कवलं गृह्णाति न तु तृणादिकमुन्मूलयति तथा मुनिरपि गृहस्थगृहे यथाऽवसरं यथासामग्रि च यां भिक्षां गृह्णाति सा। अथवा विविधवसनरत्नालङ्करणविभूषिता सुन्दरी युवतिर्गवे घासादिकं समर्पयति तदा तदीयरूपलावण्यादिकमपश्यन्ती गौर्दीयमानं घासादिकमुपादत्ते, तद्वद् भिक्षुणाऽपि दातृवसनसुवेपरूपलावण्यादेः सानुरागावलोकनं विहाय केवलमशनपानादिशुद्धौ दृष्टिः स्थापनीयेति गोचरीभिक्षासमाचारः (२)।

तृतीया गड्डुलेपा–यथा गड्डूपरि समधिकलेपप्रदानेन प्रसृतलेपतो नीरुजोऽपि

---

(२) गोचरी–जैसे गाय जहां कम घास देखती है वहाँ कम कवल ग्रहण करती है, जहां अधिक देखती है वहां पहलेसे कुछ अधिक ग्रहण करती है, घासको जड़से नहीं उखाड़ती, उसीप्रकार भिक्षु एक स्थानसे ही पूर्ण अशन पान आदि न ग्रहण करे किन्तु गृहस्थको फिर आरम्भ न करना पड़े इस प्रकार विचार कर अशनादि ले उसे गोचरी कहते हैं। अथवा जैसे विविध बहुमूल्य वस्त्र आभूषणोंसे आभूषित सुन्दरी युवती स्त्री गायको घास डालने आती है तो गाय उसकी सुन्दरता नहीं देखती वरन् घास पर ही दृष्टि रखती है, उसीप्रकार भिक्षु आहारादि देती हुई स्त्रीके सौन्दर्य, सुवेष, आभूषण आदिका निरीक्षण न करे किन्तु अशनादिकी शुद्धि पर ही दृष्टि रखे उसे गोचरी कहते हैं।

(३) गड्डुलेपा–जैसे फोड़ेके ऊपर आवश्यकतासे अधिक लेप करनेसे

---

(२) ગોચરી–જેમ ગાય જ્યા ઓછું ઘાસ જુએ છે ત્યાં ઓછો કોળિયો લે છે, જ્યા વધુ ઘાસ જુએ છે ત્યા પહેલાથી વધુ મોટો ગ્રાસ (કોળીયો) લે છે, ઘાસને મૂળમાંથી ઉપાડતી નથી. એ રીતે ભિક્ષુ એક સ્થાનેથી જ પૂરાં અશન પાન આદિ ગ્રહણ ન કરે, કિંતુ ગૃહસ્થને ફરીથી આરંભ-સમારંભ ન કરવો પડે એવો વિચાર કરીને અશનાદિ લે, તેને ગોચરી કહે છે. અથવા જેમ વિવિધ બહુમૂલ્ય વસ્ત્રાભૂષણોથી સજ્જ થએલી સુન્દર યુવતી સ્ત્રી ગાયને ઘાસ નીરવા આવે છે, તો ગાય તેની સુંદરતા જોતી નથી. પરન્તુ ઘાસ પર જ દૃષ્ટિ રાખે છે, તે પ્રમાણે ભિક્ષુ આહારાદિ આપતી સ્ત્રીનું સૌંદર્ય, સુવેશ, આભૂષણ આદિનું નિરીક્ષણ ન કરે, કિંતુ અશનાદિની શુદ્ધિ પર જ દૃષ્ટિ રાખે તેને ગોચરી કહે છે

(૩) ગડુલેપા–જેમ ગુમડા ઉપર જરૂરી કરતા વધારે લેપ કરવાથી લેપ

गड्डसन्निहितदेशो विहन्यते, तदेकदेशमात्रे यत्किञ्चिल्लेपप्रदाने गड्डप्रदेशसाकल्येन लेपाभावाद्रोगो नोपशाम्यति, तद्वत्साधुरपि, निर्दोषपरिमिताहारेण क्षुधां निवर्तयति तद्रूपा (३)।

चतुर्थं चास्या अक्षाञ्जनेति नाम-यथा शकटेन दूरं गन्तुकामस्तत्र यदि तैलदानं न कुर्यात्, तदा चलितुमेवाक्षमं तन्न पारयति शकटारोहिणं प्रापयितुमभीष्टं स्थानम् तत्राधिकतरतैलनिक्षेपस्तु न केवलं निष्फलः प्रत्युत हानिं जनयतीति, तद्वन्निरवद्याशनपानप्रदानं विना मोक्षप्रापकसंयमपथे चलितुमक्षमं शरीर-

---

लेप इधर-उधर फैल जाता है और आस-पासका नीरोग प्रदेश भी खराब हो जाता है, और यदि फोड़े पर बिलकुल ही लेप न किया जाय तो भी रोग शान्त नहीं होता, वैसेही साधु यदि प्रमाणसे अधिक आहार करे तो प्रमाद आदि दोष उत्पन्न होनेसे स्वाध्याय आदि क्रियाओंका पूर्ण पालन नहीं कर सकता, और बिलकुल ही थोड़ा आहार करे तो क्षुधावेदनीयकी शान्ति न होनेसे वैयावृत्त्य आदि साधुकी क्रियाएँ नहीं हो सकतीं, इसलिए निर्दोष और परिमित आहार लेना 'गड्डलेपा' भिक्षा कहलाती है।

(४) अक्षाञ्जना-जैसे कोई गाडीद्वारा इच्छित स्थान पर जाना चाहता है परन्तु गाडीको बिलकुल तैल नहीं देवे तो वह गाडी चल नहीं सकती और यदि अधिक तेल दे दिया जाय तो वह वृथा ही नहीं वरन् हानिकारक भी है, इसीप्रकार मोक्षपुरी तक पहुंचनेके लिए शरीर-रूप शकट (गाडी)

આમ-તેમ ફેલાઈ જાય છે અને આસપાસનો નીરોગ પ્રદેશ પણ ખરાબ થઈ જાય છે અને જો ગૂમડા ઉપર બિલકુલ લેપ ન કરવામાં આવે તો રોગ શાન્ત થાય નહિ, એવી જ રીતે સાધુ જો પ્રમાણથી અધિક આહાર કરે તો પ્રમાદ આદિ દોષ ઉત્પન્ન થવાથી સ્વાધ્યાય આદિ ક્રિયાઓનું પૂર્ણ પાલન કરી શકતો નથી, અને બિલકુલ થોડો આહાર કરે તો ક્ષુધાવેદનીયની શાન્તિ નહિ થવાથી વૈયાવૃત્ત્ય આદિ સાધુની ક્રિયાઓ થઈ શકતી નથી તેથી નિર્દોષ અને પરિમિત આહાર લેવો એ 'ગડુલેપા' ભિક્ષા કહેવાય છે.

(૪) જેમ કોઈ માણસ ગાડામાં બેસીને ઇચ્છિત સ્થાન પર જવા ઇચ્છે છે. પરન્તુ ગાડાને બિલકુલ તેલ ન ઉંજે તો એ ગાડું ચાલી શકતું નથી અને જો વધારે પડતું તેલ ઉંજે તો તે વૃથા જાય છે એટલું જ નહિ પણ હાનિકારક પણ નીવડે છે એ રીતે મોક્ષપુરી સુધી પહોંચવાને માટે શરીર-શકટ (ગાડા)

मपि नालं मुनीन् मोक्षं प्रापयितुम्, अधिकतराहारपूरितं तु निद्राप्रमादादिदोषजातं जनयन्नूनमेव विनयश्रुतादिसमाधिं विध्वंसयति, अतः परिमितं विशुद्धं चाशनपानमुपादेयं भिक्षुणेति सेयं भिक्षा 'अक्षाञ्जना नाम' (४)।

पञ्चमी गर्तापूरणी, सा यथा—कस्यापि श्रेष्ठिनो भवनसम्बन्धिनि गमनागमनमार्गे यदि केनापि कारणेन गर्त्तः संजायते तदा तमवलोक्य स तदानीं यदेव सद्यो लोष्टपाषाणखण्डादिकमुपलभते तदेवादाय तं गर्तं परिपूरयति न तूत्तमेनैवेष्टकप्रभृतिना गर्तोऽयं पूरयितव्य इति विचारयति, तथा सति महाऽनर्थोत्पत्तिसंभवः, एवमेव मुनिरपि क्षुधावेदनीयोदयवशाद्रिक्तमुदरमैषणिकैरन्तप्रान्तादिभिराहारैर्बिभर्त्तीति । (५)

को आहारादिरूप तेल बिलकुल न दिया जाय तो संयमयात्राका सम्यक् निर्वाह नहीं हो सकता और अधिक आहार देनेसे रोगादि होजानेके कारण विनय श्रुत आदि समाधि नहीं हो सकती, इसलिए परिमित आहार लेना अक्षाञ्जना भिक्षा कहलाती है ॥

(५) गर्तापूरणी—जैसे यदि किसी रईसके घर जाने-आनेके मार्गमें किसी कारणसे गड्ढा होजाय तो उसे देखते ही वह रईस शीघ्रतासे मिट्टी-पत्थरके टुकड़े आदि जो कुछ पाता है उन्हींको लेकर खड्डेको भर देता है। परन्तु ऐसा नहीं विचारता है कि अच्छे २ ईट-पत्थरों से ही इसे भरना चाहिये। यदि न पूरे तो बड़ी आपत्ति आनेकी संभावना रहती है । इसीप्रकार मुनि, क्षुधावेदनीयके वशसे अन्त-प्रान्त आदि निरवद्य आहार लेकर खाली उदर भर लेते हैं । इसलिए इसे गर्तापूरणी कहते हैं ।

ને આહારાદિ રૂપ તેલ બિલકુલ ન ઉજવામાં આવે તો સયમ-યાત્રાનો સમ્યક્ નિર્વાહ થઇ શકતો નથી, અને અધિક આહાર આપવામા આવે તો રોગાદિ થવાથી વિનય શ્રુત આદિ સમાધિ થઈ શકતી નથી તેથી પરિમિત આહાર લેવો એ 'અક્ષાજના' ભિક્ષા કહેવાય છે

(૫) ગર્તાપૂરણી—જેમ કોઇ ગૃહસ્થને ઘેર જવા-આવવાના માર્ગ પર કોઇ કારણથી ખાડો પડી જાય છે તો તેને દેખતાં જ તે ગૃહસ્થ શીઘ્ર માટી, પત્થરના ટુકડા, વગેરે જે કાંઇ મળે તે લઇને ખાડાને પૂરી નાંખે છે પણ એમ નથી વિચારતો કે સારી ઈંટો પથરોથીજ પૂરીએ જો ન પૂરે તો ભારે આપત્તિ આવી પડવાની સંભાવના રહે છે એ રીતે મુનિ ક્ષુધા-વેદનીયને લીધે અંત-પ્રાંત આદિ નિરવદ્ય આહાર લઇને ખાલી ઉદર ભરી લે છે તેને ગર્તાપૂરણી કહે છે.

षष्ठी दाहोपशमनी यथा–भवने ज्वलनज्वालामालादन्दह्यमाने गृही यदेव सद्यो जलकर्दमधूलिलोष्टप्रभृतिकमुपलभते तदेव प्रक्षिप्य पावकं प्रशमयति न तु गङ्गादिसलिलं प्रतीक्षते, तथा संयमरक्षार्थं निर्दोषेण रूक्षादिनाऽप्याहारेण शमयति क्षुधां मुमुक्षुर्भिक्षुरिति (६) ॥ ३ ॥

प्रशस्तैव भिक्षा साधुभिर्ग्रहीतव्या नेतरेति निशम्य शिष्यो गुरुं प्रत्याह– 'वयं च,–इत्यादि ।

मूलम्–वयं[1] च[2] वित्तिं[3] लब्भामो,[4] न[7] य[5] कोइ[6] उवहम्मइ[8] ।
अहागडेसु[9] रीयंते,[10] पुप्फेसु[13] भमरा[12] जहा[11] ॥ ४ ॥

(छाया)—वयं च वृत्तिं लप्स्यामहे, न च कोऽपि उपहन्यते ।
यथाकृतेषु रीयन्ते, पुष्पेषु भ्रमरा यथा ॥ ४ ॥

(६) दाहोपशमनी–जिस समय घरमें अग्नि धधक जाय उस समय घरका स्वामी जल्दीरमें जल कीचड़ धूल मिट्टी आदि जो कुछ मिलजाय उसीको डालकर आग बुझाता है । उस समय वह यह नहीं सोचता कि जब गंगासिन्धुका निर्मल नीर मिलेगा तभी आग बुझाऊंगा, उसीप्रकार संयमकी रक्षाके लिए मुमुक्षु भिक्षु तुच्छ आदि निर्दोष भिक्षासे क्षुधाको शान्त कर लेता है । इसलिए इसको दाहोपशमनी कहते हैं ॥३॥

'प्रशस्त भिक्षा ही साधुको ग्रहण करनी चाहिये अन्य नहीं' यह सुनकर शिष्य गुरुसे निवेदन करता है–'वयं च वित्तिं' इत्यादि ।

(६) દાહોપશમની—જે સમયે ઘરમા અગ્નિ ભભૂકી ઉઠે તે સમયે ઘરનો ધણી જલ્દી–જલ્દી પાણી, કાદવ, ધૂળ, માટી વગેરે જે કાંઇ મળી જાય તે નાંખીને આગ બુઝાવે છે. તે વખતે તે એમ નથી વિચારતો કે જ્યારે ગંગા–સિંધુનું નિર્મળ નીર મળશે ત્યારે આગને બુઝાવીશ એ રીતે સંયમની રક્ષાને માટે મુમુક્ષુ ભિક્ષુ લુખ્ખી, તુચ્છ, આદિ નિર્દોષ ભિક્ષાથી ક્ષુધાને શાન્ત કરી લે છે. તેથી તેને 'દાહોપશમની' કહે છે (૩)

"પ્રશસ્ત ભિક્ષાજ સાધુએ ગ્રહણ કરવી જોઇએ બીજી નહિ," એમ સાંભળીને શિષ્ય ગુરૂ સમીપે નિવેદન કરે છેઃ—વયં ચ વિત્તિં ઇત્યાદિ

गुरु महाराजके प्रति शिष्यकी प्रतिज्ञा—

सान्वयार्थः-(हे गुरुमहाराज !) वयं=हम च=ऐसी वित्तिं=वृत्ति-भिक्षावृत्तिको लब्भामो=स्वीकार करेंगे (जिससे) कोइय=कोईभी न उवहम्मइ=उपमर्दित न हो, (साधु) अहागडेसु=सदाकी भांति गृहस्थद्वारा अपने लिए बनाये हुए भोजनमेंही रीयंते=संयम यात्राका निर्वाह करते हैं, जहा=जिस प्रकार भमरो=भौंरा पुप्फेसु=फूलोंमें निर्वाह करता है। अर्थात् श्रमण महाराज गृहस्थद्वारा खुदके लिये बनाये हुए आहारसे ही अपनी यात्राका निर्वाह कर लेते हैं ॥ ४ ॥

टीका—एतद्गाथायाः पूर्वार्द्धे समुपात्तं चकारद्वयं क्रमेण यथा-तथा-शब्दार्थवाचकं ततश्चायमर्थः-वयं च=तथा-तेन रूपेण, वृत्तिं=जिनोक्तस्वरूपां प्रशस्तां भिक्षां, लप्स्यामहे=प्राप्स्यामः स्वीकरिष्याम इति यावत्, यथा न कोऽपि त्रस-स्थावरप्राणिमात्रमित्यर्थः उपहन्यते=उपहतः (उपमर्दितः) भवेत्। एवंविधवृत्तिग्रहणे सदृष्टान्तहेतुमुपन्यस्यति 'अहा०' इति, अत्र 'यत्' इत्यध्याहार्यम्, तथा च-यतः यथाकृतेषु=गृहस्थैरात्मार्थमात्मीयार्थं च सम्पादितेष्वाहारादिषु रीयन्ते=गच्छन्ति संयमयात्रां निर्वहन्तीति यावत् 'साधवः' इति शेषः। अत्र गतमपि भ्रमरदृष्टान्तं विस्पष्टप्रतिपत्तये पुनरुपन्यस्यति 'पुप्फेसु' यथा पुष्पेषु

इस गाथाके पूर्वार्द्धमें दो 'च' आये हैं, एकका अर्थ है 'जैसे' और दूसरेका अर्थ है 'वैसे', इसलिए इसका अर्थ यह हुआ कि-हे भगवन्! हम वैसेही प्रशस्त भिक्षा ग्रहण करेंगे जैसे (जिस प्रकार) त्रस या स्थावर जीवको किसीभी प्रकारकी बाधा न पहुँचे, क्योंकि गृहस्थोंद्वारा अपनेलिये या अपने कुटुम्बके लिये बनाये हुए आहारको लेकर ही साधु अपनी संयमयात्राका निर्वाह कर लेते हैं। इसी बातको अधिक स्पष्ट करनेके

આ ગાથાના પૂર્વાર્ધમાં બે च આવ્યા છે એકનો અર્થ છે 'જેમ' અને બીજાનો અર્થ છે 'એમ' એ રીતે તેનો અર્થ એમ થયો કે-હે ભગવન્! અમે એમ જ (એજ પ્રકારે) પ્રશસ્ત ભિક્ષા ગ્રહણ કરીશું કે જેમ (જે પ્રકારે) ત્રસ યા સ્થાવર જીવને કોઇ પણ પ્રકારની બાધા ન પહોંચે કારણ કે ગૃહસ્થોએ પોતાને માટે યા પોતાના કુટુંબને માટે બનાવેલો આહાર લઇને જ સાધુ પોતાની સંયમ-યાત્રાનો નિર્વાહ કરી લે છે. એ વાતને વધુ સ્પષ્ટ કરવાને માટે ભ્રમરના દૃષ્ટાંતને ફરીથી બેવડાવે છે

भ्रमराः, ते हि पुष्पेभ्यो रसमाहरन्तोऽपि तानि (पुष्पाणि) लेशतोऽपि न पीडयन्ति । अत्र 'लब्भामो' इत्यस्य 'लप्स्याम' इति व्याख्यानं तु सर्वथा व्याकरणविरुद्धमेव 'लभ' धातोरनुदात्तेत्सु पठितत्वेन नित्यात्मनेपदित्वात्, न च चक्षिङो ङित्करणज्ञापितया 'अनुदात्तेत्त्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यम्' इतिपरिभाषया परस्मैपदमपि युक्तमेवेति वाच्यम्, तस्या अगतिकगतिकतयेष्टप्रयोगविषयत्वात्, वस्तुतस्तु भाष्यानुक्तज्ञापितार्थस्य साधुताया नियामकत्वे प्रमाणाभावादेवमादिकाः परिभाषाश्चिन्त्या एवेति स्पष्टं 'परिभाषेन्दुशेखरे' इत्यतिरोहितं वैयाकरणानाम् । अत्र गाथायां 'लब्भामो' इति, 'उवहम्मइ' इति भविष्यद्वर्त्तमानौ कालाववविक्षितौ, तेन कालत्रयग्रहणं बोध्यम् ॥ ४ ॥

एवं मधुकरदृष्टान्तेन यत्फलितं तत्प्रतिपादयन्नुपसंहरति-'महुगारसमा०' इत्यादि ।

मूलम्-महुगारसमा[२] वुद्धा[३] जे[१] भवंति[७] अणिस्सिया[४] ।

नाणापिंडरया[५] दंता[६] तेण[८] वुच्चंति[१०] साहुणो[९] ॥त्तिवेमि॥५॥

छाया—मधुका (क) रसमा बुद्धा यतो भवन्त्यनिश्रिताः ।

नानापिण्डरता दान्ताः, तेन उच्यन्ते साधवः ॥ ५ ॥

सान्वयार्थः—(क्योंकि) जे=जो महुगारसमा=भौंरेकीभांति बुद्धा=विवेकी अणिस्सिया=मोहबन्धनरहित नाणापिंडरया=अनेक घरोंका निरवद्य पिण्ड लेकर संयममें लीन दंता=इन्द्रियविजयी भवंति=होते हैं, तेण=इसीसे वे साहुणो=साधु वुच्चंति=कहलाते हैं । त्तिवेमि=इस प्रकार श्रीसुधर्मा स्वामी

लिए कहे हुए भ्रमर दृष्टान्तको फिर दुहराते हैं कि-जैसे भ्रमर पुष्पोंसे रस ग्रहण करकेभी किसी पुष्पको पीड़ा नहीं पहुँचाता ॥४॥

मधुकरका उदाहरण देनेसे जो निष्कर्ष निकला उसे सूत्रकार कहते हैं-'महुगारसमा' इत्यादि ।

છે-જેમ ભ્રમર પુષ્પોમાંથી રસ ગ્રહણ કરીને પણ કોઇ પુષ્પને પીડા ઉપજાવતો નથી (૪)

મધુકરના ઉદાહરણમાંથી જે નિષ્કર્ષ નીકળ્યો તેને સૂત્રકાર કહે છે-મહુગારસમા, ઇત્યાદિ

जम्बूस्वामीसे कहते हैं-"हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीरसे मैंने जैसा सुना है वैसा ही तेरे लिए कहता हूं ॥ ५ ॥

॥ इति प्रथमाध्ययनस्य सान्वयार्थः ॥ १ ॥

टीका—अत्र गाथायां 'जे' इत्यस्यादौ 'यतः' इति, 'तेण' इत्यस्यान्ते 'ते' इति च पदद्वयमध्याहार्यम्, तथा च—यतः ये मधुका(क)रसमाः=भृङ्गवदनियत-वृत्तयः; बुद्धाः=इदं कर्त्तव्यमिदमकर्त्तव्यमित्येवं विवेकवन्तः, अनिश्रिताः=निश्रा-यरहिताः-निवासकुलादिषु प्रणयनिगडबन्धशून्या इत्यर्थः, नानापिण्डरताः= नाना=अभिग्रहविशेषेण प्रतिगृहाऽल्पाल्पग्रहणयुक्ततया अन्तप्रान्तादिभेदेन च विविधप्रकारा ये पिण्डाः=आहाराद्यास्तेषु रताः=संसक्ताः, दान्ताः=इन्द्रिय-नोइन्द्रियविकारभावाऽनुपहतचित्ताः, भवन्ति=सम्पद्यन्ते, तेन=उक्तप्रकारेण निरव-द्यवृत्तिसमाराधनेन हेतुना ते योगत्रये-न्द्रियपञ्चक-नवविधविशुद्धब्रह्मचर्याऽहिंसाः साधयन्तीति साधवः व्युच्यन्ते=कथ्यन्ते इति गाथार्थः, इत्यन्ये, वस्तु-तस्तु अत्र 'यतः' इत्यस्य, 'ते' इत्यस्य चाध्याहरणं 'जे' इत्यस्य प्रथमान्तत्वेन व्याख्यानं च न युक्तं, तथा सति 'ये'–'ते'–शब्दयोर्वैयर्थ्यापत्तेः, तस्मात् 'जे' इत्यव्ययपदं 'यतः' इत्यस्यार्थे, अव्ययानामनेकार्थत्वात्, ततश्चा-यमभिसम्बन्धः—यतः मधुकारसमाः बुद्धाः अनिश्रिताः नानापिण्डरताः दान्ता

जो भौंरेके समान अनियत (कुलकी नेसराय रहित) भिक्षा लेते हैं, कर्तव्य और अकर्तव्यके विवेकी हैं, निवासस्थान तथा कुटुम्ब परिवार आदिमें ममताके बन्धनसे बन्धे हुए नही हैं, भाँतिरके अभिग्रह धारण करके अनेक घरोंसे लिये जाने वाले अन्त-प्रान्त आदि आहारमें अनुरक्त रहते हैं, इन्द्रियों और मनके विकारको दमन करते हैं वे निर्दोष भिक्षा लेकर तीन योग, पाँच इन्द्रियाँ, नव प्रकारके विशुद्ध ब्रह्मचर्य और अहिंसाकी साधना करनेवाले साधु कहलाते हैं ।

જે ભ્રમરાની પેઠે અનિયત (કુળની નેસરાય રહિત) ભિક્ષા લે છે, કર્તવ્ય અને અકર્તવ્યનો વિવેકી છે, નિવાસસ્થાન તથા કુટુમ્બ પરિવાર આદિમાં મમ-તાના બધનથી બદ્ધ થયો નથી, તરેહ-તરેહના અભિગ્રહો ધારણ કરીને અનેક ઘરોથી લીધેલા અત-પ્રાંત આદિ આહારમાં અનુરક્ત રહે છે, ઇન્દ્રિયો અને મનના વિકારોનુ દમન કરે છે, તે નિર્દોષ ભિક્ષા લઈને ત્રણ યોગ, પાંચ ઇન્દ્રિયો, નવ પ્રકારનું વિશુદ્ધ બ્રહ્મચર્ય અને અહિંસાની સાધના કરનારો સાધુ કહેવાય છે

भवन्ति तेन साधवः उच्यन्त इति, साधुविशेषणानां मधुकारसमादीनां व्याख्या तु यथापूर्वमेवेति वयमिति विभावयन्तु विद्वांसः ।

मधुकरसमा असंज्ञिनोऽपि भवन्ति अतस्तद्व्यवच्छेदार्थमाह 'बुद्धा' इति, मधुकरसमा बुद्धाश्च प्रतिमाधारिप्रभृतयः संयताऽसंयता अपि भवन्ति तद्व्यावृत्तये 'अणिस्सिया' इति । मधुकरसाम्यं च साधूनां न सार्वदेशिकं किन्तु चन्द्रमुखादिवदैकदेशिकमेवेत्यतो यदंशे मधुकरसादृश्याभावस्तद्बोधनार्थमाह–'नाणापिंडरया दंता' इति, भ्रमरा हि सुगन्धिभ्य एव कुसुमेभ्यः स्वाद्यमेव च रसमादत्ते न च

भौंरेके समान असंज्ञी भी होते हैं अतः बुद्ध (कर्तव्याकर्तव्य विवेकसे युक्त) पद दिया है । प्रतिमा (पडिमा) धारी श्रावक (संयतासंयत) भी भौंरेके समान और बुद्ध होते हैं इसलिए 'अणिस्सिया' पद दिया है,

जैसा कि पहले कहा जा चुका है भौंरेका उदाहरण एकदेशीय है, कोई कहता है कि 'इसका मुख, चन्द्रमाके समान है' तो मुखमें चन्द्रमाके सब गुण नहीं पाये जाते, अर्थात् कुछ गुण सदृश होते हैं कुछ विसदृश होते हैं, भौंरेका उदाहरण भी कुछ अंशोमें मिलता कुछ अंशोमें नहीं मिलता है । जिस अंशमें नहीं मिलता है वह सूत्रकारने 'नाणापिंडरया' और 'दंता' विशेषणोंसे प्रगट किया है । भ्रमर, केवल कुसुमोंके स्वादिष्ट रसको ही पीता है इसलिए वह दान्त (इन्द्रियोंको जीतनेवाला) नहीं है, इस दृष्टान्तसे दार्ष्टान्तिककी विसदृशता है ।

ભ્રમરાની પેઠે અસંજ્ઞી પણ હોય છે, તેથી બુદ્ધ (કર્તવ્યા-કર્તવ્ય-વિવેકથી યુક્ત) પદ આપેલું છે. પ્રતિમા (પડિમા) ધારી શ્રાવક (સંયતાસંયત) પણ ભ્રમરાની સમાન અને બુદ્ધ હોય છે, તેથી अणिस्सिया પદ આપ્યું છે

પહેલાં કહેવામાં આવ્યું છે કે ભ્રમરાનું ઉદાહરણ એક-દેશીય છે કોઈ કહે છે કે-'એનું મુખ ચંદ્રમા જેવું છે' પણ મુખમાં ચદ્રમાના બધા ગુણો હોતા નથી અર્થાત્ કાંઈ ગુણ સમાન હોય છે, કાંઈ અસમાન હોય છે. ભ્રમરાનું ઉદાહરણ પણ કાંઈ અશોમાં મળતું છે, કાંઈ અશોમાં અણમળતુ છે જે અંશમાં અણમળતું છે તે સૂત્રકારે नाणापिंडरया અને दंता વિશેષણોથી પ્રકટ કર્યું છે ભ્રમર માત્ર કુસુમોના સ્વાદિષ્ટ રસને જ પીએ છે, તેથી એ દાન્ત (ઇન્દ્રિયોને જીતનાર) નથી આ દૃષ્ટાંતથી દાર્ષ્ટાન્તિકની અસમાનતા છે.

दान्ता भवन्ति। 'त्तिबेमि' इति=उक्तरूपं तत्त्वं यथा तीर्थङ्करस्य भगवतो महावीरस्य सकाशान्मया श्रुतं न तु स्वबुद्ध्या कल्पितं यतः स्वबुद्ध्या कथने श्रुतज्ञानस्याविनयो भवति, किञ्च छद्मस्थानां दृष्टयोऽप्यपूर्णा भवन्ति, तस्माद् यथाभगवत्प्रतिपादितमेव त्वां ब्रवीमि=उपदिशामीत्यर्थः। इहार्थे चेयं सङ्ग्रहगाथा—

"सुअणाणस्स अविणओ परिहरणिज्जो सुहाहिलासीहिं।
छउमत्थाणं दिट्ठी, पुण्णा णत्थित्ति सुइयं इइणा ॥ १ ॥" इति,

इति पञ्चमगाथार्थः ॥ ५ ॥

सुधर्मस्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं—हे जम्बू! ऊपर जो प्रथम अध्ययनका भाव कहा गया है वह अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् श्रीमहावीरसे जैसा मैंने सुना वैसाही कहा है; अपनी बुद्धिसे कल्पना किया हुआ नहीं कहा है; अपनी बुद्धिसे कल्पना करके कहनेसे श्रुतज्ञानकी आशातना होती है, और छद्मस्थोंका ज्ञान भी अधूरा होता है, इसलिए भगवान्द्वारा प्रतिपादित प्रवचन ही तुझे सुनाया है। कहाभी है—

"सुखके अभिलाषी पुरुषोंको श्रुतज्ञानकी आशातनाका त्याग करना चाहिये। क्योंकि छद्मस्थोंकी दृष्टि पूर्ण नहीं होती। इसी अर्थको 'त्तिबेमि' शब्दसे प्रगट किया है" ॥५॥

સુધર્મ-સ્વામી જંબૂ-સ્વામીને કહે છે-હે જમ્બૂ! ઉપર જે પ્રથમ અધ્યયનનો ભાવ કહ્યો છે તે અંતિમ તીર્થંકર ભગવાન્ મહાવીર પાસેથી જેવો મે સાંભળ્યો તેવો જ કહ્યો છે મે પોતાની બુદ્ધિથી કલ્પના કરેલો નથી કહ્યો. પોતાની બુદ્ધિથી કલ્પના કરી કહેવાથી શ્રુતજ્ઞાનની આશાતના થાય છે અને છદ્મસ્થોનું જ્ઞાન પણ અધૂરૂ હોય છે, તેથી ભગવાન્ દ્વારા પ્રતિપાદિત પ્રવચન જ મે તને સંભળાવ્યું છે કહ્યુ પણ છે કે-

"સુખના અભિલાષી પુરૂષોએ શ્રુતજ્ઞાનની આશાતનાનો ત્યાગ કરવો જોઇએ, કારણુ કે છદ્મસ્થોની દૃષ્ટિ પૂર્ણ હોતી નથી. આ અર્થને त्तिबेमि શબ્દથી પ્રકટ કર્યો છે" (૫)

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषा-कलित-ललित-
कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्ध-गद्य-पद्य-नैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-
श्री शाहूछत्रपति-कोल्हापुरराज-प्रदत्त-जैनशास्त्राचार्य-पदभूषित-
कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-
पूज्य-श्रीघासीलालव्रतिविरचितायां श्रीदशवैकालिकसूत्र-
स्याऽऽचारमणिमञ्जूषाख्यायां व्याख्यायां प्रथमं
द्रुमपुष्पकाख्यमध्ययनं समाप्तम् ॥ १ ॥

— * —

इसप्रकार दशवैकालिक सूत्रके 'द्रुमपुष्पक'
नामक पहले अध्ययनकी आचारमणिमञ्जूषा
नामक व्याख्याका हिन्दी-भाषानुवाद
समाप्त हुआ ॥ १ ॥

— ❀ —

ઇતિ 'દ્રુમ-પુષ્પક' નામના પહેલા અધ્યયનનું
ગુજરાતી-ભાષાનુવાદ સમાપ્ત (૧).

— ❀ —



॥ द्वितीयाध्ययनम् ॥

गतं प्रथममध्ययनमथ द्वितीयमारभ्यते, तत्रायमभिसम्बन्धः–पूर्वाध्ययने 'धम्मो मंगलं' इत्यादिना धर्मः प्रशंसितो यः केवलं जिनशासन एवोपलभ्यते, ततश्चोक्तरूपधर्मपरिपालनार्थस्त्रीकृतजिनशासनो नवदीक्षितः कदाचिद्धैर्याभावाच्चारित्रच्युतो न भवेदित्याशयेनास्मिन्नध्ययने 'साधुना धैर्यं धार्य' मिति वक्तव्यं, धैर्यधारणं च कामनिवारणमन्तरेण न संभवतीति प्रथमं तदेवाह–'कहं नु' इत्यादि ।

मूलम्–कहं[११] नु[९] कुज्जा[१२] सामण्णं[१०], जो[१] कामे[२] न[३] निवारए[४] ।
पए[७] पए विसीअंतो[८], संकप्पस्स[५] वसंगओ[६] ॥ १ ॥

छाया—कथं नु कुर्याच्छ्रामण्यं, यः कामान्न निवारयेत् ।
पदे पदे विषीदन्, संकल्पस्य वशं गतः ॥ १ ॥

दूसरा अध्ययन ।

पहले अध्ययनमें धर्मका स्वरूप और माहात्म्य कहा है वह केवल जैनशासनमें ही पाया जाता है । इसलिए पहले कहे हुए धर्मका पालन करनेके लिए जिसने जैनशासन अर्थात् चारित्रधर्म स्वीकार कर लिया हो परन्तु नवीन दीक्षित होनेसे कभी धैर्य छूट जानेके कारण वह कदाचित् चारित्रसे स्खलित न हो जाय, इस अभिप्रायसे इस अध्ययनमें 'साधुको धैर्य धारण करना चाहिए' यह कहा जायगा । लेकिन धैर्य तब ही रह सकता है जब कि कामके विकारको जीत लिया जाय । अतएव शास्त्रकार सबसे पहले इसी विषयका प्रतिपादन करते हैं– 'कहं नु–' इत्यादि ।

અધ્યયન ૨ જું

પહેલા અધ્યયનમાં ધર્મનું સ્વરૂપ અને માહાત્મ્ય કહ્યું છે. તે કેવળ જૈન શાસનમાં મળી આવે છે તેથી, પહેલાં કહેલા ધર્મનું પાલન કરવાને માટે, જેણે જૈન શાસન અર્થાત્ ચારિત્ર ધર્મ સ્વીકાર્યો હોય પરંતુ નવદીક્ષિત હોવાથી કોઈવાર ધૈર્ય છૂટી જવાથી એ કદાચ ચારિત્રથી સ્ખલિત ન થઈ જાય, તેટલા માટે આ અધ્યયનમાં "સાધુએ ધૈર્ય ધારણ કરવું જોઈએ." એ કહેવામા આવશે. પરન્તુ ધૈર્ય ત્યારે જ રહી શકે છે કે જ્યારે કામવિકારને જીતી લેવામાં આવે તેથી શાસ્ત્રકાર સૌથી પહેલાં એ વિષયનું પ્રતિપાદન કરે છે–कहं नु० ઈત્યાદિ.

सान्वयार्थः—जो=जो कामे=विषयोंको न निवारए=नहीं छोडता है, वह संकप्पस्स=इच्छाओंके वसंगओ=वशमें होकर पए पए=पद-पद पर विसीअंतो= खेदित होता हुआ नु=आश्चर्य है कि वह सामण्णं=श्रमणधर्मको कहं=कैसे कुज्जा=कर-पाल सकता है। अर्थात्-जो इन्द्रियोंके विषयोंका परित्याग नहीं करता उसकी इच्छाएँ सदैव बढती रहती हैं, उसे कभी सन्तोष नहीं होता, सन्तोष न होनेसे निरन्तर मानसिक कष्ट होता है, विषयोंकी इच्छासे उत्पन्न हुआ मानसिक कष्ट होते रहनेसे चारित्रधर्मकी आराधना नहीं हो सकती, अतः सर्व-प्रथम इन्द्रियोंको वशमें करना चाहिये ॥ १ ॥

टीका-यः, काम्यन्ते=अभिलष्यन्ते प्राणिभिरिति कामाः=शब्दादयस्तान् न निवारयेत्=नापनयेत्, अत्र 'सः' इत्यध्याहार्यं यत्तदोर्नित्यसम्बन्धादिति केचित्, वस्तुतस्तु नात्र तच्छब्दाध्याहारावश्यकता, न चाऽनध्याहारे साकाङ्क्षत्वदोष इत्याक्षेप्यम्, उत्तरवाक्यगतत्वेन यच्छब्दोपादाने तस्य दोषस्याऽनवकाशात् 'आत्मा जानाति यत्पाप' मित्यादिवत्। संकल्पस्य=अप्राप्तविषयप्राप्तिरूपस्याऽप्रशस्तस्याऽध्यवसायस्य, वशम्=अधीनतां गतस्तदधीनवर्ती भूत्वेति भावः, पदे पदे= प्रतिस्थानं विषीदन् खेदमनुभवन् कथं=केन प्रकारेण 'नु' क्षेपे वितर्के पृच्छायां वा, श्राम्यति=तपस्यतीति श्रमणः=सचित्ता-चित्त-मनोज्ञा-मनोज्ञद्रव्याधिकरणक-साम्यभाव-हास्यादिषट्कविप्रमुक्ति-पंचसमितिसमितत्व-गुप्तित्रयगुप्तत्व-शुभब्रह्मचर्यत्व-

---

जीव, जिन इन्द्रियोंके विषयोंकी कामना (अभिलाषा) करता है उनको 'काम' कहते हैं। जो साधु, इन कामोंका त्याग नहीं करते, वे अप्राप्त विषयकी प्राप्तिरूप अशुभ अध्यवसायके अधीन होकर पद-पद पर खेदका अनुभव करते हुए क्या कभी श्रमणताको प्राप्त कर सकते हैं? कदापि नहीं।

इष्ट, अनिष्ट, सचित्त, अचित्त आदि समस्त वस्तुओं पर समताभाव रखना, हास्य आदि छह नोकषायका त्याग करना,

---

જીવ જે ઇન્દ્રિયોના વિષયોની કામના (અભિલાષા) કરે છે તેને 'કામ' કહે છે જે સાધુ, એ કામોનો ત્યાગ નથી કરતા, તેઓ અપ્રાપ્ત વિષયની પ્રાપ્તિ-રૂપ અશુભ અધ્યવસાયને અધીન થઈને ડગલે ડગલે ખેદનો અનુભવ કરતાં શું કદાપિ શ્રમણતાને પ્રાપ્ત કરી શકે છે? કદાપિ નહિ

ઈષ્ટ, અનિષ્ટ, સચિત્ત, અચિત્ત, આદિ બધી વસ્તુઓ પર સમતા-ભાવ રાખવો, હાસ્ય આદિ છએ નોકષાયનો ત્યાગ કરવો. પાંચ સમિતિ અને ત્રણ ગુપ્તિનું

योगत्रयसाधकत्व-सदोरकमुखवस्त्रिकोपशोभितमुखत्व-यतनाधर्मधरत्व-भोगामिष-रिक्तत्व-करणसप्तति-चरणसप्ततिपारगत्व-निर्दोषभिक्षणशीलत्व-तीर्थङ्कराज्ञाराधकत्व-स्वात्मज्ञत्व-निष्परिग्रहत्व-यात्रामात्राज्ञत्व-कूर्मवदात्मगोपकत्वा-ऽल्पपिण्डाऽल्पपाना-शित्वाऽल्पोपधिकत्वा-ऽल्पकषायत्व-निराश्रवत्व-तीर्णत्वा-ऽपापत्व-निर्ग्रन्थ-प्रवचन-प्रवीणत्व-शल्यकर्तकत्व-सन्निधिरहितत्वो-रगाद्युपमितत्व-पापश्रुतप्रतिषेधित्व-सुमन-

पांच समिति और तीन गुप्तिका पालन करना, गुप्त-ब्रह्मचारी होना, तीन योगोंको साधना, श्रुतज्ञानरूपी जलसे अन्तःकरणको शुद्ध रखना, सम्यक्त्वसे युक्त रहना, संयमरूपी कवच (बख्तर) से सदा सन्नद्ध रहना, डोरासहित मुखवस्त्रिकाको मुखपर बांधे हुए रहना, यतना-धर्मको धारण करना, भोगरूपी आमिषसे विरक्त रहना, करणसत्तरी और चरणसत्तरीके पारगामी होना, निर्दोषभिक्षासे ही संयमयात्राका निर्वाह करना, तीर्थङ्कर भगवानकी आज्ञाका आराधन करना, आत्मज्ञानी होना, परिग्रहका त्याग करना, यात्रा-मात्राको जानना, कछुएकी भाँति इन्द्रियोंका गोपन करना, अल्प अशन अल्प पानका ग्रहण करना, अल्प उपधि रखना, कषायको त्यागना, आस्रवरहित होना, संसाररूपी सागरसे पार उतरना, पापरहित होना, निर्ग्रंथ प्रवचनमें प्रवीण होना, माया, मिथ्यात्व और निदान रूप शल्योंको काटना, सन्निधिका न रखना, उरगादिकी उपमासे युक्त होना, पापकी प्ररूपणा करनेवाले शास्त्रोंका उपदेश नहीं करना, मनको स्वच्छ रखना और अतिचाररहित चारित्रको पालना, तथा मृग जैसे सिंहसे

પાલન કરવું, ગુપ્ત બ્રહ્મચારી થવું, ત્રણ યોગોને સાધવા, શ્રુતજ્ઞાનરૂપી જળથી અંતઃકરણને શુદ્ધ રાખવું, સમ્યક્ત્વથી યુક્ત રહેવું, સંયમરૂપી કવચ (બખ્તર) થી સદા સજ્જ રહેવું, દોરાસહિત મુખવસ્ત્રિકાને મુખ પર બાંધીને રહેવું, યતના-ધર્મને ધારણ કરવું, ભોગરૂપી આમિષથી વિરક્ત રહેવું, કરણ સિત્તેરી અને ચરણસિત્તેરીના પારગામી થવું, નિર્દોષ ભિક્ષાથી જ સંયમયાત્રાનો નિર્વાહ કરવો, તીર્થંકર ભગવાનની આજ્ઞાનું આરાધન કરવું, આત્મજ્ઞાની થવું, પરિગ્રહનો ત્યાગ કરવો, યાત્રામાત્રાને જાણવી, કાચબાની પેઠે ઇન્દ્રિયોનું ગોપન કરવું, અલ્પ અશન અલ્પ પાનને ગ્રહણ કરવાં અલ્પ ઉપધિ રાખવી, કષાયને ત્યજવા, આસ્રવરહિત થવું, સંસારરૂપી સાગરથી પાર ઊતરવું, પાપરહિત થવું, નિર્ગ્રંથ પ્રવચનમાં પ્રવીણ થવું, માયા, મિથ્યાત્વ અને નિદાનરૂપ શલ્યોને કાપવા, સન્નિધિને ન રાખવો, ઉરગાદિની ઉપમાથી યુક્ત થવું, પાપની પ્રરૂપણા કરનારાં શાસ્ત્રોનો ઉપદેશ ન કરવો, મનને સ્વચ્છ રાખવું અને અતિચારરહિત ચારિત્રને

स्कत्व-निरतिचारचारित्रत्वादिगुणसम्पन्नः, तस्य भावः कर्म वा श्रामण्यं=श्रमणधर्मं कुर्यात्=प्रतिपालयेत्, न हि संकल्पाधीनचित्तवृत्तितया व्याक्षिप्तस्य भावक्रिया-शून्य-द्रव्य-क्रियामात्रपालनेन श्रामण्यं भवतीति गाथार्थः ॥ ॥ १ ॥

अत्रायं संग्रहः—

" सचित्ताचित्तदव्वेसु मणुन्ने अमणुन्नए ।
रक्खए समभावं जो, समणो सो पवुच्चई ॥ १ ॥
हासं रई भयं सोगो, दुगुंछा य कसायया ।
एएहिं विप्पमुक्को जो, समणो सो पवुच्चई ॥ २ ॥
पंचसमिइहिं समिओ, तिगुत्तिगुत्तो य बंभयारी जो ।
परिसाहेइ सुजोगं, सो समणो वुच्चई निच्चं ॥ ३ ॥

छाया—

" सचित्ताचित्तद्रव्येषु, मनोज्ञे अमनोज्ञके ।
रक्षति समभावं यः, श्रमणः स प्रोच्यते ॥ १ ॥
हास्यं रतिर्भयं शोको, जुगुप्सा च कषायता ।
एतैर्विप्रमुक्तो यः, श्रमणः स प्रोच्यते ॥ २ ॥
पञ्चसमितिभिः समितः, त्रिगुप्तिगुप्तश्च ब्रह्मचारी यः ।
परिसाधयति सुयोगं, स श्रमण उच्यते नित्यम् ॥ ३ ॥

सर्वथा दूर भागते हैं उसी-प्रकार पापकर्म जिसके पास न ठहरें वह 'श्रामण्य' (साधुपन) कहलाता है । ऐसा श्रामण्य तब तक प्राप्त नहीं होता जब तक वह काम-भोगका त्याग न कर देवें; जिसका चित्त कामके संकल्प-विकल्पोंसे व्याकुल रहता हो उसकी क्रियाएँ भावशून्य द्रव्यक्रियाएँ हैं, केवल द्रव्यक्रियाओंका पालन करनेसे कोई श्रमण नहीं हो सकता, इस विषयमें संग्रहगाथाएँ हैं उनका अर्थ पहले आचुका है ॥१॥

પાળવું, તથા મૃગ જેમ સિંહથી સદા દૂર ભાગે છે તેમ પાપકર્મ જેની પાસે ન ઉભાં રહે તે 'શ્રામણ્ય' (સાધુતા) કહેવાય છે. એવું શ્રામણ્ય ત્યાં સુધી પ્રાપ્ત નથી થતું કે જ્યાં સુધી તે કામભોગનો ત્યાગ કરે નહિ, જેનું ચિત્ત કામના સંકલ્પવિકલ્પથી વ્યાકુળ રહેતું હોય છે તેની ક્રિયાઓ ભાવશૂન્ય દ્રવ્ય-ક્રિયાઓ હોય છે, કેવળ દ્રવ્ય-ક્રિયાઓનું પાલન કરવાથી કોઇ શ્રમણ થઇ શકતો નથી આ વિષયમાં સંગ્રહ ગાથાઓ છે, જેનો અર્થ પહેલાં આવી ગયો છે (૧)

सुयनाणसुनीरेण, सुद्धो संमत्तरंजिओ ।
संजमवम्मसंनद्धो, समणो सो पवुच्चई ॥ ४ ॥
सदोरं मुहपत्तिं जो, बंधई सययं मुहे ।
जयणाधम्मेण जुओ, समणो सो पवुच्चई ॥ ५ ॥
भोगामिसपरिहीणो, करणे चरणे य वट्टए सुद्धं ।
अदोसभिक्खणसीलो, समणो सो वुच्चई निच्चं ॥ ६ ॥
जिणाणाए समारोहो, आयन्नो निप्परिग्गहो ।
जायामायन्नो य मुणी, समणत्ति पवुच्चई ॥ ७ ॥
कुम्मो जहा नियंगाइं, सए देहम्मि गोवई ।
तहा गोवइ अप्पाणं, समणत्ति पवुच्चई ॥ ८ ॥
अप्पपिंडे अप्पपाणे, अप्पोवहिकसायओ ।
निरासवो य तिन्नो य, निप्पावो समणो भवे ॥ ९ ॥
निग्गंथपवयणन्नो, अनियाणो सल्लकत्तओ ।
भेसज्जाईण वत्थूणं, सन्निहिं वज्जए मुणी ॥ १० ॥

छाया—

" श्रुतज्ञानसुनीरेण, शुद्धः सम्यक्त्वरञ्जितः ।
संयमवर्म्मसंनद्धः, श्रमणः स प्रोच्यते ॥ ४ ॥
सदोरां मुखवस्त्रीं यो, बध्नाति सततं मुखे ।
यतनाधर्म्मेण युतः, श्रमणः स प्रोच्यते ॥ ५ ॥
भोगामिषपरिहीणः, करणे चरणे च वर्त्तते शुद्धम् ।
अदोषभिक्षणशीलः, श्रमणः स उच्यते नित्यम् ॥ ६ ॥
जिनाज्ञायां समारोहः, आत्मज्ञो निष्परिग्रहः ।
यात्रामात्राज्ञश्च मुनिः, श्रमण इति प्रोच्यते ॥ ७ ॥
कूर्मो यथा निजाङ्गानि, स्वके देहे गोपयति ।
तथा गोपयत्यात्मानं, श्रमण इति प्रोच्यते ॥ ८ ॥
अल्पपिण्डोऽल्पपानः, अल्पोपधिकषायकः ।
निरास्रवश्च तीर्णश्च, निष्पापः, श्रमणो भवेत् ॥ ९ ॥
निर्ग्रन्थप्रवचनज्ञः, अनिदानः शल्यकर्त्तकः ।
भैषज्यादीनां वस्तूनां, संनिधिं वर्जयति मुनिः ॥ १० ॥"

उरगाइउवमो पाव,-सुयाणं पडिसेहओ ।
सुमणो सुहचारित्तो, समणत्ति पवुच्चई ॥ ११ ॥
मिया जहेव सीहाओ, दूरं चरंति सव्वहा ।
तहा जओ य पावाइं, समणत्ति पवुच्चई ॥ १२ ॥ इति ।

छाया—

" उरगाद्युपमः पापश्रुतानां प्रतिषेधकः ।
सुमनाः शुभचारित्रः, श्रमण इति प्रोच्यते ॥ ११ ॥
मृगा यथैव सिंहाद्, दूरं चरन्ति सर्वथा ।
तथा यतश्च पापानि, श्रमण इति प्रोच्यते ॥ १२ ॥" इति छाया।

पूर्वं शब्दादिविषयप्रवृत्तः श्रामण्यं पालयितुं न शक्नोतीत्युक्तं, सम्प्रति 'द्रव्यक्रियां कुर्वाणोऽपि कलुषितचित्तत्वादश्रमण एवे'ति दर्शयितुमाह—

यद्वा पूर्वगाथया भङ्गयन्तरेण शब्दादिविषयविनिवृत्त एव श्रामण्यमर्हतीति सूचितम्, शब्दादिविषयविनिवृत्तिश्च रोगादिना कारणेनापि संभवतीत्यतस्तद्व्यवच्छेदार्थं गाथान्तरमाह-' वत्थगंध '-मित्यादि ।

ऊपर कह चुके हैं कि शब्दादि इन्द्रियविषयोंमें प्रवृत्त साधु श्रामण्य (चारित्र) का पालन नहीं कर सकता। अब द्रव्यक्रियाएँ करते हुए भी यदि साधुके चित्तमें कलुपता हो तो वह वास्तवमें त्यागी नहीं है, यह कहते हैं—

अथवा पहली गाथामें एक विशेष प्रणालीसे यह प्रतिपादन किया है कि-शब्दादिविषयोंका त्यागी ही श्रामण्य (साधुपना) पाल सकता है, किन्तु रोग आदि कारणोंसे भी शब्दादि विषयोंको नहीं भोग सकता तो क्या उस समय वह भी त्यागी कहला सकता है? कभी नहीं कहला सकता, इसी विषयको कहते हैं-' वत्थ-गंधं ' इत्यादि ।

ઉપર કહેવાઈ ગયું છે કે શબ્દ આદિ ઈન્દ્રિયવિષયોમાં પ્રવૃત્ત એવો સાધુ શ્રામણ્ય (ચારિત્ર)નું પાલન કરી શકતો નથી હવે દ્રવ્યક્રિયાઓ કરતાં પણ જો સાધુના ચિત્તમાં કલુષતા હોય તો તે વાસ્તવમાં ત્યાગી નથી, એ કહે છે—

અથવા પહેલી ગાથામાં એક વિશેષ પ્રણાલીથી એમ પ્રતિપાદન કર્યું છે કે-શબ્દાદિ-વિષયોનો ત્યાગી જ શ્રામણ્ય (સાધુતા) પાળી શકે છે, કિંતુ રોગાદિ કારણોથી પણ શબ્દાદિ વિષયોને નથી ભોગવી શકતો તો શું તે સમયે એ પણ ત્યાગી કહેવાઈ શકે છે ? નથી કહેવાતો, એ વિષય હવે કહે છે-वत्थगंधं- ઇત્યાદિ

३ ४ ५ ७ ६

मूलम्—वत्थगंधमलंकारं, इत्थीओ सयणाणि य ।

२ १ ८ ९ १२ १० ११ १३

अच्छंदा जे न भुंजंति, न से चाइत्ति वुच्चई ॥२॥

छाया—वस्त्रगन्धमलङ्कारं, स्त्रियः शयनानि च ।

अच्छन्दो यो न भुङ्क्ते, न स त्यागीत्युच्यते ॥ २ ॥

सान्वयार्थः—जे=जो अच्छंदा=पराधीन होनेसे वत्थगंधं=वस्त्र गन्ध अलंकारं=आभूषण इत्थीओ=स्त्रियों य=और सयणाणि=शय्या-(पलंग महल विगेरे) को न भुंजंति=नहीं भोगता है से=वह चाइत्ति="त्यागी" ऐसा न वुच्चइ=नहीं कहा जाता है। अर्थात् अपनी इच्छासे विषयोंको न भोगनेवाला त्यागी कहलाता है। जो रोग आदि किसी कारणसे पराधीन होकर विषयोंका सेवन नहीं कर सकता वह त्यागी नहीं कहलाता ॥ २ ॥ और—

टीका—अत्र 'अच्छंदा' 'जे' 'भुंजंति' इत्येतेषु पदेषु बहुवचनप्रयोगः सौत्रत्वात्[1] । तथा चायमर्थः—यः अच्छन्दः=रोगाद्यभिभूततया पराधीनो वस्त्रं च गन्धश्चानयोः समाहारः वस्त्रगन्धं, तत्र वस्त्रं=प्रसिद्धं, गन्धः=चन्दनकर्पूरादि-सुगन्धिद्रव्यं तत्, अलङ्कारः=कुण्डलवलयादिस्तम्, स्त्यायतः शुक्रशोणिते यासु

[1] यत्तु 'बहुवचनोद्देशेऽप्येकवचननिर्देशो विचित्रत्वात्सूत्रगतेः' इति, यच्च 'अत्र सूत्रगतेर्विचित्रत्वाद्बहुवचनेऽप्येकवचननिर्देशः' इति, यदपि च 'किं बहुवचनोद्देशेऽप्येकवचननिर्देशः? विचित्रत्वात्सूत्रगतेर्विपर्ययश्च भवत्येवेति कृत्वाऽऽह—'नासौ त्यागीत्युच्यते' इति, तदिदं त्रितयमपि व्याख्यानं सूत्रपूर्वापराऽननुसन्धानमूलकत्वादनुपादेयमेव, यतो द्वितीय-तृतीयगाथयोस्तात्पर्यपर्यालोचनायामेकवचनान्तप्रयोग एव सूत्रकृतोऽभिप्रेत इति सूचीकटाहन्यायेनापि बहुवचनान्तेष्वेवैकवचनान्तत्वकल्पनं युक्तियुक्तमिति ॥

जो मनुष्य रोग आदिसे आक्रान्त होनेके कारण पराधीन है और पराधीनता (असमर्थता) के कारण वस्त्र, कस्तूरी, केशर, चन्दन, आदि गन्ध, कुण्डल, कटक आदि आभूषण, स्त्री, शय्या और 'च' शब्दसे सवारी

જે મનુષ્યો રોગાદિથી આક્રાન્ત હોવાને કારણે પરાધીન છે અને પરાધીનતા (અસમર્થતા)ને કારણે વસ્ત્ર, કસ્તૂરી, કેશર, ચંદન આદિ ગંધ, કુંડલ, કડાં આદિ આભૂષણ, સ્ત્રી, શય્યા. અને ચ શબ્દથી સવારી, આસન આદિનું સેવન

ताः स्त्रियः=कामिन्यस्ताः, [1]शय्यते येषु [2]तानि शयनानि=पल्यङ्क-खट्वाचतुष्किकादीनि, [3]तानि, चकारात् यानाऽऽसनादीनि, न[4]भुङ्क्ते=न सेवते, सः, त्यागीति=त्यजति=परिमुञ्चति संसारसम्बन्धं तच्छील इति, न उच्यते=न कथ्यते, इति गाथार्थः ॥ २ ॥

कस्तर्हि त्यागी ? इति चेत्तत्राह–' जे य कंते ' इत्यादि ।

मूलम्–जे[1] य कंते[3] पिए[4] भोए[5], लद्धेवि[2] पिट्ठिकुव्वइ[6] ।
साहीणे[7] चयई[9] भोए[8], से[10] हु[11] चाइत्ति[12] वुच्चई[13] ॥ ३ ॥

छाया–यश्च कान्तान् प्रियान् भोगान् , लब्धानपि पृष्ठीकरोति ।
स्वाधीनस्त्यजति भोगान् , स एव त्यागी इत्युच्यते ॥ ३ ॥

सान्वयार्थः–जे य=जो लद्धेवि=प्राप्त हुएभी कंते=मनोहर पिए=अभीष्ट-मनगमते भोए=भोगोंको पिट्ठिकुव्वइ=त्याग देता है (और) साहीणे=स्वतन्त्र होते हुए भोए=विषयोंको चयई=त्यागता है से=वह हु=निश्चय करके चाइत्ति="त्यागी" ऐसा वुच्चइ=कहलाता है। अर्थात् भोगोंकी प्राप्ति होने पर भी और

१-अधिकरणे ल्युट् । २-प्रथमान्तमिदम्। ३-द्वितीयान्तमिदम् । ४-' भुजोऽनवने ' इत्यात्मनेपदं, सूत्रे तु प्राकृतत्वात्परस्मैपदम् ।

आसन आदिका सेवन नहीं करते हैं वे त्यागी अर्थात् संसारके सम्बन्धोंका त्याग करने वाले नहीं कहला सकते हैं, क्योंकि असार समझकर ममता छोड़ना-रुचि न रखना-त्याग कहलाता है। रोग आदिसे ग्रसित ऊपर कहे-हुए विषयोंकी ममता नहीं छोड़ता (रुचि रखता) है इसलिए वह त्यागी नहीं कहला सकता ॥२॥

त्यागी किसे कहते हैं ? इसपर सूत्रकार कहते हैं–'जे य०' इत्यादि ।

કરતા નથી તેઓ ત્યાગી અર્થાત્ સંસારના સંબંધોનો ત્યાગ કરવાવાળા નથી કહેવાઈ શકતા કારણ કે અસાર સમજીને મમતા છોડવી-રુચિ ન રાખવી એજ ત્યાગ કહેવાય છે. રોગાદિથી ત્રસિત મનુષ્યો ઉપર કહેલા વિષયોની મમતા છોડતા નથી, તેથી તેઓ ત્યાગી કહેવાતા નથી (૨)

ત્યાગી કોને કહે છે ? એ વિષે સૂત્રકાર કહે છે–જે ય૦ ઇત્યાદિ

भोगनेकी स्वतन्त्रता रहते हुए भी जो भोगोंको नहीं भोगता वह सच्चा त्यागी है। गाथामें "वि" शब्द आया है उससे यह प्रगट होता है कि यदि किसीको अमुक समयमें मनोहर और प्रिय भोग न भी उपलब्ध हों तथापि उसकी इच्छा कदापि भोगनेकी न हो तो भी वह त्यागी ही है ॥ ३ ॥

टीका-'च' शब्दः पूर्वगाथोक्तार्थनिवारकत्वेन 'तु'-शब्दार्थेऽवधारणार्थे वा, 'खलु'-शब्दोऽवधारणार्थे, तथा चायमर्थः-यस्तु लब्धान्=प्राप्तानपि कान्तान्=कमनीयान् (मनोहरान्) प्रियान्=अभिलषितान्, भोगान्=शब्दादीन् पृष्ठीकरोति=पृष्ठशब्दस्य तत्स्थे लक्षणया अपृष्ठस्थान् पृष्ठस्थान् करोति=दूरतः परिहरतीत्यर्थः, ततो विमुखीभवतीति यावत्। एवं तु रोगाद्यवस्थायामपि संभवतीत्यतः स्पष्टयति-स्वाधीनः=रोगाद्यनभिभूतचित्तः सन् भोगान्=पूर्वोक्तलक्षणान् शब्दादीन्, पुनर्भोगग्रहणं 'द्विर्बद्धं सुबद्धं भवती'-ति न्यायात्साकल्येन भोगत्वावच्छिन्नपरिग्रहार्थम्, त्यजति=मुञ्चति, स खलु=स एव त्यागीति उच्यते=कथ्यते, न तु पराधीन इति गाथार्थः ॥ ३ ॥

उक्तविधस्यापि साधोः संयममार्गे विहरतः कदाचिद् विषयस्मरणेन प्रस्खलितचित्तता माप्रसाङ्क्षीदिति तदुपायं दर्शयति-"समाए०" इति।

जो महापुरुष पूर्वपुण्यके उदयसे प्राप्त हुए मनोहर और इष्ट शब्दादि विषयोंको विविध-वैराग्य-भावना भाकर त्याग देते हैं-उनसे विमुख हो जाते हैं और रोग आदिसे पीडित न होनेके कारण स्वाधीन (समर्थ) होते हुए भी विविध-वैराग्य-भावना भाकर समस्त भोगोंको त्याग देते हैं वेही त्यागी कहलाते हैं ॥३॥

संयम मार्गमें विहार करते हुए त्यागी मुनिका मन, स्त्री आदिको देखनेसे कदाचित् विचलित (डांवाडोल) हो जाय तो उसको रोकने के लिए उपाय बतलाते हैं-'समाए०' इत्यादि।

જે મહાપુરૂષો પૂર્વપુણ્યના ઉદયથી પ્રાપ્ત થએલા મનોહર અને ઈષ્ટ શબ્દાદિ વિષયોને વિવિધ-વૈરાગ્ય-ભાવના ભાવીને ત્યજી દે છે-તેનાથી વિમુખ બની જાય છે, અને રોગાદિથી પીડિત ન હોવાને કારણે સ્વાધીન (સમર્થ) હોવા છતાં પણ વિવિધ-વૈરાગ્ય-ભાવના ભાવીને બધા ભોગોને ત્યજી દે છે, તેઓ જ ત્યાગી કહેવાય છે (૩)

સંયમ-માર્ગમાં વિહાર કરતાં ત્યાગી મુનિનું મન, સ્ત્રી આદિને જોવાથી જો વિચલિત (ડામાડોળ) થઈ જાય તો તેને રોકવાને માટે ઉપાય બતાવે છે-'समाए०' ઇત્યાદિ

१ २ ३ ५ ४ ७ ६
मूलम्-समाए पेहाए परिव्वयंतो, सिया मणो निस्सरई बहिद्धा ।
१० ८ ९ १३ ११ १२ १४ १५ १७ १६
न सा महं नोवि अहंवि तीसे, इच्चेव ताओ विणइज्ज रागं ॥४॥

छाया-समया प्रेक्षया परिव्रजतः, स्यान्मनो निःसरति बहिः ।
न सा मम नो अपि अहमपि तस्याः, इत्येवं तस्या विनयेत रागम् ॥४॥

सान्वयार्थः-समाए=सम पेहाए=भावनासे परिव्वयंतो=संयममार्गमें विचरते हुए साधुका मणो=मन सिया=कदाचित्-कभी बहिद्धा=संयमगृहसे बाहर निस्सरई=निकल जाय तो "सा=वह स्त्री महं=मेरी न=नहीं है अवि=और अहंवि=मैं भी तीसे=उस स्त्रीका नो=नहीं हूँ" इच्चेव=इस प्रकार ताओ=उस स्त्रीसे रागं=रागको विणइज्ज=दूर करे ॥ ४ ॥

टीका—समया=रागद्वेषपरिणतिरिक्तया स्वतुल्यया, प्रेक्षया=प्रेक्षतेऽनयेति करणव्युत्पत्तिबलाद् दृष्ट्या, परिव्रजतः=विहरतः मोक्षरूपश्रामण्ये स्थितस्येत्यर्थः मनः=हृदयं, स्यात्=कदाचित् मोहनीयकर्मप्रकृत्युदयवशाद् भुक्तभोगतया पूर्वकृतरत्यादिस्मरणेन तदन्यथात्वे विषयसेवनवाञ्छया वा, बहिः=संयमयोगाद्बाह्ये विषयादौ निःसरति=निर्गच्छति, अथ किं कर्तव्यं? तदाह 'न सा' इति, सा=परिचिन्त्यमाना स्त्री न मम, अपि=च अहमपि तस्याः=परिचिन्त्यमानायाः

रागद्वेषरहित-समतापूर्वक विचरते हुए श्रामण्यमें स्थित मुनिका मन स्त्री आदिको देखने पर मोहनीय कर्मके उदयसे कदाचित् पहले भोगे हुए भोगोंका स्मरण होजानेसे, अथवा विषयसेवनकी इच्छा होनेसे संयमरूपी घरसे बाहर निकल जाय तो उस समय साधुको विचारना चाहिए कि-मैं जिसकी अभिलाषा करता हूँ, वह स्त्री न मेरी है और न

રાગદ્વેષ રહિત સમતાપૂર્વક વિચરતા શ્રામણ્યમાં સ્થિત મુનિનું મન સ્ત્રી આદિને દેખતાં મોહનીય કર્મના ઉદયથી કદાચિત પહેલાં ભોગવેલા ભોગોનું સ્મરણ થઈ જવાથી, અથવા વિષય સેવનની ઇચ્છા થવાથી સંયમરૂપી ઘરની બહાર નીકળી જાય તો તે સમયે સાધુએ વિચારવું જોઈએ કે હું જેની અભિલાષા કરૂં છું તે સ્ત્રી નથી મારી કે નથી હું તેનો. એવો વિચાર કરીને એ સ્ત્રી પ્રત્યેના

स्त्रियाः न, इत्येवम्=अनया रीत्या, तस्याः=अभिलष्यमाणायाः स्त्रियास्तत्सम्ब-न्धिनमित्यर्थः, रागम्=दुरभिलाषं, विनयेत्=दूरीकुर्यात् ।

वनिताविषये प्रसृतं मनस्तदीयरागसंबन्धिबहुतरदोषानुचिन्तनेन ततो निवर्तयन् मुनिः समां प्रेक्षामवलम्ब्य वनितादर्शनात् प्रागिव रागशून्यो भवेदिति भावः। दोषानुचिन्तनं यथा-"रे चित्त ! चारित्रस्य प्राणभूतं ब्रह्मचर्यं यावज्जी-वनमनुपालयितुं कृतप्रतिज्ञस्य तव स्वकृतप्रतिज्ञापरित्यागोद्यमे कुतो न लज्जास-मुद्भवः ? । यदा संसारदावदहनपरितप्तस्य तव कोऽपि लोके शरणं नाभूत् तदा यानेव विषयान् परित्यज्य जिनेन्द्रप्रतिपादितं चारित्रधर्मं शिरसाऽङ्गीकृत्य त्वया

मैं उसका हूँ। ऐसा विचार करके उस स्त्रीके विषयका राग-भाव दूर करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि-स्त्रीके विषयमें मनकी प्रवृत्ति होनेसे चारित्रकी मलिनता आदि बहुतेरे दोष उत्पन्न होते हैं। उन दोषोंका विचार करके मुनि अपने मनको उस तरफसे हटाता हुआ समप्रेक्षाका अवलम्बन करके उसीप्रकार रागरहित होजावे जिस प्रकार स्त्रीको देखनेके पहले था ।

दोषोंका विचार इसप्रकार करे-रे मन ! चारित्रके प्राणोंके समान ब्रह्मचर्यको यावत्जीवन पालन करनेकी तूने प्रतिज्ञा की है; पहले की हुई प्रतिज्ञाका अब परित्याग करते तुझे लज्जा नहीं आती ? जिस समय तू संसाररूपी तीव्र दावाग्निसे संतप्त हुआ और लोकमें कोईभी तुझे न बचा सका उस समय जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्ररूपित चारित्र धर्मको तूने

વિષયનો રાગભાવ દૂર કરવો જોઈએ. તાત્પર્ય એ છે કે—સ્ત્રીના વિષયમાં મનની પ્રવૃત્તિ થવાથી ચારિત્રની મલિનતા આદિ અનેક દોષ ઉત્પન્ન થાય છે એ દોષોનો વિચાર કરીને મુનિ પોતાના મનને તે તરફથી પાછું હઠાવતાં સમપ્રેક્ષાનું અવલંબન કરીને એવો રાગરહિત થઈ જાય કે જેવો તે સ્ત્રીને દેખતાં પહેલાં હતો.

દોષોનો વિચાર આ પ્રમાણે કરે-હે મન ! ચારિત્રના પ્રાણ સમાન બ્રહ્મ-ચર્યને જીવનપર્યંત પાળવાની તે પ્રતિજ્ઞા કરી છે. પહેલાં કરેલી પ્રતિજ્ઞાનો હવે પરિત્યાગ કરતા તને શરમ નથી આવતી ? જે સમયે તું સંસારરૂપી તીવ્ર દાવા-નળથી સંતપ્ત થયો અને લોકમાં કોઈ પણ તને બચાવી ન શક્યુ, તે સમયે જીનેન્દ્ર ભગવાને પરૂપેલા ચારિત્ર ધર્મને તેં સ્વીકાર કર્યો અને જે હેય વિષયોથી

निरस्तः सकलः सन्तापः, किमिदानीं पुनर्वान्तावलेही श्वेव भवत्तानतुस्मरद् विरम-रस्यात्मानम् ? ।

अरे ! विस्मृतः किं ब्रह्मचर्यमहिमा ? यत्प्रभावेणाऽल्पीयसैव कालेन लोकपूजितैरपि सुरासुरमनुजेन्द्रैः पूज्यमानमसि पुनः किं तदेव विस्मरसि ? । इदमप्यनुचिन्तय—

"चिरायुषः सुसंस्थाना, दृढसंहनना नराः ।
तेजस्विनो महावीर्या, भवेयुर्ब्रह्मचर्यतः ॥ १ ॥" इति ।

अपिच अनवाप्तपरमार्थतत्त्वास्वादनसुखानां संसाराभिनन्दिनां विषयामिषोपभोगसुखकामुकानामविवेकिनामेव कामिनी कमनीया भवतु नाम, परन्तु एत-

---

स्वीकार किया और जिन हेय-विषयोंसे मुख मोड़कर सकल जंजाल छोड़ दिये उन्हीं विषयोंको वमनचाटनेवाले श्वानके समान फिर स्वीकार करना चाहता है ? ऐ अधम मन ! अपने स्वरूपका विचार कर ।

अरे मन ! देख; ब्रह्मचर्यकी महिमासे ही लोकमें पूजे जानेवाले सुरेन्द्र असुरेन्द्र और नरेन्द्रोंके द्वारा तू पूज्य संमाननीय हुआ है, ऐसे अमित-महिमावाले ब्रह्मचर्यको भी तू क्यों भूल गया है ? कहा भी है–

"ब्रह्मचर्यसे दीर्घ आयु, सुन्दर आकार, और दृढ़ संहनन प्राप्त होते हैं, ब्रह्मचर्यसे ही मनुष्य, तेजस्वी और महाशक्तिशाली होते हैं" ॥१॥

हे जीव ! किंपाकफल सरीखे विषयभोग सुगन्ध, सुरूप, सुशब्द, और सुस्पर्श अविवेकी जीवोंको भलेही मनोहर लगें, पर तूतो

વિમુખ થઇને બધી જંજાળને છોડી દીધી, તેજ વિષયોનો વમનચાટનારા શ્વાનની પેઠે ફરીથી તું સ્વીકાર કરવા ચાહે છે ? હે અધમ મન ! તારા પોતાના સ્વરૂપનો તું વિચાર કર

અરે મન ! જો; બ્રહ્મચર્યના મહિમાથી જ, લોકમાં પુજાતા સુરેન્દ્ર અસુરેન્દ્ર અને નરેન્દ્રોની દ્વારા તુ પૂજ્ય સંમાનનીય થયો છે, એવા અપારમહિમાવાળા બ્રહ્મચર્યને પણ તું કેમ ભૂલી ગયો છે ? કહ્યું પણ છે—

" બ્રહ્મચર્યથી દીર્ઘ આયુષ્ય, સુંદર આકાર, અને દઢ સંહનન પ્રાપ્ત થાય છે બ્રહ્મચર્યથી જ મનુષ્ય તેજસ્વી અને મહાશક્તિશાલી થાય છે " (૧)

હે જીવ ! કિંપાકફળ જેવા વિષયભોગ, સુંદર, સુરૂપ, સુશબ્દ અને સુસ્પર્શ અવિવેકી જીવોને ભલે મનોહર લાગે, પરન્તુ તું તો સંયમીઓમા શ્રેષ્ઠ બનવા

दीयानुरागपरिणामदारुणतां विस्मरतस्तवापि किं संयताग्रगणनीयताऽभिलाषो नोपहासाय जायेत ? ।

अरे मूढ ! अस्याः खलु विलासकलाकलापवैदुष्यं विलोक्य लुब्धकप्रसारितजाले कुरङ्ग इव, मार्गवर्तिनि गर्ते तुरङ्ग इव, ज्वलति प्रदीपे पतङ्ग इव किमात्मानं निरये निपातयसि ? ।

अहो ! अयोमयशृङ्खलामप्यधरयति रागपाशः, यत् खलु मधुपः कठिनतरकाष्ठकृन्तनदक्षोऽपि न क्षमो भवति संकुचितकमलपुष्पानुरागनिबद्धमात्मानं परित्रातुम् ।

संयमियोंमें श्रेष्ठ बनना चाहता है फिर इनमें अनुराग करनेसे जो भयंकर फल उत्पन्न होते हैं उन्हें क्यों भूल जाता है? इससे तेरी वह उच्च अभिलाषा क्या हास्यास्पद नहीं होगी ? अवश्य होगी।

अरे मूढ ! जैसे व्याध (शिकारी) के फैलाए हुए जालमें कुरंग (हरिन) फंस जाता है; रास्तेके गड्ढेमें तुरंग गिर जाता है; जलते हुए दीपककी ज्वालामें पतंग गिर पड़ता है वैसेही स्त्रीके हास विलास और हाव–भावकी चतुराई देखकर क्यों अपनी आत्माको नरकमें गिराता है ?

अहो ! इस रागके बन्धनके आगे लोहकी बेड़ीभी तुच्छ है, देखो; भौंरा कठिनसे कठिन काष्ठको काट डालनेमें कुशल होता है परन्तु सूर्यके अस्त होजाने पर संकुचित कमल पुष्पके अनुरागके बन्धनमें बंधी

ઈચ્છે છે, તો પછી એમાં અનુરાગ કરવાથી જે ભયંકર ફળ ઉત્પન્ન થાય છે તેને કેમ ભૂલી જાય છે ? તેથી તારી એ ઉચ્ચ અભિલાષા શું હાસ્યાસ્પદ નહિ થાય ? અવશ્ય થશે

અરે મૂઢ ! જેમ વ્યાધે (શિકારીએ) ફેલાવેલી જાળમાં કુરંગ (હરણ) ફસાઇ જાય છે રસ્તામાના ખાડામા તુરંગ (ઘોડો) પડી જાય છે, બળતા દીવાની જવાળામા પતગ હોમાઇ જાય છે, તેમ સ્ત્રીના હાસ્યવિલાસ અને હાવભાવની ચતુરાઈ જોઈને કેમ તારા આત્માને નરકમા પાડે છે ?

અહો ! આ રાગના બધનની આગળ લોઢાની બેડી પણ તુચ્છ છે. જુઓ ! ભમરો કઠિનમાં કઠિન કાષ્ઠને કાપી નાખવામા કુશળ હોય છે. પરન્તુ સૂર્યને અસ્ત થતાંની સાથે જ બીડાયલા કમળ-પુષ્પના અનુરાગના બધનમા બધાયલો

इह वाह्यरमणीयतास्पदे, नितान्ताशुचिपदे, चपलावत्प्रतिपलचपलरूपलावण्ये, योषिदपघने किमिव नाम शोभनं विद्यते, यद् वालविधुलेखेव, अमृतावयवनिर्मितेव, चन्द्रमण्डलादुद्भूतेव, इयं नीलकमलदलायताक्षी [1]सहावनयनाभ्यां जीवलोकमाश्वासयन्तीव कमनीया निरीक्ष्यते ।

१ स्त्रीचेष्टाविशेषो हावस्तेन सहिते=सहावे ते च ते नयने च=सहावनयने ताभ्यामित्यर्थः ।

हुई अपनी आत्माकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं [1]होता । इसलिए हे मन! ऐसे रागमें फँसनेकी इच्छा क्यों कर रहा है?

ऐ जीव! ऊपर-ऊपरसे मनोहर मालूम होनेवाले, अत्यन्त अपवित्रताके स्थान, चपला (विजली) की नाई पल-पलमें चपल रूप-लावण्यवाले, स्त्रीके शरीरमें तुझे क्या अच्छापन दिखाई देता है? जिससे तू उसे यह समझ रहा है कि-मानो वह द्वितीयाके चंद्रमाकी कला है, अमृतके अवयवोंसे वनी हुई है, चन्द्रमाको फाड़कर निकल पडी है, नीलकमलके दल (पत्ता) के समान विशाल नेत्रवाली, तथा लीलायुक्त लोचनोंसे लोकको अवलम्बन देनेवाली मनोहर दीख पडती है।

१ सूर्य डूबने वाद, कमलके भीतर पडा हुआ भौंरा, तकलीफ सहकर सारी रात विताता है किन्तु अनुराग (प्रीति) के कारण, कमलके कोमल (मोलायम) पत्तोंको भी काटकर उस तकलीफको रफा करनेका साहस नहीं कर सकता ॥

પોતાના આત્માની રક્ષા કરવામા સમર્થ નથી બનતો[1]? તો હે મન! એવા રાગમાં ફસાવાની ઇચ્છા કેમ કરી રહ્યો છે?

હે જીવ! ઉપર-ઉપરથી મનોહર માલુમ પડતા, અત્યત અપવિત્રતાનું સ્થાન વિજળીની પેઠે પલ-પલમાં ચપળ રૂપ-લાવણ્યવાળા સ્ત્રીના શરીરમાં તને કંઇ સુંદરતા દેખાય છે? કે જેથી તુ તેને માની રહ્યો છે કે- આ બીજના ચંદ્રમાની કલા છે અમૃતના અવયવોથી બનેલી છે, ચદ્રમાને ફાડીને નીકળી પડી છે, નીલ કમળના દળ (પાદડીઓ)ની સમાન વિશાળ નેત્રવાળી તથા લીલાયુકત લોચનોથી લોકને અવલંબન આપનારી મનોહર દેખાય છે

૧ સૂર્ય અસ્ત પામ્યા પછી કમળની અદર ગોધાઇ ગએલો ભમરો તકલીફ સહન કરીને આખી રાત વીતાવે છે, પરન્તુ અનુરાગ (પ્રીતિ) ને કારણે કમળની કોમળ (મુલાયમ) પાંદડીઓને કાપી નાંખીને એ તકલીફ દૂર કરવાનુ સાહસ નથી કરી શકતો.

अनालोच्य प्रवर्तमानः खलु पराभूयते, तस्मादियदपि तावद् विभावय विलासिनीविलसनं कुतः स्थानादिदमुद्भवति? किं चास्य कारणम्? कथमिदं तिष्ठति? किमेतस्मान्निःसरत् सततं दरीदृश्यते? इति,

विरम विरमात्रानुरागकरणात्, अस्य हि शरीरस्य मूत्राद्युपहतमुद्भवस्थानम्, शुक्रशोणिते एव कारणम्, अशितपीतादिना च स्थितिः, एतस्मान्निःसरीसर्ति च मलमूत्रकफादिकमेव, किं बहुना मृदुतममनोरमवसनविनिर्मितया मलमूत्रास्थि-

हे आत्मन्! स्मरण रख, जो बिना विचारे किसी विषयमें प्रवृत्ति करता है उसकी बड़ी दुर्गति होती है। तू अपना कल्याण चाहता है तो विलासिनियोंके विलासका अच्छीतरह विचार करले। यह सोच देख कि यह शरीर कहांसे उत्पन्न होता है? इसका क्या कारण है? कैसे ठहरता है? और इससे क्या२ घिनौने (घृणाजनक) पदार्थ निकलते हुए दिखाई देते हैं?

बस कर, रहेनेदे; इस शरीरमें अनुराग मत कर, मलमूत्रसे भरे हुए स्थानसे यह शरीर उत्पन्न हुआ है, रज-वीर्य इसके कारण हैं, खाया-पीया भोजन इसकी स्थितिका निमित्त है, और इसके नौ द्वारोंसे मल-मूत्र आदि घृणित पदार्थ निकला करते हैं, अधिक क्या कहें? कोमल और मनोहर कपडेसे बंधी-हुई मल-मूत्रकी मठरीमें पामर प्राणीभी अनुराग नहीं करता; फिर अशुचि आदि भावनाओंका समीचीन

હે આત્મન્! યાદ કર કે, જે વિના વિચારે કોઇ વિષયમાં પ્રવૃત્તિ કરે છે તેની ભારે દુર્ગતિ થાય છે. તું પોતાના કલ્યાણને ચાહે છે તો વિલાસિનીઓના વિલાસનો સારી પેઠે વિચાર કરી લે એટલુ વિચારી જો કે આ શરીર કયાથી ઉત્પન્ન થયું છે? એનું શુ કારણુ છે? તે કેવી રીતે ટકે છે? અને એમાથી કેવા કેવા ગંધાતા (ઘૃણાજનક) પદાર્થો નીકળતા જોવામાં આવે છે?

બસ કર, રહેવા દે, આ શરીરમા અનુરાગ ન કર, મળમૂત્રથી ભરેલા સ્થાનમાંથી આ શરીર ઉત્પન્ન થયું છે, રજ-વીર્ય એનું કારણુ છે, ખાધેલું-પીધેલું ભોજન, એની સ્થિતિનું નિમિત્ત છે, અને તેનાં નવ દ્વારો વાટે મળ-મૂત્ર આદિ ઘૃણિત પદાર્થો નીકળ્યા કરે છે વધારે શુ કહીએ? કોમળ અને મનોહર કપડાથી બાંધેલી મળમૂત્રની ગાસડીમા પામર પ્રાણી પણ અનુરાગ નથી કરતો, તો પછી અશુચિ આદિ ભાવનાઓનુ સમીચીન ચિંતન કરવામા ચતુર મુનિઓની તો

कफादिपोट्टलिकया न पामरोऽपि रज्यते, का कथा पुनर्भावनाकुशलानां मुनीनाम्।
उक्तञ्च—" अम्भःकुम्भशतैर्वपुर्ननु वहिर्मुग्धाः ! शुचित्वं कियत्,-
कालं लम्भयथोत्तमं परिमलं कस्तूरिकाद्यैस्तथा ।
विष्ठाकोष्ठकमेतदङ्गकमहो ! मध्ये तु शौचं कथ,-
ङ्कारं नेष्यथ सूचयिष्यथ कथङ्कारं च तत्सौरभम् " ॥ १ ॥
अन्यच्च-" विरम विरम संगान्मुञ्च मुञ्च प्रपञ्चं,
विसृज विसृज मोहं विद्धि विद्धि स्वतत्त्वम् ।
कलय कलय वृत्तं पश्य पश्य स्वरूपं,
कुरु कुरु पुरुषार्थं निर्वृतानन्दहेतोः ॥ २ ॥ इति, "

चिन्तन करनेमें चतुर मुनियोंका कहना ही क्या है ? वे तो उस ओर आंखभी नहीं उठाते। कहा भी है—

"शरीरको सैकड़ों घड़ोंसे चाहे जितना नहलाओ धुलाओ, और केशर कस्तूरी गुलाब आदिकी सुगन्धसे सुगन्धित करो, परन्तु यह शरीर तो मल-मूत्रका भाजन है। हे भव्यो! इसे कैसे पवित्र बनाओगे? और कैसे इसकी सुगन्धि फैलाओगे" ॥१॥

"हे आत्मन् ! तू स्त्री आदिकी ममतासे विरक्त हो विरक्त हो, मोहका त्यागकर त्यागकर, आत्माके स्वरूपको पहचान पहचान, और मोक्षसुखके लिए पुरुषार्थ कर पुरुषार्थ कर[1] " ॥२॥

---

१ यहां प्रत्येक कर्त्तव्यको दुहरानेसे अत्यन्त तीव्र प्रेरणा प्रगट होती है।

શી વાત? તેઓ તો તેની તરફ ઉંચી આંખે જોતા પણ નથી કહ્યુ છે કે—

"શરીરને સેકડો ઘડા પાણીથી ચાહે તેટલુ ન્હવરાવો, ધુઓ, અને કેશર કસ્તૂરી ગુલાબ આદિની સુગંધથી સુગંધિત કરો, પરંતુ આ શરીર તો મળ-મૂત્રનું ભાજન છે. હે ભવ્યો! તેને કેવી રીતે પવિત્ર બનાવશો! અને કેવી રીતે તેના પરાગ (ફોરમ)ને ફેલાવશો?" (૧)

"હે આત્મન્! તું સ્રીઆદિની મમતાથી વિરક્ત થા વિરક્ત થા, મોહનો ત્યાગ કર ત્યાગ કર, આત્માના સ્વરૂપને જાણ જાણ, ચારિત્રનો અભ્યાસ કર અભ્યાસ કર, પોતાને પિછાણ પિછાણ, અને મોક્ષ સુખને માટે પુરૂષાર્થ કર પુરૂષાર્થ કર[1] " (૨)

---

૧ અહીં પ્રત્યેક કર્તવ્યને બેવડાવવાથી અત્યંત તીવ્ર પ્રેરણા પ્રકટ થાય છે.

अपरञ्च—"अमेध्यपूर्णे कृमिजालसङ्कुले, स्वभावदुर्गन्धविनिन्दितान्तरे।
कलेवरे मूत्रपुरीषभाविते, रमन्ति मूढा विरमन्ति धीराः ॥३॥" इति।

यद्यपि संसारभीरुभिः परिहेयोऽन्यसङ्गो दुस्त्यजः, तथापि ब्रह्मचर्यमहिमानमनुस्मरतां मुनीनां केवलं स्त्रीसङ्गपरिहारेण द्रव्यादिसङ्गः स्वयमेव निवर्तते। यथा स्वयम्भूरमणमहासागरमुत्तीर्णस्य पुरतः क्षुद्राकृतिर्गङ्गासमानाऽपि नदी सुखसमुत्तरणीया भवति। उक्तञ्च-भगवता उत्तराध्ययनसूत्रस्य द्वात्रिंशेऽध्ययने—

"एए य संगे समइक्कमित्ता, सुहुत्तरा चेव हवंति सेसा।
जहा महासागरमुत्तरित्ता, नई भवे अवि गंगासमाणा ॥ १ ॥"-इति,

"अशुचि पदार्थोंसे भरा हुआ; जूँ आदि कीड़ोंसे व्याप्त, स्वाभाविक दुर्गन्धके कारण भीतर भी घृणित और मल-मूत्रसे वेष्टित (स्त्रियोंके) शरीरमें रमण वे करते हैं जो मूढ हैं, और बुद्धिमान् पुरुष महान् निकृष्ट समझ कर उससे अलग रहते हैं ॥ ३ ॥"

यद्यपि विषयोंके संग संसारभीरु पुरुषोंके लिए त्याज्य हैं और उनका त्याग होना कठिन है, तथापि ब्रह्मचर्यकी महिमाका स्मरण करनेवाले मुनियोंको एक मात्र स्त्रीसंगके त्याग देनेसे अन्य विषयोंके संग दुस्त्यज होनेपर भी स्वयमेव निवृत्त हो जाते हैं। अर्थात् ब्रह्मचर्यमें दृढ़ रहनेवालों पर कोई भी विषय, अपना प्रभाव नहीं डाल सकता। जो पुरुष स्वयम्भूरमण महासमुद्रको पार कर चुका है उसके लिए गंगा जैसी छोटी२ नदियां पार करना क्या बड़ी बात है ?। भगवानने उत्तराध्ययन

"અશુદ્ધ પદાર્થોથી ભરેલાં, જુ–આદિ કીડાઓથી વ્યાપ્ત, સ્વાભાવિક દુર્ગંધિને કારણે અંદર પણ ઘૃણિત અને મળ–મૂત્રથી વેષ્ટિત (સ્ત્રીઓના) શરીરમાં તેઓ રમણ કરે છે કે જેઓ મૂઢ છે, અને બુદ્ધિમાન પુરૂષ તો તેને અત્યંત નિકૃષ્ટ સમજીને તેનાથી અલગ રહે છે." (૩)

જો કે વિષયોના સગ સંસારભીરૂ પુરૂષોને માટે ત્યાજ્ય છે અને તેનો ત્યાગ થવો કઠિન છે, તોપણ બ્રહ્મચર્યના મહિમાનુ સ્મરણ કરનારા મુનિઓને એક માત્ર સ્ત્રીસગનો ત્યાગ કરવાથી, અન્ય વિષયોનો સગ દુસ્ત્યજ હોવા છતાં પણ આપોઆપ નિવૃત્ત થઈ જાય છે અર્થાત્ બ્રહ્મચર્યમા દૃઢ રહેનારાઓ પર કોઈ પણ વિષય પોતાનો પ્રભાવ પાડી શકતો નથી જે પુરૂષ સ્વયમ્ભૂરમણ મહાસમુદ્રને પાર કરી ચૂકયો છે તેને માટે ગંગા જેવી નાની નાની નદીઓ પાર કરવામાં શી મોટી વાત છે ? ભગવાને પણ ઉત્તરાધ્યયન–સૂત્રના ૩૨ મા અધ્યયનમાં

कज्जल इव मलिनयति स्वच्छमम्बरमिवात्मानम्, भवति चार्गला मोक्षमार्गद्वारस्य नरकनिगोदाद्यनन्तदुःखानाञ्च निधानमिति सर्वथा तमपहाय पराञ्चन्ति चञ्चत्तपः-संयमाचरणचतुरास्तपस्विनः ।

ननु बहवो मन्त्रास्तथाविधाः सन्ति ये देवानां दानवानामुपरि प्रभावमाविर्भावयन्ति, परन्तु किमेतदाश्चर्यम् ? यत् स्त्रीणां चरित्रे तेऽपि मन्त्रा हतप्रायाः किमपि कर्तुं न प्रभवन्ति । अथासां चरित्रस्यैतादृशप्रभावशालिता, यत्पुरतो मन्त्रा अपि पराभूय निवर्त्तन्ते, तर्हि क उपायस्तदुद्भावितरागरज्जुकर्तनाय संयताना-?-मिति चेत्,

हन्त ! हृदय-सहचर ! योषित्सविधसंस्थितिपरित्याग एव तदीय-चरित्राऽऽ-

---

है उसी प्रकार आत्माको मलिन करने वाला है; मुक्तिके मार्गकी अर्गला है, नरक निगोदके दुःखोंका निधान है और विविध व्याधियोंका उत्पत्तिस्थान है, अत एव तप और संयमके पालनेमें चतुर तपस्वी लोग इस (विषय-राग) को बिलकुल छोड़कर अलग होते हैं ।

जो मन्त्र, देवों और दानवों पर भी अपना प्रभाव शीघ्रही दिखलाते हैं वे भी स्त्रीजनित राग पर प्रभाव नहीं डाल सकते । यह बड़े आश्चर्यकी बात है । स्त्रियोंका चरित्र इतना प्रभावशाली होता है कि उसके सामने मन्त्र भी प्रभावहीन हो जाते हैं तब उनके विषयमें उत्पन्न होनेवाले राग-रज्जूको काटनेके लिए मुनियोंको क्या उपाय करना चाहिये ?

हे हृदय-सुहृद् ! स्त्रियोंके समीप रहनेका त्याग करदेना ही उनके

જેમ કાજળ સફેદ વસ્ત્રને મલિન કરી નાખે છે તેમ આત્માને મલિન કરનારો છે, મુક્તિના માર્ગની અર્ગલા છે, નરક નિગોદનાં દુઃખોનું નિધાન છે, અને વિવિધ વ્યાધિઓનું ઉત્પત્તિસ્થાન છે તેથી કરીને તપ અને સંયમને પાળવામા ચતુર એવા તપસ્વી લોકો આ (વિષયરાગ)ને બિલકુલ છોડીને તેથી દૂર જતા રહે છે

જે મંત્ર, દેવો અને દાનવો પર પણ પોતાનો પ્રભાવ તુરત બતાવી આપે છે, તે મંત્ર પણ સ્ત્રીજનિત રાગ પર પ્રભાવ પાડી શકતો નથી, એ મોટા આશ્ચર્યની વાત છે સ્ત્રીઓનું ચારિત્ર એટલું પ્રભાવશાળી હોય છે કે તેની સામે મંત્ર પણ પ્રભાવહીન બની જાય છે તો તેના વિષયમાં ઉત્પન્ન થનારા રાગરજ્જુને કાપવા માટે મુનિઓએ કયો ઉપાય કરવો જોઈએ ?

હે હૃદય-સુહૃદ્ ! સ્ત્રીઓની સમીપે રહેવાનું છોડી દેવું એજ એના વિષયમાં

पादितरागभङ्गोपाय इति धारणामुपैहि । उक्तञ्च—

"शृणु हृदय ! रहस्यं यत्प्रशस्तं मुनीनां,
न खलु न खलु योषित्संनिधिः संविधेयः ।
हरति हि हरिणाक्षी क्षिप्रमक्षिक्षुरप्रैः,
पिहितशमतनुत्रं चित्तमप्युत्तमानाम् ॥ १ ॥
शास्त्रज्ञोऽपि प्रकटविनयोऽप्यात्मबोधेऽपि गाढः,
संसारेऽस्मिन् भवति विरलो भाजनं सद्गतीनाम् ।
येनैतस्मिन् निरयनगरद्वारमुद्घाटयन्ती,
वामाक्षीणां भवति कुटिला भ्रूलता कुञ्चिकेव" ॥ २ ॥

वस्तुतस्तु इहाऽनादिसंसारे स्वस्मिन्नपि शरीरे जीवस्य किं नाम स्वातन्त्र्यम् ?

विषयमें होनेवाले प्रेम-पाशके काटनेका उपाय है । कहा भी है–

"ऐ मन ! मुनियोंकी आत्माका कल्याण करनेवाले रहस्यको सुन, वह यह है कि–स्त्रियोंका सम्पर्क (संसर्ग) सर्वथा नहीं करना चाहिये, क्योंकि शम-रूप कवच पहने हुए उत्तम पुरुषोंके अन्तःकरणको भी स्त्रियां अपनी आंखेंरूपी छुरीकी धारसे छिन्न-भिन्न कर डालती हैं" ॥१॥

"प्रवचनमें प्रवीण, विनयवान् और गंभीर आत्मज्ञानवान् होते हुए भी कोई विरला ही व्यक्ति सद्गतिकी प्राप्ति कर पाता है । क्योंकि संसारमें एक ऐसी कुंजी मौजूद है जो जल्दी नरकका द्वार खोल देती है, वह कुंजी क्या है ? स्त्रियोंकी टेढ़ी भौंह" ॥२॥

सच है–अनादि-कालीन संसारमें, जीवोंको अपने शरीरमें भी

ઉત્પન્ન થતા પ્રેમપાશને કાપવાનો ઉપાય છે કહ્યુ છે કે–હે મન ! મુનિઓના આત્માનું કલ્યાણ કરનારા રહસ્યને શ્રવણ કર. તે આ પ્રમાણે છે.—

"સ્ત્રીઓનો સપર્ક (સસર્ગ) સર્વથા ન કરવો જોઇએ, કારણ કે શમરૂપ કવચ પહેરેલા ઉત્તમ પુરૂષોના અતઃકરણને પણ સ્ત્રીઓ પોતાની આંખોરૂપી છુરીની ધારથી છિન્ન–ભિન્ન કરી નાખે છે."

"પ્રવચનમા પ્રવીણ, વિનયવાન્ અને ગંભીર આત્મજ્ઞાનવાન્ હોવા છતાં પણ વિરલ વ્યક્તિ જ સદ્ગતિને પ્રાપ્ત કરી શકે છે. કારણ કે સંસારમાં એક એવી કુચી મોજુદ છે કે જે જલ્દી નરકનું દ્વાર ખોલી નાંખે છે. એ કુચી કઇ છે ? સ્ત્રીની વાંકી ભમ્મર

ખરૂં છે અનાદિકાલીન સંસારમાં, જીવો પાસે પોતાના શરીરની પણ

दृश्यते हि लोकेऽपकृष्टमनुजपशुपक्षिसरीसृपादिशरीरोपभोगमवाञ्छतोऽपि प्राणिनस्तत्तदङ्गयोगेन अनावृतदेशावस्थानाऽभिमताऽन्नपानाऽनवाप्तिशीतवातातपोपलवृष्टिदंशमशकादिजनिताऽनेकविधदुर्निवारदुःखोपभोगः सोढव्यो भवतीति, स्वातन्त्र्ये तु न कोऽपि तत्तदङ्गमङ्गीकुर्यात् । अङ्गसंयोग इवाङ्गवियोगेऽपि नास्ति जीवस्य स्वातन्त्र्यम्, तनुवियोगमनिच्छतामपि सुखसमन्वितानां मरणदर्शनात्, तमिच्छतां दुःखदग्धानां विषादिभक्षणेऽप्यैकान्तिकमरणादर्शनाच्च ।

स्वाधीनता नहीं है। अपकृष्ट–मनुष्य पशु पक्षी साँप आदिके हीन शरीरको जो प्राणी चाहते ही नहीं, उन्हें भी वह शरीर धारण करना पड़ता है, और उसके संयोगसे अनिष्ट स्थानका निवास, अन्न-पानकी अप्राप्ति, गर्मी, सर्दी, ओलोंकी वर्षा, हवा, डांस-मच्छर आदिसे होनेवाले अनेक प्रकारके दुःख भोगने पड़ते हैं। यदि ऐसे शरीरको धारण करना अपनी इच्छा पर निर्भर होता तो कोई भी प्राणी ऐसा दुखदायी शरीरको धारण न करता।

जिस प्रकार शरीर धारणमें जीव स्वाधीन नहीं है उसी प्रकार उसके त्यागनेमें भी स्वाधीन नहीं है। संसारमें जो प्राणी सुखसम्पन्न हैं वे वर्त्तमान शरीरका त्याग नहीं करना चाहते, फिरभी उनकी मृत्यु हो जाती है। और मृत्युकी कामना करनेवाले दुःखी जीव विष आदि भक्षण कर लेते हैं तो भी कभी-कभी बच जाते हैं, अतः सिद्ध हुआ कि अपना शरीरभी अपने अधीन नहीं है।

સ્વાધીનતા નથી અપકૃષ્ટ–મનુષ્ય પશુ પક્ષી સાપ આદિનાં હીન શરીરને જે પ્રાણી ચાહતા જ નથી, તેમને પણ એ શરીર ધારણ કરવા પડે છે અને તેના સંયોગથી અનિષ્ટ સ્થાનનો નિવાસ, અન્નપાનની અપ્રાપ્તિ, તાપ, ટાઢ, કરાનો વરસાદ, હવા, ડાંસ-મચ્છર આદિથી ઉત્પન્ન થતાં અનેક પ્રકારનાં દુઃખો ભોગવવા પડે છે. જો એવા શરીરને ધારણ કરવાનું પોતાની ઇચ્છા પર જ નિર્ભર હોત તો કોઈ પણ પ્રાણી એવા દુઃખદાયી શરીરને ધારણ ન કરત.

જેવી રીતે શરીર ધારણ કરવામાં જીવ સ્વાધીન નથી, તેવી રીતે તેને ત્યજવામાં પણ સ્વાધીન નથી સંસારમાં જે પ્રાણીઓ સુખસંપન્ન છે તેઓ વર્તમાન શરીરનો ત્યાગ કરવા ઇચ્છતા નથી, તો પણ એમનું મૃત્યુ થઈ જાય છે. અને મૃત્યુની કામના કરનારા દુઃખી જીવો વિષ આદિ ભક્ષણ કરી લે છે તોપણ કોઈ કોઈ વાર બચી જાય છે એ ઉપરથી સિદ્ધ થયું કે આપણું શરીર પણ આપણને આધીન નથી

जीवस्य स्वातन्त्र्येण शरीरस्वामित्वे सति अनेकेषां कुसुमसुकुमाराणां सुन्दरावयवानां कतिपयानामतीतदेवादिशरीराणां विनाशः कथं न वारितः? तस्माद् देहगेहादि किमपि वस्तु कस्यापि नास्ति, किन्तु अज्ञानवशाज्जीवाः 'इदं मम, इयं ममे' त्यादिस्वरूपं ममत्वं कुर्वन्तीति निश्चीयते ।

इत्थं च स्वकीयदेहगेहादौ ममत्वकरणमज्ञानमूलं, कर्मबन्धहेतुश्चेति विवेकिनः स्वदेहेऽपि ममत्वं न कुर्वन्ति, किं पुनरन्यदीयदेहगेहादौ–इत्यनुचिन्तनेन समुत्पन्नया "न सा मम, नाहं तस्याः" इत्याकारया विवेकबुद्ध्या मनसि प्रसृतं रागं प्रशमयेदिति भावः ॥ अत्र गाथायां 'परिव्वयंतो' इत्यत्र सौत्रत्वात्षष्ठ्यर्थे प्रथमा, 'बहिद्धा' इति प्राकृतत्वात्, यद्वा बहिर्धावतीति विग्रहे पृषोदरादित्वाद्धकारादिलोपः। इति गाथार्थः ॥ ४ ॥

यदि शरीर पर प्राणीका अधिकार होता तो फूलसे कोमल तथा सुन्दर अवयववाले अतीतकालीन देव आदिके शरीरके वियोगको क्यों न रोक लेता? सत्य बात तो यह है कि–देह गेह आदि कोई भी वस्तु किसीकी नहीं है । जीव अज्ञानके कारण 'यह मेरा है' 'यह मेरी है' इस प्रकारकी ममता करते हैं, अत एव शरीरमें ममता करना ही अज्ञान-मूलक और परिग्रह होने से कर्म-बन्धका कारण है, ऐसा समझ कर विवेकी जन अपने शरीरमें भी स्नेह नहीं करते तो दूसरेकी देहमें कैसे स्नेह करेंगे?।ऐसा सोच कर, मनमें उत्पन्न हुए भी रागादिको "न वह मेरी है" और "न मैं उसका हूँ" इस प्रकारकी भावनासे दूर कर मुनि, उस निकले हुए मनको फिरसे संयम-घरमें लावे ॥४॥

જો શરીર પર પ્રાણીનો અધિકાર હોત તો ફૂલથીય કોમળ તથા સુંદર અવયવોવાળા અતીતકાલીન દેવાદિના શરીરના વિયોગને કેમ રોકી રાખત નહિ? સાચી વાત એ છે કે દેહ ગેહ આદિ કોઈ પણ વસ્તુ કોઇની નથી જીવ અજ્ઞાનને કારણે 'આ મારો છે' એ 'એ મારી છે' એ પ્રકારની મમતા રાખે છે. એટલે શરીર પર મમતા રાખવી એજ અજ્ઞાનમૂલક અને પરિગ્રહરૂપ હોવાને કારણે કર્મબંધનું કારણ છે એવુ સમજીને વિવેકીજન પોતાના શરીર પર પણ સ્નેહ રાખતા નથી, તો પછી બીજાના દેહ પર કેમ સ્નેહ કરે? એમ વિચારીને મનમા ઉત્પન્ન થએલા રાગાદિને, "એ મારી નથી" કે "હુ તેનો નથી" એવી ભાવનાથી દૂર કરીને, મુનિએ સયમઘરથી બહાર નીકળેલા મનને પાછું સયમઘરમા લાવે (૪)

पूर्वगाथया 'रागव्यपनयः कर्त्तव्यः' इत्युक्तं, स च वाह्यक्रियामन्तरेण न सम्भवतीत्यतस्तत्प्रतिपादनार्थमाह–'आयावयाही' इत्यादि ।

मूलम्–आयावयाही[1] चय[3] सोगमल्लं[2], कामे[4] कमाही[5] कमियं[8] खु[6] दुक्खं[7]।
छिंदाहि[10] दोसं[9] विणएज्ज[12] रागं[11], एवं[13] सुही[15] होहिसि[16] संपराए[14] ॥५॥

छाया–आतापय त्यज सौकुमार्यं, कामान् क्राम क्रान्तमेव दुःखम् ॥
छिन्धि द्वेषं व्यपनय रागम् , एवं सुखी भविष्यसि सम्पराये ॥ ५ ॥

सान्वयार्थः–स्त्रीपरसे मोह हटानेका उपाय कहते हैं—

आयावयाही=शरीरको तपस्यासे सूखा डालो, सोगमल्लं=सुकुमारता-अमीरी-को चय=त्यागो, कामे=विषयकी इच्छाओंको कमाही=कावूमें करो-रोको, (ऐसा करनेसे) खु=निश्चय करके दुक्खं=दुःख कमियं=दूर होगा, दोसं=द्वेषको छिंदाहि=छेदो-नष्ट करो, रागं=रागको विणएज्ज=हटाओ-दूर करो; एवं=इस प्रकार करनेसे (तुम) संपराए=संसारमें सुही=सुखी होहिसि=होवोगे ॥५॥

टीका–हे शिष्य ! त्वं श्रामण्ययोगाद्बहिर्निर्गतं चित्तं प्रतिरोद्धुम् आतापय=शीतोष्णादिसहनो-त्कुटुकासनाद्यवलम्बना-ऽनशनादिदुष्करतपोविधानैस्तनुं तापय, सौकुमार्यं=शरीरसुकुमारतां त्यज=परिहर, यद्वा आतापयेतिपदेन वोधितमेवार्थं

पूर्व गाथामें, उत्पन्न हुए रागका परित्याग करना कहा किन्तु रागका त्याग तप आदि वाह्य क्रियाओंके विना नहीं हो सकता। इसलिए अव उनकी प्ररूपणा करते हैं– 'आयावयाही-' इत्यादि,

हे शिष्य ! तपस्या कर–आतापना ले, सुकुमारताका त्याग कर, इन्द्रियोंके विषयोंमें राग न कर, रागके त्यागसे दुःखोंका नाश होही

પૂર્વ ગાથામા, ઉત્પન્ન થએલા રાગનો પરિત્યાગ કરવાનું કહ્યું, કિન્તુ રાગનો ત્યાગ તપ આદિ બાહ્ય ક્રિયાઓ વિના થઇ શકતો નથી તેટલા માટે એની પ્રરૂપણા કરે છે आयावयाही० ઇત્યાદિ

હે શિષ્ય ! તપસ્યા કર–આતાપના લે, સુકુમારતાનો ત્યાગ કર, ઇંદ્રિયોના વિષયોમા રાગ ન કર, રાગના ત્યાગથી દુ.ખોનો નાશ થઇ જ જાય છે. તુ દ્વેષનો

विशदयति-सौकुमार्यं त्यजेति शरीरसुखसाधने दत्तचित्तो मा भव, शीतवातादिपरिषहसहनयोग्यतां सम्पादयेति भावार्थः। काम्यन्त इति कामाः=शब्दादिविषयास्तान् क्राम=अतिक्राम-सन्त्यजेत्यर्थः। कामातिक्रमणे सति तु दुःखं क्रान्तमेव=गतमेव नष्टमेवेत्यर्थः। कामा एव हि दुःखसमुदायनिदानम्।

ननु 'यथा बुभुक्षापिपासादीनामशनपानादिभिरेव निवृत्तिस्तद्वत्कामानामुपभोगेन भविष्यति ?

जाता है। तूं द्वेषका लेश न रहने दे, और रागको छोड़ दे, तो तू संसारमें सुखी, अथवा परिषह उपसर्गोंके युद्धमें विजयी होगा। तात्पर्य-हे शिष्य! श्रामण्ययोग (संयमरूप घर) से बाहर मन निकल जाय तो शीत उष्ण आदि सह कर और उत्कुटुकासन आदिका आश्रय लेकर, तथा अनशन आदि तप करके शरीरको सुखा डाल, शरीरकी कोमलताका त्याग कर, अर्थात् अपने शरीरको शीत-आतप प्रभृति परिषह सहने योग्य बना ले, शारीरिक सुखोंकी सामग्रीमें मन न लगा। जिनकी कामना की जाती है, उन्हें काम कहते हैं, उन कामों (शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श आदि इन्द्रिय-विषयों) की अपेक्षा न रख। ऐसा करनेसे दुःखोंका अस्तित्व रह नहीं सकता, उनका नाश ही समझ, क्योंकी काम ही दुःखोंका कारण है।

शंका-हे गुरुमहाराज! जैसे भोजन करनेसे भूख शान्त हो जाती है, और पानी पीनेसे प्यास बुझती है, वैसेही विषयोंका सेवन करनेसे

અંશ પણ રહેવા ન દે. અને રાગને છોડી દે, તેથી તુ સંસારમાં સુખી અથવા પરિષહ ઉપસર્ગો સાથેના યુદ્ધમા વિજયી થઇશ તાત્પર્ય એ છે કે-હે શિષ્ય! શ્રામણ્યયોગ (સંયમરૂપી ઘર) થી બહાર મન નીકળી જાય તો ટાઢ-તાપ આદિ પરિષહ અને ઉત્કુટુક આસન આદિનો આશ્રય લઇને, તથા અનશન આદિ તપ કરીને શરીરને સુકાવી નાંખ, શરીરની કોમળતાનો ત્યાગ કર, અર્થાત્ પોતાના શરીરને ટાઢ-તાપ આદિ પરિષહ સહેવાને યોગ્ય બનાવી લે. શારીરિક સુખોની સામગ્રીમા મન ન લગાડ જેની કામના કરવામાં આવે છે તેને કામ કહે છે. એ કામો (શબ્દ, રૂપ, ગંધ, રસ, સ્પર્શ આદિ ઇન્દ્રિય-વિષયો)ની અપેક્ષા ન રાખ એમ કરવાથી દુઃખોનું અસ્તિત્વ રહી શકશે નહિ, એનો નાશ જ સમજ, કેમકે કામ જ દુઃખનું કારણ છે.

શંકા-હે ગુરૂ મહારાજ! જેમ ભોજન કરવાથી ભૂખ શાન્ત થઈ જાય છે અને પાણી પીવાથી તરસ છીપે છે, તેમજ વિષયોનું સેવન કરવાથી વિષય

मैवम् , हे शिष्य ! विषयवासनैव तावत्सकलाऽनर्थमूलम् , विशेषतश्चारित्रमुच्छेदयन्ती रागद्वेषौ दृढीकुरुते । यथा विदेशं गतस्य कस्यचित् प्रेयसो जीवितस्यापि श्रुतायां मरणवार्त्तायां जना रुदन्ति न तथा तस्मिन्मृतेऽप्यश्रुतायां तदीयमरणप्रवृत्तौ, तस्माच्चेतोविकृतिरेव मुख्यतः सुखदुःखबन्धहेतुः, विषयवासनायाः समुच्छेदमन्तरेण पुनः पुनरष्टविधानां कर्मणामङ्कुरणं न शक्यते प्रतिरोद्धुं, तेषां विषयवासनामूलकत्वात् । उक्तञ्च—

विषयसेवनकी इच्छा भी शान्त हो जायगी तो फिर आतापना आदि बाह्य तप क्यों करना चाहिए ?

उत्तर—हे शिष्य ! ऐसी शंका करना उचित नहीं है, क्योंकि विषयोंकी वासना (इच्छा) ही सब अनर्थोंकी जड़ है, और चारित्ररूपी वृक्षकी जड़को उखाड़नेवाली है। यह रागद्वेषको दृढ़ करती है । परदेश गया हुआ कोई इष्टमित्र जीवित हो परन्तु उसकी मृत्युका समाचार मिले तो सम्बन्धी लोग रोने लगते हैं, और यदि वह मर जाय किन्तु मरनेका समाचार न मिले तो कोई भी नहीं रोता । इससे ज्ञात होता है कि चित्तका विकार ही सुख-दुःखका मुख्य कारण है ।

इसलिए जब-तक मनसे विषयवासनाका समूल त्याग नहीं होता तब तक आठों कर्मोंकी उत्पत्ति नहीं रुक सकती, क्योंकि उनका मूल, विषय-वासना है । कहा भी है—

સેવનની ઇચ્છા પણ શાન્ત થઇ જાય, તો પછી આતાપના આદિ બાહ્ય તપ કરવાની શી જરૂર ?

ઉત્તર—હે શિષ્ય ! એવી શંકા કરવી ઉચિત નથી, કારણ કે વિષયોની વાસના (ઇચ્છા) જ બધા અનર્થોનું મૂળ છે. અને ચારિત્રરૂપી વૃક્ષના મૂળને ઉખાડનારી છે. તે રાગદ્વેષને દૃઢ કરે છે પરદેશ ગએલો કોઇ ઇષ્ટમિત્ર જીવતો હોય પરંતુ તેના મૃત્યુના સમાચાર મળે તો સગા-સંબધીઓ રોવા લાગે છે, અને જો તે મરી જાય પણ મરવાના સમાચાર ન મળે તો કોઇ પણ રોતું નથી, એથી સમજાય છે કે ચિત્તનો વિકારજ સુખદુઃખનું મુખ્ય કારણ છે

એ કારણથી જ્યાંસુધી મનમાંથી વિષયવાસનાનો સમૂળો ત્યાગ નથી થતો ત્યાંસુધી આઠે કર્મોની ઉત્પત્તિને રોકી શકાતી નથી, કારણ કે તેનું મૂળ વિષય-વાસના છે કહ્યું છે કે—

"विचारितमलं शास्त्रं, चिरमुद्ग्राहितं मिथः
सन्त्यक्तवासनान्मौनाद्, ऋते नास्त्युत्तमं प[दम्]"

यथा पवनपथे पतत्रिणः स्वच्छन्दं विहरन्ति तथाऽनुपमाऽलौकिकाऽ[नन्द]मोक्षमार्गसंचारिणः संयमिनः प्रतिबन्धरहितं विहरन्ति, परन्तु जालबद्धा [वि]उत्पतनयत्नवन्तोऽपि यथा निर्बन्धविहाराय न प्रभवन्ति, तद्वद् विषयसेवनाऽऽशालक्षणविषयवासनाकलितचेतसो मुनयोऽनुपलभ्य मोक्षमार्गमप्रतिबन्धविचरणवञ्चिता भवन्तीति शिष्य ! जानीहि तावद् विषयाशां दुस्तरमहानदीसमानाम् । उक्तञ्च—

"भले ही कोई कितनेही शास्त्रोंका मनन करले, या दूसरोंको सिखलादे, पर जब तक वासनाका परित्याग करके समिति-गुप्ति-आदिरूप संयमकी आराधना नहीं कर लेता तबतक मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता" ॥१॥

जैसे-पक्षी आकाशमें स्वच्छन्द विहार करते हैं, उसीप्रकार अनुपम अलौकिक आनन्दमय मोक्षमार्गमें विहार करनेवाले संयमी भी अप्रतिबन्धविहारी होते हैं। किन्तु जिस प्रकार जालमें फँसे हुए पक्षी उडनेका यत्न करते हैं पर उड़ नहीं सकते, उसी-प्रकार विषयसेवनकी आशारूप वासनासे मुनि मोक्षमार्गको न पाकर अप्रतिबन्ध विहारसे वंचित रहते हैं। हे शिष्य ! इस विषय-वासनाको ऐसी विशाल नदी समझ कि जिसका पार पाना अत्यन्त कठिन है। कहा भी है—

"ભલે કોઈ ગમે તેટલાં શાસ્ત્રોનું મનન કરી લે, અથવા બીજાઓને શીખવે, પરન્તુ જ્યાસુધી વાસનાનો ત્યાગ કરીને સમિતિ–ગુપ્તિ આદિરૂપ સંયમની આરાધના કરી લેતો નથી, ત્યાંસુધી મોક્ષ પ્રાપ્ત કરી શકતો નથી." (૧)

જેમ પક્ષી આકાશમાં સ્વચ્છન્દ વિહાર કરે છે, તેમ અનુપમ અલૌકિક આનંદમય મોક્ષમાર્ગમાં વિહાર કરનારા સંયમી પણ અપ્રતિબંધ વિહારી હોય છે. પરન્તુ જેવી રીતે જાળમાં ફસેલા પક્ષીઓ ઉડવાનો યત્ન કરે છે. પણ ઉડી શકતાં નથી, તેવી રીતે વિષયના સેવનની આશારૂપ વાસનાથી વાસિત અંતઃકરણવાળા મુનિઓ મોક્ષમાર્ગને ન પામતા અપ્રતિબંધ વિહારથી વંચિત રહે છે. હે શિષ્ય! આ વિષયવાસનાને એવી વિશાળ નદી સમજ કે જેનો પાર પામવો અત્યંત કઠિન છે. કહ્યું છે કે—

"आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला,
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी।
मोहाऽऽवर्तसुदुस्तराऽतिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी,
तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः॥ १॥" इति

अपरं चाऽऽकर्णय—

"विषयाशामहापाशाद्, यो विमुक्तः सुदुस्त्यजात्।
स एव कल्पते मुक्त्यै नान्यः षट्शास्त्रवेद्यपि॥ १॥" इति,

हे शिष्य! एवं विषयभोगस्पृहाऽपि महतेऽनर्थाय कल्पते, किं पुनस्तदुप-

---

"आशा, नदीके समान है, इसमें मनोरथरूपी जल भरा हुआ है; तृष्णाकी तरंगे छलांगे मार रही हैं, रागरूपी ग्राह इसमें निवास करते हैं, नाना प्रकारके सोच-विचार ही इसमें पक्षी हैं, यह नदी धीरता-रूपी वृक्षको विध्वंस करनेवाली है, चिन्तारूपी इसका तट है, इसका पार करना बहुत कठिन है, जो मुनीश्वर इस नदीको पार कर लेते हैं वे ही सुखी होते हैं॥१॥"

और सुनो—

"विषयोंका आशापाश दुस्त्याज्य है। जो इस पाशसे मुक्त हो जाते हैं वेही मोक्ष-मार्गके अधिकारी होते हैं, अन्य नहीं; चाहे वह सभी शास्त्रोंके पारंगत क्यों न हो! ॥१॥"

हे शिष्य! इसप्रकार विषय भोगनेकी इच्छा भी महान् अनर्थको उत्पन्न करती है, तो विषयोंके सेवनके विषयमें तो कहना ही क्या है?

"આશા નદીના જેવી છે, તેમાં મનોરથરૂપી જળ ભરેલું છે તૃષ્ણાના તરંગો ઉછળી રહ્યા છે, રાગરૂપી ગ્રાહ એમા નિવાસ કરે છે, નાના પ્રકારના વિચારો તેમાં પક્ષીરૂપ છે, એ ધીરતારૂપી વૃક્ષનો ધ્વંસ કરવાવાળી છે. ચિન્તા એનું તટ છે એ નદીને પાર કરવી અત્યંત કઠિન છે, જે મુનીશ્વર એ નદીને પાર કરે છે તે જ સુખી થાય છે," (૧) અને વળી શ્રવણ કરો—

"વિષયોનો આશાપાશ દુસ્ત્યાજ્ય છે જેઓ એ પાશથી મુક્ત થઈ જાય છે તેઓ જ મોક્ષમાર્ગના અધિકારી બને છે—બીજા નહિ, પછી ભલે તેઓ બધા શાસ્ત્રોના પારંગત કેમ ન હોય?" (૧)

હે શિષ્ય! એ રીતે વિષય ભોગવવાની ઇચ્છા જ મહાન્ અનર્થને ઉત્પન્ન કરે છે, તો વિષયોના સેવનની બાબતમા તો કહેવું શું? બસ, તુ સમજી લે

सेवनं, तदेवमाकलय तावत्-सुखाशया दीपकोपगमनं पतङ्गानाम्, ग्राह-ग्रहण-पुरस्सरं नदीतरणं मनुष्याणाम्। किञ्च बुभुक्षापिपासादि वैषम्यं विद्यते, नहि कामा उपभोगेन शाम्यन्ति प्रत्युताभ्यासवशादतिर मेवोपगच्छन्ति, यदुक्तमन्यत्रापि—

"न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव, भूय एवाभिवर्धते ॥१॥" इति,

लोकेऽपि च दृश्यते-यथा यथा वह्नाविन्धनानि प्रक्षिप्यन्ते तथा तथाऽसौ

बस तू यही समझ ले—जैसे सुख पानेकी इच्छासे पतंगोंका दीपकमें गिरना है, अथवा कोई भोला मनुष्य लकड़ी समझकर ग्राहको पकड़ लेवे और उसीका सहारा लेकर नदी पार करना चाहे तो वह कभी सफल-मनोरथ नहीं होगा वरन् उसे प्राण त्यागने पड़ेंगे, इसी प्रकार 'विषय भोगनेसे विषयोंकी वासना मिट जायगी' यह विचारना ठीक नहीं है।

भूख-प्यासका दृष्टान्त भी यहां मेल नहीं खाता, क्योंकि विषय-सेवनसे काम शान्त नहीं होते, बल्कि अधिक-अधिक बढ़ते हैं। कहा भी है—"कामोंका सेवन करनेसे काम कदापि शान्त नहीं होते, जैसे घीके डालनेसे अग्नि शान्त नहीं होती वरन् बढ़ती ही जाती है ॥१॥"

तथा लोकमें भी देखा जाता है कि—अग्निमें ज्यों-ज्यों इन्धन डाला जाता है, त्यों-त्यों वह अधिक प्रबल होती जाती है, बुझती नहीं है।

કે—જેમ સુખ પામવાની ઇચ્છાથી પતંગો દીપકમા હોમાય છે, અથવા કોઇ ભોળો માણુસ લાકડું સમજીને ગ્રાહ (મગર) ને પકડી લે અને તેને આધારે નદી પાર કરવા ઇચ્છે તો કદાપિ તેનો મનોરથ સફળ ન થાય પરન્તુ તેને પ્રાણુ ત્યજવાનો જ વખત આવે, તેમ "વિષય ભોગવવાથી વિષયોની વાસના મટી જશે" એમ વિચારવુ એ બરાબર નથી

ભૂખ-તરસનું દૃષ્ટાંત પણુ અહીં બંધ બેસતું નથી, કારણુ કે વિષય-સેવનથી કામ શાન્ત થતો નથી, પરન્તુ વધારે ને વધારે વધે છે કહ્યુ છે કે— "કામોનુ સેવન કરવાથી કામ કદાપિ શાન્ત થતો નથી, જેમ ઘી નાખવાથી અગ્નિ શાન્ત થતો નથી, પરંતુ વધતો જાય છે" (૧) તેમજ જગતમાં પણુ જોવામા આવે છે કે— અગ્નિમા જેમ-જેમ ઇંધન નાખવામા આવે છે, તેમ-તેમ તે વધારે પ્રબળ

प्राबल्यमधिगच्छति । अन्यच्च दद्रुरोगप्रशमनाभिलाषिणा यथा यथा तदीयकण्डूयनाऽऽदरः क्रियते, तथा तथा दद्रुरोगो वर्धमान एवाऽनुभूयते न तु जातु तदुपशमो लक्ष्यते कुत्राऽपि, तद्वद् विषयसेवनतो न विषयतृष्णोपशमः ।

अपरं चात्र वैषम्यं, तथाहि–विषयसेवनेच्छोपशमं प्रति विषयसेवनस्य, बुभुक्षाद्युपशमं प्रति भोजनादेरिव कारणत्वमङ्गीकृत्य यत् तदुपादेयता त्वयोपपाद्यते तन्न मनोरमम्, अन्वयव्यतिरेकौ हि सर्वसंमतौ कार्यकारणभावनियामकौ, तत्राऽन्वयः–'तत्सत्त्वे तत्सत्तारूपः' व्यतिरेकस्तु-'तदभावे तदभावरूपः'। यथा सर्वविरतिसत्त्वे साधुत्वसत्ता, तदभावे च साधुसत्ताया अभाव इत्यन्वय-व्यतिरेकाभ्यां साधुत्वकारणं सर्वविरतिचारित्रमिति गम्यते ।

अथवा दादको खुजलानेसे दाद रोग मिटता नहीं किन्तु बढ़ता ही जाता है ॥

उक्त दृष्टान्तमें और भी विषमता है सो कहते हैं–जैसे बुभुक्षा (भूख) आदिको शान्त करनेमें भोजन आदि कारण हैं, इसी प्रकार विषय-सेवनकी इच्छाको शान्त करनेमें विषयोंका सेवन कारण है, ऐसा मानकर तुम विषय-सेवनको उपादेय कहते हो सो ठीक नहीं है। यह सब मानते हैं कि अन्वय-व्यतिरेकसे कार्य-कारणभावका निश्चय होता है, कारणके होने पर ही कार्यका होना अन्वय कहलाता है, और कारणके अभावमें कार्यका न होना व्यतिरेक कहलाता है। जैसे सर्वविरतिरूप चारित्रके होने पर ही साधुता होती है और सर्वविरतिरूप चारित्रके अभावमें साधुता नहीं रहती। इस अन्वयव्यतिरेकसे ज्ञात होता है कि विरति साधुत्वका कारण है ।

થતો જાય છે, ઓલવાતો નથી અથવા દાદરને ખજવાળવાથી દાદર મટતી નથી પણ વધતી જાય છે

ઉક્ત દૃષ્ટાંતમાં બીજી પણ વિષમતા છે તે કહે છે– જેમ ભૂખ આદિને શાન્ત કરવામાં ભોજન આદિ કારણ છે, તેમ વિષય–સેવનની ઇચ્છાને શાન્ત કરવામાં વિષયોનું સેવન કારણ છે, એમ માનીને તમે વિષય–સેવનને ઉપાદેય કહો છો તે બરાબર નથી. સૌ એમ તો માને છે કે–અન્વય-વ્યતિરેકથી કાર્ય-કારણભાવનો નિશ્ચય થાય છે કારણ હોવાથી જ કાર્યનું બનવું અન્વય કહેવાય છે અને કારણના અભાવમાં કાર્યનું ન બનવું એ વ્યતિરેક કહેવાય છે, જેમ સર્વવિરતિરૂપ ચારિત્ર હોવાથી જ સાધુતા હોય છે. અને સર્વવિરતિરૂપ ચારિત્રના અભાવમા સાધુતા રહેતી નથી. આ અન્વય-વ્યતિરેકથી સમજાય છે કે વિરતિ સાધુત્વનું કારણ છે.

अथ च-तात्कालिकमेव बुभुक्षाद्युपशमं प्रति भोजनादेरन्वयव्यतिरेकतः कारणता विद्यते, अतस्तादृशबुभुक्षाद्युपशमनकामनयैव भोजनाद्युपादीयते, अत्र तु यावज्जीवनं विषयसेवनेच्छाप्रशमः साधुजनाऽभिलाषविषय इति तादृशप्रशममुद्दिश्य प्रवर्त्तमानानां मुनीनां विषयसेवनं कदापि नोपादेयम्, विषयसेवनसमये हि तदीयवासना रागमनुवर्द्धयन्तीन्द्रियाणि च सबलयन्ती विविधाशुभभावनामुद्भावयति-'अयमुपभोगो न जातु नश्यतु, उत्तरोत्तरं चानुवर्द्धताम्, न चैनं प्रतिबध्नन्तु केऽपि विघ्नाः' इत्यादि। एवं च विषयसेवनेन नैव तदभिलाषोपशमः प्रत्युत तद्विपरीतं प्रतिक्षणं वर्द्धमान एव तदभिलाषः पाशबद्ध-

जब भोजन किया जाता है तो क्षुधाकी तात्कालिक शान्ति हो जाती है, बिना भोजन किये नहीं होती, इसलिए अन्वय-व्यतिरेकद्वारा भोजन तात्कालिक क्षुधा-निवृत्तिके प्रति कारण होता है। इसी कारणसे क्षुधा-आदि शान्त करनेके लिए भोजन आदि किया जाता है। साधु जीवन-पर्यंत विषय-सेवनकी अभिलाषाकी शान्तिकी इच्छा रखते हैं। इस-शान्तिके लिए प्रवृत्ति करनेवाले मुनियोंको कदापि विषयसेवन नहीं करना चाहिए, क्योंकि विषयवासना, विषयसेवनके समय राग-भावकी वृद्धि करती है और इन्द्रियोंको सबल बनाकर नाना प्रकारकी दुर्भावनाएँ उत्पन्न करती है कि-'यह भोग कभी नष्ट न हो जाय, उत्तरोत्तर बढ़ता जाय, इसके भोगनेमें कोई विघ्न न आजावे' इत्यादि। अत एव विषय-सेवन करनेसे विषयकी अभिलाषा शान्त नहीं होती, बल्कि प्रतिक्षण अधिक-अधिक बढ़ती जाती है। यहां तक कि यह विषयलालसा पुरुषको

જ્યારે ભોજન કરવામાં આવે છે ત્યારે ક્ષુધાની તાત્કાલિક શાંતિ થઇ જાય છે, ભોજન વિના શાન્તિ થતી નથી, તેથી અન્વય-વ્યતિરેક દ્વારા ભોજન, તાત્કાલિક ક્ષુધાનિવૃત્તિને પ્રતિ કારણ બને છે આ કારણથી ક્ષુધા આદિ શાન્ત કરવાને માટે ભોજન આદિ કરવામાં આવે છે. સાધુ જીવનપર્યંત વિષય-સેવનની અભિલાષાની શાન્તિની ઇચ્છા રાખે છે આ શાન્તિને માટે પ્રવૃત્તિ કરનારા મુનિઓએ કદાપિ વિષયસેવન કરવું ન જોઇએ, કારણ કે વિષયવાસના વિષયસેવનને સમયે રાગ-ભાવની વૃદ્ધિ કરે છે, અને ઇન્દ્રિયોને સબળ બનાવીને એવી નાના પ્રકારની દુર્ભાવનાઓ ઉત્પન્ન કરે છે કે-'આ ભોગ કદાપિ નષ્ટ ન થાય, ઉત્તરોત્તર વધતો જાય, એને ભોગવવામાં કાંઇ વિઘ્ન ન આવે' ઇત્યાદિ, એટલે વિષયસેવનથી વિષયની અભિલાષા શાન્ત થતી નથી, બલ્કે પ્રતિક્ષણ અધિક-અધિક વધતી જાય છે, તે એટલે સુધી કે એ વિષયલાલસા પુરૂષને કેવળ નકામો બનાવી દે છે.

मित्र पुरुषं पुरुषार्थसाधनाक्षमं कुरुते, तस्मात् कार्यकारणभावनियामकाऽन्वय-व्यतिरेकाभावेन यावज्जीवनं विषयसेवनतृष्णाप्रशमं प्रति विषयसेवनस्य कारणताऽनुपपत्त्या तादृशोपशमाऽभिलाषवतां संयतानामनुपादेयत्वं सिद्धम् ।

इत्थं पूर्वार्द्धेन बाह्यकामपरित्यागमुक्त्वा पश्चार्द्धेनाऽऽभ्यन्तरकामपरित्यागमाह–'छिंदाहि०' इति, शब्दादिविषयेषु द्वेषं छिन्धि=मुञ्च, तथा रागं=कामरागं व्यपनय=दूरीकुरु, एवम्=एवं कृते सति, सम्पराये=जन्ममरणरूपत्वेन नाशमये संसारेऽपीति भावः । यद्वा परीषहोपसर्गरूपे संग्रामे,त्वमितिशेषः; सुखी=स्वात्मिकानन्दभाग् भविष्यसीति गाथार्थः ॥ ५ ॥

इतना निकम्मा बना देती है कि वह पुरुषार्थ–साधनमें सर्वथा असमर्थ हो जाता है, जैसे फन्देमें फँसा हुआ पुरुष कुछभी पुरुषार्थ नहीं कर सकता। इसलिए यहाँ कार्य-कारणभावका निश्चय करानेवाले अन्वय-व्यतिरेकका अभाव होनेसे यावज्जीवन विषय-लालसाकी शान्तिके प्रति विषयसेवन कारण नहीं हो सकता। अतः यावज्जीवन विषयाभिलाषाकी शान्ति चाहनेवाले मुनियोंको यह उपादेय नहीं है।

इस प्रकार पूर्वार्द्धमें सूत्रकार बाह्य-विषयोंका त्याग बताकर उत्तरार्द्धमें अन्तरङ्ग- विषयोंके त्यागका उपदेश देते हैं कि–हे शिष्य! शब्दादि-विषयोंमें द्वेष तथा रागको दूर कर। ऐसा करनेसे तू जन्म-मरण-स्वरूपवाले विनश्वर संसारमें सुखी, अथवा अनुकूल प्रतिकूल परीषह और उपसर्ग रूप संग्राममें विजयी होगा ॥५॥

અને તે પુરૂષાર્થ–સાધનમાં સર્વથા અસમર્થ બની જાય છે, કે જેવી રીતે ફંદામાં (હેડમાં) ફસેલો પુરૂષ કાંઇ પણ પુરૂષાર્થ કરી શકતો નથી તેથી કરીને અહીં કાર્ય–કારણભાવનો નિશ્ચય કરાવનારાં અન્વય–વ્યતિરેકનો અભાવ હોવાથી જીવન-પર્યંત વિષયલાલસાની શાન્તિની પ્રતિ વિષયસેવન કારણ થઇ શકતું નથી, એટલે જીવનપર્યંત વિષયાભિલાષાની શાન્તિને ચાહનારા મુનિઓને માટે એ ઉપાદેય નથી.

એ પ્રકારે પૂર્વાર્ધમાં સૂત્રકાર બાહ્ય વિષયોના ત્યાગ બતાવીને ઉત્તરાર્ધમાં અંતરંગ વિષયોના ત્યાગનો ઉપદેશ આપે છે કે–હે શિષ્ય! શબ્દાદિ- વિષયોમાં દ્વેષ તથા રાગને દૂર કર એમ કરવાથી જન્મ-મરણસ્વરૂપવાળા વિનશ્વર સંસારમાં સુખી, અથવા અનુકૂળ-પ્રતિકૂળ પરીષહ તથા ઉપસર્ગના સંગ્રામમાં વિજયી થઇશ (૫)

उक्तमर्थं दृष्टान्तेन स्फुटीकरोति-'पक्खंदे०' इत्यादि,

८ ४ ७ ५ ६
मूलम्-पक्खंदे जलियं जोइं, धूमकेउं दुरासयं।
११ ९ १० २ ३ १
नेच्छंति वंतयं भोत्तुं, कुले जाया अगंधणे ॥६॥

छाया-प्रस्कन्दन्ति ज्वलितं ज्योतिषं, धूमकेतुं दुरासदम्।
नेच्छन्ति वान्तं भोक्तुं, कुले जाता अगन्धने ॥६॥

सान्वयार्थः—

अगंधणे=अगन्धननामक कुले=कुलमें जाया=उत्पन्न हुए (सर्प) जलियं=जलती हुई धूमकेउं=धुंआँ निकालती हुई (और) दुरासयं=असह्य-नहीं सहने योग्य (ऐसी) जोइं=अग्निमें पक्खंदे=प्रवेश कर जाते हैं,(किन्तु) वंतयं=उगले हुए विपको भोत्तुं=भोगनेकी नेच्छंति=इच्छा नहीं करते। अर्थात् अगन्धन सर्प भी त्यागे हुएको फिर ग्रहण नहीं करना चाहते ॥६॥

टीका-गन्धना-ऽगन्धनभेदेन भुजगा द्विविधास्तत्र गन्धनास्ते ये मन्त्रमयोगादिवशाद्दष्टप्रदेशे वान्तं विष पुनश्चूषन्ति, तद्भिन्ना अगन्धनास्तत्कुलमगन्धनं तस्मिन् कुले जाताः=समुत्पन्नाः सर्पा इति शेषः, ज्वलितं=प्रदीप्तं धूमकेतुं=धूमः केतु=श्चिह्नं यस्य तं धूमध्वजमित्यर्थः, अत एव दुरासदम्=दुःखेन आसद्यते=धातूनामनेकार्थत्वात् सह्यते संवेद्यते इति वाऽर्थस्तं दुष्प्रवेशमिति यावत्, ज्योतिषम्=अग्निम् प्रस्कन्दन्ति=प्रविशन्ति, किन्त्विति शेषः, वान्तम्=उद्गीर्णं सन्त्यक्तमितियावत्

इसी विषयको दृष्टान्तद्वारा स्पष्ट करते हैं- 'पक्खंदे०' इत्यादि।

साँप दो प्रकारके होते हैं-(१) गन्धन और (२) अगन्धन, गन्धन सर्प उन्हें कहते हैं जो मन्त्रादिके बलसे विवश होकर काटे हुए स्थानसे उगले विषको फिर चूस लेते हैं। अगन्धन इनसे विपरीत होते हैं। उस अगन्धन कुलमें उत्पन्न हुए साँप अगन्धन सर्प कहलाते हैं। वे सर्प

આ વિષયને દૃષ્ટાન્ત દ્વારા સ્પષ્ટ કરે છે—पक्खंदे० ઇત્યાદિ

સાપ બે પ્રકારના થાય છે (૧) ગંધન અને (૨) અગંધન ગંધન સર્પ એ કહેવાય છે કે જે મંત્રાદિના બળથી વિવશ થઈને ડંખેલા સ્થાનમાં નાખેલું ઝેર તેમાંથી પાછું ચૂસી લે છે અગંધન સર્પ તેથી વિપરીત-પ્રકારનો હોય છે એ અગંધન કુળમાં ઉત્પન્ન થએલો સાપ અગંધન સર્પ કહેવાય છે એ સર્પ

विषमितिशेषः भोक्तुं नेच्छन्ति=नाभिलषन्ति। तिर्यञ्चः सर्पा अपि वह्निप्रवेशापेक्षया दुःसहमनुचितं च वान्ताशनमेव मन्यन्ते। तस्मात् शिष्य! प्रवचनतत्त्वाभिज्ञेन त्वया निःसारतया परित्यक्तस्य विषयस्य पुनः स्वीकरणं न विधेयमिति भावः। मुर्मुरादिशान्तज्वालाग्निव्यवच्छेदार्थमाह-'जलियं' इति, अङ्गारोल्कादिव्यावृत्त्यर्थम् अग्नेर्वर्द्धिष्यमाणत्वद्योतनार्थं चाह-'धूमकेउं' इति, । तीव्रतमत्वबोधनार्थं 'दुरासयं' इति। अग्निपर्यायो ज्योतिः-शब्दः पुँल्लिङ्गः। 'जलिय' मित्यादिविशेषणत्रयेण 'यत्राग्नौ प्रवेशे सद्यो भस्मसाद् भवति तादृशेऽप्यगन्धनजाः सर्पाः प्रविशन्ति किन्तु परित्यक्तविषमापातुं नैव वाञ्छन्ति, एवं सत्पुरुषा अपि परित्यक्तान् विषयान् मरणान्तेऽपि न पुनः सेवितुमिच्छन्तीति बोध्यते, इति गाथार्थः॥६॥

असह्य और जलती अग्निमें प्रवेश कर जाते हैं, किन्तु त्यागे हुए विषको फिर नहीं चूसते।

हे शिष्य! जब तिर्यञ्च सर्प भी उगले हुएको निगलना नहीं चाहते तब तू तो प्रवचनमें प्रवीण है अत एव निःसार समझ कर त्यागे हुए विषयोंका सेवन तुझे तो भूलकर भी नहीं करना चाहिए।

अग्निके 'ज्वलित' आदि तीन विशेषण दिये हैं, उनका अभिप्राय यह है कि-जिस अग्निमें प्रवेश करतेही तत्काल भस्म हो जावे उस प्रकारकी अग्निमें भी अगन्धन कुलके सर्प प्रवेश करजाते हैं पर त्यागे हुए विषको ग्रहण नहीं करते। इसी प्रकार कुलीन पुरुषभी त्यागे हुए विषयोंको प्राणसंकटमेंभी ग्रहण नहीं करते। अर्थात् वे दुष्कर्म करके क्षणभर भी जीना नहीं चाहते ॥६॥

અસહ્ય અને બળતી આગમાં પ્રવેશ કરે છે પરન્તુ એકવાર મૂકેલા ઝેરને પાછું ચૂસી લેતા નથી

હે શિષ્ય! જ્યારે તિર્યંચ સર્પ પણ મૂકેલા ઝેરને પાછું ગળી જવા ઇચ્છતા નથી તો તું ત્યારે પ્રવચનમા પ્રવીણ છે, એટલે નિ.સાર સમજીને ત્યજેલા વિષયોનું સેવન તારે તો ભૂલે ચૂકે પણ ન કરવું જોઇએ

અગ્નિના 'જ્વલિત' આદિ ત્રણ વિશેષણો આપેલાં છે, તેનો હેતુ એ છે કે-જે અગ્નિમા પ્રવેશ કરતાં જ તત્કાળ ભસ્મ થઇ જવાય એ પ્રકારના અગ્નિમાં પણ અગંધન કુળનો સર્પ પ્રવેશ કરે છે, પરન્તુ ત્યજેલા વિષને ગ્રહણ કરતો નથી એ પ્રમાણે કુલીન પુરૂષો પણ ત્યજેલા વિષયોને પ્રાણસંકટમા પણ ગ્રહણ કરતા નથી અર્થાત તેઓ દુષ્કર્મ કરીને ક્ષણ ભર પણ જીવવા ઇચ્છતા નથી. (૬)

अरिष्टनेमौ भगवति प्रव्रजिते तत्कनिष्ठभ्राता रथनेमी राजीमतीं चकमे, सा तु कामवासनाविरक्ता कदाचन सुवासितसरसपायसं भुक्त्वा कस्मिंश्चित्कटोरके समुद्वम्य 'भुज्यता'-मित्युक्त्वा रथनेमये दत्तवती, रथनेमिना च 'कथमिदं वान्तं क्षत्रियवंशावतंसेन मया भोक्ष्यते' इत्युक्ता सा प्रोवाच-'तर्हि कथमरिष्टनेमिना त्वद्भ्रात्रा समुज्झिततया वान्ततुल्यां मामभिलष्यसि ? न च त्रपसे' इति, ततश्च तद्वचनश्रवणसञ्जातवैराग्योऽसौ प्राव्राजीत्।

जब बाईसवें तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनेमिने दीक्षा ग्रहण कर ली तब उनके छोटे भाई रथनेमिने राजीमतीकी इच्छा की, किन्तु सतीशिरोमणि राजीमती, कामकी वासनासे विरक्त हो चुकी थी। उसने एक रोज सुगन्धित तथा स्वादिष्ट खीर खाई और एक कटोरेमें वमन करके वह रथनेमिको देने लगी और बोली-लीजिये खीर खाइए। रथनेमि यह सुनकर आगबबूले (क्रुद्ध) हो गये और बोले-'मैं क्षत्रियोंके वंशका भूषण होकर वमन की हुई खीर कैसे खाऊंगा ?' राजीमतीजी कहने लगी-'अहो श्रेष्ठक्षत्रिय ! तुम वमन की हुई खीर नहीं खाते तो, अपने बड़ेभाई श्रीअरिष्टनेमिद्वारा वमन की हुई यानी त्यागी हुई मुझको क्यों चाहते हो ? मेरी इच्छा करते तुम्हें लज्जा नहीं आती ?, सती राजीमतीकी हृदयमें चुभनेवाली बात सुनतेही रथनेमिको संसारसे विरक्ति होगई। उन्होंने दीक्षा लेली। कुछ दिनोंके बाद राजीमतीने भी

જ્યારે બાવીસમા તીર્થંકર ભગવાન્ અરિષ્ટનેમિએ દીક્ષા ગ્રહણ કરી, ત્યારે તેમના નાના ભાઈ રથનેમિએ રાજીમતીની ઇચ્છા કરી, પરન્તુ સતીશિરોમણિ રાજીમતી કામની વાસનાથી વિરકત થઈ ચૂકી હતી તેણે એક દિવસ સુગંધિત અને સ્વાદિષ્ટ ખીર ખાધી અને એક વાડકામા તેનું વમન કરીને તે રથનેમિને આપવા લાગી અને બોલી: "લ્યો, ખીર ખાઓ !" રથનેમિ એ સાભળીને ક્રોધાવિષ્ટ થઈ ગયો અને બોલ્યો 'હું ક્ષત્રિયોના વંશનું ભૂષણ થઈને વમેલી ખીર કેમ ખાઈશ ?' રાજીમતી કહેવા લાગી 'અહો શ્રેષ્ઠ-ક્ષત્રિય ! તમે વમેલી ખીર નથી ખાતા, તો તમારા મોટાભાઈ શ્રીઅરિષ્ટનેમિએ વમેલી એટલે ત્યજેલી એવી મને કેમ ચાહો છો ? મારા માટેની ઈચ્છા કરતાં તમને શરમ નથી આવતી ?' હૃદયને ડંખે એવી સતી રાજીમતીની વાત સાભળતા જ રથનેમિને સંસારથી વિરક્તિ આવી ગઈ એમણે દીક્ષા લીધી કેટલાક દિવસ પછી રાજીમતીએ પણ

अथैकदा गृहीतप्रव्रज्या सा राजीमती साध्वीभिः परिवृता रैवतकपर्वतसमवसृतं भगवन्तमरिष्टनेमिं वन्दितुं व्रजन्ती मध्येमार्गं जलधरवृष्टबहलजलमुशलधारयाऽऽर्द्रगात्रैकाकिनी काकतालीयन्यायेन तदेव गिरिकन्दरमाससाद, यत्रासौ प्रव्रजितो रथनेमिरपि ततः पूर्वं गत्वा स्थित आसीत्, तमनवलोक्यैव 'विविक्तोऽयं प्रदेशः' इति विचार्याऽऽर्द्रवस्त्राणि प्रसारयामास। तदानीं तां यथाजातां (नग्नां) विलोक्य भग्नाऽभ्यन्तरङ्गोऽनङ्गोपहतचित्तवृत्तिर्निवृत्तिपथविच्युतो रथनेमिः पुना रथनेमिवद्भ्रान्तभावः समपद्यत। तं भूयो जातकाममालोक्य प्रकामकमनीयाकृति-

---

दीक्षा लेली। राजीमती, बहुतसी साध्वियोंके परिवारसे परिवृत होकर रैवतक पर्वतपर पधारे हुए भगवान् अरिष्टनेमिको वन्दना करने गई तब मार्गमें अचानक ही पानीकी मूसलधार वर्षा होने लगी, सारा शरीर और वस्त्र, पानीसे भीग गया। संयोगसे राजीमतीने भी उसी गुफामें प्रवेश किया जिसमें रथनेमि पहलेसे ही ठहरे हुए थे। जिस स्थानपर रथनेमि बैठे थे उधर दृष्टि न पड़नेके कारण वे दृष्टिगोचर न हुए। राजीमतीने एकान्त स्थान समझ कर भीगे कपड़े फैला दिये। राजीमतीको कपड़ेरहित देखकर रथनेमिका चित्त चलित होगया। उनके मन पर काम-विकारने आक्रमण कर लिया। वे संयम मार्गसे च्युत होगये। रथकी-नेमि (पहिये) की भाँति उनका चित्त घूमने लगा। रथनेमिको इस प्रकार कामातुर देखकर रतिसी रमणीय राजीमतीने जो

દીક્ષા લીધી રાજીમતી અનેક સાધ્વીઓના પરિવારથી વિંટાઇને રૈવતક પર્વત પર પધારેલા ભગવાન્ અરિષ્ટનેમિને વંદના કરવા ગઈ, ત્યારે માર્ગમા અચાનક મૂશળધાર વરસાદ વરસવા લાગ્યો. તેનું આખુ શરીર અને વસ્ત્રો પાણીથી ભીંજાઈ ગયા સંયોગવશ રાજીમતીએ એજ ગુફામાં પ્રવેશ કર્યો કે જે ગુફામા રથનેમિ પહેલેથી આવીને રહ્યા હતા જે સ્થાન પર રથનેમિ બેઠા હતા તે સ્થળ પર દૃષ્ટિ ન પડવાને લીધે તે રાજીમતીને દૃષ્ટિગોચર ન થયા તેથી તે એકાન્ત પ્રદેશ જાણીને પોતાના ભીંજાયલા લૂગડા ફેલાવી દીધા ત્યારે તે રાજીમતીને વસ્ત્ર-રહિત જોઇને રથનેમિનું ચિત્ત ચલિત થઇ ગયું એમના મન પર કામવિકારે આક્રમણ કર્યું તે સંયમમાર્ગથી ભ્રષ્ટ થઈ ગયા. રથની નેમિ (પૈડુ)ની પેઠે તેમનું ચિત્ત ભ્રમવા લાગ્યું. રથનેમિને એ પ્રમાણે કામાતુર જોઇને રતિ જેવી

रसौ राजीमती पुनर्यदुक्तवती तदेव तिसृभिर्गाथाभिः सूत्रकारो ब्रूते-'धिरत्थु०' इत्यादि ।

मूलम्-धिरत्थु ते जसोकामी, जो तं जीवियकारणा ।
वंतं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे ॥७॥

छाया-धिगस्तु त्वां (ते) यशःकामिन्, यस्त्वं जीवितकारणात् ।
वान्तमिच्छस्यापातुं, श्रेयस्ते मरणं भवेत् ॥७॥

रथनेमिके प्रति राजीमती कहती है—

सान्वयार्थः-जसोकामी=हे यशके अभिलाषी ते=तुझे धिरत्थु=धिक्कार हो, जो=जो तं=तूं जीवियकारणा=असंयमजीवन सुखके लिये वंतं=वमन किये -त्यागे हुएको आवेउं=पीना इच्छसि=चाहता है, (इससे तो) ते=तेरा मरणं= मरजाना सेयं=अच्छा भवे=है। अर्थात्-संयम धारण करके फिर असंयममें आना अत्यन्त निन्दनीय है, और उस असंयमकी अपेक्षा संयमी अवस्थामें मृत्यु होजाना अच्छा है ॥७॥ देख—

टीका-कामयते=वाञ्छति तच्छीलः कामी, यशसः=संयमस्य कीर्त्तर्वा कामी यशःकामी, तत्सम्बुद्धौ हे यशःकामिन्!, यद्वा अकारच्छेदाद् हे अयशःकामिन्=

कुछ कहा उसे सूत्रकार तीन गाथाओंसे कहते हैं- 'धिरत्थु०' इत्यादि ।

हे यशके अभिलाषी ? तुझे धिक्कार है, जो असंयम जीवनके सुखके लिए वमन किये हुएको खाना चाहता है, इस प्रकारके जीवनसे मर जाना ही अच्छा है।

हे यश अर्थात् संयम अथवा कीर्त्तिकी इच्छा करनेवाले! अथवा हे असंयम और अपयशके कामी! तुझे धिक्कार है, तू अत्यन्त निन्दाका

રમણીય રાજીમતીએ જે કાંઈ કહ્યુ તે વાત સૂત્રકાર ત્રણ ગાથાઓમાં કહે છે:— धिरत्थु० ઇત્યાદિ

હે યશના અભિલાષી! તને ધિક્કાર છે, જે અસંયમ જીવનના સુખને માટે વમેલાને ખાવા ઇચ્છે છે, એ પ્રકારના જીવનથી તો મરવું જ વધારે સારૂં છે યશ અર્થાત્ સંયમ અથવા કીર્તિની ઇચ્છા કરનારા!, અથવા હે અસયમ અને અપયશના કામી! તને ધિક્કાર છે, તુ અત્યંત નિંદાને પાત્ર છે. અથવા હે કામી!

हे असंयमापयशोऽर्थिन्! त्वां धिगस्तु, निन्द्योऽसि त्वमित्यर्थः 'ते' इति द्वितीयार्थे षष्ठी, यद्वा 'ते' इति षष्ठ्यन्तमेव, तत्र 'पौरुष'मित्यस्य शेषः, धिगित्यनेन सम्बन्धः, ते=तव पौरुषं धिगित्यर्थः। यद्वा हे कामिन्! ते=तव यशः='अहो धन्योऽयं तीव्रतपःसंयमव्रतपरिपालको महात्मे'-त्येवं लोकप्रतीतां कीर्त्तिम्, अथवा अयशः= मां दृष्ट्वैवं दुष्टचेष्टनरूपं पापं धिगस्त्वित्यर्थः, इति वयम्, यस्त्वं जीवितकारणात्= असंयमजीवितसुखार्थमिति भावः, वान्तं=भगवता परित्यक्तत्वाद्वान्तसदृशीं माम्, यद्वा संयमसेवित्वेन परित्यक्तस्य विषयस्यैवमभिलाषोदयाद्वान्ततुल्यं विषयम् आपातुम्=उपसर्गवशेन धात्वर्थभेदादुपभोक्तुम् इच्छसि=कामयसे, ते=तव मरणं= मृत्युः श्रेयः=प्रशस्यं श्रेष्ठं भवेत्, न पुनरित्थमनाचरणीयाऽऽचरणमिति गाथार्थः।७।

मूलम्-अहं[१] च[२] भोगरायस्स[४], तं[३] च[६] सि[५] अंधगवण्हिणो।
मा[९] कुले[७] गंधणा[८] होमो[१०], संजमं[१२] निहुओ[११] चर[१३] ॥ ८ ॥

छाया-अहं च भोगराजस्य, त्वं चासि अन्धकवृष्णेः।
मा कुले गन्धनौ भूव, संयमं निभृतश्चर ॥ ८ ॥

सान्वयार्थः-अहंच=मैं (राजीमती) भोगरायस्स=भोगकुलकी हूँ, च=और तं=तुम अंधगवण्हिणो=अंधकवृष्णिकुलके सि=हो, कुले=ऐसे उच्च कुलमें गंधणा=(दोनों) गन्धन मा=नहीं होमो=होवें। (अतः) निहुओ=निश्चल

पात्र है। अथवा हे कामी! जगतमें तुम्हारी इस प्रकारकी जो कीर्ति फैली हुई है कि "यह रथनेमि मुनि, अत्यन्त उत्कृष्ट संयमका पालन करने-वाला महात्मा है" इस कीर्त्तिको धिक्कार है, क्योंकि तुम असंयम रूप जीवितके लिए, भगवान् अरिष्टनेमिके द्वारा त्यागी हुई मुझको, अथवा संयम पालनके लिए त्यागे हुए विषयोंको फिर चाहते हो, तुम्हें मर जाना अच्छा है किन्तु असंयमकी वांछा करना अच्छा नहीं है ॥७॥

જગતમા તારી એ પ્રકારની જે કીર્તિ ફેલાઈ છે કે 'આ રથનેમિ મુનિ અત્યત ઉત્કૃષ્ટ સયમનું પાલન કરનારા મહાત્મા છે,' એ કીર્તિને ધિક્કાર છે, કેમ કે તમે અસયમરૂપ જીવિતને માટે, ભગવાન્ અરિષ્ટનેમિએ ત્યજેલી એવી મને, અથવા સયમપાલનને માટે ત્યજેલા વિષયોને પાછા ચાહો છો તમારે મરી જવું જ સારૂં છે, પરન્તુ અસયમની વાંછના કરવી સારી નથી (૭)

होकर संजमं=संयमको चर=पालो। भावार्थ-राजीमती रथनेमिसे कहती है कि हम दोनों उच्च कुलोंमें उत्पन्न हुए हैं, अतः उगले हुए विषको वापिस पीजानेवाले गन्धन सापोंके समान हमको नीच न होना चाहिए ॥ ८ ॥

टीका—'अहं च' इत्यादि। चद्वयं समुच्चयार्थम्, हे रथनेमे! अहं=राजीमती भोगराजस्य=तन्नाम्ना प्रसिद्धस्य अस्मीतिशेषः, अहं भोगराजस्य पौत्रीति भावः। त्वं च अन्धकवृष्णेः=तन्नाम्ना प्रसिद्धस्य असि, अन्धकवृष्णिपौत्रोऽसीत्यर्थः। ततः किं? तदाह-कुले=वंशेऽर्थान्निष्कलङ्के गन्धनौ=गन्धनकुलसम्भूतसर्पसदृशौ, 'आवा' मिति गम्यते; माभूव=नभवेव, तस्मात् निभृतः=निश्चलो विषयादिभिरक्षोभ्यः सन् संयमम्=अनश्वरसुखसाधनभूतं निरवद्यक्रियाऽनुष्ठानं चर=पालय। इति गाथार्थः८

मूलम्—जइ[१] तं[२] काहिसि[७] भावं[६], जा[३] जा दिच्छसि[५] नारिओ[४]।
वायाविद्धु[८] व्व[१०] हडो[९], अट्ठिअप्पा[११] भविस्ससि[१२] ॥ ९ ॥

छाया—यदि त्वं करिष्यसि भावं, या या द्रक्ष्यसि नारीः।
वाताविद्ध इव हडो,-ऽस्थितात्मा भविष्यसि ॥ ९ ॥

सान्वयार्थः-जइ=यदि तं=तुम जा जा=जो-जो नारिओ=स्त्रीको दिच्छसि=देखोगे (उन-उनपर) भावं=बुरे विचार काहिसि=करोगे तो वायाविद्धु व्व=

"'अहं च' इत्यादि। हे रथनेमि! मैं (राजीमती) भोगराजकी पोती और उग्रसेनकी बेटी हूँ, और तुम अन्धकवृष्णिके पौत्र तथा समुद्रविजयके पुत्र हो, इसलिए दोनोंही निर्मल कुलोंमें उत्पन्न हुए हैं। हमें गन्धन कुलमें उत्पन्न होने वाले सर्पोंके समान नहीं होना चाहिये। अतः विषय आदिको त्याग करके अनन्त सुखके कारणभूत निरतिचार संयमका पालन करो ॥८॥

अहं च ઈત્યાદિ. હે રથનેમિ! હું (રાજીમતી) ભોગરાજની પૌત્રી અને ઉગ્રસેનની પુત્રી છુ, અને તમે અંધકવૃષ્ણિના પૌત્ર તથા સમુદ્રવિજયના પુત્ર છો, એ રીતે આપણે બેઉ નિર્મળ કુલોમાં ઉત્પન્ન થયા છીએ આપણે ગંધન કુળમા ઉત્પન્ન થએલા સર્પોના જેવા ન થવુ જોઇએ માટે વિષય આદિને ત્યજીને અનંત સુખના કારણભૂત નિરતિચાર સંયમનું પાલન કરો (૮)

हवासे उडाये हुए हडो=हडवनस्पतिकी भांति अट्ठिअप्पा=अस्थिर आत्मावाले-चंचलचित्त भविस्ससि=हो जाओगे ॥ ९ ॥

टीका-'जइ तं०' इत्यादि । त्वं या या नारीः=स्त्रीः द्रक्ष्यसि=अवलोकिष्यसे यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात् 'तासु तासु' यदि भावं=कलुपिताध्यवसायतया दुष्टां दृष्टिं करिष्यसि तदा वाताविद्धः=वातेन=वायुना आविद्धः=प्रेरितः हडः=निर्मूलो वनस्पतिविशेष इव, शैवालमिव वा अस्थितात्मा=अस्थितः=अस्थिरः आत्मा यस्य स तथोक्तो भविष्यसि, जन्म-जरा-मरणजन्य-जगदटवीपर्यटनदुःखपरम्परा-निराकरणकारणेभ्यः संयमगुणेभ्यः प्रस्खल्याऽपारसंसारपारावारे विषयवासना-वातविकम्पितचेताः शान्तिं न गमिष्यसीति भावः, इति गाथार्थः ॥ ९ ॥

एवं राजीमत्या प्रतिबोधितो रथनेमिर्धर्मनिष्ठोऽभवदित्याह-'तीसे सो०' इत्यादि ।

२ १ ५ ६ ३ ४

मूलम्—तीसे सो वयणं सोच्चा, संजयाइ सुभासियं ।

१० ९ ११ ७ ८

अंकुसेण जहा नागो, धम्मे संपडिवाइओ ॥१०॥

'जइ तं' इत्यादि । यदि तुम जिस जिस स्त्रीको देखोगे उन सब पर विकारदृष्टि डालोगे तो आंधीसे उड़ाये हुए हड वनस्पति अथवा सेवालकी तरह अस्थिर हो जाओगे; अर्थात् जन्म-मरणसे होनेवाले जगत्‌रूपी अटवीमें भ्रमण करनेके कष्टोंको दूर करनेवाले संयमगुणोंसे च्युत होनेके कारण संसाररूप अपार समुद्रमें विषयवासनारूपी हवासे चंचलचित्त होकर भटकते फिरोगे ॥९॥

राजीमतीजीके द्वारा प्रतिबोध पाकर रथनेमि संयममें स्थिर होगया । इसी विषयको सूत्रकार प्रतिपादन करते हैं- 'तीसे०' इत्यादि ।

जइ तं० ઈત્યાદિ, જો તમે જે જે સ્ત્રીઓને જોશો તે બધી પર વિકારદૃષ્ટિ નાખશો તો આંધીથી ઉડેલી હડ વનસ્પતિ અથવા શેવાલની પેઠે અસ્થિર થઈ જશો, અર્થાત્ જન્મ-મરણથી ઉત્પન્ન થતા જગતરૂપી અટવીમાં ભ્રમણ કરવાના કષ્ટોને દૂર કરનારા સંયમગુણોથી ભ્રષ્ટ થવાને લીધે સંસારરૂપ અપાર સમુદ્રમાં વિષયવાસનારૂપી હવાથી ચંચળ ચિત્તવાળા થઈને ભ્રમણ કરતા ફરશો (૯)

રાજીમતીથી એવો પ્રતિબોધ પામીને રથનેમિ સંયમમાં સ્થિર થઈ ગયા એ વિષયનું પ્રતિપાદન સૂત્રકાર કરે છે-तीसे० ઈત્યાદિ

छाया-तस्याः स वचनं श्रुत्वा, संयतायाः सुभाषितम् ।
अंकुशेन यथा नागो, धर्मे सम्प्रतिपातितः ॥ १० ॥

सान्वयार्थः-सो=वह (रथनेमि) तीसे=उस संजयाइ=संयमवती (राजीमती) के सुभासियं=सुभाषित वयणं=वचनको सोच्चा=सुनकर धम्मे=धर्ममें संपडिवाइओ=आगया-प्राप्त होगया, जहा-जैसे अंकुसेण=अंकुशसे नागो=हाथी मार्गमें आ जाता है ॥ १० ॥

टीका-सः=रथनेमिः, संयतायाः=संयमवत्याः तस्याः=राजीमत्याः, सुभाषितमिति वैराग्यसारगर्भितत्वात् वचनं=सदुपदेशं, श्रुत्वा=समाकर्ण्य 'स्थितः' इति शेषः अन्यथा 'सम्प्रतिपातितः' इत्यनेन समानकर्तृकत्वाऽभावात् क्त्वाप्रत्ययोत्पत्तिरसङ्गता स्यात्, यद्वा 'सम्प्रतिपातित' इत्यस्य णिजर्थाऽविवक्षया 'सम्प्रतिपन्नः' इत्यर्थः कर्त्तव्यः । अङ्कुशेन=हस्तिचालनार्थ-लौहमयवक्राग्रास्त्रेण नागो यथा=हस्तीव, धर्मे=जिनोक्तप्रवचनरूपे, सम्प्रतिपातितः=संस्थापितः संस्थित इति वा, यथाऽङ्कुशेन प्रशमितमदो मतङ्गजोऽनुकूलं मार्गमवलम्बते तथा राजीमतीवचनेन दूरीकृतमदनमदो रथनेमिरपि जिनोक्तधर्ममार्गमवलम्बितवानिति भावः ॥१०॥

जैसे अंकुशसे हाथी ठीक मार्ग पर आजाता है वैसे ही रथनेमि संयमवती राजीमतीके वैराग्य-परिपूर्ण वचन (सदुपदेश) सुनकर जिनेन्द्र भगवानके प्रवचन-रूप धर्म-मार्गमें स्थित हो गये, अर्थात् जैसे महावतके अंकुशसे मदोन्मत्त हाथीका मद चकनाचूर हो जाता है और वह सन्मार्ग पर आजाता है, उसी प्रकार राजीमती-रूपी महावतके वचन-रूपी अंकुशसे रथनेमि-रूपी हाथीका विषयवासना-रूपी मद दूर होगया और वे जिनोक्त धर्ममार्गमें प्रवृत्त होगये ॥१०॥

જેમ અંકુશથી હાથી બરાબર માર્ગ પર આવી જાય છે, તેમજ રથનેમિ સંયમવતી રાજીમતીના વૈરાગ્યપૂર્ણ વચન (સદુપદેશ) સાંભળીને જિનેન્દ્ર ભગવાનના પ્રવચનરૂપ ધર્મમાર્ગમા સ્થિર બની ગયા અર્થાત્ જેમ મહાવતના અંકુશથી મદોન્મત્ત હાથીને મદ ચૂર્ણ થઈ જાય છે, અને તે રાહ પર આવી જાય છે, તેમ રાજીમતીરૂપી મહાવતનાં વચનરૂપી અંકુશથી રથનેમિરૂપી હાથીનો વિષયવાસનારૂપી મદ દૂર થઈ ગયો અને તે જિનોકત ધર્મમાર્ગમા પ્રવૃત્ત થઈ ગયા (૧૦)

सम्प्रत्युपसंहरन्नाह-'एवं करंति०' इत्यादि ।

४ ५ १ २ ३
मूलम्-एवं करंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा ॥
७ ६ ८ ९ १०
विणियट्टंति भोगेसु, जहा से पुरिसुत्तमो ॥११॥ त्तिबेमि॥

छाया-एवं कुर्वन्ति सम्बुद्धाः, पण्डिताः प्रविचक्षणाः ॥
विनिवर्त्तन्ते भोगेभ्यो, यथा स पुरुषोत्तमः ॥ ११ ॥ इति ब्रवीमि ॥

सान्वयार्थः-संबुद्धा=सत् असत् के विवेकी पंडिया=विषयदोषोंके ज्ञाता पवियक्खणा=आगमके मर्मज्ञ पुरुष एवं=ऐसा ही करंति=करते हैं, (वे) भोगेसु=भोगोंसे विणियट्टंति=निवृत्त होजाते हैं; जहा=जैसे से=वह पुरिसुत्तमो=पुरुषोंमें श्रेष्ठ (रथनेमि विषयोंसे निवृत्त हो गया) त्तिबेमि=(पूर्ववत्) । भावार्थ-जो विवेकी होते हैं वे विषयोंके दोषोंको जानकर उनका परित्याग कर देते हैं, जैसे रथनेमिने परित्याग कर दिया था ॥ ११ ॥

॥ इति द्वितीयाध्ययनस्य सान्वयार्थः ॥ २ ॥

टीका-सम्=सम्यग् बुद्धाः=बोधं प्राप्ताः हेयोपादेयज्ञानसम्पन्ना इत्यर्थः, सम्बुद्धत्वमेव विशेषयति-'पण्डिताः प्रविचक्षणाः' इति विशेषणाभ्याम् । तत्र पण्डिताः=विषयप्रवृत्तिदोषज्ञाः, प्रविचक्षणाः=विचक्षणश्रेष्ठाः आगममर्मवेदिनः प्राप्तचरणपरिणामा वेत्यर्थः, एवं=तथा कुर्वन्ति=समाचरन्ति । किं समाचरन्तीत्याह-'विणियट्टंति भोगेसु' इति, भोगेभ्यः=विषयेभ्यः विनिवर्त्तन्ते=उपरता भवन्ति, यथा सः=रथनेमिः, पुरुषोत्तमः=पुरुषेषु श्रेष्ठः ।

उपसंहार- 'एवं करंति०' इत्यादि ।

हेय और उपादेय वस्तुओंको सम्यक् प्रकार समझनेवाले संबुद्ध, विषयोंमें प्रवृत्तिके दोषोंके ज्ञाता, आगमके रहस्यको जाननेवाले अथवा चारित्रके फलको प्राप्त करनेवाले प्रविचक्षण मुनिजन ऐसे ही करते हैं,

---

ઉપસંહાર-एवं करंति० ઇત્યાદિ.

હેય અને ઉપાદેય વસ્તુઓને સમ્યક્ પ્રકારે સમજનારા સંબુદ્ધ, વિષયોમાં પ્રવૃત્તિના દોષોના જ્ઞાતા, આગમના રહસ્યને જાણનારા અથવા ચારિત્રના ફળને પ્રાપ્ત કરનારા પ્રવિચક્ષણ મુનિજનો એમ જ કરે છે, અર્થાત ભોગોથી નિવૃત્ત

ननु कथमसौ पुरुषोत्तमो यो गृहीतसंयमो भ्रातृजायामचीकमत? उच्यते-विचित्रा खलु कर्मणां गतिः, गृहीतसंयमस्यापि रथनेमेश्चेतसि विषयवासना मोहनीयकर्मोदयवशादुद्बुद्धा, परन्तु वैराग्यवारिधाराधरेण राजीमतीवचनेन यदा विषयवलयदावानलजनिततापकवलितो म्लानतामापन्नो रथनेमिचेतस्तरुः सेचितस्तदैव पुनरसौ संयमामृतरसास्वादनपरो विषवद्विषयविविधदोषाकलनेन

अर्थात् भोगोंसे निवृत्त होते हैं जैसे कि-पुरुषोंमें उत्तम रथनेमिने भोगोंकी निवृत्ति की।

प्रश्न-जिन्होंने संयम लेकर भी विषयवासनामें लीन होकर परम अनुचित जो कि गृहस्थभी नहीं करता ऐसी साक्षात् अपने-भाईकी भार्यापर कुदृष्टि करके भोगोंकी प्रार्थना की, विषयभोगोंकी इच्छामात्र भी करना चारित्रको मलिन करनेवाला और आत्माको दुर्गतिदाता है तो फिर भगवानने विषयानुरागी रथनेमिको पुरुषोंमें उत्तम कैसे कहा?

उत्तर-कर्मोंकी गति विचित्र होती है, मोहकर्मके उदयसे यद्यपि विषयभोगकी अभिलाषा हुई तो भी विषयरूपी दावानलसे उत्पन्न संतापसे संतप्त हो मुरझाया हुआ रथनेमिका चित्त-रूपी वृक्ष वैराग्य-रसकी वरसा करनेवाले राजीमतीजीके वचनरूपी मेघसे सींचे जाने पर शीघ्रही संयमरूप अमृतरसके आस्वादनमें तत्पर होगया। 'विषय परम कटुक फल देनेवाले और आत्माको चतुर्गतिमें परिभ्रमण करानेवाले हैं'

થાય છે, કે જેવી રીતે પુરૂષોમા ઉત્તમ રથનેમિએ ભોગોની નિવૃત્તિ કરી

પ્રશ્ન—જેમણે સયમ લઇને પણ વિષયવાસનામાં લીન થઇને પરમ અનુ-ચિત-કોઇ ગૃહસ્થ પણ ન કરે એવી, સાક્ષાત્ પોતાના ભાઇની ભાર્યા પર કુદૃષ્ટિ કરીને ભોગની પ્રાર્થના કરી, વિષયભોગોની ઇચ્છા-માત્ર પણ ચારિત્રને મલિન કરનારી અને આત્માને દુર્ગતિ દેનારી છે, તો પછી ભગવાને તેવા વિષયાનુરાગી રથનેમિને પુરૂષોમા ઉત્તમ કેવી રીતે કહ્યો ?

ઉત્તર—કર્મોની ગતિ વિચિત્ર હોય છે મોહકર્મના ઉદયથી જો કે વિષયભોગની અભિલાષા ઉત્પન્ન થઇ, તોપણ વિષયરૂપી દાવાનળથી ઉત્પન્ન થએલા સતાપથી સતપ્ત થઇને બેભાન બનેલા રથનેમિનું ચિત્તરૂપી વૃક્ષ, વૈરાગ્ય રસની વૃષ્ટિ કર-નારા રાજીમતીના વચનરૂપી મેઘથી સિંચિત થતા પછી, તુરતજ સયમરૂપી અમૃતરસનુ આસ્વાદન કરવામા તત્પર બની ગયુ 'વિષયો અત્યત કડવા ફળ દેનારા અને આત્માને ચતુર્ગતિમા પરિભ્રમણ કરાવનારા છે' એ પ્રકારની પરમ

शान्तिमुपगतः परमदुश्चरतपःसेवनपरायणो झटिति बभूवेति विषयसांनिध्येऽपि चित्तनिग्रहकारित्वेन झटिति विषयोपरतत्वेन च पुरुषोत्तमत्वं तस्य निर्बाधमेवेत्यलं पल्लवितेन ।

न चाधुनिकरथनेमेरुदाहरणोपलम्भादिदं दशवकालिकसूत्रमनित्यं स्यादिति वाच्यम्, पर्यायार्थिकनयमपेक्ष्याऽनित्यत्वेऽपि द्रव्यार्थिकनयापेक्षया नित्यत्वात् ।

इस प्रकारकी परम वैराग्यभावना द्वारा, एकान्त स्थानमें विषयका सान्निध्य रहनेपर भी इन्द्रिय निग्रह करके विषयोंको विषतुल्य समझ कर तत्काल त्याग दिया और उग्र तप-संयमको पालन किया, इसलिये भगवानने उन्हें पुरुषोंमें उत्तम कहा है ॥

प्रश्न–हे गुरो ! प्रवचन अनादि और नित्य है, क्योंकि आचारांग आदि बत्तीसों शास्त्र अनादिकालसे चले आते हैं, और यह दशवैकालिक सूत्र भी उन्हीं बत्तीसोंमें हैं तो आधुनिक रथनेमि और राजीमतीका उदाहरण आनेसे तो यह सादि और अनित्य सिद्ध होता है ।

उत्तर–हे शिष्य ! पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे प्रत्येक पदार्थ अनित्य है, इसी नयकी अपेक्षा दशवैकालिक भी अनित्य है, किन्तु द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे वह नित्य है । अर्थात् दशवैकालिकमें प्ररूपित मुनिका आचार सर्वज्ञोक्त है । सब सर्वज्ञोंका कथन एकहीसा होता है । जिस आचारका प्ररूपण चरम तीर्थंकर श्रीमहावीरस्वामीने

વૈરાગ્યભાવના દ્વારા એકાન્ત સ્થાનમા વિષયનું સાન્નિધ્ય હોવા છતા પણ ઈન્દ્રિય-નિગ્રહ કરીને વિષયોને વિષતુલ્ય સમજીને તત્કાળ ત્યજી દીધા અને ઉગ્ર તપ સંયમનું પાલન કર્યું, તેથી ભગવાને તેમને પુરૂષોમા ઉત્તમ કહ્યા છે

પ્રશ્ન—હે ગુરો ! પ્રવચન અનાદિ અને નિત્ય છે કારણ કે આચારાંગ આદિ બત્રીસે શાસ્ત્ર અનાદિકાળથી ચાલ્યાં આવે છે, અને આ દશવૈકાલિક સૂત્ર પણ એ બત્રીસમાનું જ છે, તો આધુનિક રથનેમિ અને રાજીમતીનું ઉદાહરણ આવવાથી તો એ સૂત્ર સાદિ અને અનિત્ય સિદ્ધ થાય છે

ઉત્તર—હે ! શિષ્ય પર્યાયાર્થિક નયની અપેક્ષાથી પ્રત્યેક પદાર્થ અનિત્ય છે એ નયની અપેક્ષાએ દશવૈકાલિક પણ અનિત્ય છે પરન્તુ દ્રવ્યાર્થિક નયની અપેક્ષાથી તે નિત્ય છે અર્થાત્ દશવૈકાલિકમાં પ્રરૂપેલો મુનિનો આચાર સર્વજ્ઞોક્ત છે બધા સર્વજ્ઞોનું કથન એકસરખું જ હોય છે જે આચારનું પ્રરૂપણ ચરમ તીર્થંકર શ્રી મહાવીર સ્વામીએ કર્યું છે તેની જ પ્રરૂપણા અનાદિ કાળથી બધા

'इति ब्रवीमि' इति पूर्ववत् ॥ इति गाथार्थः ॥ ११ ॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषा-कलित-ललित-
कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्ध-गद्य-पद्य-नैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-
श्रीशाहूछत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-जैनशास्त्राचार्य-पद-भूषित-
कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-
पूज्य-श्रीघासीलालव्रतिविरचितायां श्रीदशवैकालिकसूत्र-
स्याऽऽचारमणिमञ्जूषाख्यायां व्याख्यायां द्वितीयं
श्रामण्यपूर्वकाख्यमध्ययनं समाप्तम् ॥ २ ॥



किया है उसीकी प्ररूपणा अनादिकालसे सब सर्वज्ञ करते आये हैं अत एव द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे यह दशवैकालिक अनादि और नित्य है।११।

इति हिन्दीभाषानुवादमें श्रामण्यपूर्वकाख्य
द्वितीय अध्ययन समाप्त हुआ ॥२॥



સર્વજ્ઞો કરતા આવ્યા છે. એટલે દ્રવ્યાર્થિક નયની અપેક્ષાથી આ દશવૈકાલિક અનાદિ અને નિત્ય છે. (૧૧)

ઇતિ 'શ્રામણ્યપૂર્વક' નામના બીજા અધ્યયનનું
ગુજરાતી-ભાષાનુવાદ સમાપ્ત (૨)





॥ अथ तृतीयमध्ययनम् ॥

द्वितीयेऽध्ययने 'साधुना धृतिः सन्धारणीया' इत्युक्तं, सा चाऽऽचारे न त्वनाचारे इति, तस्मादस्मिन् 'क्षुल्लकाचारकथा'ऽऽख्ये तृतीयेऽध्ययनेऽनाचारस्वरूपनिरूपणपुरस्सरं साधूनामाचारः प्रदर्श्यते, तत्रेदमादिमं सूत्रम्–'संजमे०' इत्यादि।

मूलम्–संजमे[1] सुट्ठिअप्पाणं[2] विप्पमुक्काण[3] ताइणं[4] ।
तेसि[5]-मेय[8]-मणाइन्नं[9] निग्गंथाण[6] महेसि[7] ॥१॥

छायाः–संयमे सुस्थितात्मनां, विप्रमुक्तानां त्रायिणाम् ।
तेषामेतदनाचीर्णं निर्ग्रन्थानां महर्षीणाम् ॥ १ ॥

सान्वयार्थः–संजमे=संयममें सुट्ठिअप्पाणं=भलीभांति स्थिर आत्मावाले विप्पमुक्काण=शरीर आदिकी ममतासे रहित ताइणं=षट्कायजीवोंके रक्षक तेसिं=उन निग्गंथाण=परिग्रहरहित महेसिणं=महर्षियोंके एयं=यह आगे कहे-जानेवाले बावन अणाइन्नं=अनाचीर्ण हैं। अर्थात् महर्षियोंने इनका आचरण नहीं किया है अतः ये अनाचीर्ण–आचरण करने योग्य नहीं हैं ॥ १ ॥

तीसरा अध्ययन

दूसरे अध्ययनमें यह निरूपण किया गया है कि साधुको धीरता (दृढ़ता) धारण करना चाहिये, वह धीरता आचारमें होनी चाहिये अनाचारमें नहीं, इसलिए 'क्षुल्लकाचारकथा' नामक इस तीसरे अध्ययनमें अनाचारके निरूपणपूर्वक मुनिओंके आचारका निरूपण किया जाता है– 'संजमे सुट्ठि०' इत्यादि।

અધ્યયન ત્રીજું

બીજા અધ્યયનમા એ નિરૂપણુ કરવામાં આવ્યું હતું કે–સાધુએ ધીરતા (દઢતા) ધારણુ કરવી જોઇએ, એ ધીરતા આચારમા હોવી જોઇએ, અનાચારમા નહિ, તેથી 'ક્ષુલ્લકાચારકથા' નામક આ ત્રીજા અધ્યયનમા અનાચારના નિરૂપણુ-પૂર્વક મુનિઓના આચારનુ નિરૂપણુ કરવામા આવે છે—संजमे सुट्ठि० ઇત્યાદિ.

टीका—संयमे=पञ्चास्रवविरमणे-न्द्रियपञ्चकनिग्रह-कषायचतुष्टयजय-दण्डत्रय-विरतिलक्षणे, सुस्थितात्मनाम्=निश्चलात्मनाम् , तेषां=सुप्रसिद्धानां प्रसिद्धार्थकोऽत्र तच्छब्दः, विप्रमुक्तानां=विशिष्टरूपया परमार्थभावनया प्रकर्षेण शरीरादिममत्वतो मुक्ताः, यद्वा ' इमे विषयकषाया अनन्तभवभ्रमणदुःखसंभारपादपसेचकाः, एतेषां जननीजनकबान्धवादीनां ममत्वं भवबन्धननिबन्धनम् , एतं पृथिव्यादिषड्जीवनि-कायमनन्तवारान् ममात्मा सम्प्रविश्य नानादुःखमन्वभूत् , वस्तुतो नास्ति मम

संयममें भलीभाँति स्थित, संसारसे मुक्त, स्व-पर-उभयका त्राण (रक्षण) करनेवाले अर्थात् प्रत्येकबुद्ध–स्व-अपनी आत्माके त्राता; तीर्थंकर–परके त्राता और स्थविर–उभय (स्व-पर) के त्राता होते हैं इसलिए ये सब त्रायी कहलाते हैं, इन निर्ग्रन्थ महर्षियोंको ये (आगे बताये जानेवाले ५२ अनाचार) आचरण करने योग्य नहीं हैं।

पांच आस्रवोंसे विरमण, पाँचों इन्द्रियोंका निग्रह, क्रोधादि चार कषायोंको जीतने, तीन दण्डोंका त्याग करनेरूप संयममें दृढ आत्मा वाले, प्रसिद्ध, विशेष प्रकारकी परमार्थ भावना भाकर शरीर आदिकी ममतासे मुक्त, अथवा ये विषय-कषाय भवभ्रमणके दुःखरूपी वृक्षको सींचने वाले हैं, माता-पिता भाई-बन्द कुटुम्ब परिवार, इन सबकी ममता संसार-बंधनका कारण है, पृथ्वीकाय आदि छह जीवनिकायोंमें मेरी आत्मा अनन्तवार उत्पन्न होकर नाना प्रकारकी पीडाओंका अनुभव

સયમમાં સારી રીતે સ્થિત, સસારથી મુકત, સ્વ પર ઉભયનું ત્રાણુ (રક્ષણુ) કરનાર અર્થાત્ પ્રત્યેકબુદ્ધ—સ્વ-પોતાના આત્માના ત્રાતા, તીર્થંકર—પરના ત્રાતા, અને સ્થવિર—ઉભય-(સ્વ—પર)ના ત્રાતા હોય છે, તેથી એ સર્વ ત્રાયી કહેવાય છે એ નિર્ગ્રન્થ મહર્ષિઓને એ (આગળ બતાવવામા આવનારા બાવન અનાચાર) આચરવા યોગ્ય નથી

પાચ આસ્રવોથી વિરમણુ, પાંચે ઈન્દ્રિયોનો નિગ્રહ, ક્રોધાદિ ચાર કષાયોને જીતવા, ત્રણુ દડોનો ત્યાગ કરવારૂપ સયમમા દૃઢ આત્માવાળા, પ્રસિદ્ધ, વિશેષ પ્રકારની પરમાર્થ ભાવના ભાવીને શરીર આદિની મમતાથી મુકત, અથવા એ વિષય—કષાય ભવ—ભ્રમણુમા દુખરૂપી વૃક્ષને સીંચનારા છે, માતા—પિતા ભાઇ—બધ કુટુમ્બ પરિવાર એ સર્વની મમતા સસારબંધનનું કારણુ છે, પૃથ્વીકાય આદિ છ જીવનિકાયમાં મારો આત્મા અનતીવાર ઉત્પન્ન થઇને નાના પ્રકારની પીડા-

कोऽप्यात्मीय इति, रागादयश्च जीवमृगवागुरायमाणत्वान्महाशत्रव इत्यहो ! शत्रु-हस्तगतोऽहं स्वकीयाऽभ्युदयनिःश्रेयससाधनाक्षमः संजातोऽस्मि, धिङ्ग माम्। उक्तश्च—

"इह हि मधुरगीतं नृत्यमेतद्रसोऽयं,
स्फुरति परिमलोऽयं स्पर्श एषोऽङ्गनानाम् ।
इति हतपरमार्थै-रिन्द्रियैर्भ्राम्यमाणः,
स्वहितकरणधूर्त्तैः पञ्चभिर्वञ्चितोऽस्मि ॥१॥" इति,'

एवंविधविविधभावनाभिः सर्वथा रागादितो मुक्ताः विप्रमुक्तास्तेषाम्,

---

कर चुकी है, वास्तवमें संसारमें कोई भी मेरा नहीं है। यह रागादि दोष, जीवरूपी हरिणके लिए व्याधके समान होनेके कारण महान् शत्रु हैं। खेद है कि मैं उन वैरियोंके वशमें पड़कर अपने परम अभ्युदय-स्वरूप मोक्षके साधनमें भी असमर्थ होगया हूँ मुझे धिक्कार है। कहा भी है—

"कैसा कर्णमधुर गीत है, कैसा नेत्रोंको लुभानेवाला नृत्य है, कैसा जिह्वाका प्रिय स्वाद है, कैसा नासिकाको आकर्षित करनेवाला सुगन्ध है और स्त्री आदिका स्पर्श कैसा सुखकारी है। इस प्रकार अनुभव कराकर परमार्थका सत्यानाश करनेवाली अपना स्वार्थ साधनेमें धूर्त इन दगाबाज पांचों इन्द्रियोंने हाय ! मेरी आत्मिक-सम्पत्तिसे मुझे वंचित कर दिया—मुझको लूट लिया ॥१॥"

इस प्रकारकी भावनाओं द्वारा राग आदि शत्रुओंसे सर्वथा मुक्त

ઓનો અનુભવ કરી ચૂક્યો છે વાસ્તવમાં સંસારમા કોઈપણ મારૂં નથી, આ રાગાદિ દોષ જીવરૂપી હરણને માટે વ્યાધ (પારધી)ની સમાન હોવાને કારણે મહાન્ શત્રુ છે, ખેદની વાત છે કે હું એ વેરીઓને વશ પડીને પોતાના પરમ અભ્યુદય સ્વરૂપ મોક્ષના સાધનમા પણ અસમર્થ બની ગયો છું, મને ધિક્કાર છે. કહ્યુ છે કે—

"કેવું કર્ણમધુર ગીત છે, કેવું નેત્રોને લોભાવનારૂં નૃત્ય છે, કેવો જિહ્વાને પ્રિય સ્વાદ છે, કેવી નાકને આકર્ષિત કરનાર સુગંધ છે, અને સ્ત્રી આદિનો સ્પર્શ કેવો સુખકારી છે, એ પ્રમાણે અનુભવ કરાવીને પરમાર્થનું સત્યાનાશ વાળનારી પોતાનો સ્વાર્થ સાધવામા ધૂર્ત એ દગાબાજ પાંચે ઇંદ્રિયોએ, હાય ! મને મારી આત્મિક-સંપત્તિથી વંચિત કરી નાખ્યો—મને લુટી લીધો" (૧)

એ પ્રકારની ભાવનાઓ દ્વારા રાગાદિ શત્રુઓથી સર્વથા મુક્ત થનારા,

त्रायिणाम्=त्राणं=स्वस्य परस्योभयस्य च रक्षणं त्रायः, सोऽस्त्येषामिति त्रायिणः,[1] प्रत्येकबुद्धाः स्वस्य, तीर्थङ्कराः परस्य, स्थविरा उभयस्येतीमे सर्वे त्रायिण उच्यन्ते। निर्ग्रन्थानां=बाह्याऽऽभ्यन्तरपरिग्रहरूपाद् ग्रन्थान्निर्गताः निर्ग्रन्थास्तेषाम्। महर्षीणाम्=महान्तश्च ऋषय इति महर्षयस्तेषाम्, यद्वा 'महर्षिणाम्' इतिच्छाया, महः=जन्मजरामरणदुःखरहितत्वेनैकान्तोत्सवरूपो मोक्षस्तम् ऋषन्ति=गत्यर्थधातूनां प्राप्त्यर्थत्वात् प्राप्नुवन्तीत्येवंशीला महर्षिणस्तीर्थङ्करगणधरादयस्तेषाम्, एतत्=द्वापञ्चाशता भेदैर्वक्ष्यमाणम्, अनाचीर्णम्=अनासेवितम्, अस्तीति शेषः। अत्र महर्षिणामित्यन्तेषु कर्तुः शेषत्वविषया षष्ठी। यतः संयमे सुस्थितात्मानोऽत एव विप्रमुक्ताः, यतो विप्रमुक्ता अतस्त्रायिणः, यतस्त्रायिणोऽतो निर्ग्रन्थाः, यतो निर्ग्रन्था अतो महर्षयः, इति यथोत्तरं पूर्व-पूर्वस्य हेतुत्वेन भवति विशेषणसंगतिरिति बोद्धव्यम्।

१ अत्र 'अत इनिठना'–विति मत्वर्थीय इनिः, ताच्छील्यणिनिस्तु न, तस्य सुबन्तपूर्वपदकत्व एव प्रवृत्तेरिति वयम्॥

होनेवाले, संसारभ्रमणसे भयभीत भव्य जीवोंकी तथा आत्माकी रक्षा करनेवाले, बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहरूपी ग्रन्थिसे रहित, महान् ऋषि-तीर्थंकर आदि या जन्म-जरा-मरणके दुःखोंसे रहित होनेके कारण एकान्त आनन्दस्वरूप मोक्षको प्राप्त करनेवाले मुनियोंके, आगे कहेजाने वाले बावन अनाचार (अनाचीर्ण) हैं। अर्थात् ये बावन अनाचार मुनियोंके सेवने योग्य नहीं हैं। यहाँ षष्ठी विभक्तिवाले अनेक विशेषण दिये गये हैं, उन सबमें पहलेर के विशेषण कारण हैं और आगे आगे के कार्य हैं। जैसे–संयममें भली भाँति स्थित होनेके कारण विप्रमुक्त हैं,

સંસાર ભ્રમણુથી ભયભીત ભવ્ય જીવોની તથા આત્માની રક્ષા કરનારા, બાહ્ય અને આભ્યંતર પરિગ્રહરૂપી ગ્રંથિથી રહિત, મહાન્ ઋષિ તીર્થંકર આદિ, યા જન્મ-જરા-મરણુનાં દુઃખોથી રહિત હોવાને કારણે એકાંત આનંદસ્વરૂપ મોક્ષને પ્રાપ્ત કરનારા મુનિઓને માટે, આગળ કહેવામાં આવનારા બાવન અનાચાર (અનાચીર્ણ) છે અર્થાત્ એ બાવન અનાચાર મુનિઓને સેવવા યોગ્ય નથી અહીં છઠ્ઠી વિભકિતવાળા અનેક વિશેષણો આપવામાં આવ્યા છે, એ બધામા પહેલા–પહેલાના વિશેષણુ કારણુ છે અને પછી-પછીના કાર્ય છે. જેમકે–સયમમા સારી રીતે સ્થિત હોવાને કારણે વિપ્રમુકત છે, વિપ્રમુકત હોવાથી સ્વ-પરના ત્રાતા

नन्वेतावता 'यद्यन्महापुरुषैरनाचीर्णं तत्तदनाचरणीयं, यद्यत्त्वाचीर्णं तत्तदाचरणीयमेवेत्यायातं ततश्च तीर्थङ्करार्थं सुरसम्पादितैरष्टविधमहाप्रातिहार्यैस्तीर्थङ्करा युक्ता इति वयमप्यस्मदर्थं सम्पादितैः कथं न युक्ता भवेमेति चेद् ? भ्रान्तोऽसि, ते हि वीतरागत्वात् कल्पातीताः, वयं तु कल्पस्थिता इति, कल्पातीतानां तेषां जिनेश्वराणामष्टमहाप्रातिहार्याणि तीर्थङ्करगोत्रनामप्रकृत्युदयमहिम्ना प्रतिभासितानि भवन्ति, न तु तानि सुरैः संपाद्यन्ते, अत एव औपपातिकसूत्रे—

" आगासगएणं चक्केणं आगासगएणं छत्तेणं आगासियाहिं चामराहिं "

इत्यस्य व्याख्यायाम्—

विप्रमुक्त होनेसे स्व-पर के त्राता (रक्षक) हैं, त्राता होनेसे निर्ग्रन्थ हैं, निर्ग्रन्थ होनेसे महर्षि हैं।

शङ्का—इस गाथासे यह तात्पर्य निकला कि महापुरुषोंने जिस जिस का आचरण नहीं किया वह वह अनाचरणीय है, उन्होंने जिस जिसका आचरण किया वे सब आचरण करने योग्य हैं, यदि ऐसा ही है तो तीर्थङ्कर भगवान् देवनिर्मित आठ महाप्रातिहार्योंसे युक्त होते हैं इसलिए हम भी हमारे लिए बनाये हुए पदार्थोंसे युक्त क्यों न होवें?।

समाधान—हे वत्स! ऐसा नहीं है, क्यों कि वे वीतराग होनेसे कल्पातीत हैं, और हम कल्पस्थित हैं, इसलिए उन कल्पातीत जिनेश्वरों के तीर्थङ्करगोत्र-नाम-प्रकृतिके उदयकी महिमासे अष्ट महाप्रातिहार्य केवल भासित होते हैं किन्तु देवताओंसे समर्पित नहीं किये जाते, अत एव औपपातिक सूत्रके "आगासगएणं चक्केणं" इत्यादि पदोंकी

(રક્ષક) છે, ત્રાતા હોવાને કારણે નિર્ગ્રંથ છે, નિર્ગ્રંથ હોવાને લીધે મહર્ષિ છે

શંકા—આ ગાથામાંથી એ તાત્પર્ય નીકળ્યું કે-મહાપુરૂષોએ જેનું જેનું આચરણ નથી કર્યું છે તે અનાચરણીય છે, અને તેમણે જેનું જેનું આચરણ કર્યું તે બધું આચરણ કરવા યોગ્ય છે જો એમ છે તો તીર્થંકર ભગવાન્ દેવનિર્મિત આઠ મહાપ્રાતિહાર્યોથી યુક્ત હોય છે, તેમ આપણે પણ આપણા માટે બનાવેલા પદાર્થોથી યુક્ત કેમ ન થવું?

સમાધાન—હે વત્સ! એમ નથી, કારણ કે તે વીતરાગ હોવાથી કલ્પાતીત છે, અને આપણે કલ્પસ્થિત છીએ એ કલ્પાતીત જિનેશ્વરોનાં તીર્થંકર-ગોત્ર-નામ-પ્રકૃતિના ઉદયના મહિમાથી આઠ મહાપ્રાતિહાર્ય કેવળ ભાસિત થાય છે, પરન્તુ દેવતાઓ તરફથી સમર્પિત થતા નથી, એટલે ઓપપાતિક સૂત્રના आगासगएणं

"'आगासगएणं चक्केणं'-ति आकाशवर्त्तिना चक्रेण=धर्मचक्रेण, 'आगासगएणं छत्तेणं'-ति छत्रत्रयेण 'आगासियाहिं'-ति, आकाशम्=अम्बरम् इताभ्यां=प्राप्ताभ्याम् आकर्षिताभ्यां वा=आकृष्टाभ्यामुत्पाटिताभ्यामित्यर्थः, 'चामराहिं'-ति चामराभ्यां प्रकीर्णकाभ्यां प्राकृतत्वाच्च लिङ्गव्यत्ययः, 'लक्षितः इति सर्वत्र गम्यम्" इत्युक्तम् ।

अत्र 'लक्षितः' इत्युक्त्याऽन्यकृत इति स्पष्टं निराक्रियते, यथा—अर्द्धमागधभाषया प्रवृत्ताऽपि तीर्थङ्करवाग् समवसरणगतानां देवानां मनुष्याणां तिरश्चां च स्व-स्व-भाषानुरूपा प्रतिभाति किन्तु न सा तादृशी, तस्मादस्मादृशां तदसदृशां तदुक्तकल्प एव स्थातव्यं, न तु तथाऽनुकरणीयमिति दिक् इति गाथार्थः ॥ १ ॥

अनाचीर्णान्याह—'उद्देसियं०' इत्यादि,

व्याख्यामें कहा है—"आकाशस्थित चक्र, छत्र और चामरोंसे भगवान् लक्षित होते हैं"। यहाँ पर 'लक्षित' ऐसा कहनेसे साफ२ यह दिखलाया गया है कि—औरोंको छत्र चामरादिसे युक्त भगवान् लक्षित होते हैं किन्तु वे चक्र-छत्रादि अन्य-(देव)-कृत नहीं हैं। जैसे अर्द्धमागधी-भाषारूप भी तीर्थङ्कर की वाणी, समवसरणमें आये हुए देव मनुष्य तिर्यंचोंकी अपनी अपनी भाषाके स्वरूपमें ही प्रतीत होती है किन्तु वस्तुतः वह वैसी नहीं है, अत एव उन कल्पातीतोंकी तुलनामें नहीं पहुंचे हुए हम छद्मस्थोंको तो उनके कहे हुए कल्पमें ही रहना चाहिए, न कि उनका अनुकरण करना चाहिए ॥१॥

अब (५२)—अनाचीर्णोंको दिखलाते हैं—'उद्देसियं०' इत्यादि ।

चक्केणं ઇત્યાદિ પદોના વ્યાખ્યાનમાં કહ્યુ છે કે— "આકાશસ્થિત ચક્ર, છત્ર અને ચામરોથી ભગવાન્ લક્ષિત થાય છે" અહીં 'લક્ષિત' કહેવાથી એમ સાફ સાફ બતાવ્યુ છે કે—બીજાઓને છત્ર-ચામરાદિ-યુકત ભગવાન્ લક્ષિત થાય છે, પરંતુ તે ચક્ર—છત્રાદિ અન્ય (દેવ) કૃત નથી હોતાં જેમ અર્ધમાગધીભાષારૂપ પણ તીર્થંકરની વાણી સમવસરણમા આવેલા દેવ—મનુષ્ય—તિર્યંચોને પોતપોતાની ભાષાના સ્વરૂપમા જ પ્રતીત થાય છે, કિન્તુ વસ્તુત તે તેવી નથી હોતી એટલે એ કલ્પાતીતોની તુલનામા નહિ પહોચેલા આપણે છદ્મસ્થોએ તો એમણે કહેલા કલ્પમાં જ રહેવુ જોઇએ, નહિ કે તેમનું અનુકરણ કરવું જોઇએ. (૧)

હવે (૫૨)—અનાચીર્ણો દર્શાવે છે—उद्देसियं० ઇત્યાદિ

मूलम्—उद्देसियं¹ कीयगडं², नियाग³मभिहडाणि⁴ य ।
राइभत्ते⁵ सिणाणे⁶ य, गंध⁷मल्ले⁸ य वीयणे⁹ ॥२॥

छाया—औद्देशिकं क्रीतकृतं, नियागमभ्याहृतानि च ।
रात्रिभक्तं स्नानं च, गन्ध–माल्ये च वीजनम् ॥ २ ॥

सान्वयार्थः–(१) उद्देसियं=औद्देशिक–किसी एक साधुके लिए बनाया हुआ आहार (२) कीयगडं=साधुके लिए खरीदा हुआ आहार (३) नियागं=निमंत्रणसे ग्रहण किया हुआ आहार (४) अभिहडाणि=सामने लाकर दिया हुआ आहार (५) राइभत्ते=रात्रिभोजन (६) सिणाणे=स्नान य=और (७) गंध=चन्दनादिलेप (८) मल्ले=पुष्पादिमाला (९) वीयणे=पंखा ॥ २ ॥

टीका–औद्देशिकम्=उद्देशनमुद्देशस्तत्र भवं तत्प्रयोजनमस्येति वा औद्देशिकं-साध्वादिकमुद्दिश्य निष्पादितमित्यर्थः (१),

क्रीतकृतं=क्रीतेन=क्रयणेन कृतं=सम्पादितं साधुकृते मूल्येन गृहीतमिति यावत् (२),

---

(१) औद्देशिक, (२) क्रीतकृत, (३) नियाग, (४) अभ्याहृत, (५) रात्रिभोजन, (६) स्नान, (७) गन्ध, (८) माल्य, (९) पंखा चलाना ।

(१) साधु आदिके लिए जो आहार बनाया जाता है उसे औद्देशिक कहते हैं ।

(२) साधुके लिए मूल्य देकर जो आहारादि खरीद किया गया हो उसे क्रीतकृत कहते हैं ।

---

(१) ઔદ્દેશિક, (૨) ક્રીતકૃત, (૩) નિયાગ, (૪) અભ્યાહૃત, (૫) રાત્રિભોજન, (૬) સ્નાન, (૭) ગંધ, (૮) માલ્ય, (૯) પંખો ચલાવવો.

(૧) સાધુ આદિને માટે જે આહાર બનાવવામાં આવ્યો હોય તેને ઔદ્દેશિક કહે છે.

(૨) સાધુને માટે મૂલ્ય ખર્ચીને જે આહારાદિ ખરીદ કરવામાં આવેલ હોય તેને ક્રીતકૃત કહે છે.

नियागं-नि=निरतिशयो यागो निमन्त्रणादिरूपः संस्कारो यस्मिँस्तत्-आमन्त्रितपिण्डस्य कदाचिदपि ग्रहणम्, अनामन्त्रितस्य नित्यग्रहणमिति भावः (३),

अभ्याहृतानि=स्व-पर-ग्राम-गृहादिभेदभिन्नानि साधुनिमित्तं सम्मुखमानीय दत्तानि, बहुवचनं सर्वेषामेवाऽभ्याहृतानामनाचीर्णत्वख्यापनार्थम् (४),

रात्रिभक्तं=रात्रिभोजनं रात्र्यादिगृहीतं भक्तं वा (५), स्नानं=प्रसिद्धम् (६),

गन्धमाल्ये-गन्धः=चन्दन-केतकादिसौरभम् (७)-

माल्यं=पुष्पादिमाला, तयोरितरेतरयोग इति गन्ध-माल्ये (८),

---

(३) गृहस्थका निमन्त्रण पाकर कभी भी आहार लेना अथवा प्रतिदिन एक ही घरसे आहार लेना नियागपिण्ड है।

(४) अपने गाँवसे पर गाँवसे अथवा घरसे साधुके सामने लाया हुआ आहार अभ्याहृत पिण्ड है।

अभ्याहृतके लिए गाथामें बहुवचन आया है उसका यह अभिप्राय है कि जितनेभी अभ्याहृत (सामने लाये हुये) हैं वे सभी अनाचार हैं।

(५) रात्रिमें आहार लेना, दिनमें लेकर रात्रिमें खाना आदि रात्रि-भक्त है (६) देशतः सर्वतः स्नान करनेको स्नान-अनाचार कहते हैं।

(७-८) चन्दन केतक अतर आदिकी सुगन्ध तथा फूलमाला आदिका सेवन करना गन्ध-माल्य-अनाचार है।

---

(૩) ગૃહસ્થનું નિમંત્રણ મેળવીને કોઈવાર પણ આહાર લેવો અથવા પ્રતિ-દિન એકજ ઘરથી આહાર લેવો એ નિયાગપિંડ કહેવાય છે

(૪) પોતાના ગામથી, પરગામથી અથવા ઘરથી સાધુની સામે લાવવામાં આવેલો આહાર અભ્યાહૃત-પિંડ કહેવાય છે.

અભ્યાહૃતને માટે ગાથામાં બહુવચન આવ્યું છે તેનો એ હેતુ છે કે-જેટલા અભ્યાહૃત (સામે લાવેલા) હોય તે બધા અનાચાર છે

(૫) રાત્રે આહાર લેવો, દિનમાં લઈને રાત્રે ખાવો, ઈત્યાદિ રાત્રિ-ભક્ત કહેવાય છે (૬) દેશથી (થોડે ભાગે) સર્વથી (આખે શરીરે) સ્નાન કરવું એ સ્નાન-અનાચાર કહેવાય છે.

(૭-૮) ચંદન, કેવડો, અત્તર આદિની સુગંધ તથા ફૂલ માલા આદિનું સેવન કરવું એ ગંધ-માલ્ય-અનાચાર કહેવાય છે

तथा वीजनं=ग्रीष्मादिऋतौ तालवृन्तादिना वातादिसञ्चालनम् (९), अत्राऽऽरम्भादयो दोषा जायन्त इति स्वयमवगन्तव्यम्। औद्देशिकक्रीतकृतयोः स्वरूपं सप्रपञ्चं पञ्चमाध्ययने वक्ष्यते ॥ २ ॥

मूलम्—संनिही[10] गिहिमत्ते[11] य, रायपिंडे[12] किमिच्छए[13] ।
संवाहणा[14] दंतपहोयणा[15] य, संपुच्छणा[16] देहपलोयणा[17] य ॥३॥

(छाया)—संनिधि-गृहिमत्रं च, राजपिण्डः किमिच्छकः ।
संवाहनं दन्तप्रधावनं च, संप्रच्छनं देहप्रलोकनं च ॥३॥

सान्वयार्थः—(१०) संनिही=रात्रिमें आहार आदिका संचय (११) गिहिमत्ते=गृहस्थके पात्रमें भोजन करना य=और (१२) रायपिंडे=राजाके लिए बनाया हुआ आहार (१३) किमिच्छए=दानशाला या अन्नक्षेत्र आदिका आहार (१४) संवाहणा=शरीरकी मालिश करना (१५) दंतपहोयणा=दांत मांजना य=और (१६) संपुच्छणा=गृहस्थसे कुशलप्रश्न पूछना य=और (१७) देहपलोयणा=दर्पण या जलमें मुख आदि देखना ॥३॥

टीका—संनिधीयते=सम्यक्तया नितरां स्थाप्यते नरकादिष्वात्माऽनेनेति संनिधिः=संभवादत्र घृतादिसञ्चयकरणम् (१०),

---

(९) ग्रीष्मादि कालमें पंखा चलाना यह व्यजन-अनाचार है।
इनसे आरम्भ आदि दोष होते हैं सो स्वयं समझना चाहिये। औद्देशिक और क्रीतकृतका विस्तारपूर्वक विवेचन पांचवें अध्ययनमें किया जायगा ॥२॥

(१०) संनिधि-जिस अनाचारका सेवन करनेसे आत्मा नरकादि कुगतियोंमें गिरती है अर्थात् घृत औषध आदिका रात्रिमें वासी रखना संनिधि-अनाचार है।

---

(૯) ગ્રીષ્માદિ કાળમાં પંખો ચલાવવો એ વ્યજન—અનાચાર છે.
એથી આરંભ આદિ દોષ લાગે છે તે પોતેજ સમજવું જોઈએ ઔદ્દેશિક અને ક્રીતકૃતનું વિસ્તારપૂર્વક વિવેચન પાંચમા અધ્યયનમા કરવામા આવશે (૨)
(૧૦) સંનિધિ—જે અનાચારનું સેવન કરવાથી આત્મા નરકાદિ દુર્ગતિમા પડે છે, અર્થાત્ ઘી ઓસડ આદિ રાત્રે વાસી રાખવાં તે સંનિધિ—અનાચાર છે.

गृह्यमत्रं=गृहिणां=गृहस्थानाम् अमत्रं=पात्रं प्रसंगादत्र तस्मिन्नभ्यवहरणादि (११),
राजपिण्डः=राजार्थं निष्पन्नाऽऽहारः (१२),
किमिच्छकं='कः किमिच्छत्याहारादिक'-मित्येवं पृच्छ्यते यस्मिन् कर्मणि तत्, अन्नसत्र-(सदाव्रत)-शालादित आहारादिग्रहणमित्यर्थः (१३),
संवाहनम्=अस्थ्यादिसुखविशेषजनकं तैलादिना शरीरसंमर्दनम् (१४),
दन्तप्रधावनं=दन्तमार्जनम् (१५),
संप्रच्छनं=गृहस्थं प्रति कुशलादिरूपसावद्यप्रश्नकरणम् (१६),
देहप्रलोकनं=जलदर्पणादिषु मुखादिनिरीक्षणम् (१७),
चकाराः समुच्चयार्थाः । संनिध्यादिषु परिग्रहादयो दोषाः प्रतीताः ॥३॥

---

(११) गृह्यमत्र-गृहस्थके पात्रमें आहार आदि करना गृह्यमत्र है।
(१२) राजपिण्ड-राजाके लिए बनाया हुआ आहार लेना राजपिंड है।
(१३) किमिच्छक-जिसमें यह पूछा जाता है कि कौन क्या चाहता है? अर्थात् दानशाला (सदाव्रत) आदिसे आहार लेना किमिच्छक है।

(१४) संवाहन-अस्थि, मांस, त्वचा, रोमको आनन्ददायक चार प्रकारका मर्दन करना संवाहन है। (१५) दन्त-प्रधावन-दांत धोना।
(१६) संप्रच्छन-गृहस्थसे कुशल आदि रूप सावद्य प्रश्न पूछना।
(१८) देहप्रलोकन-जलमें अथवा दर्पण आदिमें अपना मुख आदि देखना। सन्निधि आदिमें परिग्रहादि दोष प्रसिद्ध हैं ॥३॥

---

(૧૧) ગૃહ્યમત્ર-ગૃહસ્થના પાત્રમા આહાર આદિ કરવો તે ગૃહ્યમત્ર કહેવાય છે
(૧૨) રાજપિંડ-રાજાને માટે બનાવેલો આહાર લેવો તે રાજપિંડ છે.
(૧૩) કિમિચ્છક-જેમા એ પૂછવામાં આવે છે કે કોને શુ જોઇએ છે? અર્થાત્ દાનશાલા (સદાવ્રત) આદિ પાસેથી આહાર લેવો તે કમિચ્છિક કહેવાય છે
(૧૪) સંવાહન-અસ્થિ, માંસ, ત્વચા, રોમને આનદદાયક ચાર પ્રકારનું મર્દન કરવું એ સવાહન છે (૧૫) દતપ્રધાવન-દાત ધોવા
(૧૬) સંપ્રચ્છન-ગૃહસ્થને કુશળ આદિ રૂપ સાવદ્ય પ્રશ્નો પૂછવા
(૧૭) દેહપ્રલોકન-જલમા અથવા દર્પણુ આદિમા પોતાનુ સુખ આદિ જોવાં, સન્નિધિ આદિમાં પરિગ્રહાદિ દોષ પ્રસિદ્ધ છે (૩)

मूलम्-अट्ठावए[१८] य नालीए, छत्तस्स[१९] य धारणट्ठाए।
तेगिच्छं[२०] पाहणा[२१] पाए, समारंभं[२२] च जोइणो ॥४॥

छाया—अष्टापदं नालिकया, छत्रस्य धारणार्थाय (धारणाऽष्ट्या)।
चैकित्स्यमुपानहौ पादयोः, समारम्भश्च ज्योतिषः ॥४॥

सान्वयार्थः—(१८) नालीए=जूएके उपकरण-साधनसे अट्ठावए=चौपड़ शतरञ्ज आदि खेलना, (१९) अट्ठाए=मुट्ठीसे छत्तस्स=छातेका धारणं=धारण करना (२०) तेगिच्छं=रोगकी चिकित्सा करना (२१) पाए पाहणा=पैरोंमें जूते चंपल मौजे आदि पहिनना च=और (२२) जोइणो=अग्निका समारंभं=आरंभ करना ॥४॥

टीका—च=तथा, नालिका=यथाऽभिमतपतनार्थं यया पाशाः पात्यन्ते सा=पाशपातनद्रव्यम् तया, उपलक्षणमेतत्-द्यूतोपकरणमात्रस्य, अष्टापदम्-अष्टौ अष्टौ पदानि=स्थानानि (गृहाणि) सर्वभागेषु यस्मिंस्तत्तथा वस्त्राऽऽधारस्थानम् , इह च लक्षणया द्यूतसामान्यम् (१८),

च=किञ्च छत्रस्य=आतपत्रस्य धारणार्थाय ग्रहणमिति शेषः ॥ यद्वा-'धारणा अट्ठाए' इतिच्छेदः, 'अट्ठा' इत्यस्य 'मुष्टि'-रित्यर्थः, [१]"चउहिं अट्ठाहिं लोयं करेइ'

१ 'चतसृभिरष्टाभिर्लोचं करोति' इतिच्छाया ॥

(१८) अष्टापद- 'नालीए' अर्थात् पासा फेंककर चौपड़, शतरंज आदि खेलना, अथवा अन्य प्रकारसे जुआ खेलना।

(१९) छत्रधारण करना। गाथामें 'धारणट्ठाए' ऐसा पद है उसे अलग अलग करनेसे 'धारणा अट्ठाए' होता है। यहाँ आट्ठा शब्दका अर्थ 'मुट्ठी' है। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिमें कहा है कि- 'चउहिं अट्ठाहिं लोयं करेइ'

(१७) અષ્ટાપદ-नालीए અર્થાત્- પાસા ફેંકીને ચોપડ, શતરંજ, આદિ ખેલવાં, અથવા અન્ય પ્રકારે જુગાર ખેલવો.

(૧૯) છત્ર ધારણ કરવું ગાથામા धारणट्ठाए એવું પદ છે, એને છૂટા પાડવાથી धारणा+अट्ठाए થાય છે અહીં અટ્ઠા શબ્દનો અર્થ 'મુઠી' છે જમ્બૂદ્વીપપ્રજ્ઞપ્તિમા કહ્યુ છે કે-चउहिं अट्ठाहिं लोयं करेइ અર્થાત્-ઋષભદેવ ભગવાને,

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्यादौ तथादर्शनात्, ततश्च 'अट्ठाए'=अष्टया=मुष्ट्या छत्रस्य धारणा=ग्रहणमित्यर्थः। न च छत्रादिधारणं मुष्ट्यादिनैव संभवतीति 'अट्ठाए' इत्यस्य 'मुखेन पठती'-इत्यादिषु मुखादिवद्वैयर्थ्यमिति शङ्कनीयम्, 'चक्षुर्भ्यां पश्यति, कर्णाभ्यां शृणोति, जिह्वया लेढि' इत्यादि-लोकोक्तिषु चक्षुरादीनामिव यथास्थितवस्तुप्रतिपादनमात्रतात्पर्येणाऽपौनरुक्त्यात्, अत्रैव गाथायामुत्तरार्द्धे 'पाहणा

अर्थात्-ऋषभदेव भगवान्ने चार मुट्ठी लोच किया। अतः 'धारणट्ठाए' का अर्थ 'मुट्ठीसे छत्रको ग्रहण करना' हुआ।

प्रश्न-छत्र तो मुट्ठीसे ही पकड़ा जाता है फिर 'अट्ठाए' की क्या आवश्यकता है? जैसे "मुखसे बोलता है" इस वाक्यमें 'मुखसे' इतना अंश व्यर्थ है, क्योंकि सिवाय मुखके और किसी अंगसे नहीं बोला जाता, इसी प्रकार यहां 'मुट्ठीसे' कहना भी वृथा है?

उत्तर-यह प्रश्न ठीक नहीं, क्योंकि लोकमें "आँखोंसे देखता है, कानोंसे सुनता है, जिह्वासे चखता है" इत्यादि वाक्योंमें 'आँखोंसे' 'कानोंसे', 'जिह्वासे' इन पदोंके बोलनेका अभिप्राय यथास्थित वस्तुका प्रतिपादन करना है, इस गाथाके उत्तरार्द्धमें 'पाहणा पाए' पद आया है इसका अर्थ है कि-पैरोंमें उपानह (जूता), उपानह यद्यपि पैरोंमें ही पहने जाते हैं हाथ या सिरमें नहीं पहने जाते फिरभी 'पाए' कहनेसे

ચાર મુઠી લોચ કર્યો. એટલે धारणट्ठाए નો અર્થ 'મુઠીથી છત્રને ગ્રહણ કરવું' એવો થયો.

પ્રશ્ન-છત્ર તો મુઠીથી જ પકડવામાં આવે છે, પછી अट्ठाए ની શી જરૂર રહે છે? જેમકે "મુખથી બોલે છે" એ વાકયમાં 'મુખથી' એટલો અંશ વ્યર્થ છે, કારણ કે મુખ વિના બીજા કોઈ અંગથી બોલી શકાતું નથી. તે જ રીતે ત્યાં 'મુઠીથી' એમ કહેવું એ પણ વૃથા છે.

ઉત્તર-એ પ્રશ્ન બરાબર નથી, કારણ કે લોકમાં 'આંખોથી જોવે છે,' 'કાનથી સાંભળે છે,' 'જીભથી ચાખે છે,' ઇત્યાદિ વાકયોમા 'આંખોથી,' 'કાનથી,' 'જીભથી' એ શબ્દો આપવાનો હેતુ યથાસ્થિત વસ્તુનું પ્રતિપાદન કરવાનો છે. આ ગાથાના ઉત્તરાર્ધમા पाहणा पाए પદ આપ્યું છે તેનો અર્થ છે- 'પગમા ઉપાનહ (જોડા), જો કે જોડા પગમાં જ પહેરવામાં આવે છે, હાથે કે માથે નહિ, તો પણ पाए કહેવાથી પુનરૂક્તિ થતી નથી, કારણ કે એ શબ્દથી

पाए' इत्यत्र 'पाए' इतिवदिति, उपलक्षणमेतच्छिरसि छायाकरणमात्रस्य (१९),

[1]चैकित्स्यं=चिकित्सा=व्याधिप्रतीकारः, कफपित्तादिवैगुण्यं, ग्रहादिवैगुण्यं च व्याधेर्निदानं तत्प्रशमनं तदुपायोपदेशादिनेत्यर्थः (२०),

पादयोः=चरणयोः, उपानहौ=चर्मपादुके, उपलक्षणमिदं काष्ठपादुकादीनामपि (२१),

च=किञ्च ज्योतिषः=वह्नेः समारम्भः=आरम्भकरणम् (२२),

दोषास्त्वत्राऽलीकत्वादयः स्वबुद्ध्याऽवगन्तव्याः, चकारा इहापि समुच्चयार्थाः ।४।

१–'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च (५।१।१२४) इत्यत्रत्यब्राह्मणादेराकृतिगणत्वात्स्वार्थे ष्यञ् तत आदिवृद्धिरालोपश्च, यत्तु 'चिकित्साया भावश्चैकित्स्य' मिति टीकान्तरकृतस्तद् व्याकरणाऽनवबोधमूलकमेव, भावप्रत्ययान्ताद्भावप्रत्ययस्याऽनुत्पत्तेः, 'चिकित्सायाः कर्म'-त्यर्थकल्पनमपि केषांचित्प्रामादिकमेव चिकित्साया रोगापनयनक्रियारूपायाः स्वत एव कर्मभूतत्वेन कर्मपर्यायत्वात्, ष्यञ्विधायकसूत्रे हि 'कर्म=क्रिये'-ति वैयाकरणाः ॥

पुनरुक्ति नहीं है, क्योंकि इस पदसे यथावस्थित वस्तुका प्रतिपादनमात्र किया गया है, इसलिए 'मुट्ठीसे छत्र धरना ऐसा कहना अयुक्त नहीं है।

(२०) चैकित्स्य–चिकित्सा करना, अर्थात् वैद्यक करना, या ग्रह आदिको मंत्र वगैरहसे शांत करना, या इस विषयका उपदेश देना।

(२१) उपानह (जूता) या मौजा आदि पहनना।

(२२) अग्निका आरम्भ करना,

इनसे भी असत्य आदि दोष समझना चाहिए, अर्थात् जूआ खेलनेसे असत्य, क्लेश, आर्तध्यान, परिग्रह आदि; छत्र धारण करनेसे सुकुमारता

યથાવસ્થિત વસ્તુનું પ્રતિપાદન માત્ર કરવામાં આવ્યું છે તેથી 'મુઠીથી છત્ર ધરવું' એમ કહેવુ એ અયુક્ત નથી

(૨૦) ચૈકિત્સ્ય–ચિકિત્સા કરવી અર્થાત્ વૈદું કરવું, અથવા ગ્રહાદિ ને મંત્ર વગેરેથી શાન્ત કરવા અથવા એ વિષયનો ઉપદેશ આપવો

(૨૧) ઉપાનહ (જોડા) અથવા મોજાં આદિ પહેરવાં

(૨૨) અગ્નિનો આરંભ કરવો. એથી પણ અસત્ય આદિ દોષ સમજવા જોઇએ

અર્થાત્–જુગાર ખેલવાથી અસત્ય, કલેશ, આર્તધ્યાન, પરિગ્રહ આદિ; છત્ર ધારણ કરવાથી સુકુમારતા; પરિષહને સહન કરવામાં અસામર્થ્ય આદિ અનેક

मूलम्—सिज्जायरपिंडं[२३] च, आसंदी[२४] पलियंकए[२५] ।
गिहंतरनिसिज्जा[२६] य, गायस्सुव्वट्टणाणि[२७] य ॥५॥

छाया—शय्यातरपिण्डश्च, आसन्दी पर्य(ल्य)ङ्ककः ।
गृहान्तरनिषद्या च, गात्रस्योद्वर्त्तनानि च ॥५॥

सान्वयार्थः—च=और (२३) सिज्जायरपिंडं=शय्यातरका आहार, (२४) आसंदी=कुर्सी या खाट (२५) पलियंकए=पलंग पालखी डोला आदि, (२६) गिहंतरनिसिज्जा=गृहस्थके घरमें बैठना, य=और (२७) गायस्स=शरीरका उव्वट्टणाणि=उबटन करना ॥५॥

टीका—शय्यतेऽस्यामिति शय्या=वसतिः, शय्ययाऽर्थात्तद्दानेन तरति संसार-सागरमिति शय्यातरः, यद्वा शय्या=प्रोक्तरीत्या वासस्थानम्, [१]आतरः=संसार-

१–'आतरस्तरपण्यं स्या'–दित्यमरः, 'उतराई' इति लोकप्रसिद्धम् ।

परिषहके सहनेमें असामर्थ्य आदि अनेक दोष; चिकित्सा करनेसे आरम्भ असत्य आदि दोष; उपानह पहननेसे द्वीन्द्रिय आदि जीवोंका उपमर्दन आदि, तथा अग्निकायका आरम्भ करनेसे छह कायका उपमर्दन आदि दोष होते हैं ॥ ४ ॥ ४ ॥ ४ ॥

(२३) शय्यातरका पिण्ड लेना ।

जिसमें शयन किया जाता है उसे शय्या या वसति कहते हैं। उस शय्याके दानसे संसार-समुद्रको तैरनेवाला शय्यातर कहलाता है। अथवा शय्या है संसाररूपी सागरसे पार होनेका आतर (शुल्क)

દોષ, ચિકિત્સા કરવાથી આરંભ, અસત્ય આદિ દોષ, જોડા પહેરવાથી દ્વીન્દ્રિય આદિ જીવોનું ઉપમર્દન આદિ, તથા અગ્નિકાયનો આરંભ કરવાથી છ કાયનું ઉપમર્દન આદિ દોષ લાગે છે (૪)

(૨૩) શય્યાતરનો પિંડ લેવો

જેમાં શયન કરવામાં આવે છે તેને શય્યા યા વસતિ કહે છે એ શય્યાના દાનથી સંસાર-સમુદ્રને તરનાર શય્યાતર કહેવાય છે અથવા શય્યા છે સંસાર-રૂપી સાગરથી પાર થવાનું આતર (શુલ્ક) જેનું, તેને શય્યાતર કહે છે, જેમ

पारावारोत्तरणशुल्कं यस्य स शय्यातरः। अत्र पक्षे यथा कश्चिन्नदी-पारं जिगमिषुर्नाविकाय नदीतरणशुल्कं दत्त्वा तत्पारं गच्छति तथा संसारसमुद्रपारं जिगमिषुर्गृहस्थस्तन्नाविकस्वरूपाय महापुरुषाय मुनये शय्या-(वसतिस्थान)-रूपमातरं (तरणशुल्कं) दत्त्वा तत्पारं व्रजतीति भावार्थोऽनुसन्धेयः। पक्षद्वयेऽपि साधुवासार्थमाज्ञादायक इति फलितम्, तस्य पिण्डः=आहारौषध्यादिः शय्यातरपिण्ड इति।

शय्यातरविचारः।

यद्यपि निवासार्थं साधवे स्वानुमतिप्रकाशको वसतिस्वामी शय्यातरशब्दस्यार्थः, तथापि तस्य तदैव शय्यातरत्वं भवति यदा तत्र वसतौ साधुर्भाण्डोपकरणानि स्थापयेत्, प्रतिक्रमणमाचरेत्, रात्रौ शयीत च। अत्रायं विवेकः-

---

जिसका उसे शय्यातर कहते हैं। जैसे कोई नदी पार करनेकी इच्छावाला बटोही (मार्गू) नाविकको नदी पार उतारनेका मूल्य देकर पार उतरता है उसीप्रकार संसाररूपी समुद्रके पार उतरनेकी इच्छावाला गृहस्थ नाविकके समान साधु महापुरुषोंको शय्या-(वसति-स्थान)रूपी उतराई (पार उतरनेका मूल्य) देकर संसारसागरसे पार उतरता है, यह अभिप्राय समझना चाहिए। दोनों पक्षोंका अर्थ एक ही है कि शय्यातर उसे कहते हैं, जो साधुको ठहरनेके लिए मकानकी आज्ञा देता है। उसके आहार औषध आदि पिण्डको शय्यातर-पिण्ड कहते हैं।

शय्यातर—विचार

साधुको ठहरनेके लिए अपनी अनुमति प्रगट करनेवाला उपाश्रयका स्वामी शय्यातर कहलाता है, तथापि वह इन अवस्थाओंमें शय्यातर होता है—

કોઇ નદી પાર કરવાની ઇચ્છા-વાળો ઊતારૂ નાવિકને નદી ઊતરવાનું ભાડું આપીને પાર ઊતરે છે, તેમ સંસાર-રૂપી સમુદ્રને પાર ઊતરવાની ઇચ્છા-વાળો ગૃહસ્થ, નાવિક-સમાન સાધુ-મહાપુરૂષોને શય્યા-(વસતિ-સ્થાન) રૂપી ભાડું (પાર ઊતરવા માટેનું મૂલ્ય) આપીને સંસાર-સાગરથી પાર ઊતરે છે, એવો અર્થ સમજવો જોઇએ બેઉ પક્ષોનો અર્થ એક જ છે કે શય્યાતર એને કહે છે કે જે સાધુને રહેવાને માટે મકાનની આજ્ઞા આપે છે, એના આહાર ઔષધ આદિ પિંડને શય્યાતર-પિંડ કહે છે.

શય્યાતર—વિચાર.

સાધુને રહેવાને માટે પોતાની અનુમતિ આપનાર ઉપાશ્રયનો સ્વામી શય્યાતર કહેવાય છે, તથાપિ તે આ અવસ્થાઓમાં શય્યાતર થાય છે:—

भाण्डोपकरणस्थापन-प्रतिक्रमणाचरण-शयनानां त्रयाणां प्रत्येकं शय्यातरत्वे हेतुत्वम्, तेन प्रतिक्रमणाचरण-शयनाभ्यां प्रागपि भाण्डोपकरणस्थापनानन्तरं वसतिस्वामिनः शय्यातरत्वम्, पूर्वगृहीतवसतौ स्थानसंकीर्णतायां सत्यां कियान् मुनिरन्य-साधुसकाशे स्वकीयभाण्डोपकरणानि निधाय अन्यस्मिन् समीपतरवर्त्तिन्युपाश्रये तत्स्वामिनिदेशमादाय प्रतिक्रमणं कुर्वीत तदा तत्र भाण्डोपकरणस्थापनाभावेऽपि तदीयस्वामिनः शय्यातरत्वम्। अन्यत्र प्रतिक्रमणं कृत्वा स्थानसंकीर्णतायां सत्यां

(१) साधु वसतिमें भाण्डोपकरण रख देवे।

(२) प्रतिक्रमण करे, और (३) रात्रिमें शयन करे।

(१) इन तीनोंमेंसे प्रत्येक क्रिया शय्यातर होनेमें कारण है। इसलिए प्रतिक्रमण और शयन करनेसे पहले भी भाण्डोपकरण रख देनेपर वसतिका स्वामी शय्यातर हो जाता है।

(२) पहले जिस वसतिको ग्रहण कर लिया हो उसमें स्थानकी संकीर्णता होनेपर कुछ साधु अपने भाण्डोपकरण अन्य साधुओंके समीप रखकर, पासके दूसरे उपाश्रयमें उसके स्वामीकी आज्ञा लेकर प्रतिक्रमण करें तो वहां भाण्डोपकरण न रखने पर भी जहां प्रतिक्रमण किया हो उस वसतिका स्वामी शय्यातर कहलाता है, इस वसतिका नहीं।

(३) दूसरे स्थानमें प्रतिक्रमण करके, स्थानकी संकीर्णता होने पर जहां

(१) સાધુ વસતિમા ભાડોપકરણ (પાત્ર વગેરે) રાખે (૨) પ્રતિક્રમણ કરે અને (૩) રાત્રે શયન કરે.

(૧) આ ત્રણેમાંની પ્રત્યેક ક્રિયા શય્યાતર થવામાં કારણ છે, તેથી પ્રતિક્રમણ અને શયન પૂર્વે પણ ભાડોપકરણ રાખી દે તો વસતિનો સ્વામી શય્યાતર થઇ જાય છે

(૨) પહેલા જે વસતિનુ ગ્રહણ કરી લીધું હોય, તેમા સ્થાનની સકીર્ણતા (સકડાશ) હોવાથી કોઇ સાધુ પોતાનાં ભાડાપકરણ બીજા સાધુઓની સમીપે રાખીને, પાસેના બીજા ઉપાશ્રયમા તેના સ્વામીની આજ્ઞા લઇને પ્રતિક્રમણ કરે તો ત્યાં ભાંડોપકરણ ન રાખવા છતાં પણ જ્યાં પ્રતિક્રમણ કર્યું હોય તે વસતિનો સ્વામી શય્યાતર કહેવાય છે, આ વસતિનો નહિ

(૩) બીજા સ્થાનમા પ્રતિક્રમણ કરીને સ્થાનની સંકડાશને કારણે જ્યાં

शयनमात्रं यत्राचरितं तत्स्वामिनोऽपि शय्यातरत्वम्। परन्त्वयं विशेषो बोद्धव्यः-

अन्यसाधुसविधे स्वकीयभाण्डोपकरणानि संस्थाप्याऽन्यत्र शयनप्रतिक्रमणाचरणे मूलोपाश्रयस्वामिनो न शय्यातरत्वम्, भाण्डादिस्थापने साधुसांनिध्यस्यैव निमित्तता न तु [1]तत्स्वामिनः, साधोरभावे भाण्डादिस्थापनस्य शास्त्राविहितत्वात्। शय्यातरत्वनिवृत्तिकरणाय तु पुनः पुनः शय्यातरपरिवर्तनं नाचरणीयम्। पुनः पुनः शय्यातरपरिवर्त्तनं हि साधोर्भिक्षालोभं प्रकाशयति, तत्र बहवो दोषा अपि चापतन्ति, तथाहि-शय्यातरपरिवर्त्तने पूर्वशय्यातरो विभावयति-अद्य मम गृहे

१-वसतिस्वामिनः।

सिर्फ शयन किया हो उस स्थानके स्वामीको भी शय्यातर कहते हैं अर्थात् उस अवस्थामें दोनों शय्यातर हैं।

विशेष यह है कि-दूसरे साधुओंके पास भाण्डोपकरण रखकर अन्य ही किसी स्थानपर प्रतिक्रमण और शयन करे तो जहां भाण्डोपकरण रक्खें हैं, उस स्थानका स्वामी शय्यातर नहीं कहलाता। क्योंकि भाण्डोपकरण साधुके नेसराय (अधीनता) में ही रखे जाते हैं, गृहस्थके नेसरायमें रखना शास्त्रविरुद्ध है।

शय्यातरत्वकी निवृत्ति करनेके लिए वारंवार शय्यातरका परिवर्तन नहीं करना चाहिए। ऐसा करनेसे यह प्रगट होता है कि साधु भिक्षाका लोभी है; इसमें बहुतसे दोष भी उत्पन्न होते हैं।

जैसे-शय्यातरका परिवर्तन करनेसे पहला शय्यातर इस प्रकार

માત્ર શયન કર્યું હોય તે સ્થાનના સ્વામીને પણ શય્યાતર કહે છે. અર્થાત્ એ સ્થિતિમાં બેઉ શય્યાતર છે

વિશેષ વાત એ છે કે-બીજા સાધુઓ પાસે ભાંડોપકરણ રાખીને બીજા જ કોઈ સ્થાન પર પ્રતિક્રમણ અને શયન કરે તો જ્યાં ભાંડોપકરણ રાખેલાં હોય, તે સ્થાનનો સ્વામી શય્યાતર નથી કહેવાતો, કેમકે ભાંડોપકરણ સાધુની નેસરાય (અધીનતા) મા જ રાખવામા આવે છે, ગૃહસ્થની નેસરાયમા રાખવાં એ શાસ્ત્રવિરૂદ્ધ છે.

શય્યાતરત્વની નિવૃત્તિ કરવાને માટે વાર વાર શય્યાતરનો પરિત્યાગ કરવો ન જોઈએ એમ કરવાથી એવુ પ્રકટ થાય છે કે સાધુ ભિક્ષાનો લોભી છે; એમાંથી અનેક દોષો પણ ઉત્પન્ન થાય છે

જેમ-શય્યાતરનું પરિવર્તન કરવાથી પહેલો શય્યાતર આ પ્રમાણે વિચારે છે-

त्यक्तमदीयोपाश्रयः साधुरसौ निश्चितमागमिष्यतीति तदर्थं सुरसमन्नादिकं साधनीयमिति कृत्वा निष्पादितस्यान्नपानादेराधाकर्मिकत्वापत्तिः । यदि तु स्वार्थं साधुनिमित्तं च निष्पादितं तदा मिश्रजातदोषापत्तिर्दुर्निवारैव । पूर्वं शय्यातरेण त्यक्तोपाश्रयाय साधवे कस्यचिद् वस्तुनः स्थापने स्थापनादोषः कथं साधुना वारणीयः । अन्ये दोषाः स्वयमूहनीयाः । तस्माद् झटिति शय्यातरपरिवर्त्तनं न साधुना विधेयम् ।

वसतियाचनाविधिः ।

अथोपाश्रयस्वामिनस्तदनुपस्थितौ तत्संरक्षकाद्वा वसतियाचनाविधिरभिधीयते-

---

सोचता है-आज मेरे उपाश्रयकी आज्ञा संतोंने छोड़ दी है, अतः मेरे यहाँ अवश्य आवेंगे, इसलिए उनके वास्ते स्वादिष्ट अन्न आदिक बनाना चाहिए, ऐसा विचार कर बनाया हुआ अन्नादिक आधाकर्मिक होगा। यदि पहला शय्यातर अपने और साधुके लिए इकट्ठा बनावेगा तो मिश्रजात दोष लगेगा । साधुके आनेकी संभावनासे वह किसी वस्तुको स्थापना करेगा तो स्थापना (ठवणा) दोष होगा । -इत्यादि अनेक दोष स्वयं समझ लेने चाहिये। इसलिए साधुको बारम्बार शय्यातर बदलना नहीं कल्पता है ।

उपाश्रय–याचनाकी विधि ।

वसति-स्वामीसे अथवा उसकी गैर–मौजूदगीमें उसके संरक्षकसे वसति-याचनाकी विधि कहते हैं—

આજ મારા ઉપાશ્રયની આજ્ઞા સંતોએ છોડી દીધી છે, એટલે મારે ત્યાં જરૂર આવશે; તેથી એમને માટે સ્વાદિષ્ટ અન્નાદિ બનાવવાં જોઇએ. એવો વિચાર કરીને બનાવેલું અન્નાદિ આધાકર્મી બનશે, જો પહેલો શય્યાતર પોતાના માટે અને સાધુને માટે એકઠું બનાવશે તો મિશ્રજાત દોષ લાગશે સાધુ આવવાની સંભાવનાથી તે કોઇ વસ્તુને સ્થાપન કરશે તો સ્થાપના–(ઠવણા)–દોષ લાગશે. –ઇત્યાદિ અનેક દોષો પોતાની મેળે સમજી લેવા. એ કારણથી સાધુને વારંવાર શય્યાતર બદલવા કલ્પતા નથી.

(ઉપાશ્રય–યાચનાની વિધિ)

વસતિના સ્વામી પાસે અથવા તેની ગેરહાજરીમાં એના સંરક્ષકની પાસે વસતિ–યાચના કરવાની વિધિ કહે છે:—

मुनिर्वदेत्-हे आयुष्मन् ! अस्यां वसतौ स्थातुमिच्छामि, यावति समये स्थातुमादेशो भवदीयो भवेत् तावानेव कालो यापनीयः, तत्रापि यावान् वसतिभूमिभागो ममावस्थानाय भवते रोचेत तावानेव ममापेक्षणीय इति ।

ततो गृहस्थः प्रतिब्रूयात्-भगवन् ! मुनीश्वर ! कियतः कालानवस्थास्यते ? तदा ऋतुबद्धशेषकाले सति साधुः "एकमासावधिकाले कल्प्ये यावदवसरं स्थास्यामि" इति; वर्षाकाले तु "चतुरो मासानत्र यापयिष्यामी"-ति वदेत् ।

सागारिकेण साधुकल्प्यकालमुपलक्ष्य-"एतावतः कालानत्राहं न स्थास्यामि ग्रामान्तरं गमिष्यामी"-ति कथने तु साधुरेवं कथयेत्-'अत्र भवदुपस्थितिसमया-

---

मुनि—हे आयुष्मन् ! हम इस वसतिमें ठहरना चाहते हैं। तुम जितने समय तक ठहरनेकी आज्ञा दोगे, उतने समयसे अधिक नहीं ठहरेंगे । उसमें भी तुम भूमि का जितना भाग हमें ठहरनेके लिए देना चाहो, उतनाही हमारे लिए पर्याप्त है।

गृहस्थ पूछे कि-हे मुनिराज ! आप कितने समय तक ठहरना चाहते हैं ?।

तब मुनि-ऋतुबद्ध शेषकाल हो तो 'एक मासके कल्पमें जब तक अवसर होगा तब तक रहेंगे' ऐसा, यदि चातुर्मास हो तो 'चार मास ठहरनेका हमारा कल्प है' ऐसा कहे। यदि साधुका कल्प-काल सुनकर गृहस्थ कहे कि-मैं तो थोड़ेही दिन यहाँ रहूँगा फिर ग्रामान्तर जाऊँगा, तो साधुको कहना चाहिए कि-"जब तक तुम यहाँ रहोगे तब तक ही

મુનિ-હે આયુષ્મન્ ! અમે આ વસતિ (મકાન-સ્થાન) માં રહેવા ઇચ્છીએ છીએ તમે જેટલા સમય સુધી રહેવાની આજ્ઞા આપશો, તેટલા સમયથી વધારે સમય રહીશુ નહિ તેમાં પણ તમે ભૂમિનો જેટલો ભાગ અમને રહેવાને માટે આપવા ઇચ્છો તેટલો જ અમારે માટે પર્યાપ્ત (પૂરતો) છે

ગૃહસ્થ-હે મુનિરાજ ! આપ કેટલા સમય સુધી રહેવા ઇચ્છો છો ?

ત્યારે મુનિ-ઋતુબદ્ધ શેષકાળ હોય તો-'એક માસના કલ્પમા જ્યા સુધી અવસર હશે ત્યા સુધી રહીશુ' એમ કહે, અથવા જો ચાતુર્માસ હોય તો-'ચાર માસ રહેવાનો અમારો કલ્પ છે' એમ કહે જો સાધુનો કલ્પકાળ સાંભળીને ગૃહસ્થ કહે કે 'હુ તો થોડા જ દિવસ અહીં રહીશ' તો સાધુએ કહેવું જોઇએ કે જ્યાં સુધી તમે અહીં રહેશો ત્યા સુધી જ અમે રહીશુ; તમે જશો

वधिरेव कालो मया क्षपणीयः, तदनन्तरमिमां वसतिं परिहास्यामीति। पुनः सागारिकेण–'कियन्तः साधवो भवन्तः?' इति पृष्टः साधुरभिदधीत–समुद्रतरङ्गवत् साधूनामियत्तावधारणं कः कुर्यात्, यतः कियन्तो गच्छन्ति, कियन्तश्चागच्छन्ति, ये चागमिष्यन्ति तेऽप्यत्रावस्थानं करिष्यन्ति। इत्थं सागारिकाज्ञामादाय तदीयनामगोत्रे विज्ञायोपाश्रये साधुस्तिष्ठेत्। गोचरीं गन्तुमुद्यतो भिक्षुः शय्यातरनामगोत्रे अविज्ञाय भिक्षार्थं न पर्यटेत्।

कल्प्याकल्प्यविधिः।

शय्यातरगृहे साधोरकल्प्यानि कथ्यन्ते, यथा—

हम ठहरेंगे, तुम्हारे जाने पर इस वसतिको छोड़ देंगे।"

यदि गृहस्थ पूछे कि–'आप कितने साधु हैं?' तो साधु उत्तर देवें कि–'समुद्रके तरङ्गोंकी तरह साधुओंकी मर्यादा नहीं है। क्योंकि कितने ही साधु आते हैं और कितनेही चले जाते हैं, जो आवेंगे वे भी यहीं ठहरेंगे।

इस प्रकार गृहस्थकी आज्ञा लेकर, उसका नाम और गोत्र जानकर साधुको ठहरना चाहिए। जबतक साधुको शय्यातरका नाम और गोत्र न मालूम हो जावे तब तक भिक्षाके लिए न जावे।

कल्प्याकल्प्य–विधि।

निम्नलिखित वस्तुएँ शय्यातरके घरकी कल्पनीय नहीं हैं–

त्यारे आ स्थानने अमे छोडी दईशुं'

जो गृहस्थ पूछे के 'आप केटला साधुओ छो?' तो साधु उत्तर आपे के–'समुद्रना तरंगोनी पेठे साधुओनी मर्यादा नथी, केमके केटलाय साधुओ आवे छे अने केटलाय चाल्या जाय छे, जेओ आवशे तेओ पण अहीं ज रहेशे."

ए प्रमाणे गृहस्थनी आज्ञा लईने, एनुं नाम अने गोत्र जाणीने साधुए रहेवुं जोईए ज्यां सुधी शय्यातरनुं नाम अने गोत्र साधुना जाणवामां न आवे त्यां सुधी भिक्षाने माटे जाय नहि

કલ્પ્યાકલ્પ્ય–વિધિ

નીચે લખેલી વસ્તુઓ શય્યાતરના ઘરની સાધુને કલ્પે નહિ–

(१) अशनम्, (२) पानम्, (३) खाद्यम्, (४) स्वाद्यम्, (५) वस्त्रम्, (६) पात्रम्, (७) कम्बलः, (८) रजोहरणम्, (९) दोरकम्, (१०) सूची, (११) कर्त्तरी,(१२) छुरिका, (१३) नखहरणी, (१४) कर्णशोधनी (कानखुचरनी), (१५) दन्तशोधनी (दांतखुचरनी), (१६) कण्टकोद्धारणी (कांटाकाढ़नी-चींपिया) (१७) कण्टकः कण्टकोद्धारणीपात्रञ्च (कण्टककुत्थलिका), (१८) औषधम्, (१९) भैषज्यम्, (२०) शतपाकसहस्रपाकादितैलम्, (२१) पात्ररञ्जनद्रव्यम् (रोगान सपेदा आदि), (२२) पात्रादौ रन्ध्रकरणाद्युपयोगी शस्त्रविशेषः (सियार, रेती, इत्यादि), (२३) करगलम्, (२४) लेखनी, (२५) मसी, (२६) मसीपात्रम्, (२७) हिङ्गुलम्, (२८) खटिका, (खड़ी), इत्यादीनि।

अथ शय्यातरगृहे साधोरुपादेयानि (कल्प्यानि) निर्दिश्यन्ते-

---

(१) अशन, (२) पान, (३) खाद्य, (४) स्वाद्य, (५) वस्त्र, (६) पात्र, (७) कम्बल, (८) रजोहरण, (९) डोरा, (१०) सुई, (११) कैंची, (१२) चाकू, (१३) नखहरणी (नहरनी), (१४) कर्णशोधनी (कानकुचरनी), (१५) दन्तशोधनी (दांतकुचरनी), (१६) चींपिया, (१७) कांटे और कांटोंकी कोथली, (१८) औषध, (१९) भेषज, (२०) शतपाक-सहस्रपाक आदि तेल (२१) पात्र रंगनेके लिए रोगन, सुपेता आदि, (२२) पात्रमें छेद आदि करनेके काममें आनेवाले स्यार, रेती आदि ओजार, (२३) कागज, (२४) लेखनी, (२५) स्याही, (२६) हिंगलु, (२७) खड़ी इत्यादि।

निम्नलिखित वस्तुएँ शय्यातरके घरसे साधुको कल्पनीय हैं-

---

(૧) અશન, (૨) પાન, (૩) ખાદ્ય, (૪) સ્વાદ્ય, (૫) વસ્ત્ર, (૬) પાત્ર, (૭) કાંબળી (૮) રજોહરણ, (૯) દોરો, (૧૦) સોય, (૧૧) કાતર, (૧૨) ચપ્પુ, (૧૩) નખ ઉતારવાની નેરણી, (૧૪) કાન-ખોતરણી, (૧૫) દાત-ખોતરણી, (૧૬) ચીપીયો, (૧૭) કાંટો અથવા કાટાની કોથળી, (૧૮) ઓસડ, (૧૯) ભેષજ, (૨૦) શતપાક-સહસ્રપાક આદિ તેલ, (૨૧) પાત્ર રંગવા માટેનો રોગાન સફેતો વગેરે, (૨૨) પાત્રમાં છિદ્ર આદિ કરવાના કામમા આવવાના સારડી, રેતી વગેરે ઓજાર, (૨૩) કાગળ, (૨૪) લેખણ, (૨૫) શાહી, (૨૬) હીંગળો, (૨૭) ખડી, ઈત્યાદિ

નીચે લખેલી વસ્તુઓ શય્યાતરના ઘરની સાધુને કલ્પે—

(१) तृणम्, (२) लोष्टम्, (३) शिलापट्टकः (पेषणी), (४) शिलापुत्रकः, (५) भस्म, (६) पाषाणखण्डम्, (७) इष्टका, (८) धूलिः, (९) पीठम्, (१०) फलकम् (आसनविशेषः), (११) शय्या (शरीरप्रमाणा), (१२) संस्तारकम् (सार्द्धद्वयहस्तप्रमाण आसनविशेषः), (१३) गोमयम्, (१४) सोपधिकशिष्यः, (१५) स्वाध्यायाद्यर्थं प्रातिहारिकं (पडिहारी) पुस्तकम्, इत्यादीनि। इदमप्यनुसन्धेयम्— यस्योपाश्रयस्य स्वामिने निवासशुल्कं दत्त्वा गृहस्थो निवासार्थं साधुं निमन्त्रयेत् स उपाश्रयः साधोरकल्प्य इति। उपाश्रयस्यानेकस्वामिनि सति कश्चिदेक एव शय्यातरत्वेन स्थापनीयः, न तु सर्वेऽपि।

एतादृशशय्यातरस्य पिण्डे चत्वारो भङ्गा भवन्ति, यथा—

(१) एकत्र रन्धनम्, एकत्र भोजनम्,

तिनका, (२) पत्थर, (३) शिला, (४) लोढ़ी, (५) राख, (६) पत्थरका-टुकड़ा, (७) ईंट, (८) धूल, (९) छोटा बाजौट, (१०) फलक (आसन), (११) शय्या (शरीरप्रमाण), (१२) संस्तारक (ढाइ हाथका आसन), (१३) गोबर, (१४) उपधि-सहित शिष्य, (१५) स्वाध्याय आदिके लिए पडिहारी (वापस दी जानेवाली) पुस्तक आदि।

यह भी स्मरण रखना चाहिए कि-जिस उपाश्रयको भाड़ेपर साधुके लिए खरीदा हो वह उपाश्रय साधुको कल्पनीय नहीं है।

उपाश्रयके अनेक स्वामी हों तो उनमेंसे एक शय्यातर होता है। ऐसे शय्यातरके पिण्डमें चार भंग होते हैं। वे इस प्रकार—

(१) उसी घरमें बनाना उसी घरमें जीमना।

---

(१) तणुखलु, (२) पत्थर, (३) शिला, (४) लोढी, (५) राख, (६) पत्थरनो टुकडो, (७) ईंट, (८) धूळ, (९) नानो बाजठ, (१०) फलक (आसन), (११) शय्या (शरीरप्रमाणनी), (१२) संस्तारक (अढी हाथनुं आसन), (१३) छाणु, (१४) उपधि सहित शिष्य, (१५) स्वाध्याय आदिने माटे पडिहारी (पाछी आपी देवाय तेवी) पुस्तक आदि

એ પણ યાદ રાખવું જોઇએ કે જે ઉપાશ્રય સાધુને માટે ભાડે રાખ્યો હોય તે ઉપાશ્રય સાધુને કલ્પે નહિ

ઉપાશ્રયના અનેક સ્વામીઓ હોય તો તેમાથી એક શય્યાતર થાય છે. એવા શય્યાતરના પિંડમાં ચાર ભાંગા હોય છે, તે આ પ્રમાણે–(૧) એજ ઘરમાં

(२) एकत्र रन्धनम्, अन्यत्र गेहादौ भोजनम्।

(३) पृथक्-पृथग् रन्धनम्, एकत्र भोजनम्।

(४) पृथक् पृथग् रन्धनम्, पृथक्-पृथग् भोजनम्।

तत्र द्वितीयचतुर्थभङ्गौ साधोः कल्प्यौ। द्वितीयभङ्गे एकत्र रन्धनेऽपि पश्चात् शय्यातरेतरांशस्य पृथक्कारे शय्यातरमात्रांशं विहायाऽन्येषां पिण्ड उपादेयः, तत्र तदानीं शय्यातरस्वत्वापगमात्। चतुर्थकल्पे तु पिण्डे शय्यातरांशलेशसंसर्गशङ्कापि नास्ति। शय्यातरस्वत्वापगम एवोपादेयताहेतुरिति निष्कर्षः।

एवं प्रोषितभर्तृकासु अनेकासु सपत्नीष्वेकैव काचित् शय्यातरा कर्तव्या।

---

(२) उसी घरमें बनाना दूसरे-दूसरे घरमें जीमना।

(३) दूसरे-दूसरे घरमें बनाना उसी घरमें जीमना।

(४) दूसरे-दूसरे घरमें बनाना और दूसरे-दूसरे घरमें जीमना।

इन चार भंगोंमेंसे दूसरा और चौथा भंग साधुको कल्पनीय है। दूसरे भंगमें एकत्र रन्धन होने पर भी शय्यातरसे भिन्न मनुष्यके अंशके अलग होजाने पर शय्यातरका भाग छोड़कर अन्यका पिण्ड कल्पनीय है, क्योंकि वहाँ शय्यातरका स्वामित्व नहीं रहता।

चौथे भंगमें तो शय्यातरके स्वत्वके संसर्गकी तनिक भी आशंका नहीं है। तात्पर्य यह है कि जहां शय्यातरका स्वत्व (हक) नहीं रहता वही वस्तु साधुको ग्राह्य होती है।

इसी प्रकार यदि एक शय्यातरकी अनेक पत्नियाँ हों और वह

ભોજન બનાવવું અને એજ ઘરમા જમવું (૨) એ ઘરમાં ભોજન બનાવવું અને બીજા ઘરમાં જમવું (૩) બીજા-બીજા ઘરમાં બનાવવું અને એ ઘરમાં જમવું. (૪) બીજા-બીજા ઘરમાં બનાવવું અને બીજા-બીજા ઘરમાં જમવું

આ ચાર ભાગોમાંથી બીજા અને ચોથા ભાંગો સાધુને કલ્પે છે બીજા ભાંગામાં એકત્ર રસોઈ થતી હોય તો પણ શય્યાતરથી ભિન્ન મનુષ્યોનો ભાગ જૂદો થઈ જતાં શય્યાતરનો ભાગ છોડીને અન્યનો પિંડ કલ્પે છે, કારણ કે ત્યા શય્યાતરનું સ્વામિત્વ રહેતું નથી

ચોથા ભાંગામાં તો શય્યાતરના સ્વત્વના સંસર્ગની જરા પણ આશંકા નથી. તાત્પર્ય એ છે કે જેમા શય્યાતરનુ સ્વત્વ રહેતુ નથી; તે વસ્તુ સાધુને માટે ગ્રાહ્ય બને છે

એજ રીતે જો એક શય્યાતરની અનેક પત્નીઓ હોય અને એ (શય્યાતર)

चत्वारो भङ्गा अत्राऽपि पूर्ववदेव ।

अप्रोषितभर्तृकासु तु यया निष्पादितमन्नादिकं नियतं शय्यातरो भुङ्क्ते सैव शय्यातरा, यद्यनियतं भुङ्क्ते तदा सर्वा अपि शय्यातरा मन्तव्याः, पूर्वोक्त-तृतीयभङ्गेऽयं विशेषो बोद्धव्यः–यदा पृथक् पृथग् रन्धनं कृतम् , एकत्र कृत्वा भुक्तं च तदाऽवशिष्टमन्नादिकं विभज्य यदि स्व-स्वगृहं नयेत् तादृशं शय्यातरस्वत्व-विरहितमन्नादिकं साधोः कल्प्यमेवेति । एकत्रीकृतमविभक्तं चेन्न कल्प्यमिति तदाशयः ।

(शय्यातर) परदेश चला गया हो तो उनमें किसी एकको ही शय्यातर बनाना चाहिए । पहलेकी नांई यहां भी चार भंग समझना चाहिए। उनका पति परदेश न गया हो तो वह जिस पत्नीके यहां नियमित रूपसे जीमता हो वही शय्यातर होती है ।

यदि नियमित रूपसे न जीमता हो-कभी कहीं कभी कहीं जीमता हो तो सभीको शय्यातर मानना चाहिए ।

पहलेके चार भंगोंमेंसे तीसरे भंगमें इतना विशेष समझना चाहिए-यदि अलग अलग भोजन बनाया गया हो और एकत्र करके जीमा हो तो बचे हुए अन्न आदिको बाँट लेने पर साधु शय्यातरसे अन्यका आहार आदि ले सकते हैं, क्योंकि उसमेंसे शय्यातरका हिस्सा अलग निकल चुका है । हां इकट्ठा कर लिया हो और बांटा न हो तो साधुको कल्प-

---

પરદેશ ચાલ્યો ગયો હોય તો તે પત્નીઓમાંથી કોઇ એકને જ શય્યાતર બનાવવી જોઇએ પહેલાંની પેઠે એમાં પણ ચાર ભાગા સમજવા જોઇએ એનો પતિ પરદેશ ન ગયો હોય તો તે જે પત્નીને ત્યા નિયમિત રીતે જ જમતો હોય તે શય્યાતર બને છે જો નિયમિત રીતે ન જમતો હોય અને કોઇવાર એકને ત્યાં અને કોઇવાર બીજીને ત્યાં જમતો હોય તો બધી પત્નીઓને શય્યાતર માનવી જોઇએ

પહેલાના ચાર ભાગામાના ત્રીજા ભાંગામા એટલું વિશેષ સમજવું કે–જો જુદુ જુદુ ભોજન બનાવ્યુ હોય અને એકત્ર કરીને જમતા હોય તો વધેલા અન્નાદિને વહેચી લીધા પછી સાધુ શય્યાતરથી જૂદાનો આહાર આદિ લઇ શકે છે, કારણ કે એમાંથી શય્યાતરનો ભાગ જૂદો કાઢવામા આવી ચૂકયો હોય છે હા, એકઠું કરેલું હોય અને વહેચ્યું ન હોય તો સાધુને કલ્પે નહિ કોઇ શય્યા-

कोऽपि शय्यातरो देशान्तरं प्रस्थितः स्वगृहाद्‌बहिर्गत्वा कुत्रचित् तिष्ठेत्, तत्र यदि गृहादन्यस्थानाद्वाऽशनपानादिकं तदर्थमानीतम्, अथवा बहिःप्रदेश एव निष्पादितं चेत् तदा तदशनादिकं साधोरकल्प्यम्, रात्रिवासार्थं बहिर्गतस्य साधोस्तु पुनः कल्प्यमेव।

यदि शय्यातरोऽन्यदीयगृहेऽन्यदीयमन्नादिकं परिवेषयेत्, तत्रापि शय्यातरेण दीयमानमन्यदीयमप्यशन-पानादिकं साधोरकल्प्यम्।

साधोर्भिक्षादाने शय्यातरस्य सहगमनरूपनिमित्तत्वे सति तत्र भिक्षाग्रहणमकल्प्यम्। ग्रामाद्‌बहिरपि शय्यातरीयगोशालादिसत्त्वे तदीयदुग्धादिकं साधोरकल्प्यम्।

नीय नहीं है। कोई शय्यातर परदेश जा रहा हो, और घरसे निकलकर कहीं बाहर ठहर गया हो, तो भी उसका अन्न-पान ग्राह्य नहीं है, भलेही वह अन्न-पान घरसे उसके लिए लाया गया हो या अन्य स्थानसे लाया गया हो अथवा वहीं पर तैयार किया गया हो। यदि रात्रिमें निवास करनेके लिए साधु बाहर चला गया हो तो कल्पनीय है।

शय्यातर, दूसरे गृहस्थके यहां उसी दूसरे गृहस्थका अन्नादि परोस रहा हो तो भी उसके हाथसे दिया-हुआ आहार कल्पनीय नहीं है। यदि किसी भिक्षाकी प्राप्तिमें शय्यातर निमित्त हो अर्थात् दलाली करे तो वह भिक्षा भी साधुको ग्राह्य नहीं है।

गांवसे बाहर शय्यातरकी गोशाला आदि हो तो वहांका दूध आदि भी साधुको ग्राह्य नहीं है।

तर परदेश जई रह्यो होय अने घरमाथी नीकळीने क्यांक बहार रह्यो होय तो पण एनुं अन्न-पान ग्राह्य बनतुं नथी, पछी भले ए अन्न-पान घेरथी एने माटे लाववामां आव्युं होय अथवा अन्य स्थानथी लाववामां आव्यु होय, या त्यांज तैयार बनाववामा आव्युं होय जो रात्रे निवास करवाने माटे साधु बहार चाल्या गया होय तो कल्पे छे

शय्यातर, बीजा गृहस्थने त्या ए बीजा गृहस्थना अन्नादि पीरसे तोपण एना हाथथी अपानो आहार कल्पे नहि जो कोई भिक्षानी प्राप्तिमा शय्यातर निमित्त होय अर्थात् दलाली करे तो ए भिक्षा पण साधुने ग्राह्य थती नथी.

गामनी बहार शय्यातरनी गोशाळा आदि होय तो त्यांनुं दूध वगेरे पण साधुने ग्राह्य बने नहि

शय्यातरगृहे भोक्ता भृत्यादिरपि शय्यातरः। शय्यातरस्य स्वसा दुहिता च तस्मिन् दिवसे पुनरागमनमनिश्चित्य भर्तृकुलादागच्छेत्, तदा साऽपि शय्यातरा। यदि तस्मिन्नहनि भर्तृकुलं पुनर्गन्तुकामा शय्यातरगृहमागता चेत् सा शय्यातरगृहे एव शय्यातरत्वमुपयाति अन्यगृहे तु न तस्याः शय्यातरत्वमिति बोध्यम् ।

उपाश्रयस्वामिनि देशान्तरस्थे सति उपाश्रयसंरक्षकादाज्ञामादाय यत्र साधुस्तिष्ठेत् तत्रोपाश्रयस्वामिनि समागते साधुना शय्यातरत्वं स्वामिन्येव कल्पनीयम्, न संरक्षके ।

शय्यातरप्रदत्तमन्येन स्वीकृतमप्यशनादिकं शय्यातरगृहे साधोरकल्प्यम्, व्यवहारशुद्ध्यादिदोषात् ।

शय्यातरके घर जीमनेवाले नोकर-चाकर भी शय्यातर हैं। शय्यातरकी बहिन या बेटी उस दिन वापस लौटनेका निश्चय न करके अपनी ससुरालसे आई हो तो वह भी शय्यातर है, यदि वापस लौटनेका विचार करके आई हो तो वह शय्यातरके घरमें ही शय्यातर है, दूसरेके घरमें नहीं, अर्थात् दूसरेके घरमें दूसरेका आहारादि यदि वह परोसे तो साधु ले सकते हैं।

जब उपाश्रयका स्वामी परदेशमें रहता हो और उपाश्रयके रखवाले से आज्ञा लेकर साधु उसमें ठहरें तो जब उपाश्रयका स्वामी आजावे तब वही शय्यातर होता है, रखवाला नहीं।

शय्यातरने अशन आदिक दूसरे को दे दिया और दूसरेने चाहे उसे स्वीकार भी कर लिया हो तो भी शय्यातर के घर पर साधु को वह लेना नहीं

શય્યાતરના ઘેર જમનારા નોકર-ચાકર પણ શય્યાતર છે, શય્યાતરની બહેન યા પુત્રી એ દિવસે પાછાં જવાનો નિશ્ચય કર્યા વિના પોતાને સાસરેથી આવી હોય તો તે પણ શય્યાતર છે જો પાછા જવાનો વિચાર કરીને આવી હોય તો શય્યાતરના ઘરમા જ તે શય્યાતર છે, બીજાના ઘરમાં નહિ, અર્થાત્ બીજાના ઘરમા બીજાનો આહારાદિ જો તે પીરસે તો સાધુ લઈ શકે છે.

જો ઉપાશ્રયનો સ્વામી પરદેશમા રહેતો હોય અને ઉપાશ્રયના રખેવાળની આજ્ઞા લઈને સાધુ તેમા રહે તો જ્યારે ઉપાશ્રયનો સ્વામી આવી જાય ત્યારે તે શય્યાતર બને છે, રખેવાળ નહિ

શય્યાતરે અશનાદિ બીજાને આપી દીધુ હોય અને બીજાએ ભલે એને સ્વીકારી પણ લીધું હોય, તો પણ શય્યાતરને ઘેર સાધુએ તે લેવું જોઇએ નહિ,

तथा शय्यातरेण दत्तमन्येनास्वीकृतमन्नादिकं शय्यातरगृहाद् बहिरपि साधोरकल्प्यम्, तत्र शय्यातरस्वत्वापगमाभावात् ।

शय्यातरगृहाद् बहिरन्येन स्वीकृतं चेत् तदा साधोः कल्प्यमेव, तत्र शय्यातरस्वत्वापगमादिति बोध्यम् ।

शय्यातरगृहाद्बहिस्तेन (शय्यातरेण) दत्तमन्येनाऽस्वीकृतं चेत् तत्राऽस्वीकृताशनपानादेः स्वीकारार्थं 'गृह्यतामिद'-मित्यादिपररूपा प्रवर्त्तनाऽपि साधोरकल्प्या । शय्यातरपिण्डग्रहणादिदोषशङ्कासंभवात् ।

चाहिए, क्योंकि स्वीकार कर लेनेसे शय्यातरका स्वामित्व तो नहीं रहा पर यहां व्यवहारसे अशुद्धि है ।

यदि शय्यातरद्वारा दिये हुए अन्नादिको अन्य गृहस्थ न स्वीकार करे तो शय्यातरके घरमें या घरसे बाहर कहीं भी साधुको नहीं ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि उस आहारादिमें शय्यातरका स्वत्व रहता है। शय्यातरके घरसे बाहर दूसरेने स्वीकार कर लिया हो तो साधुको कल्पनीय है, क्योंकि उसपर शय्यातरका स्वत्व नहीं रहा ।

शय्यातरके घरसे बाहर शय्यातरने किसी दूसरेको दिया हो और दूसरेने स्वीकार न किया हो तो उस-अशनादिके स्वीकार करानेके लिए 'तुम ले लो' इत्यादिरूपसे गृहस्थको प्रेरणा करना भी साधुका कल्प नहीं है, क्योंकि उसमें शय्यातरका पिण्ड लेने आदि अनेक दोषोंकी शंका होती है ।

કારણ કે સ્વીકારી લેવાથી શય્યાતરનું સ્વામિત્વ તો રહ્યું નહિ, પણ તેમાં વ્યવહારથી અશુદ્ધિ રહેલી છે

જો શય્યાતરે આપેલું અન્નાદિ અન્ય ગૃહસ્થ ન સ્વીકારે તો શય્યાતરના ઘરમાં યા ઘરબહાર ક્યાંય પણ તે સાધુએ ગ્રહણ કરવું જોઈએ નહિ, કારણ કે તે આહારાદિમા શય્યાતરનું સ્વત્વ રહેલું હોય છે શય્યાતરના ઘરથી બહાર બીજાએ સ્વીકારી લીધું હોય તો તે સાધુને કલ્પે, કેમકે તે ઉપર શય્યાતરનું સ્વત્વ રહેતુ નથી

શય્યાતરના ઘરની બહાર શય્યાતરે કોઇ બીજાને આપ્યુ હોય અને બીજાએ સ્વીકાર્યું ન હોય તો તે અશનાદિનો સ્વીકાર કરાવવાને માટે 'તમે લઇ લ્યો' ઇત્યાદિરૂપે ગૃહસ્થને પ્રેરણા કરવી એ પણ સાધુને કલ્પે નહિ, કારણ કે તેમાં શય્યાતરનો પિંડ લેવો વગેરે અનેક દોષોની શકા રહે છે.

अथ शय्यातरपिण्डग्रहणे दोषाः प्रदर्श्यन्ते—

(१) वसतिदौर्लभ्यम्, वसतिस्वामिनो गृहेऽशनपानादिग्रहणनियमे स्वकीयान्नादिव्ययमालोच्य स्वोपाश्रयनिवासार्थमाज्ञां साधवे न कोऽपि दद्यात्, इत्याशयः। (२) प्रवचनलाघवम्; (३) स्वावासस्थान एव भिक्षालाभसंभावनया परिभ्रमणालस्ये संजाते कदाचित् शय्यातरगृहे आहाराद्यलाभेऽकालभिक्षाचर्याप्रसङ्गः, वेलातिक्रमे सति आर्त्तरौद्रध्यानप्रसङ्गः, स्वाध्यायान्तरायः, आत्मक्लान्तिश्च,

---

शय्यातरका पिण्ड ग्रहण करनेमें दोष बतलाते हैं—

(१) शय्यातरका पिण्ड ग्रहण किया जाय तो वसति मिलना दुर्लभ (मुश्किल) हो जायगा। गृहस्थ यह विचारेंगे कि इन्हें स्थान देनेसे अन्न-पान आदि भी देना पड़ेगा। ऐसा सोचकर गृहस्थ अपने स्थानमें रहनेके लिए साधुओंको स्थान नहीं देगा।

(२) प्रवचनका लाघव होगा।

(३) अपने निवासस्थान पर ही भिक्षा मिल जानेकी संभावनासे साधु भ्रमण करनेमें आलस्य करेंगे, और जब शय्यातरके घर पर आहार नहीं मिलेगा तो अकाल-(असमय)-में गोचरी करनेका प्रसंग होगा, और असमयमें भिक्षा न मिलनेसे आर्त्त-रौद्र ध्यान होंगे, स्वाध्याय आदिमें अन्तराय पड़ेगा, और आत्माको खेद होगा।

શય્યાતરનો પિંડ ગ્રહણ કરવામાં રહેલા દોષો બતાવે છે.—

(૧) શય્યાતરનો પિંડ ગ્રહણ કરવામાં આવે તો વસતિ (રહેવાનું સ્થાન) મળવું દુર્લભ (મુશ્કેલ) બની જાય ગૃહસ્થ એમ વિચારશે કે એમને સ્થાન આપવાથી અન્ન-પાન આદિ પણ દેવા પડશે એમ વિચારીને ગૃહસ્થ પોતાના સ્થાનમા રહેવાને માટે સાધુઓને સ્થાન આપશે નહિ

(૨) પ્રવચનનુ લાઘવ થશે

(૩) પોતાના નિવાસસ્થાન પર જ ભિક્ષા મળી જવાની સંભાવનાથી સાધુ ભ્રમણ કરવામા આળસ કરશે, અને જો શય્યાતરના ઘેરથી આહાર નહિ મળે તો અકાલે (અસમયે) ગોચરી કરવાનો પ્રસંગ આવશે, અને અકાલે ભિક્ષા ન મળવાથી આર્ત-રૌદ્ર ધ્યાન થશે, સ્વાધ્યાયાદિમા અંતરાય પડશે અને આત્માને ખેદ થશે

(४) तीर्थङ्कराज्ञाभङ्गोऽपीत्यादयो दोषाः प्रसज्जन्ते, (२३),

इति शय्यातरविचारः ।

आसन्दी=वेत्रासनं, खट्टिका च (२४),

पर्य्यङ्कः=मञ्चविशेषः, स एव पर्यङ्ककः; स्वार्थे कः। चकाराच्छिविका-दोला--ताम्रयानादिग्रहणम् (२५),

गृहान्तरनिषद्या=गृहं=गृहिनिकेतनं तस्याऽन्तरम्=अभ्यन्तरं मध्यमिति यावत्, तस्मिन् निषद्या=निषदनम् उपवेशनमित्यर्थः, यद्यपि व्याकरणादौ निषीदन्त्यस्या'-मिति विगृह्य 'निषद्या=आपणः' इत्युक्तं तथाप्यत्र शास्त्रसङ्केतितत्वाद्भावक्यवन्तोऽयं निपद्याशब्दः (२६),

गात्रस्य=शरीरस्य उद्वर्त्तनानि=मलापनयनद्रव्येण समालेपनानि 'उबटन' इतिलोकप्रसिद्धानि, चकारादन्येपामपि शरीरसम्वन्धिनां संस्काराणां ग्रहणं वोद्धव्यम् (२७),

एषु चारित्रघातादयो दोषाः सुस्पष्टा एव ॥ ५ ॥ ५ ॥

---

(४) इसके सिवाय तीर्थंकर भगवानने शय्यातर-पिण्डको अकल्पनीय बताया है, इसलिए उनकी आज्ञाका भंग होगा, इत्यादि अनेक दोष आते हैं ॥　　　इति शय्यातर-विचार समाप्त ।

(२४) आसन्दी–वेतकी बनी हुई छिद्रवाली कुर्सीपर बैठना ।

(२५) पर्यङ्क–एकप्रकारका पलंग, पालखी, डोला, तामजाम आदिका ग्रहण करना ।

(२६) गृहान्तरनिषद्या–गृहस्थके घरमें बैठना ।

(२७) गात्रोद्वर्त्तन–शरीर पर उबटन आदि करना ॥५॥

---

(४) એ ઉપરાંત તીર્થંકર ભગવાને શય્યાતર પિંડને અકલ્પનીય બતાવ્યો છે, તે માટે એમની આજ્ઞાનો ભંગ થશે, ઈત્યાદિ અનેક દોષો ઉત્પન્ન થાય છે

ઈતિ શય્યાતર-વિચાર સમાપ્ત.

(૨૪) આસન્દી–નેતરની બનાવેલી છિદ્રવાળી ખુરશી પર બેસવુ

(૨૫) પર્યંક–એક પ્રકારનો પલંગ, પાલખી, હિંડોળો, મ્યાનો.

(૨૬) ગૃહાન્તરનિષદ્યા–ગૃહસ્થના ઘરમાં બેસવું

(૨૭) ગાત્રોદ્વર્તન–શરીર પર સુગંધી પદાર્થો ચોળવા (૫)

मूलम्-गिहिणो[२८] वेयावडियं, जाइयाजीववत्तिया[२९] ।
तत्तानिव्वुडभोइत्तं[३०], आउरस्सरणाणि[३१] य ॥६॥

छाया-गृहिणो वैयावृत्यं, जात्याजीववृत्तिता (आजीववर्तिता)
तप्तानिर्वृतभोजित्व,-मातुरस्मरणानि च ॥ ६ ॥

सान्वयार्थः-(२८) गिहिणो=गृहस्थकी वेयावडियं=वैयावच्च करना, (२९) जाइया=जातिसे-अपनी ऊंची जाति बताकर आजीववत्तिया=जीविकानिर्वाह करना, (३०) तत्तानिव्वुडभोइत्तं=अग्निमें सिर्फ तपाया हुआ किन्तु शस्त्रसे अपरिणत-मिश्र भोजन करना, य=और (३१) आउरस्सरणाणि=बीमार होनेपर पूर्वभुक्त वस्तुका स्मरण करना ॥ ६ ॥

टीका-गृहिणः=गृहस्थस्य, वैयावृत्त्यं=गृहस्थायान्नाऽऽनयनप्रदानादि-लक्षण-शुश्रूषाकरणम् (२८),

जात्या='अहमेतादृशजातिविशिष्टः' इत्याद्याघोषणेन, उपलक्षणमिदं कुलादीनामपि, आजीववृत्तिता-आजीवे=जीविकायां वृत्तिः=स्थितिर्यस्य तद्भावः, यद्वा 'आजीववर्त्तिता' इतिच्छाया, आजीवे=जीविकायां वर्तितुं शीलं यस्यासौ आजीववर्त्ती तस्य भाव इति तदर्थः (२९),

तप्तानिर्वृतभोजित्वं=तप्तं=वह्निनोष्णीकृतं च तत् अनिर्वृतं=शस्त्रापरिणतं तप्तानिर्वृतम् अर्द्धपक्वमिति भावस्तद्भोक्तुं शीलमस्य तत्त्वम्, मिश्रान्नादिसेवनमित्यर्थः(३०)

आतुरस्मरणम्=आतुराः=रोगादिग्रस्तास्तेषां स्मरणं=तत्कर्तृकपूर्वोपभुक्त-

(२८) गृहस्थकी वैयावृत्य (सेवा-शुश्रूषा) करना।
(२९) अपनी जाति या कुल आदि बताकर भिक्षा लेना।
(३०) आधा पक्का आधा कच्चा अर्थात् मिश्र अन्न-पानी आदि लेना।
(३१) रोग आदिकी अवस्थामें पहले सेवन किये हुए विषयोंका

(२८) ગૃહસ્થની વૈયાવૃત્ય (સેવા-શુશ્રૂષા) કરવી.
(२९) પોતાની જાતિ યા કુળ બતાવીને ભિક્ષા લેવી.
(३०) અધપાકાં-અધકાચા અર્થાત્ મિશ્ર અન્નપાણી આદિ લેવાં.
(३१) રોગાદિની અવસ્થામાં પહેલાં સેવેલાં વિષયોનું સ્મરણ કરવું અર્થાત્

वस्तुस्मरणमिति फलितम्, यद्वा आतुरशब्दोऽत्र भावप्रधाननिर्देशस्तथाचाऽऽतुरत्वे स्मरणमिति समासः, रोगाद्यवस्थायां पूर्वाऽनुभूतवस्तुस्मरणमित्यर्थः (३१)।

चकार इहापि समुच्चयार्थकः। अत्रासंयमादयो दोषा जायन्ते ॥ ६ ॥

मूलम्-मूलए[३२] सिंगवेरे[३३] य, उच्छुखंडे[३४] अनिव्वुडे ।

कंदे[३५] मूले[३६] य सच्चित्ते, फले[३७] बीए[३८] य आमए ॥७॥

छायाः-मूलकं शृङ्गवेरं च, इक्षुखण्डमनिर्वृतम् ।

कन्दो मूलं च सचित्तं, फलं बीजं चामकम् ॥ ७ ॥

सान्वयार्थः-य=और (३२) मूलए=मूला (३३) सिंगवेरे=अदरख (३४) उच्छुखंडे=गन्ना (सेलडी) अनिव्वुडे=शस्त्रसे अपरिणत (३५) कंदे=कन्द य= और (३६) मूले=शिफा (तथा) सच्चित्ते=सचित्त (३७) फले=फल य=और आमए=सचित्त (३८) बीए=बीज। भावार्थ-इनके सेवनसे अनन्तकाय आदि वनस्पतिकायकी विराधना होती है ॥ ७ ॥

टीका-मूलकं=प्रसिद्धम् (३२), शृङ्गवेरं=शृङ्गवद्बेरं=शरीरं यस्य तत् आर्द्रकमित्यर्थः (३३), च=तथा इक्षुखण्डम्=इक्षुशकलम्, एतत्त्रयम् अनिर्वृतं=शस्त्रापरिणतम् (३४) कन्दः=शूरणादिः (३५), मूलं=शिफा (३६), च=पुनः, सचित्तं=सजीवम्,

---

स्मरण करना अर्थात् बीमारीमें हाय! हाय! करना ॥६॥

(३२) सचित्त मूलाका सेवन करना।

(३३) सचित्त अदरख (आदा) का सेवन करना।

(३४) सचित्त इक्षुखण्डका सेवन करना।

(३५) सचित्त शूरण आदि कन्दोंका सेवन करना।

(३६) सचित्त मूलका सेवन करना।

બિમારીમા 'હાય ! હાય !' કરવી. (૬)

(૩૨) સચિત્ત મૂળાનું સેવન કરવું

(૩૩) સચિત્ત આદુનું સેવન કરવું

(૩૪) સચિત્ત શેરડીનાં પતીકાં-કકડાં-નું સેવન કરવું

(૩૫) સચિત્ત સૂરણ આદિ કંદોનું સેવન કરવું

(૩૬) સચિત્ત મૂળનું સેવન કરવું

फलं=कर्कटी-त्रपुषादिकम्(३७),च=तथा वीजं=तिलादि, आमकम्=सचित्तम्(३८),। अत्रानन्तकायादिविराधनादिदोषा जायन्ते ॥ ७ ॥

मूलम्-सोवच्चले[३९] सिंधवे[४०] लोणे, रुमालोणे[४१] य आमए।

सामुद्दे[४२] पंसुखारे[४३] य, कालालोणे[४४] य आमए ॥८॥

छायाः-सौवर्चलं सैन्धवो लवणो, रुमालवणश्चामकः।

सामुद्रः पांशुक्षारश्च, काललवणश्चामकः ॥ ८ ॥

सान्वयार्थः-आमए=सचित (३९) सोवच्चले=सौवर्चल-संचरनमक (४०) सिंधवे लोणे=सैन्धव-सींधानमक (४१) रुमालोणे=रुमानदीसे निकला हुआ नमक (४२) सामुद्दे=समुद्री नमक य=और (४३) पंसुखारे=ऊषर नमक य= और आमए=सचित्त (४४) कालालोणे=काला नमक । भावार्थ-उल्लिखित नमकोंका सेवन करनेसे पृथ्वीकाय आदिकी विराधना होती है ॥ ८ ॥

टीका—सुवर्चले=देशविशेषे भवः सौवर्चलः=रुचकलवणः (३९),

सिन्धुनद्युपलक्षितदेशीयपर्वते भवः सैन्धवः, लवणः=लुनाति=छिनत्ति दूरयति कफादिकमिति लवणः, इदं सौवर्चलादेर्विशेषणपदम् (४०),

च=तथा, रुमालवणः=रुमा=विशिष्टलवणाकरभूता काचिन्नदी तस्या लवणः, आमकः=सचित्तः, अस्य पूर्वार्द्धे सर्वत्र सम्बन्धः (४१),

---

(३७) सचित्त ककड़ी खीरा आदि फलोंका सेवन करना।
(३८) सचित्त बीजका=तिल आदिका सेवन करना ॥ ७ ॥
(३९) सचित्त रुचक (सौवर्चल सोंचर) नमकका सेवन करना।
(४०) सचित्त सैन्धव (सेंधा) नमकका सेवन करना।
(४१) सचित्त रुमा (नदीविशेषके) नमकका सेवन करना।

---

(૩૭) સચિત્ત કાકડી ખીરા આદિ ફલોનું સેવન કરવુ.
(૩૮) સચિત્ત બીજ તલ આદિનુ સેવન કરવુ (૭)
(૩૯) સચિત્ત રૂચક લૂણ (સૌવર્ચલ-સચળ)નું સેવન કરવું
(૪૦) સચિત્ત સિંધાલૂણનું સેવન કરવુ
(૪૧) સચિત્ત રૂમા (નદીવિશેષમાથી નીકળેલા) મીઠાનુ સેવન કરવું.

साामुद्रः=समुद्रोत्थलवणः (४२),

पांशुक्षारः=ऊषरलवणः (४३),

च=तथा काललवणः=कृष्णलवणः 'विड्लवण' इतिप्रसिद्धः (४४),

आमकः=सचित्तः, 'आमक' इत्यस्योत्तरार्द्धे सर्वत्र सम्बन्धः । अत्र पृथ्वीकायविराधनादयो दोषा भवन्ति ॥ ८ ॥

४५ ४६ ४७ ४८

मूलम्-धुवणेत्ति वमणे य, वत्थीकम्म-विरेयणे ।

४९ ५० ५१ ५२

अंजणे दंतवण्णे य, गायब्भंगविभूसणे ॥९॥

छायाः-धूपनमिति वमनं च, वस्तिकर्म विरेचनम् ।
अञ्जनं दन्तवर्णश्च, गात्राभ्यङ्ग-विभूषणे ॥ ९ ॥

सान्वयार्थः-(४५) धुवणेत्ति=रोग मिटाने आदिके लिए किसी स्थानमें धूप देना, (४६) वमणे=प्रयत्नपूर्वक वमन करना, (४७) वत्थीकम्म=वस्तीकर्म करना, य=और (४८) विरेयणे=विरेच-जुलाव लेना, (४९) अंजणे=अंजन-सुरमा आदि आंजना, (५०) दंतवण्णे=दातून मसी आदिसे दाँत साफ करना, (५१-५२) गायब्भंगविभूसणे=शरीरको तैल आदिसे मालिश करना (५१) तथा वस्त्र आदिसे भूपित करना (५२) ॥ ९ ॥

टीका—धूपनं=रोगाद्युपशान्तिनिमित्तं स्थानकादिषु धूपदानम्, सौगन्ध्योत्पत्तिनिमित्तमंशुकादीनां धूपादिना वासनञ्च (४५),

---

(४२) सचित्त समुद्री नमकका सेवन करना ।

(४३) सचित्त ऊषर नमकका सेवन करना ।

(४४) सचित्त काले नमकका सेवन करना ॥ ८ ॥

(४५) रोग आदिकी शान्ति अथवा सुगंधिके लिए स्थानक या वस्त्र आदिमें धूप देना ।

---

(૪૨) સચિત્ત સમુદ્રના લૂણનું સેવન કરવું

(૪૩) સચિત્ત ઊષર લૂણ (ખારા) નું સેવન કરવું

(૪૪) સચિત્ત કાળા મીઠાનું સેવન કરવુ (૮)

(૪૫) રોગાદિની શાન્તિ અથવા સુગંધિને માટે સ્થાનક યા વસ્ત્રાદિને ધૂપ કરવો.

वमनं=वमिजनकभेषजादिप्रयोगेण वान्तिकरणम् (४६),

वस्तिकर्म=वसतः=तिष्ठतः, मूत्रपुरीषावत्रेति, वस्ते=आच्छादयति मूत्राऽऽशयपुटमिति वा वस्तिः=नाभेरधोभागः, तस्याः कर्म=तच्छोधनव्यापारो वस्तिकर्म=मलादिशोधनार्थमपानादिमार्गे वर्त्तिकादिप्रवेशनम्, अपानमार्गेण जलकर्षणं वेत्यर्थः (४७),

विरेचनम्–कोष्ठशुद्धयर्थं स्वर्णमुख्यादिविरेचनसेवनम् (४८)

अञ्जनं=शोभावशीकरणाद्यर्थं नयनयोः कज्जल-सौवीरादिदानम् (४९),

दन्तवर्णः–[1]वर्णनं-वर्णः, दन्तानां वर्णः=उज्ज्वलीकरणं दन्तवर्णः=अङ्गुली-दन्तशाण(मसी)काष्ठादिभिर्दन्तघर्षणम् (५०) ।

गात्राभ्यङ्ग-विभूषणे=अभ्यङ्गश्च विभूषणं चेत्यनयोरितरेतरयोगद्वन्द्व इत्यभ्यङ्गविभूषणे, गात्रस्य अभ्यङ्ग-विभूषणे गात्राभ्यङ्गविभूषणे, 'द्वन्द्वान्ते द्वन्द्वादौ वा श्रूयमाणं पद प्रत्येकमभिसम्बध्यते' इतिन्यायाद् गात्रशब्दस्य प्रत्येकं सम्बन्धस्तत्र गात्राभ्यङ्गः=गात्रस्य=शरीरस्य अभ्यङ्गः=शतपाक-सहस्रपाकादितैलादिनाऽभ्यञ्जनं मर्दनमिति यावत् (५१),

गात्रविभूषण=वस्त्रालङ्करणादिना शरीरपरिष्करणम् (५२),

---

१ चौरादिकाद्वर्णयतेर्भावे घञ् ।

---

(४६) दवाई लेकर वमन करना ।
(४७) मल आदिके शोधनके लिए वस्तिकर्म करना ।
(४८) कोठेकी शुद्धिके लिए सनाय आदिका जुलाब लेना ।
(४९) नेत्रोंमें कज्जल आदि लगाना ।
(५०) मिस्सी आदि लगाकर दांत रंगना ।
(५१) शतपाक, सहस्रपाक आदि तेलसे शरीरकी मालिश करना ।
(५२) शरीरका वस्त्र आभूषणोंसे मण्डन करना ।

---

(૪૬) દવા લઇને વમન કરવું
(૪૭) મલાદિના શોધન માટે બસ્તિકર્મ કરવું
(૪૮) ઉદરની શુદ્ધિને માટે સોનામુખી આદિનો જુલાબ લેવો
(૪૯) આંખોમા કાજળ (મેશ) આંજવું
(૫૦) મસ્સી વગેરે લગાડીને દાંત રંગવા
(૫૧) શતપાક, સહસ્રપાક આદિ તેલથી શરીરને મર્દન કરવું
(૫૨) શરીરનું મંડન કરવું (શોભાવવું)

धूपनादिनाऽग्निकायप्रभृतिविराधनादिदोषा जायन्ते ९ ॥

सम्प्रत्युपसंहरन्नाह–' सव्वमेय '-इत्यादि ।

मूलम्–सव्वमेयमणाइन्नं, निग्गंथाण महेसिणं ।
संजमंमि अ जुत्ताणं, लहुभूयविहारिणं ॥१०॥

छायाः–सर्वमेतदनाचीर्णं, निर्ग्रन्थानां महर्षीणाम् ।
संयमे च युक्तानां लघुभूतविहारिणाम् ॥ १० ॥

सान्वयार्थः–निग्गंथाण=परिग्रहरहित महेसिणं=महर्षियोंके संजमंमि=संयममें जुत्ताणं=लगेहुए य=और लहुभूयविहारिणं=वायुके समान अप्रतिबन्धविहार करनेवालोंके एयं=ये–पूर्वोक्त बावन सव्वं=सब अणाइन्नं=अनाचीर्ण है। भावार्थ–निर्ग्रन्थ महर्षियोंने पूर्वोक्त इन बावन विषयोंका आचरण नहीं किया, अतः ये अनाचीर्ण कहलाते हैं। साधुओंको इनका आचरण नहीं करना चाहिये ॥ १० ॥

टीका—ग्रन्थान्निर्गता निर्ग्रन्थाः=कनक-रजतादिद्रव्यग्रन्थि-मिथ्यात्वादिभावग्रन्थिरहितास्तेषाम् , महर्षीणाम् महान्तश्च ते ऋषयः महर्षयस्तेषाम् , यद्वा 'महैषिणा' मिति च्छाया, महो=निजहितं तम् एषयन्ति=गवेषयन्तीति महैषिणस्तेषाम् । संयमे=सकलसावद्यव्यापारोपरमलक्षणे युक्तानां=व्यापृतानां दत्तचित्तानामित्यर्थः,

---

इन धूप आदिसे अग्निकाय आदि जीवोंकी विराधना आदि दोष होते हैं ॥९॥

अब उपसंहार करते हैं–'सव्वमेय०' इत्यादि ।

बाह्याभ्यन्तर परिग्रहकी ग्रन्थिसे रहित, अपने हितका अन्वेषण करनेवाले महर्षि तीन करण तीन योगसे सावद्य व्यापारके त्यागरूप

એ ધૂપ આદિથી અગ્નિકાય આદિ જીવોની વિરાધના આદિ દોષ લાગે છે (૯).

હવે ઉપસંહાર કરે છે.—સવ્વમેય૦ ઇત્યાદિ

બાહ્યાભ્યંતર પરિગ્રહની ગ્રંથિથી રહિત, પોતાના હિતનું અન્વેષણ કરનારા મહર્ષિઓએ ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી સાવદ્ય વ્યાપારને ત્યજવા રૂપ સકળ સંયમથી

च=पुनः लघुभूतविहारिणाम्=लघुभूतो=वायुस्तद्वदप्रतिवद्धं विहरन्ति तच्छीलास्तेषां वायुवदप्रतिवन्धविहारिणामित्यर्थः। एतत्=पूर्वोक्तं सर्वं द्विपञ्चाशत्प्रकारकम् अनाचीर्णम्=अनासेवितम् 'अस्ती'-ति शेषः ॥ १० ॥ १० ॥

अनाचीर्णत्यागिनो मुनयः कीदृशा भवन्ति ?-इत्याह-

मूलम्-पंचासवपरिन्नाया, तिगुत्ता छसु संजया ।

पंचनिग्गहणा धीरा, निग्गंथा उज्जुदंसिणो ॥११॥

छायाः-पञ्चाभ्रवपरिज्ञाता,-स्त्रिगुप्ताः षट्सु संयताः ।

पञ्चनिग्रहणा धीरा, निर्ग्रन्था ऋजुदर्शिनः ॥ ११ ॥

सान्वयार्थः-पंचासवपरिन्नाया=पांच आस्रवोंके त्यागी, तिगुत्ता=मनोगुप्ति १ वचनगुप्ति २ कायगुप्ति ३ से युक्त, छसु=छह कायमें संजया=संयमवान्, पंचनिग्गहणा=पांच इन्द्रियोंके निग्रह करनेवाले धीरा=परीषह उपसर्ग सहनेमें धीर निग्गंथा=मुनि उज्जुदंसिणो=मोक्षमार्गके आराधक होते हैं। भावार्थ-जो अनाचीर्णोंका त्याग करते हैं वे गाथोक्तविशेषणोंसे विशिष्ट होते हैं ॥ ११ ॥

टीका-पञ्चास्रवपरिज्ञाताः=आस्रवति=आक्षरति मिथ्यात्वादिनालिकाभ्यः कर्मसलिलमात्मतडागे यैस्ते आस्रवा हिंसादयः, पञ्च च त आस्रवाश्चेति पञ्चास्रवाः

सकल संयमसे युक्त और वायुकी तरह अप्रतिबन्ध विहार करनेवाले मुनिराजोंके ये पूर्वोक्त बावन अनाचीर्ण हैं ॥१०॥

अनाचीर्णोंका त्याग करनेवाले मुनि कैसे होते हैं ? सो कहते हैं- 'पंचासव०' इत्यादि ।

जिनके द्वारा आत्मारूपी तालावमें मिथ्यात्वादिरूप नालाओंसे कर्मरूपी जल आता है उन्हें आस्रव कहते हैं। वे आस्रव मिथ्यात्व

યુક્ત અને વાયુની પેઠે અપ્રતિબંધ વિહાર કરનારા મુનિરાજોના એ પૂર્વોક્ત બાવન અનાચીર્ણ છે

અનાચીર્ણોનો ત્યાગ કરનારા મુનિઓ કેવા હોય છે ? તે કહે છેઃ—

पंचासव० ઇત્યાદિ

જેની દ્વારા આત્મા-રૂપી તળાવમાં મિથ્યાત્વાદિ-રૂપ નાળાઓથી કર્મ-રૂપી જળ આવે છે તેને આસ્રવ કહે છે એ આસ્રવો મિથ્યાત્વ અવિરતિ આદિ ભેદો

परि=सर्वतोभावेन ज्ञाताः=ज्ञपरिज्ञातोऽनर्थमूलमनुभाविताः प्रत्याख्यानपरिज्ञातो हेयत्वेन परित्यक्ता यैस्ते तथोक्ताः,[1] त्रिगुप्ताः=तिसृभिर्मनोवाक्कायगुप्तिभिर्गुप्ताः, षट्सु=पृथिव्यादिकायषट्केषु संयताः=सम्यग् यतनावन्तः–षड्जीवनिकायोपमर्दनविरता इत्यर्थः, पञ्चनिग्रहणाः=पञ्च=प्रसंगात् पञ्चेन्द्रियाणि निगृह्णन्ति=वशयन्तीति [2]तथोक्ताः, धीराः=परीषहोपसर्गादिषु धृतिमन्तः, निर्ग्रन्थाः=मुनयः, ऋजुदर्शिनः=ऋजु=अवक्रम् अकुटिलस्वभावं यथा स्यात्तथा द्रष्टुं शीलं येषां ते तथोक्ताः-सरलहृदया इत्यर्थः, यद्वा अर्जते=उपार्जयति=सम्पादयत्यविचलसुखमिति ऋजुः=सम्यग्रत्नत्रयलक्षणो मोक्षमार्गस्तं पश्यन्ति तच्छीला इति ऋजुदर्शिनः, मोक्षमार्गसाधका इत्यर्थः ॥ ११ ॥ ११ ॥

मूलम्–आयावयंति[४] गिम्हेसु[३], हेमंतेसु[५] अवाउडा[६] ।
वासासु[७] पडिसंलीणा[८], संजया[२] सुसमाहिया[१] ॥१२॥

१ 'पञ्चास्रवपरिज्ञाताः' अत्र आहिताग्न्यादित्वान्निष्ठान्तस्य परनिपातः।
२ 'पञ्चनिग्रहणाः' अत्र नन्द्यादित्वात्कर्त्तरि ल्युः ॥

अविरति आदिके भेदसे पांच प्रकारके हैं। उन आस्रवोंको ज्ञ-परिज्ञासे अनर्थोंका कारण जानकर प्रत्याख्यान-परिज्ञासे त्यागते हैं। अर्थात् अनाचीर्णोंका त्याग करनेवाले पाँच आस्रवोंसे विरत हो जाते हैं, मन वचन कायरूप तीन गुप्तियोंसे युक्त होते हैं, पृथिवी आदि षट्कायकी यतनामें सावधान रहते हैं, अर्थात् षड्जीवनिकायकी विराधनासे रहित होते हैं, पांच इन्द्रियोंका दमन करते हैं, परीषह और उपसर्ग सहनेमें दृढ ऐसे मुनि, सरल हृदय होते हैं, अथवा अविनाशी सुखको प्राप्त करनेवाले या मोक्षमार्गके साधक होते हैं ॥११॥

કરીને પાચ પ્રકારના છે. એ આસ્રવોને જ્ઞપરિજ્ઞાથી અનર્થોના કારણરૂપ જાણીને પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાથી ત્યજે છે, અર્થાત્ અનાચીર્ણોનો ત્યાગ કરનારાઓ પાંચ આસ્રવોથી વિરત થઈ જાય છે, મન વચન કાયા–રૂપ ત્રણ ગુપ્તિઓથી યુક્ત થાય છે, પૃથિવી આદિ છ કાયની યતનામા સાવધાન રહે છે, અર્થાત્ છ જીવનિકાયની વિરાધનાથી રહિત થાય છે, પાચ ઇંદ્રિયોનુ દમન કરે છે, પરીષહ અને ઉપસર્ગ સહેવામા દૃઢ એવા મુનિઓ સરલહૃદય બને છે, અથવા અવિનાશી સુખને પ્રાપ્ત કરનારા યા મોક્ષમાર્ગના સાધક બને છે (૧૧).

छाया-आतापयन्ति ग्रीष्मेषु, हेमन्तेष्वप्रावृताः ।
वर्षासु प्रतिसंलीनाः, संयताः सुसमा(हिताः)धिकाः ॥ १२ ॥

सान्वयार्थः-सुसमाहिया=प्रशस्त समाधिवाले संजया=संयमी मुनि गिम्हेसु=ग्रीष्मऋतुमें आयावयंति=आतापना लेते हैं, हेमंतेसु=हेमन्तऋतुमें अवाउडा=अल्पवस्त्र या वस्त्ररहित रहते हैं, वासासु=वर्षाऋतुमें पडिसंलीणा=कच्छुएकी भांति इन्द्रियोंका गोपन करते हैं, अर्थात् जिस ऋतुमें जिस प्रकारकी तपस्यासे अधिक कायक्लेश होता हो उस ऋतुमें वही तपस्या करते हैं ॥ १२ ॥

टीका-सुसमाधिकाः=समाधीयतेऽस्मिन् मनो विवेकिभिरिति समाधिः-प्रशस्तभावाऽवस्थानम् , सु=शोभनः समाधिर्येषां ते तथोक्ताः=विनय-श्रुतादिसमाधिसम्पन्नाः । यद्वा 'सुसमाहिताः' इति च्छाया, 'निरवद्यव्यापारविधानदत्तावधानाः' इति तदर्थः । संयता=प्रवचनमननयतनावन्तः, मुनयः ग्रीष्मेषु=घर्मर्तुषु आतापयन्ति=ऊर्ध्वाभिमुखावस्थानादिना परितापयन्ति स्वतनुमिति शेषः, आतापनां विदधतीति यावत् । घ्नन्ति=नाशयन्ति शैत्याधिक्येन चित्तसमाधिमिति हेमन्ताः[1] हिमोऽन्तोऽवयवोऽस्त्येषामिति वा पृषोदरादित्वाद् हेमन्तास्तेषु हिमर्तुषु अप्रावृताः=

---

१ ('हन्तेर्मुट् हि च' उणादिसू. ३ । १२९) इति झच् हन्तेर्हिरादेशो मुडागमो गुणश्च ।

जिस अवस्थामें आत्मज्ञानी जन प्रशस्त-भावोंसे रमण करते हैं उसे समाधि कहते हैं। अनाचीर्णोंका त्याग करनेवाले साधु उस विनय श्रुत आदि चार प्रकारकी समाधिको प्राप्त करते हैं, अथवा निरवद्य व्यापार करनेमें सदा सावधान रहते हैं। तथा प्रवचनके मनन करनेमें यत्नवान् रहते हैं। ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यके सन्मुख मुख करके भुजाएँ फैलाकर आतापना लेते हैं। शीत ऋतुमें थोड़े कपड़े रखते, या कपड़ोंको

જે અવસ્થામા આત્મજ્ઞાની જન પ્રશસ્ત-ભાવોથી રમણ કરે છે તેને સમાધિ કહે છે અનાચીર્ણોનો ત્યાગ કરનારા સાધુઓએ વિનય શ્રુત આદિ ચાર પ્રકારની સમાધિને પ્રાપ્ત કરે છે, અથવા નિરવદ્ય વ્યાપાર કરવામા સદા સાવધાન રહે છે તથા પ્રવચનનું મનન કરવામા યત્નવાન્ રહે છે ગ્રીષ્મ ઋતુમા સૂર્યની સન્મુખ મુખ રાખીને ભુજાઓને પહોળી કરીને આતાપના લે છે શીત ઋતુમા થોડા કપડાં રાખીને યા કપડા દૂર કરીને ઠંડીની આતાપના લે છે,

'अनुदरा कन्ये'–त्यत्रेव नञोऽल्पार्थकत्वेन अल्पप्रावरणाः, यद्वा प्रावरणरहिताः, वर्षासु=प्रावृट्कालेषु, प्रतिसंलीनाः=कूर्मवदिन्द्रियगोपनतत्परा भवन्तीत्यर्थः। ग्रीष्मादिषु बहुवचनप्रयोगः प्रतिवत्सरमेवंकरणसंसूचनाय ॥ १२ ॥ १२ ॥

मूलम्–परीसहरिउदंता[1], धूयमोहा[2] जिइंदिया[3]।
सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा[5], पक्कमंति[6] महेसिणो[4] ॥१३॥

छाया–परीषहरिपुदान्ता, धूतमोहा जितेन्द्रियाः।
सर्वदुःखप्रहीणार्थं, प्रक्रामन्ति महर्षिणः ॥१३॥

सान्वयार्थः–परीसहरिउदंता=परीषहरूपी शत्रुओंको जीतने वाले धूयमोहा=मोहममताके त्यागी जिइंदिया=इन्द्रियोंके दमन करनेवाले महेसिणो=महर्षि-मुनिराज सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा=समस्त दुःखोंके नाशके लिए पक्कमंति=शक्ति फोडते हैं-उद्योग करते हैं ॥ १३ ॥

टीका–'परीसह०' इत्यादि।

परीषहरिपुदान्ताः=परीषहाः=क्षुधा-पिपासादय एव रिपवः=शत्रवः पराभवकारित्वात् परीषहरिपवः, दान्ताः=अन्तर्भावितण्यर्थतया दमिताः=निगृहीता

दूर कर शीतकी आतापना लेते हैं, वर्षा ऋतुमें कछुवेकी तरह इन्द्रियोंका गोपन करनेमें तत्पर होते हैं।

ग्रीष्म, हेमन्त, और वर्षा-शब्द गाथामें बहुवचनान्त है, इससे यह आशय निकलता है कि प्रत्येक वर्षकी ऋतुओंमें ऐसा करते हैं ॥१२॥

'परीसह०' इत्यादि।

क्षुधा-पिपासा प्रभृति परीषहरूपी शत्रुओंको पराजित करते हैं।

વર્ષાઋતુમાં કાચબાની પેઠે ઇન્દ્રિયોનું ગોપન કરવામા તત્પર રહે છે

ગ્રીષ્મ, હેમન્ત અને વર્ષા શબ્દ ગાથામાં બહુ-વચનાન્ત છે, તેથી એવો આશય નીકળે છે કે પ્રત્યેક વર્ષની ઋતુઓમા એમ કરે છે (૧૨)

પરીસહ૦ ઇત્યાદિ ભૂખ, તરસ, ઇત્યાદિ પરીષહ-રૂપી શત્રુઓને પરાજિત કરે છે.

उपशमं प्रापिताः परीषहरिपवो यैस्ते तथोक्ताः,[1] धूतमोहाः=मुह्यति=सदसद्विवेक-रहितो भवत्यात्माऽनेनेति मोहोऽज्ञानं धूतः=समुज्झितो मोहो यैस्ते तथोक्ताः, जितेन्द्रियाः=जितानि=रागद्वेषवशात्स्वविषयप्रवृत्त्युपरोधपूर्वकं वशीकृतानि इन्द्रियाणि=चक्षुरादीनि यैस्ते एवंविधा महर्षयः=मुनयः सर्वदुःखप्रहीणार्थं='प्रहीण'-मिति सौत्रत्वाद् भावक्तान्तं गृह्यते, तथा च-सर्वाणि च तानि दुःखानि च सर्वदुःखानि सर्वदुःखानां प्रहीणं=परित्यागः सर्वदुःखप्रहीणं, सर्वदुःखप्रहीणाय इदं सर्वदुःखप्रहीणार्थम् 'अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्य'-मिति समासः। यद्वा 'प्रक्षीणार्थ'-मिति तदर्थः, सर्वदुःखप्रक्षीणार्थं=शारीरिक-मानसिक-निखिलदुःखविनाशार्थं प्रक्रामन्ति=समुद्युञ्जते स्वीयां शक्तिं स्फोरयन्तीत्यर्थः ॥१३॥

सम्प्रत्यध्ययनमुपसंहरन्नाह-'दुक्कराइं' इत्यादि-

मूलम्-दुक्कराइं[1] करित्ताणं[2], दुस्सहाइं[4] सहेत्तु[5] य[3]।
केइत्थ[9 10] देवलोएसु[7], केइ[8] सिज्झंति[11] नीरया[6] ॥१४॥

छायाः-दुष्कराणि कृत्वा, दुस्सहानि सोढ्वा च।
केचिदत्र देवलोकेषु, केचित् सिध्यन्ति नीरजस्काः ॥ १४ ॥

सान्वयार्थ-दुक्कराइं=दुष्कर आतापना आदि करित्ताणं=करके य=और दुस्सहाइं=कायर पुरुषोंके असह्य (परीषह आदि) सहेत्तु=सह करके केई=

१-'निष्ठान्तस्य न पूर्वनिपातः, 'लक्षणहेत्वोः क्रियायाः' इति सूत्रनिर्देशेन पूर्वनिपातप्रकरणस्याऽनित्यत्वात्।

सत्-असत्के बोधसे वंचित करनेवाले मोहको नष्ट कर देते हैं। इन्द्रियोंकी अपने अपने विषयमें जो प्रवृत्ति होती है, उस प्रवृत्तिको रोक कर इन्द्रियोंको वशमें करके जितेन्द्रिय होते हैं, ऐसे महर्षि शारीरिक और मानसिक समस्त प्रकारके समस्त दुःखोंका विनाश करनेके लिए पराक्रम फोड़ते हैं ॥१३॥

સત્ અસત્‌ના બોધથી વંચિત કરનારા મોહને નષ્ટ કરી નાખે છે ઇંદ્રિયોની પોત પોતાના વિષયોમા જે પ્રવૃત્તિ થાય છે, તે પ્રવૃત્તિને રોકીને ઇંદ્રિયોને વશ રાખીને જિતેન્દ્રિય બને છે, એવા મહર્ષિઓ શારીરિક અને માનસિક બધા પ્રકારના બધાં દુઃખોનો વિનાશ કરવાને માટે પરાક્રમ કરે છે. (૧૩)

कोई-कोई देवलोएसु=स्वर्गोंमें (उत्पन्न होते हैं), केई=कोई-कोई नीरया=कर्म-रजसे रहित-मुक्त होकर अत्थ=इसी भवमें सिज्झंति=सिद्ध होजाते हैं-मोक्ष चले जाते हैं ॥ १४ ॥

टीका-दुःखेन कर्तुं योग्यानि दुष्कराणि=आचरितुमशक्यानि कष्टसाध्यान्यातापनादीनि कृत्वा=विधाय, च=तथा दुःसहानि=कातरचित्तैः सोढुमशक्यानि परीपहोपसर्गादीनि सोढ्वा=संसह्य केचित्=मुनयः अवशिष्टकर्माणः देवलोकेषु=सौधर्मादिसुरलोकेषु 'यान्ती'-ति शेषः, केचित्=कतिपये नीरजस्काः=कर्मरजोविनिर्मुक्ताः अत्र=अत्रैव भवे सिध्यन्ति=सिद्धा भवन्ति, शिवपदमासादयन्तीत्यर्थः। अत्र टीकान्तरेषु-'अत्रे'-त्यस्य 'देवलोकेषु' इत्यनेन सहान्वयकरणं सर्वथा प्रमादविजृम्भितम् ॥ १४ ॥ १४ ॥ १४ ॥

कर्मावशेषेण ये मुनयो देवलोकं गच्छन्ति ते तत्र देवायुष्कमुपभुज्य ततश्च्युता आर्यक्षेत्रे मनुष्यजातौ सुकुले च समुत्पद्य तद्भवमोक्षगामिनो भवन्तीति दर्शयितुमाह-'खवित्ता' इत्यादि-

मूलम्-खवित्ता[७] पुव्वकम्माइं[६], संजमेण[३] तवेण[५] य[४] ।
सिद्धिमग्गमणुप्पत्ता[१], तायिणो[२] परिनिव्वुडे[८] ॥१५॥ त्ति बेमि॥

उपसंहार करते हुए कहते हैं- 'दुकराइं०' इत्यादि।

पूर्वोक्त गुणोंसे विशिष्ट मुनि दुष्कर आतापना आदि क्रियाओंका आचरण करके, तथा कायर पुरुष जिन्हें सहन नहीं कर सकते ऐसे परीषह और उपसर्गोंको सह कर अवशिष्ट-कर्मवाले कोई मुनि सौधर्म आदि देवलोकमें जाते हैं। जो कर्मरजसे सर्वथा मुक्त होजाते हैं वे इसी मनुष्य-भवमें सिद्धिपदको प्राप्त करते हैं। दूसरे टीकाकारोंने 'अत्र' शब्दको देवलोकके साथ जोड़ा है वह ठीक नहीं है, 'अत्र' शब्दका अर्थ-यहाँ-"इसी भवमें" ऐसा है ॥१४॥

હવે ઉપસંહાર કરતાં કહે છેઃ-दुकराइं० ઈત્યાદિ

પૂર્વોક્ત ગુણોથી વિશિષ્ટ મુનિ દુષ્કર આતાપના આદિ ક્રિયાઓનું આચરણ કરીને તથા કાયર પુરૂષો જે સહન કરી શકતા નથી એવા પરીષહો અને ઉપસર્ગો સહીને અવશિષ્ટ કર્મવાળા કોઈ મુનિ સૌધર્મ આદિ દેવલોકમાં જાય છે જેઓ કર્મરજથી સર્વથા મુક્ત થઈ જાય છે તેઓ આ મનુષ્યભવમાં સિદ્ધિપદને પ્રાપ્ત કરે છે બીજા ટીકાકારોએ अत्र શબ્દને દેવલોક સાથે જોડયો છે તે બરાબર નથી. अत्र શબ્દનો અર્થ અહીં 'આ ભવમાં' એવો છે (૧૪)

छाया–क्षपयित्वा पूर्वकर्माणि, संयमेन तपसा च ।
सिद्धिमार्गमनुप्राप्ताः-त्रायिणः परिनिर्वृताः ॥१५॥ इति ब्रवीमि ।

सान्वयार्थः–सिद्धिमग्गमणुप्पत्ता=मोक्षमार्गमें प्राप्त हुए ताइणो=षट्कायके रक्षक (मुनि) संजमेण=संयमके द्वारा य=और तवेण=तपके द्वारा पुव्वकम्माइं=पहले बंधे हुए कर्मोंको खवित्ता=खपा करके परिनिव्वुडे=मुक्त होते हैं। त्ति बेमि=पूर्ववत् ॥ १५ ॥

इति तृतीयाध्ययनस्य सान्वयार्थः ।

टीका–सिद्धिः=अविचलसुखनिष्पत्तिस्तस्या मार्गः=उपायो ज्ञानादिः सिद्धिमार्गस्तम् अनुप्राप्ताः=अनुगताः, त्रायिणः=षड्जीवनिकायत्राणपरायणान्तःकरणाः संयमेन=सावद्यव्यापारविरतिलक्षणेन सप्तदशविधेन, च=तथा तपसा=ऊनोदरतादिरूपेण द्वादशविधेन तपश्चरणेन पूर्वकर्माणि=प्राग्भवोपार्जितज्ञानावरणीयाद्यष्ट-

---

जो मुनि कर्म बाकी रहेनेसे देवलोकमें जाते हैं, वे भी देवलोकसम्बन्धी आयुष्यको भोग कर, वहांसे चव कर आर्य क्षेत्रमें मनुष्यजाति, और सुकुलमें जन्म लेकर उसी भवमें सिद्धि प्राप्त करते हैं। इसी विषयको सूत्रकार आगेकी गाथामें कहते हैं–"खवित्ता०" इत्यादि ।

वे मुनि, मोक्षमार्गमें प्राप्त होकर सर्वसावद्यव्यापारके त्यागरूप सत्रह प्रकारके संयमसे, तथा अनशन ऊनोदर आदि बारह प्रकारके तपसे, पहले भवोंमें बांधे हुए ज्ञानवरण आदि आठ प्रकारके समस्त

જે મુનિ, કર્મ બાકી રહેવાને લીધે દેવલોકમા જાય છે, તેઓ પણ દેવલોકસબંધી આયુષ્યને ભોગવીને, ત્યાથી ચવીને આર્યક્ષેત્રમા મનુષ્યજાતિ અને સુકુળમાં જન્મ લઇને એજ ભવમાં સિદ્ધિ પ્રાપ્ત કરે છે આ વિષયને સૂત્રકાર આગળની ગાથામા કહે છે–खवित्ता० ઇત્યાદિ

તે મુનિ, મોક્ષ–માર્ગમા પ્રવેશ કરીને સર્વસાવદ્ય–વ્યાપારના ત્યાગરૂપ સત્તર પ્રકારના સયમથી, તથા અનશન ઊનોદરી આદિ બાર પ્રકારના તપથી પહેલાંના ભવોમાં બાધેલાં જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ પ્રકારના બધાં કર્મોનો નાશ

विधकर्माणि क्षपयित्वा=क्षयं नीत्वा परिनिर्वृताः=परि सर्वतोभावेन निर्वृताः= कर्मजनित-सन्तापराहित्येन शीतलीभूताः 'भवन्ती'-ति शेषः, सिध्यन्तीत्यर्थः। इति ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ १५ ॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषा-कलित-ललित-कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्ध-गद्य-पद्य-नैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहूछत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-जैनशास्त्राचार्य-पद-भूषित-कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्य-श्रीघासीलालव्रतिविरचितायां श्रीदशवैकालिकसूत्र-स्याऽऽचारमणिमञ्जूषाख्यायां व्याख्यायां तृतीयं 'क्षुल्लकाचारकथा'ऽऽख्यमध्ययनं समाप्तम् ॥ ३ ॥



कर्मोंको नाश करके सर्वथा मुक्त हो जाते है-कर्मजन्य संतापसे रहित होकर परमशीतलीभूत होते हैं अर्थात् सिद्ध हो जाते हैं।

श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं-हे जम्बू ! तीसरे अध्ययनका जैसा भाव भगवानने फरमाया है, वैसा ही तुमसे कहता हूँ ॥१५॥

इति "क्षुल्लकाचारकथा"-नामक तीसरे अध्ययनका हिन्दीभाषानुवाद समाप्त ॥३॥



કરીને સર્વથા મુક્ત થઈ જાય છે-કર્મજન્ય સંતાપથી રહિત થઈને પરમશીતલીભૂત થાય છે, અર્થાત્ સિદ્ધ થઈ જાય છે.

સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે-હે જંબૂ ! ત્રીજા અધ્યયનનો જેવો ભાવ ભગવાને ફરમાવ્યો છે તેવો હું તને કહુ છું. (૧૫)

ઇતિ 'ક્ષુલ્લકાચારકથા' નામક ત્રીજા અધ્યયનનુ ગુજરાતી-ભાષાનુવાદ સમાપ્ત. (૩)



॥ अथ चतुर्थाध्ययनम् ॥

गतं तृतीयाध्ययनं सम्प्रति चतुर्थमारभ्यते-पूर्वाध्ययने 'अनाचीर्णानि विहायाऽऽचारे धृतिः संधार्या संयमिने'-त्युक्तम्, आचारश्च षड्विधजीवानां यथावस्थितस्वरूपमवबुध्य तत्संरक्षणपुरस्सरं भवत्यतोऽत्र षड्जीवनिकायानामाऽध्ययने तत्स्वरूपं तत्संरक्षणोपायं च प्रतिपादयिष्यन् प्रवचनस्याऽऽप्तोपदिष्टत्वं प्रदर्शयति-'सुयं मे' इत्यादि,

मूलम्—सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं-इह खलु छज्जीवणियानामज्झयणं, समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुअक्खाया सुपन्नत्ता, सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपन्नत्ती ॥१॥

चौथा अध्ययन।

अब चौथा अध्ययन कहते हैं—

तीसरे अध्ययनमें यह प्रतिपादन किया है कि महापुरुषों को अनाचीर्णों का त्याग करके, आचार-(संयम)-में दृढता रखनी चाहिए। आचारमें दृढता तब ही होती है जब षट्काय के जीवोंका वास्तविक स्वरूप जानकर उनकी रक्षा की जाय, इसलिए इस 'षड्जीवनिकाय' नामक अध्ययनमें षड्जीवनिकायका स्वरूप और उसकी रक्षाका उपाय बताते हुए 'यह प्रवचन आप्त-(भगवान्)-द्वारा उपदिष्ट है' इस बातको कहते हैं- 'सुयं मे०' इत्यादि।

અધ્યયન ૪ થું.

હવે ચોથું અધ્યયન કહે છે:—

ત્રીજા અધ્યયનમાં એમ પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે કે—મહાપુરૂષોએ અનાચીર્ણોને ત્યાગ કરીને આચાર (સંયમ)મા દૃઢતા રાખવી જોઇએ આચારમા દૃઢતા ત્યારે જ આવે છે કે જ્યારે ષટ્કાયના જીવોનું વાસ્તવિક સ્વરૂપ જાણીને તેમની રક્ષા કરવામા આવે, તેટલા માટે આ 'ષડ્જીવનિકાય' નામના અધ્યયનમાં છ—કાયનુ સ્વરૂપ અને તેની રક્ષાના ઉપાયો બતાવતાં 'આ પ્રવચન આપ્ત (ભગવાન્) દ્વારા ઉપદિષ્ટ છે' એ વાતને કહે છે—સુયં મે૦ ઇત્યાદિ.

छाया—श्रुतं मया आयुष्मन् ! तेन भगवता एवमाख्यातम्—इह खलु षड्जीवनिकायानामाध्ययनं, श्रमणेन भगवता महावीरेण काश्यपेन प्रवेदिता स्वाख्याता सुप्रज्ञप्ता, श्रेयो मेऽध्येतुमध्ययनं धर्मप्रज्ञप्तिः ॥१॥

सान्वयार्थः—आउसं=हे आयुष्मन् शिष्य ! तेणं=उस भगवया=भगवानने एवं=ऐसा अक्खायं=कहा है, मे=मैंने सुयं=सुना है, इह=यहां इस प्रवचनमें खलु=निश्चय करके छज्जीवणियानामज्झयणं=षड्जीवनिकाय नामका अध्ययन है, (वह) समणेणं=श्रमण भगवया=भगवान् कासवेणं=काश्यपगोत्रीय महावीरेणं=महावीरने पवेइया=प्रवेदित की है, सुअक्खाया=सम्यक् प्रकारसे कही है, सुपन्नत्ता=सम्यक्तया बताई है। धम्मपन्नत्ती=धर्मप्रज्ञप्ति (नामक यह) अज्झयणं=अध्ययन मे=मुझे अहिज्जिउं=पढनेको सेयं=कल्याणकारी है। अर्थात् भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित इस अध्ययनका अध्ययन करना मुझे कल्याणकारी है ॥१॥

टीका—एति=गच्छतीत्यायुः=संयमलक्षणं नीरुजं दीर्घं वा जीवितमस्यास्तीत्यायुष्मान तत्सम्बुद्धौ हे आयुष्मन् ! गुणवच्छिष्यामन्त्रणमेतत्। अनेन धर्माचरणे प्राधान्येनायुषोऽपेक्षा विद्यते इति सूचितम्। तेन=लोकत्रयप्रसिद्धेन,

यद्वा 'आउसंतेणं' इत्येकपदस्य 'आजुषमाणेन' इति संस्कृतं तस्य मयेत्यनेन सम्बन्धः, तथा च-आङिति मर्यादायाम् , आ=शास्त्रश्रवणमर्यादया जुषमाणेन=गुरून् सेवमानेन मयेत्यर्थः। विधिमन्तरेण हि श्रवणे शास्त्ररहस्यं श्रोतुरधोमुखकुम्भस्येव न किञ्चिदप्यन्तः प्रविशति। 'आजुषमाणेने'-ति विशेषणेन

हे आयुष्मन् ! अर्थात् संयमरूपी-जीवनवाले ! नीरोग-जीवनवाले ! या दीर्घजीवी !, इस सम्बोधनसे धर्मके आचरणमें आयुष्यकी प्रधानता सूचित की है (१), अथवा 'आउसंतेणं' यह एक पद है, इसकी छाया 'आजुषमाणेन' होती है, अर्थात् गुरुकी सेवा करनेवाले मैंने, इस पदसे

હે આયુષ્મન્! અર્થાત્ સંયમ-રૂપી-જીવન-વાળા! નીરોગી-જીવન-વાળા! યા દીર્ઘજીવી!, આ સંબોધનથી ધર્મના આચરણમાં આયુષ્યની પ્રધાનતા સૂચિત કરી છે (૧), અથવા आउसंतेणं એ એક પદ છે, એની છાયા आजुषमाणेन એ પ્રમાણે થાય છે; અર્થાત્ ગુરૂની સેવા કરનારા એવા મેં, આ પદથી 'ગુરૂની

गुरुमाराध्य शिक्षां लब्धवतः शिष्यस्य शास्त्राध्ययनं सफलीभवतीति द्योतितम् ।

अथवा 'आउसंतेणं' इत्यस्य 'आवसता' इति संस्कृतम्, तस्यापि 'मये'-त्यनेनैव सम्बन्धः, आङ् प्राग्वन्मर्यादार्थकस्तथाच–आ=शिष्योचितमर्यादया वसता=भगवदन्तिके निवासं कुर्वता मयेत्यर्थः । अनेन शिष्यस्य गुरुकुलनिवासः सूचितः ।

भगवता=भगः=ज्ञानं सकलपदार्थविषयकम् (१), माहात्म्यम्=अनुपम-महनीयमहिमसम्पन्नत्वम् (२), यशः=विविधानुकूलप्रतिकूलपरीषहोपसर्गसहनसमुद्-भूता जगद्रक्षणप्रज्ञासमुत्था वा कीर्त्तिः (३), वैराग्यम्=क्रोधादिकषायनिग्रहल-क्षणम् (४) मुक्तिः=सकलकर्मक्षयलक्षणो मोक्षः (५), रूपम्=सुरासुरनरहृदयहारि सौन्दर्यम् (६) वीर्यम्=अन्तरायान्तजन्यमनन्तसामर्थ्यम् (७), श्रीः=घातिकर्म-

---

'गुरुकी सेवा करके सीखनेसे ही शास्त्रका अध्ययन सफल होता है' यह सूचित होता है (२), 'आवसता' ऐसी भी छाया होती है, अर्थात् शिष्यके योग्य मर्यादा-पूर्वक भगवानके समीप रहनेवाले मैंने (सुना), इस पदसे गुरुकुलमें निवास करना सूचित किया है ।

यहां 'भग' शब्दके दश अर्थ हैं–(१) समस्त पदार्थोंको विषय करने-वाला ज्ञान, (२) अनुपम-महिमा, (३) विविध प्रकारके अनुकूल और प्रतिकूल परीषहोंको सहन करनेसे उत्पन्न होनेवाली या संसारकी रक्षा करनेवाले अलौकिक ज्ञानसे उत्पन्न होनेवाली कीर्त्ति, (४) क्रोध आदि कषायोंका सर्वथा निग्रहरूप वैराग्य, (५) समस्त कर्मोंका क्षयस्वरूप मोक्ष, (६) सुर–असुर और नरोंके अन्तःकरणको हर लेनेवाला सौन्दर्य,

---

સેવા કરીને શીખવાથી જ શાસ્ત્રનું અધ્યયન સફળ થાય છે' એ સૂચિત થાય છે (૨), આવસતા એવી પણ છાયા થાય છે અર્થાત્ શિષ્યને યોગ્ય મર્યાદા-પૂર્વક ભગવાન્‌ની સમીપે રહેનારા એવા મેં (સાંભળ્યું), એ પદથી ગુરૂકુળમાં નિવાસ કરવાનું સૂચન કરેલું છે

અહી 'भग' શબ્દના દસ અર્થ છે (૧) બધા પદાર્થોને વિષય કરવા-વાળું જ્ઞાન, (૨) અનુપમ–મહિમા, (૩) વિવિધ પ્રકારના અનુકૂળ અને પ્રતિકૂળ પરીષહોને સહન કરવાથી ઉત્પન્ન થનારી અથવા જગતની રક્ષા કરનારા અલૌ-કિક જ્ઞાનથી ઉત્પન્ન થનારી કીર્તિ, (૪) ક્રોધ આદિ કષાયોના સર્વથા નિગ્રહ-રૂપ વૈરાગ્ય, (૫) બધા કર્મોના ક્ષય-સ્વરૂપ મોક્ષ, (૬) સુર અસુર અને નરોના અંતઃકરણને હરનારૂં સૌંદર્ય, (૭) અંતરાય કર્મના નાશથી ઉત્પન્ન થનારૂં

पटलविघटनजनितानन्तचतुष्टयलक्ष्मीः (८), धर्मः=अपवर्गद्वारकपाटोद्घाटनसाधनम्, श्रुतादिरूपो यथाख्यातचारित्ररूपो वा (९), ऐश्वर्यं=त्रैलोक्याधिपत्यं (१०) चाऽस्यास्तीति भगवान् तेन तथोक्तेन, एवम्='धम्मो मंगलमुक्किट्ठं'-मित्यारभ्य 'तायिणो परिनिव्वुडे' इत्यन्तं यावत् पूर्वोपदिष्टरूपेण, आख्यातम्-परस्परासङ्कीर्णतया कथितम्, मे=मया श्रुतम्=श्रवणगोचरीकृतम्। खलुशब्दो वाक्यालङ्कारे। इह=अस्मिन् प्रवचने, षड्जीवनिकायनामाध्ययनम्=षट् च ते पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसलक्षणा जीवाश्चेति षड्जीवास्तेषां निकायः=समूहः प्रतिपाद्यत्वेनाऽस्ति यस्यामागमपद्धतौ सा 'षड्जीवनिकाया' तन्नाम यस्य तच्च तदध्ययनं चेति [१]षड्जीवनिकायानामाध्ययनम् 'अस्ती'-तिशेषः।

१ सूत्रे 'छज्जीवणिया' इति पदं 'स्वराद्यस्य' (४।४।६२) इति निकायाघटकयकारस्य लोपे, 'क-ग-च-ज-त-द-प य-वां प्रायो लुक्' इति ककारलोपे कृते 'नि+आ+आ+' इति स्थिते 'सवर्णे दीर्घः' (१।२।७) इति द्वयोराकारयोः स्थाने दीर्घैकादेशे 'अवर्णो यश्रुतिः' इति यकारश्रुत्या णत्वेन च सिद्धम्।

(७) अन्तराय कर्मके नाशसे उत्पन्न होनेवाला अनन्त बल, (८) घातिया कर्मरूपी पटलके हट जानेसे प्रादुर्भूत होनेवाली अनन्त-चतुष्टय लक्ष्मी, (९) मोक्षके द्वारको खोलनेका साधन श्रुत–चारित्र–यथाख्यातचारित्ररूप धर्म, (१०) तीन लोकका आधिपत्य रूप ऐश्वर्य।

ये सब भगशब्दके अर्थ जिनमें पाये जाते हैं उन्हें भगवान् कहते हैं। हे आयुष्मन्! 'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं' से लेकर 'तायिणो परिनिव्वुडे' तक सब भगवानने ही कहा है और मैंने सुना है। इस अध्ययनका नाम 'षड्जीवनिकाया' है। वह इसलिए कि इसमें पृथिवी आदि षड्जीव-निकायोंका वर्णन है।

અનંત બળ. (૮) ઘાતી–કર્મ–રૂપી પડળ હઠી જવાથી ઉત્પન્ન થનારી અનંત ચતુષ્ટય લક્ષ્મી, (૯) મોક્ષના દ્વારને ખોલવાના સાધન શ્રુત–ચારિત્ર–યથાખ્યાત–ચારિત્ર–રૂપ ધર્મ, (૧૦) ત્રણ લોકના આધિપત્ય–રૂપ ઐશ્વર્ય.

આ બધા ભગ શબ્દના અર્થો જેનામાં મળી આવે છે તેને ભગવાન્ કહે છે. હે આયુષ્મન્! ધમ્મો મંગલમુક્કિટ્ઠં થી લઈને તાયિણો પરિનિવ્વુડે સુધી બધુંય ભગવાને જ કહ્યું છે અને મેં સાંભળ્યું છે. આ અધ્યયનનું નામ 'ષડ્-જીવનિકાયા' છે તે એટલા માટે કે એમાં પૃથિવી-આદિ છ જીવનિકાયનું વર્ણન છે

'सा च षड्जीवनिकाया' इत्यध्याह्रियते उत्तरवाक्याऽऽकाङ्क्षोत्थानाय, श्रमणेन=श्राम्यति=तपस्यतीति श्रमणस्तेन सार्द्धद्वादशवर्षाणि घोरतपश्चरणाच्छ्रमण इति प्रसिद्धिं लब्धवता, भगवता, काश्यपेन=काश्यपगोत्रोत्पन्नेन महावीरेण=वीरयति=पराक्रमते मोक्षानुष्ठाने इति वीरः[1], यद्वा वि=विशेषेण ईरयति=गमयति प्रापयति मोक्षं प्रति भव्यजनानिति, वि=विशेषेण ईर्त्ते=गच्छति क्षपिताखिलकर्मा मोक्षमिति, वि=विशेषेण ईरयति=कम्पयति कषायादिपरिपन्थिन इति, वि=विशेषेण ईरयति=प्रक्षिपति घनघातिकर्मपटलमवकरनिकरमिवेति, वि=विशेषेण ईरयति=प्रेरयति प्रवर्त्तयति संयमाद्यनुष्ठाने प्राणिन इति वा वीरः,[2] महाँश्चासौ वीरश्च महावीरस्तेन श्रीवर्द्धमानस्वामिनेत्यर्थः। प्रवेदिता=प्रकर्षेण सकलप्राणिगणस्य स्वस्वभाषापरिणमनरूपेण यथावस्थितार्थद्वारेण च वेदिता=केवलाऽऽलोकेन

१ 'वीर विक्रान्तौ' अस्मात्पचाद्यच्।

२ 'ईर गतौ कम्पने च' इत्यादादिकात् 'ईर क्षेपे' इति चौरादिकाच्च धातोः पचाद्यच्।

साढे बारह वर्ष तक घोर तपश्चरण करनेके कारण श्रमण नामसे प्रसिद्ध काश्यप गोत्रमें उत्पन्न होनेवाले भगवान् महावीरने, वीर शब्दके छह अर्थ हैं, अर्थात्-(१) मोक्षके अनुष्ठानमें पराक्रम करनेवाले, अथवा (२) भव्य जीवोंको मोक्षकी प्राप्ति करानेवाले, या (३) समस्त कर्मोंको दूर करके मोक्षको प्राप्त होनेवाले, (४) कषाय आदि शत्रुओंको सर्वथा हरानेवाले, (५) चार घन-घातिया कर्मोंको कचरेकी तरह दूर करनेवाले (६) प्राणियोंको विशेष-रूपसे संयमके अनुष्ठानमें प्रवृत्ति करानेवाले श्रीवर्द्धमान स्वामीने, प्रत्येक प्राणीकी अपनी २ भाषामें परिणत होनेवाले इस प्रवचनको केवल-ज्ञानसे जानकर प्रतिपादन किया है, पूर्वापर-

સાડા બાર વર્ષ સુધી ઘોર તપશ્ચર્યા કરવાને કારણે શ્રમણ નામથી પ્રસિદ્ધ, કશ્યપ ગોત્રમા ઉત્પન્ન થએલા ભગવાન્ મહાવીરે (વીર શબ્દના છ અર્થ છે), અર્થાત્ (૧) મોક્ષના અનુષ્ઠાનમા પરાક્રમ કરનારા, અથવા (૨) ભવ્ય જીવોને મોક્ષની પ્રાપ્તિ કરાવનારા, યા (૩) સર્વ કર્મોને દૂર કરીને મોક્ષને પ્રાપ્ત થએલા, (૪) કષાય આદિ શત્રુઓને સર્વથા હઠાવનારા, (૫) ચાર ઘનઘાતી કર્મોને કચ-રાની પેઠે દૂર કરી દેનારા, (૬) પ્રાણીઓને વિશેષ-રૂપથી સયમના અનુષ્ઠાનમા પ્રવૃત્તિ કરાવનારા એવા શ્રી વર્ધમાન સ્વામીએ, પ્રત્યેક પ્રાણીની પોત-પોતાની ભાષામા પરિણુત થવાવાળું આ પ્રવચન કેવળ જ્ઞાનથી જાણીને પ્રતિપાદન કર્યું છે,

विलोक्य प्रतिपादिता, स्वाख्याता=सुष्ठु-पूर्वापराविरोधियुक्तयुक्तिभिरुपपन्नतया-ऽऽख्याता=उक्ता, सुप्रज्ञप्ता=सुष्ठु-सदेवमनुजासुरसभायां दिव्यध्वनिना प्रज्ञप्ता=प्ररूपिता, यद्वा धातूनामनेकार्थत्वादुपसर्गसमभिव्याहारबलाचेह ज्ञपिरासेवनार्थः, तथा च-येनैव रूपेणाऽऽख्याता तेनैव रूपेण प्र=प्रकर्षेण ज्ञप्ता=आसेविता, अणुमात्रतोऽपि हिंसां परिहरता भगवता यथाकथितमाचरितेत्यर्थः। तदेतदध्ययनं षड्जीवनिकायाख्यं धर्मप्रज्ञप्तिः=धर्मप्ररूपकम्, यद्वा धर्मप्रज्ञप्तिः=एतदपरसञ्ज्ञकं मे=मम अध्येतुम्=अभ्यसितुं श्रेयः=प्रशस्यं निःश्रेयसकरमित्यर्थः ॥ १ ॥

एतन्निशम्य जम्बूस्वामी परिपृच्छति-'कयरा०' इत्यादि।

मूलम्-कयरा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुअक्खाया सुपन्नत्ता, सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपन्नत्ती ? ॥२॥

छाया—कतरा खलु सा षड्जीवनिकाया नामाध्ययनं श्रमणेन भगवता महावीरेण काश्यपेन प्रवेदिता स्वाख्याता सुप्रज्ञप्ता, श्रेयो मेऽध्येतुम् अध्ययनं धर्मप्रज्ञप्तिः ? ॥२॥

सान्वयार्थः—सा खलु=वह छज्जीवणिया=षड्जीवनिकाया कयरा=कौनसी है ? जो अज्झयणं नाम=अध्ययन नाम से प्रसिद्ध है, जो कासवेणं=कश्यपगोत्रीय समणेण=श्रमण भगवया=भगवान् महावीरेणं=महावीरने

विरोध-रहित और युक्तियों सहित कहा है, देव मनुष्य और असुरोंकी सभा-समवसरण-में दिव्य ध्वनिसे प्ररूपित किया है। अथवा भगवानने जैसा कहा है वैसा ही उन्होंने आचरण किया है।

इसलिए यह षड्जीवनिकाया नामक, धर्मकी प्ररूपणा करनेवाला अध्ययन मेरे अध्ययन करनेके लिए श्रेय है-कल्याणकारी है ॥१॥

यह सुनकर जम्बूस्वामी प्रश्न करते है-'कयरा खलु०' इत्यादि।

પૂર્વાપર-વિરોધ-રહિત અને યુક્તિઓ સહિત કહ્યું છે, દેવ મનુષ્ય અને અસુરોની સભા—સમવસરણમા દિવ્ય ધ્વનિથી પ્રરૂપિત કર્યું છે અથવા ભગવાને જેવુ કહ્યુ છે એવુ તેનુ આચરણ કર્યુ છે

તેથી કરીને આ ષડ્જીવનિકાયા નામક ધર્મની પ્રરૂપણા કરનારૂં અધ્યયન મારે અધ્યયન કરવાને શ્રેય છે કલ્યાણકારી છે (૧)

આ સાભળીને જંબૂસ્વામી પ્રશ્ન કરે છે-कयरा खलु० ઇત્યાદિ.

पवेइया=प्रवेदित की है, सुअक्खाया=सम्यक्प्रकार कही है, सुपन्नत्ता=सम्यक्तया बताई है। वह धम्मपन्नत्ती अज्झयणं=धर्मप्रज्ञप्ति अपरनामक अध्ययन अहिज्जिउं=पढना मे=मुझे सेयं=श्रेय है ॥२॥

टीका—सा=पूर्वोक्ता षड्जीवनिकाया खलु कतरा=किंभूता या अध्ययनं नाम=अध्ययनत्वेन प्रसिद्धेत्यर्थः, या च काश्यपेनेत्यादि व्याख्यातपूर्वम्। 'कयरा' इत्यनेन मोक्षाभिलाषिणा शिष्येण सकलक्रियाकलापे स्वाभिमानपरित्यागपूर्वकं गुरुः प्रष्टव्य इति सूचितम् ॥२॥

सम्प्रति सुधर्मस्वामिन उत्तरयन्ति-'इमा खलु०' इत्यादि।

मूलम्-इमा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुअक्खाया सुपन्नत्ता, सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपन्नत्ती ॥३॥

छाया-इयं खलु सा षड्जीवनिकाया नामाध्ययनं श्रमणेन भगवता महावीरेण काश्यपेन प्रवेदिता स्वाख्याता सुप्रज्ञप्ता, श्रेयो मेऽध्येतुमध्ययनं धर्मप्रज्ञप्तिः ॥३॥

सान्वयार्थः-सा=वह छज्जीवणिया=षड्जीवनिकाया खलु=निश्चय करके इमा=यह है जो अज्झयणं नाम=अध्ययन नाम से प्रसिद्ध है, और जो कासवेणं=काश्यपगोत्रीय समणेणं=श्रमण भगवया=भगवान् महावीरेणं=महावीरने

हे भगवन्! पहले बताई हुई षड्जीवनिकायाका स्वरूप क्या है? जो इस अध्ययनरूपसे कही गई है अर्थात् जिसका इस समस्त अध्ययनमें वर्णन किया गया है, और भगवान् महावीर स्वामीने यावत् प्ररूपित किया है? और धर्मप्रज्ञप्ति अपरनामसे प्रसिद्ध उस अध्ययन का पढना मेरे लिये कल्याणकर है?। इस प्रश्नसे यह आशय निकलता है कि-मुमुक्षु शिष्यको अहंकार त्यागकर समस्त क्रियाएँ गुरुसे पूछनी चाहिए ॥२॥

श्री सुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं-'इमा खलु०' इत्यादि।

હે ભગવાન્! પહેલાં બતાવેલી ષડજીવનિકાયાનું સ્વરૂપ કેવું છે કે જે આ અધ્યયનરૂપથી કહેવામાં આવી છે? અર્થાત્ જેનું આ આખા અધ્યયનમાં વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે, અને ભગવાન્ મહાવીર સ્વામીએ જેનું પ્રરૂપણ કર્યું છે? અને ધર્મપ્રજ્ઞપ્તિ એમ બીજા નામથી જે પ્રસિદ્ધ છે તે અધ્યયનનું અધ્યયન કરવું મારે માટે કલ્યાણકારક છે? આ પ્રશ્નથી એવો આશય નીકળે છે કે-મુમુક્ષુ શિષ્યે અહંકારનો ત્યાગ કરીને બધી ક્રિયાઓ ગુરૂને પૂછવી જોઇએ (૨)

શ્રી સુધર્મા સ્વામી ઉત્તર આપે છે કે-इमा खलु० ઈત્યાદિ

पवेइया=प्रवेदित की है, सुअक्खाया=सम्यक्प्रकार कही है, सुपन्नत्ता=सम्यक्तया बताई है। वह धम्मपन्नत्ती अज्झयणं=धर्मप्रज्ञप्ति अपरनामक अध्ययन अहिज्जिउं=पढना मे=मुझे सेयं=श्रेयस्कारी है ॥३॥

टीका—'इमा' इत्यनेन 'विनीतविनेयाय करुणासञ्चारचारुहृदयेन गुरुणा शास्त्रोपदेशः कर्त्तव्यः' इति सूचितम्। अन्यत्प्राग्वत् ॥३॥

तामेव षड्जीवनिकायां सूत्रकारः प्रदर्शयति='तंजहा' इत्यादि।

मूलम्-तंजहा–पुढविकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया, तसकाइया। पुढवी चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं। आऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं। तेऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं। वाऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं। वणस्सई चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं ॥४॥

छाया–तद्यथा–पृथिवीकायिकाः (१), अप्कायिकाः (२), तेजस्कायिकाः (३), वायुकायिकाः (४), वनस्पतिकायिकाः (५), त्रसकायिकाः (६)। पृथिवी चित्तवत्याख्याता, अनेकजीवा, पृथक्सत्त्वा, अन्यत्र शस्त्रपरिणतायाः। आपश्चित्तवत्य आख्याताः, अनेकजीवाः, पृथक्सत्त्वाः, अन्यत्र शस्त्रपरिणताभ्यः।

इस पाठका व्याख्यान पहले किया जा चुका है। 'इमा' पदसे यह सूचित होता है कि करुणासागर गुरु महाराज विनीत शिष्यको शास्त्रका उपदेश अवश्य देवें ॥३॥

उस षड्जीवनिकायको सूत्रकार दिखाते हैं–'तंजहा' इत्यादि।

આ પાઠનુ વ્યાખ્યાન પહેલા કરવામાં આવ્યું છે. इमा શબ્દથી એમ સૂચિત થાય છે કે કરૂણાસાગર ગુરૂ મહારાજ વિનીત શિષ્યને શાસ્ત્રનો ઉપદેશ જરૂર આપે (૩)

એ ષડ્જીવનિકાયને સૂત્રકાર દર્શાવે છે-तंजहा– ઇત્યાદિ.

तेजश्चित्तवदाख्यातम् , अनेकजीवं, पृथक्सत्त्वमन्यत्र शस्त्रपरिणतात् । वायुश्चित्तवानाख्यातो-ऽनेकजीवः पृथक्सत्त्वोऽन्यत्र शस्त्रपरिणतात् , वनस्पतिश्चित्तवानाख्यातोऽनेकजीवः पृथक्सत्त्वोऽन्यत्र शस्त्रपरिणतात् ॥४॥

सान्वयार्थः-तंजहा-वह इस प्रकार है- (१) पुढविकाइया=पृथ्वीकायिक, (२) आउकाइया=अप्कायिक, (३) तेउकाइया=तेजस्कायिक, (४) वाउकाइया=वायुकायिक, (५) वणस्सइकाइया=वनस्पतिकायिक, (६) तसकाइया=त्रसकायिक॥

अब आचार्य महाराज एक-एककी सचित्तता बतलाते हैं-—

(१) पृथ्वीकाय.

सान्वयार्थः-(भगवानने) पुढवी=पृथ्वीको चित्तमंतं=सचित्त अक्खाया=कही है, वह अणेगजीवा=अनेकजीववाली है-अनेकजीवोंका पिण्डभूत है, पुढोसत्ता=उसमें अनेकजीव भिन्न-भिन्न रहे हुए हैं, अन्नत्थ=सिवाय सत्थपरिणएणं=शस्त्रपरिणतके, अर्थात् जहां शस्त्र नहीं लगा है वहांका पृथ्वीकाय सब सचित्त है। इसी प्रकार छहों कायोंमें समझ लेना चाहिये ॥१॥

(२) अप्काय.

सान्वयार्थः-आऊ=जल चित्तमंतं=सचित्त अक्खाया=कहा है, वह अणेगजीवा=अनेक जीवोंका आश्रयभूत है, पुढोसत्ता=वे अनेक जीव भिन्न२ रहे हुए हैं, अन्नत्थ=सिवाय सत्थपरिणएणं=शस्त्रपरिणतके ॥२॥

(३) तेजस्काय.

तेऊ=तेजस्काय चित्तमंतं=सचित्त अक्खाया=कहा गया है, वह अणेगजीवा=अनेक जीवोंका आश्रयभूत है, पुढोसत्ता=वे अनेक जीव भिन्न-भिन्न रहे हुए हैं, अन्नत्थ=सिवाय सत्थपरिणएणं=शस्त्रपरिणतके ॥३॥

(४) वायुकाय.

वाऊ=वायु चित्तमंतं=सचित्त अक्खाया=कहा गया है, वह अणेगजीवा=अनेक जीवोंका आश्रय है, पुढोसत्ता=भिन्न-भिन्न जीवोंवाला है, अन्नत्थ=सिवाय सत्थपरिणएणं=शस्त्रपरिणतके ॥४॥

(५) वनस्पतिकाय.

वणस्सई=वनस्पति चित्तमंतं=सचित्त अक्खाया=कही गई है, वह अणे-

गजीवा=अनेक जीवोंका आधार है, पुढोसत्ता=भिन्न-भिन्न जीववाली है, अन्नत्थ=सिवाय सत्थपरिणएणं=शस्त्रपरिणतके ॥

भावार्थः-पांचों स्थावरकाय सचित्त हैं, वे अनेक जीवरूप हैं, उन जीवोंका अस्तित्व पृथक्-पृथक् है, । इन कायोंके जो जो शस्त्र हैं उनसे यदि ये परिणत हो जायँ तो अचित्त हो जाते हैं ॥५॥

टीका-तद्यथा=तदेव प्रदर्श्यते-पृथिवी=कठिनस्वभावा सैव कायः=शरीरं येषां ते पृथिवीकायास्त एव पृथिवीकायिकाः ('विनयादित्वात्स्वार्थे ठक्, तस्येकादेशः' एवमग्रेऽपीयं प्रक्रिया ज्ञेया)। आपः=द्रवलक्षणास्ता एव कायो येषां तेऽप्कायास्त एवाप्कायिकाः। तेजः=उष्णलक्षणं तदेव कायो येषां ते तेजस्कायिकाः। वायुः=चलनस्वभावः स एव कायो येषां ते वायुकायिकाः। वनस्पतिकायिकाः= वनस्पतिः=लतातरुगुल्मादिलक्षणः कायो येषां ते तथोक्ताः। त्रस्यति शीतातपादिजनितपीडया उद्विजते इति त्रसः, त्रसनस्वभावः कायो येषां तथोक्ताः।

अथ प्रत्येकं सचित्ततां दर्शयन्नाह—

कठिनता-स्वभाववाली पृथ्वी ही जिनका शरीर है उन्हें पृथ्वीकायिक कहते हैं। द्रवत्व-स्वभाववाला जल ही जिनका शरीर है उन्हें अप्कायिक कहते हैं। उष्णता-स्वभाववाला तेज ही जिनका शरीर है उन्हें तेजस्कायिक कहते हैं। चलन-स्वभाववाला वायु ही जिनका शरीर है उन्हें वायुकायिक कहते हैं। लता वृक्ष-गुल्म आदि वनस्पति ही जिनका शरीर है उन्हें वनस्पतिकायिक कहते हैं। जिन्हें शीत-आतप (गर्मी) आदि-द्वारा उत्पन्न हुई पीडासे त्रास होता है ऐसा चलने-फिरनेवाला काय जिनका होता है उन्हें त्रसकायिक कहते हैं।

अब एक-एककी सचित्तता दिखलाते हैं—

૧-કઠિનતા-સ્વભાવવાળી પૃથ્વી જ જેનું શરીર છે તેને પૃથ્વીકાયિક કહે છે. ૨-દ્રવત્વ-સ્વભાવવાળુ જળ જ જેનું શરીર છે તેને અપ્કાયિક કહે છે ૩-ઉષ્ણતા-સ્વભાવવાળુ તેજ જ જેનું શરીર છે તેને તેજસ્કાયિક કહે છે ૪-ચલન-સ્વભાવવાળો વાયુ જ જેનુ શરીર છે તેને વાયુકાયિક કહે છે ૫-લતા, વૃક્ષ, ગુલ્મ (ગુચ્છ) આદિ વનસ્પતિ જ જેનું શરીર છે તેને વનસ્પતિકાયિક કહે છે ૬-જેને ઠંડી ગરમી આદિ દ્વારા ઉત્પન્ન થએલી પીડાથી ત્રાસ થાય છે એવી હરવા-ફરવાવાળી કાયા જેની હોય છે તેને ત્રસકાયિક કહે છે.

હવે એકેકની સચિત્તતા દેખાડે છે

पृथिवीकायः ।

पृथिवी, चित्तं=चेतनाऽस्त्यस्या इति चित्तवती=सात्मिका आख्याता= केवलज्ञानाऽऽलोकावलोकिताखिललोकालोकलक्षणेन भगवता कथिता ।

ननु पृथिव्याः कथं सचेतनत्वमिति चेदाकर्णय-(१) पृथिवी सचेतना खानित-खनिभूम्यादिषु तत्सजातीयावयवान्तरद्वारा परिपूर्त्तिदर्शनात् मनुष्यादिशरीरवत्, तद्यथा-मनुष्यशरीरस्थं व्रणादिकं स्वयं भ्रियते, एवमेव खानितं खनिभूम्यादिकं स्वसमानजातीयावयवैर्भ्रियमाणं प्राक्समानरूपतां भजते तस्माद् गम्यते पृथिव्याः सचेतनत्वम् ।

पृथिवीकाय ।

केवल-ज्ञानरूपी आलोकसे समस्त लोक और अलोकको प्रत्यक्ष जाननेवाले भगवानने पृथिवीको सचेतन कहा है ।

प्रश्न—पृथिवी सचेतन कैसे है ?

उत्तर—(१) पृथिवी सचेतन है, क्यों कि उसमें खोदी हुई खान आदिकी भूमि सजातीय अवयवोंसे स्वयमेव भर जाती है, जो सजातीय अवयवोंसे स्वयं भर जाता है वह सचेतन होता है, जैसे मनुष्यका शरीर । अर्थात् मनुष्यके शरीरमें घाव हो जाता है वह उसी तरहके अवयवोंसे स्वयं भर जाता है, उसी प्रकार खोदी हुई खान आदिकी भूमि उसी प्रकारके अवयवोंसे भर जाती है और पहलेके समान हो जाती है इसलिए पृथिवी सचेतन है ।

'પૃથિવીકાય'

કેવળ-જ્ઞાન-રૂપી પ્રકાશથી બધા લોક અને અલોકને પ્રત્યક્ષ જાણુવાવાળા ભગવાને પૃથિવીને સચેતન કહી છે

પ્રશ્ન-પૃથિવી સચેતન કેવી રીતે છે ?

ઉત્તર-(૧) પૃથિવી સચેતન છે, કારણુ કે તેમા ખોદેલી ખાણુ આદિની ભૂમિ સજાતીય અવયવોથી પોતાની મેળે ભરાઇ જાય છે. જે સજાતીય અવયવોથી સ્વયમેવ ભરાઇ જાય છે તે સચેતન હોય છે, જેમકે મનુષ્યનું શરીર. અર્થાત્ મનુષ્યના શરીરમા ઘા પડે છે તે એવી તરેહના અવયવોથી પોતાની મેળે ભરાઇ જાય છે, એ જ રીતે ખોદેલી ખાણુ આદિની ભૂમિ એ પ્રકારના અવયવોથી ભરાઇ જાય છે અને પહેલાંની જેવી બની જાય છે, તેથી પૃથિવી સચેતન છે.

(२) यद्वा–पृथिवी सजीवा दैनिकघर्षणोपचयसंदर्शनात् चरणतलवत् , तद्यथा-चरणतलं घृष्यते पुष्यति च तद्वत् पृथिव्यपि प्रत्यहं घृष्यते उपचीयते च तस्मात्तस्याः सजीवत्वम् । अथवा—

(३) विद्रुमपाषाणादिरूपा पृथिवी सचेतना काठिन्ये सत्यपि वृद्ध्यादिदर्शनात् शरीरस्थिताऽस्थ्यादिवत् , तद्यथा–शरीरस्थितमस्थ्यादिकं कमठपृष्ठकठिनं सदपि चित्तवदनुभूयमानमुपचयं च गच्छत् संदृश्यते । एवं विद्रुमशिलाद्यात्मिकायाः पृथिव्याः काठिन्ये सत्यपि वृद्ध्यादिकं प्रत्यक्षं दृश्यते तस्मात्तस्याः सचेतनत्वम् । अथ च—

---

(२) पृथिवी सचेतन है, क्योंकि उसमें प्रतिदिन घर्षण और उपचय देखा जाता है जैसे पैरका तलुवा । अर्थात् जैसे तलुवा घिसकर फिर भर जाता है वैसे ही पृथिवी भी घिस कर भर जाती है इसलिए वह सजीव है । अथवा—

(३) विद्रुम (मूंगा) पाषाण आदि-रूप पृथिवी सचेतन है, क्योंकि कठिन होने पर भी उसमें वृद्धि देखी जाती है जैसे शरीरकी हड्डी आदि । अर्थात् जैसे शरीरकी हड्डी आदि कछुएकी पीठकी भाँति कठोर होने पर भी सचेतन है और बढती है उसी प्रकार विद्रुम, शिला आदि-रूप पृथिवीमें कठिनता होनेपर भी वृद्धि आदि गुण प्रत्यक्षसे हैं इससे सिद्ध है कि पृथिवी सचेतन है । अथवा—

---

(૨) પૃથિવી સચેતન છે, કારણ કે તેમા પ્રતિદિન ઘર્ષણ અને ઉપચય જોવામાં આવે છે, જેમકે પગનું તળીઉ અર્થાત્ જેમ પગનું તળીઉ ઘસાઈને પાછું ભરાઈ જાય છે, તેમ પૃથિવી પણ ઘસાઈને ભરાઈ જાય છે, તેથી પૃથિવી સજીવ છે. અથવા—

(૩) વિદ્રુમ (પ્રવાળ) પત્થર આદિ–રૂપ પૃથિવી સચેતન છે, કારણ કે કઠિન હોવા છતા તેમાં વૃદ્ધિ જોવામાં આવે છે, જેમકે શરીરનાં હાડકાં વગેરે, અર્થાત્ જેમ શરીરના હાડકા વગેરે કાચબાની પીઠની જેમ કઠોર હોવા છતાં સચેતન છે અને વધે છે, તેવી રીતે વિદ્રુમ, શિલા આદિ–રૂપ પૃથિવીમા કઠિનતા હોવા છતા તેમાં વૃદ્ધિ આદિ ગુણ પ્રત્યક્ષ છે. એથી સિદ્ધ થાય છે કે પૃથિવી સચેતન છે અથવા—

(४) विद्रुमाद्यात्मिका पृथिवी सचित्ता, छेदादौ तत्सजातीयधातूत्पत्तिदर्शनात् अर्शोऽङ्कुरवत्, तद्यथा=अर्शसोऽङ्कुरे छिन्नेऽपि पुनस्तत्समान एवाङ्कुरः प्रादुर्भवति, एवं विद्रुमशिलाद्यात्मिकायाः पृथिव्याः खन्यादौ छेदेऽपि तत्सजातीयधातुभिस्तद्रिक्तभागः परिपूर्यते, तस्मात्सिद्धं पृथिव्याः सचित्तत्वम् ।

अनेकजीवा=अनेके=बहवो जीवाः=एकेन्द्रिया यस्यां सा तथोक्ता । पृथक्सत्त्वा=पृथक्-पृथग्भूताः=अङ्गुलासंख्येयभागमात्रावगाहनामाश्रित्याऽनेके विभिन्नरूपेण स्थिताः सत्त्वाः=स्पर्शनेन्द्रियवन्तो जीवा यस्यां सा तथोक्ता 'आख्याता' इति पूर्वोक्तेनान्वयः, भगवता प्ररूपितेति तदर्थः ।

ननु तर्ह्युक्तस्वरूपायां जीवपिण्डभूतायां पृथिव्यां गमनागमनादिक्रियां कुर्वतां

---

(४) विद्रुम आदिरूप पृथिवी सचित्त है, क्योंकि उसे काट देने पर भी सजातीय धातुकी उत्पत्ति देखी जाती है; जैसे शरीरमें मसा। अर्थात् जैसे मसाको ऊपरसे काट डालने पर भी फिर उसीके समान अवयव ऊग आते हैं, वैसेही–विद्रुम और शिला आदिको खानमें काट देने पर भी सजातीय स्कन्धोंसे कटा हुआ भाग फिर भर जाता है, अतः पृथिवीकी सचेतनता सिद्ध है ।

वह पृथिवी अनेक जीववाली है और वे स्पर्शनेन्द्रियवाले पृथिवीकायके जीव अंगुलके असंख्यातवें–भाग–प्रमाण अवगाहनाको आश्रय करके भिन्न-भिन्न स्वरूपसे स्थित हैं, ऐसा भगवानने कहा है ।

शिष्य गुरुसे पूछता है–हे गुरु महाराज ! जबकि पृथिवी जीवोंका

---

(४) વિદ્રુમ આદિ રૂપ પૃથિવી સચિત્ત છે, કારણ કે તેને કાપી નાંખવા છતાં પણ સજાતીય ધાતુની ઉત્પત્તિ જોવામાં આવે છે, જેમકે શરીરમાં મસા, અર્થાત્ જેમકે મસાને ઉપરથી કાપી નાખ્યા છતા પણ તેના સમાન અવયવો ઊગી આવે છે, તેમ જ વિદ્રુમ અને શિલા આદિને ખાણમાં કાપી નાખ્યા છતાં સજાતીય સ્કન્ધોથી કાપેલો ભાગ પાછો ભરાઇ જાય છે તેથી પૃથિવીની સચેતનતા સિદ્ધ થાય છે.

એ પૃથિવી અનેક–જીવ–વાળી છે, અને એ સ્પર્શનેન્દ્રિય–વાળા પૃથિવીકાયના જીવો આગળના અસખ્યાતમા ભાગ પ્રમાણની અવગાહનાનો આશ્રય કરીને ભિન્ન–ભિન્ન સ્વરૂપે સ્થિત છે, એવુ ભગવાને કહ્યું છે

શિષ્ય ગુરૂને પૂછે છે–હે ગુરૂ મહારાજ ! જો પૃથિવી, જીવોના પિંડ–રૂપ છે

संयमिनामहिंसाव्रतस्य संरक्षणं कथं भवति? प्रत्युताऽवश्यकरणीयोच्चारप्रस्रवणादिक्रियया हिंसैव भवत्यतोऽहिंसाव्रतपालनं वन्ध्यासुतपालनवदसम्भवमित्यत आह–'अन्यत्रे'ति, शस्त्रपरिणताया अन्यत्र=शस्त्रपरिणतां पृथिवीं वर्जयित्वाऽन्या पृथिवी सजीवेत्यर्थः, शस्यते=हिंस्यते प्राणिगणोऽनेनेति शस्त्रं, तद् द्विविधं–द्रव्यभावभेदात्। तत्र द्रव्यशस्त्रं–स्वपरोभयकायलक्षणम्, भावशस्त्रं पृथिवीं प्रति दुष्प्रणिहितमनोवाक्कायात्मकम्, एवमेवान्येषां तत्तत्कायानामपि भावशस्त्रं बोद्धव्यम्। स्वकायशस्त्रं पृथिव्याः स्वेतरवर्णगन्धादिमती पृथिव्येव, यथा पीतमृत्तिकायाः

पिण्डरूप है तो उस पर अहिंसाव्रतकी रक्षा कैसे होगी? उच्चार-प्रस्रवण आदि क्रियाएँ अनिवार्य हैं, और इन क्रियाओंके करनेसे हिंसा अनिवार्य है, इसलिए अहिंसाव्रतका पालन ऐसा ही असंभव है जैसा वन्ध्याके पुत्रका पालन करना।

उत्तर–हे शिष्य! शस्त्रपरिणत पृथिवीके सिवाय अन्य समस्त पृथिवी सचित्त है। जिससे प्राणियोंकी हिंसा होती है उसे शस्त्र कहते हैं।

शस्त्र दो प्रकारका है–(१) द्रव्य-शस्त्र और (२) भाव–शस्त्र। उनमेंसे स्व-काय, पर-काय और उभय-कायको द्रव्य-शस्त्र कहते हैं। पृथिवीके विषयमें मन–वचन–कायकी दुष्परिणति करना भाव–शस्त्र है। इसी प्रकार अन्य सब कायके जीवोंके भाव–शस्त्र समझ लेने चाहिए। अपनेसे भिन्न वर्णगन्धवाली पृथिवी ही पृथिवीका स्वकाय-शस्त्र है, जैसे

તો તેની ઉપર ગમનાગમન આદિ ક્રિયાઓ કરનારા સંયમીઓના અહિંસાવ્રતની રક્ષા કેમ થશે? ઉચ્ચાર, પ્રસ્રવણ આદિ ક્રિયાઓ અનિવાર્ય છે, અને એ ક્રિયાઓ કરવાથી હિંસા અનિવાર્ય છે, તેથી અહિંસા–વ્રતનું પાલન એવું અસંભવિત છે કે જેવું વંધ્યાના પુત્રનું પાલન કરવું અસંભવિત છે

ઉત્તર–હે શિષ્ય! શસ્ત્રપરિણત પૃથિવી સિવાયની બધી પૃથિવી સચિત્ત છે જે વડે પ્રાણીઓની હિંસા થાય છે, તેને શસ્ત્ર કહે છે

શસ્ત્ર બે પ્રકારના છે (૧) દ્રવ્ય–શસ્ત્ર (૨) ભાવ–શસ્ત્ર એમાં સ્વકાય, પરકાય અને ઉભયકાયને દ્રવ્ય–શસ્ત્ર કહે છે, પૃથિવીના વિષયમાં મન વચન કાયાથી દુષ્પરિણતિ કરવી એ ભાવશસ્ત્ર છે એજ રીતે બીજી બધી કાયાના જીવોના ભાવશસ્ત્ર સમજી લેવા પોતાથી ભિન્ન વર્ણ–ગંધ–વાળી પૃથિવીજ

कृष्णमृत्तिका शस्त्रमित्यादि, परकायशस्त्रं–जलाग्निगोमयचरणसंमर्दनादि । उभयकायशस्त्रं–जलादिमिश्रमृत्तिका । एवं च शस्त्रपरिणतायाः पृथिव्या अचित्ततया न तत्रोच्चार-प्रस्रवणादिक्रियासम्पादने काऽपि क्षतिर्मुनीनां संयमपालन इति सिद्धम् ।

अप्कायः ।

आपः=भौमाऽऽन्तरिक्षोभयलक्षणाः, चित्तवत्यः=सचेतनाः, आख्याताः=भगवताऽभिहिताः, तथाहि–भूमिगता आपः सचेतनाः खातभूमिसजातीयस्वभाव-

---

पीली मिट्टीका शस्त्र काली मिट्टी है । जल, अग्नि, गोबर तथा पैरोंसे रौंदना आदि परकाय शस्त्र हैं । जल आदिसे मिली हुई मिट्टी उभयकाय शस्त्र है ।

इस प्रकार शस्त्रपरिणत पृथिवी अचित्त है, अतः उस पर आहार-विहार आदि क्रियाएँ करनेसे मुनियोंके अहिंसाव्रत पालनेमें कुछ भी क्षति नहीं होती ।

(अप्काय)

पार्थिव और आकाशीय दोनों प्रकारके जलोंको भी भगवानने सचित्त कहा है ।

(१) भूमिमें रहा हुआ जल सचेतन है, क्योंकि खोदी हुई भूमिमें सजातीय-स्वभाववाला जल उत्पन्न होता है, जैसे मेंढक । भूमिको खोदनेसे जैसे मेंढक निकलता है और वह सचेतन होता है उसी प्रकार पानी

પૃથિવીનું સ્વકાય–શસ્ત્ર છે, જેમ પીળી માટીનું શસ્ત્ર કાળી માટી છે. જળ, અગ્નિ, છાણ તથા પગ વડે ખુદવું વગેરે પરકાય–શસ્ત્ર છે. જળ આદિથી મળેલી માટી એ ઉભયકાય શસ્ત્ર છે.

એ રીતે શસ્ત્રપરિણત પૃથિવી અચિત્ત છે, તેથી એની ઉપર આહાર વિહાર આદિ ક્રિયાઓ કરવાથી મુનિઓના અહિંસા વ્રતના પાલનમા કાંઇ પણ ક્ષતિ આવતી નથી.

અપ્કાય

પાર્થિવ અને આકાશીય બેઉ પ્રકારના જળને પણ ભગવાને સચિત્ત કહ્યું છે

(૧) ભૂમિમા રહેલુ જળ સચેતન છે, કારણકે ખોદેલી જમીનમાં સજાતીય સ્વભાવવાળુ જળ ઉત્પન્ન થાય છે, જેમકે દેડકો ભૂમિને ખોદવાથી જેમ દેડકો નીકળે છે અને તે સચેતન હોય છે, તેમ પાણી પણ નીકળે છે તેથી તે પણ

सम्भवात् मण्डूकवत् । आन्तरिक्ष्योऽप्यापः सचेतनाः मेघादिविकृतौ स्वाभाविकसम्भूयसंपतनशीलत्वान्मीनवत् । यद्वा-आपः सचेतनाः, ग्रीष्महेमन्तयोः स्वाभाविकशैत्यौष्ण्यवाष्पाद्युपलम्भान्मनुष्यशरीरवत्, तद्यथा-भूमिगृहस्थितनरस्य शरीरं ग्रीष्मे शीतलं हेमन्ते चोष्णं भवति, मुखाच्च वाष्पमुद्गच्छति, एवमेव गभीरतरतडागकूपादिस्थसलिलं हेमन्ते सवाष्पोद्गमामुष्णतां, ग्रीष्मे च शीतलतां धत्ते । अनेकजीवाः पृथक्सत्त्वाः, आख्याता इत्यनेनान्वयः, व्याख्या चैषां पदानां प्राग्वद्बोध्या ।

निकलता है, अतएव वह भी सचेतन है। आकाशका भी जल सचेतन है, क्योंकि मेघादि-विकार होने पर स्वयं ही गिरने लगता है-जैसे मछली। अथवा-

(२) जल सजीव है, क्योंकि उसमें ग्रीष्म और हेमन्त ऋतुमें स्वाभाविक शीतता उष्णता और भाफ आदि देखे जाते हैं, जिसमें ग्रीष्मादि ऋतुओंमें शीतता आदि पाये जाते हैं वह सजीव होता है, जैसे मनुष्यका शरीर। जैसे भौंयरेमें स्थित मनुष्यका शरीर ग्रीष्म-ऋतुमें शीत और हेमन्त-ऋतुमें उष्ण होता है, तथा हेमन्त ऋतुमें मुँहसे भाफ निकलती है, वैसेही खूब गहरे तालाव या कुएका जलभी हेमन्तमें भाफवाला और उष्ण होता है तथा ग्रीष्ममें शीतल होता है।

अनेकजीव और पृथक्सत्त्व आदि पदोंका व्याख्यान पहले कहे हुए पृथिवीकायके आलापकके समान समझना चाहिए।

સચેતન છે આકાશનુ જળ પણ સચેતન છે, કારણ કે મેઘાદિ-વિકાર થવાથી સ્વય પડવા લાગે છે, જેમકે માછલી અથવા—

(૨) જળ સજીવ છે, કારણ કે તેમા ગ્રીષ્મ અને હેમન્ત ઋતુમા સ્વાભાવિક શીતતા ઉષ્ણતા અને બાફ આદિ જોવામાં આવે છે જેમા ગ્રીષ્માદિ ઋતુઓમા શીતળતા આદિ જણાઇ આવે છે તે સજીવ હોય છે, જેમકે માણસનું શરીર જેમ ભોંયરામાં રહેલા માણસનું શરીર ગ્રીષ્મ-ઋતુમા શીતલ અને હેમંત-ઋતુમા ગરમ હોય છે, તથા હેમંત-ઋતુમા મ્હોમાંથી બાફ (વરાળ) નીકળે છે, એજ રીતે ખૂબ ઉંડા તળાવ યા કુવાનું જળ પણ હેમત ઋતુમા બાફવાળુ અને ઉષ્ણુ હોય છે તથા ગ્રીષ્મમા શીતળ હોય છે

અનેક જીવ તથા પૃથક્સત્ત્વ આદિ શબ્દોનું વ્યાખ્યાન પહેલા કહેલા પૃથિવીકાયના આલાપકની જેમ સમજવું.

नन्वेवमपां जीवपिण्डभूततयाऽद्भिर्विना संयमिनां संयमयात्रा असंभवन्निर्वाहा स्यादित्यत आह–शस्त्रेत्यादि,शस्त्रपरिणताभ्योऽन्यत्र=शस्त्रपरिणता अपो विहायान्या आपः सचित्ता इत्यर्थः। शस्त्रं–द्रव्यभावभेदाद्द्विविधं, द्रव्यशस्त्रं–स्वकायपर-कायोभयकायस्वरूपं, भावशस्त्रम्–अपः प्रति मनोवाक्कायानां दुष्प्रणिहितत्वम् । तत्र स्वकायशस्त्रं–तडागाद्युदकस्य कूपाद्युदकम् । एवंविधशस्त्रपरिणतं जलं व्यवहारतोऽशुद्धत्वाद्भगवदनादिष्टत्वाच्च सर्वथैवाग्राह्यम् । परकायशस्त्रं-द्राक्षा-शाक-तण्डुल-पिष्ट-दाली-चणकादि । अपां शस्त्रपरिणतत्वं च वर्णादिना पूर्वावस्थावैलक्षण्यरूपम् ।

हे गुरो ! जलके विना संयमियोंका निर्वाह नहीं हो सकता और वह जीवोंका पिण्ड है, इसलिए उसको पीने आदिके काममें लानेसे संयमकी रक्षा नहीं हो सकती। ऐसी आशङ्का होनेपर गुरु कहते हैं– हे शिष्य ! शस्त्रपरिणत जलके सिवाय अन्य जल सजीव है। यहां परभी शस्त्र, द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकारका है। उसका कथन पहले किया जाचुका है। यह विशेष समझना चाहिए कि तालाव आदिके जलका कूप आदिका जल स्वकायशस्त्र है। इस प्रकारका शस्त्र-परिणत जल व्यवहारसे अशुद्ध होनेके कारण ग्राह्य नहीं है। तथा ऐसे जलके लेनेमें भगवानकी आज्ञा भी नहीं है।

दाख, शाक, चावल, आटा आदि परकायशस्त्र हैं। जलमें पहले जैसा वर्ण गन्ध आदि था उसका बदल जाना शस्त्रपरिणत होना कहलाता है।

હે ગુરુ ! જળ વિના સંયમીઓનો નિર્વાહ થઇ શકતો નથી અને એ જીવોનો પિંડ છે તેથી તેને પીવા આદિના કામમા લેવાથી સંયમની રક્ષા નહિ થઈ શકે એવી આશંકા થતાં ગુરૂ કહે છે હે શિષ્ય! શસ્ત્ર–પરિણત જળ સિવાયનું અન્ય જળ સજીવ છે એમા પણ શસ્ત્ર, દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદે કરીને બે પ્રકારનાં છે એનું કથન પહેલા કરવામા આવ્યું છે વિશેષ એટલુ સમજવું કે તળાવ આદિના જળનું કૂપાદિનું જળ એ સ્વકાય શસ્ત્ર છે એ પ્રકારનું શસ્ત્ર–પરિણત જળ વ્યવહારથી અશુદ્ધ હોવાને કારણે ગ્રાહ્ય નથી તથા એવું જળ લેવાની ભગવાનની આજ્ઞા પણ નથી

દ્રાક્ષ, શાક, ચોખા, આટો ઈત્યાદિ પરકાય શસ્ત્ર છે જળમા પહેલાં જેવા વર્ણ ગંધ આદિ હતા તેનું બદલાઈ જવું એ શસ્ત્રપરિણત થવું કહેવાય છે

तत्र-वर्णतो धूसरत्वादिरूपम्, गन्धतस्तत्तद्वस्तुसम्बन्धिवत्त्वम्, रसतस्तिक्त-कटु-कषायत्वादिरूपम्, स्पर्शतः स्निग्धरूक्षत्वादिरूपम्। इत्थमुक्तप्रकारं द्राक्षादिधावनजलं प्रासुकत्वान्मुनिग्राह्यम्। उपलक्षणमेतदग्निशस्त्रपरिणतस्योदकस्यापि। भस्ममिश्र-जलमग्राह्यं, तत्र मिश्रशङ्कायाः सद्भावात्, शास्त्रे क्वचिदप्यप्रतिपादितत्वाच्च। उभय-कायशस्त्रं-मृत्तिकामिश्रजलम्। भावशस्त्रमुक्तस्वरूपमेवेति।

तेजस्कायः।

तेजश्चित्तवत्=सचेतनम् आख्यातम्=उक्तम्, तथाहि-

तेजश्चेतनावत् इन्धनाद्याहारोपादानहानाभ्यां तद्वृद्धिमान्द्योपलम्भात्, मनुष्यादिशरीरवत्।

जैसे-धूसर वर्ण हो जाना, जो वस्तु उसमें डाली गई हो उसकी गन्ध आने लगना, तीखा, कडुवा, कषायला आदि रस हो जाना, स्निग्ध या रूक्ष आदि स्पर्श हो जाना। इस प्रकार यह दाख, शाक, चावल, आटा, दाल, वेसन आदिका धोवन प्रासुक होनेसे मुनिके लिए ग्राह्य है। यह तो उपलक्षण है, इससे यह भी समझना चाहिये कि-अग्निशस्त्रपरिणत अर्थात् उष्ण जल भी मुनिको ग्राह्य है। राखका पानी ग्राह्य नहीं है, क्योंकि उसमें मिश्रकी शङ्का रहती है। मृत्तिका आदिसे मिला हुआ जल उभयकाय शस्त्र है। भावशस्त्र पहले कह चुके हैं।

(तेजस्काय)

तेजस्कायको भी भगवानने सचेतन कहा है, यही कहते हैं—

तेजस्काय सजीव है, क्योंकि इन्धन आदि आहार देनेसे उसकी वृद्धि और

જેમકે-ધુધળા વર્ણનું થઇ જવું, જે વસ્તુ તેમા નાખવામા આવી હોય તેની ગંધ આવવા લાગવી, તીખો કડવો કસાયલો આદિ રસ થઇ જવો; સ્નિગ્ધ યા રૂક્ષ આદિ સ્પર્શ થઇ જવો એ પ્રકારે એ દ્રાક્ષ, શાક, ચોખા, આટો, દાળ, વેસણ આદિનુ ધોવણ પ્રાસુક હોવાથી મુનિને માટે ગ્રાહ્ય છે એ ઉપલક્ષણ છે, એથી એમ પણ સમજવું જોઇએ કે- અગ્નિશસ્ત્ર-પરિણત અર્થાત્ ઉષ્ણ જળ પણ મુનિને ગ્રાહ્ય છે. રાખનું પાણી ગ્રાહ્ય નથી, કારણ કે એમાં મિશ્રની શકા રહે છે. માટી આદિથી મળેલુ જળ ઉભયકાય શસ્ત્ર છે (૨) ભાવશસ્ત્ર પહેલે કહી દીધું છે

(તેજસ્કાય)

તેજસ્કાયને પણ ભગવાને સચેતન કહી છે, એ હવે કહે છે:—

તેજસ્કાય સજીવ છે, કારણ કે લાકડા (ઇંધણાં) આદિ આહાર આપવાથી

अङ्गारादीनां प्रकाशनशक्तिर्यावदात्मसंयोगभाविनी देहस्थत्वात्, खद्योत-शरीरपरिणामवत् ।

अङ्गारादीनां तापोऽपि आत्मसंयोगसद्भावहेतुकः, शरीरस्थत्वात् ज्वरतापवत्,

न देनेसे हानि (मन्दता) होती है, जैसे मनुष्यका शरीर। अर्थात् मनुष्यका शरीर आहार देनेसे बढता और न देनेसे घटता है, अतः वह सचेतन है। इसी प्रकार तेजस्काय भी ईंधन देनेसे बढती और न देनेसे घटती है, अतः वह भी सचेतन है।

अंगार आदिकी प्रकाशन शक्ति जीवके संयोगसे ही उत्पन्न होती है, क्योंकि वह देहस्थ है, जो जो देहस्थ प्रकाश होता है वह वह आत्माके संयोगके ही निमित्तसे होता है, जैसे जुगनूके शरीरका प्रकाश। जुगनूके शरीरमें प्रकाश तब तक ही रहता है जब तक उसके साथ आत्माका संयोग रहता है।

इसी प्रकार अंगार आदिका प्रकाश भी तब तक ही रहता है जबतक उसमें आत्मा रहती है।

अंगार आदिका ताप भी आत्माके संयोगके ही कारण है क्योंकि वह शरीरस्थ है, जितने शरीरस्थ ताप होते हैं वे सब आत्माके निमित्तसे ही

તેની વૃદ્ધિ અને ન આપવાથી હાનિ (મંદતા) થાય છે, જેમકે મનુષ્યનું શરીર અર્થાત્–મનુષ્યનું શરીર આહાર આપવાથી વધે છે અને ન આપવાથી ઘટે છે, તેથી તે સચેતન છે, એજ રીતે તેજસ્કાય પણ ઇંધન આપવાથી વધે છે અને ન આપવાથી ઘટે છે, તેથી તે સચેતન છે,

અંગારા આદિની પ્રકાશન–શકિત જીવના સંયોગથી જ ઉત્પન્ન થાય છે કારણ કે એ દેહસ્થ છે, જે જે દેહસ્થ પ્રકાશ હોય છે તે તે આત્માના સંયોગના જ નિમિત્તથી હોય છે, જેમકે આગીયાના શરીરનો પ્રકાશ આગીયાના શરીરમાં પ્રકાશ ત્યાંસુધી જ રહે છે કે જ્યાંસુધી તેની સાથે આત્માનો સંયોગ રહે છે, એ રીતે અંગારા આદિનો પ્રકાશ પણ ત્યાંસુધી જ રહે છે કે જ્યાંસુધી તેમાં ચેતન રહે છે

અંગારા આદિનો તાપ પણ આત્માના સંયોગના જ કારણે છે, કેમકે તે શરીરસ્થ છે જેટલા શરીરસ્થ તાપ હોય છે તે બધા આત્માના નિમિત્તથી જ

न हि क्वचिदपि विरहितात्मानो ज्वरतापोष्णगात्राः संश्रूयन्ते न चोपलभ्यन्ते, एवमेव निस्तेजस्काङ्गारादितोऽणुमात्रोऽपि तापो न जन्यते, तस्माद् यावदात्मसंयोगभाव्येवाङ्गारादीनां तापजनकत्वमतः सिद्धं तेजसः सचेतनत्वम् । 'अनेकजीवं, पृथक्सत्त्वम्' इति प्राग्वत्, 'आख्यात'-मित्यनेनान्वयः, 'शस्त्रपरिणतादन्यत्र' इति च पूर्ववत् । शस्त्रस्वरूपमाह,-तत्र स्वकायशस्त्रं–करीषाग्नेस्तृणाग्निः, एवंविधशस्त्रपरिणतोऽप्यग्निः सर्वथैवाग्राह्यो व्यवहारतोऽशुद्धत्वात् । परकायशस्त्रं-जलमृत्तिकादि । उभयकायशस्त्रमुष्णोदकादि । भावशस्त्रमग्निकायं प्रति मनसो दुष्प्रणिधानम् ।

होते हैं, जैसे ज्वरके ताप। आत्मारहित शरीर (शव–मुर्दा) में कभी ज्वरका ताप नहीं सुना जाता न उपलब्ध होता है। इसीप्रकार निस्तेजस अंगारमें अणुमात्र भी ताप नहीं होता, अतएव सिद्ध है कि अंगार आदिमें तापजनन शक्ति जब-तक आत्मा रहती है तब तक होती है, इसलिए तेजस्काय सचेतन है। 'अनेकजीव और पृथक्सत्त्व' आदि पदोंकी व्याख्या पहलेकी भाँति है।

यह भी समझ लेना चाहिये कि वही तेजस्काय सचित्त है जो शस्त्र–परिणत न हो। तेजस्कायके शस्त्र ये हैं–जैसे छाणाकी अग्निका शस्त्र तृणकी अग्नि है। इस प्रकारकी शस्त्रपरिणत अग्नि ग्राह्य नहीं है, क्योंकि वह व्यवहारसे अशुद्ध है। तथा इसके ग्रहण करनेमें भगवानकी आज्ञा भी नहीं है। जल मृत्तिका आदि पर-काय शस्त्र है। उष्णजल उभयकाय शस्त्र है।

હોય છે, જેમકે જ્વરનો તાપ આત્મારહિત શરીર (મુડદુ)માં કદિ જ્વરનો તાપ નથી સાંભળવામા આવતો કે નથી જોવામા આવતો, એ રીતે નિસ્તેજસ અગારામા અણુમાત્ર પણ તાપ હોતો નથી તેથી સિદ્ધ થાય છે કે અંગારા આદિમા જ્યાસુધી આત્મા હોય છે ત્યાસુધી જ તાપ–જનન–શકિત રહે છે. તેથી તેજસ્કાય સચેતન છે 'અનેક–જીવ અને પૃથક્–સત્ત્વ' આદિ શબ્દોની વ્યાખ્યા પહેલાની જેમ છે

એ પણ સમજી લેવું જોઇએ કે એજ તેજસ્કાય સચિત્ત છે કે જે શસ્ત્ર-પરિણત ન હોય તેજસ્કાયનાં શસ્ત્ર આ છે—જેમ છાણાના અગ્નિનું શસ્ત્ર તરણાંનો અગ્નિ છે એ પ્રકારનો શસ્ત્રપરિણત અગ્નિ ગ્રાહ્ય નથી, કારણ કે તે વ્યવહારથી અશુદ્ધ છે વળી તેને ગ્રહણ કરવાની ભગવાનની આજ્ઞા પણ નથી જળ, માટી વગેરે પરકાય–શસ્ત્ર છે ઉનું પાણી ઉભયકાય–શસ્ત્ર છે

शस्त्रपरिणताचित्ताग्निकायमाह–उष्णमन्नं-कृशरौदनादि. उष्णपानकं शाकौदनादीनामवस्रावणादि (ओसामण इति भाषा), तप्तेष्टका सिकतादि च, एतेष्वग्निसंयोगनिष्पाद्यत्वादचित्ताग्निकायशब्दो व्यपदिश्यते, क्षुधाद्युपशमनार्थं ग्राह्योऽसौ।

वायुकायः ।

वायुश्चित्तवानाख्यातः । कथमस्य सचेतनत्वमिति चेत्तत्प्रमाणाद् गृहाण, तथाहि–वायुश्चेतनावान् अनन्यप्रेरिताऽनियततिर्यग्गमनत्त्वात्, हरिणगवयादिवत्, स च 'अनेकजीवः, पृथक्सत्त्वः आख्यातः, शस्त्रपरिणतादन्यत्र' इत्यादिकानां प्राग्वद्व्याख्या बोद्धव्या ।

खिचड़ी, भात आदि उष्ण अन्न, शाकका ओसामण और चावलोंका मण्ड आदि उष्ण पान, तपी हुई ईंट, बालू आदि शस्त्र-परिणत अचित्त अग्निकाय कहलाते है । ये सब अग्निके संयोगसे निष्पन्न होते हैं इसलिए इनमें अचित्त अग्निकाय शब्दकी प्रवृत्ति होती है ।

(वायुकाय)

वायुकायको भी भगवानने सचित्त कहा है । वायु कैसे सचित्त है सो कहते हैं । वायु सचेतन है, क्योंकि दूसरेकी प्रेरणाके विना अनियत रूपसे तिर्यक्गमन करनेवाला है, जैसे हिरन या रोझ (गवय)।

अनेकजीव और पृथक्सत्त्व आदिकी व्याख्या पहलेके समान समझनी चाहिए ।

ખિચડી, ભાત આદિ ઊનું અન્ન, શાકનું ઓસામણ અને ચોખાનું ઓસામણ, આદિ ઊનું પાન, તપેલી ઇંટ, ગરમ રેતી આદિ શસ્ત્રપરિણત અચિત્ત અગ્નિકાય કહેવાય છે એ બધાં અગ્નિના સંયોગથી નિષ્પન્ન થાય છે, તેથી એમા અચિત્ત અગ્નિકાય શબ્દની પ્રવૃત્તિ થાય છે (૩)

(વાયુકાય)

વાયુકાયને પણ ભગવાને સચિત્ત કહી છે વાયુ કેવી રીતે સચિત્ત છે તે કહે છે.–

વાયુ સચેતન છે, કારણ કે બીજાની પ્રેરણા વિના અનિયતરૂપે તિર્યક્ ગમન કરનારો છે, જેવું કે હરણ અથવા રોઝ (નીલગાય).

અનેક જીવ અને પૃથક્સત્ત્વ આદિની વ્યાખ્યા પહેલાંની પેઠે સમજવી

शस्त्रं चास्य द्रव्य-भावभेदाद्विविधं, तत्र द्रव्यशस्त्रं [1]स्व-पर-तदुभय-कायभेदात्त्रिविधम्। स्वकायशस्त्र-पौरस्त्यादिवायोः पाश्चात्यादिवायुः। परकायशस्त्रमनलादि। उभयकायशस्त्रमनलादिसतप्तो वायुरेव। भावशस्त्रं तु वायुं प्रति मनसो दुष्प्रवृत्तिः ॥

वायुः सचित्ताचित्तमिश्रभेदात्त्रिधा, तत्र सचित्तो घनवातादिः, अचित्तो दृतिप्रभृतिषु पूरितः, सोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तादूर्ध्वं यावदेकं याममचेतनः, तदनु पूर्णद्वितीययामं यावन्मिश्रः, तत्पश्चात्सचित्त एव, रोगाद्यवस्थायां वायोरावश्यकत्वे इत्यादि-

१ भगवतीसूत्रस्य द्वितीयशतके प्रथमोद्देशे वाय्वधिकारे—

" से भंते ! किं पुट्ठे उद्दाइ अपुट्ठे उद्दाइ ? गो० ! पुट्ठे उद्दाइ नो अपुट्ठे उद्दाइ" छाया—'स (वायुः) भगवन् ! किं स्पृष्टः अपद्रवति (म्रियते) अस्पृष्टः अपद्रवति ? गौतम ! स्पृष्टः अपद्रवति नो अस्पृष्टः अपद्रवति'। अस्य टीका—'स्पृष्टः स्वकायशस्त्रेण परकायशस्त्रेण वा अपद्रवति=म्रियते'।

वायुकायका शस्त्र द्रव्य-भाव-भेदसे दो प्रकारका है. द्रव्यशस्त्र—स्व-पर-उभयकायके भेदसे तीन प्रकारका है। वहां स्वकाय-शस्त्र पूर्व आदि दिशाके वायुका पश्चिम आदि दिशाका वायु, परकाय-शस्त्र अग्नि आदि है, उभयकाय शस्त्र अग्नि आदिसे तपा हुआ वायु ही है। वायु तीन प्रकारका है—

(१) सचित्त, (२) अचित्त, (३) मिश्र। घनवात आदि सचित्त है, दृति या रबरकी थैली आदिमें भरी हुई हवा अचित्त होती है, किन्तु अन्तर्मुहूर्त्तके बाद एक प्रहर तक अचित्त रहती है, उसके बाद दूसरे पहर तक मिश्र अवस्थामें रहती है बादमें सचित्त होजाती है। रोग आदि अवस्थामें वायुकी आवश्यकता होने पर दृति आदिमें भरा हुआ

વાયુકાયનો શસ્ત્ર દ્રવ્ય-ભાવભેદે બે પ્રકારનો છે દ્રવ્યશસ્ત્ર સ્વ-પર-ઉભયકાયના ભેદે કરી ત્રણ પ્રકારનો છે, ત્યાં સ્વકાયશસ્ત્ર—પૂર્વઆદિ દિશાના વાયુનો પશ્ચિમ-આદિ દિશાનો વાયુ, પરકાયશસ્ત્ર અગ્નિ આદિ છે, ઉભયકાયશસ્ત્ર અગ્નિઆદિથી તપેલો વાયુ જ છે ભાવશસ્ત્ર પહેલાની જેમ સમજી લેવું વાયુ ત્રણ પ્રકારનો છે—

(૧) સચિત્ત, (૨) અચિત્ત, (૩) મિશ્ર ઘન-વાત આદિ વાયુ સચિત્ત છે, મસક યા રબ્બરની થેલી આદિમા ભરેલી હવા અચિત્ત છે, પરન્તુ અંતર્મુહુર્તની પછી એક પ્રહર સુધી અચિત્ત રહે છે, ત્યારપછી બીજા પ્રહર સુધી મિશ્ર અવસ્થામાં રહે છે, અને ત્યારબાદ સચિત્ત બની જાય છે રોગાદિ અવસ્થામા વાયુની આવશ્યક્તા પડતા મસક આદિની અંદર ભરેલો અચિત્ત વાયુ સાધુઓને ગ્રાહ્ય છે,

पूरितोऽपि मिश्रत्वादग्राह्य एव सचित्तवत्। (४)

वनस्पतिकायः।

वनस्पतिश्चित्तवान् आख्यातः, व्याख्या तु पूर्ववत्। चैतन्यवत्त्वसिद्धिश्चेत्थम्- वनस्पतिः सचेतनः, बाल्याद्यवस्थासन्दर्शनात्, छेदन-भेदनादिभिर्म्लानतादिदर्शनाच्च मनुष्यशरीरवत्। शेषं पूर्ववत्। शस्त्रं द्रव्यभावभेदाद्द्विविधं, तत्र द्रव्यशस्त्रं-स्वपरोभयकायात्मकम्। स्वकायशस्त्रं-यष्ट्यादि। परकायशस्त्रं पाषाणाऽसिकर्त्तर्यादि,

---

अचित्त वायु साधुओंको ग्राह्य है, किन्तु दूसरे प्रहरका मिश्र वायु सचित्त वायुकी तरह अग्राह्य है। (४)

(वनस्पतिकाय.)

वनस्पतिकायको भी भगवानने सचित्त कहा है। वनस्पति सचित्त है, क्योंकि उसमें बाल्यावस्था आदि, तथा छेदन भेदन करनेसे म्लानता आदि सचेतनके गुण देखे जाते हैं, जैसे मनुष्यका शरीर। अर्थात् बाल्य-तरुण आदि अवस्थाएँ और छेदन-भेदन आदि करनेसे म्लानता होनेके कारण जैसे मनुष्य-शरीर सचेतन है वैसेही वनस्पतिकाय भी सचेतन है। 'अनेकजीव' आदि पदोंका व्याख्यान पहलेकी भाँति जानना चाहिए।

वनस्पति-कायके शस्त्र दो प्रकारके हैं—(१) द्रव्यशस्त्र और (२) भावशस्त्र। द्रव्य-शस्त्र स्वकाय, परकाय और उभयकाय हैं, लकडी आदि स्वकाय शस्त्र हैं। लोह पत्थर आदि परकाय शस्त्र हैं, परशु

કિન્તુ બીજા પ્રહરનો મિશ્રવાયુ સચિત્તવાયુની પેઠે અગ્રાહ્ય છે (૪)

(વનસ્પતિકાય)

વનસ્પતિકાયને પણ ભગવાને સચિત્ત કહી છે

વનસ્પતિ સચિત્ત છે, કારણ કે તેમાં બાલ્યાવસ્થા આદિ તથા છેદન ભેદન કરવાથી મ્લાનતા આદિ સચેતનના ગુણ જોવામા આવે છે, જેમકે મનુષ્યનું શરીર, અર્થાત્ બાલ્ય-તરુણ આદિ અવસ્થાઓ અને છેદન-ભેદન આદિ કરવાથી મ્લાનતા થવાને કારણે જેમ મનુષ્યનું શરીર સચેતન છે તેમ વનસ્પતિકાય પણ સચેતન છે 'અનેક-જીવ' આદિ શબ્દોનું વ્યાખ્યાન પહેલાની પેઠે જાણવું

વનસ્પતિકાયના શસ્ત્ર બે પ્રકારના છે (૧) દ્રવ્યશસ્ત્ર અને (૨) ભાવશસ્ત્ર. દ્રવ્યશસ્ત્ર સ્વકાય, પરકાય અને ઉભયકાય છે લાકડી આદિ સ્વકાયશસ્ત્ર છે. લોહ

शस्त्रं चास्य द्रव्य-भावभेदाद्विविधं, तत्र द्रव्यशस्त्रं[1] स्व-पर-तदुभय-कायभेदात्त्रिविधम्। स्वकायशस्त्र-पौरस्त्यादिवायोः पाश्चात्यादिवायुः। परकायशस्त्रमनलादि। उभयकायशस्त्रमनलादिसंतप्तो वायुरेव। भावशस्त्रं तु वायुं प्रति मनसो दुष्प्रवृत्तिः।

वायुः सचित्ताचित्तमिश्रभेदात्त्रिधा, तत्र सचित्तो घनवातादिः, अचित्तो दृतिप्रभृतिषु पूरितः, सोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तादूर्ध्वं यावदेकं याममचेतनः, तदनु पूर्णद्वितीययामं यावन्मिश्रः, तत्पश्चात्सचित्त एव, रोगाद्यवस्थायां वायोरावश्यकत्वे इत्यादि-

१ भगवतीसूत्रस्य द्वितीयशतके प्रथमोद्देशे वाय्वधिकारे—
"से भंते ! किं पुट्ठे उद्दाइ अपुट्ठे उद्दाइ ? गो० ! पुट्ठे उद्दाइ नो अपुट्ठे उद्दाइ" छाया—'स (वायुः) भगवन् ! किं स्पृष्टः अपद्रवति (म्रियते) अस्पृष्टः अपद्रवति ? गौतम ! स्पृष्टः अपद्रवति नो अस्पृष्टः अपद्रवति'। अस्य टीका—'स्पृष्टः स्वकायशस्त्रेण परकायशस्त्रेण वा अपद्रवति=म्रियते'।

वायुकायका शस्त्र द्रव्य-भाव-भेदसे दो प्रकारका है. द्रव्यशस्त्र—स्व-पर-उभयकायके भेदसे तीन प्रकारका है। वहां स्वकाय-शस्त्र पूर्व आदि दिशाके वायुका पश्चिम आदि दिशाका वायु, परकाय-शस्त्र अग्नि आदि है, उभयकाय शस्त्र अग्नि आदिसे तपा हुआ वायु ही है। वायु तीन प्रकारका है—

(१) सचित्त, (२) अचित्त, (३) मिश्र। घनवात आदि सचित्त है, दृति या रबरकी थैली आदिमें भरी हुई हवा अचित्त होती है, किन्तु अन्तर्मुहूर्त्तके बाद एक प्रहर तक अचित्त रहती है, उसके बाद दूसरे पहर तक मिश्र अवस्थामें रहती है बादमें सचित्त होजाती है। रोग आदि अवस्थामें वायुकी आवश्यकता होने पर दृति आदिमें भरा हुआ

વાયુકાયનો શસ્ત્ર દ્રવ્ય-ભાવભેદે બે પ્રકારનો છે દ્રવ્યશસ્ત્ર સ્વ-પર-ઉભયકાયના ભેદે કરી ત્રણ પ્રકારનો છે, ત્યાં સ્વકાયશસ્ત્ર—પૂર્વઆદિ દિશાના વાયુનો પશ્ચિમ-આદિ દિશાનો વાયુ, પરકાયશસ્ત્ર અગ્નિ આદિ છે, ઉભયકાયશસ્ત્ર અગ્નિઆદિથી તપેલો વાયુ જ છે ભાવશસ્ત્ર પહેલાની જેમ સમજી લેવું વાયુ ત્રણ પ્રકારનો છે—

(૧) સચિત્ત, (૨) અચિત્ત, (૩) મિશ્ર ઘન-વાત આદિ વાયુ સચિત્ત છે, મસક યા રબ્બરની થેલી આદિમા ભરેલી હવા અચિત્ત છે, પરન્તુ અન્તર્મુહુર્તની પછી એક પ્રહર સુધી અચિત્ત રહે છે, ત્યારપછી બીજા પ્રહર સુધી મિશ્ર અવસ્થામા રહે છે, અને ત્યારબાદ સચિત્ત બની જાય છે રોગાદિ અવસ્થામા વાયુની આવશ્યક્તા પડતા મસક આદિની અંદર ભરેલો અચિત્ત વાયુ સાધુઓને ગ્રાહ્ય છે,

पूरितोऽपि मिश्रत्वादग्राह्य एव सचित्तवत्। (४)

वनस्पतिकायः ।

वनस्पतिश्चित्तवान् आख्यातः, व्याख्या तु पूर्ववत्। चैतन्यवत्त्वसिद्धिश्चेत्थम्-वनस्पतिः सचेतनः, बाल्याद्यवस्थासन्दर्शनात्, छेदन-भेदनादिभिर्म्लानतादिदर्शनाच्च मनुष्यशरीरवत्। शेषं पूर्ववत्। शस्त्रं द्रव्यभावभेदाद्विविधं, तत्र द्रव्यशस्त्रं-स्वपरोभयकायात्मकम्। स्वकायशस्त्रं-यष्ट्यादि। परकायशस्त्रं पाषाणाऽसिकर्त्तर्यादि,

---

अचित्त वायु साधुओंको ग्राह्य है, किन्तु दूसरे प्रहरका मिश्र वायु सचित्त वायुकी तरह अग्राह्य है। (४)

(वनस्पतिकाय.)

वनस्पतिकायको भी भगवानने सचित्त कहा है। वनस्पति सचित्त है, क्योंकि उसमें बाल्यावस्था आदि, तथा छेदन भेदन करनेसे म्लानता आदि सचेतनके गुण देखे जाते हैं, जैसे मनुष्यका शरीर। अर्थात् बाल्य-तरुण आदि अवस्थाएँ और छेदन-भेदन आदि करनेसे म्लानता होनेके कारण जैसे मनुष्य-शरीर सचेतन है वैसेही वनस्पतिकाय भी सचेतन है। 'अनेकजीव' आदि पदोंका व्याख्यान पहलेकी भाँति जानना चाहिए।

वनस्पति-कायके शस्त्र दो प्रकारके हैं—(१) द्रव्यशस्त्र और (२) भावशस्त्र। द्रव्य-शस्त्र स्वकाय, परकाय और उभयकाय है, लकडी आदि स्वकाय शस्त्र हैं। लोह पत्थर आदि परकाय शस्त्र हैं, परशु

કિન્તુ બીજા પ્રહરનો મિશ્રવાયુ સચિત્તવાયુની પેઠે અગ્રાહ્ય છે (૪).

(વનસ્પતિકાય)

વનસ્પતિકાયને પણ ભગવાને સચિત્ત કહી છે

વનસ્પતિ સચિત્ત છે, કારણ કે તેમાં બાલ્યાવસ્થા આદિ તથા છેદન ભેદન કરવાથી મ્લાનતા આદિ સચેતનના ગુણ જોવામા આવે છે, જેમકે મનુષ્યનું શરીર, અર્થાત્ બાલ્ય-તરૂણ આદિ અવસ્થાઓ અને છેદન-ભેદન આદિ કરવાથી મ્લાનતા થવાને કારણે જેમ મનુષ્યનું શરીર સચેતન છે તેમ વનસ્પતિકાય પણ સચેતન છે. 'અનેક-જીવ' આદિ શબ્દોનું વ્યાખ્યાન પહેલાની પેઠે જાણવું

વનસ્પતિકાયનાં શસ્ત્ર બે પ્રકારના છે (૧) દ્રવ્યશસ્ત્ર અને (૨) ભાવશસ્ત્ર. દ્રવ્યશસ્ત્ર સ્વકાય, પરકાય અને ઉભયકાય છે લાકડી આદિ સ્વકાયશસ્ત્ર છે. લોહ

उभयकायशस्त्रं–परशुदात्रादि । भावशस्त्रं तु तं प्रति मनोमालिन्यम् ॥ ४ ॥

सम्प्रति वनस्पतिमेव सविशेषं वर्णयति–'तंजहा' इत्यादि ।

मूलम्–तंजहा–अग्गबीया मूलबीया पोरबीया,खंधबीया बीयरुहा संमुच्छिमा तणलया वणस्सइकाइया सबीया चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं ॥५॥

छाया— तद्यथा–अग्रबीजा मूलबीजाः पर्वबीजाः स्कन्धबीजाः बीजरुहाः सम्मूर्च्छिमास्तृणलता वनस्पतिकायिकाः सबीजाश्चित्तवन्त आख्याता अनेकजीवाः पृथक्सत्त्वा अन्यत्र शस्त्रपरिणतेभ्यः ॥५॥

यहां वनस्पतिकायका विशेष वर्णन करते हैं—

सान्वयार्थः—तंजहा=वह इस प्रकारसे है-अग्गबीया=जिनका बीज अग्रभागमें होता है, मूलबीया=जिनका बीज मूलभागमें होता है, पोरबीया=जिनका बीज पोर (सन्धि) में होता है, खंधबीया=जिनका बीज स्कन्ध (डाले) में होता है, बीयरुहा=बीजसे उगनेवाले, संमुच्छिमा=विना बीजके उत्पन्न होनेवाले, तणलया=तृण और लताएँ; ये सभी वणस्सइकाइया=वनस्पतिकायिक हैं, सबीया=पूर्वोक्त अपने-अपने नामप्रकृतिके उदयसे उत्पन्न हुए बीजसहित सब वनस्पतिकाय चित्तमंतं=सचित्त अक्खाया=कहे गये हैं, अन्नत्थ=सिवाय सत्थपरिणएणं=शस्त्रपरिणतके; ये वनस्पतिकाय अणेगजीवा=अनेक जीववाले और पुढोसत्ता=भिन्न-भिन्न सत्तावाले हैं ॥५॥

टीका–तथाहि–अग्रबीजाः=अग्रे=अग्रभागे बीजं येषां ते तथा कोरण्टकादयः।

(फरसा) दात्र आदि उभयकाय शस्त्र हैं। भावशस्त्र उसके प्रति मनके परिणाम दुष्ट करना ॥ ४ ॥

अब वनस्पतिकायका विशेष वर्णन करते हैं–'तं जहा' इत्यादि ।

अग्रबीज–जिनके बीज अग्र–भागमें होते हैं ऐसे कोरंटक आदि अग्रबीज कहलाते हैं।

પત્થર આદિ પરકાયશસ્ત્ર છે કોહાડા, દાતરડું આદિ ઉભયકાય શસ્ત્ર છે. ભાવશસ્ત્ર એની પ્રતિ મનના પરિણામ દુષ્ટ કરવા તે

હવે વનસ્પતિકાયનું વિશેષ વર્ણન કરે છે–તંજહા ઈત્યાદિ

અગ્રબીજ—જેના બીજ અગ્રભાગમાં હોય છે એવાં કોરંટક (હજારી ગુલ) આદિ અગ્રબીજ કહેવાય છે.

मूलवीजाः=मूलमेव बीजं येषां ते कमलकन्दप्रभृतयः। पर्ववीजाः=पर्वणि-ग्रन्थौ पर्वैव वा वीजं येषां ते तथा इक्षुप्रमुखाः। स्कन्धवीजाः=स्कन्धः-स्थुडं स एव बीजं येषां ते तथा शल्लकीप्रभृतयः। वीजरुहाः=बीजाद् रोहन्ति=प्रादुर्भवन्तीति ते तथा शालिगोधूमादयः। सम्मूर्च्छिमाः=संमूर्च्छन्ति=बीजं विनापि दग्धभूमावपि समुद्भवन्तीति ते तथोक्ताः पृथिवीजलसंयोगमात्रजनितास्तृणविशेषा इत्यर्थः। आर्षत्वात्सिद्धिः। तथा तृणलताः=तृणानि लताश्चेत्यर्थः। वनस्पतिकायिकाः= अवशिष्टाः समस्तवनस्पतय इत्यर्थः। यद्वा 'तृणलतावनस्पतिकायिकाः' इत्येकं

मूलबीज-मूलही जिनका बीज हो वह, कमलका कन्द आदि मूल-बीज हैं।

पर्वबीज-पोर (गांठ)में या पर्वही जिनका बीज है ऐसे, गन्ना (सांठा) आदि पर्वबीज कहलाते हैं।

स्कन्धबीज-स्कन्ध (थुड)ही जिनका बीज है उस शल्लकी आदिको स्कन्धबीज कहते हैं।

बीजरुह-चाँवल गेहूं आदि बीजसे उगनेवाली वनस्पतिको बीजरुह कहते हैं।

संमूर्च्छिम-विना बीजके जलीहुई भूमिमें भी जो पृथ्वी और जलके संयोगसे उग जावे ऐसी घास आदिको संमूर्च्छिम कहते हैं।

तृणलता-तिनका (घास) और लताएँ सब वनस्पतिकायिक हैं।

अथवा "तृणलतावनस्पतिकायिकाः" यह एकही पद है। दर्भ

મૂલબીજ—મૂળજ જેનું બીજ છે તે કમળનો કંદ આદિ મૂલબીજ છે

પર્વબીજ—ગાઠ યા પર્વમાં જેનું બીજ છે એવી શેરડી આદિ પર્વબીજ કહેવાય છે.

સ્કંધબીજ—સ્કંધ-થડજ જેનું બીજ છે એવા શલ્લકી આદિ ને સ્કંધબીજ કહે છે.

બીજરૂહ—ચોખા ઘઉ આદિ બીજથી ઉગનારી વનસ્પતિને બીજરૂહ કહે છે.

સમૂર્છિમ—બીજ વિના બળી ગએલી ભૂમિમા પણ જે પૃથ્વી અને જળના સંયોગથી ઉગે એવા ઘાસ આદિને સમૂર્છિમ કહે છે.

તૃણલતા-તરણાં (ઘાસ) અને લતા એ બધા વનસ્પતિકાયિક છે

અથવા तृणलतावनस्पतिकायिकाः એ એક જ પદ છે દર્ભ (દાભડા)

पदम्, तत्र तृणानि=दर्भादीनि, लताः=चम्पकाऽशोकवासन्त्यादयः, वनस्पतिकायिकाः=वनस्पतिकायभेदाः-अग्रबीजादयः सर्वेऽपि वनस्पतिकायिका एव, पुनर्वनस्पतिकायिकग्रहणं स्वगतसूक्ष्मादिसकलभेदख्यापनार्थम्। स्वबीजाः=पूर्वविहितस्वस्वनामगोत्रप्रकृत्युदयात्मककारणवन्तः, अर्थात् पूर्वोक्ता अग्रबीजादयः सर्वेऽपि चित्तवन्तः, इत्यादीनां व्याख्या पूर्ववत्।

इति पञ्चस्थावरकायनिरूपणम् ॥५॥

साम्प्रतं क्रमप्राप्तं त्रसकायस्वरूपमाह-'से जे०' इत्यादि।

मूलम्-से जे पुण इमे अणेगे बहवे तसा पाणा, तंजहा-अंडया पोयया जराउया रसया संसेइमा संमुच्छिमा उब्भिया उववाइया।

(दूब आदि) तृण, चम्पक, अशोक और वासन्ती आदि लताएँ और वनस्पतिकायके भेद अग्रबीज आदि सब वनस्पतिकायिक हैं। सूत्रमें दूसरी वार 'वनस्पतिकायिक' पदका ग्रहण इसलिए किया है कि-ऊपर बताये हुए भेदोंके सिवाय सूक्ष्म बादर आदि और भी समस्त भेदोंका ग्रहण होजावे। ये सब पहले दिखलाये हुए अपने अपने नाम-गोत्ररूप प्रकृतिके उदयरूप कारणवाले हैं। अर्थात् पूर्वोक्त बीज आदि सब सचित्त हैं और पृथक्-पृथक् स्पर्शरूप एक इन्द्रियवाले हैं ॥५॥

यह पांच स्थावरकायका निरूपण समाप्त हुआ।

अब क्रमप्राप्त त्रसकायका स्वरूप कहते हैं-'से जे' इत्यादि।

તૃણ, ચંપક, અશોક, અને વાસંતી આદિ લતાઓ અને વનસ્પતિકાયના ભેદ અગ્ર બીજ આદિ બધાં વનસ્પતિકાયિક છે. સૂત્રમાં બીજી વાર 'વનસ્પતિકાયિક' શબ્દનું ગ્રહણ એટલા માટે કરવામાં આવ્યું છે કે-ઉપર બતાવેલા ભેદો ઉપરાંત સૂક્ષ્મ બાદર આદિ બીજા પણ બધા ભેદોનું ગ્રહણ થઈ જવા પામે. એ બધા પહેલા બતાવેલા પોત-પોતાના નામ-ગોત્ર-રૂપ પ્રકૃતિના ઉદય-રૂપ કારણવાળા છે અર્થાત્ પૂર્વોક્ત બીજ આદિ બધા સચિત્ત છે અને પૃથક્-પૃથક્ સ્પર્શરૂપ એક ઇન્દ્રિયવાળા છે. (૫)

ઇતિ પંચ-સ્થાવર-કાયનું નિરૂપણ સમાપ્ત.

હવે ક્રમપ્રાપ્ત ત્રસકાયનું સ્વરૂપ કહે છેઃ- से जे ઇત્યાદિ

जेसिं केसिंचि पाणाणं अभिक्कंतं पडिक्कंतं संकुचियं पसारियं रुयं भंतं तसियं पलाइयं, आगइगइविन्नाया। जे य कीडपयंगा। जा य कुंथुपिवीलिया। सव्वे बेइंदिया, सव्वे तेइंदिया, सव्वे चउरिंदिया, सव्वे पंचिंदिया, सव्वे तिरिक्खजोणिया, सव्वे नेरइया, सव्वे मणुया, सव्वे देवा, सव्वे पाणा परमाहम्मिया। एसो खलु छट्ठो जीवनिकाओ तसकाउ-त्ति पवुच्चइ ॥ ६ ॥

छाया–अथ ये पुनरिमेऽनेके बहवस्त्रसाः प्राणिनस्तद्यथा–अण्डजाः पोतजा जरायुजा रसजाः संस्वेदजाः सम्मूर्च्छिमा उद्भिज्जा औपपातिकाः, येषां केषाश्चित्प्राणिनामभिक्रान्तं प्रतिक्रान्तं संकुचितं प्रसारितं रुतं भ्रान्तं त्रस्तं पलायितम्, आगतिगतिविज्ञातारः। ये च कीटपतङ्गाः। याश्च कुन्थुपिपीलिकाः। सर्वे द्वीन्द्रियाः, सर्वे त्रीन्द्रियाः, सर्वे चतुरिन्द्रियाः, सर्वे पञ्चेन्द्रियाः, सर्वे तिर्यग्योनिकाः, सर्वे नैरयिकाः, सर्वे मनुजाः, सर्वे देवाः, सर्वे प्राणाः परमधर्माणः। एष खलु षष्ठो जीवनिकायस्त्रसकाय इति प्रोच्यते ॥६॥

(६) त्रसकायवर्णन.

सान्वयार्थः–**से**=अथ **पुण**=और **जे**=जो **इमे**=ये (आगे कहे जानेवाले) **अणेगे**=अनेक प्रकारके **बहवे**=बहुतसे **तसा**=त्रस **पाणा**=प्राणी हैं, **तंजहा**=वे इस प्रकार हैं–(१) **अंडया**=अण्डेसे उत्पन्न होनेवाले, (२) **पोयया**=विना जेर (जरायु-आंवल-जड)के अर्थात् विना ही कुछ मलभागके वस्त्रसे पूंछे हुएके समान उत्पन्न होनेवाले, (३) **जराउया**=जेरसे लिपटे हुए उत्पन्न होनेवाले, (४) **रसया**=रसमें उत्पन्न होनेवाले, (५) **संसेइमा**=पसीनेसे उत्पन्न होनेवाले, (६) **संमुच्छिमा**=संमूर्च्छिम, (७) **उब्भिया**=पृथ्वीको भेदकर उत्पन्न होनेवाले (शलभ आदि), (८) **उववाइया**=उपपात जन्मवाले-देव और नारकी, **जेसिं-केसिंचि**= इनमेंसे जिन किन्हीं **पाणाणं**=प्राणियोंका **अभिक्कंतं**=अभिमुख गमन होता है, **पडिक्कंतं**=प्रतिकूल गमन होता है, **संकुचियं**=शरीरमें संकोच–सिकुडन होता है, **पसारियं**=शरीरमें फैलाव होता है, **रुयं**=शब्दका प्रयोग होता है, **भंतं**=इधर-उधर भ्रमण होता है, **तसियं**=उद्वेग होता है, **पलाइयं**=डरसे भागना देखा जाता है, (वे त्रस) **आगइगइविन्नाया**=आगमन और गमनको जाननेवाले, **य**=और **जे**=जो

कीडपयंगा=कीट-कीडे और पयंगा-पतगिये हैं, य=और जा=जो कुंथुपिवीलिया=कुंथवा और चींटियाँ हैं, वे सव्वे वेइंदिया=सब द्वीन्द्रिय सव्वे तेइंदिया=सब त्रीन्द्रिय सव्वे चउरिंदिया=सब चार इन्द्रियवाले सव्वे पंचिंदिया=सब पञ्चेन्द्रिय सव्वे तिरिक्खजोणिया=सब तिर्यञ्चगतिवाले सव्वे नेरइया=सब नारकी सव्वे मणुया=सब मनुष्य सव्वे देवा=सब देव सव्वे=पूर्वोक्त सब पाणा=प्राणीमात्र परमाहम्मिया=सुखके अभिलाषी हैं। एसो=यह खलु=निश्चय करके छट्ठो=छठा जीवनिकाओ=जीवनिकाय तसकाउत्ति=" त्रसकाय " ऐसा पवुच्चइ=कहा जाता है ॥९॥

टीका—'से'=अथ=स्थावरपञ्चकनिरूपणानन्तरं पुनः इमे=वक्ष्यमाणभेदाः अनेके=द्वीन्द्रियादिभेदेनाऽनेकप्रकाराः वहवः=एकैकस्यां जातौ प्रचुरा भिन्नयोनयो वा त्रसाः=त्रसनामकर्मोदयात्, त्रस्यन्ति=आतपाद्यभिपीडिता उद्विजन्ते प्रच्छायशीतलं स्थलं प्रयान्ति वेति तथोक्ताः,[१] प्राणन्ति=जीवन्त्येभिरिति, प्राण्यन्ते=जीव्यन्ते प्राणिन एभिरिति वा (प्रोपसृष्टा-दनितेः, अण्यतेर्वा करणे घञ्) प्राणाः=उच्छ्वासादयस्ते सन्त्येषामिति प्राणाः[२] प्राणिन इत्यर्थः, तद्यथा—अण्डे=पक्ष्यादिप्रादुर्भावककोषे जायन्ते=उत्पद्यन्ते इत्यण्डजाः=पक्षि-सर्पादयः। पोता एव जाता पोतजाः न जराय्वादिना वेष्टिताः पूर्णावयवयोनिनिर्गतमात्रा

१ 'त्रसेः पचाद्यच्' २ 'अर्शआदित्वादच्'

जो ये आबालप्रसिद्ध द्वीन्द्रिय आदिके भेदसे अनेक, एक एक जातिमें बहुतसे अथवा भिन्न-भिन्न योनिवाले आतप (गर्मी) आदिसे पीडित होनेपर त्रास (उद्वेग) पानेवाले, अथवा छायादार शीतल और निर्भय स्थलमें चले जानेवाले, व्यक्त चेतनावान्, उच्छ्वास आदि प्राणवाले त्रस कहलाते हैं, उनके भेद इस प्रकार हैं—

पक्षी सर्प आदि अण्डज हैं (१), जरायुसे वेष्टित न होकर योनिसे

જે એ આબાલ-પ્રસિદ્ધ દ્વીન્દ્રિયાદિના ભેદે કરીને અનેક, એક એક જાતિમા ઘણા અથવા ભિન્ન-ભિન્ન યોનિવાળા, ગરમી આદિથી પીડિત થતા ત્રાસ (ઉદ્વેગ) પામનારા, અથવા છાયાવાળા શીતળ અને નિર્ભય સ્થળમા ચાલ્યા જનારા, વ્યક્ત ચેતનાવાન્ ઉચ્છ્વાસ આદિ પ્રાણવાળા ત્રસ કહેવાય છે, તેના ભેદ આ પ્રકારે છે:—

પક્ષી સર્પ આદિ અંડજ છે (૧). જરાયુથી વેષ્ટિત ન હોઈને યોનિમાંથી

एव परिस्पन्दादिसामर्थ्योपेताः पोतजाः। यद्वा पोतो वस्त्रम्-(इति शब्दकल्पद्रुमः), तेन तत्संमार्जिता लक्ष्यन्ते, तथा च-पोता इव=वस्त्रसंमार्जिता इव गर्भवेष्टनचर्माऽनावृतत्वात्, जायन्ते=उत्पद्यन्ते इति, पोतात्=गर्भवेष्टनचर्मरहितगर्भात् जायन्त इति वा पोतजाः[1] कुञ्जर-शल्लक-शश-नकुल-मूषिक-चर्मचटिका-वल्गुलिकादयः। जरायुजाः=जरामेति=गच्छतीति जरायुः=गर्भवेष्टनचर्म तस्माज्जायन्त इति ते=नर-महिष-गवादयः। रसजाः=रसे=मद्यलक्षणे 'रसजो मद्यकीटः' इति हैमात्, जायन्त इति, रसे=विकृतमधुरादौ जायन्त इति वा रजसाः। संस्वेदजाः=संस्वेदात्=घर्माज्जायन्त इति ते यूका-लिक्षा-मत्कुणप्रमुखाः। सम्मूर्च्छिमाः=सम्मूर्च्छनं सम्मूर्च्छः=गर्भाधानमन्तरेणैव स्वयं समुत्पत्तिः, ('मूर्च्छा मोह-समुच्छ्राययोः' अस्माद्भावे घञ्, व्युत्पत्तिप्रदर्शनमेतत्, शब्दोऽयं मनोविकल्पे

1 'अन्येष्वपि दृश्यते'-इति डः

निकलते ही गमन-आगमन आदि क्रियाएँ करनेकी सामर्थ्यसे युक्त पूर्ण अवयववाले, या वस्त्रसे पोंछे हुएके समान साफ उत्पन्न होनेवाले हाथी, शल्लकी, खरगोश, नौला, चूहा आदि पोतज कहलाते हैं (२), जरायु (आँवल-जड) सहित उत्पन्न होनेवाले मनुष्य महिषादि जरायुज कहलाते हैं (३), मदिरा आदि रसोंमें उत्पन्न होनेवाले तथा स्वादसे चलित अर्थात् सड़े हुए मधुरादि रसोंमें उत्पन्न होनेवाले रसज कहलाते हैं (४), पसीनेसे पैदा होनेवाले जू, लीख, खटमल आदि संस्वेदज कहलाते हैं (५) गर्भाधानके विना शरीरनाम-कर्मके उदयसे शरीरके अवयवोंका संग्रह हो जानेसे स्वयं ही उत्पन्न होनेवाले जीव संमूर्च्छिम कहलाते हैं (६),

નીકળતા જ ગમનાગમન આદિ ક્રિયાઓ કરવાના સામર્થ્યથી યુકત પૂર્ણ અવયવવાળા, યા વસ્ત્ર દ્વારા લૂછેલાની પેઠે સાફ ઉત્પન્ન થનારા હાથી, શેળો, સસલાં, નોળિયા, ઉંદર આદિ **પોતજ** કહેવાય છે (૨) જરાયુ (નાળ વગેરે મળ ભાગ) સહિત ઉત્પન્ન થનારા મનુષ્ય, મહિષાદિ (ભેંશ વગેરે) **જરાયુજ** કહેવાય છે (૩) મદિરા આદિ રસોમા ઉત્પન્ન થનારા તથા સ્વાદથી ચલિત અર્થાત્ સડેલા મધુરાદિ રસોમા ઉત્પન્ન થનારા **રસજ** કહેવાય છે (૪) પ્રસ્વેદથી પેદા થનારા જૂ, લીખ, માકણ, આદિ **સસ્વેદજ** કહેવાય છે (૫) ગર્ભાધાન વિના શરીરનામ-કર્મના ઉદયથી શરીરના અવયવોનો સગ્રહ થઇ જવાથી સ્વય ઉત્પન્ન થનારા જીવો **સંમૂર્ચ્છિમ** કહેવાય છે (૬) પૃથ્વીને ભેદીને ઉત્પન્ન

कीडपयंगा=कीट-कीडे और पयंगा-पतगिये हैं, य=और जा=जो कुंथुपिवीलिया=कुंथवा और चींटियाँ हैं, वे सव्वे बेइंदिया=सब द्वीन्द्रिय सव्वे तेइंदिया=सब त्रीन्द्रिय सव्वे चउरिंदिया=सब चार इन्द्रियवाले सव्वे पंचिंदिया=सब पञ्चेन्द्रिय सव्वे तिरिक्खजोणिया=सब तिर्यञ्चगतिवाले सव्वे नेरइया=सब नारकी सव्वे मणुया=सब मनुष्य सव्वे देवा=सब देव सव्वे=पूर्वोक्त सब पाणा=प्राणीमात्र परमाहम्मिया=सुखके अभिलाषी हैं। एसो=यह खलु=निश्चय करके छट्ठो=छठा जीवनिकाओ=जीवनिकाय तसकाउत्ति=" त्रसकाय " ऐसा पवुच्चइ=कहा जाता है ॥६॥

टीका—'से'=अथ=स्थावरपञ्चकनिरूपणानन्तरं पुनः इमे=वक्ष्यमाणभेदाः अनेके=द्वीन्द्रियादिभेदेनाऽनेकप्रकाराः बहवः=एकैकस्यां जातौ प्रचुरा भिन्नयोनयो वा त्रसाः=त्रसनामकर्मोदयात्, त्रस्यन्ति=आतपाद्यभिपीडिता उद्विजन्ते प्रच्छायशीतलं स्थलं प्रयान्ति वेति तथोक्ताः,[1] प्राणन्ति=जीवन्त्येभिरिति, प्राण्यन्ते=जीव्यन्ते प्राणिन एभिरिति वा (प्रोपसृष्टा-दनितेः, अण्यतेर्वा करणे घञ्) प्राणाः=उच्छ्वासादयस्ते सन्त्येषामिति प्राणाः[2] प्राणिन इत्यर्थः, तद्यथा— अण्डे=पक्ष्यादिप्रादुर्भावककोषे जायन्ते=उत्पद्यन्ते इत्यण्डजाः=पक्षि-सर्पादयः। पोता एव जाता पोतजाः न जराय्वादिना वेष्टिताः पूर्णावयवयोनिनिर्गतमात्रा

१ 'त्रसेः पचाद्यच्' २ 'अर्शआदित्वादच्'

जो ये आबालप्रसिद्ध द्वीन्द्रिय आदिके भेदसे अनेक, एक एक जातिमें बहुतसे अथवा भिन्न-भिन्न योनिवाले आतप (गर्मी) आदिसे पीडित होनेपर त्रास (उद्वेग) पानेवाले, अथवा छायादार शीतल और निर्भय स्थलमें चले जानेवाले, व्यक्त चेतनावान्, उच्छ्वास आदि प्राणवाले त्रस कहलाते हैं, उनके भेद इस प्रकार हैं—

पक्षी सर्प आदि अण्डज हैं (१), जरायुसे वेष्टित न होकर योनिसे

જે એ આબાલ-પ્રસિદ્ધ દ્વીન્દ્રિયાદિના ભેદે કરીને અનેક, એક એક જાતિમાં ઘણા અથવા ભિન્ન-ભિન્ન યોનિવાળા, ગરમી આદિથી પીડિત થતા ત્રાસ (ઉદ્વેગ) પામનારા, અથવા છાયાવાળા શીતળ અને નિર્ભય સ્થળમા ચાલ્યા જનારા, વ્યકત ચેતનાવાન્ ઉચ્છ્વાસ આદિ પ્રાણવાળા ત્રસ કહેવાય છે, તેના ભેદ આ પ્રકારે છેઃ—

પક્ષી સર્પ આદિ અંડજ છે (૧). જરાયુથી વેષ્ટિત ન હોઇને યોનિમાંથી

एव परिस्पन्दादिसामर्थ्योपेताः पोतजाः । यद्वा पोतो वस्त्रम्-(इति शब्दकल्पद्रुमः), तेन तत्संमार्जिता लक्ष्यन्ते, तथा च-पोता इव=वस्त्रसंमार्जिता इव गर्भवेष्टनचर्माऽनावृतत्वात्, जायन्ते=उत्पद्यन्ते इति, पोतात्=गर्भवेष्टनचर्मरहितगर्भात् जायन्त इति वा पोतजाः[1] कुञ्जर-शल्लक-शश-नकुल-मूषिक-चर्मचटिका-वल्गुलिकादयः । जरायुजाः=जरामेति=गच्छतीति जरायुः=गर्भवेष्टनचर्म तस्माज्जायन्त इति ते= नर-महिष-गवादयः । रसजाः=रसे=मद्यलक्षणे 'रसजो मद्यकीटः' इति हैमात्, जायन्त इति, रसे=विकृतमधुरादौ जायन्त इति वा रजसाः । संस्वेदजाः=संस्वेदात्=घर्माज्जायन्त इति ते यूका-लिक्षा-मत्कुणप्रमुखाः । सम्मूर्च्छिमाः=सम्मूर्च्छनं सम्मूर्च्छः=गर्भाधानमन्तरेणैव स्वयं समुत्पत्तिः, ('मूर्च्छा मोह-समुच्छ्राययोः' अस्माद्भावे घञ्, व्युत्पत्तिप्रदर्शनमेतत्, शब्दोऽयं मनोविकल्पे

१ 'अन्येष्वपि दृश्यते'-इति डः

निकलते ही गमन-आगमन आदि क्रियाएँ करनेकी सामर्थ्यसे युक्त पूर्ण अवयववाले, या वस्त्रसे पोंछे हुएके समान साफ उत्पन्न होनेवाले हाथी, शल्लकी, खरगोश, नौला, चूहा आदि पोतज कहलाते हैं (२), जरायु (आँवल-जड) सहित उत्पन्न होनेवाले मनुष्य महिषादि जरायुज कहलाते हैं (३), मदिरा आदि रसोंमें उत्पन्न होनेवाले तथा स्वादसे चलित अर्थात् सड़े हुए मधुरादि रसोंमें उत्पन्न होनेवाले रसज कहलाते हैं (४), पसीनेसे पैदा होनेवाले जू, लीख, खटमल आदि संस्वेदज कहलाते हैं (५) गर्भाधानके विना शरीरनाम-कर्मके उदयसे शरीरके अवयवोंका संग्रह हो जानेसे स्वयं ही उत्पन्न होनेवाले जीव संमूर्च्छिम कहलाते हैं (६),

નીકળતા જ ગમનાગમન આદિ ક્રિયાઓ કરવાના સામર્થ્યથી યુક્ત પૂર્ણ અવયવવાળા, યા વસ્ત્ર દ્વારા લૂછેલાની પેઠે સાફ ઉત્પન્ન થનારા હાથી, શેળો, સસલા, નોળિયા, ઉંદર આદિ **પોતજ** કહેવાય છે (૨) જરાયુ (નાળ વગેરે મળ ભાગ) સહિત ઉત્પન્ન થનારા મનુષ્ય, મહિષાદિ (ભેંશ વગેરે) **જરાયુજ** કહેવાય છે (૩) મદિરા આદિ રસોમા ઉત્પન્ન થનારા તથા સ્વાદથી ચલિત અર્થાત્ સડેલા મધુરાદિ રસોમા ઉત્પન્ન થનારા **રસજ** કહેવાય છે (૪) પ્રસ્વેદથી પેદા થનારા જૂ, લીખ, માકણ, આદિ **સસ્વેદજ** કહેવાય છે (૫) ગર્ભાધાન વિના શરીરનામ-કર્મના ઉદયથી શરીરના અવયવોનો સગ્રહ થઇ જવાથી સ્વયં ઉત્પન્ન થનારા જીવો **સંમૂર્ચ્છિમ** કહેવાય છે (૬) પૃથ્વીને ભેદીને ઉત્પન્ન

रूढः,।) यद्वा समन्ततो देहस्य मूर्च्छनम्=अवयवसंयोगस्तेन निर्वृत्ताः सम्मूर्च्छिमाः= मातापितृसंयोगं विनैव स्वयं समुत्पन्नाः=पिपीलिका-मक्षिका-मत्कोटकादयः, (आर्षत्वात्सिद्धिः)। उद्भिज्जाः=उद्भिद्य=पृथिवीं भित्त्वा जायन्त इति ते शलभादयः। औपपातिकाः=उपपतनमुपपातः (पतधातोर्भावे घञ्) देवनारकाणां प्रसिद्धगर्भसम्मूर्च्छनरूपजन्मप्रकारद्वयविलक्षण उद्भवस्तेन निर्वृत्ताः औपपातिकाः=देवनारकाः, देवा हि पुष्पशय्यायां नारकाश्च कुम्भ्यादिषु स्वयं समुत्पद्यन्ते। तानेव विशिनष्टि–'येषा'-मित्यादिना, येषां केषाञ्चित्पूर्वोक्तानां प्राणानां=श्वासोच्छ्वासादिप्राणवताम्, अभिक्रान्तम्=आभिमुख्येन अभिमुखं वा प्रज्ञापकस्य क्रमणं= गमनमभिक्रान्तं 'भवती' ति शेषः। प्रतिक्रान्तं=प्रति=प्रातिकूल्येन प्रतिकूलं वा प्रज्ञापकस्य क्रमणम्, यद्वा प्रतिक्रान्तं=परावृत्य गमनम्, संकुचितं=संकोचः गात्रावकुञ्चनम्, प्रसारितं=करचरणादिप्रसारणं, रुतं=शब्दकरणम्, भ्रान्तम्=इतस्ततो भ्रमणम्, त्रस्तं=त्रासः=उद्वेगः, पलायितं=पलायनं भयादिना स्थानान्तरगमनं 'भवती'-त्यध्याहृतेन प्रत्येकं सम्बन्धः। सर्व एवैतेऽभिक्रान्तादयः शब्दाः भावक्तान्ताः। ते त्रसाः, आगतिगतिविज्ञातारः=आगतिः=आगमनम्, गतिः=गमनं

पृथ्वीको भेदकर उत्पन्न होनेवाले शलभ (टिड्डी) आदि उद्भिज्ज हैं (७), गर्भ और संमूर्च्छन जन्मोंसे भिन्न देव और नारकोंके जन्मको उपपात कहते हैं, उससे उत्पन्न होनेवाले देव और नारकी औपपातिक कहलाते हैं (८), देव शय्या पर और नारकी कुम्भीमें स्वयं उत्पन्न होते हैं।

ये सब पूर्वोक्त जीवोंके प्रज्ञापककी अपेक्षा सामने आना, लौटके पीछे जाना, इसी प्रकार अंगको सिकोड़ना, हाथ-पैर फैलाना, बोलना, भ्रमण करना, उद्विग्न होना, भय आदि कारणोंसे भागना आदि क्रियाएँ होती हैं। वे गमन आगमन आदिके जाननेवाले अर्थात् ओघसंज्ञासे

થનાર શલભ (તીડ) આદિ ઉદ્ભિજ્જ કહેવાય છે (૭) ગર્ભ અને સમૂર્ચ્છન જન્મોથી ભિન્ન દેવ અને નારકોના જન્મને ઉપપાત કહે છે, તેથી ઉત્પન્ન થનારા દેવ અને નારકી ઔપપાતિક કહેવાય છે (૮) દેવ શય્યા પર અને નારકી કુંભીમા સ્વય ઉત્પન્ન થાય છે

એ બધા પૂર્વોક્ત જીવોનું પ્રજ્ઞાપકની અપેક્ષાએ સામે આવવું, ફરીને પાછા જવુ, એ જ રીતે અંગ સકોચવા, હાથ-પગ ફેલાવવા, બોલવુ, ભ્રમવુ, ઉદ્વિગ્ન થવું, ભયાદિ કારણે ભાગી જવું, વગેરે ક્રિયાઓ હોય છે. તેઓ ગમનાગમન આદિને જાણનારા અર્થાત્ ઓઘ-સંજ્ઞાથી પ્રવૃત્તિ કરનારા હોય છે. અનુકૂળતા

तयोर्विज्ञातारः=वेदितारः=ओघसंज्ञया प्रवृत्तिमन्तः स्वस्वाभिक्रान्तप्रतिक्रान्तादि-विषयकाऽवबोधसम्पन्ना भवन्तीत्यर्थः ।

इन्द्रियादिविभागप्रदर्शनेन तानेव परिचाययति-'ये चे'-त्यादि, ये च कीटपतङ्गाः=कीटाः=कृमयो गण्डोलकप्रभृतयः, तज्जातीया अन्ये द्वीन्द्रियाश्च, पतङ्गाः=शलभाश्चतुरिन्द्रियास्तज्जातीया भ्रमरादयश्च । याश्च कुन्थु-पिपीलिकाः, कुन्थवश्च पिपीलिकाश्चेत्यनयोरितरेतरयोगे 'परवल्लिङ्गं द्वन्द्व तत्पुरुषयो'-रिति परवल्लिङ्गता । कुन्थवः=चलन्त एव परिज्ञेया न स्थिताः सूक्ष्मत्वात् लघुकायजीवाः, पिपीलिकाः=कीटिकास्तज्जातीयास्त्रीन्द्रियाश्च, द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियक्रममुल्लङ्घ्य द्विचतुस्त्रीन्द्रियेति व्युत्क्रमेणोपादानमार्षत्वात्सूत्रगतेर्वैचित्र्याच्च । ततः सर्वे द्वीन्द्रियाः, सर्वे त्रीन्द्रियाः, सर्वे चतुरिन्द्रियाः, सर्वे पञ्चेन्द्रियाः, सर्वे तिर्यग्योनिकाः, सर्वे नैरयिकाः, सर्वे

प्रवृत्ति करनेवाले होते हैं। अनुकूलता और प्रतिकूलताको सामान्यतया ओघसंज्ञासे जानते हैं।

इन्द्रियोंका विभाग करके फिर उनका कथन करते हैं-

कृमि, लट, गण्डोल आदि उनकी जातिवाले द्वीन्द्रिय हैं। शलभ और उनकी जातिके भ्रमर आदि चार इन्द्रियवाले होते हैं। कुन्थु और पिपीलिका (चिउंटी) तथा उनकी जातिके अन्य जीव तीन इन्द्रियवाले होते हैं। यहाँ द्वीन्द्रिय बतानेके बाद पहले चार इन्द्रिय फिर तीन इन्द्रियवाले जीव बताये हैं, यह कथन आर्ष होनेसे किया गया है, इसलिए सब द्वीन्द्रिय, सब त्रीन्द्रिय, सब चतुरिन्द्रिय, सब पंचेन्द्रिय, सब तिर्यञ्च, सब नारकी, सब

અને પ્રતિકૂળતાને સામાન્ય રીતે ઓઘ-સંજ્ઞાએ કરી જાણે છે

ઈંદ્રિયોના વિભાગ કરીને હવે એનું કથન કરવામાં આવે છે :-

કૃમિ (કરમિયા), લટ, અળસીયા વગેરે એની જાતિવાળા દ્વીન્દ્રિય છે તીડ અને એની જાતિવાળા ભ્રમર આદિ ચાર ઇંદ્રિયવાળા છે કુંથવા અને કીડી તથા તેની જાતિવાળા બીજા જીવો ત્રણ ઇંદ્રિયવાળા હોય છે અહીં દ્વીન્દ્રિય બતાવ્યા પછી પહેલાં ચાર ઇંદ્રિયવાળા અને પછી ત્રણ ઇંદ્રિયવાળા બતાવ્યા છે, એ કથન આર્ષ હોવાથી કરેલુ છે એ રીતે બધા દ્વીન્દ્રિય, બધા ત્રીન્દ્રિય, બધા ચતુરિન્દ્રિય, બધા પચેંદ્રિય, બધા તિર્યંચ, બધા નારકી, બધા મનુષ્ય, બધા દેવ, એ પ્રકારે

मनुष्याः, सर्वे देवाः, सर्वे प्राणाः=पूर्वोक्ताः सकलप्राणिनः परमधर्माणः=परमं सुखमेव धर्मो येषां ते सुखाभिलाषुका इत्यर्थः 'परमा' इत्यत्र दीर्घ आर्षत्वात्। एषः=अनन्तरोदीरितस्वरूपोऽण्डजादिलक्षणः खलु=निश्चयेन षष्ठः=स्थावरपञ्चकापेक्षया षष्ठत्वमापन्नः जीवनिकायः=प्राणिसमूहः 'त्रसकाय'-इति प्रोच्यते=कथ्यते त्रसकायनाम्ना ख्यात इत्यर्थः ॥६॥

सर्वे प्राणिनः सुखाभिलाषिणो भवन्ति, सुखं च तेषामनारम्भेणैव सम्पद्यतेऽत इदानीमनारम्भोपदेशः-'इच्चेसिं' इत्यादि ।

मूलम्-इच्चेसिं छण्हं जीवनिकायाणं नेव सयं दंडं समारंभिज्जा, नेवन्नेहिं दंडं समारंभाविज्जा, दंडं समारंभंतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि ॥ ७ ॥

छाया—इत्येषां षण्णां जीवनिकायानां नैव स्वयं दण्डं समारभेत, नैवान्यैर्दण्डं सामारम्भयेत्, दण्डं समारभमाणानप्यन्यान् न समनुजानीयात्, यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि। तस्य भदन्त! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि।७।

षट्कायका आरम्भ न करनेका उपदेश देते हैं—

सान्वयार्थः—इच्चेसिं=इन पूर्वोक्त छण्हं=छह जीवनिकायाणं=जीवनिका-

---

मनुष्य, सब देव, इस प्रकार पूर्वोक्त सब प्राणी सुखकी अभिलाषावाले हैं। इस छठे जीवनिकायको भगवानने त्रसकाय कहा है ॥ ६ ॥

समस्त प्राणी सुखके अभिलाषी हैं, किन्तु सुखकी प्राप्ति तब ही हो सकती है जब आरंभका परित्याग कर दिया जाय, इसलिए आरंभके त्यागका उपदेश देते हैं-'इच्चेसिं' इत्यादि ।

પૂર્વોક્ત બધા પ્રાણી સુખની અભિલાષાવાળા છે એ છઠા જીવનિકાયને ભગવાને ત્રસ-કાય કહેલ છે (૬)

બધા પ્રાણી સુખના અભિલાષી છે, પરન્તુ સુખની પ્રાપ્તિ ત્યારે થાય છે કે જ્યારે આરંભનો પરિત્યાગ કરવામાં આવે, તેથી આરંભના ત્યાગનો ઉપદેશ આપે છે- इच्चेसिं ઇત્યાદિ

योंके दंडं=दण्ड-हिंसा आदि-को सयं=स्वयं नेव=न समारंभिज्जा=आरम्भ करे, नेव=न अन्नेहिं=दूसरोंसे दंडं=दण्डको समारंभाविज्जा=आरंभ करावे, दंडं= दण्डका समारंभंतेवि=आरम्भ करते हुओंको भी अन्ने=दूसरोंको न=नहीं समणुजाणेज्जा=भला जाने,जावज्जीवाए=यावज्जीवन-जीवनपर्यन्त तिविहं=कृत-कारित-अनुमोदनारूप तीन-करण-पूर्वक (इस प्रकार) तिविहेण=तीन प्रकारके मणेणं=मनसे वायाए=वचनसे काएणं=कायासे न करेमि=नहीं करूँगा, न कारवेमि=नहीं कराऊँगा, अन्ने=दूसरे करंतंपि=करनेवालेकोभी न समणुजाणामि=भला नहीं समझूँगा। भंते !=हे भदन्त ! तस्स=पूर्वोक्त उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे जुगुप्सा करता हूँ, गरिहामि= गुरुसाक्षीसे गर्हा करता हूं (और) अप्पाणं=दंडसेवन करनेवाले आत्माका वोसिरामि=त्याग करता हूँ ॥६॥

टीका—इत्येषां पूर्वोक्तस्वरूपाणां षण्णां जीवनिकायानां=त्रसस्थावरलक्षण-जीवसमुदायानाम्, दण्ड्यते=सारहीनः क्रियते आत्माऽनेनेति दण्डः=प्राणव्यपरोपणादिस्तम्, स्वयम्=आत्मना नैव=न कदापि समारभेत=विदधीत, नैव अन्यैः= स्वव्यतिरिक्तैः कैरपि जनैस्तद्वारेति भावः, दण्डम्=उक्तलक्षणव्यापारं सामारम्भयेत्= कारयेत्, दण्डं समारभमाणान्=कुर्वाणान् अपि अन्यान् न समनुजानीयात्= अनुमन्येत। कियत्समयपर्यन्त ? मित्याह—'जावज्जीवाए' इति, अत्र यावच्छब्दः परिमाणार्थको मर्यादार्थकोऽवधारणार्थकश्चाव्ययः, जीवनं जीवा ('जीव प्राणधारणे' अस्मात् 'गुरोश्च हलः'(३।३।१०३) इतिपाणिनिवचनेन स्त्रियामकारप्रत्यये स्त्रीत्वाट्टाप् 'ईहा, ऊहे'-त्यादिवत्,) तया जीवया जीवामित्यर्थः ('ततोऽन्यत्रापि दृश्यते') इति वचनबलाद् यावच्छब्दयोगे द्वितीयायाः प्राप्तावपि सौत्रत्वात्तृतीया, तेन यावन्मम जीवनं तावदिति, जीवनं मर्यादीकृत्यार्थान्न केवलं मरणकाल

जिससे आत्मा ज्ञान दर्शन चारित्रसे रहित होजाय उस हिंसा आदि व्यापारको दण्ड कहते हैं। मुनि पूर्वोक्त छह कायोंके दण्डका यावज्जीव न स्वयं समारभ करे न दूसरोंसे करावे और न समारंभ करनेवाले

જેથી આત્મા જ્ઞાન દર્શન ચારિત્રથી રહિત થઈ જાય, એ હિંસા આદિ વ્યાપારને દંડ કહે છે મુનિ પૂર્વોકત છ કાયોના દડનો યાવજ્જીવન પોતે ન સમારંભ કરે, ન બીજાઓ પાસે કરાવે અને સમારંભ કરનારા બીજાઓની ન

एवाऽपितु ततः भागपीति, जीवन एव न तदुत्तरं परलोकेऽपीत्यर्थः । दण्डं किंविधं ? मित्याह-त्रिविधं=तिस्रो विधाः-प्रकारा यस्य स तम्=कृत-कारिताऽनुमत-रूपम्, तत्र कृतं=स्वतन्त्रेणाऽऽत्मना सम्पादितम्, कारितम्=अन्य-(व्यक्त्यन्तर)-द्वारा निष्पादितम्, अनुमतं=सावद्यव्यापारमारभमाणस्य 'त्वं साधु करोषि, एवमेव कुर्वन्नास्व' इत्यादिना प्रोत्साहितम्, त्रिविधेन=प्रकारत्रयविशिष्टेन करणभूतेन, केने ? त्याह-'मनसा वाचा कायेने'ति ।

ननु त्रिविधेनेत्यनेन यत्प्रकारत्रयं गृह्यते तत् 'मनसे' त्यादिना प्रतिपदमेवोक्तम्, एवं सति त्रिविधेनेत्युपादानं पौनरुक्त्यदोपग्रस्तं भवति । यद्वा 'त्रिविधेने'ति विशेषणं 'मनसे'-त्यादेरेव संभवति, ततश्च 'त्रिविधेन मनसा, त्रिविधया वाचा,

---

दूसरोंकी अनुमोदना करे । दण्ड तीन प्रकारका है-(१) कृत, (२) कारित, (३) अनुमोदित ।

कृत-अपनी इच्छासे स्वयं करना ।

कारित-दूसरे व्यक्तिसे कराना ।

अनुमोदित-जो सावद्य व्यापार कर रहा हो उसे अच्छा समझना।

यह सब सावद्य व्यापार तीन करण तीन योगसे न करे । वे तीन योग ये हैं-(१) मन, (२) वचन, (३) काय ।

प्रश्न-सूत्रमें 'त्रिविधेन' (तीन प्रकारसे) कहा ही है फिर 'मनसा' (मनसे) 'वाचा' (वचनसे) 'कायेन' (कायसे) कहनेसे पुनरुक्ति (कहे हुए को पुनः कहना) होती है । या 'तीन प्रकारसे' यह विशेषण 'मन, वचन, काय' का ही हो सकता है। यदि ऐसा मान लिया जाय तो इसका

અનુમોદના કરે દંડ ત્રણ પ્રકારનો છે: (૧) કૃત, (૨) કારિત, (૩) અનુમોદિત

કૃત-પોતાની ઈચ્છાથી પોતે કરવું

કારિત-બીજી વ્યક્તિ પાસે કરાવવું.

અનુમોદિત-જે સાવદ્ય વ્યાપાર કરી રહ્યો હોય, તેને સારૂં જાણવું.

એ બધા સાવદ્ય વ્યાપાર ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી ન કરે તે ત્રણ યોગ, આ છે-(૧) મન, (૨) વચન, (૩) કાયા

પ્રશ્ન-સૂત્રમા त्रिविधेन (ત્રણ પ્રકારે) કહેલું જ છે, પછી मनसा (મનથી), वाचा (વચનથી,) कायेन (કાયાથી) કહેવાથી પુનરૂક્તિ (કહેલાને ફરી કહેવું) થાય છે આ 'ત્રણ પ્રકારે' એ વિશેષણ 'મન, વચન, કાયા' નું જ હોઈ શકે છે. જો એમ માનવામા આવે તો એનો અર્થ એવો થશે કે 'ત્રણ પ્રકારના

त्रिविधेन कायेने'-त्यन्वये मनोवाक्कायानां प्रत्येकं त्रैविध्यं प्राप्नोति तच्चाऽनिष्टं, नह्यत्र मनआदीनि प्रत्येकं त्रैविध्यमर्हन्ति किं तर्हि? तद्व्यापारा एवेति चेन्न,

तदभावे हि 'मनसा वाचा कायेन' इत्येतावन्मात्रोक्तौ 'न करोमि न कारयामि, कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामी'-त्यनेन सह 'यथासंख्यमनुदेशः समानाम्' (१।३।१०) इति वचनानुरोधेन 'शत्रुं मित्रं विपत्तिं च जय रञ्जय भञ्जये'-त्यादिवत्, एचोऽयवायावः' (६।१।७८) इत्यादिवद्वा क्रमिकान्वये 'मनसा न करोमि, वाचा न कारयामि, कायेन कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजा-

अर्थ होगा कि 'तीन प्रकारके मनसे, तीन प्रकारके वचनसे और तीन प्रकारके कायसे' आरम्भ न करे। अर्थात् मन वचन कायके तीन तीन भेद होंगे। ऐसा अर्थ शास्त्रविरुद्ध है-शास्त्रोंमें भगवानने मन आदिके तीन तीन भेद नहीं बताये हैं, किन्तु मन आदिके व्यापारोंको तीन प्रकारका बताया है।

उत्तर-यह शंका ठीक नहीं है। यदि 'त्रिविधेन' न कहकर केवल 'मनसा वाचा कायेन' कह देते तो अर्थ ठीक न बैठता, क्योंकि जैसे कोई कहे कि "हेय और उपादेयको त्यागो और ग्रहण करो।" तो इस वाक्यमें क्रमसे 'हेय' के साथ 'त्यागो'का सम्बन्ध होजाता है और 'उपादेय'के साथ 'ग्रहण करो'का। इसी प्रकार 'चोलपट्टा चादर पहनो, ओढो' कहनेसे यह अर्थ होता है कि "चोलपट्टा पहनो-और चादर ओढो।" इसीप्रकार 'त्रिविधेन' (तीन प्रकारसे) पद न रखते

મનથી, ત્રણ પ્રકારના વચનથી, અને ત્રણ પ્રકારની કાયાથી' આરંભ ન કરે. અર્થાત્ મન વચન કાયાના પણ ત્રણ ભેદ બનશે એવો અર્થ શાસ્ત્રવિરૂદ્ધ છે શાસ્ત્રમાં ભગવાને મન આદિના ત્રણ ભેદ બતાવ્યા નથી, પરન્તુ, મન આદિના વ્યાપારોને તે ત્રણ પ્રકારના બતાવ્યા છે.

ઉત્તર-એ શંકા બરાબર નથી. જો त्रिविधेन ન કહીને કેવળ मनसा वाचा कायेन કહ્યું હોત તો અર્થ બરાબર બંધ બેસત નહિ કારણ કે જેમ કોઇ કહે કે "હેય અને ઉપાદેયને ત્યાગો અને ગ્રહણ કરો" તો એ વાકયમાં ક્રમાનુસાર 'હેય'ના સાથે 'ત્યાગ'નો સંબંધ થઇ જાય છે અને 'ઉપાદેય'ની સાથે 'ગ્રહણ કરો'નો એજ રીતે 'ચોલપટ્ટો ચાદર પહેરો ઓઢો' કહેવાથી એ અર્થ થાય છે કે 'ચોલપટ્ટો પહેરો અને ચાદર ઓઢો.' એ રીતે त्रिविधेन (ત્રણ પ્રકારે)

एवाऽपितु ततः प्रागपीति, जीवन एव न तदुत्तरं परलोकेऽपीत्यर्थः । दण्डं किंविध ? मित्याह-त्रिविधं=तिस्रो विधाः-प्रकारा यस्य स तम्=कृत-कारिताऽनुमत-रूपम् , तत्र कृतं=स्वतन्त्रेणाऽऽत्मना सम्पादितम् , कारितम्=अन्य-(व्यक्त्यन्तर)-द्वारा निष्पादितम् , अनुमतं=सावद्यव्यापारमारभमाणस्य 'त्वं साधु करोषि, एवमेव कुर्वन्नास्व' इत्यादिना प्रोत्साहितम् , त्रिविधेन=प्रकारत्रयविशिष्टेन करणभूतेन, केने ? त्याह-'मनसा वाचा कायेने'ति ।

ननु त्रिविधेनेत्यनेन यत्प्रकारत्रयं गृह्यते तत् 'मनसे' त्यादिना प्रतिपदमेवोक्तम् , एवं सति त्रिविधेनेत्युपादानं पौनरुक्त्यदोषग्रस्तं भवति । यद्वा 'त्रिविधेने'ति विशेषणं 'मनसे'-त्यादेरेव संभवति, ततश्च 'त्रिविधेन मनसा, त्रिविधया वाचा,

---

दूसरोंकी अनुमोदना करे । दण्ड तीन प्रकारका है-(१) कृत, (२) कारित, (३) अनुमोदित ।

कृत-अपनी इच्छासे स्वयं करना ।

कारित-दूसरे व्यक्तिसे कराना ।

अनुमोदित-जो सावद्य व्यापार कर रहा हो उसे अच्छा समझना ।

यह सब सावद्य व्यापार तीन करण तीन योगसे न करे । वे तीन योग ये हैं-(१) मन, (२) वचन, (३) काय ।

प्रश्न-सूत्रमें 'त्रिविधेन' (तीन प्रकारसे) कहा ही है फिर 'मनसा' (मनसे) 'वाचा' (वचनसे) 'कायेन' (कायसे) कहनेसे पुनरुक्ति (कहे हुए को पुनः कहना) होती है । या 'तीन प्रकारसे' यह विशेषण 'मन, वचन, काय' का ही हो सकता है । यदि ऐसा मान लिया जाय तो इसका

અનુમોદના કરે દંડ ત્રણ પ્રકારનો છે. (૧) કૃત, (૨) કારિત, (૩) અનુમોદિત

કૃત-પોતાની ઈચ્છાથી પોતે કરવું

કારિત-બીજી વ્યકિત પાસે કરાવવું

અનુમોદિત-જે સાવદ્ય વ્યાપાર કરી રહ્યો હોય, તેને સારૂં જાણવું

એ બધા સાવદ્ય વ્યાપાર ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી ન કરે તે ત્રણ યોગ, આ છે-(૧) મન, (૨) વચન, (૩) કાયા

પ્રશ્ન-સૂત્રમા त्रिविधेन (ત્રણ પ્રકારે) કહેલું જ છે, પછી मनसा (મનથી), वाचा (વચનથી,) कायेन (કાયાથી) કહેવાથી પુનરૂકિત (કહેલાને ફરી કહેવું) થાય છે આ 'ત્રણ પ્રકારે' એ વિશેષણ 'મન, વચન, કાયા' નુ જ હોઇ શકે છે. જો એમ માનવામા આવે તો એનો અર્થ એવો થશે કે 'ત્રણ પ્રકારના

त्रिविधेन कायेने'-त्यन्वये मनोवाक्कायानां प्रत्येकं त्रैविध्यं प्राप्नोति तच्चाऽनिष्टं, नह्यत्र मनआदीनि प्रत्येकं त्रैविध्यमर्हन्ति किं तर्हि? तद्व्यापारा एवेति चेन्न,

तदभावे हि 'मनसा वाचा कायेन' इत्येतावन्मात्रोक्तौ 'न करोमि न कारयामि, कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामी'-त्यनेन सह 'यथासंख्यमनुदेशः समानाम्' (१।३।१०) इति वचनानुरोधेन 'शत्रुं मित्रं विपत्तिं च जय रञ्जय भञ्जये'-त्यादिवत्, एचोऽयवायावः' (६।१।७८) इत्यादिवद्वा क्रमिकान्वये 'मनसा न करोमि, वाचा न कारयामि, कायेन कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजा-

---

अर्थ होगा कि 'तीन प्रकारके मनसे, तीन प्रकारके वचनसे और तीन प्रकारके कायसे' आरम्भ न करे। अर्थात् मन वचन कायके तीन तीन भेद होंगे। ऐसा अर्थ शास्त्रविरुद्ध है-शास्त्रोंमें भगवानने मन आदिके तीन तीन भेद नहीं बताये हैं, किन्तु मन आदिके व्यापारोंको तीन प्रकारका बताया है।

उत्तर-यह शंका ठीक नहीं है। यदि 'त्रिविधेन' न कहकर केवल 'मनसा वाचा कायेन' कह देते तो अर्थ ठीक न बैठता, क्योंकि जैसे कोई कहे कि "हेय और उपादेयको त्यागो और ग्रहण करो।" तो इस वाक्यमें क्रमसे 'हेय' के साथ 'त्यागो'का सम्बन्ध होजाता है और 'उपादेय'के साथ 'ग्रहण करो'का। इसी प्रकार 'चोलपट्टा चादर पहनो, ओढो' कहनेसे यह अर्थ होता है कि "चोलपट्टा पहनो-और चादर ओढो।" इसीप्रकार 'त्रिविधेन' (तीन प्रकारसे) पद न रखते

મનથી, ત્રણ પ્રકારના વચનથી, અને ત્રણ પ્રકારની કાયાથી' આરંભ ન કરે. અર્થાત્ મન વચન કાયાના પણ ત્રણ ભેદ બનશે. એવો અર્થ શાસ્ત્રવિરૂદ્ધ છે. શાસ્ત્રમાં ભગવાને મન આદિના ત્રણ ભેદ બતાવ્યા નથી, પરન્તુ મન આદિના વ્યાપારોને તે ત્રણ પ્રકારના બતાવ્યા છે.

ઉત્તર-એ શંકા બરાબર નથી જો त्रिविधेन ન કહીને કેવળ मनसा वाचा कायेन કહ્યું હોત તો અર્થ બરાબર બંધ બેસત નહિ. કારણ કે જેમ કોઇ કહે કે "હેય અને ઉપાદેયને ત્યાગો અને ગ્રહણ કરો" તો એ વાકયમાં ક્રમાનુસાર 'હેય'ની સાથે 'ત્યાગ'નો સંબંધ થઇ જાય છે અને 'ઉપાદેય'ની સાથે 'ગ્રહણ કરો'નો એજ રીતે 'ચોલપટ્ટો ચાદર પહેરો ઓઢો' કહેવાથી એ અર્થ થાય છે કે 'ચોલપટ્ટો પહેરો અને ચાદર ઓઢો.' એ રીતે त्रिविधेन (ત્રણ પ્રકારે)

चारित्रैर्दीप्यते इति भान्तः ('भा दीप्तौ' अस्मादौणादिकोऽन्तप्रत्ययः) स एव भदन्तः, ('सिद्धिः पृषोदरादित्वादेव')।

(एवं यथामति व्युत्पत्त्यन्तरेष्वपि निरुक्तोक्तशाकटायनादिप्रतिपादितरीत्या साधनप्रक्रिया बोद्धव्या।) तत्सम्बोधने हे भदन्त!=हे भगवन्! अनेन सम्बोधन-निर्देशेन व्रतप्रत्याख्यानादिकः सर्वोऽपि क्रियाकलापो गुरुसाक्षिक एव विधातव्य इति बोधितम्। प्रतिक्रामामि=प्रतिनिवर्त्ते भूतदण्डात्पृथग्भवामीत्यर्थः। यत्तु टीकान्तरेषु 'पडिक्कमामी'-त्यस्य 'प्रतिक्रमामी'ति छायोपलभ्यते सा प्रमाद-विजृम्भितैव, ('क्रमः परस्मैपदेषु' (७।३।७६) इति पाणिनिवचनबलेन क्रमे-रुपधादीर्घस्य दुर्वारत्वात्।) निन्दामि=जुगुप्से। गर्हे=प्रजुगुप्से इत्येवार्थः।

ननु तर्हि निन्दा-गर्हयोः 'कुत्सा निन्दा च गर्हणे'-ति कोशरीत्या पर्यायत्वेन पौनरुक्त्य वज्रलेपायितमेवेति चेन्न, यतः स्वसाक्षिकी निन्दा, गुरुसाक्षिकी च गर्हेति परस्परं भवति भेदः। यद्वा 'निन्दा=साधारणी कुत्सा, गर्हा=सैवाति-भूयसी'-ति परस्परमर्थभेदान्नास्ति पर्यायता, यथा प्रवृद्ध एव कोपः क्रोधो न साधारण इति कोप-क्रोधयोः पर्यायत्वाभावेन क्रुध्यर्थत्वाभावात् कुप्धातुयोगे

और सम्यक्चारित्रसे दीपनेवाले। इन सबको 'भंते' कहते हैं। इसी प्रकार और अर्थ भी समझने चाहिए। 'भदन्त!' इस सम्बोधनसे यह प्रगट होता है कि समस्त क्रियाएँ गुरु महाराजकी साक्षीसे ही करनी चाहिए।

हे भगवन्! मैं दण्डसे निवृत्त होता हूँ, निन्दा करता हूँ, और गर्हा करता हूँ। कोशोंमें निन्दा और गर्हा शब्दका एक ही अर्थ है इसलिए पुनरुक्ति होती है, ऐसा नहीं समझना चाहिए, क्योंकि निन्दा आत्मसाक्षीसे होती है और गर्हा गुरुसाक्षीसे होती है। अथवा निन्दा साधारण कुत्साको कहते हैं और गर्हा अत्यन्त निन्दाको कहते हैं।

અને સમ્યક્-ચારિત્રથી દીપ્તિમાન, એ બધાને भंते કહે છે. એજ રીતે બીજા અર્થો પણ સમજી લેવા 'भदन्त' એ સંબોધનથી એમ પ્રકટ થાય છે કે બધી ક્રિયાઓ ગુરૂ મહારાજની સાક્ષીએ જ કરવી જોઇએ

હે ભગવન! હું દંડથી નિવૃત્ત થઉં છું, નિન્દા કરૂં છું અને ગર્હા કરૂં છું. શબ્દકોશોમાં 'નિન્દા' અને 'ગર્હા' શબ્દનો એકજ અર્થ છે, તેથી પુનરૂક્તિ થાય છે, એમ ન સમજવું, કારણ કે નિંદા આત્મસાક્ષીએ થાય છે અને ગર્હા ગુરૂ સાક્ષીએ થાય છે. અથવા નિંદા સાધારણ કુત્સાને કહે છે અને ગર્હા અત્યંત નિંદાને કહે છે.

चतुर्थी [1]नेष्यते, 'निन्दामि, गर्हे' इत्यनयोस्तस्येत्यनेन प्रागुक्तेन सम्बन्धस्तेन–अतीतदण्डसम्बन्धिनीं स्वसाक्षिकीं गुरुसाक्षिकीं च निन्दां करोमीति निर्गलितोऽर्थः, तस्येत्यत्र सम्बन्ध-सामान्ये षष्ठ्याः प्रागुक्तत्वात् । यद्वा 'आत्मान'-मित्यस्यैव मध्यमणिन्यायाद् देहलीदीपन्यायाद्वा व्युत्सृजामीत्यनेन 'निन्दामि, गर्हे' इत्याभ्यां च सम्बन्धस्तेन भूतकालिकदण्डविधायिनमप्रशस्तमात्मानं जुगुप्से व्युत्सृजामि=विविधाऽनित्यादिभावनया विशिष्य वा परित्यजामीत्यर्थः ॥७॥

---

१ "क्रुधद्रुहेर्ष्याऽसूयार्थानां यं प्रति कोपः" (१।४।६४) इत्यत्र शब्देन्दुशेखरे 'न-ह्यकुपितः क्रुध्यती'–ति भाष्येण प्ररूढकोप एव क्रोध इति कुपेस्तदर्थत्वाभावेन न तद्योग इदम् 'कुप्यति कस्मैचि'-दित्याद्यसाध्वेवेति ।

इसका अर्थ यह होता है कि–हे भगवन् ! अतीत कालमें दण्ड (सावद्य व्यापार) करनेवाले आत्मा (आत्मपरिणति) को अनित्य आदि भावना भाकर त्यागता हूँ, निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ। जैसे घरकी देहलीपर दीपक रखनेसे भीतर भी प्रकाश होता है और बाहर भी प्रकाश होता है इसको 'देहली–दीपक' न्याय कहते हैं। कहा भी है–"परे एक पद बीचमें, दुहु दिस लागे सोय । सो है 'दीपक देहरी', जानत है सब कोय ॥१॥" बीचमें मणि जड़ देनेसे दोनों ओर मणिका प्रकाश होता है, यह 'मध्यमणि' न्याय कहलाता है, इसी प्रकार 'अप्पाण' का दोनोंके साथ सम्बन्ध होता है । अर्थात् सावद्य व्यापारवाली आत्माको त्यागता हूँ और उसकी निन्दा करता हूँ, तथा गर्हा करता हूँ ॥७॥

એનો અર્થ એ થાય છે કે– હે ભગવન્ ! અતીત કાળમાં દંડ (સાવદ્ય વ્યાપાર) કરનારા આત્મા (આત્મપરિણતિ)ને અનિત્ય આદિ ભાવના ભાવીને ત્યાગું છું, નિંદુ છું, ગર્હું છું, જેમ ઘરની ડહેલી (બારણું) પર દીવો રાખવાથી અંદર પણ પ્રકાશ થાય છે અને બહાર પણ પ્રકાશ થાય છે તેને 'દેહલી–દીપક ન્યાય' કહે છે કહ્યું છે કે– "પરૈ એક પદ બીચમે, દુહુ દિસ લાગે સોય, સો હૈ 'દીપક–દેહરી,' જાનત હૈ સબ કોય (૧)" વચમાં મણિ જડી દેવાથી બેઉ બાજુ મણિનો પ્રકાશ થાય છે તેને 'મધ્ય–મણિ ન્યાય' કહે છે, એ રીતે अप्पाणं નો બેઉની સાથે સંબંધ થાય છે અર્થાત્ સાવદ્ય–વ્યાપારવાળા આત્માને ત્યાગું છું અને તેની નિંદા કરૂં છું, તથા ગર્હા કરૂં છું (૭)

दण्डपरित्यागो द्विविधः सामान्यविशेषभेदात्, सामान्यतो दण्डपरित्यागोऽहिंसासामान्यम्, विशेषतो दण्डपरित्यागश्च पञ्च महाव्रतानि ।

ननु पञ्चसु महाव्रतेषु सत्यादिव्रतानामहिंसातो भेदः सुस्पष्टं प्रतीयत इति कथमहिंसया पञ्चानां महाव्रतानां सामान्य-विशेषभाव उपपद्येत ? सामान्यविशेषभावो हि विशेषत्वेन विवक्षितपदार्थस्य सामान्यधर्माक्रान्तत्वादेव संपद्यते, अत एव 'व्याप्यव्यापकभावापन्नयोः सामान्यविशेषभावः' इत्युद्घोषः, यथा-'द्रोणो व्रीहि'रित्यत्र प्रथमाविभक्त्यर्थस्य परिमाणसामान्यस्य द्रोणशब्दार्थे चतुराढकात्मक-

दण्डपरित्याग दो प्रकारका है-(१) सामान्य-दण्डपरित्याग और (१) विशेष-दण्डपरित्याग। अहिंसा-सामान्यको सामान्य-दण्डपरित्याग कहते हैं और पंच महाव्रतोंको विशेष-दण्डपरित्याग कहते हैं ।

प्रश्न-पांच महाव्रतोंमें सत्य आदि महाव्रतोंका अहिंसासे स्पष्ट भेद प्रतीत होता है, फिर अहिंसाके साथ सत्य आदि महाव्रतोंका सामान्य-विशेषभाव कैसे हो सकता है ? सामान्य-विशेषभाव वहीं होता है जिसको विशेष बनावें उसमें सामान्य धर्म भी पाया जाय। इसीलिए यह कहा गया है कि 'व्याप्य-व्यापकभाव जिनमें होता है उन्हींमें सामान्य-विशेषभाव पाया जाता है' जैसे "द्रोणो व्रीहिः" इस वाक्यमें प्रथमा विभक्तिका अर्थ परिमाण-सामान्य है । इस परिमाण-सामान्यका द्रोण शब्दके अर्थ चार आढकरूप परिमाण-विशेषमें अभेद सम्बन्धके

દંડપરિત્યાગ બે પ્રકારનો છે (૧) સામાન્ય-દંડપરિત્યાગ અને (૨) વિશેષ-દંડપરિત્યાગ અહિંસાસામાન્યને સામાન્ય દંડ-પરિત્યાગ કહે છે, અને પંચ મહાવ્રતોને વિશેષ-દંડપરિત્યાગ કહે છે

પ્રશ્ન—પાંચ મહાવ્રતોમાં સત્ય આદિ મહાવ્રતોનો અહિંસાથી સ્પષ્ટ ભેદ પ્રતીત થાય છે, તો પછી અહિંસાની સાથે સત્ય આદિ મહાવ્રતોનો સામાન્ય-વિશેષ-ભાવ કેવી રીતે હોઈ શકે છે ? સામાન્ય-વિશેષ-ભાવ તેમાં હોઈ શકે છે કે જેને વિશેષ બતાવે તેમાં સામાન્ય ધર્મ પણ મળી આવે તેથી કરીને એમ કહેવામાં આવ્યું છે કે 'જેમાં વ્યાપ્ય-વ્યાપકભાવ હોય છે તેમાં જ સામાન્ય-વિશેષ-ભાવ મળી આવે છે' જેમકે द्रोणो व्रीहिः એ વાક્યમાં પ્રથમા વિભક્તિનો અર્થ પરિમાણ-સામાન્ય છે એ પરિમાણ-સામાન્યનો, દ્રોણ શબ્દના અર્થ ચાર આઢક રૂપ પરિમાણ-વિશેષમાં અભેદ સંબંધની દ્વારા અન્વય થાય છે. એ

परिमाणविशेषे तादात्म्यसम्बन्धेन (अभेदसम्बन्धेन) अन्वये सति द्रोणाभिन्नं परिमाणमिति बोधः, ततश्च प्रत्ययार्थपरिमाणस्य परिच्छेद्य-परिच्छेदकभावेन व्रीहिपदार्थेऽन्वये द्रोणाभिन्नं यत्परिमाणं तत्परिच्छिन्नो (तत्परिमितो) व्रीहिरिति बोधः, अत्र प्रत्ययार्थस्य व्रीहावन्वयप्रदर्शनं प्रकृतानुपयोग्यपि प्रसङ्गतः कृतम् । यद्वा-यथा 'उपाध्यायो मुनि'-रित्यत्रोपाध्यायशब्दार्थे उपाध्यायपदधारिणि मुनिविशेषे मुनिशब्दार्थस्य मुनिसामान्यस्य तादात्म्यसम्बन्धेन (अभेदसम्बन्धेन) अन्वयः, तथा च-उपाध्यायाभिन्नो मुनिरिति बोधः, तत्र विशेषत्वेन विवक्षित-पदार्थे उपाध्यायपदधारिणि मुनिविशेषे मुनिशब्दार्थस्य मुनित्वस्य सत्त्वादुभयोः

द्वारा अन्वय होता है । इस अन्वयसे "चार आढकरूप परिमाण" (एक प्रकारका तौल) ऐसा बोध होता है । उस प्रत्ययार्थ परिमाण-सामान्यको परिच्छेद्य-परिच्छेदक-भाव सम्बन्धसे व्रीहि पदार्थमें अन्वय होनेसे "उस परिमाणसे परिमित (मापा हुआ) व्रीहि" ऐसा बोध होता है । यहां व्रीहिमें अन्वय प्रसंगवश दिखलाया गया है। अथवा—

"उपाध्यायो मुनिः" यहाँ उपाध्याय शब्दका अर्थ है उपाध्याय-पदधारी मुनिविशेष (१), तथा मुनि शब्दका अर्थ मुनिसामान्य (२), अतः जो उपाध्याय है वही मुनि है, अर्थात् मुनिसे अन्य उपाध्याय नहीं है इसलिए उपाध्याय शब्दार्थको मुनि शब्दार्थके साथ अभेद सम्बन्धसे अन्वय होता है तो 'उपाध्यायसे अभिन्न मुनि' ऐसा बोध होता है । यहां विशेष याने उपाध्यायपदधारी (व्यक्ति) में मुनिके

અન્વયથી "ચાર આઢક રૂપ પરિમાણ" (એક પ્રકારનો તોલ) એવો બોધ થાય છે એ પ્રત્યયાર્થ–પરિમાણ–સામાન્યનો પરિચ્છેદ્ય–પરિચ્છેદક–ભાવ સંબંધથી વ્રીહિ પદાર્થમાં અન્વય થવાથી "એ પરિમાણથી પરિમિત (માપેલા) વ્રીહિ" એવો બોધ થાય છે અહીં વ્રીહિમા અન્વય પ્રસંગવશ બતાવવામા આવ્યો છે. અથવા—

उपाध्यायो मुनिः એમા ઉપાધ્યાય શબ્દનો અર્થ છે–ઉપાધ્યાય પદધારી મુનિ–વિશેષ (૧), તથા મુનિ શબ્દનો અર્થ છે મુનિ–સામાન્ય (૨), એટલે જે ઉપાધ્યાય છે તેજ મુનિ છે, અર્થાત્ મુનિથી જૂદો ઉપાધ્યાય નથી. એથી કરીને ઉપાધ્યાય શબ્દાર્થનો મુનિ શબ્દાર્થની સાથે અભેદ સંબંધથી અન્વય થાય છે, અને તેથી 'ઉપાધ્યાયથી અભિન્ન મુનિ' એવો બોધ થાય છે એમા વિશેષ કરીને ઉપાધ્યાય–પદધારી (વ્યકિત)માં મુનિના સામાન્ય ધર્મરૂપ મુનિત્વનું

पदार्थयोः सामान्य-विशेषभावोऽभेदान्वयश्च भवति, तथा प्रकृतेऽन्वयो न संभवति, सत्यादिमहाव्रतानामहिंसातः सुस्पष्टभेदप्रतीतिबलादभेदान्वयस्य बाधादिति चेन्न-

पञ्चानामपि महाव्रतानां वस्तुतोऽहिंसात्मकत्वात् सामान्य-विशेषभावः सुबोध एव। अहिंसासामान्यस्वरूपावदातकरणाय शिष्याणां सुस्पष्टप्रतिपत्तये च दण्ड-परित्यागस्य द्वैविध्यं कृतम्, एकैवाऽहिंसा पञ्चधा विभाजिता।

ननु यथा 'द्रोणो व्रीहि'रित्यादौ द्रोणादिशब्दार्थचतुराढकात्मकपरिमाणे चतुराढकत्वादिधर्मेण परिमाणत्वादिसामान्यधर्माक्रान्तात् प्रत्ययार्थपरिमाणा-

---

सामान्यधर्म मुनित्वका अस्तित्व पाया जाता है, अत एव दोनों पदार्थोंका सामान्य-विशेषभावमें अभेदान्वय होता है।

अर्थात् जैसे इन दो उदाहरणोंसे अभेदमें सामान्य-विशेषभ पाया जाता है, वैसा अहिंसाके साथ सत्यादि व्रतोंका अभेद नहीं है, अत एव सामान्य-विशेषभाव नहीं हो सकता, क्योंकि उनका स्पष्ट भेद प्रतीत होता है।

उत्तर-पाँचों महाव्रत वास्तवमें अहिंसास्वरूप हैं, इसलिये अहिंसासे भिन्न नहीं हैं। अहिंसाके स्वरूपको स्पष्ट करनेके लिए और शिष्योंको स्पष्ट बोध करानेके लिए दण्डपरित्यागके दो भेद कर दिये हैं, अर्थात् एक ही अहिंसाको पांच महाव्रतोंमें विभक्त कर दिया है।

प्रश्न-जैसे "द्रोणो व्रीहिः" इत्यादि वाक्योंमें परिमाणत्व आदि सामान्यधर्मसे युक्त प्रत्ययार्थ परिमाण-सामान्यसे द्रोण शब्दार्थ चार

અસ્તિત્વ મળી આવે છે, તેથી કરીને બેઉ શબ્દોના અર્થોનો સામાન્ય-વિશેષ ભાવમા અભેદાન્વય થાય છે

અર્થાત્-જેમ એ બેઉ ઉદાહરણોથી અભેદમા સામાન્ય-વિશેષ ભાવ મળી આવે છે, તેમ અહિંસાની સાથે સત્યાદિ વ્રતોનો અભેદ નથી, તેથી સામાન્ય-વિશેષ-ભાવ થઇ શકતો નથી, કારણ કે એનો સ્પષ્ટ ભેદ પ્રતીત થાય છે

ઉત્તર—પાંચે મહાવ્રત વસ્તુતાએ અહિંસાસ્વરૂપ છે, તેથી કરી અહિંસાથી ભિન્ન નથી અહિંસાના સ્વરૂપને સ્પષ્ટ કરવાને માટે અને શિષ્યોને સ્પષ્ટ બોધ કરાવવાને માટે દંડ પરિત્યાગના બે ભેદ કરવામા આવ્યા છે, અર્થાત્ એક જ અહિંસાને પાચ મહાવ્રતોમાં વિભકત કરી નાખવામા આવી છે

પ્રશ્ન—જેમ દ્રોણો વ્રીહિઃ ઇત્યાદિ વાકયોમા પરિમાણુત્વ આદિ સામાન્ય ધર્મથી યુક્ત પ્રત્યયાર્થ પરિમાણુ-સામાન્યથી દ્રોણુ શબ્દાર્થ ચાર આઢકરૂપ

दितो विशेषत्वं प्रतीयते, यथा च नीलघटो घट इत्यादौ नीलगुणविशिष्टत्वेन नीलघटे घटसामान्यापेक्षया विशेषत्वं विद्यते, विशेषत्वं चात्र व्याप्यत्वमेव, तथा प्रकृते पञ्चमहाव्रतलक्षणेऽहिंसाविशेषे कथं विशेषत्वमिति चेच्छृणु-

प्राणातिपातविरमणत्वादिना व्याप्यधर्मेण पञ्चसु महाव्रतेषु विशेषत्वं सुवचमेवेति ।

ननु तर्हि अहिंसासामान्यस्य किं लक्षणं यत् पञ्चसु महाव्रतेषु व्यापकं भवे? दिति चेद् उच्यते-षड्जीवनिकायेषु दण्डसमारम्भवर्जनत्वमेवाऽहिंसा-सामान्यस्य

आढकरूप परिमाणमें चार आढकत्व आदि धर्मसे विशेषता प्रतीत होती है। अथवा "जो नीला घड़ा है वह घड़ा ही है" इत्यादि वाक्यों में अन्य घड़ोंकी अपेक्षा नीले घड़ेमें नीलेपनसे विशेषता पाई जाती है और वह विशेषता व्याप्यतारूप है, वैसे पंच महाव्रतरूप अहिंसा-विशेषमें विशेषता किस धर्मके कारण है?।

उत्तर-प्राणातिपातविरमणत्व आदि व्याप्यधर्मोंसे पांच महाव्रतोंमें विशेषता पाई ही जाती है। अर्थात् जहाँ प्राणातिपातविरमणत्व आदि व्याप्य धर्म पाये जाते हैं वहाँ अहिंसा-सामान्यका अस्तित्व रहता ही है।

प्रश्न-अहिंसासामान्यका लक्षण क्या है? जिससे वह पांच महाव्रतोंमें व्यापक होजावे?।

उत्तर-षड्जीवनिकायोंमें दण्डका परित्याग करना अहिंसा-सामान्यका

પરિમાણમા ચાર આઢકત્વ આદિ ધર્મથી વિશેષતા પ્રતીત થાય છે, અથવા 'જે નીલો ઘડો છે તે ઘડોજ છે' ઇત્યાદિ વાકયોમા અન્ય ઘડાની અપેક્ષાએ નીલાં ઘડામા નીલાપણાથી વિશેષતા મળી આવે છે અને તે વિશેષતા વ્યાપ્યતારૂપ છે તેમ પંચમહાવ્રતરૂપ અહિંસા-વિશેષમાં વિશેષતા કયા ધર્મને કારણે છે?

ઉત્તર—પ્રાણાતિપાતવિરમણત્વ આદિ વ્યાપ્ય-ધર્મોથી પાચ મહાવ્રતોમાં વિશેષતા મળી આવે છે અર્થાત્ જ્યાં પ્રાણાતિપાતવિરમણત્વ આદિ વ્યાપ્ય ધર્મ મળી આવે છે ત્યા અહિંસા-સામાન્યનું અસ્તિત્વ રહેલું જ હોય છે

પ્રશ્ન—અહિસા-સામાન્યનું લક્ષણ કયું છે કે જેથી તે પાંચ મહાવ્રતોમાં વ્યાપક થઇ જાય છે?

ઉત્તર—ષડ્જીવનિકાયમાં દંડનો પરિત્યાગ કરવો એ અહિંસા-સામાન્યનુ

लक्षणम् , तच्च पञ्चसु महाव्रतेषु प्रत्येकं भवतीति लक्षणसमन्वयो बोध्यः, तथा च महाव्रतान्यत्र व्याप्यानि सामान्यतो दण्डपरित्यागो व्यापकस्तस्य पञ्चमहाव्रतरूपाशेषविशेषनिष्ठत्वादतो व्यापकस्वरूपसामान्यदण्डपरित्यागं व्याख्याय विशेषदण्डपरित्यागलक्षणमहाव्रतान्यभिधत्ते, तेषु प्राणातिपातविरमणात्मिकाया अहिंसायाः प्रधानत्वम् , इतरेषां सस्यक्षेत्रवर्ति-वृति (बाड़) वत्तत्परिपालनार्थतया तदङ्गत्वात् , तथाचोक्तम्—

" अहिंसैका मता मुख्या, स्वर्गमोक्षप्रसाधनी ।
अस्याः संरक्षणार्थं च, न्याय्यं सत्यादिपालनम् ॥ १ ॥ "

अन्यच्च—

लक्षण है । यह लक्षण पाँचोंही महाव्रतोंमें पाया जाता है, अतः महाव्रत व्याप्य हैं और सामान्य-दण्डपरित्याग व्यापक है ।

व्यापकरूप सामान्य-दण्डपरित्यागका पूर्व सूत्रमें व्याख्यान किया है। अब विशेष-दण्डपरित्यागरूप पांच महाव्रतोंका व्याख्यान आरंभ करते हैं, उनमें प्राणातिपातविरमणरूप अहिंसा प्रधान है, जैसे धान्यकी रक्षाके लिए खेतके चारों ओर बाड़ होती है, उसी प्रकार अन्य महाव्रत अहिंसाके रक्षक होनेसे अंग हैं ।

कहा भी है—

"स्वर्ग और मोक्षको सिद्ध करनेवाली एक अहिंसा ही मुख्य है इसीकी रक्षाके लिए सत्यादि महाव्रतोंका पालन करना उचित है ।"॥१॥

और भी कहा है—

લક્ષણ છે, એ લક્ષણ પાચે મહાવ્રતોમા મળી આવે છે, તેથી મહાવ્રત વ્યાપ્ય છે, અને સામાન્ય-દંડપરિત્યાગ વ્યાપક છે

વ્યાપકરૂપ-સામાન્ય-દડપરિત્યાગનું વ્યાખ્યાન પૂર્વ-સૂત્રમા કહેલું છે હવે વિશેષ-દડપરિત્યાગરૂપ પાંચ મહાવ્રતોનું વ્યાખ્યાન શરૂ કરવામા આવે છે, તેમાં પ્રાણાતિપાતવિરમણરૂપ અહિંસા પ્રધાન છે જેમ ધાન્યની રક્ષાને માટે ખેતરની ચારે બાજુએ વાડ હોય છે, તેમ અન્ય મહાવ્રતો અહિંસાના રક્ષક હોવાને લીધે અગરૂપ છે કહ્યુ છે કે—

"સ્વર્ગ અને મોક્ષને સિદ્ધ કરવાવાળી એક અહિંસા જ મુખ્ય છે તેની રક્ષાને માટે સત્યાદિ મહાવ્રતોનું પાલન કરવું ઉચિત છે " (૧)

વળી કહ્યું છે કે—

" आत्मपरिणामहिंसनहेतुत्वात्सर्वमेव हिंसैतत् ।
अनृतवचनादिकेवल,-मुदाहृतं शिष्यबोधाय ॥ २ ॥ "

किञ्च—

" एगं चिय इत्थ वयं, निद्दिट्ठं जिणवरेहिं सव्वेहिं ।
पाणाइवायविरमण,-मवसेसा तस्स रक्खट्ठा ॥ ३ ॥ "

अतश्चादौ प्राणातिपातविरमणाख्यं प्रथमं महाव्रतमाह—'पढमे०' इत्यादि ।

मूलम्—पढमे भंते ! महव्वए पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वं भंते ! पाणाइवायं पच्चक्खामि, से सुहुमं वा बायरं वा तसं वा थावरं वा नेव सयं पाणे अइवाइज्जा, नेवन्नेहिं पाणे अइवायाविज्जा, पाणे अइवायंतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेण मणेणं वायाए काएणं न करेमि, न कारवेमि, करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं

"असत्य-वचन बोलने आदिसे भी आत्माके परिणामोंकी हिंसा होती है, अतः असत्य आदि सभी हिंसारूप है। असत्य आदिका अलग कथन शिष्योंको स्पष्ट समझानेके लिए किया गया है ॥२॥"

तथा—

"भगवानने एक प्राणातिपातविरमणको ही मुख्य कहा है अन्य व्रत उसीकी रक्षाके लिए हैं ॥३॥"

इसलिये पहले-पहल प्राणातिपात-विरमण महाव्रतका कथन करते हैं- "पढमे भंते०" इत्यादि ।

"અસત્ય વચન બોલવા વગેરેથી પણ આત્માના પરિણામોની હિંસા થાય છે, તેથી અસત્ય આદિ બધાં હિંસારૂપ છે. અસત્ય આદિનું જૂદું કથન શિષ્યોને સ્પષ્ટ સમજાવવાને માટે કરવામા આવ્યું છે " (૨)

તથા—

" ભગવાને એક પ્રાણાતિપાત વિરમણને જ મુખ્ય કહ્યુ છે, અન્ય વ્રતો તેની રક્ષાને માટે છે " (૩)

તેથી કરીને સૌથી પહેલાં પ્રાણાતિપાત-વિરમણ મહાવ્રતનું કથન કરે છે- પઢમે ભંતે૦ ઇત્યાદિ.

वोसिरामि । पढमे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ पाणाइवा-याओ वेरमणं ॥८॥

छाया–प्रथमे भदन्त ! महाव्रते प्राणातिपाताद्विरमणं, सर्वं भदन्त ! प्राणातिपातं प्रत्याख्यामि, अथ सूक्ष्मं वा बादरं वा त्रसं वा स्थावरं वा नैव स्वयं प्राणानतिपातयामि, नैवान्यैः प्राणानतिपातयामि, प्राणानतिपातयतोऽप्यन्यान्न समनुजानामि यावज्जीवया त्रिविधं-त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि, तस्माद् भदन्त ! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि, प्रथमे भदन्त ! महाव्रते उपस्थितोऽस्मि सर्वस्मात् प्राणातिपाताद्विरमणम् ॥

शिष्य षट्कायकी विराधना का त्याग करके अब पाँच महाव्रत और छठे रात्रि भोजनविरमणव्रतको ग्रहण करता है–

(१) प्राणातिपातविरमण.

सान्वयार्थः–भंते! हे भदन्त !-हे भगवन् ! पढमे=प्रथम महव्वए=महाव्रतमें पाणाइवायाओ=प्राणातिपातसे वेरमणं=विरमण होता है, (अतः मैं) भंते !=हे भगवन् ! सव्वं=सब प्रकारके पाणाइवायं=प्राणातिपात (हिंसा) का पच्चक्खामि=त्याग करता हूँ। से=अथ-अबसे लेकर (मैं) सुहुमं=सूक्ष्म वा=अथवा बायरं=बादर वा=अथवा तसं=त्रस वा=अथवा थावरं=स्थावर पाणे=प्राणियोंका सयं=स्वयं-खुद नेव=नहीं अइवाइज्जा=अतिपात-हनन-करूँगा, नेव=न अन्नेहिं=दूसरोंसे पाणे=प्राणियोंको अइवायाविज्जा=हनन कराऊँगा, (और) पाणे=प्राणियोंको अइवायंतेवि=हनन करते हुए भी अन्ने=दूसरोंको न=नहीं= समणुजाणेज्जा=भला जानूँगा, जावज्जीवाए=जीवनपर्यन्त (इसको) तिविहं= कृतकारितअनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेणं=तीन प्रकारके मणेणं=मनसे वायाए=वचनसे काएणं–कायसे न करेमि=न करूँगा, न कारवेमि=न कराऊँगा, करंतंपि=करते हुए भी अन्नं=दूसरेको न समणु-जाणामि=भला नहीं समझूँगा । भंते !=हे भगवन् ! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरुसाक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाणं=दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ। भंते=हे भगवन् ! पढमे=प्रथम महव्वए= महाव्रतमें मैं उवट्ठिओमि=उपस्थित हुआ हूँ, इसलिये मुझे सव्वाओ=सब प्रकारके पाणाइवायाओ=प्राणातिपातका वेरमणं=त्याग है ॥८॥ (१)

(१) प्राणातिपात-विरमणव्रतम् ।

टीका—भदन्त !=हे भगवन् ! प्रथमे=आद्ये महाव्रते=महत्-विशालं व्रतं=शास्त्रीयमर्यादानुसरणम् , महच्च तद् व्रतं च महाव्रतम् , महत्त्वं चास्य श्रावकाणुव्रतापेक्षया, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावतः सर्वव्यापकत्वेन, महद्भिस्तीर्थकरगणधरादिभिराचरितत्वेन, महापुरुषाचर्यमाणत्वेन चास्ति, तस्मिन् , प्राणातिपातात्=प्राणाः=स्पर्शनेन्द्रियादयः सन्त्येषामिति प्राणाः=एकेन्द्रियादयो जीवाः ('अर्श आदित्वादच्') तेषामतिपातो=वियोजनं हिंसनमित्यर्थः, तस्माद् विरमणं=निवर्त्तनम् 'अस्ती'ति शेषः, अतोऽहं भदन्त !=हे भगवन् ! सर्वं=स्थूलसूक्ष्मादियावद्भेदविशिष्टं कृत-कारिताऽनुमोदितस्वरूपं वा प्राणातिपात प्रत्याख्यामि=प्रति=प्रातिकूल्येन आख्यामि=कथयामि सर्वथा परित्यजामीति भावः, तदेव विशेषयति–'[१]से०' इति, से=अथ=अनन्तरम् अद्यारभ्य सूक्ष्मं=सूक्ष्मनामकर्मप्रकृत्युदयसंपन्नम् । यद्य-

१ देशीशब्दोऽयम् ।

(१) प्राणातिपातविरमण ।

ये श्रावकके व्रतोंकी अपेक्षा विशाल होनेसे महाव्रत कहलाते हैं (१), अथवा सर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षा प्राणातिपात आदिका सर्वथा त्याग होता है इस कारण महाव्रत कहलाते हैं (२), या तीर्थंकर गणधर आदि महापुरुषोंने इनको अंगीकार किया है और वर्त्तमानमें भी महापुरुष इनको अंगीकार करते हैं इससे ये महाव्रत कहलाते हैं (३)।

हे भगवन् ! प्रथम महाव्रतमें प्राणातिपातसे विरमण होता है इसलिए हे भगवन् ! मैं कृत-कारित-अनुमोदनासे सूक्ष्म-स्थूल सब प्रकारके प्राणातिपातका परित्याग करता हूँ । अर्थात् सूक्ष्म नामकर्मकी प्रकृतिसे उत्पन्न

(૧) પ્રાણાતિપાતવિરમણ

એ શ્રાવકના વ્રતોની અપેક્ષાએ વિશાળ હોવાને લીધે મહાવ્રત કહેવાય છે (૧). અથવા સર્વ દ્રવ્ય-ક્ષેત્ર-કાળ-ભાવની અપેક્ષાએ પ્રાણાતિપાત આદિનો સર્વથા ત્યાગ થાય છે એ કારણે તે મહાવ્રત કહેવાય છે (૨) અથવા તીર્થંકર ગણધર આદિ મહાપુરૂષો એને અંગીકારે છે તેથી એ મહાવ્રત કહેવાય છે (૩)

હે ભગવ ! પ્રથમ મહાવ્રતમા પ્રાણાતિપાતથી વિરમણ હોય છે, તેથી, હે ભગવન્ ! હું કૃત-કારિત-અનુમોદનાથી સૂક્ષ્મ સ્થૂલ સર્વ પ્રકારના પ્રાણાતિપાતનો પરિત્યાગ કરૂં છું. અર્થાત્ સૂક્ષ્મ-નામકર્મની પ્રકૃતિથી ઉત્પન્ન સૂક્ષ્મ

प्यस्य कायिकी हिंसा न भवति तथाऽपि तद्ग्रहणं 'न केवलं कायिक्येव हिंसा किन्तु वाङ्मनसयोर्दुष्प्रणिधानेनापि हिंसा संभवत्येवेति ज्ञापनार्थम् । यद्वा सूक्ष्मं=लघु-कायिकं कुन्थ्वादिकम्, बादरं=स्थूलकायिकं गोगजादिकम्, अनयोरपि त्रस-स्थावर-भेदाद्द्वैविध्यं, तदाह–त्रसं स्थावरं च, तत्र सूक्ष्मत्रसं=कुन्थ्वादिकम्, सूक्ष्मस्थावरं=पनकादिवनस्पतिम्, बादरत्रसम्=अज-गज-गवयादिकम्, बादरस्थावरं=भूम्यादिकम्, इतीमान् प्राणान्=जीवान् नैव स्वयम्=आत्मना अतिपातयामि=हन्मि, नैवान्यैः प्राणा-नतिपातयामि=घातयामि, प्राणानतिपातयतोऽन्यान् न समनुजानामि, इत्यादि प्राग्वत् ।

सूक्ष्म अथवा सूक्ष्म कायवाले कुंथुवा आदि और बादर (स्थूल) कायवाले गो-हस्ती आदि जीवोंके प्राणोंका कभी अतिपात नहीं करूँगा । यद्यपि सूक्ष्म नामकर्मकी प्रकृतिवाले सूक्ष्म प्राणियोंकी कायिक हिंसा नहीं होती परन्तु वचन और मनसे हो सकती है, जैसे–'यह मर जाय तो अच्छा है' ऐसा कहना वचनसे हिंसा है, और घातकी भावना करना मनसे हिंसा है; इसलिए सूक्ष्मका भी यहाँ ग्रहण किया है । सूक्ष्म और बादरके भी दो दो भेद हैं–(१) त्रस और (२) स्थावर । सूक्ष्म-त्रस कुंथुवा आदि हैं, सूक्ष्म-स्थावर पनक आदि वनस्पति (नीलण-फूलण) हैं । बादर-त्रस मेंढा घोड़ा रोझ आदि । और बादर-स्थावर भूमि आदि हैं । इन सब प्राणियोंको कभी प्राणोंसे वियुक्त नहीं करूँगा, न दूसरेसे कराऊँगा, न करनेवालेको भला जानूँगा ।

અથવા સૂક્ષ્મ કાયવાળા કુંથવા આદિ અને બાદર (સ્થૂલ) કાયવાળા ગાય હાથી આદિ જીવોના પ્રાણોનો કદાપિ અતિપાત નહિ કરૂં જો કે સૂક્ષ્મ–નામકર્મની પ્રકૃતિવાળા સૂક્ષ્મ પ્રાણીઓની કાયિક હિંસા થતી નથી, તોપણ વચન અને મનથી થઇ શકે છે; જેમકે–'એ મરી જાય તો સારૂં' એમ કહેવું તે વચનથી હિંસા છે, અને ઘાતની ભાવના કરવી એ મનથી હિંસા છે, તેથી કરીને સૂક્ષ્મને પણ અહીં ગ્રહણ કરેલ છે સૂક્ષ્મ અને બાદરના પણ બે–બે ભેદ છે. (૧) ત્રસ, અને (૨) સ્થાવર, સૂક્ષ્મ ત્રસ કુંથવા આદિ છે સૂક્ષ્મ સ્થાવર લીલન–ફૂલન આદિ વનસ્પતિ છે. બાદર ત્રસ–મેંઢા ઘોડા રોઝ વગેરે છે અને બાદર સ્થાવર–ભૂમિ આદિ છે. એ સર્વ પ્રાણીઓને કદાપિ પ્રાણથી વિયુકત કરીશ નહિ, બીજા વડે કરાવીશ નહિ અને કરનારને ભલા જાણીશ નહિ.

सम्प्रति शिष्यः स्वस्य महाव्रतित्वं ख्यापयन्नुपसंहरति-हे भगवन्! प्रथमे महाव्रते उपस्थितोऽस्मि=अभ्युद्यतोऽस्मि कृतोद्यमोऽस्मीत्यर्थः। अतोऽद्यप्रभृति मम सर्वस्मात् प्राणातिपाताद् विरमणं सकलप्राणातिपातालम्बनसावद्यव्यापारप्रत्याख्यानम् 'अस्ती'-ति शेषः ॥ ८ ॥ (१)

सलिलेन तरुगुल्मलतादीनामिव प्राणातिपातविरमणस्य परिपुष्टिर्मृषावादपरित्यागेन भवतीत्यतस्तदनन्तरं मृषावादपरित्यागलक्षणं द्वितीयं महाव्रतमाह- 'अहावरे दोच्चे' इत्यादि।

मूलम्-अहावरे दोच्चे भंते! महव्वए मुसावायाओ वेरमणं, सव्वं भंते! मुसावायं पच्चक्खामि, से कोहा वा लोहा वा भया वा हासा वा नेव सयं मुसं वइज्जा, नेवन्नेहिं मुसं वायाविज्जा, मुसं वयंतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा! जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। दोच्चे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं ॥९॥

छाया-अथापरे द्वितीये भदन्त! महाव्रते मृषावादाद्विरमणं, सर्वं भदन्त! मृषावादं प्रत्याख्यामि, अथ क्रोधाद्वा लोभाद्वा भयाद्वा हासाद्वा नैव

हे भगवन्! मैं प्रथम महाव्रतको पालनेके लिए उद्यत हुआ हूँ, इसलिए आजसे मुझे समस्त प्रकारके प्राणातिपातका प्रत्याख्यान है (१) ॥८॥

जैसे वृक्ष-लता आदि पानीसे पुष्ट होते हैं वैसेही मृषावादका त्याग करनेसे प्राणातिपातविरमण महाव्रतकी पुष्टि होती है, अतः प्राणातिपातविरमणके बाद दूसरे मृषावादविरमण महाव्रतका व्याख्यान करते हैं- 'अहावरे दोच्चे०' इत्यादि।

હે ભગવન્! હું પ્રથમ મહાવ્રતને પાળવા માટે ઉદ્યત થયો છું, તેથી આજથી મારે બધા પ્રકારના પ્રાણાતિપાતનાં પ્રત્યાખ્યાન છે (૧) (૮)

જેમ વૃક્ષ-લતા આદિ પાણીથી પુષ્ટ થાય છે તેમ મૃષાવાદનો ત્યાગ કરવાથી પ્રાણાતિપાતવિરમણ મહાવ્રતની પુષ્ટિ થાય છે. એટલે પ્રાણાતિપાતવિરમણની પછી બીજા મૃષાવાદવિરમણ મહાવ્રતનું વ્યાખ્યાન કરે છે-अहावरे दोच्चे० ઇત્યાદિ.

स्वयं मृषा वदामि नैवान्यैर्मृषा वादयामि, मृषा वदतोऽप्यन्यान् न समनुजानामि। यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि। तस्माद् भदन्त! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि। द्वितीये भदन्त! महाव्रते उपस्थितोऽस्मि (अतः) सर्वस्मात् मृषावादाद्विरमणम् ॥ ९ ॥

(२) मृषावादविरमण.

सान्वयार्थः—**भंते!**=हे भगवन्! **अहावरे**=इसके बाद **दोच्चे**=दूसरे **महव्वए**=महाव्रतमें **मुसावायाओ**=मृषावादसे **वेरमणं**=विरमण होता है (अतः मैं) **भंते!**= हे भगवन्! **सव्वं**=सब प्रकारके **मुसावायं**=मृषावादका **पच्चक्खामि**=त्याग करता हूँ। **से**=अथ-अब से लेकर मैं **कोहावा**=क्रोधसे **लोहावा**=लोभसे **भयावा**=भयसे **हासावा**=हास्यसे **सयं**=खुद **मुसावायं**=असत्य **नेव**=नहीं **वइज्जा**=बोलूंगा, **नेव**=न **अन्नेहिं**=दूसरोंसे **मुसं**=असत्य **वायाविज्जा**=बोलाऊँगा, **मुसं**=असत्य **वयतेवि**=बोलते हुएभी **अन्ने**=दूसरोंको **न समणुजाणिज्जा**=भला नहीं जानूँगा। **जावज्जीवाए**=जीवनपर्यन्त (इसको) **तिविहं**=कृत-कारित-अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) **तिविहेणं**=तीन प्रकारके **मणेणं**=मनसे **वायाए**=वचनसे **काएणं**=कायसे **न करेमि**=न करूँगा, **न कारवेमि**=न कराऊँगा, **करंतंपि**=करते हुएभी **अन्नं**=दूसरेको **न समणुजाणामि**=भला नहीं समझूंगा। **भंते!**=हे भगवन्! **तस्स**=उस दण्डसे **पडिक्कमामि**=पृथक् होता हूँ, **निंदामि**=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, **गरिहामि**=गुरु साक्षीसे गर्हा करता हूँ, **अप्पाणं**=दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको **वोसिरामि**=त्यागता हूँ, **भंते!**=हे भगवन्! **दोच्चे**=दूसरे **महव्वए**=महाव्रतमें **उवट्ठिओमि**=उपस्थित हुआ हूँ, इसलिये मुझे **सव्वाओ**=सब प्रकारके **मुसावायाओ**=असत्यसे **वेरमणं**=त्याग है ॥९॥ (२)

(२) मृषावादविरमणव्रतम् ।

टीका—अथ=प्रथममहाव्रतानन्तरं हे भदन्त!=हे भगवन्! अपरे=समनन्तरोदीरितमहाव्रतापेक्षया भिन्ने द्वितीये महाव्रते मृषावादात्=मिथ्याभाषणात् 'विरमण'-

---

(२) मृषावादविरमण ।

हे भगवन्! प्रथम महाव्रतके अनन्तर दूसरे महाव्रतमें मृषावादसे

---

(२) મૃષાવાદવિરમણ.

હે ભગવન્! પ્રથમ મહાવ્રતની પછી બીજા મહાવ્રતમા મૃષાવાદથી વિરમણ

मित्यनेन सम्बन्धो वक्ष्यते। मृषावादो हि सद्भावप्रतिषेधा-ऽभूतोद्भावना-ऽर्थान्तराभिधान-गर्हेतिभेदैश्चतुर्विधः, तत्र सद्भावप्रतिषेधः=जीवाजीवादिपदार्थसत्तानिराकरणम्, यथा-'नास्त्यात्मा, परलोकः, पुण्यपापादिकं चेति (१)। अभूतोद्भावनम्=जीवाजीवादितत्त्वानामतद्रूपत्वेन प्रतिपादनम्, यथा-"आत्माऽयमङ्गुष्ठमात्रो, निष्क्रियः, सर्वगतो वेत्यादि (२)। अर्थान्तराभिधानम्=प्रसिद्धपदार्थस्य पदार्थान्तरत्वेन कथनम्, यथा-गोर्गर्दभत्वेन, गर्दभस्य गोत्वेनाभिधानम् (३)। गर्हा=गर्हितं=हीनताप्रदर्शनम्, यद्वा हिंसापारुष्यादियुक्तं सत्यमपि वचः, यथा-'अयं हन्तव्यः' इत्यादि, 'एहि अन्ध!, आयाहि बधिर!, आगच्छ पङ्गो!' इत्यादि च (४)।

विरमण होता है। मृषावाद चार प्रकारका है-(१) सद्भावप्रतिषेध, (२) अभूतोद्भावन, (३) अर्थान्तराभिधान, (४) गर्हा। जीव अजीव आदि पदार्थोंके अस्तित्वका निराकरण करना सद्भावप्रतिषेध मृषावाद है, जैसे-'आत्मा नहीं, परलोक नहीं, पुण्य नहीं, पाप नहीं' इत्यादि (१)। जीव अजीव आदि तत्त्वोंका अयथार्थ स्वरूप प्रतिपादन करना अभूतोद्भावन मृषावाद है, जैसे-'आत्मा अंगूठेके बराबर है, निष्क्रिय है या सर्वगत है' (२)। एक पदार्थको दूसरा पदार्थ कह देना अर्थान्तराभिधान मृषावाद है, जैसे-'गायको गधा बताना, या गधेको गाय कहना' (३)। दूसरेकी हीनता प्रगट करना, अथवा हिंसा और कठोरतायुक्त सत्य वचन कहना गर्हारूप असत्य है, जैसे-'यह मार डालने योग्य है, ओ अंधे! इधर आ, ओ बहिरे! या लंगडे! यहाँ आ' इत्यादि (४)।

હોય છે મૃષાવાદ ચાર પ્રકારનો છે (૧) સદ્‌ભાવપ્રતિષેધ, (૨) અભૂતોદ્‌ભાવન. (૩) અર્થાન્તરાભિધાન, (૪) ગર્હા જીવ અજીવ આદિ પદાર્થોના અસ્તિત્વનુ નિરાકરણુ કરવું એ સદ્‌ભાવપ્રતિષેધ મૃષાવાદ છે, જેમકે-'આત્મા નથી, પરલોક નથી, પુણ્ય નથી, પાપ નથી' ઇત્યાદિ (૧) જીવ અજીવ આદિ તત્ત્વોનું અયથાર્થ સ્વરૂપ પ્રતિપાદન કરવું એ અભૂતોદ્‌ભાવન મૃષાવાદ છે, જેમકે- 'આત્મા અંગૂઠા જેવડો છે, નિષ્ક્રિય છે યા સર્વગત છે' (૨) એક પદાર્થને બીજો પદાર્થ કહી દેવો એ અર્થાન્તરાભિધાન મૃષાવાદ છે, જેમકે- 'ગાયને ગધેડો કહેવો યા ગધેડાને ગાય કહેવી' (૩) બીજાની હીનતા પ્રકટ કરવી, અથવા હિંસા તથા કઠોરતા-યુકત સત્યવચન કહેવાં એ ગર્હારૂપ અસત્ય છે, જેમકે- 'એ મારી નાખવા યોગ્ય છે, ઓ આંધળા! અહીં આવ, ઓ બહેરા! ઓ લંગડા! અહીં આવ' ઇત્યાદિ. (૪)

इमेऽपि (चत्वारो भेदाः) प्रत्येकं चतुर्धा–द्रव्य-क्षेत्र काल-भाव-भेदात् । तत्र द्रव्य-विषयकसद्भावप्रतिषेधः–धर्माधर्मादिषड्द्रव्याणामन्यथा प्ररूपणम् । क्षेत्रविषयक-सद्भावप्रतिषेधः–लोकालोकयोरन्यथा निरूपणम् । कालविषयकसद्भावप्रतिषेधः–क्षण-मुहूर्त्त-दिवसादिस्वरूपाणामन्यथा निरूपणम् । भावविषयकसद्भावप्रतिषेधः–रागद्वेषादीनामन्यथा प्रतिपादनम् । एवमेवाऽभूतोद्भावनादित्रयेऽपि द्रव्यादिचतुर्भङ्गी योजनीया । तस्माद्विरमणमिति । हे भगवन् ! सर्वं=समस्तं मृषावादं प्रत्याख्यामीति पूर्ववद्बोद्धव्यम् ।

तदेव विशदयति–'से'–इति, अथ=अनन्तरम्-अद्यारभ्य–क्रोधात्=क्रोधः-

---

इन चार प्रकारके मृषावादोंके भी द्रव्य क्षेत्र काल भावके भेदसे चार चार भेद होते हैं। धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय आदि षड्द्रव्योंके स्वरूपकी अन्यथा प्ररूपणा करना द्रव्य–सद्भावप्रतिषेध है। लोक और अलोकका अयथार्थ निरूपण करना क्षेत्र–सद्भावप्रतिषेध है। क्षण मुहूर्त्त दिन आदिके स्वरूपका मिथ्या कथन करना काल–सद्भावप्रतिषेध है। राग द्वेष आदि भावोंका विपरीत स्वरूप बताना भाव–सद्भावप्रतिषेध है। इसी प्रकार अन्य तीन भेदोंकी चतुर्भंगी समझ लेनी चाहिए, जैसे–द्रव्य अभूतोद्भावन, क्षेत्र अभूतोद्भावन, इत्यादि।

हे भगवन् ! मैं सब प्रकारके मृषावादका प्रत्याख्यान करता हूँ।

मृषावाद किस किस कारणसे होता है ? सो कहते हैं—

जीवके क्रोध–मोहनीय प्रकृतिके उदयसे स्व–परके चित्तमें विकार

એ ચાર પ્રકારના મૃષાવાદોના પણ દ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાળ ભાવના ભેદે કરીને ચાર ચાર ભેદ થાય છે. ધર્માસ્તિકાય અધર્માસ્તિકાય આદિ છ દ્રવ્યોના સ્વરૂપની અન્યથા પ્રરૂપણા કરવી એ દ્રવ્ય–સદ્‌ભાવપ્રતિષેધ છે લોક અને અલોકનું અયથાર્થ નિરૂપણ કરવું એ ક્ષેત્ર–સદ્‌ભાવપ્રતિષેધ છે, ક્ષણ મુહૂર્ત દિન આદિના સ્વરૂપનુ મિથ્યા કથન કરવું એ કાલ–સદ્‌ભાવપ્રતિષેધ છે રાગ દ્વેષ આદિ ભાવોનું વિપરીત સ્વરૂપ બતાવવુ એ ભાવ–સદ્‌ભાવપ્રતિષેધ છે એ પ્રકારે અન્ય ત્રણ ભેદોની ચતુર્ભંગી સમજી લેવી, જેમકે–દ્રવ્ય–અભૂતોદ્‌ભાવન, ક્ષેત્ર–અભૂતોદ્‌ભાવન, ઇત્યાદિ

હે ભગવન્ ! હું સર્વ પ્રકારના મૃષાવાદના પ્રત્યાખ્યાન કરૂં છું.

મૃષાવાદ કયા કયા કારણથી થાય છે ! તે હવે કહે છે—

જીવના ક્રોધ–મોહનીય પ્રકૃતિના ઉદયથી સ્વ–પરના ચિત્તમા વિકાર કરવા-

आत्मनः क्रोधमोहनीयप्रकृत्युदयेन स्वपरचित्तविकृतिजनको निरनुकम्पक्रौर्यवैभाविकपरिणामविशेषस्तस्मात् । लोभात्=लोभः–लोभप्रकृत्युदयवशाद्द्रव्याद्यभिलाषलक्षणो जीवस्य वैभाविकपरिणामस्तस्मात् । भयात्=भयं-भयमोहनीयप्रकृत्युदयेनोद्वेगाऽऽवेदको विकारविशेषस्तस्मात् । हासात्=हासः-हास्यमोहनीयप्रकृत्युदयेन वागादिविकृत्या कपोलयुगलोल्लासन-लोचनसंकोचन-दशनप्रकाशन-सहकृत-सशब्दप्राय-वदनव्यादानादिलक्षणश्चेतोविकाशस्तस्मात् । नैव स्वयं मृषा=मिथ्या वदामि, नैवान्यैर्मृषा वादयामि, मृषा वदतोऽप्यन्यान्न समनुजानामीत्यादि पूर्ववत् ॥ ९ ॥ (२)

करनेवाला अनुकम्पारहित क्रूरतारूप वैभाविक परिणाम क्रोध है।

लोभ-प्रकृतिके उदयसे द्रव्य आदिकी अभिलाषारूप जीवके वैभाविक भावको लोभ कहते हैं,

भय-मोहनीयके उदयसे उद्वेगको उत्पन्न करनेवाला विकार भय कहलाता है।

हास्य–मोहनीयके उदयसे वचनोंकी विकृतिके साथ गाल फुलाकर आँखें कुछ२ मूँदकर दांत निकालकर 'ही–ही' शब्द करके मुखको प्रफुल्लित करना हास्य कहलाता है।

इन सब कारणोंसे मृषावाद होता है। मैं इन कारणोंके वश होकर न स्वयं मृषा बोलूँगा, न दूसरोंसे बोलाऊँगा, न किसी मृषा बोलते हुएको भला जानूँगा (२) ॥९॥

વાળો અનુકંપારહિત ક્રૂરતારૂપ જીવનો વૈભાવિક–પરિણામ એ ક્રોધ છે

લોભ–પ્રકૃતિના ઉદયે કરીને દ્રવ્ય આદિની અભિલાષારૂપ જીવના વૈભાવિક-ભાવને લોભ કહે છે

ભય–મોહનીયના ઉદયથી ઉદ્વેગને ઉત્પન્ન કરવાવાળો વિકાર ભય કહેવાય છે

હાસ્ય–મોહનીયના ઉદયથી વચનોની વિકૃતિની સાથે ગાલ ફુલાવીને આંખો કાંઇક મીંચીને દાંત કાઢીને 'હી–હી' શબ્દ કરીને મુખને પ્રફુલ્લિત કરવું એ હાસ્ય કહેવાય છે.

એ સર્વ કારણોથી મૃષાવાદ ઉત્પન્ન થાય છે હું એ કારણોને વશ થઇને નહિ સ્વયં મૃષા (જૂઠું) બોલું, નહિ બીજા પાસે બોલાવું; કે નહિ મૃષા બોલનારને ભલો જાણું (૨) (૯)

सत्यपरिपालनं चाऽदत्तादान-(चौर्य)-परित्यागपूर्वकं कर्तुं सुशकमिति तदनन्तरमदत्तादानविरमणसञ्ज्ञकं तृतीयं महाव्रतमाह—'अहावरे तच्चे' इत्यादि।

मूलम्-अहावरे तच्चे भंते ! महव्वए अदिन्नादाणाओ वेरमणं, सव्वं भंते! अदिन्नादाणं पच्चक्खामि, से गामे वा नगरे वा रन्ने वा अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा नेव सयं अदिन्नं गिण्हिज्जा, नेवन्नेहिं अदिन्नं गिण्हाविज्जा, अदिन्नं गिण्हंतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि, न कारवेमि, करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। तच्चे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं ॥१०॥

छाया-अथापरे तृतीये भदन्त! महाव्रतेऽदत्तादानाद्विरमणं, सर्वं भदन्त! अदत्तादानं प्रत्याख्यामि, अथ ग्रामे वा नगरे वा अरण्ये वा अल्पं वा बहु वा अणु वा स्थूलं वा चित्तवद्वा अचित्तवद्वा नैव स्वयमदत्तं गृह्णामि नैवान्यैरदत्तं ग्राहयामि, अदत्तं गृह्णतोऽप्यन्यान्न समनुजानामि, यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि। तस्मात् भदन्त! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि। तृतीये भदन्त! महाव्रते उपस्थितोऽस्मि सर्वस्माददत्तादानाद्विरमणम् ॥१०॥

(३) अदत्तादानविरमण.

सान्वयार्थः—भंते !=हे भगवन्! अहावरे=इसके बाद तच्चे=तीसरे महव्वए=महाव्रतमें अदिन्नादाणाओ=अदत्तादानसे वेरमणं=विरमण होता है (अतः

सत्य महाव्रतका पालन अदत्तादानका त्याग करनेसेंही हो सकता है, इस कारण सत्य महाव्रतके पश्चात् अदत्तादानविरमण नामक तीसरे महाव्रतका कथन करते हैं-'अहावरे तच्चे' इत्यादि।

સત્ય મહાવ્રતનું પાલન અદત્તાદાનનો ત્યાગ કરવાથી જ થઈ શકે છે, તે કારણથી સત્ય મહાવ્રતની પછી અદત્તાદાન-વિરમણ નામના ત્રીજા મહાવ્રતનું કથન કરે છે-અહાવરે તચ્ચે ઇત્યાદિ.

मैं) भंते !=हे भगवन् ! सव्वं=सब प्रकारके अदिन्नादाणं=अदत्तादान (चोरी)का पच्चक्खामि=प्रत्याख्यान करता हूँ से=अथ-अब से लेकर मैं-गामे वा=ग्राममें नयरे वा=नगरमें रण्णे वा=अरण्यमें अप्पं वा=अल्प-थोड़ा बहुं वा=बहुत-घणा अणुं वा=सूक्ष्म-छोटा थूलं वा=स्थूल-मोटा चित्तमंतं वा=सचेतन अचित्तमंतं वा=अचेतन (आदि किसीभी) अदिन्नं=विना दिये हुए पदार्थको सयं=स्वयं नेव= नहीं गिण्हिज्जा=ग्रहण करूंगा, नेवन्नेहिं=न दूसरोंसे अदिन्नं=विना दिया हुआ गिण्हाविज्जा=ग्रहण कराऊँगा, अदिन्नं=विना दिये हुए पदार्थको गिण्हंतेवि= ग्रहण करते हुए भी अन्ने=दूसरेको न समणुजाणामि=भला नहीं जानूँगा, जाव-ज्जीवाए=जीवनपर्यन्त (इसको) तिविहं=कृत-कारित-अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेणं=तीन प्रकारसे मणेणं=मनसे वायाए=वचनसे काएणं=कायसे न करेमि=न करूँगा, न कारवेमि=न कराऊँगा, करंतंपि=करते हुए भी अन्नं= दूसरेको न समणुजाणामि=भला नहीं समझूँगा। भंते !=हे भगवन! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरुसाक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाणं=दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ। भंते !=हे भगवन् ! तच्चे=तीसरे= महव्वए=महाव्रतमें उवट्ठिओमि=उपस्थित हुआ हूँ, इसलिये मुझे सव्वाओ=सब अदिन्नादाणाओ= अदत्तादानसे वेरमणं=विरमण-त्याग है ॥१०॥ (३)

(३) अदत्तादानविरमणव्रतम्.

टीका—हे भगवन् ! अथ=मृषावादविरमणानन्तरम् अपरे=तृतीये महाव्रते अदत्तादानात्=न दत्तमदत्तं=देवगुरुभूपगाथापतिसाधर्मिकैरननुज्ञातं तस्याऽऽदानं= ग्रहणमदत्तादानं तस्माद्विरमणम् , सर्वं भगवन् ! अदत्तादानं प्रत्याख्यामि, एतच्च

---

(३) अदत्तादानविरमण।

मृषावादविरमणके बाद तीसरे महाव्रतमें देव गुरु राजा गाथापति और साधर्मिकके द्वारा न दिये हुए पदार्थके ग्रहणका त्याग किया जाता है, इसलिए हे भगवन् ! मैं सर्व अदत्तादानका परित्याग करता हूँ। वह इस प्रकार—

---

(૩) અદત્તાદાનવિરમણ.

મૃષાવાદવિરમણની પછી ત્રીજા મહાવ્રતમાં દેવ ગુરૂ, રાજા, ગાથાપતિ અને સાધર્મિકે ન આપેલા એવા પદાર્થનું ગ્રહણ કરવાનો ત્યાગ કરવામાં આવે છે, તેથી હે ભગવન્! હું સર્વ અદત્તાદાનનો પરિત્યાગ કરૂં છું તે આ પ્રકારે—

व्याख्यातपूर्वम् । तदेव विशदयति-'से'-इति, अथ=अनन्तरम्-अद्यारभ्य-ग्रामे= ग्रस्यन्ते=अद्यन्ते=विनाश्यन्ते बुद्धिविद्याविवेकादयो गुणा यत्र स इति, गम्यो गोमहिषादीनां करैरिति वा ग्रामः (सिद्धिः पृषोदरादित्वात्) कृषिप्रचुरभूभागो, हट्टादिशून्यवसतिः, कण्टकमयवृतिपरिवेष्टितगृहसमूहसम्पन्नो वा तस्मिन् । नगरे= न गच्छन्तीति नगाः=वृक्षाः पर्वताश्च, त इव समुन्नताः प्रासादादयो यस्मिंस्त-न्नगरम्, ('नग-पांसु-पाण्डुभ्यश्चे'-ति वार्त्तिकेन नगशब्दाद्रः) नकरमिति च्छायापक्षे तु न विद्यते गोमहिषादीनामष्टादशविधः करः=राजग्राह्यभागः (जकात) यत्र तत् । यद्वा—

"पुण्यपापक्रियाविज्ञै,-र्दयादानप्रवर्त्तकैः ।
कलाकलापकुशलैः, सर्ववर्णैः समाकुलम् ॥
भाषाभिर्विविधाभिश्च, युक्तं 'नगर'-मुच्यते ॥"

जहाँ रहनेसे बुद्धि, विद्या, विवेक आदि गुण नष्ट हो जाते हैं उसे ग्राम कहते हैं । अथवा जहाँ गाय भैंस आदिका कर (टेक्स) लिया जाता हो, अथवा पृथ्वीके अधिक भागमें कृषि होती हो, बाजार या दुकानें न हों, काँटोंकी बाड़से घिरे हुए घर हों उस वस्तीको ग्राम (गाँव) कहते हैं ।

जहाँ वृक्ष तथा पर्वतकी तरह अत्यन्त उन्नत महल-हवेलियाँ हों, अथवा गो महिष आदि पर कर (जकात) न लगता हो, अथवा जिस वस्तीमें पुण्य-पाप क्रियाओंके ज्ञाता, दया-दानके प्रवर्त्तक, कलाओंमें कुशल चारों वर्ण हों, और जहाँ नाना देशकी भाषा बोलनेवाले मनुष्य रहते हों उसे नगर कहते हैं ।

જ્યાં રહેવાથી બુદ્ધિ, વિદ્યા, વિવેકાદિ ગુણો નષ્ટ થઈ જાય છે તેને ગ્રામ કહે છે અથવા જ્યાં ગાય ભેંશ આદિનો કર (ટેકસ) લેવામાં આવે છે, અથવા પૃથ્વીનાં વધારે ભાગમાં ખેતી થાય છે, બજાર અથવા દુકાનો હોય નહિ, કાંટાની વાડથી ઘેરેલા ઘર હોય એ વસ્તીને ગ્રામ (ગામ) કહે છે

જ્યાં વૃક્ષ કે પર્વત જેવી અત્યંત ઉંચી મહેલ-હવેલીઓ હોય, અથવા ગાય-ભેંશ આદિ પર કર (જકાત) ન લાગતો હોય, અથવા જે વસ્તીમાં પુણ્ય-પાપ ક્રિયાઓના જ્ઞાતા, દયા-દાનના પ્રવર્તક, કળાઓમાં કુશળ ચારે વર્ણો હોય, અને જ્યાં જૂદા જૂદા દેશોની ભાષાઓ બોલનારા મનુષ્યો રહેતા હોય, તેને નગર કહે છે.

इत्युक्तलक्षणं तस्मिन्। अरण्ये=अर्यते-गम्यते एकान्तविविक्तदेशप्रियैर्ध्यानार्थिभिः, काष्ठाद्याहर्तुं काष्ठहारकैर्वेत्यरण्यं तस्मिन्, उपलक्षणात्खेटकादौ। एतेषां मध्ये कस्मिंश्चिदपि स्थले अल्पं=मूल्यतो न्यूनं दन्तादिपरिशोधनार्थं तृणादिकम्, बहु=अधिकमूल्यकं सुवर्णादिकम्, अणु=प्रमाणतो लघु माणिक्यादिकम्, स्थूलम्=प्रमाणतो विशालमेरण्डकाष्ठादिकम्, चित्तवत्=सचेतनम्, अचित्तवत्=अचेतनं वा, एतत्सर्वम् एतदन्यतमं वा अदत्तं=तत्स्वामिना ग्रहणायाऽननुमतं नैव स्वयं गृह्णामि, नैवान्यैरदत्तं ग्राहयामि, अदत्तं गृह्णतोऽप्यन्यान्न समनुजानामीत्यादिकं सर्वं व्याख्यातपूर्वम्।

ननु सामान्येनाऽदत्तादानस्य स्तेयत्वे प्रतिक्षणमनन्यदेयकर्माण्याददानस्य

एकान्त और पवित्र स्थानके अभिलाषी ध्यानार्थी योगी अथवा लकड़ी लानेके लिए लकड़हारे जहाँ जाते हैं वह अरण्य कहलाता है।

इन ग्राम, नगर, अरण्य और उपलक्षणसे खेटक (खेड़ा) आदि किसी स्थानमें कम मूल्यवाला-दाँत खुजानेका तिनका आदि, अधिक कीमतवाला-सुवर्ण आदि, प्रमाणकी अपेक्षा अणु-माणिक्य आदि, प्रमाणकी अपेक्षा बड़ा-एरण्डकाष्ठ आदि, सचेतन अथवा अचेतन कोई पदार्थ या सब पदार्थ विना स्वामीकी अनुमतिके न स्वयं ग्रहण करूँगा, न दूसरोंसे ग्रहण कराऊँगा और न ग्रहण करनेवालेको भला जानूँगा।

प्रश्न-हे गुरु महाराज! विना दी हुई सब वस्तुओंको ग्रहण करना यदि अदत्तादान है तो मुनियोंको भी अदत्तादानका प्रसंग आवेगा,

---

એકાન્ત અને પવિત્ર સ્થાનના અભિલાષી ધ્યાનાર્થી યોગી અથવા લાકડા લેવાને માટે કઠિયારા જ્યા જાય છે તે અરણ્ય (જગલ) કહેવાય છે

એ ગામ નગર અરણ્ય અને ઉપલક્ષણે કરીને ખેટક (ગામડું) આદિ કોઇ સ્થાનમાં ઓછા મૂલ્યવાળું દાત ખોતરવાનું તણુખલુ વગેરે, વધારે મૂલ્યવાળુ સોનું વગેરે, પ્રમાણુની અપેક્ષાએ નાનું માણિકયાદિ, પ્રમાણુની અપેક્ષાએ મોટું એરંડાનુ લાકડુ આદિ, સચેતન અથવા અચેન કોઇ પદાર્થ યા સર્વ પદાર્થ, તેના સ્વામીની અનુમતિ વિના, નહિ સ્વય હુ ગ્રહણુ કરૂ, નહિ બીજા પાસે ગ્રહણુ કરાવું અને નહિ ગ્રહણુ કરનારને ભલો જાણુ

પ્રશ્ન—હે ગુરૂ મહારાજ ! આપવામા આવ્યા વિનાની બધી વસ્તુઓને ગ્રહણુ કરવી એ જો અદત્તાદાન છે તો મુનિઓને પણુ અદત્તાદાનનો પ્રસગ

समितिगुप्तिप्रभृतिभिर्धर्मं वा समुपार्जयतः साधोरदत्तादानापत्तिप्रसक्तिरिति चेन्न,

लोकप्रसिद्धहस्तादिकरणकदानाऽऽदानादिव्यवहारस्य कर्मादिष्वभावात्, तथाहि लोके वस्त्रपात्रादिकमन्यस्मै हस्तेन दीयतेऽन्यस्माद्वाऽऽदीयते, इत्येवं दानाऽऽदानादिव्यवहारो दृश्यते तस्य न कर्मविषयकत्वं संभवति, तेषां सूक्ष्मत्वात्, नहि सूक्ष्मं कर्मादिकं हस्तादिकरणकग्रहणवितरणयोग्यतां भजते इति ।

क्योंकि मुनि विना दिये हुए कर्मोंको प्रतिक्षण ग्रहण करते हैं और समिति-गुप्तिका पालन करके धर्मका भी उपार्जन करते हैं ।

उत्तर-हे शिष्य ! ऐसा नहीं है। हाथोंसे लेने-देनेका जैसा व्यवहार लोकमें प्रसिद्ध है वैसा कर्मोंमें नहीं हो सकता, अर्थात् लोकमें ऐसा व्यवहार होता है कि-'वस्त्र पात्र दूसरोंको हाथसे दिया जाता है, दूसरेसे लिया जाता है।' इस प्रकारका व्यवहार कर्मोंके विषयमें नहीं होता, क्योंकि कर्म अत्यन्त सूक्ष्म हैं, वे इन्द्रियके विषय भी नहीं होते तो उनका लेन-देन कैसे हो सकता है ?। दूसरी बात यह है कि प्रमादके योगसे अदत्त पदार्थका आदान (ग्रहण) करना अदत्तादान कहलाता है, मुनिराजको तद्विषयक प्रमाद नहीं है इसलिए उन्हें अदत्तादानका दोष नहीं लगता। मुनिराज तो कभी नहीं चाहते कि हम कर्मोंको ग्रहण करें, किन्तु संसारी आत्मा और कर्मोंका स्वभाव ही ऐसा है कि

આવશે, કારણ કે મુનિ વિના અપાયલા કર્મોને પ્રતિક્ષણ ગ્રહણ કરે છે અને સમિતિ ગુપ્તિનું પાલન કરીને ધર્મનું પણ ઉપાર્જન કરે છે

ઉત્તર-હે શિષ્ય ! એમ નથી હાથેથી લેવા-દેવાનો જેવો વહેવાર લોકમા પ્રસિદ્ધ છે તેવો વહેવાર કર્મોમાં નથી હોઇ શકતો, અર્થાત્ લોકોમાં એવો વહેવાર થાય છે કે-'વસ્ત્ર પાત્ર બીજાઓને હાથથી આપવામા આવે છે, બીજા પાસેથી લેવામાં આવે છે,' એ પ્રકારનો વહેવાર કર્મોની બાબતમા થતો નથી, કેમકે-કર્મ અત્યત સૂક્ષ્મ છે, તે ઇંદ્રિયનો વિષય જ નથી હોતો તો એની લેણ-દેણ કેવી રીતે થઇ શકે ? બીજી વાત એ છે કે-પ્રમાદના યોગથી અદત્ત પદાર્થનું આદાન (ગ્રહણ) કરવુ એ અદત્તાદાન કહેવાય છે મુનિરાજને તદ્વિષયક પ્રમાદ હોતો નથી, તેથી તેમને અદત્તાદાનનો દોષ લાગતો નથી મુનિરાજ તો કદાપિ એમ નથી ઇચ્છતા કે હું કર્મોનું ગ્રહણ કરૂં, કિન્તુ સંસારી આત્મા અને કર્મોનો સ્વભાવ જ એવો છે કે જેથી કર્મ બધાઇ જાય છે બાકી રહ્યુ

धर्ममुपार्जयतश्चाऽप्रमत्तत्वात्तीर्थकराणां धर्मार्जनोपदेशाच्च न स्तेयप्रसङ्गः, अत एवा-ऽल्प-बहु-स्थूलाऽणुग्रहणं सूत्रे कृतमिति ॥ १० ॥ (३)

मैथुनविरमणमन्तरेण ह्यहिंसादिमहाव्रतानां संरक्षणं न भवितुं शक्नोति, यतो मैथुनपरायणः प्राणी त्रस-स्थावर-जीवान् हिनस्ति, मिथ्या वदति, अदत्तं चाऽऽदत्तेऽतस्तेषां निरपायपरिपालनाय 'मैथुनविरमण'-नामधेयं चतुर्थं महाव्रतमाह- 'अहावरे चउत्थे' इत्यादि ।

जिससे कर्म बंध जाते हैं। रहा धर्मोपार्जन, सो तीर्थंकर भगवानने धर्मोपार्जन करनेका आदेश तथा उपदेश दिया है इसलिए अदत्तादानका प्रसंग नहीं आता।

सूत्रमें अल्प, बहु, स्थूल, और अणु, इन शब्दोंका ग्रहण भी इसी आशयसे किया गया है, अत एव कर्मोंके बन्धन तथा समिति-गुप्ति द्वारा धर्मोपार्जनमें अदत्तादान नहीं लगता है ॥१०॥ (३)

मैथुनविरमणके विना अहिंसा आदि महाव्रतोंकी रक्षा नहीं हो सकती, क्योंकि मैथुन सेवन करनेवाला त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसा करता है, असत्य बोलता है, और अदत्तका आदान करता है। अत एव अहिंसादि महाव्रतोंका निरतिचार पालन करनेके लिए मैथुन-विरमण नामक चतुर्थ महाव्रतका प्रतिपादन किया जाता है-'अहावरे चउत्थे' इत्यादि।

ધર્મોપાર્જન, તે તીર્થંકર ભગવાને ધર્મોપાર્જન કરવાનો આદેશ તથા ઉપદેશ આપ્યો છે તેથી તેમાં અદત્તાદાનનો પ્રસંગ જ આવતો નથી.

સૂત્રમા અલ્પ, બહુ, સ્થૂલ, અને અણુ, એ શબ્દોનું ગ્રહણ પણ એ જ આશયથી કરવામાં આવ્યું છે એટલે કર્મોના બંધન તથા સમિતિ-ગુપ્તિ દ્વારા ધર્મોપાર્જન, એમા અદત્તાદાન લાગતું નથી (૩) (૧૦)

મૈથુનવિરમણ વિના અહિંસા આદિ મહાવ્રતોની રક્ષા થઈ શકતી નથી, કારણ કે-મૈથુન સેવન કરવાવાળો ત્રસ-સ્થાવર જીવોની હિંસા કરે છે, અસત્ય બોલે છે અને અદત્તનું આદાન કરે છે તેથી કરીને અહિંસાદિ મહાવ્રતોનું નિરતિચાર પાલન કરવાને માટે મૈથુનવિરમણ નામનું ચોથું મહાવ્રતનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવે છે-अहावरे चउत्थे ઇત્યાદિ.

मूलम्-अहावरे चउत्थे भंते! महव्वए मेहुणाओ वेरमणं, सव्वं भंते! मेहुणं पच्चक्खामि, से दिव्वं वा माणुसं वा तिरिक्खजोणियं वा नेव सयं मेहुणं सेविज्जा, नेवन्नेहिं मेहुणं सेवाविज्जा, मेहुणं सेवंतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं-तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि, न कारवेमि, करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। चउत्थे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं॥११॥(४)

छाया—अथापरे चतुर्थे भदन्त! महाव्रते मैथुनाद्विरमणं, सर्वं भदन्त! मैथुनं प्रत्याख्यामि, अथ दैवं वा मानुषं वा तैर्यग्योनं वा नैव स्वयं मैथुनं सेवे, नैवान्यैर्मैथुनं सेवयामि, मैथुनं सेवमानानप्यन्यान्न समनुजानामि, यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि, न कारयामि, कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि। तस्माद् भदन्त! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि। चतुर्थे भदन्त! महाव्रते उपस्थितोऽस्मि सर्वस्मान्मैथुनाद्विरमणम् ॥११॥

(४) मैथुनविरमण.

सान्वयार्थः-भंते!=हे भगवन्! अहावरे=इसके बाद चउत्थे=चौथे महव्वए=महाव्रतमें मेहुणाओ=मैथुनसे वेरमणं=विरमण होता है, (अतः मैं) भंते!=हे भगवन्! सव्वं=सब प्रकारके मेहुणं=मैथुनका पच्चक्खामि=प्रत्याख्यान करता हूँ, से=अब से लेकर मैं दिव्वं वा=देवसम्बन्धी माणुसं वा=मनुष्यसम्बन्धी तिरिक्खजोणियं वा=तिर्यञ्चसम्बन्धी मेहुणं=मैथुनको सयं=स्वयं नेव=न सेविज्जा=सेवन करूँगा, नेवन्नेहिं=न दूसरोंसे मेहुणं=मैथुन सेवाविज्जा=सेवन कराऊँगा, मेहुणं=मैथुन सेवंतेवि=सेवन करते हुएभी अन्ने=दूसरोंको न समणुजाणिज्जा=भला नहीं समझूँगा, जावज्जीवाए=जीवनपर्यन्त (इसको) तिविहं=कृत कारित अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेणं=तीन प्रकारके मणेणं=मनसे वायाए=वचनसे काएणं=कायसे न करेमि=न करूँगा न कारवेमि=न कराऊँगा करंतंपि=करते हुएभी अन्नं=दूसरेको न समणुजाणामि=भला नहीं समझूँगा। भंते!=हे भगवन्! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरु साक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाणं=

दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ। भंते !=हे भगवन् ! चउत्थे=चौथे महव्वए=महाव्रतमें उवट्ठिओमि=उपस्थित होता हूँ, इसलिये मुझे सव्वाओ=सब प्रकारके मेहुणाओ=मैथुनसे वेरमणं=त्याग है ॥११॥ (४)

(४) मैथुनविरमणव्रतम्.

टीका--हे भगवन्! अथ अपरे चतुर्थे महाव्रते मैथुनात्=मिथुनेन=स्त्रीपुंसाभ्यां निर्वृत्तं कर्म मैथुनं प्रत्याख्यामीति प्राग्वत्, तदेव विशदयति-'से' इति। अथ=अनन्तरम्-अद्यारभ्य दैवं=देवानामिदं मानुषं=स्त्री-पुंससम्बन्धीत्यर्थः, तैर्यग्योनं=तिर्यग्योनीनामिदं तैर्यग्योनं=पश्वादिसम्बन्धीत्यर्थः, मैथुनं नैव स्वयं सेवे, इत्यादि सर्वं पूर्ववत्। द्रव्यादिचतुर्भङ्ग्यपि प्राग्वद्योजनीया ॥११॥ (४)

(४)-मैथुनविरमण.

हे भगवन् ! चौथे महाव्रतमें समस्त प्रकारके मैथुनसे विरमण किया जाता है, इसलिए हे भगवन्! मैं सब तरहके मैथुनका प्रत्याख्यान करता हूँ। अप्सराओं सम्बन्धी दैवी, स्त्री-पुरुष सम्बन्धी मानुषिक, पशु आदि सम्बन्धी तैर्यग्योनिक मैथुनको मैं न स्वयं सेवन करूँगा, न दूसरोंसे सेवन कराऊँगा, न सेवन करते हुएको भला जानूँगा। द्रव्य क्षेत्र काल भावकी चौभंगी यहाँपर भी लगानी चाहिए, अर्थात् द्रव्यसे-स्त्री आदिके साथ, क्षेत्रसे-किसी क्षेत्रमें, कालसे-किसी कालमें और भावसे-किसीभी भावसे, तीन करण तीन योगसे मैथुन सेवन नहीं करूँगा ॥११॥ (४)

(४) મૈથુનવિરમણ.

હે ભગવન્ ! ચોથા મહાવ્રતમાં સર્વ પ્રકારના મૈથુનનું વિરમણ કરવામાં આવે છે, તેથી હે ભગવન્ ! હુ સર્વ પ્રકારના મૈથુનના પ્રત્યાખ્યાન કરૂં છું. અપ્સરાઓ સંબધી દેવી, સ્ત્રી-પુરૂષ-સબધી માનુષિક, પશુ-આદિ-સંબંધી તૈર્યગ્યોનિક મૈથુન નહિ હુ સ્વયં સેવું, નહિ બીજાઓ પાસે સેવન કરાવું અને નહિ સેવન કરનારને ભલો જાણું દ્રવ્ય-ક્ષેત્ર-કાળ-ભાવની ચોભગી એમાં પણ લગાડવી, અર્થાત્ દ્રવ્યથી સ્ત્રીઆદિની સાથે, ક્ષેત્રથી કોઈ પણ ક્ષેત્રમા, કાળથી કોઇ કાળમા અને ભાવથી કોઈ પણ ભાવે કરીને ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી મૈથુન સેવીશ નહિ (૪) (૧૧)

मैथुनविरमणं च परिग्रहविरमणमन्तरेण न भवितुं सुशकमिति मैथुनविरमणानन्तरं परिग्रहविरमणनामकं पञ्चमं महाव्रतमाह–'अहावरे पंचमे' इत्यादि।

मूलम्–अहावरे पंचमे भंते! महव्वए परिग्गहाओ वेरमणं, सव्वं भंते! परिग्गहं पच्चक्खामि, से अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा नेव सयं परिग्गहं परिगिण्हिज्जा, नेवन्नेहिं परिग्गहं परिगिण्हाविज्जा, परिग्गहं परिगिण्हंतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि, न कारवेमि, करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। पंचमे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं ॥१२॥ (५)

छाया–अथापरे पञ्चमे भदन्त! महाव्रते परिग्रहाद्विरमणं, सर्वं भदन्त! परिग्रहं प्रत्याख्यामि, अथ अल्पं वा बहुं वा अणुं वा स्थूलं वा चित्तवन्तं वा अचित्तवन्तं वा नैव स्वयं परिग्रहं परिगृह्णामि, नैवान्यैः परिग्रहं परिग्राहयामि, परिग्रहं परिगृह्णतोऽप्यन्यान्न समनुजानामि, यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि। तस्माद् भदन्त! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि। पञ्चमे भदन्त! महाव्रते उपस्थितोऽस्मि सर्वस्मात्परिग्रहाद्विरमणम् ॥१२॥ (५)

(५) परिग्रहविरमण.

सान्वयार्थः–भंते!=हे भगवन्! अहावरे=इसके बाद पंचमे=पांचवें महव्वए=महाव्रतमें परिग्गहाओ=परिग्रहसे वेरमणं=विरमण होता है, (अतः मैं) भंते!=हे भगवन्! सव्वं=सब प्रकारके परिग्गहं=परिग्रहको पच्चक्खामि=त्यागता हूँ, से=अब से लेकर मैं अप्पंवा=अल्प बहुंवा=बहुत अणुंवा=अणु-छोटा

मैथुनविरमण, परिग्रहके त्यागे विना नहीं हो सकता, इसलिए मैथुनविरमणके अनन्तर परिग्रहविरमणनामक पांचवां महाव्रत कहते हैं–'अहावरे पंचमे' इत्यादि।

મૈથુન-વિરમણ, પરિગ્રહના ત્યાગ વિના થઈ શકતુ નથી, તેથી મૈથુન-વિરમણની પછી પરિગ્રહવિરમણ નામનું પાંચમું મહાવ્રત કહે છે–अहावरे पंचमे ઇત્યાદિ

थूलंवा=स्थूल मोटा चित्तमंतंवा=सचेतन अचित्तमंतंवा=अचेतन परिग्गहं= परिग्रहको सयं=स्वयं नेव=नहीं परिगिण्हिज्जा=ग्रहण करूँगा, नेवन्नेहिं=न दूसरोंसे परिग्गहं=परिग्रहको परिगिण्हाविज्जा=ग्रहण कराऊँगा, परिग्गहं=परिग्रहको परिगिण्हंतेवि=ग्रहण करनेवालेभी अन्ने=दूसरोंको न समणुजाणिज्जा=भला नहीं जानूँगा। जावज्जीवाए=जीवनपर्यन्त (इसको) तिविहं=कृत कारित अनु-मोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेणं=तीन प्रकारके मणेणं=मनसे वायाए= वचनसे काएणं=कायसे न करेमि=न करूँगा, न कारवेमि=न कराऊँगा, करंतंपि= करते हुएभी अन्नं=दूसरेको न समणुजाणामि=भला नहीं समझूंगा। भंते= !=हे भगवन्! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूं, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरुसाक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाणं=दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ। भंते !=हे भगवन्! पंचमे=पांचवें महव्वए=महाव्रतमें उवट्ठिओमि=उपस्थित होता हूँ, इसलिये मुझे सव्वाओ= सब परिग्गहाओ=परिग्रहसे वेरमणं=विरमण-त्याग है ॥१२॥ (५)

(५) परिग्रहविरमणव्रतम् ।

टीका--हे भगवन्! अथापरे पञ्चमे महाव्रते परिग्रहात्=परि-सर्वतोभावेन गृ-ह्यते=जन्मजरामरणादिजनितदुःखैर्वेष्ट्यते आत्माऽनेनेति, यद्वा परिगृह्यते=समूर्च्छं स्वीक्रियते इति परिग्रहः 'मुच्छा परिग्गहो वुत्तो' इति वचनात्, धर्मोपकरणभिन्नं

---

(५)-परिग्रहविरमण.

हे भगवन्! चतुर्थ महाव्रतके पश्चात् पाँचवें महाव्रतमें परिग्रहका पूर्ण प्रत्याख्यान किया जाता है। जिससे आत्मा जन्म-जरा-मरण-आदि-जनित नाना दुःखोंसे गृहीत होता है, अथवा जो मूर्च्छा-पूर्वक स्वीकार किया जाता है वह परिग्रह कहलाता है, क्योंकि भगवानने मूर्च्छाको ही परिग्रह बतलाया है। अतएव तीन करण तीन योगसे ग्राम नगर आदिमें

---

(५) પરિગ્રહવિરમણ.

હે ભગવન્! ચતુર્થ મહાવ્રતની પછી પાંચમા મહાવ્રતમા પરિગ્રહના પૂર્ણ પ્રત્યાખ્યાન કરવામા આવે છે. જેથી આત્મા જન્મ-જરા-મરણાદિજનિત નાના પ્રકારના દુ:ખોથી ગ્રસ્ત થાય છે અથવા જે મૂર્ચ્છાપૂર્વક સ્વીકારવામાં આવે છે તે પરિગ્રહ કહેવાય છે, કારણ કે ભગવાને મૂર્ચ્છાનેજ પરિગ્રહરૂપ બતાવી છે તેથી કરીને ત્રણ કરણ ત્રણ યોગે ગ્રામ નગર આદિમાં ન સ્વયં પરિગ્રહ ધારણ

सर्वमित्यर्थस्तस्माद्विरमणम्। हे भगवन्! सर्वं परिग्रहं प्रत्याख्यामि, अथ ग्रामे वा नगरे वेत्यादि प्राग्वद्बोद्धव्यम् ॥१२॥ (५)

द्वाविंशतितीर्थकरशासने ऋजुप्राज्ञपुरुषापेक्षयाऽस्योत्तरगुणत्वेऽपि आद्यान्तिमतीर्थकरसाधूनामृजुजड-वक्रजडत्वादनर्थप्रतिरोधार्थं स्फुटप्रतिबोधार्थं च महाव्रतानन्तरं मूलगुणत्वेनोपादातुं षष्ठं रात्रिभोजनविरमणव्रतमाह-'अहावरे छट्ठे' इत्यादि ।

मूलम्-अहावरे छट्ठे भंते! वए राइभोयणाओ वेरमणं, सव्वं भंते! राइभोयणं पच्चक्खामि, से असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा नेव सयं राइं भुंजिज्जा, नेवन्नेहिं राइं भुंजाविज्जा, राइं भुंजंतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं

न स्वयं परिग्रह धारण करूँगा, न दूसरेसे धारण कराऊँगा, न धारण करते हुएको भला जानूँगा ॥१२॥ (५)

अजितनाथ भगवान्से लेकर पार्श्वनाथ जिनेन्द्र पर्यन्त बाईस तीर्थकरोंके शिष्य ऋजु (सरल स्वभावके) और प्राज्ञ (समझानेसे समझनेवाले) होते हैं। उन शिष्योंकी अपेक्षासे रात्रिभोजन उत्तरगुण है। किन्तु ऋषभदेवके शिष्य ऋजु-जड़ तथा वर्द्धमान-स्वामीके शिष्य वक्र और जड़ होते हैं, अत एव अनर्थको रोकनेके लिए और स्पष्ट बोध करानेके लिए पंच महाव्रतोंके बाद मूल-गुणोंमें गिनानेके लिए छट्ठे रात्रिभोजनविरमण व्रतको कहते हैं-'अहावरे छट्ठे' इत्यादि ।

હું કરીશ, ન બીજાઓ દ્વારા ધારણ કરાવીશ, ન ધારણ કરનારને ભલો જાણીશ. (૫) (૧૨)

અજિતનાથ ભગવાન્થી લઈને પાર્શ્વનાથ જિનેન્દ્ર સુધીના બાવીસ તીર્થ-કરોના શિષ્યો ઋજુ (સરલ સ્વભાવવાળા) અને પ્રાજ્ઞ (સમજાવવાથી સમજ-નારા) હતા, તે શિષ્યોની અપેક્ષાએ રાત્રિભોજન ઉત્તરગુણ છે, પરંતુ ઋષભ-દેવના શિષ્યો ઋજુ જડ તથા વર્ધમાનસ્વામીના શિષ્યો વક્ર અને જડ હતા, તેથી અનર્થને રોકવાને માટે અને સ્પષ્ટ બોધ કરાવવાને માટે પંચ મહાવ્રતોની પછી મૂલ-ગુણોમાં ગણાવવાને માટે છઠ્ઠું રાત્રિભોજનવિરમણ વ્રત કહે છે-अहावरे छट्ठे ઇત્યાદિ.

मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न सम-णुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। छट्ठे भंते ! वए उवट्ठिओमि सव्वाओ राइभोयणाओ वेरमणं॥ १३ ॥ (६)

छाया—अथापरे षष्ठे भदन्त! व्रते रात्रिभोजनाद्विरमणं, सर्वं भदन्त! रात्रिभोजनं प्रत्याख्यामि, अथ अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा नैव स्वयं रात्रौ भुञ्जे, नैवान्यान् रात्रौ भोजयामि, रात्रौ भुञ्जानानप्यन्यान्न सम-नुजानामि, यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि। तस्माद् भदन्त! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि। षष्ठे भदन्त! व्रते उपस्थितोऽस्मि सर्वस्माद्रात्रिभोज-नाद्विरमणम् ॥१३॥ (६)

(६) रात्रिभोजनविरमण

सान्वयार्थः-**भंते!**=हे भगवन्! **अहावरे**=इसके अनन्तर **छट्टे**=छठे **वए**= व्रतमें **राइभोयणाओ**=रात्रिभोजनसे **वेरमणं**=विरमण होता है, (अतः मैं) **भंते!**=हे भगवन्! **सव्वं**=सब प्रकारके **राइभोयणं**=रात्रिभोजनको **पचक्खामि**= त्यागता हूँ, **से**=अब से लेकर मैं-**असणं वा**=लड्डू पूरी घी सत्तू आदि अशन, **पाणं वा**=दूध शर्बत आदि पान-पीने योग्य, **खाइमं वा**=दाख खजूर आदि खाद्य, **साइमं वा**=लौंग इलायची आदि खाद्य, **नेव**=न **सयं**=स्वय **राइं**=रात्रिमें **भुंजिज्जा** खाऊँगा, **नेवन्नेहिं**=न दूसरोंको **राइं**=रात्रिमें **भुंजाविज्जा**=खिलाऊँगा, **राइ भुंजं-तेवि अन्ने**=रात्रिमें भोजन करनेवाले दूसरोंकोभी न **समणुजाणिज्जा**=भला नहीं जानूँगा, **जावज्जीवाए**=जीवनपर्यन्त (इसको) **तिविहं**=कृत कारित अनुमोदना-रूप तीन करणसे (तथा) **तिविहेणं**=तीन प्रकारके **मणेणं**=मनसे **वायाए**= वचनसे **काएणं**=कायसे न **करेमि**=न करूँगा. न **कारवेमि**=न कराऊँगा, **करंतंपि**=करते हुएभी **अन्नं**=दूसरेको न **समणुजाणामि**=भला नहीं समझूँगा। **भंते!**=हे भगवन्! **तस्स**=उस दण्डसे **पडिक्कमामि**=पृथक् होता हूँ, **निंदामि**= आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, **गरिहामि**=गुरुसाक्षीसे गर्हा करता हूँ, **अप्पाणं**= दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको **वोसिरामि**=त्यागता हूँ, **भंते!**=हे भगवन्! **छट्टे**=छठे **वए**=व्रतमें **उवट्ठिओमि**=उपस्थित होता हूँ, इसलिये मुझे **सव्वाओ**= सव प्रकारके **राइभोयणाओ**=रात्रिभोजनसे **वेरमणं**=विरमण त्याग है॥१३॥(६)

(६) रात्रिभोजनविरमणव्रतम् ।

टीका—हे भगवन् ! अथापरे षष्ठे व्रते रात्रिभोजनात्=रात्रौ=निशि भोजनं रात्रिभोजनं तस्माद् विरमणम् । रात्रिभोजनेन हि सकलमहाव्रतेषु दोषो जन्यते, तथाहि-रात्रौ दिनकरकिरणाभावान्नानाविधसूक्ष्मतनुधारिजन्तुजातसमुत्पातावपातसञ्चारबाहुल्यात् हिंसाऽवश्यम्भाविनी, दीक्षाग्रहणसमये प्रतिज्ञा कृता यदद्यप्रभृति न कस्यापि प्राणिनः प्राणान् पीडयिष्यामीति, रात्रिभोजनेन तु प्राणिवधस्याऽनिवार्यत्वात्कृतप्रतिज्ञाभङ्गो भवितुमर्हतीति मृषावादः, यद्वा तीर्थकरैर्लोकालोकाऽव[1]-लोकिकेवलालोकेनै[1]-तत्संयमविराधकमालोक्याऽऽदित्यालोके आलोकितान्नपाना-

[1] केवलालोकस्य करणस्य कर्तृत्वविवक्षया णिनिः । एतत्=रात्रिभोजनम् ।

(६) रात्रिभोजनविरमण ।

हे भगवन् ! पांच महाव्रतोंके पश्चात् छट्ठे व्रतमें रात्रिभोजनसे विरमण किया जाता है। रात्रिभोजनसे समस्त महाव्रतोंमें दोष लगता है। रात्रिके समय सूर्यकी किरणोंके अभावसे सूक्ष्म-शरीरवाले भाँति-भाँतिके जन्तु इधर-उधर उड़ते हैं, नवीन उत्पन्न होते हैं, नीचे ऊपर आते-जाते हैं, इसलिए हिंसा अवश्य ही होती है। दीक्षा लेते समय ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि-'आजसे किसी प्राणीके प्राणोंको पीड़ा नहीं पहुँचाऊँगा' जब रात्रिभोजन किया तो हिंसा अवश्य हुई, इसलिए मृषावादका भी दोष लगा। अथवा लोक और अलोकको अवलोकन करनेवाले अलौकिक केवल-आलोकसे अवलोकन करके केवली भगवान्ने कहा है कि-सूर्यके आलोकमें अवलोकन किया हुआ अशन आदिक सेवन

(૬) રાત્રિભોજનવિરમણ.

હે ભગવન્ ! પાંચ મહાવ્રતોની પછી છઠ્ઠા વ્રતમાં રાત્રિભોજનથી વિરમણ કરવામાં આવે છે. રાત્રિભોજનથી સર્વ મહાવ્રતોમાં દોષ લાગે છે રાત્રિને સમયે સૂર્યનાં કિરણોના અભાવથી સૂક્ષ્મ-શરીરવાળા ભાત-ભાતના જન્તુઓ અહી-તહી ઉડે છે, નવીન ઉત્પન્ન થાય છે, નીચે-ઉપર આવ-જા કરે છે, તેથી હિંસા જરૂર થાય છે દીક્ષા લેતી વખતે એવી પ્રતિજ્ઞા કરી હતી કે 'આજથી કોઈ પ્રાણીના પ્રાણોને પીડા નહિ ઉપજાવું જો રાત્રિભોજન કર્યું તો હિંસા અવશ્ય થઈ, તેથી મૃષાવાદનો દોષ લાગ્યો અથવા લોક અને અલોકનું અવલોકન કરનારા અલૌકિક કેવળ જ્ઞાનથી અવલોકન કરીને કેવળી ભગવાને કહ્યુ છે કે સૂર્યના પ્રકાશમાં અવલોકન કરેલુ અશન આદિ સેવવાથી જ હિંસાનો પરિહાર

द्यदनमप्राणातिपातायोक्तम्। अपिच–रात्रिभोजनव्यवस्थापने, रात्रौ भुक्त्वाऽऽत्मनः साधुत्वकथने च मृषावादः। रात्रावभ्यवहरणे हन्यमानप्राणिनिर्देशमन्तरेण तत्प्राणापहरणाद्रजन्यधिकरणकभोजननिषेधलक्षणजिनाज्ञाभङ्गाच्च स्तेयम्। रात्रिभोजनशीलस्यावश्यमेव भिक्षार्थं रात्रावितस्ततः परिभ्रमतः स्त्र्यादिसंसर्गादब्रह्मदोषप्रसङ्गः। रात्रिभोजने संग्रहोऽनिवार्यस्तेन च मूर्च्छाऽवश्यम्भाविनी, सैव परिग्रहः 'मुच्छा परिग्गहो वुत्तो' इति भगवता स्वयमेवाऽभिधानादतो निशाशनमशेषदोषराशिभूतम्, न तत्त्यागादृते व्रतपरिपोषस्तस्मात्सर्वं भगवन्! रात्रि-

---

करनेसे ही हिंसाका परिहार हो सकता है। रात्रिभोजनका कर्त्तव्यरूपसे निरूपण करना और रात्रिभोजन करके अपनेको साधु कहना मृषावाद है।

रात्रिभोजनसे विराधित होनेवाले प्राणियोंकी आज्ञाके विना ही उनके प्राणोंका अपहरण करनेसे, तथा रात्रिभोजन न करनेकी जिन भगवानकी आज्ञाका लोप करनेसे अदत्तादानका दोष लगता है। रात्रिमें भोजन करनेवाला भिक्षाके लिए रात्रिमें भ्रमण भी करेगा, भ्रमण करते समय स्त्री आदिका संसर्ग होनेसे अब्रह्मचर्यका भी दोष लगेगा।

रात्रिभोजन करनेसे अन्न आदि सामानका भी संग्रह करना पड़ेगा इससे संनिधि–दोष लगेगा। संग्रह करनेसे मूर्च्छा भी होगी, मूर्च्छाको भगवानने स्वयं परिग्रह कहा है, इसलिए रात्रिभोजन सब दोषोंका कोष है, उसका त्याग किये विना व्रतोंका पालन नहीं हो सकता। इस

થઇ શકે છે રાત્રિભોજનનું કર્તવ્યરૂપે નિરૂપણ કરવું અને રાત્રિભોજન કરીને પોતાને સાધુ કહેવડાવવો એ મૃષાવાદ છે

રાત્રિભોજનથી વિરાધિત થનારા પ્રાણીઓની આજ્ઞા વિના જ એમના પ્રાણનું અપહરણ કરવાથી થતા રાત્રિભોજન ન કરવાની જિનભગવાનની આજ્ઞાનો લોપ કરવાથી અદત્તાદાનનો દોષ લાગે છે. રાત્રે ભોજન કરનારાઓ ભિક્ષાને માટે રાત્રે ભ્રમણ પણ કરશે ભ્રમણ કરતી વખતે સ્ત્રીઆદિનો સંસર્ગ થવાથી અબ્રહ્મચર્યનો પણ દોષ લાગશે

રાત્રિભોજન કરવાથી અન્ન આદિ સામાનનો પણ સંગ્રહ કરવો પડશે, તેથી સંનિધિ–દોષ લાગશે. સંગ્રહ કરવાથી મૂર્ચ્છા પણ ઉત્પન્ન થશે મૂર્ચ્છાને ભગવાને પોતે પરિગ્રહરૂપ કહી છે, તેથી રાત્રિભોજન સર્વ દોષોનો કોષ છે

એનો ત્યાગ કર્યા વિના વ્રતોનું પાલન થઇ શકતું નથી તેથી હે ભગવન્! હું

भोजनं प्रत्याख्यामि, तदेव विशदयति-'से' इति, अथ=अनन्तरम्-अद्यारभ्य अशनम्=अश्यते=भुज्यते क्षुधोपशमनार्थं यत् तत्=ओदन-सूप-सक्तु-मुद्गमोदक-घृतपूर-लपनश्रीप्रभृतिकम् , पानं=पीयते यत्तत्पानं=दुग्धादिकं, तिलतण्डुलादिधावनोदकं च। खाद्यं=खादितुं योग्यं खाद्यम्=अचित्तद्राक्षाखर्जूरादि। स्वाद्यं=स्वादितुं योग्यं स्वाद्यं=लवङ्गचूर्णपूगीफलादि। रात्रिभोजनमपि द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावभेदाच्चतुर्द्धा, तत्र द्रव्यतोऽशनपानादिकम्, क्षेत्रतोऽर्द्धतृतीयद्वीपसमुद्रलक्षितं, तद्बहिः प्रसिद्धदिनरात्र्यभावात् , कालतो रात्रौ, भावतो निशाशनाभिलाषः। रात्रिभोजनस्य स्वरूपतश्चतुर्भङ्गी यथा—

लिए हे भगवन्! मैं समस्त-रात्रिभोजनका प्रत्याख्यान करता हूँ। अर्थात् भात, दाल, सत्तू, मूंगके लड्डू, घेवर, लप्सी आदि अशन, दूध, तिल और चावलका धोवन आदि पान, प्रासुक दाख, खजूर आदि खाद्य, लौंगका चूर्ण, सुपारी आदि स्वाद्य,इन चार प्रकारके आहारोंमेंसे किसी एक प्रकारका भी आहार रात्रिमें नहीं करूँगा।

रात्रिभोजन भी द्रव्य क्षेत्र काल भावसे चार प्रकारका है। अशन पान आदि द्रव्यसे रात्रिभोजन है। अढाई द्वीपमें रात्रिभोजन करना क्षेत्र-रात्रिभोजन है, क्योंकि अढाई द्वीपके बाहर दिन रात्रिका व्यवहार नहीं है। रात्रिमें भोजन करना कालकी अपेक्षा रात्रिभोजन है। रात्रिमें भोजन करनेकी इच्छा करना भाव-रात्रिभोजन है।

रात्रिभोजनकी चतुर्भंगी इस प्रकार है—

सर्व-रात्रिભોજનના પ્રત્યાખ્યાન કરૂં છું અર્થાત્-ભાત, દાળ, મગજ, મગના લાડુ, ઘેબર, લાપસી આદિ અશન, દૂધ, તલ અને ચોખાનું ધોવણ આદિ પાન, પ્રાસુક દ્રાક્ષ, ખજૂર આદિ ખાદ્ય, લવંગનું ચૂર્ણ, સોપારી આદિ સ્વાદ્ય, એ ચારે પ્રકારના આહારમાંથી કોઇ પણ એક પ્રકારનો આહાર રાત્રે હું કરીશ નહિ

રાત્રિભોજન પણ દ્રવ્ય-ક્ષેત્ર-કાળ-ભાવથી ચાર પ્રકારનું છે અશન-પાન આદિ દ્રવ્યથી રાત્રિભોજન છે અઢી-દ્વીપમાં રાત્રિભોજન કરવું એ ક્ષેત્ર-રાત્રિભોજન છે, કેમકે-અઢી દ્વીપની બહાર દિવસ-રાત્રિનો વ્યવહાર નથી રાત્રે ભોજન કરવુ એ કાળની અપેક્ષાએ રાત્રિભોજન છે. રાત્રે ભોજન કરવાની ઇચ્છા કરવી એ ભાવ-રાત્રિભોજન છે

રાત્રિભોજનની ચતુર્ભંગી આ પ્રમાણે છે—

(१) रात्रौ गृहीत्वा रात्रौ भुङ्क्ते, (२) रात्रौ गृहीत्वा दिवा भुङ्क्ते, (३) दिवा गृहीत्वा रात्रौ भुङ्क्ते, (४) दिवा गृहीत्वा (रात्रिव्यवधानेन) दिवा भुङ्क्ते। उक्तञ्च भगवता निशीथसूत्रस्यैकादशोद्देशे—

"जे भिक्खू दिया असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिगाहित्ता दिया भुंजइ भुंजंतं वा साइज्जइ ॥सू. ७३॥ जे भिक्खू दिया असणं वा ४ पडिगाहित्ता रत्तिं भुंजइ भुंजंतं वा साइज्जइ ॥सू. ७४॥ जे भिक्खू रत्तिं असणं वा ४ पडिगाहित्ता दिया भुंजइ भुंजंतं वा साइज्जइ ॥सू. ७५॥ जे भिक्खू रत्तिं असणं वा ४ पडिगाहित्ता

---

(१) रात्रिमें ग्रहण करके रात्रिमें ही भोजन करना।

(२) रात्रिमें ग्रहण करके दिनमें भोजन करना।

(३) दिनमें ग्रहण करके रात्रिमें भोजन करना।

(४) दिनमें ग्रहण करके (रात्रिभर रखकर दूसरे) दिनमें भोजन करना।

भगवान्ने निशीथ सूत्रके ग्यारहवें उद्देशमें कहा है—

"जो भिक्षु दिनमें अशन पान खाद्य स्वाद्य ग्रहण करके (दूसरे) दिन भोगे, दूसरेको भोगवावे और अन्य भोगनेवालेको भला जाने ॥७३॥

जो साधु दिनमें अशनादिक लेकर रात्रिमें स्वयं भोगे दूसरेको भोगवावे और अन्य भोगनेवालेको भला जाने ॥सू. ७४॥

जो साधु रात्रिमें अशनादिक लेकर दिनमें भोगे भोगवावे या भोगनेवाले अन्यको भला जाने ॥सू. ७५॥

---

(१) રાત્રે ગ્રહણ કરીને રાત્રે જ ભોજન કરવું

(૨) રાત્રે ગ્રહણ કરીને દિવસે ભોજન કરવું

(૩) દિવસે ગ્રહણ કરીને રાત્રે ભોજન કરવું

(૪) દિવસે ગ્રહણ કરીને (રાતભર રાખીને બીજે) દિવસે ભોજન કરવું.

ભગવાને નિશીથ-સૂત્રના અગીઆરમા ઉદ્દેશમાં કહ્યું છે—

"જે ભિક્ષુ દિવસમા અશન-પાન-ખાદ્ય-સ્વાદ્ય ગ્રહણ કરીને (બીજે) દિવસે ભોગવે, બીજાને ભોગવાવે, અન્ય ભોગવનારને ભલો જાણે (સૂ ૭૩)

જે સાધુ દિવસે અશનાદિ લઈને રાત્રે પોતે ભોગવે, બીજાને ભોગવાવે અને અન્ય ભોગવનારને ભલો જાણે (સૂ ૭૪)

જે સાધુ રાત્રે અશનાદિ લઈને દિવસે ભોગે, ભોગવાવે યા ભોગવનારને ભલો જાણે (સૂ ૭૫)

रत्तिं भुंजइ भुंजंतं वा साइज्जइ × × × × आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं ॥सू. ७६॥" इति ।

तच्च सर्वमशनादिकं रात्रौ नैव स्वयं भुञ्जे, इत्यादि सर्वं व्याख्यातपूर्वम् ॥१३॥

सम्प्रति गृहीतमहाव्रतः शिष्य उपसंहरन्नाह-'इच्चेयाइं' इत्यादि ।

मूलम्--**इच्चेयाइं पंच महव्वयाइं राइभोयणवेरमणछट्ठाइं अत्तहियट्ठयाए उवसंपज्जित्ताणं विहरामि ॥ १४ ॥**

छाया—इत्येतानि पञ्च महाव्रतानि रात्रिभोजनविरमणषष्ठानि आत्महितार्थायोपसम्पद्य विहरामि ॥१४॥

उपसंहार.

सान्वयार्थः—इच्चेयाइं=ये पहले कहे हुए राइभोयणवेरमणछट्ठाइं=छठे रात्रिभोजनविरमण व्रतके साथ पंच महव्वयाइं=पांच महाव्रतोंको अत्तहियट्ठयाए=आत्मकल्याणके लिये उवसंपज्जित्ताणं=स्वीकार करके विहरामि=संयममें विचरता हूँ ॥१४॥

जो साधु रात्रिमें अशनादिक लेकरके रात्रिमें भोगे दूसरेको भोगवावे और अन्य भोगनेवालेको भला जाने ॥सू. ७६॥ उसे चातुर्मासिक प्रायश्चित्त लगता है ।

इन सब अशन आदि चार प्रकारके आहारको रात्रिमें नहीं भोगूँगा, इत्यादिका व्याख्यान पहले कर चुके हैं ॥१३॥ (६)

अब महाव्रतोंको स्वीकार करनेवाला शिष्य उपसंहार करता हुआ कहता है-'इच्चेयाइं' इत्यादि ।

જે સાધુ રાત્રે અશનાદિ લઈને રાત્રે ભોગવે, બીજાને ભોગવાવે અને અન્ય ભોગવનારને ભલો જાણે (સૂ ૭૬) તેને ચાતુર્માસિક પ્રાયશ્ચિત્ત લાગે છે."

એ સર્વ અશનાદિ ચાર પ્રકારના આહારને રાત્રે નહિ ભોગવું, ઇત્યાદિનાં વ્યાખ્યાન પહેલાં કરવામા આવેલું છે (૧૩) (૬)

હવે મહાવ્રતોનો સ્વીકાર કરવાવાળો શિષ્ય ઉપસહાર કરતો છતો કહે છે-इच्चेयाइं ઇત્યાદિ

टीका-इत्येतानि=समनन्तरोदीरितलक्षणानि रात्रिभोजनविरमणषष्ठानि=रात्रौ भोजनं रात्रिभोजनं, रात्रिभोजनाद्विरमणं रात्रिभोजनविरमणं, षण्णां पूरणं षष्ठं=षट्संख्याप्रपूरकं, रात्रिभोजनविरमणं षष्ठं येषु तानि पञ्च महाव्रतानि आत्महितार्थाय=आत्मने हितम्=इष्टमिति आत्महितम्, आत्मनो हितं=मङ्गलमस्मादिति वाऽऽत्महितो मोक्षः,स एवार्थः=प्रयोजनम् आत्महितार्थस्तस्मै तथोक्ताय उपसम्पद्य=सामस्त्येन स्वीकृत्य विहरामि=संयमविषये विचरामि ॥१४॥

यतनापुरस्सरमेव व्रतग्रहणं सफलं भवतीत्यतस्तद्यतनास्वरूपं प्रदर्श्यते-"से भिक्खू वा" इत्यादि।

मूलम्-से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से पुढविं वा भित्तिं वा सिलं वा लेलुं वा ससरक्खं वा कायं ससरक्खं वा वत्थं हत्थेण वा पाएण वा कट्ठेण वा किलिंचेण वा अंगुलियाए वा सिलागाए वा सिलागहत्थेण वा न आलिहिज्जा न विलिहिज्जा न घट्टिज्जा न भिंदिज्जा, अन्नं न आलिहाविज्जा, न विलिहाविज्जा, न घट्टाविज्जा, न भिंदाविज्जा, अन्नं आलिहंतं वा, विलिहंतं वा, घट्टंतं वा भिंदंतं वा न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि

हे भगवन्। मैं पांच महाव्रतोंको और छठे रात्रिभोजनविरमण व्रतको आत्माके हित-मोक्ष-के लिए स्वीकार करके संयममार्गमें विचरता हूँ ॥४॥

व्रतोंको यतनापूर्वक स्वीकार किया जाय तभी वे सफल होते हैं, इसलिए यतनाका कथन करते हैं-'से भिक्खू०' इत्यादि।

હે ભગવન્! હુ પાંચ મહાવ્રતોને અને છઠા રાત્રિભોજનવિરમણ વ્રતને આત્માને હિત-સ્વરૂપ મોક્ષને માટે સ્વીકાર કરીને સયમ-માર્ગમા વિચરૂ છું (૧૪)

વ્રતોનો યતનાપૂર્વક સ્વીકાર કરવામા આવે ત્યારે તે સફળ થાય છે, તેથી યતનાનું કથન કરે છે-जे भिक्खू० ઇત્યાદિ

करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि! तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥१॥१५॥

छाया—स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा संयत-विरत-प्रतिहत-प्रत्याख्यातपापकर्मा दिवा वा रात्रौ वा एकको वा परिषद्गतो वा सुप्तो वा जाग्रद्वा, स पृथिवीं वा भित्तिं वा शिलां वा लेष्टुं वा सरजस्कं वा कायं सरजस्कं वा वस्त्रं हस्तेन वा पादेन वा काष्ठेन वा किलिञ्चेन वा अङ्गुल्या वा शलाकया वा शलाकाहस्तेन वा नाऽऽलिखेत् न विलिखेत् न घट्टयेत् न भिन्द्यात्, अन्यं नाऽऽलेखयेन्न विलेखयेन्न घट्टयेन्न भेदयेद्, अन्यमालिखन्तं वा विलिखन्तं वा घट्टयन्तं वा भिन्दन्तं वा न समनुजानीयात्, यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि। तस्माद् भदन्त! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि ॥१॥१५॥

(१) पृथ्वीकाययतना.

सान्वयार्थः—**संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे**=वर्त्तमानकालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, भूत-भविष्यत्कालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, वर्तमान कालमें भी स्थिति और अनुभागकी न्यूनता करके तथा पहले किये हुए अतिचारोंकी निन्दा करके सावद्य व्यापारके त्यागी, **से**=वह पूर्वोक्त **भिक्खू वा**=साधु **भिक्खुणी वा**=अथवा साध्वी **दिया वा**=दिनमें **राओ वा**=अथवा रात्रिमें **एगओ वा**=अकेला **परिसागओ वा**=अथवा संघमें स्थित **सुत्ते वा**=सोया हुआ **जागरमाणे वा**=अथवा जागता हुआ रहे, वहां **से**=वह **पुढविं वा**=पृथ्वीको **भित्तिं वा**=भीत-दीवार-को **सिलं वा**=शिलाको **लेलुं वा**=ढेलेको **ससरक्खं**=सचित्तरजसहित **कायं वा**=शरीरको **ससरक्खं**=सचित्त रजसहित **वत्थं वा**=वस्त्रको **हत्थेण वा**=हाथसे **पाएण वा**=पैरसे **कट्ठेण वा**=काष्ठसे **किलिंचेण वा**=वांस आदिकी खपचसे **अंगुलियाए वा**=अंगुलीसे **सिलागाए वा**=छडसे **सिलागहत्थेण वा**=बहुतसी छड़ोंसे **न आलिहिज्जा**=जराभी संघर्षण न करे, **न विलिहिज्जा**=वारम्वार संघर्षण न करे, **न घट्टिज्जा**=न घट्टन करे-न चलावे, **न भिंदिज्जा**=न भेदे, **अन्नं**=दूसरेसे **न आलिहाविज्जा**=जराभी संघर्षण न करावे, **न विलिहाविज्जा**=न वारम्वार संघर्षण करावे, **न घट्टाविज्जा**=न घट्टन करावे, **न भिंदाविज्जा**=न भेदन करावे, **आलिहंतं वा**=संघर्षण करनेवाले **विलिहंतं वा**=वार-वार संघर्षण करनेवाले **घट्टंतं वा**=घट्टन करनेवाले **भिंदंतं वा**=भेदन करनेवाले **अन्नं**= दूसरेको **न समणुजाणिज्जा**=भला न समझे। इसलिये मैं **जावज्जीवाए**=जीवनपर्यन्त (इसको) **तिविहं**=कृत-

कारित अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेणं=तीन प्रकारके मणेणं=मनसे वायाए=वचनसे काएणं=कायसे न करेमि=न करूँगा, न कारवेमि=न कराऊँगा,करंतंपि=करते हुए भी अन्नं=दूसरेको न समणुजाणामि=भला नहीं समझूँगा। भंते!=हे भगवन्! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरुसाक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाणं=दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ ॥१॥१५॥

टीका—से=सः=भिक्षावृत्तिकत्वेन प्रसिद्धः, भिक्षुः=भिक्षितुं=याचितुं शीलं धर्मो वा यस्य स भिक्षुः। ('भिक्ष याञ्चायामलाभे लाभे च'-त्यस्माद्धातोः 'आक्वेस्तच्छील-तद्धर्म-तत्साधुकारिषु' इत्यधिकारे 'सनाशंसभिक्ष उः' (३।२।१६२) इत्युप्रत्यये भिक्षुपदं सिध्यति)। अत्र 'उ' प्रत्ययेन ताच्छील्यद्योतनाद् भिक्षणशीलत्वं भिक्षुत्वमिति पर्यवस्यति।

ननु काषायाम्बरधारिणामपि भिक्षोपजीवित्वेन तत्रोक्तभिक्षुलक्षणमतिव्याप्तमिति चेन्न—

भिक्षावृत्तिसे प्रसिद्ध भिक्षु कहलाते हैं, अर्थात् याचना करके आहारादि लेनेवालेको भिक्षु कहते हैं।

संस्कृत व्याकरणके अनुसार 'भिक्षु' पदमें 'उ' प्रत्यय लगा हुआ है। उससे यह प्रगट होता है कि–भिक्षु उसे कहना चाहिए जो किसी वस्तुको विना भिक्षाके न लें, अर्थात् भिक्षणशील भिक्षु कहलाते हैं।

प्रश्न–गेरुआ या अन्य किसी प्रकारके रंगसे रंगे हुए कपड़े पहनने-वाले संन्यासी आदि भी भिक्षु मांग कर अपने जीवनका निर्वाह करते हैं, इसलिए यह भिक्षुका लक्षण उनमें भी चला जाता है, वे भी भिक्षु कहलावेंगे ?।

ભિક્ષાવૃત્તિથી પ્રસિદ્ધ હોય તે ભિક્ષુ કહેવાય છે. અર્થાત્ યાચના કરીને આહારાદિ લેનારાને ભિક્ષુ કહે છે,

સસ્કૃત વ્યાકરણને અનુસરીને ભિક્ષુ શબ્દમા ઉ પ્રત્યય લાગેલો છે તેથી એમ પ્રકટ થાય છે કે ભિક્ષુ એને કહેવો જોઇએ કે જે કોઇ વસ્તુને ભિક્ષા વિના લે નહિ, અર્થાત ભિક્ષણુશીલ હોય તે ભિક્ષુ કહેવાય છે

પ્રશ્ન–ગેરૂથી યા અન્ય કોઇ પ્રકારના રગથી રગેલા કપડા પહેરનારા સંન્યાસી આદિ પણ ભિક્ષા માંગીને પોતાના જીવનનો નિર્વાહ કરે છે તેથી એ ભિક્ષુનું લક્ષણ એને પણ લાગુ પડે છે, તેઓ પણ ભિક્ષુ કહેવાશે ?

भिक्षावृत्तिकत्वे सति भिक्षेतरवृत्तिरहितत्वं हि भिक्षुत्वम्, तथा च स्वामिनिदेशमन्तरेणापि जलाशयादितोऽपि स्वहस्तेनापि जलादिग्रहणस्य तदीयजीविकान्तर्गतत्वेन, तथा कदाचिद् भिक्षाया अलाभे पचन-पाचनादिक्रियया, कन्दमूलफलादिना च जीवननिर्वाहात्तेषामुक्तलक्षणभिक्षुत्वाभावात् ।

न च 'भिक्षवो यदा भिक्षमाणास्तदा तत्रास्तु भिक्षुत्वं परन्त्वभिक्षमाणत्वावस्थायां कथं तेषु भिक्षुशब्दः प्रवर्त्तेत तदानीं भिक्षणव्यापाराभावा?' दिति वाच्यम्, उभय्यामप्यवस्थायां भिक्षुशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तसद्भावेन भिक्षुशब्दप्रवृत्तिसंभवात्,

---

उत्तर–जो भिक्षासे ही अपना निर्वाह करते हैं और सिवाय भिक्षाके अन्य वृत्तिको कदापि स्वीकार नहीं करते वे ही भिक्षु कहलाते हैं, संन्यासी आदि स्वामीकी आज्ञाके विना भी जलाशय आदिसे भी जल आदि अपने हाथोंसे ले लेते हैं। जब भिक्षा नहीं मिलती तब पचन-पाचनादि करते कराते हैं, तथा कन्द-मूल-फल-आदिसे निर्वाह कर लेते हैं, इसलिए वे भिक्षु नहीं कहला सकते।

प्रश्न–अच्छा, जो भिक्षासे ही अपना निर्वाह करे उसे भिक्षु कहते हैं तो साधु जब भिक्षाकी गवेषणा करेंगे तब ही भिक्षु कहलावेंगे, जिस समय स्वाध्याय आदि अन्य क्रिया करते होंगे उस समय भिक्षु कैसे कहलावेंगे ?

उत्तर–भिक्षाकी गवेषणा करते समय भी साधुको भिक्षु कह सकते है और न करते समय भी कह सकते हैं। दोनों अवस्थाओंमें भिक्षु शब्दकी प्रवृत्तिका कारण मौजूद है।

ઉત્તર–જેઓ ભિક્ષાથી જ પોતાનો નિર્વાહ કરે છે અને ભિક્ષા સિવાય અન્યવૃત્તિને કદાપિ સ્વીકારતા નથી તેઓ જ ભિક્ષુ કહેવાય છે સંન્યાસી આદિ સ્વામીની આજ્ઞા વિના પણ જળાશય આદિથી પણ જળ આદિ પોતાના હાથે લઇ લે છે, જ્યારે ભિક્ષા નથી મળતી ત્યારે રાંધવા–રંધાવવાની ક્રિયા કરે છે, તથા કંદ મૂળ ફળ આદિથી નિર્વાહ કરી લે છે, તેથી તેઓ ભિક્ષુ કહેવાઈ શકતા નથી

પ્રશ્ન–ઠીક, જેઓ ભિક્ષાથી જ પોતાનો નિર્વાહ કરે તેમને ભિક્ષુ કહે છે તો સાધુ જ્યારે ભિક્ષાની ગવેષણા કરશે ત્યારે જ ભિક્ષુ કહેવાશે, જે સમયે સ્વાધ્યાય આદિ અન્ય ક્રિયા કરતા હશે તે સમયે ભિક્ષુ કેવી રીતે કહેવાશે!

ઉત્તર–ભિક્ષાની ગવેષણા કરતી વખતે સાધુને ભિક્ષુ કહી શકાય છે અને ન કરતી વખતે પણ કહી શકાય છે બેઉ અવસ્થામા ભિક્ષુ શબ્દની પ્રવૃત્તિનુ કારણ મોજુદ છે

तथाहि शब्दस्य द्वे निमित्ते व्युत्पत्तिनिमित्तं प्रवृत्तिनिमित्तं चेति, तत्र व्युत्पत्तिलभ्यार्थप्रतीतौ प्रकारीभूतो धर्मो व्युत्पत्तिनिमित्तम्, यथा पङ्कजशब्दस्य पङ्कजनिकर्तृत्वम्। सङ्केतग्रहे प्रकारीभूतो धर्मः प्रवृत्तिनिमित्तम्, यथा पद्मत्वजातिः ।

न च शब्दानां व्युत्पत्तिनिमित्तमेव प्रवृत्तिनिमित्तमिति वाच्यम्, पाचकादिशब्दे तथात्वेऽपि पङ्कजादिशब्दे तद्व्यभिचारात्। तथाहि—पङ्कजपदं 'पङ्काज्जायते'

शब्दोंकी प्रवृत्ति दो प्रकारसे होती है। जैसे कमलका वाचक एक पङ्कज शब्द है दूसरा पद्म शब्द है। पंकज शब्दका अर्थ है कीचड़से उत्पन्न होनेवाला, कमल कीचड़से उत्पन्न होता है इसलिए पंकजत्व व्युत्पत्तिनिमित्त है। अर्थात् पङ्कज शब्दकी व्युत्पत्ति करनेसे जो अर्थ निकलता है वही अर्थ उसके वाच्यमें (अर्थमें) ठीक-ठीक घट जाता है, इसे व्युत्पत्तिनिमित्त कहते हैं।

दूसरा प्रवृत्तिनिमित्त है। शब्दके संकेतसे बोध्य अर्थमें विशेषणभूत धर्मको प्रवृत्तिनिमित्त कहते हैं, जैसे पद्मत्व या कमलत्व (कमलपन) जाति।

यदि कोई कहे कि- 'जो व्युत्पत्तिनिमित्त है वही प्रवृत्तिनिमित्त है तो ठीक नहीं है, क्योंकि यद्यपि 'पाचक' आदि शब्दोंमें जो व्युत्पत्तिनिमित्त है वही प्रवृत्तिनिमित्त है तथापि पङ्कज आदि शब्दोंमें यह कथन नहीं घटता, क्योंकि "पंक (कीचड़)से उत्पन्न होनेवाला पंकज है"

શબ્દોની પ્રવૃત્તિ બે પ્રકારે થાય છે. જેમકે—કમળનો વાચક એક પંકજ શબ્દ છે, બીજો પદ્મ શબ્દ છે. પંકજ શબ્દનો અર્થ કીચડમાં ઉત્પન્ન થએલું એવો થાય છે કમળ કીચડમાં ઉત્પન્ન થાય છે, તેથી પંકજત્વ વ્યુત્પત્તિનિમિત્ત છે. અર્થાત્ પંકજ-શબ્દની વ્યુત્પત્તિ કરવાથી જે અર્થ નીકળે છે તે જ અર્થ તેના વાચ્યમા (અર્થમા) બરાબર બંધ બેસે છે, તેથી તેને વ્યુત્પત્તિનિમિત્ત કહે છે

બીજો પ્રવૃત્તિનિમિત્ત છે શબ્દના સંકેતથી બોધ્ય અર્થમાં વિશેષણભૂત ધર્મને પ્રવૃત્તિનિમિત્ત કહે છે જેમકે—પદ્મત્વ યા કમલત્વ (કમળપણું) જાતિ

જો કોઈ કહે કે-'જે વ્યુત્પત્તિનિમિત્ત છે તેજ પ્રવૃત્તિનિમિત્ત છે, તો તે બરાબર નથી કારણ કે જો કે 'પાચક' આદિ શબ્દોમા જે વ્યુત્પત્તિનિમિત્ત છે તેજ પ્રવૃત્તિનિમિત્ત છે, તથાપિ પંકજ આદિ શબ્દોમાં એ કથન બંધ બેસતું નથી, કારણ કે 'પંક (કીચડ)માંથી ઉત્પન્ન થવાવાળુ પંકજ છે, —એ વ્યુત્પત્તિથી

इति व्युत्पत्त्या पङ्कजनिकर्तृत्वावच्छिन्ने शक्ततया पद्मरूपार्थबोधकं सदपि शैवालादिष्वतिप्रसङ्गवारणाय पद्मत्व(जाति)रूपं प्रवृत्तिनिमित्तमादायैव पद्मं बोधयति न त्वितरथा ।

एवमत्रापि भिक्षुशब्दस्य भिक्षणं व्युत्पत्तिनिमित्तम्, भिक्षत इत्येवंशीलो भिक्षुरिति व्युत्पत्तः । तथा चाऽभिक्षमाणत्वावस्थायां भिक्षुत्वाप्रसक्तावपि ऐहिकपार-

---

इस व्युत्पत्तिसे पंकज शब्द कमलका बोध तो कराता है परन्तु साथही साथ शैवाल तथा इस प्रकारसे पैदा होनेवाले गङ्गुलके फूल आदिका अर्थ भी उससे निकलता है, क्योंकि वे भी कीचड़से पैदा होते हैं। यदि व्युत्पत्तिनिमित्तको ही शब्दकी प्रवृत्तिमें कारण माना जाय तो शैवाल आदिमें भी पंकज शब्दका प्रयोग हो जायगा, इस आपत्तिका निवारण करनेके लिए व्युत्पत्तिनिमित्तके सिवाय प्रवृत्तिनिमित्त कमलत्व धर्मकी भी आवश्यकता है, इससे शैवाल आदिका निराकरण हो जाता है, दोनों निमित्तोंसे ठीक-ठीक अर्थका प्रतिपादन हो जाता है कि जो कीचड़से उत्पन्न हो और जिसमें कमलत्वरूप सामान्य (जाति) पाया जाय उसे पङ्कज कहते हैं।

इसी प्रकार यहाँ 'भिक्षु' शब्दका व्युत्पत्तिनिमित्त भिक्षण (याचना) धर्म है, जिस समय साधु भिक्षण नहीं करते उस समय व्युत्पत्तिनिमित्तसे भिक्षु नहीं कहला सकते, फिरभी 'समितिगुप्तिपालकत्व' –रूप प्रवृत्ति-

---

પંકજ શબ્દ કમળનો બોધ તો કરાવે છે, પરન્તુ સાથે શેવાળ તથા એ પ્રકારે પેદા થનારા ઘીતેલા શીંગોડા આદિનો અર્થ પણ તેમાંથી નીકળે છે, કારણ કે તે પણ કીચડમાંથી પેદા થાય છે જો વ્યુત્પત્તિનિમિત્તને જ શબ્દની પ્રવૃત્તિમા કારણરૂપ માનવામાં આવે તો શેવાળ આદિમાં પણ પંકજ શબ્દનો પ્રયોગ થઈ જશે એ આપત્તિનું નિવારણ કરવાને માટે વ્યુત્પત્તિનિમિત્ત ઉપરાંત પ્રવૃત્તિનિમિત્ત કમળત્વ ધર્મની પણ આવશ્યકતા છે. તેથી શેવાળ આદિનું નિરાકરણ થઈ જાય છે બેઉ નિમિત્તોથી બરાબર અર્થનું પ્રતિપાદન થઈ જાય છે કે જે કીચડમાંથી ઉત્પન્ન થાય અને જેમા કમલત્વરૂપ સામાન્ય (જાતિ) મળી આવે તેને પંકજ કહે છે

એ રીતે અહીં 'ભિક્ષુ' શબ્દનો વ્યુત્પત્તિનિમિત્ત ભિક્ષણ (યાચના) ધર્મ છે જે સમયે સાધુ ભિક્ષણ કરતો નથી, તે સમયે વ્યુત્પત્તિનિમિત્તથી ભિક્ષુ નથી કહેવાતો, તો પણ 'સમિતિગુપ્તિ–પાલકત્વ' રૂપ પ્રવૃત્તિનિમિત્તથી ભિક્ષુ

त्रिकाऽऽशंसाविरहेण समितिगुप्त्यादिधारित्वरूपप्रवृत्तिनिमित्तमादाय भिक्षुत्व-समित्यादिपालकत्वयोर्भिक्षुलक्षणैकार्थसमवायेन कथञ्चित्तादात्म्यलक्षणेन भिक्षमाणेऽभिक्षमाणे वा भिक्षौ भिक्षुशब्दप्रवृत्तेः, वर्त्तमानपर्यायमात्रग्रहणलक्षणऋजुसूत्रनयाभिप्रायाच्च भिक्षुत्वसिद्धिः।

ननु पूर्वोक्तलक्षणं प्रवृत्तिनिमित्त काषायाम्बरधारिप्रभृतिष्वपि विद्यते, तेऽपि मार्गं पश्यन्त एव गच्छन्ति, तेन च तेषां समित्यादिपालकत्वं, मौनादिसमवलम्बनेन गुप्तिपालकत्वं चास्ति, ततश्च समिति-गुप्तिपालकत्वरूपप्रवृत्तिनिमित्तस्य तेष्वपि सत्त्वेन कुतो न तेषां भिक्षुशब्दव्यवहार्यत्वमिति चेत् ?

यत इहलोकाद्याशंसाविरहिततया समित्यादिपालकत्वमेव भिक्षुशब्दप्रवृत्ति-

---

निमित्तसे भिक्षु शब्दकी प्रवृत्ति होती है, क्योंकि भिक्षुत्व और समिति-गुप्तिपालकत्व दोनों धर्म भिक्षुमें कथञ्चित् तादात्म्यसम्बन्धरूप एकार्थ-समवायसे रहते हैं। इसलिए भिक्षा न करते समय भी 'समितिगुप्ति-पालकत्व' -रूप प्रवृत्ति-निमित्तसे भिक्षु शब्दकी प्रवृत्ति होती है।

शङ्का-समिति-गुप्तिपालकता तो गेरुआ आदि वस्त्र पहननेवालोंमें भी पाई जाती है। वे भी मार्ग देखकर ही चलते हैं इसलिए वे समितिका पालन करते हैं। और कभी-कभी मौन रखते हैं इसलिए गुप्तिका भी पालन करते हैं। जब उनमें समिति-गुप्तिपालकता पाई जाती है तो उन्हें भी भिक्षु क्यों नहीं कहना चाहिए ?

समाधान-इहलोक और परलोक सम्बन्धी आकांक्षा या स्वार्थरहित

શબ્દની પ્રવૃત્તિ થાય છે, કારણ કે ભિક્ષુત્વ અને સમિતિગુપ્તિ-પાલકત્વ બેઉ ધર્મો ભિક્ષુમાં કોઇપણ રીતે તાદાત્મ્ય-સબંધરૂપ એકાર્થ-સમવાયથી રહે છે તેથી ભિક્ષા ન કરતી વખતે પણ 'સમિતિગુપ્તિ-પાલકત્વ' રૂપ પ્રવૃત્તિનિમિત્તથી ભિક્ષુ શબ્દની પ્રવૃત્તિ થાય છે

શંકા-સમિતિગુપ્તિ-પાલકતા તો ગેરૂઆ આદિ વસ્ત્ર પહેરનારાઓમાં પણ જોવામાં આવે છે તેઓ પણ માર્ગ જોઈને જ ચાલે છે, તેથી તેઓ સમિતિનુ પાલન કરે છે, અને કોઇ-કોઇવાર મૌન રહે છે તેથી ગુપ્તિનુ પણ પાલન કરે છે, જો તેઓમા સમિતિગુપ્તિ-પાલકતા જોવામા આવે છે, તો તેમને પણ ભિક્ષુ કેમ ન કહેવા જોઈએ ?

સમાધાન-ઇહલોક અને પરલોક સબધી આકાંક્ષા અથવા સ્વાર્થરહિત થઈને

निमित्तम्, तच्च तेषु न विद्यते तेषां तथाविधप्रवृत्तेः, ऐहिककण्टकादिनिवृत्त्यर्थत्वात्, यशःकीर्त्यादिसम्पादनार्थत्वाच्च, नातस्तेषां वस्तुतः समितिगुप्त्यादिपालकत्वं विद्यते। अन्यथा–'यावन्निगडबद्धोऽहं तावदेनं न हनिष्यामि, यावन्न समालपामि तावदहं मृषात्यागी, यावत्सनिद्रोऽहं तावदचौर्यव्रती'–त्याद्यभिमाना अपि केचिद् व्रतधारित्वेन व्यवह्रियेरन्, किन्तु तेषामान्तरिकेच्छायाः सततानुबन्धितया विद्यमानत्वान्न व्रतित्वमस्ति।

किञ्च भिक्षुम्मन्येषु काषायाम्बरधारिषु नैवाऽयं भिक्षुशब्द आत्मसत्तां लभते,

---

होकर जो समिति-गुप्तिका पालन करते हैं वे ही भिक्षु कहलाते हैं। उनमें ऐसा नहीं पाया जाता। वे हिंसासे बचनेके लिए मार्ग देख कर गमन नहीं करते, किन्तु काँटे आदि लग जानेके भयसे मार्ग देखकर गमन करते हैं, और यश-कीर्त्ति सम्पादन करनेके लिए मौन रखते हैं, इसलिए वे वास्तवमें समिति–गुप्तिके पालक नहीं हो सकते। यदि उन्हें समिति-गुप्तिका पालक माना जाय तो वह मनुष्य भी व्रती कहलायगा, जो ऐसी प्रतिज्ञा करे कि–"मैं जब तक बेड़ीमें जकड़ा हुआ हूँ तब तक इसे नहीं मारूँगा" "जब तक न बोलूँ तब तक मृषावादका त्यागी हूँ" "जब तक सोया रहूँगा तब तक अचौर्य व्रतका पालन करूँगा" वास्तवमें ऐसे मनुष्य व्रती नहीं कहलाते हैं, क्योंकि उनकी आन्तरिक इच्छा पापोंसे निवृत्त नहीं हुई है।

गेरुआ आदि वस्त्र धारण करनेवाले और अपनेको भिक्षु समझने-

જેઓ સમિતિ-ગુપ્તિનુ પાલન કરે છે તેઓજ ભિક્ષુ કહેવાય છે તેઓમા એવુ જોવામાં આવતુ નથી. તેઓ હિંસાથી બચવાને માટે માર્ગ જોઇને ગમન કરતા નથી, પરન્તુ કાંટા વગેરે વાગી જવાના ભયથી માર્ગ જોઈને ચાલે છે અને યશ કીર્તિ સંપાદન કરવાને માટે મૌન રાખે છે, તેથી તેઓ વસ્તુતાએ સમિતિ–ગુપ્તિના પાલક નથી થઇ શકતા જો તેમને સમિતિ-ગુપ્તિના પાલક માનવામાં આવે તો એ માણસ પણ વ્રતી કહેવાશે કે જે એવી પ્રતિજ્ઞા કરે કે– "જ્યા સુધી હું બેડીથી બંધાયલો છું ત્યાંસુધી હુ તેને નહિ મારૂં" "જ્યાં સુધી હું ન બોલું ત્યાંસુધી મૃષાવાદનો ત્યાગી છું" "જ્યાં સુધી સૂઇ રહીશ ત્યા સુધી અચૌર્યવ્રતનું પાલન કરીશ." વસ્તુત એવો માણસ વ્રતી નથી કહેવાતો, કારણ કે એની આંતરિક ઈચ્છા પાપથી નિવૃત્ત થઇ નથી

ગેરૂઆ આદિ વસ્ત્રો ધારણ કરનારા અને પોતાને ભિક્ષુ માનનારા સંન્યાસી

तेषामुद्गमोत्पादनादिदोषदुष्टान्नभोजित्व-सचित्ततोयकन्दमूलाद्यासेवित्व-पचन-पाचनादिक्रियेच्छानिवृत्त्यभावादिदोषदूषितत्वात्, अतो ये समितिगुप्तिधारका भिक्षामात्रोपजीविनोऽचित्तामेषणीयामुद्गमोत्पादनादिदोषराहित्येन विशुद्धां प्रमाणोपेतां च भिक्षां गृह्णन्ति, प्राणात्ययसमयेऽपि पचनपाचनादिनवकोटिविशुद्धिं नैव खण्डयन्ति त एव भिक्षुपदव्यवहारयोग्यतां लभन्ते, इति विदेलिमम् ।

यद्वा क्षोभते क्षुभ्यति वा=अन्तर्भावितण्यर्थतया क्षोभयति=संचालयति चतुर्गतिकसंसारे सकलप्राणिन इति क्षुप्=अष्टविधं कर्म (अन्तर्भावितण्यर्थाद् भौवादिकाद् दैवादिकाद्वा 'क्षुभ सञ्चलने' अस्माद्धातोः 'सम्पदादित्वात् क्विप्) तद् ज्ञानदर्शनादिना भिनत्ति=क्षपयतीति भिक्षुः (पृषोदरादित्वात्सिद्धिः) ॥

वाले संन्यासी आदि वास्तवमें भिक्षु नहीं कहला सकते, क्योंकि वे उद्गम-उत्पादना आदि दोषोंसे दूषित अन्न आदि अंगीकार करते हैं, सचित्त जल लेते हैं, सचित्त कन्द मूल आदिका सेवन करते हैं, पचन-पाचनादि क्रियाएँ करते हैं और इच्छाका दमन नहीं करते हैं। अतः वास्तवमें वे ही भिक्षु कहलाने योग्य हैं जो समिति-गुप्तिके धारक तथा भिक्षामात्रसे उपजीवी हैं, अचित्त एषणीय उद्गम आदि दोषरहित विशुद्ध प्रमाणोपेत भिक्षा लेते हैं और प्राण जानेका अवसर आ जाने पर भी पचन-पाचन आदि नव कोटिकी विशुद्धताको खण्डित नहीं करते।

अथवा संसारके समस्त शरीरधारियोंको क्षोभित करनेवाले ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मोंको भेदनेवाले भिक्षु कहलाते हैं।

આદિ વસ્તુત ભિક્ષુ કહેવાઇ શકતા નથી, કારણ કે તેઓ ઉદ્‌ગમ ઉત્પાદના આદિ દોષોથી દૂષિત અન્ન આદિ અંગીકારે છે, સચિત્ત જળ લે છે, સચિત્ત કંદ-મૂળ આદિનું સેવન કરે છે, પચન-પાચનાદિ ક્રિયાઓ કરે છે અને ઇચ્છાનું દમન કરતા નથી એથી કરીને વસ્તુતઃ તેઓ જ ભિક્ષુ કહેવાવા યોગ્ય છે કે જેઓ સમિતિ-ગુપ્તિના ધારક તથા ભિક્ષામાત્રથી ઉપજીવી છે, અચિત્ત, એષણીય, ઉદ્‌ગમાદિ-દોષથી રહિત, વિશુદ્ધ, પ્રમાણોપેત ભિક્ષા લે છે, અને પ્રાણ જવાનો અવસર આવે તો પણ પચન-પાચનાદિ નવ કોટિની વિશુદ્ધતાને ખંડિત કરતા નથી.

અથવા સંસારના સર્વ શરીરધારીઓને ક્ષોભિત કરનારાં જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મોને ભેદનારા ભિક્ષુ કહેવાય છે.

भिक्षुकी=साध्वी । 'संजय०' इत्यादीनि भिक्षुविशेषणानि भिक्षुक्या अपि वोध्यानि उभयोः समानाचारशीलत्वात् ।

(१) पृथिवीकाययतना ।

संयत–विरत–प्रतिहत–प्रत्याख्यात-पापकर्मा=संयतः–वर्तमानकालिकसर्वसावद्यानुष्ठाननिवृत्तः, विरतः–अतीतकालिकपापाज्जुगुप्सापूर्वकं, भविष्यति च संवरपूर्वकमुपरतो निवृत्त इत्यर्थः, अत एव प्रतिहतं=वर्तमानकाले स्थित्यनुभागह्रासेन नाशितं, प्रत्याख्यातं=पूर्वकृतातिचारनिन्दया भविष्यत्यकरणेन निराकृतं पापकर्म=पापानुष्ठानं येन स प्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा, संयतश्चासौ विरतश्च (विशेषणयोरपि परस्परविशेष्यविशेषणभावविवक्षया समासो गतप्रत्यागतादिवत्) संयतविरतश्चासौ प्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा चेति तथोक्तः, दिवा=दिवसे, रात्रौ=रजन्याम्, एककः=एकाकी-द्रव्यतो ध्यानादिहेतो-

---

भिक्षुकी साध्वीको कहते हैं । संजय आदि विशेषण साध्वीके साथ भी समझना चाहिए क्योंकि साधु और साध्वीका आचार प्रायः समान है ।

(१) पृथिवीकाययतना ।

वर्त्तमान कालके सब प्रकारके सावद्य व्यापारसे निवृत्त होनेके कारण संयत, अतीतकालीन पापोंसे जुगुप्सा-पूर्वक और भविष्यत्कालीन पापोंसे संवर-पूर्वक निवृत्त होनेसे विरत, संयत और विरत होनेके कारण वर्त्तमान कालमें स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धको ह्रास करके पापकर्मको नष्ट करनेवाले, दिनमें, रात्रिमें, द्रव्यसे ध्यान आदिके लिए एकान्तमें

ભિક્ષુકી સાધ્વીને કહે છે સંજય આદિ વિશેષણ સાધ્વીની સાથે પણ સમજવાનું છે, કારણ કે સાધુ અને સાધ્વીનો આચાર પ્રાય. સમાન છે

(૧) પૃથિવીકાયયતના.

વર્તમાનકાળના સર્વ પ્રકારના સાવદ્ય-વ્યાપારથી નિવૃત્ત હોવાને કારણે સંયત, અતીતકાલીન પાપોથી જુગુપ્સાપૂર્વક અને ભવિષ્યત્કાલીન પાપોથી સંવર-પૂર્વક નિવૃત્ત હોવાથી વિરત, સંયત અને વિરત હોવાને કારણે વર્તમાન કાળમાં સ્થિતિબંધ અને અનુભાગબંધનો હ્રાસ કરીને પાપકર્મને નષ્ટ કરનારા, દિવસમાં અને રાત્રે, દ્રવ્યથી ધ્યાન આદિને માટે એકાન્તમાં સ્થિત અને ભાવથી રાગ-દ્વેષ

रेकान्तस्थानस्थितोऽद्वितीयः, भावतो रागद्वेषरहितो वा, परिषद्गतः=परि=समन्ततः सीदन्ति=गच्छन्ति गत्वा संहता भवन्ति जना अस्यामिति परिषत्=सभा, तां गतः परिषद्गतः=साध्वादिसङ्घस्थित इत्यर्थः, सुप्तः=स्वाध्यायादिजनितश्रमापनोदार्थं रजनीमध्यमयामयुगलमात्रं निद्रितः, जाग्रत्=इन्द्रियादिकरणकविषयज्ञानयोग्यावस्थां प्राप्तः-निद्राविमुक्तो भवेत्। एवंविधो भिक्षुर्वक्ष्यमाणरीत्या दुष्कृत्यं न करोतीति प्रदर्श्यते-'से' इति, सः-भिक्षुः पृथिवीं=खनिसमुद्भूतमृत्तिकारूपाम्, भित्तिं=सरित्तीरमृत्तिकाम्, शिलां=विशालपाषाणलक्षणाम्, लेष्टुं=पिण्डात्मकमृत्खण्डम्, सरजस्कं=सचित्तरजोऽवगुण्ठितम्, कायं=शरीरम्, वस्त्रं=चोलपट्टप्रमुखं च, पात्रादीनामप्युपलक्षणमेतत्, एतेषु अन्यतमं किमपि वस्तु हस्तेन=करेण, पादेन=चरणेन, काष्ठेन=खदिरादिदारुखण्डेन, किलिञ्चेन=वंशादिकञ्चिकया, अङ्गुल्या=करचरणावयवविशेषेण, शलाकया=लोहादिरचितया, शलाकाहस्तेन=पुञ्जीकृतशलाकाभिर्वा नाऽऽलिखेत्=सकृत् अल्पं वा न संघर्षयेत्, न विलिखेत्=बहुशोऽविरतं विशेषतो वा

स्थित और भावसे रागद्वेषरहित होनेसे एकाकी, अथवा साधुओंके संघमें स्थित, स्वाध्याय आदिसे उत्पन्न श्रमको दूर करनेके लिए रात्रिके बीचके दो प्रहरोंमें सोते हुए, तथा जागते हुए भिक्षु, आगे कहे हुए सावद्य व्यापार नहीं करते हैं।

खानसे निकली हुई मृत्तिकारूप पृथ्वीपर, नदीके किनारेकी मिट्टी पर, पत्थरकी शिलापर, मिट्टीके ढेलेपर, सचित्त धूलीसे धूसर काय, चोलपट्ट आदि वस्त्र तथा पात्र पर, अर्थात् इनमेंसे किसीभी पदार्थपर हाथसे, पैरसे, काष्ठसे, बांस आदिकी सटक (छड़ी-खापटी)से, अंगुलीसे, लोहे आदिकी बनी हुई छड़से, अथवा बहुतसी छड़ों (सलाइयों)से, न स्वयं एकबार लकीर खींचे, न बार-बार लकीर खींचे अर्थात् इनको

રહિત હોવાને કારણે એકાકી અથવા સાધુઓના સંઘમાં સ્થિત, સ્વાધ્યાય આદિથી ઉત્પન્ન થતા શ્રમને દૂર કરવાને માટે રાત્રિની વચ્ચેના બે પહોરમાં સૂતા તથા જાગતા ભિક્ષુ, આગળ કહેલા સાવદ્ય વ્યાપારને કરતા નથી

ખાણમાંથી નીકળેલી માટીરૂપ પૃથ્વી પર, નદીના કિનારાની માટી પર પત્થરની શિલા પર, માટીનાં ઢેફાં પર, સચિત્ત ધૂળથી ધૂસર કાય, ચોલપટ્ટો આદિ વસ્ત્ર તથા પાત્ર પર અર્થાત્ એમાંના કોઈ પણ પદાર્થ પર હાથથી, પગથી, કાષ્ઠથી, વાંસ આદિના ખપાટથી, આંગળીથી, લોઢા આદિની સળીથી અથવા અનેક સળીઓથી ન પોતે એકવાર રેખા દોરે, ન વારંવાર રેખા દોરે, અર્થાત્

न घट्टयेत्=न चालयेत्, न भिन्द्यात्=न विदारयेत्=न विदीर्णतां नयेत्, तथाऽन्येन=(सूत्रे त्वार्षत्वाद्द्वितीया) स्वव्यतिरिक्तजनेन नाऽऽलेखयेत्, न विलेखयेत्, न घट्टयेत्=न भेदयेत्, आलिखन्तं वा विलिखन्तं वा घट्टयन्तं वा भिन्दन्तं वा अन्यं=व्यक्त्यन्तरं न समनुजानीयात्=नानुमन्येत, इत्येवं भगवदुपदिष्टाचारपद्धतिसंरक्षणपरायणान्तःकरणोऽहं यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेनेत्यादि पूर्ववत्।१।॥१५॥

सम्प्रति क्रमप्राप्तामप्कायथतनामाह–'से भिक्खू वा०' इत्यादि ।

मूलम्–से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से उदगं वा ओसं वा हिमं वा महियं वा करगं वा हरतणुगं वा सुद्धोदगं वा उदउल्लं वा कायं उदउल्लं वा वत्थं ससिणिद्धं वा कायं ससिणिद्धं वा वत्थं न आमुसिज्जा न संफुसिज्जा न आविलिज्जा न पविलिज्जा न अक्खोडिज्जा, न पक्खोडिज्जा, न आयाविज्जा, न पयाविज्जा, अन्नं आमुसंतं वा, संफुसंतं वा आवीलंतं वा पवीलंतं वा, अक्खोडंतं वा, पक्खोडंतं वा, आयावंतं वा, पयावंतं वा न समणुजाणिज्जा । जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं

न घिसे तथा न हिलावे, न विदारे, न दूसरेसे ये सब क्रियाएँ करावे और न ये सब क्रियाएँ करते हुए अन्यको भला जाने ।

हे गुरुमहाराज ! इस प्रकार सर्वज्ञ भगवान् द्वारा उपदेश किए हुए आचारकी रक्षा करनेमें मनको तत्पर रखनेवाला मैं तीन करण तीन योगसे यह सब कार्य नहीं करूँगा ॥ २ ॥ १५ ॥

अब अप्कायकी यतनाका प्रतिपादन करते हैं–'से भिक्खू०' इत्यादि ।

એને ન ઘસે તથા ન હલાવે, ન વિદારે, ન બીજાઓ પાસે એ બધી ક્રિયાઓ કરાવે અને ન એ બધી ક્રિયાઓ કરનારા અન્યને ભલો જાણે.

હે ગુરૂ મહારાજ! એ પ્રકારે સર્વજ્ઞ ભગવાને ઉપદેશેલા આચારની રક્ષા કરવામાં મનને તત્પર રાખનારો એવો હું ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી એ બધાં કાર્ય કરીશ નહિ (૧) (૧૫)

હવે અપ્કાયની યતનાનું પ્રતિપાદન કરે છે–से भिक्खू ઇત્યાદિ.

मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न सम-णुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥२॥१६॥

छाया—स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा संयत-विरत-प्रतिहत-प्रत्याख्यातपापकर्मा दिवा वा रात्रौ वा एकको वा परिषद्गतो वा सुप्तो वा जाग्रद्वा स उदकं वा अवश्यायं वा हिमं वा मिहिकां वा करकं वा हरतनुं वा शुद्धोदकं वा उदकार्द्रं वा कायं,उदकार्द्रं वा वस्त्रं,सस्निग्धं वा काय,सस्निग्धं वा वस्त्रं नाऽऽमृशेन्न संस्पृशेन्नाऽऽ-पीडयेन्न प्रपीडयेन्नास्फोटयेन्न प्रस्फोटयेन्नातापयेन्न प्रतापयेत् ,अन्येन नाऽऽमर्शयेन्न संस्पर्शयेन्नाऽऽपीडयेन्न प्रपीडयेन्नाऽऽस्फोटयेन्न प्रस्फोटयेन्नाऽऽतापयेन्न प्रतापयेत्, अन्यमामृशन्तं वा, संस्पृशन्तं वा, आपीडयन्तं वा, प्रपीडयन्तं वा,आस्फोटयन्तं वा, प्रस्फोटयन्तं वा, आतापयन्तं वा, प्रतापयन्तं वा न समनुजानीयात्। यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि, न कारयामि, कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि। तस्माद् भदन्त! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि ॥२॥१६॥

(२) अप्काययतना.

सान्वयार्थः——संजयविरयपडिहयपचक्खायपावकम्मे=वर्त्तमानकालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, भूत-भविष्यत्कालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, वर्त्तमान कालमें भी स्थिति और अनुभागकी न्यूनता करके तथा पहले किये हुए अतिचारोंकी निन्दा करके सावद्य व्यापारके त्यागी से=वह पूर्वोक्त भिक्खू वा=साधु **भिक्खुणी वा=अथवा साध्वी दिया वा=दिनमें राओ वा=अथवा रात्रिमें एगओ वा=अकेला परिसागओ वा=अथवा संघमें स्थित सुत्ते वा=सोया हुआ जागरमाणे** वा=अथवा जागता हुआ रहे, वहां **से**=वह–**उदगं वा**=जलको **हिमं वा**=हिमको **महियं वा**=कुहरे-धूंअर-को **करगं वा**=ओलेको **हरतणुगं वा**=घास पर बूंद-बूंद पड़ा हुआ जलविशेषको **सुद्धोदगं वा**=आकाशसे गिरे हुए निर्मल जलको (और) **उदउल्लं वा**=जलसे भीगे हुए-गीले **कायं**=शरीरको **उदउल्लं वा वत्थं**=जलसे भीगे हुए वस्त्रको **ससिणिद्धं वा कायं**=कुछ-कुछ गीले शरीरको **ससिणिद्धं वा वत्थं**= कुछ-कुछ गीले वस्त्रको **न आमुसिज्जा**=जराभी स्पर्श न करे, **न संफुसिज्जा**= अधिक स्पर्श न करे, **न आवीलिज्जा**=पीडित न करे, **न पवीलिज्जा**=अधिक पीडित न करे, **न अक्खोडिज्जा**=स्फोटन न करे, **न पक्खोडिज्जा**=प्रस्फोटन न करे, **न आयाविज्जा**=तपावे नहीं, **न पयाविज्जा**=अधिक तपावे नहीं, **अन्नं**=

दूसरेसे न आमुसाविज्जा=जराभी स्पर्श न करावे, न संफुसाविज्जा=अधिक स्पर्श न करावे, न आवीलाविज्जा=पीडित न करावे, न पवीलाविज्जा=अधिक पीडित न करावे, न अक्खोडाविज्जा=स्फोटन न करावे, न पक्खोडाविज्जा=प्रस्फोटन न करावे, न आयाविज्जा=तपवावे नहीं, न पयाविज्जा=अधिक तपवावे नहीं, आमुसंतं वा=जराभी स्पर्श करनेवाले संफुसंतं वा=अधिक स्पर्श करनेवाले आवीलंतं वा=पीडित करनेवाले पवीलंतं वा=अधिक पीडित करनेवाले अक्खोडंतं वा=स्फोटन करनेवाले पक्खोडंतं वा=प्रस्फोटन करनेवाले आयावंतं वा=तपानेवाले पयावंतं वा=अधिक तपानेवाले अन्नं=दूसरेको न समणुजाणिज्जा=भला न समझे। जावज्जीवाए=जीवनपर्यन्त (इसको) तिविहं=कृत कारित अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेणं=तीन प्रकारके मणेणं=मनसे वायाए=वचनसे काएणं=कायसे न करेमि=न करूँगा, न कारवेमि=न कराऊँगा, करंतंपि=करते हुएभी अन्नं=दूसरेको न समणुजाणामि=भला नहीं समझूँगा। भंते !=हे भगवन् ! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरु साक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाणं=दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ ॥२॥१६॥

(२) अप्कायतना।

टीका—स भिक्षुर्वेत्यादि पूर्ववत्। उदकं=प्रसङ्गात्कूपादिजलम् भूगर्भोद्गत-स्रोतोजलमित्यर्थः, अवश्यायं=मेघमन्तरेण रात्रौ पतितं सूक्ष्मतुषाररूपमप्कायम्। हिमं=शीतर्त्तौ शीताधिक्येन घनीभूतमप्कायम्-'बर्फ' इति लोके प्रसिद्धम्। मिहिकां=हेमन्त-शिशिरयोः कदाचित्२ सान्द्रतया धूमवत्प्रतिभासमानस्वरूपां कुज्झटिकाम् 'धूँअर' इति लोकप्रसिद्धाम्। करकं=किरति=क्षरति पानीयमिति करकं=वर्षोपलम्। हरतनुम्=भूमिमुद्भिद्य तृणाङ्कुराद्युपरि विन्दुरूपेण स्थितमप्कायविशेषम्।

---

(२) अप्कायतना।

भिक्षु और भिक्षुकी आदि पदोंका अर्थ पहलेकी भाँति समझना चाहिए। कुएका पानी अर्थात् भूमिमें सोता (झरना)से निकलनेवाला जल, ओस, पाला, कुहरा (धूँअर), ओला (गड़ा), हरतनु (भूमिको भेद कर गेहूँ

---

(२) અપ્કાયયતના.

ભિક્ષુ અને ભિક્ષુકી આદિ શબ્દોનો અર્થ પહેલાંની પેઠે સમજવો. કૂવાનું પાણી અર્થાત્ ભૂમિમાંના સ્રોત (ઝરણ)થી નીકળતું જળ, ઓસ, ઠાર, ઝાકળ, કરા, હરતનુ (ભૂમિને ભેદીને ઘઉં આદિના અંકુરો ઉપર જામનારાં જલબિન્દુઓ), વરસાદનું નિર્મળ

शुद्धोदकम्=आकाशात्पतितं स्वभावनिर्मलं सलिलम् । तथा उदकार्द्रं=जलक्लिन्नं कायं वस्त्रं च। सस्निग्धम्=स्निग्धमिति भावक्तान्तम्, स्नेहः=स्निग्धत्वमिति तदर्थस्तेन सह वर्त्तमानं तत्=बिन्दुरहितमीषदार्द्रं काय वस्त्रं च, स्वयं न आमृशेत्=आ=ईषत् 'आङीषदर्थेऽभिव्याप्तौ सीमार्थे धातुयोगजे' इति कोशात्, मृशेत्=स्पृशेत्, न स्पर्शयुक्तं कुर्यादित्यर्थः। न संस्पृशेत्=न सं=प्रकर्षेण स्पृशेत्। नापीडयेत्, न प्रपीडयेत्। नाऽऽस्फोटयेत्, न प्रस्फोटयेत्। नाऽऽतापयेत्, न प्रतापयेत्। शेषं सुगमम्। एषु ('आमृशेत् संस्पृशेत्' इत्यादिषु) सर्वत्र धात्वर्थाऽविशेषेऽप्युपसर्ग(आ. सं. प्र.)-कृतवाच्यवैलक्षण्यान्न पौनरुक्त्यदोषावसर इति बोध्यम् ॥२॥१६॥

सम्प्रति तेजस्काययतनामाह-'से भिक्खू वा' इत्यादि ।

मूलम्-से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा; से अगणिं वा इंगालं वा मुम्मुरं वा अच्चिं वा जालं वा अलायं वा सुद्धागणिं वा उक्कं वा न उंजेज्जा न घट्टेज्जा न भिंदेज्जा न उज्जालेज्जा न पज्जालेज्जा न निव्वावेज्जा, अन्नं

आदिके अंकुरोंपर जमनेवाले जलबिन्दु), वर्षाका निर्मल जल, इन सबको, तथा जलसे बहुत गीला या थोड़ा गीला शरीर या वस्त्र, इन सबको स्वयं एक बार स्पर्श न करे, बार-बार स्पर्श न करे, वस्त्रको एकबार न निचोड़े, बार-बार न निचोड़े, न एकबार झटके, न बार-बार झटके, न एकबार धूपमें सुखावे, न बार-बार सुखावे, न ये सब क्रियाएँ दूसरेसे करावे, न करते हुएको भला जाने, शेष सुगम है॥२॥१६॥

अग्निकायकी यतना कहते हैं-'से भिक्खू वा०' इत्यादि।

જળ એ સર્વને, તથા જળથી બહુ લીલું અથવા થોડું લીલુ શરીર યા વસ્ત્ર, એ સર્વને સ્વયં એકવાર સ્પર્શ નહિ કરૂં, વારવાર સ્પર્શ નહિ કરૂં, વસ્ત્રને એકવાર નહિ નીચોવું, વારવાર નહિ નીચોવું, એકવાર નહિ ઝાટકું, વારવાર નહિ ઝાટકું, એકવાર તડકામાં નહિ સુકાવું, વારંવાર નહિ સુકાવું, નહિ એ બધી ક્રિયાઓ બીજા પાસે કરાવું, અને કરનારને નહિ ભલો જાણું. શેષ ભાગ સહેલો છે (૨) (૧૬)

અગ્નિકાયની યતના કહે છે-से भिक्खू वा० ઇત્યાદિ.

न उंजावेज्जा न घट्टावेज्जा न भिंदावेज्जा, न उज्जालावेज्जा न पज्जालावेज्जा न निव्वावेज्जा, अन्नं उंजंतं वा घट्टंतं वा भिंदंतं वा उज्जालंतं वा पज्जालंतं वा निव्वावंतं वा न समणुजाणिज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि! तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥३॥१७॥

छाया–स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा संयतविरतप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा दिवा वा रात्रौ वा एकको वा परिषद्गतो वा सुप्तो वा जाग्रद्वा, सः अग्निं वा अङ्गारं वा मुर्मुरं वा अर्चिर्वा ज्वालां वा अलातं वा शुद्धाग्निं वा उल्कां वा नोत्सिञ्चेत् न घट्टयेत् न भिन्द्यान्नोज्ज्वालयेन्न प्रज्वालयेन्न निर्वापयेद्, अन्येन नोत्सेचयेन्न घट्टयेन्न भेदयेन्नोज्ज्वालयेन्न प्रज्वालयेन्न निर्वापयेद्, अन्यमुत्सिञ्चन्तं वा घट्टयन्तं वा भिन्दन्तं वा उज्ज्वालयन्तं वा प्रज्वालयन्तं वा निर्वापयन्तं वा न समनुजानीयात्। यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि। तस्माद् भदन्त! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि ॥३॥१७॥

(३) तेजस्काययतना.

सान्वयार्थः—**संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे**=वर्तमानकालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, भूत-भविष्यत्कालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, वर्तमान कालमें भी स्थिति और अनुभागकी न्यूनता करके तथा पहले किये हुए अतिचारोंकी निन्दा करके सावद्य व्यापारके त्यागी, **से**=वह पूर्वोक्त **भिक्खू वा**=साधु **भिक्खुणी वा**=अथवा साध्वी; **दिया वा**=दिनमें **राओ वा**=अथवा रात्रिमें; **एगओ वा**=अकेला **परिसागओ वा**=अथवा संयम स्थित; **सुत्ते वा**=सोया हुआ **जागरमाणे वा**=अथवा जागता हुआ रहे, वहां **से**=वह **अगणिं वा**=अग्निको **इंगालं वा**=अंगारेको **मुम्मुरं वा**=मुर्मुर-भूभूदर-(तुषाग्नि)को **अच्चिं वा**=ज्योति-मूलाग्निसे विच्छिन्न ज्वालाको, **जालं वा**=मूलाग्निसे अविच्छिन्न जलती हुई ज्वालाको, **अलायं वा**=जिसका अग्रभाग जल रहा हो ऐसे काठको, **सुद्धागणिं वा**=शुद्ध अग्नि-लोहपिण्डमें संबद्ध अग्नि अथवा विजलीरूप अग्निको, **उक्कं वा**=चिनगारियोंको न **उंजेज्जा**=इंधन डालकर बढावे नहीं,

न घट्टेज्जा=चलावे, नहीं, न भिंदेज्जा= भेदे नहीं, न उज्जालेज्जा=थोडाभी जलावे नहीं, न पज्जालेज्जा=प्रज्वलित करे नहीं, न निव्वावेज्जा=बुझावे नहीं, अन्नं=दूसरेसे न उंजावेज्जा=बढवावे नहीं, न घट्टावेज्जा=चलवावे नहीं, न भिंदावेज्जा=भिदावे नहीं, न उज्जालावेज्जा=न जलवावे, न पज्जालावेज्जा=न प्रज्वलित करावे, न निव्वावेज्जा=न बुझवावे, उंजंतं वा=बढानेवाले घट्टंतं वा=चलानेवाले भिंदंतं वा=भेदनेवाले उज्जालंतं वा=जलानेवाले पज्जालंतं वा=प्रज्वलित करनेवाले निव्वावंतं वा=बुझानेवाले अन्नं=दूसरेको न समणुजाणिज्जा=भला न समझे। जावज्जीवाए=जीवनपर्यन्त (इसको) तिविहं=कृत-कारित-अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेणं=तीन प्रकारके मणेणं=मनसे वायाए=वचनसे काएणं=कायसे न करेमि=न करूँगा, न कारवेमि=न कराऊँगा, करंतंपि= करते हुएभी अन्नं=दूसरेको न समणुजाणामि=भला नहीं समझूँगा। भंते!=हे भगवन्! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरु साक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाणं=दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ ॥३॥१७॥

टीका-अग्निं=वह्निम्, अङ्गारं=निर्धूमज्वालं ज्वलदिन्धनम्, मुर्म्मुरं=प्रविरलस्फुलिङ्गसंमिश्रभस्मरूपं तुषानलं वा, 'मुर्मुरस्तु तुषानलः' इति वैजयन्तीकोशात्, अजालिण्डिकाग्निं वा, अर्चिः=मूलाग्निविच्छिन्नां ज्वालाम्, ज्वालां=दह्यमानतृणादिसम्बद्धाऽऽमूलोदूर्ध्वंप्रसारितेजोराशिम्, अलातं=ज्वलदग्रभागं काष्ठम्, शुद्धाग्निम्=अयःपिण्डानुसंबद्धं विद्युदादिरूपं वा, उल्कां=मूलवह्नेर्विच्छिद्य२ समन्तात्प्रसर्पदग्निकणात्मिकाम्, (चिनगारी, तडंगिया, इति भाषा) स्वयं न उत्सिञ्चेत्=न तत्रे-

(३) तेजस्काययतना।

अग्नि, अंगारा, भूभल (गर्म राख) बकरीकी लेंडीकी आग, मूलसे टूटी हुई ज्वाला, मूलसे अविच्छिन्न ज्वाला, लुआठा (जलती हुई लकडी), गर्म लोहेके गोलेकी या बिजलीकी अग्नि, अथवा चिनगारी

(૩) તેજસ્કાયયતના.

અગ્નિ, અંગારા, ગરમ રાખ, બકરીની લીંડીની આગ, મૂળથી તૂટેલી જ્વાળા, મૂળથી અવિચ્છિન્ન જ્વાલા, બળતાં લાકડાં, ગરમ લોખંડના ગોળાનો અથવા વિજળીનો અગ્નિ, અથવા ચીણગારી આદિમાં પોતે ઇંધન (બળતણ) નહિ

न्धनादिकं प्रक्षिपेत्, न घट्टयेत्=न सञ्चालयेत्, न भिन्द्यात्=दण्डेष्टकखण्डादिना न स्फोटयेत्, न उज्ज्वालयेत्=तालवृन्तादिना सकृदल्पं वा न ध्मापयेत्-न वर्धयेदित्यर्थः, न प्रज्वालयेत्=सततं बहुशो वा न प्रज्वलितं कुर्यात्, न निर्वापयेत्=न विध्यापयेत् न निर्वाणं नयेदित्यर्थः, अन्येन न उत्सेचयेदित्यादि सर्वं सुगमम् ।३।१७।

वायुकाययतनामाह-'से भिक्खू वा०' इत्यादि ।

मूलम्-से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते जागरमाणेवा; से सिएण वा विहुणेण वा तालिअंटेण वा पत्तेण वा पत्तभंगेण वा साहाए वा साहाभंगेण वा पिहुणेण वा पिहुणहत्थेणं वा चेलेण वा चेलकन्नेण वा हत्थेण वा मुहेण वा अप्पणो वा कायं वाहिरं वावि पुग्गलं न फुमेज्जा न वीएज्जा, अन्नं न फुमावेज्जा न वीआवेज्जा, अन्नं फुमंतं वा वीअंतं वा न समणुजाणिज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि, न कारवेमि,करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥४॥१८॥

छाया—स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा संयतविरतप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा दिवा वा रात्रौ वा एकको वा परिपद्गतो वा सुप्तो वा जाग्रद्वा, स सितेन वा विधू-

---

आदिमें स्वयं इन्धन न डाले, न संचालन करे (न संघटा करे), न दंड ईंट आदिसे उसे भेदे, न पंखा आदिसे एकवार प्रज्वलित करे, न वार-वार प्रज्वलित करे, न बुझावे। न ये सब क्रियाएँ दूसरेसे करावे, न करते हुएकी अनुमोदना करे, इत्यादि सब पूर्ववत् ॥३॥१७॥

वायुकायकी यतना कहते हैं-'से भिक्खू वा०' इत्यादि ।

નાંખે, નહિ સંચાલન કરે (નહિ સંઘટન કરે), નહિ દંડ કે ઈંટ આદિથી તેને ભેદે, નહિ પંખા વગેરેથી તેને એકવાર પ્રજ્વલિત કરે, નહિ વારંવાર પ્રજ્વલિત કરે, નહિ બુઝાવે, નહિ એ બધી ક્રિયાઓ બીજા પાસે કરાવે, કરનારની નહિ અનુમોદના કરે ઇત્યાદિ પૂર્વવત્ (૩) (૧૭)

વાયુકાયની યતના કહે છે-से भिक्खू वा० ઇત્યાદિ.

ननेन वा तालवृन्तेन वा पत्रेण वा पत्रभङ्गेन वा शाखया वा शाखाभङ्गेन वा पिहुनेन वा पिहुनहस्तेन वा चैलेन वा चैलकर्णेन वा हस्तेन वा मुखेन वा, आत्मनो वा कायं बाह्यं वाऽपि पुद्गलं न फूत्कुर्यात्, न वीजयेत्, अन्येन न फूत्कारयेन्न वीजयेद्, अन्यं फूत्कुर्वन्तं वा वीजयन्तं वा न समनुजानीयात्। यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि। तस्य भदन्त! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि ॥४॥१८॥

(४) वायुकाययतना.

सान्वयार्थः—संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे=वर्त्तमानकालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, भूत-भविष्यत्कालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, वर्त्तमान कालमें भी स्थिति और अनुभागकी न्यूनता करके तथा पहले किये हुए अतिचारोंकी निन्दा करके सावद्य व्यापारके त्यागी से=वह पूर्वोक्त भिक्खू वा=साधु भिक्खुणी वा=अथवा साध्वी दिया वा=दिनमें राओ वा=अथवा रात्रिमें एगओ वा=अकेला परिसागओ वा=अथवा संघमें स्थित सुत्ते वा=सोया हुआ जागरमाणे वा=अथवा जागता हुआ रहे, वहाँ से=वह सिएण वा=चामरसे, विहुणेणवा=पंखेसे, तालिअंटेण वा=ताडके पंखेसे, पत्तेण वा=पत्तेसे, पत्तभंगेण वा=बहुतसे पत्तोंसे, साहाए वा=शाखा-डाली-से, साहाभंगेण वा=शाखाके खण्डसे, पिहुणेण वा=मोरपीछीसे, पिहुणहत्थेण वा=मोरपीछियोंके समूहसे, चेलेण वा=कपडेसे, चेलकण्णेणवा=कपडेके छोर-पल्ले-से, हत्थेण वा=हाथसे, मुहेणवा=मुखसे, अप्पणो वा=अपने कायं=शरीरको, वा=अथवा बाहिरं वि पुग्गलं=बाहरी पुद्गलोंको भी न फुमेज्जा=फूंक न मारे, न वीएज्जा=चँवर आदिसे हवा न करे, अन्नं=दूसरेसे न फुमावेज्जा=फूंक न मारावे, न वीआवेज्जा=हवा न करावे, फुमंतं वा=फूंकनेवाले वीअंतं वा=हवा करनेवाले अन्नं=दूसरेको न समणुजाणिज्जा=भला न समझे। जावज्जीवाए=जीवनपर्यन्त (इसको) तिविहं=कृत कारित अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेणं=तीन प्रकारके मणेणं=मनसे वायाए=वचनसे काएणं=कायसे न करेमि=न करूँगा, न कारवेमि=न कराऊँगा, करतंपि=करते हुए भी अन्नं=दूसरेको न समणुजाणामि=भला नहीं समझूँगा। भंते!=हे भगवन्! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरुसाक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाणं=दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ ॥४॥१८॥

(४) वायुकाययतना।

टीका—सितेन=चामरेण श्वेतत्वगुणवत्त्वेनोपचारात्, विधूननेन=वीजनकेन, तालवृन्तेन=ताले=करतले= वृन्तं=बन्धनमस्येति, तालस्येव वृन्तमस्येति, ताड्यते= करादिनाऽऽहन्यत इति तालम्, उभयोरेकत्वस्मरणात्, तादृशं वृन्तं यस्येति वा तालवृन्तं=तालपत्रादिरचितं व्यजनं तेन, उपलक्षणमिदं विद्युद्व्यजनादीनामपि, पत्रेण=कमलिनीदलादिना, पत्रभङ्गेन=दलशकलेन, शाखया=वृक्षभुजया, शाखाभङ्गेन=तदेकदेशेन, पिहुनेन=बर्हिबर्हेण (मयूरपिच्छेन) पिहुनहस्तेन=पुञ्जीकृतमयूरपिच्छेन, चैलेन=वस्त्रेण, चैलकर्णेन=अञ्चलेन(वस्त्रप्रान्तेन) हस्तेन=करेण, मुखेन= वदनेन, आत्मनः=स्वस्य कायं=शरीरं बाह्यमपि पुद्गलम्=उष्णदुग्धादिकं वा स्वयं न फूत्कुर्यात्=न मुखेन धमेत्, न वीजयेत्=चामरादिना वातं न सञ्चालयेत्, अन्येन वा न फूत्कारयेत्, इत्याद्यन्यत्सुबोधम् ॥४॥१८॥

वनस्पतिकाययतनामाह—'से भिक्खू वा०' इत्यादि

---

(४) वायुकाययतना।

चाँवरसे, पंखेसे, ताड़के बने हुए पंखेसे अथवा अन्य बिजली आदिके किसी प्रकारके पंखेसे, कमल आदिके पत्तेसे, पत्तेके टुकड़ेसे, वृक्षकी शाखासे, शाखाके खण्डसे, मयूरके पिच्छसे, मयूरके बहुतसे पिच्छोंसे, वस्त्रसे, वस्त्रके पल्ले (छोर)से, हाथसे, मुखसे, अपने शरीरको तथा अन्य गरम दूध आदि पुद्गलोंको न स्वयं फूँके, न चाँवर आदिसे वींजे-वायुका संचालन करे, न दूसरेसे फूंकावे, न वींजावे, न फूँकते हुए तथा वींजते हुए अन्यको भला जाने, इत्यादि सुगम ही है ॥ ४ ॥ १८ ॥

वनस्पतिकायकी यतना कहते हैं—से भिक्खू वा०' इत्यादि।

---

(४) વાયુકાયયતના.

ચામરથી, પંખાથી, તાડના બનાવેલા પંખાથી, અથવા અન્ય વિજળી આદિના કોઈ પ્રકારના પંખાથી, કમળ આદિના પાંદડાથી, પાંદડાના ટુકડાથી, વૃક્ષની શાખાથી, શાખાના ખંડથી, મયૂરના પિચ્છથી, મયૂરના અનેક પીંછાથી, વસ્ત્રથી, વસ્ત્રના છેડાથી, હાથથી, મુખથી, પોતાના શરીરને, તથા બીજા ગરમ દૂધ આદિ પુદ્ગલોને નહિ સ્વયં ફૂંકે, નહિ ચામર આદિથી વીંઝે-વાયુનું સંચાલન કરે, નહિ બીજા પાસે ફુંકાવે, કે ફુંકનાર તથા વીંઝનાર અન્યને ભલો જાણે ઇત્યાદિ સરલ છે. (૪) (૧૮)

વનસ્પતિકાયની યતના કહે છે—સે भिक्खु वा० ઇત્યાદિ

मूलम्–से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा, से बीएसु वा बीयपइट्ठेसु वा रूढेसु वा रूढपइट्ठेसु वा जाएसु वा जायपइट्ठेसु वा हरिएसु वा हरियपइट्ठेसु वा छिन्नेसु वा छिन्नपइट्ठेसु वा सचित्तेसु वा सचित्तकोलपडिनिस्सिएसु वा न गच्छेज्जा न चिट्ठेज्जा न निसीइज्जा न तुयट्टिज्जा, अन्नं न गच्छाविज्जा न चिट्ठाविज्जा न निसीयाविज्जा न तुयट्टाविज्जा, अन्नं गच्छंतं वा चिट्ठंतं वा निसीयंतं वा तुयट्टंतं वा न समणुजाणिज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥५॥१९॥

छाया—स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा संयतविरतप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा दिवा वा रात्रौ वा एकको वा परिषद्गतो वा सुप्तो वा जाग्रद्वा, स बीजेषु वा बीजप्रतिष्ठितेषु वा रूढेषु वा रूढप्रतिष्ठितेषु वा जातेषु वा जातप्रतिष्ठितेषु वा हरितेषु वा हरितप्रतिष्ठितेषु वा छिन्नेषु वा छिन्नप्रतिष्ठितेषु वा सचित्तेषु वा सचित्तकोलप्रतिनिश्रितेषु वा न गच्छेन्नतिष्ठेन्न निषीदेन्न त्वग्वर्चयेत्, अन्यं न गमयेन्न स्थापयेन्न निषादयेन्न त्वग्वर्त्तयेत्, अन्यं गच्छन्तं वा तिष्ठन्तं वा निषीदन्तं वा त्वग्वर्त्तयन्तं वा न समनुजानीयात्। यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि। तस्य भदन्त! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि ॥५॥१९॥

(५) वनस्पतिकाययतना.

सान्वयार्थः—संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे=वर्त्तमानकालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, भूत-भविष्यत्कालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, वर्त्तमान कालमें भी स्थिति और अनुभागकी न्यूनता करके, तथा पहले किये हुए अतिचारोंकी निन्दा करके सावद्य व्यापारके त्यागी से=वह पूर्वोक्त भिक्खू वा=साधु भिक्खुणी वा=अथवा साध्वी दिया वा=दिनमें, राओ वा=अथवा

रात्रिमें, एगओ वा=अकेला परिसागओ वा=अथवा संघमें स्थित सुत्ते वा=सोया हुआ जागरमाणे वा=अथवा जागता हुआ रहे, वहाँ से=वह बीएसु वा=शालि आदि बीजोंपर, बीयपइट्ठेसु वा=बीजोंपर रखे हुए शयन आसन आदि पर, रूढेसु वा=अङ्कुरित वनस्पति पर, रूढपइट्ठेसु वा=अङ्कुरित वनस्पति पर रखे हुए शयन आसन आदि पर, जाएसु वा=पत्ते आनेकी अवस्थावाली वनस्पति पर, जायपइट्ठेसु वा=पत्ते आनेकी अवस्थावाली वनस्पति पर रखे हुए शयन आसन आदि पर, हरिएसु वा=हरित पर, हरियपइट्ठेसु वा=हरित पर रखे हुए शयन आसन आदि पर, छिन्नेसु वा=कटे हुए हरित पर छिन्नपइट्ठेसु वा=कटे हुए हरित पर रखे हुए आसन आदि पर, सचित्तेसु वा=फिर अन्य सचित्त अण्डा आदि सहित वनस्पति पर, सचित्तकोलपडिनिस्सिएसु वा=घुने हुए-सड़े काठ पर न गच्छेज्जा=गमन न करे, न चिट्ठेज्जा=न खड़ा होवे न निसीइज्जा=न बैठे, न तुअट्टिज्जा=न सोवे, अन्नं=दूसरेको न गच्छावेज्जा=न चलावे न चिट्ठावेज्जा=न खडा करे न निसीयावेज्जा=न बैठावे, न तुअट्टाविज्जा=न सुलावे, गच्छंतं वा=चलते हुए चिट्ठंतं वा=खड़े होते हुए निसीयंतं वा=बैठते हुए तुयट्टंतं वा=सोते हुए अन्नं=दूसरेको न समणुजाणेज्जा=भला न जाने। जावज्जीवाए=जीवनपर्यन्त (इसको) तिविहं=कृत कारित अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेणं=तीन प्रकारके मणेणं=मनसे वायाए=वचनसे काएणं=कायासे न करेमि=न करूँगा, न कारवेमि=न कराऊँगा, करंतंपि=करते हुएभी अन्नं=दूसरेको न समणुजाणामि=भला नहीं समझूँगा। भंते!=हे भगवन्! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरुसाक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाणं=दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ ॥५॥१९॥

(५) वनस्पतिकाययतना.

टीका—बीजेषु=शाल्यादिषु, बीजप्रतिष्ठितेषु=बीजोपरिस्थितेषु शयनाऽऽसनादिषु, एवमग्रेऽपि प्रतिष्ठितपदव्याख्या कार्या, रूढेषु=अङ्कुरितेषु, जातेषु=प्ररो-

(५) वनस्पतिकाययतना।

शालि आदि बीजों पर, बीजों पर रक्खे हुए शय्या आसन आदि पर, अंकुरों

(५) वनस्पतिकाययतना.

डांगर आदि बीजो पर, बीजो पर मूकेलां शय्या आसन आदि पर,

हणाऽनन्तरकालिकावस्थां सम्प्राप्तेषु पत्रितेष्वित्यर्थः, हरितेषु=कीरमयूरपक्षसच्छायतां गतेषु, छिन्नेषु=कुठारादिना संछिद्य पृथक्कृतेषु आर्द्रेषु, सचित्तेषु=अन्येष्वपि सजीवाण्डादिषु, सचित्तकोलप्रतिनिश्रितेषु=सचित्तैः=सचेतनैः, कोलैः=घुणैः प्रतिनिश्रितेषु=आश्रितेषु जीवद्घुणयुक्तकाष्ठादिष्वित्यर्थः, न गच्छेत्, न तिष्ठेत्, न निषीदेत्=नोपविशेत्, न त्वग्वर्तयेत्=वर्त्तनं वर्त्तः=परिवर्त्तनम् (भावे घञ्) त्वचः=त्वगिन्द्रियस्य शरीरस्येत्यर्थात् वर्त्तः त्वग्वर्त्तः=वामपार्श्वतः परावृत्त्य दक्षिणपार्श्वेन, दक्षिणपार्श्वतः परावृत्त्य वामपार्श्वेन वा स्वपनम्, त्वग्वर्त्तं करोति त्वग्वर्त्तयति, (त्वग्वर्त्तशब्दात् 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिचि टिलोपे धातुत्वाल्लडादयः) तस्य विधौ त्वग्वर्त्तयेत्=सुप्यादित्यर्थः ॥५॥१९॥

अथ त्रसकाययतनामाह-'से भिक्खू वा०' इत्यादि ।

पर अंकुरोंपर रक्खे हुए शयन आदि पर, अंकुर अवस्थाके पश्चात् पत्रित अवस्थाको प्राप्त वनस्पतिपर, अथवा उसपर रक्खे हुए शयन आदिपर, कटी हुई वनस्पतिपर, हरी वनस्पतिपर, तथा इनके सिवाय सजीव अंडा आदिपर, घुने (सुले) हुए काष्ठ आदिपर न स्वयं गमन करे, न खड़ा होवे, न बैठे, तथा बाँयाँ पसवाडा बदलकर दाहिने पसवाड़ेसे और न दाहिना पसवाड़ा बदलकर बायें पसवाड़ेसे सोवे अर्थात् पसवाड़ा न बदले, ये सब क्रियाएँ दूसरेसे भी न करावे, न करते हुएको भला जाने। इसलिए तीन करण तीन योगसे इनका त्याग करता हूँ, इत्यादि व्याख्यान पूर्ववत् ॥५॥१९॥

अब त्रसकायकी यतना कहते हैं-'से भिक्खू वा०' इत्यादि ।

અંકુરો પર, અંકુરો ઉપર મૂકેલા શયનાદિ પર, અંકુર અવસ્થા પછી પત્રિત અવસ્થાને પ્રાપ્ત થએલી વનસ્પતિ પર, અથવા તે પર મૂકેલાં શયનાદિ પર, કાપેલી વનસ્પતિ પર, લીલી વનસ્પતિ પર તથા એ ઉપરાંત સજીવ ઇંડાં આદિ પર, સળેલા કાષ્ઠ આદિ પર નહિ હું સ્વયં ગમન કરૂં, નહિ ઉભો રહું, નહિ બેસું, તથા ડાબું પડખું બદલીને જમણે પડખે અને જમણું પડખું બદલીને ડાબે પડખે નહિ સૂઉં અર્થાત્ પડખા નહિ બદલું, એ બધી ક્રિયાઓ બીજા પાસે નહિ કરાવું, નહિ કરનારને ભલો જાણું એ રીતે ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી એનો ત્યાગ કરૂં છું ઇત્યાદિ વ્યાખ્યાન પૂર્વવત્ (૫) (૧૯)

હવે ત્રસકાયની યતના કહે છે-से भिक्खू वा० ઇત્યાદિ

दण्डाग्राह्यत्वस्य भगवता स्पष्टं प्रतिपादितत्वात्, पीठके=काष्ठनिर्मितचतुरस्राद्या-सनविशेषे "चौकी, चौरंग' इति- भाषाप्रसिद्धे, फलके=शयनोपयोगिकाष्ठविर-चितपट्टादिरूपे, शय्यायां=शयनोपकरणरूपायां वसतौ वा, अस्या अपि धर्मोप-करणत्वात्, संस्तारके=संस्तार्यते=विस्तार्यते शयनार्थिभिरिति संस्तारः (सं+स्तृञः कर्मणि घञ्) स एव संस्तारकः=(स्वार्थिकः कः) अर्द्धतृतीयहस्त-प्रमाणस्तस्मिन्, दर्भादिनिर्मितास्तरणे इत्यर्थः। अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे=तत्सदृशे संयमोपयोगिनि उपकरणजाते=उपक्रियन्ते=उपयुज्यन्ते संयमादिदार्ढ्यकृते यानि तान्युपकरणानि-साधूनां संयमसाधनाङ्गीभूतोपकारकवस्त्रपात्रादीनि तेषां जातं=समूहस्तस्मिन् उपकरणमात्रे इत्यर्थः, समापतितं कीटादिकत्रसजीवम्, ततः=तस्मात् हस्तादेः स्थानात् संयत एव=सम्यग् यतमान एव 'संजयामेव' इति मूलपाठे आर्षत्वाद्दीर्घो मकारश्च, प्रतिलेख्य२=प्रत्यवेक्ष्य२ सम्यगवलोक्येत्यर्थः, प्रमृज्य२=पौनःपुन्येन प्रमार्जनिकादिद्वारा निस्सार्य एकान्ते=निरुपद्रवस्थाने अप-नयेत्=नीत्वा स्थापयेत् किन्तु संघातम्=एकत्र पुञ्जीकरणेन पीडाजनकपरस्परशरीर-संघर्षकारणदृढसंयोगं सामान्येन सम्मेलनं वा नो=नैव आपादयेत्=संप्रापयेत् 'ण'-मिति वाक्यालङ्कारे। 'संघातो दृढसंयोगः' इति वाचस्पत्यम्। यत्तु केचित्-

---

कल्पनीय है" ऐसा कहा है, अन्यको दण्ड धारण करना मना है। अत एव उनके द्वारा गृहीत दण्ड पर तथा चौकी पाटा (पट्ट) शय्या अर्थात् उपाश्रय, क्योंकि यह भी एक धर्मोपकरण है, संस्तारक अर्थात् दर्भ आदिका बिछौना, तथा संयममें उपयोगी इस प्रकारका अन्य कोई उपकरण, इन सबमें कीट आदि त्रस जन्तु हों तो उन्हें संयमी स्वयं सम्यक् प्रकार प्रतिलेखन करके बार-बार पूँजनी आदिसे पूँजकर बाधा-रहित एकान्त स्थानमें यतनासे रक्खें, किन्तु उन्हें इकट्ठा करके न रक्खें, क्योंकि ऐसा करनेसे उनको पीडा होनेकी संभावना है। कितनेक

અન્યને દંડ ધારણની મનાઈ છે, એટલે એમણે ધારણ કરેલા દંડ પર, તથા ચોકી, પાટ, શય્યા અર્થાત્ ઉપાશ્રય, કારણ કે એ પણ એક ધર્મોપકરણ છે સંસ્તારક અર્થાત્ દર્ભ આદિનું બિછાનું, તથા સંયમમાં ઉપયોગી એ પ્રકારના અન્ય કોઈ ઉપકરણો, એ સર્વમાં કીડી-કીડા આદિ ત્રસ જંતુ હોય તો તેને સંયમી સ્વયં સમ્યક્ પ્રકારે પ્રતિલેખન કરીને વારવાર પૂંજણી આદિથી પૂંજીને બાધારહિત એકાન્ત સ્થાનમા યતનાથી મૂકે, પરન્તુ એને એકઠાં કરીને ન રાખે, કારણ કે એમ કરવાથી તેમને પીડા થવાની સંભાવના રહે છે કેટલાકો કહે છે કે રક્ષાને

एकान्तप्रदेशे रक्षार्थं त्रसजीवानां स्थापने साधूनामसंयतिवैयावृत्त्यदोषेण महाव्रतभङ्गो भवतीत्याहुस्तदेतद्भगवदाज्ञाविरुद्धम्, अनेनापि सूत्रेण धर्मोपकरणस्थानां त्रसजीवानां निरुपद्रवप्रदेशे रक्षार्थं यतनया स्थापनविधानात् ।६। ॥२०॥

इत्येवं पट्काययतनामभिधाय सम्प्रति तदपरिपालनपरिणामदारुणत्वं वर्ण्यते-'अजयं चरमाणो' इत्यादि ।

मूलम्-अजयं[1] चरमाणो[2] य[5], पाणभूयाइं[3] हिंसइ[4] ।
बंधई[8] पावयं[6] कम्मं[7], तं[9] से[10] होइ[13] कडुयं[12] फलं[11] ॥१॥

छाया-अयतं चरंश्च, प्राणभूतानि हिनस्ति ।
बध्नाति पापकं कर्म, तत्तस्य भवति कटुकं फलम् ॥१॥

यतना न पालन करने का बुरा फल कहते हैं-

सान्वयार्थः-अजयं=अयतनापूर्वक चरमाणो=गमन करता हुआ साधु पाणभूयाइं=त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसइ=हिंसा करता है य=और पावयं कम्मं=पापकर्मको बंधई=बांधता है, तं=उस कारण से=उस पाप कर्मका फलं=फल कडुयं=दुःखदायी होइ=होता है ॥१॥

कहते हैं कि-रक्षाके लिए त्रस जीवको एकान्त स्थानमें रखनेमें साधुको असंयतिकी वेयावच करनेरूप दोष लगता है और उससे महाव्रतका भंग होता है। यह उनका कहना भगवानकी आज्ञासे विरुद्ध है, क्योंकि इस सूत्रसे भगवानने स्पष्ट विधान किया है कि धर्मोपकरणमें स्थित त्रस जीवोंको रक्षाके लिए निरुपद्रव स्थानमें यतनासे रखना चाहिये ॥ ६ ॥ २० ॥

इस प्रकार षट्कायकी यतना कहकर "उसकी रक्षा नहीं करनेसे भयङ्कर परिणाम होता है" इस बातका उपदेश देते हैं-'अजयं चरमाणो' इत्यादि ।

માટે ત્રસ જીવને એકાંત સ્થાનમાં રાખવામા સાધુને અસયતિની વૈયાવચ્ચ કરવા રૂપ દોષ લાગે છે અને તેથી મહાવ્રતનો ભંગ થાય છે એમનું એવું કથન ભગવાનની આજ્ઞાથી વિરૂદ્ધ છે, કારણ કે આ સૂત્રથી ભગવાને સ્પષ્ટ વિધાન કર્યું છે કે ધર્મોપકરણમાં સ્થિત ત્રસ જીવોની રક્ષાને માટે નિરૂપદ્રવ સ્થાનમાં યતનાથી તેમને મૂકવા જોઇએ (૬) (૨૦)

એ રીતે ષટ્કાયની યતના કહીને 'એમની રક્ષા નહિ કરવાથી ભયંકર પરિણામ આવે છે, એ વાતનો ઉપદેશ આપે છે-अजयं चरमाणो ઇત્યાદિ.

टीका—अयतं=यतनारहितं यथास्यात्तथा चरन्=गच्छन् 'संयतः' इति शेषः, प्राणभूतानि=प्राणन्तीति प्राणाः=उच्छ्वासादिमन्तो द्वीन्द्रियप्रभृतयो जीवाः, भूतानि=भवनशीला एकेन्द्रियाः पृथिव्यादयः, प्राणाश्च भूतानि चेति प्राणभूतानि (द्वन्द्वत्वात्परवल्लिङ्गता) तानि=त्रसस्थावराणीत्यर्थः, हिनस्ति=हन्ति, च=तथा पापकं=पं=पङ्किलमर्थान्मलिनं भावमापयति=प्रापयतीति, पं=क्षेमम् आ=समन्तात् पिबति=नाशयतीति, पानं—पास्तमर्थात्प्राणिनामात्मानन्दरसपानम् आप्नोति= प्राप्नोति=गृह्णातीति, नरकादिकुगतिषु जीवान् पातयतीति, कर्मरजोभिरात्मानं पांशयति[1]=मलिनयतीति वा पापं तदेव पापकं=(कुत्सायां कन्) ज्ञानावरणीयादि, कर्म=तत्सम्बन्ध्यतिसूक्ष्मपुद्गलसञ्चयं बध्नाति=उपार्जयति, तत्=तेन हेतुना, तस्य= पापकर्मणः, फलं=परिणतिः कटुकं=दुःखदम्, यद्वा 'कटुकफल'-मिति च्छाया,

१ पांशयति=पांशुधूलिः, 'पांशुर्ना न द्वयो रजः' इत्यमरः, सोऽस्यास्तीति पांशुमान्, पांशुमन्तं करोति पांशयति 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिचीष्ठवद्भावात् 'विन्मतोर्लुग्' इति मतुपो लुक्' ततष्टिलोपः ।

यतनारहित गमन करनेवाला संयत (साधु) द्वीन्द्रिय आदि प्राणोंकी तथा एकेन्द्रिय पृथिवीकाय आदि भूतोंकी अर्थात् त्रस और स्थावर जीवोंकी हिंसा करता है, और ज्ञानावरणीयादि पापकर्मका उपार्जन करता है। पाप (१) मलिनताको प्राप्त कराता है, (२) नरक आदि अधोगतिमें पहुँचाता है, (३) आत्माके हितका नाश करता है, (४) प्राणियोंके आत्मिक आनन्द रसको सुखा डालता है, (५) आत्माको कर्मरूपी रजसे मलिन कर देता है, इसलिए उसे पाप कहते हैं। अर्थात् अयतनापूर्वक प्रवृत्ति करनेसे जीवोंकी हिंसा होती है,और ज्ञानावरणीय आदि अशुभ कर्मोंका बन्ध भी होता है, और उस पापकर्मका परिणाम दुःखदायी

યતનારહિતપણે ગમન કરનાર સંયત (સાધુ) દ્વીન્દ્રિય આદિ પ્રાણોની તથા એકેન્દ્રિય પૃથિવીકાય આદિ ભૂતોની અર્થાત્ ત્રસ અને સ્થાવર જીવોની હિંસા કરે છે અને જ્ઞાનાવરણીયાદિ પાપકર્મનું ઉપાર્જન કરે છે પાપ-(૧) મલિનતાને પ્રાપ્ત કરાવે છે, (૨) નરક આદિ અધોગતિમા પહોચાડે છે, (૩) આત્માના હિતનો નાશ કરે છે, (૪) પ્રાણીઓના આત્મિક આનંદ રસને સુકાવી નાખે છે (૫) આત્માને કર્મરૂપી રજથી મલિન કરી નાખે છે, તેથી તેને પાપ કહે છે અર્થાત્ અયતનાપૂર્વક પ્રવૃત્તિ કરવાથી જીવોની હિંસા થાય છે, અને જ્ઞાનાવરણીય આદિ અશુભ કર્મોનો બંધ પણ ઉત્પન્ન થાય છે એ પાપકર્મનું પરિણામ દુઃખ-

तत्=पापकर्म तस्य=अयतनया गच्छतः कटुकफलं=कटुकम् अनिष्टं फलं=परिणामो यस्य तत् अशुभफलप्रदमित्यर्थः, भवति=जायते । अत्र पक्षे 'कटुक'-मित्यत्रानुस्वार आर्षत्वात् ॥१॥

मूलम्-अजयं चिट्ठमाणो य पाणभूयाइं हिंसइ ।
बंधई पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥ २ ॥

छाया—अयतं तिष्ठंश्च, प्राणभूतानि हिनस्ति ।
बध्नाति पापकं कर्म, तत्तस्य भवति कटुकं फलम् ॥२॥

सान्वयार्थः-अजयं=अयतनापूर्वक चिट्ठमाणो=खड़ा होता हुआ साधु पाणभूयाइं=त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसइ=हिंसा करता है य=और पावयं कम्मं=पाप कर्मको बंधई=बांधता है, तं=उस कारण से=उस पापकर्म का फलं=फल कडुयं=दुःखदायी होइ=होता है ॥२॥

टीका—'अजयं चिट्ठमाणो' इत्यादि । अयतं=यतनारहितं तिष्ठन्=करचरणादिप्रसारणेनाऽनवहितं दण्डवदूर्ध्वावस्थानं कुर्वन् । शेषं प्राग्वद्व्याख्येयम् ॥२॥

मूलम्-अजयं आसमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ ।
बंधई पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥ ३ ॥

छाया—अयतमासीनश्च, प्राणभूतानि हिनस्ति ।
बध्नाति पापकं कर्म, तत्तस्य भवति कटुकं फलम् ॥३॥

सान्वयार्थः-अजयं=अयतना-पूर्वक आसमाणो=बैठता हुआ साधु पाणभूयाइं=त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसइ=हिंसा करता है, य=और पावयं कम्मं=पापकर्मको बंधई=बांधता है, तं=उस कारण से=उस पापकर्म का फलं=फल कडुयं=दुःखदायी होइ=होता है ॥३॥

होता है, तथा उसका कडुआ फल भोगना पड़ता है ॥१॥

'अजयं चिट्ठमाणो' इत्यादि । अयतनापूर्वक खड़ा होनेसे पापकर्म बंधता है और उसका कडुआ फल होता है ॥२॥

હાથી આવે છે, તથા એનાં કડવાં ફળ ભોગવવાં પડે છે (૧)

अजयं चिट्ठमाणो ઇત્યાદિ. અયતનાપૂર્વક ઊભા રહેવાવાથી પાપકર્મ બંધાય છે અને તેનાં કડવાં ફળ આવે છે. (૨)

टीका—'अजयं आसमाणो' इत्यादि । अयतमासीनः=प्रमार्जनं विनाऽनुपयुक्तोऽनवहित उपविशन्नित्यर्थः । शेषं पूर्ववत् ॥३॥

१ २ ५ ३ ४
मूलम्—अजयं सयमाणो य पाणभूयाइं हिंसइ ।
८ ६ ७ ९ १० १३ १२ ११
बंधई पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥ ४ ॥

छाया—अयतं स्वपंश्च, प्राणभूतानि हिनस्ति ।
बध्नाति पापकं कर्म, तत्तस्य भवति कटुकं फलम् ॥४॥

सान्वयार्थः—अजयं=अयतना-पूर्वक सयमाणो=सोता हुआ साधु पाणभूयाइं=त्रस-स्थावर जीवोंकी हिंसइ=हिंसा करता है, य=और पावयं कम्मं=पापकर्मको बंधई=बांधता है, तं=उस कारण उस पापकर्म का फलं=फल कडुयं=दुःखदायी होइ=होता है ॥४॥

टीका—'अजयं सयमाणो' इत्यादि । अयतं स्वपन्=शय्याप्रमार्जनादिकं विना प्रकामशय्यादिना दिवसे वा शयानः । शेषं पूर्ववत् ॥४॥

१ २ ५ ३ ४
मूलम्—अजयं भुंजमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ ।
८ ६ ७ ९ १० १३ १२ ११
बंधई पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥ ५ ॥

छाया—अयतं भुञ्जानश्च, प्राणभूतानि हिनस्ति ।
बध्नाति पापकं कर्म, तत्तस्य भवति कटुकं फलम् ॥५॥

सान्वयार्थः—अजयं=अयतना-पूर्वक भुंजमाणो=खाता हुआ साधु पाणभूयाइं=त्रस-स्थावर जीवोंकी हिंसइ=हिंसा करता है, य=और पावय कम्मं=पाप-

---

'अजयं आसमाणो' इत्यादि । भूमि आदिकी विना प्रमार्जना किये ही अयतनापूर्वक बैठनेसे पापकर्म बंधता है और उसका कडुआ फल होता है ॥ ३ ॥

'अजयं सयमाणो' इत्यादि । अयतनासे अर्थात् शय्याकी प्रमार्जना न करके शयन करनेसे पापकर्म बंधता है और उसका कडुआ फल होता है ॥ ४ ॥

अजय आससाणो ઇત્યાદિ ભૂમિ આદિની પ્રમાર્જના કર્યા વિના અયતના-પૂર્વક બેસવાથી પાપકર્મ બંધાય છે, અને તેના કડવા ફળ મળે છે (૩)

अजयं सयमाणो ઇત્યાદિ. અયતનાથી અર્થાત્ શય્યાની પ્રમાર્જના કર્યા વિના શયન કરવાથી પાપકર્મ બંધાય છે અને એના કડવા ફળ મળે છે (૪)

कर्मको बंधई=बांधता है, तं=उस कारण से=उस पापकर्मका फलं=फल कडुयं=दुःखदायी होइ=होता है ॥५॥

टीका—'अजयं भुंजमाणो' इत्यादि। अयतं भुञ्जानः=यथाकल्पलब्धान्त-प्रान्ताद्याहारं संयोजनादिमण्डलदोषापरिहारेण चपड-चपड़-शब्दपूर्वकमभ्यवहरन्। अन्यत् सुबोधम् ॥५॥

मूलम्-अजयं भासमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ।
बंधई पावयं कम्मं, तं से होइ कडुअं फलं ॥६॥

छाया—अयतं भाषमाणश्च, प्राणभूतानि हिनस्ति।
बध्नाति पापकं कर्म, तत्तस्य भवति कटुकं फलम् ॥६॥

सान्वयार्थः-अजयं=अयतना-पूर्वक भासमाणो=बोलता हुआ साधु पाण-भूयाइं=त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसइ=हिंसा करता है, य=और पावयं कम्मं=पापकर्मको बंधई=बांधता है, तं=उस कारण से=उस पापकर्मके फलं=फल कडुयं=दुःखदायी होइ=होता है ॥६॥

टीका—'अजयं भासमाणो' इत्यादि। अयतं भाषमाणः=अयतनया ब्रुवन्।

'अजयं भुंजमाणो' इत्यादि। साधुके कल्पके अनुसार प्राप्त हुए आहारका संयोजना आदि मण्डल दोषोंका परित्याग न करके 'चपड़-चपड़' आदि शब्द करते हुए भोजन करनेसे पापकर्म बंधता है और उसका फल कडुआ होता है ॥५॥

'अजयं भासमाणो' इत्यादि। अयतनापूर्वक भाषण करनेसे हिंसा होती है और पापकर्मका बंध होता है। उस पापकर्मका फल कडुआ होता है।

अजयं भुंजमाणो ઇત્યાદિ સાધુના કલ્પને અનુસાર પ્રાપ્ત થએલા આહારના સંયોજના આદિ મંડલ દોષોનો પરિત્યાગ કર્યા વિના 'ચપડ-ચપડ' અવાજ કરતાં ભોજન કરવાથી પાપકર્મ બંધાય છે અને તેનાં કડવા ફળ આવે છે (૫)

अजयं भासमाणो ઇત્યાદિ અયતનાપૂર્વક ભાષણ કરવાથી હિંસા થાય છે. અને પાપકર્મ બંધાય છે એ પાપકર્મનાં ફળ કડવા આવે છે

ननु यतनापूर्वकभाषणार्थमेव मुनिर्मुखवस्त्रिकां बध्नातीति तं प्रति पुनरयं विधिर्व्यर्थ एवेति चेन्न, यथाविधिनिबद्धमुखवस्त्रिकस्यापि मुनेरनृतकर्कशादिसावद्य-भाषणेऽनावृतमुखेन भाषणवदयतना भवतीति सर्वथा भाषासमितिसमाराधनाऽवधानमाधातुमस्योपदेशस्य सार्थक्यात् । शेषं पूर्ववद्व्याख्येयम् ॥६॥

मूलम्-कहं[1] चरे[2] कहं[3] चिट्ठे[4], कहमासे[5] कहं[6] सए[7] ।[8]

कहं[9] भुंजंतो[10] भासंतो[11], पावकम्मं[12] न[13] बंधई[14] ॥ ७ ॥

छाया—कथं चरेत् कथं तिष्ठेत्, कथमासीत कथं शयीत ।

कथं भुञ्जानो भाषमाणः, पापकर्म न बध्नाति ॥७॥

सान्वयार्थः-शिष्य पूछता है-(अगर ऐसा है तो हे गुरु महाराज!) कहं=कैसे चरे=गमन करे?, कहं=कैसे चिट्ठे=खड़ा हो?, कहं=कैसे आसे=बैठे?, कहं=कैसे सए=सोवे?, कहं=किस प्रकार भुंजंतो=आहार करता हुआ (तथा) भासंतो=बोलता हुआ पावकम्मं=पापकर्म न बंधई=नहीं बांधता है ॥७॥

प्रश्न-हे गुरुमहाराज! अयतनाको दूर करनेके लिए ही मुखवस्त्रिका मुख पर बाँधी जाती है, फिर उनके प्रति 'अजयं भासमाणो य' ऐसा उपदेश देना कैसे संगत है?।

उत्तर-हे शिष्य! सुनो; मुख पर मुखवस्त्रिका सदा बाँधी रहने पर भी असत्य कर्कश कठोर आदि बोलनेसे तथा सावद्य उपदेश देनेसे उसी प्रकार अयतना होती है जिस प्रकार खुले मुख बोलनेसे होती है। साधुको भाषासंबधी सब प्रकारकी अयतनाका त्याग करना चाहिए इसलिए यह अयतनाके त्यागका उपदेश दिया गया है ॥६॥

પ્રશ્ન-હે ગુરૂ મહારાજ! અયતનાને દૂર કરવાને માટે જ મુખવસ્ત્રિકા મુખ પર બાંધવામાં આવે છે, પછી તેમની પ્રત્યે 'अजयं भासमाणो य' એવો ઉપદેશ આપવો કેવી રીતે સંગત છે?

ઉત્તર-હે શિષ્ય! મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા સદા બાંધી રહેવા છતાં પણ અસત્ય કર્કશ કઠોર આદિ બોલવાથી તથા સાવદ્ય ઉપદેશ આપવાથી એવા પ્રકારની અયતના થાય છે કે જેવા પ્રકારની અયતના ઉઘાડે મ્હોંએ બોલવાથી થાય છે સાધુએ ભાષાસંબંધી સર્વ પ્રકારની અયતનાનો ત્યાગ કરવો જોઇએ, તેથી આ અયતનાના ત્યાગનો ઉપદેશ આપવામાં આવ્યો છે. (૬)

शिष्यः पृच्छति-'कहं चरे' इत्यादि ।

टीका—हे भगवन् ! यद्येवं तर्हि संयतः कथं=केन प्रकारेण चरेत्=विहरेत् ?, कथं=केन प्रकारेण तिष्ठेत्=स्थितो भवेत् ?, कथं=केन रूपेण आसीत=उपविशेत् ?, कथं शयीत=स्वप्यात् ?, कथं वा भुञ्जानः=अभ्यवहरमाणः, भाषमाणश्च पापकर्म= व्याख्यातपूर्वं न बध्नाति ? ॥७॥

गुरुरुत्तरयति-'जयं चरे' इत्यादि ।

मूलम्-जयं(१) चरे(२) जयं(३) चिट्ठे(४), जयमासे(५) जयं(६) सए(७)(८) ।

जयं(९) भुंजंतो(१०) भासंतो(११), पावकम्मं(१२) न(१३) बंधई(१४) ॥८॥

छाया—यतं चरेद् यतं तिष्ठेद्, यतमासीत यतं शयीत ।

यतं भुञ्जानो भाषमाणः, पापकर्म न बध्नाति ॥८॥

सान्वयार्थः-गुरु महाराज उत्तर देते हैं-जयं=यतनापूर्वक चरे=गमन करे जयं=यतनापूर्वक चिट्ठे=खड़ा होवे जयं=यतनापूर्वक आसे=बैठे जयं=यतनापूर्वक सए=सोवे (और) जयं=यतनापूर्वक भुंजंतो=खाता हुआ तथा भासंतो= बोलता हुआ पावं कम्मं=पापकर्म न बंधई=नहीं बांधता है ॥८॥

टीका-यतम्=ईर्यादिसमितिसमन्वितं यथा तथा चरेत्=विहरेत्, यतं तिष्ठेत्=

शिष्य पूछता है-'कहं चरे०' इत्यादि ।

हे भगवन् ! यदि ऐसा है तो मुनि कैसे चले ? कैसे खड़ा रहे ? कैसे बैठे ? कैसे शयन करे ? कैसे आहार करे ? और कैसे बोले ? जिससे पापकर्म न बंधने पावे ॥७॥

गुरु महाराज उत्तर देते हैं-'जयं चरे०' इत्यादि ।

हे शिष्य ! संयत ईर्यासमितियुक्त होकर चले, यतनासे खड़ा रहे,

શિષ્ય પૂછે છે-कहं चरे० ઇત્યાદિ

હે ભગવન્ ! જો એમ છે તો મુનિ કેવી રીતે ચાલે ? કેવી રીતે ઉભો રહે ? કેવી રીતે બેસે ? કેવી રીતે સૂએ ? કેવી રીતે આહાર કરે ? અને કેવી રીતે બોલે ? કે જેથી પાપ કર્મ બંધાવા ન પામે ? (૭)

ગુરૂ મહારાજ ઉત્તર આપે છે-'जयं चरे०' ઇત્યાદિ

હે શિષ્ય ! સયત ઈર્યાસમિતિયુકત થઈને ચાલે, યતનાથી ઉભો રહે,

करचरणादिकमविक्षिपन् समवहितो दण्डावस्थितिं विदध्यात्, यतमासीत= यतनया—हस्तपादाद्याकुञ्चनप्रसारणादिकमकुर्वन् सोपयोगमुपविशेत्—दृढासनादिना स्थिरः सन्नावश्यककार्यमन्तरेण नेतस्ततो भ्राम्येदित्यर्थः, यतं शयीत=प्रकाम-शयनीयादिपरिहारेण स्वप्यात्, यतं भुञ्जानः=यथाकल्पमाप्ताहारं संयोज-नादिमण्डलदोषवर्जनपुरस्सरं 'चपड़-चपड़' इतिशब्दमकुर्वाणोऽभ्यवहरमाणः, यतं भाषमाणः=निवद्धमुखवस्त्रिकः सन् हितमितमृद्वादिनिरवद्यभाषयाऽवसरे समाल-पन् पापकर्म न बध्नाति=न बध्नीयात् ॥८॥

किञ्च—'सव्वभूय०' इत्यादि ।

मूलम्—सव्वभूयप्पभूयस्स, सम्मं भूयाइं पासओ ।
पिहिआसवस्स दंतस्स, पावकम्मं न बंधई ॥९॥

अर्थात् हाथ-पैर न हिलाता हुआ सावधान होकर दंडकी तरह खड़ा रहे, यतनासे बैठे अर्थात् वृथा हाथ पैर न हिलावे, उपयोग-सहित दृढासन आदिसे बैठे, विना कार्यके इधर उधर न हिले, यतनासे शयन करे अर्थात् प्रकाम शय्याका परिहार करता हुआ सोवे, यतनासे आहार करे अर्थात् जैसा निरवद्य आहार मिल जाय उसीमें सन्तुष्ट रहे और 'चपड़-चपड़' आदि शब्द न करते हुए भोजन करे, न भोजनमें राग-द्वेष करे। यतनासे भाषण करे अर्थात् हित मित मधुर और निरवद्य भाषा बोले, खुले मुंह न बोले, तथा कर्कश कठोर शब्दोंका उच्चारण न करे और निष्प्रयोजन न बोले । ऐसा करनेसे पापकर्म नहीं बंधता है ॥८॥

और—'सव्वभूय०' इत्यादि ।

અર્થાત્ હાથ-પગ ન હલાવે ને દંડની જેમ ઉભો રહે યતનાથી બેસે અર્થાત્ વૃથા હાથ-પગ ન હલાવે, ઉપયોગ સહિત દૃઢાસન આદિથી બેસે, કાર્ય વિના આમ-તેમ હલે નહિ, યતનાથી શયન કરે, યતનાથી આહાર કરે, અર્થાત્ જે નિરવદ્ય આહાર મળી જાય તેમા જ સંતુષ્ટ રહે અને 'ચપડ-ચપડ' અવાજ કર્યા વિના ભોજન કરે, ભોજનમા રાગ-દ્વેષ ન કરે યતનાથી ભાષણ કરે અર્થાત્ હિત મિત મધુર અને નિરવદ્ય ભાષા બોલે, ખુલ્લે મોઢે બોલે નહિ. એમ કરવાથી પાપકર્મ બંધાતુ નથી (૮)

અને—સવ્વભૂય૦ ઇત્યાદિ

छाया—सर्वभूतात्मभूतस्य, सम्यग् भूतानि पश्यतः ।
पिहितास्रवस्य दान्तस्य, पापकर्म न बध्यते ॥९॥

सान्वयार्थः-सव्वभूयप्पभूयस्स=सब प्राणियोंको अपने समान समझनेवाले सम्मं=सम्यक् प्रकार-आगमानुसार भूयाइं=जीवोंको पासओ=देखने-समझनेवाले पिहिआसवस्स=आस्रवको रोकनेवाले दंतस्स=जितेन्द्रिय साधुके पावकम्मं=पापकर्म न बंधई=नहीं बंधता है ॥९॥

टीका—सर्वभूतात्मभूतस्य=सर्वाणि च तानि भूतानि सर्वभूतानि=एकेन्द्रियादारभ्य पञ्चेन्द्रियपर्यन्तं सर्वे जीवास्तेषु आत्मभूतः=आत्मसदृशः, जीव आत्मानं रक्षितुं यथा प्रयतते तथा यथाविधिसकलजीवरक्षासावधान इत्यर्थः, तस्य, भूतानि सम्यक्=प्रवचनप्रतिपादितस्वरूपेण पश्यतः=प्रेक्षमाणस्य निखिलप्राणिगणस्वरूपं याथातथ्येन पर्यालोचयत इत्यर्थः । पिहितास्रवस्य=पिहिताः=आच्छादिता आस्रवाः=कर्मागमहेतवो येन स पिहितास्रवः=प्रतिरुद्धकर्मद्वारस्तस्य, दान्तस्य=दमयति-वशं नयति इन्द्रियाऽश्वानिति दान्तः=जितेन्द्रियस्तस्य पापकर्म न बध्यते=तस्य पापलेपो न जायत इत्यर्थः ॥९॥

ननु क्रिययैव पापकर्मावरोधश्चेत्तर्हि तदर्थमेव यतनीयं कृतं ज्ञानेनेति चेदत्रोच्यते—

नहि ज्ञानमन्तरेण क्रिया कदाचिदपि फलाय कल्पते प्रत्युतोन्मत्तक्रियावदनर्था-

---

समस्त प्राणियोंमें आत्मतुल्य बुद्धि रखनेवाले, तथा आगमके अनुसार जीवोंका स्वरूप समझनेवालेको, कर्मोंके आगमनके कारण (आस्रव)का निरोध करनेवालेको पापकर्मका बंध नहीं होता है ॥९॥

प्रश्न–हे गुरुमहाराज ! यदि केवल क्रियासे पापकर्मोंका निरोध हो जाता है तो क्रिया ही करनी चाहिए, ज्ञानकी क्या आवश्यकता है ?

उत्तर–हे शिष्य ! ज्ञानके विना क्रियाका कुछ फल नहीं होता,

બધાં પ્રાણીઓમા આત્મતુલ્ય બુદ્ધિ રાખનારા, અને આગમને અનુસાર જીવોનુ સ્વરૂપ સમજનારાને, કર્મોના આગમનના કારણો (આસ્રવો) નો નિરોધ કરનારાઓને પાપકર્મનું બંધન થતું નથી. (૯)

પ્રશ્ન—હે ગુરૂ મહારાજ ! જો કેવળ ક્રિયાથી પાપકર્મોનો નિરોધ થઇ જાય છે તો ક્રિયા જ કરવી જોઈએ, જ્ઞાનની શી આવશ્યકતા છે ?

ઉત્તર—હે શિષ્ય ! જ્ઞાન વિના ક્રિયાનુ કશુ ફળ હોતું નથી જ્ઞાનરહિત

नुबन्धिनी स्यादिति ज्ञानविरहितकेवलक्रियाप्रवृत्तिर्लोकानां मा स्म भूदतो ज्ञानस्य क्रियापेक्षया प्राथम्यं दर्शयति-'पढमं नाणं' इत्यादि ।

१ २ ३ ४ ५ ७ ६
मूलम्-पढमं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्वसंजए।

८ ९ १० ११ १२ १४ १३
अन्नाणी किं काही, किं वा नाही छेय-पावगं ॥ १० ॥

छाया—प्रथमं ज्ञानं ततो दया, एवं तिष्ठति सर्वसंयतः ।
अज्ञानी किं करिष्यति, किं वा ज्ञास्यति छेक-पापकम् ॥१०॥

सान्वयार्थः-पढमं=पहले नाणं=ज्ञान है तओ=उसके पश्चात् दया=दया अर्थात् चारित्र है एवं=इसी प्रकार सव्वसंजए=सर्वसंयत साधु चिट्ठइ=आचरण करते हैं, अन्नाणी=सम्यग्ज्ञानसे रहित पुरुष किं काही=क्या कर सकता है-कैसे संयम पाल सकता है अर्थात् नहीं पाल सकता ? (और) किं वा=कैसे छेयपावगं= उपादेय और हेयको नाही=जान सकता है?, अर्थात् नहीं जान सकता ॥१०॥

टीका—प्रथमम्=आदौ ज्ञानं=ज्ञायन्ते=बुध्यन्ते जीवाजीवादयः पदार्था येन यस्माद् यस्मिन् वा तज्ज्ञानं=स्वपरस्वरूपपरिच्छेदलक्षणम्, अपेक्ष्यं भवतीत्याशयः, क्रियामात्रस्य ज्ञानपूर्वकत्वे हि स्वाभीष्टसिद्धिकत्वात्, ततः=तदनन्तरं दया=क्लेशाकुलप्राणिसंकष्टमोचनेच्छालक्षणाऽनुकम्पा, दयाशब्देन चात्र क्रियामात्रमुपलक्ष्यते,

---

ज्ञानरहित क्रिया उन्मत्त (पागल) पुरुषकी क्रियाके समान अनर्थको उत्पन्न करती है। 'कोई जीव ज्ञानरहित क्रिया न करे' इस अभिप्रायसे 'पहले ज्ञान फिर क्रिया होनी चाहिए',-इस बातको शास्त्रकार कहते हैं-'पढमं नाणं०' इत्यादि ।

जिससे स्व-परका बोध होता है उसे ज्ञान कहते हैं। वह ज्ञान प्रथम है, क्योंकि जीव आदि नव पदार्थका ज्ञान होने पर ही संयम अर्थात् षड्जीवनिकायकी दयाका पालन हो सकता है। यहाँ दया शब्दसे

ક્રિયા ઉન્મત્ત (ગાંડા) પુરૂષની ક્રિયાની પેઠે અનર્થને ઉત્પન્ન કરે છે 'કોઇ જીવ જ્ઞાનરહિત ક્રિયા ન કરે' એવા હેતુથી 'પ્રથમ જ્ઞાન પછી ક્રિયા હોવી જોઇએ' આ વાતને સૂત્રકાર કહે છે-**पढमं नाणं०** ઇત્યાદિ

જે વડે સ્વપરનો બોધ થાય છે તેને જ્ઞાન કહે છે એ જ્ઞાન પ્રથમ છે કેમકે જીવ આદિ નવ પદાર્થનું જ્ઞાન થયા પછી જ સંયમ અર્થાત્ ષડ્જીવનિકાયની દયાનું પાલન થઇ શકે છે અહીં દયા શબ્દથી બધી ક્રિયાઓનું ગ્રહણ

एवम्=अनेन प्रकारेण क्रियाया ज्ञानपूर्वकत्वाऽवबोधरूपेण सर्वसंयतः=सर्वविरतः साधुरित्यर्थः, तिष्ठति=वर्तते, कथमिदमुच्यते? इत्याशङ्कायामाह–अज्ञानी=तत्त्वातत्त्वविवेकलक्षणज्ञानविरहितः किं करिष्यति=किं विधास्यति, किं वा=कथं वा छेक-पापकं, छेकश्च पापकं चानयोः समाहारे छेकपापकं, तत्र छेकं=कल्याणम् उपादेयमित्यर्थः, पापकम्–अकल्याणं हेयमित्यर्थः, ज्ञास्यति=वेत्स्यति जन्मनाऽन्धवन्न किञ्चिदपीत्यर्थः, अतो ज्ञानार्थमेव प्रथमं यतनीयम् "हया अन्नाणिणं किया" इत्युक्तेः ॥१०॥

ज्ञानमहत्त्वं प्रदर्श्य सम्प्रति तत्प्राप्त्युपायमाह–"सोच्चा जाणइ" इत्यादि।

मूलम्–सोच्चा[१] जाणइ[३] कल्लाणं[२], सोच्चा[४] जाणइ[६] पावगं[५]।
उभयंपि[७] जाणई[९] सोच्चा[८], जं[१०] सेयं[११] तं[१२] समायरे[१३] ॥११॥

छाया—श्रुत्वा जानाति कल्याणं, श्रुत्वा जानाति पापकम्।
उभयमपि जानाति श्रुत्वा, यच्छ्रेयस्तत्समाचरेत् ॥११॥

समस्त क्रियाओंका ग्रहण होता है। अर्थात् सम्यग्ज्ञानपूर्वक की हुई ही क्रिया सफल होती है, इसलिए मुनि ज्ञानपूर्वक ही क्रियाएँ करते हैं, क्योंकि तत्त्व और अतत्त्वके विवेकसे रहित अज्ञानी क्या कर सकता है? अर्थात् कुछ नहीं कर सकता, और जन्मान्धके समान उसे हेय–उपादेयका ज्ञान ही कैसे होसकता है? अर्थात् नहीं होसकता, अतः पहले ज्ञानके लिए प्रयत्न करना चाहिए। कहा भी है–"ज्ञानके विना क्रिया निरर्थक है" ॥१०॥

ज्ञानका महत्त्व बताकर अब उसकी प्राप्तिका उपाय कहते हैं–"सोच्चा जाणइ०" इत्यादि।

થાય છે અર્થાત્ સમ્યગ્જ્ઞાનપૂર્વક કરેલી ક્રિયા જ સફળ થાય છે તેથી મુનિ જ્ઞાનપૂર્વક જ ક્રિયાઓ કરે છે કારણ કે–તત્ત્વ અને અતત્ત્વના વિવેકથી રહિત અજ્ઞાની શુ કરી શકે? અર્થાત્ કશું નથી કરી શકતો, અને જન્માંધની પેઠે એને હેય–ઉપાદેયનું જ્ઞાન કેવી રીતે થઈ શકે? અર્થાત્ નથી થઇ શકતુ, તેથી પહેલા જ્ઞાનને માટે પ્રયત્ન કરવો જોઇએ કહ્યુ છે કે–"જ્ઞાન વિનાની ક્રિયા નિરર્થક છે" (૧૦)

જ્ઞાનનું મહત્ત્વ બતાવીને હવે એની પ્રાપ્તિનો ઉપાય કહે છે–सोच्चा जाणइ० ઇત્યાદિ

अब जानने का उपाय बताते हैं-

सान्वयार्थः-सोच्चा=गुरुमुखसे सुनकर कल्लाणं=कल्याण-दयारूप संयमको जाणइ=जानता है, (तथा) सोच्चा=सुनकर ही पावगं=पाप-हिंसारूप असंयमको जाणइ=जानता है, (और) उभयंपि=दोनोंको भी सोच्चा=सुनकर ही जाणई=जानता है। (अतः) जं=जो सेयं=आत्माके हितकारी हो तं=उसका समायरे=आचरण करे ॥११॥

टीका—श्रुत्वा=गुरुमुखादाकर्ण्य श्रुतज्ञानविषयीकृत्येत्यर्थः, कल्याणम्=कल्यो मोक्षः कर्मबद्धसकलोपाधिव्याधिबाधाविधुरत्वात्, तम् आ=समन्तादणति-प्रापयतीति, कल्येन=आरोग्येण आरोग्यकरणेनेत्यर्थः ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणमोक्षमार्गोपदेशद्वारेति भावः, आनयति=जीवयति सांसारिकविशालविषयकाननसंलग्नेष्टवियोगानिष्टसंयोगदावानलज्वालामालावलीढान् प्राणिन इति कल्याणं=दयाभिधानसंयमस्वरूपं, निपातनाण्णत्वम्, तदुपादेयभूतं जानाति, श्रुत्वा च पापकं=नरकादिकुगतिपातिनं हेयभूतमसंयमं जानाति, उभयमपि=उपादेयानुपादेयभूतसंयमासंयमलक्षणं द्वयमपि श्रुत्वैव जानाति। निष्कर्षमाह-अत्र यत् श्रेयः=हितं तत् समाचरेत्=विदध्यात् ॥११॥

कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाली समस्त आधि-व्याधि और बाधासे रहित मोक्षकी प्राप्ति करानेवालेको, अथवा ज्ञान-दर्शन-चारित्र-रूपी आरोग्यसे, हितवचन अथवा उपदेशसे संसारके विषयरूपी विशाल वनमें धधकती हुई इष्टवियोग-अनिष्टसंयोगरूप दावाग्निकी ज्वालाओंमें जलते हुए जीवोंको शान्ति देनेवालेको कल्याण कहते हैं। इस कल्याण (संयम) का ज्ञान गुरुमुखसे सुनकर ही होता है। पाप अर्थात् नरक आदि कुगतियोंमें गिरानेवाले असंयमका ज्ञान भी सुननेसे ही होता है, तथा इन दोनोंका भी ज्ञान सुननेसे ही होता है। इसलिए इनमेंसे जो श्रेष्ठ (हितकर) हो उसमें प्रवृत्ति करनी चाहिए ॥११॥

કર્મોથી ઉત્પન્ન થનારી બધી આધિ-વ્યાધિ અને બાધાથી રહિત મોક્ષની પ્રાપ્તિ કરાવનારને અથવા જ્ઞાન-દર્શન-ચારિત્રરૂપી આરોગ્યથી, હિતવચન અથવા ઉપદેશથી સંસારના વિષયરૂપી વિશાળ વનમા ભભુકતા ઇષ્ટવિયોગ-અનિષ્ટસંયોગરૂપી દાવાગ્નિની જ્વાળાઓમાં બળતા જીવોને શાન્તિ દેનારને કલ્યાણ કહે છે આ કલ્યાણ (સંયમ)નું જ્ઞાન ગુરૂમુખથી શ્રવણ કરવાથી જ થાય છે પાપ અર્થાત્ નરક આદિ કુગતિઓમાં પાડનારા અસંયમનું જ્ઞાન પણ સાંભળવાથી જ થાય છે, તથા એ બેઉનું જ્ઞાન પણ સાંભળવાથી જ થાય છે, તેથી એમાં જે શ્રેષ્ઠ (હિતકર) હોય એમા પ્રવૃત્તિ કરવી જોઇએ (૧૧)

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
मूलम्-जो जीवे वि न याणेइ अजीवे वि न याणइ।
१० ११ १३ १२ १५ १४
जीवाजीवे अयाणंतो, कहं सो नाहीइ संजमं ॥१२॥

छाया--यो जीवानपि न जानाति, अजीवानपि न जानाति ।
जीवाऽजीवानजानन् कथं, स ज्ञास्यति संयमम् ॥१२॥

सान्वयार्थः-जो=जो जीवेवि=जीवोंकोभी न याणेइ=नहीं जानता है (और) अजीवेवि=अजीवोंकोभी न याणेइ=नहीं जानता है, जीवाजीवे=जीवों और अजीवोंको अयाणंतो=नहीं जानता हुआ सो=वह संजमं=संयमको कहं=कैसे नाहीइ=जानेगा? अर्थात् नहीं जान सकता ॥१२॥

टीका—'जो जीवेवि' इत्यादि । यः जीवान्=एकेन्द्रियादीन्, जीवलक्षणं तु मत्कृतात्तत्त्वप्रदीपाद्विशेषतोऽगन्तव्यम्, न जानाति=न वेत्ति, तथा अजीवान्=जीवविपरीतलक्षणान् संयमपरिपन्थिनः काञ्चनरजतादीन् धर्मास्तिकायादीन् वा न जानाति, इत्थं जीवाजीवान्=जीवान् अजीवाँश्चोभयानपि अजानन् सन् स संयमं=प्राणातिपातविरमणादिलक्षणं सप्तदशविधं कथं=केन प्रकारेण ज्ञास्यति=वेत्स्यति, संयमस्य जीवाजीवोभयविषयकज्ञानजन्यत्वात् ॥१२॥

ननु कस्तर्हि संयमं विज्ञातुमर्हती? त्याह-'जो जीवे वि०' इत्यादि ।

'जो जीवे वि०' इत्यादि। जो पुरुष एकेन्द्रिय आदि जीवोंके स्वरूपको नहीं जानता और न जीवसे भिन्न पुद्गल आदि अजीवोंको जानता है। इस प्रकार दोनोंको ही नहीं जानता हुआ वह अज्ञानी प्राणातिपात आदिसे विरमणरूप सत्रह प्रकारके संयमको कैसे जानेगा? अर्थात् नहीं जान सकेगा, क्योंकि संयम तब ही हो सकता है जब जीव और अजीवका ज्ञान हो जाय ॥१२॥

संयमका ज्ञाता कौन हो सकता है? सो कहते हैं-'जो जीवे वि०' इत्यादि ।

जो जीवे वि० ઇત્યાદિ જે પુરૂષ એકેન્દ્રિય આદિ જીવોના સ્વરૂપને જાણતો નથી અને જીવથી ભિન્ન પુદ્ગલ આદિ અજીવોને જાણતો નથી, એ રીતે બેઉને જાણતો નથી તે અજ્ઞાની પ્રાણાતિપાત આદિથી વિરમણરૂપ સત્તર પ્રકારના સંયમને કેવી રીતે જાણશે? અર્થાત્ નહિ જાણી શકે, કારણ કે સંયમ ત્યારે જ થઇ શકે છે કે જ્યારે જીવ અને અજીવનું જ્ઞાન થાય છે (૧૨)

સંયમનો જ્ઞાતા કોણ થઈ શકે છે? તે હવે કહે છે-जो जीवे वि० ઇત્યાદિ

बोधिवीजजिनधर्मादिप्राप्तिर्जायते, किंबहुना तीर्थंकरगोत्रमपि पुण्येनैव बध्यते, यो हि पुण्यं सर्वथा हेयं मन्यमानस्तत्त्यजति असौ समुपेक्षिततरिरिवाऽप्राप्तपरतीरो मध्येसमुद्रं मज्जन्नवसीदति ।

ननु पुण्यपापक्षयानन्तरमेव मोक्षप्राप्तिः शास्त्रे श्रूयते इति पापवत्पुण्यमप्यनुपादेयं मोक्षार्थिनामिति चेन्न,

द्विविधं हि पुण्यं-पुण्यानुबन्धि पापानुबन्धि च, तत्र पुण्यानुबन्धिपुण्यस्य लक्षणमुक्तम्-

---

प्राप्ति-होती है । अधिक क्या कहा जाय ? तीर्थङ्कर गोत्र भी पुण्यसे ही बंधता है ।

जो पुण्यको सर्वथा हेय मानता हुआ उसका त्याग करता है वह संसार-सागरमें गोते लगाता है । जैसे मध्य समुद्रमें नौकाका त्याग कर देनेवाला पुरुष समुद्रमें डूबता हुआ दुःख पाता है ।

शङ्का-पुण्य और पाप दोनोंका क्षय होनेके बाद मोक्षकी प्राप्ति होती है, ऐसा शास्त्रोंमें सुना जाता है, इसलिए पापकी तरह पुण्य भी मोक्षार्थियोंके लिए उपादेय नहीं है ।

समाधान-ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि पुण्य दो प्रकारका है-(१) पुण्यानुबन्धि पुण्य, (२) पापानुबन्धि पुण्य । पुण्यानुबन्धि पुण्यका लक्षण यह है-

---

વધારે શું કહેવું ? તીર્થંકર-ગોત્ર પણ પુણ્યથી જ બંધાય છે.

જે પુણ્યને સર્વથા હેય માનીને તેનો ત્યાગ કરે છે, તે સંસાર-સાગરમાં ગોથાં ખાય છે, જેમકે મધ્ય-સમુદ્રમાં નૌકાનો ત્યાગ કરી નાખનાર પુરૂષ સમુદ્રમાં ડુબતા દુઃખ પામે છે.

શંકા-પુણ્ય અને પાપ એ બેઉનો ક્ષય થયા પછી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે, એવું શાસ્ત્રોમા સાભળવામા આવે છે. તેથી પાપની પેઠે પુણ્ય પણ મોક્ષાર્થીઓને માટે ઉપાદેય નથી.

સમાધાન-એમ કહેવુ તે બરાબર નથી, કારણ કે પુણ્ય બે પ્રકારના છે (૧) પુણ્યાનુબંધિ પુણ્ય, (૨) પાપાનુબંધિ પુણ્ય પુણ્યાનુબંધિ પુણ્યનું લક્ષણ એવુ છે કે—

"दया भूतेषु वैराग्यं, विधिवद्गुरुपूजनम् ।
विशुद्धा शीलवृत्तिश्च, पुण्यं पुण्यानुबन्ध्यदः ॥१॥ इति.
(स्थानाङ्गे१स्था. टीका)

हरिभद्रसूरिरप्याह—
"गेहाद् गेहान्तरं कश्चिच्छोभनादधिकं नरः ।
याति यद्वत् सुधर्मेण, तद्वदेव भवाद्भवम् ॥ १ ॥" इति ।

एतच्च मोक्षार्थिनामप्यादरणीयमेव, पुण्यानुबन्धिपुण्यस्याऽपतनशीलमोक्षसम्पज्जनकत्वात्, तथा चोक्तम्—
"शुभानुबन्ध्यतः पुण्यं, कर्त्तव्यं सर्वथा नरैः ।
यत्प्रभावादपातिन्यो, जायन्ते सर्वसम्पदः ॥१॥" इति ।

प्राणियों पर दया रखना, वैराग्य–भाव होना, आगमके अनुसार गुरुओंकी भक्ति करना, शुद्ध शीलका पालन करना, यह पुण्यानुबन्धि पुण्य है । (स्थानाङ्ग०१स्था०टीका)

हरिभद्रसूरिने भी कहा है–

"जैसे कोई मनुष्य एक अच्छे गृहसे दूसरे बहुत ही अच्छे गृहमें जाता है वैसेही पुण्यके प्रभावसे जीव अत्यन्त शुभ गतिको प्राप्त होता है ॥१॥"

यह पुण्य मोक्षार्थी पुरुषोंके लिए भी उपादेय है, क्योंकि इससे अविनश्वर–शाश्वत–मोक्षरूपी सम्पत्तिकी उत्पत्ति होती है। कहा भी है–

"मनुष्योंको पुण्यानुबन्धि पुण्य अवश्य करना चाहिए, जिसके प्रभावसे कभी नष्ट न होनेवाली सब प्रकारकी सम्पदाएँ प्राप्त होती हैं ॥१॥"

પ્રાણીઓ ઉપર દયા રાખવી, વૈરાગ્યભાવ થવો, આગમને અનુસાર ગુરૂઓની ભકિત કરવી, શુદ્ધ શીલ પાળવું, એ પુણ્યાનુબંધિ પુણ્ય છે (સ્થાનાંગ૦૧સ્થા૦ટીકા)

હરિભદ્રસૂરિએ પણ કહ્યું છે કે–

"જેમ કોઇ મનુષ્ય એક સારા ગૃહમાથી બીજા બહુ જ સારા ગૃહમાં જાય છે તેમ પુણ્યના પ્રભાવથી જીવ અત્યંત શુભ ગતિને પામે છે"

એ પુણ્ય મોક્ષાર્થી પુરૂષોને માટે પણ ઉપાદેય છે, કારણ કે તેથી અવિનશ્વર–શાશ્વત–મોક્ષરૂપી સંપત્તિની ઉત્પત્તિ થાય છે કહ્યુ છે કે–

"મનુષ્યોએ પુણ્યાનુબંધિ પુણ્ય અવશ્ય કરવું જોઇએ જેના પ્રભાવથી કદાપિ નષ્ટ ન થાય તેવી સર્વ પ્રકારની સંપદાઓ પ્રાપ્ત થાય છે"

किञ्च—मनुष्यजन्मनोऽपि मोक्षप्राप्तिकारणत्वेन शास्त्रे प्रतिपादनात्पुण्यं मोक्षार्थिनामुपादेयमेवेत्यवसीयते, पुण्यमन्तरेण मनुष्यजन्मनो दुर्लभत्वात्, तथा चोक्तमुत्तराध्ययनसूत्रे तृतीयाध्ययने—

" चत्तारि[1] परमंगाणि, दुल्लहाणि य जंतुणो ।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरियं ॥ १ ॥" इति ।

संसारार्णवोत्तरणाय नरशरीरस्य नौकारूपत्वेन प्रतिपादनान्मोक्षकारणत्वं गम्यते, तथा चोत्तराध्ययनसूत्रे त्रयोविंशाध्ययने—

१ " चत्वारि परमाङ्गानि, दुर्लभानि च जन्तोः ।
मानुषत्वं शुचिः श्रद्धा, संयमे च वीर्यम् ॥१॥"

दूसरी बात यह है कि–शास्त्रोंमें मनुष्यभवकी प्राप्ति पुण्यके उदयसे कही गई है, और मनुष्य-भव मोक्ष-प्राप्तिका कारण माना गया है, इससे भी यही सिद्ध होता है कि पुण्य मुमुक्षुओंके लिए उपादेय है, क्योंकि पुण्यके विना मनुष्य-पर्याय मिलना दुर्लभ है। उत्तराध्ययन सूत्रके तीसरे अध्ययनमें कहा है–

"चार परमांग जीवके लिए दुर्लभ हैं–(१) मनुष्य भव, (२) शुचिता, (३) सत्य धर्ममें श्रद्धा, (४) संयममें पराक्रम ॥"

मनुष्य-शरीर संसाररूपी समुद्रको पार करनेके लिए नौकाके समान है, इसलिए ज्ञात होता है कि मनुष्य-शरीर मोक्षका कारण है। उत्तराध्ययन सूत्रके तेईसवें अध्ययनमें कहा है–

બીજી વાત એ છે કે–શાસ્ત્રમાં મનુષ્યભવની પ્રાપ્તિ પુણ્યના ઉદયથી કહી છે અને મનુષ્યભવ મોક્ષપ્રાપ્તિનું કારણ માન્યું છે, તેથી પણ એમ સિદ્ધ થાય છે કે પુણ્ય મુમુક્ષુઓને માટે ઉપાદેય છે, કારણ કે પુણ્ય વિના મનુષ્ય-પર્યાય મળવો દુર્લભ છે ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રના ત્રીજા અધ્યયનમાં કહ્યું છે કે–

"ચાર પરમાંગ જીવને માટે દુર્લભ છે–(૧) મનુષ્યભવ, (૨) શુચિતા, (૩) સત્યધર્મમાં શ્રદ્ધા, (૪) સંયમમા પરાક્રમ."

મનુષ્ય શરીર સંસારરૂપી સમુદ્રને પાર કરવાને માટે નૌકા–સમાન છે, તેથી સમજાય છે કે મનુષ્ય–શરીર મોક્ષનું કારણ છે. ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રના તેવીસમા અધ્યયનમા કહ્યું છે કે–

"शरीरमाहु[1] नावत्ति, जीवो उच्चइ नाविओ ।
संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरंति महेसिणो ॥ १ ॥" इति ।

तत्रैव दशमाध्ययने मनुष्यजन्मनो दौर्लभ्यं चोक्तम्—

"[2]दुल्लहे खलु माणुसे भवे, चिरकालेणवि सव्वपाणिणं" इति ।

स्थानाङ्गसूत्रेऽपि तृतीयस्थानके च—

"[3]तओ ठाणाइं देवेवीहेज्जा तं जहा– (१) माणुसं भवं, (२) आरिए खेत्ते जम्मं, (३) सुकुलपच्चायातिं ।" इति ।

---

१ "शरीरमाहुः नौः इति, जीव उच्यते नाविकः ।
संसारः अर्णवः उक्तः, यं तरन्ति महर्षयः ॥१॥"

२ दुर्लभः खलु मानुष्यो भवः, चिरकालेनापि सर्वप्राणिनाम् ।

३ त्रीणि स्थानानि देवा अपीहेरन्, तद्यथा–(१) मानुष्यं भवम्, (२) आर्ये क्षेत्रे जन्म, (३) सुकुलप्रत्यायातिम् ।

"(मनुष्यका) शरीर, नौकाके समान है, जीव, नाविक (खेवटिया) के सदृश है और संसार, समुद्र सरीखा है, इसे महर्षि पार करते हैं।"

इसी उत्तराध्ययनके दसवें अध्ययनमें मनुष्य–जन्मकी दुर्लभता बताई है-—

"चिरकाल तक सब प्राणियोंके लिए मनुष्य-भव अत्यन्त दुर्लभ है।"

स्थानाङ्गसूत्रमें तीसरे स्थानकमें कहा है–

"इन तीन बोलोंकी देव भी अभिलाषा रखते हैं–(१) मनुष्य-भव, (२) आर्यक्षेत्रमें जन्म, (३) सुकुलकी प्राप्ति"।

"(મનુષ્યનું) શરીર, નૌકા સમાન છે, જીવ, નાવિક (ખલાસી) સમાન છે અને સંસાર, સમુદ્ર સરખો છે, તેને મહર્ષિ પાર કરે છે."

એજ ઉત્તરાધ્યયનના દસમા અધ્યયનમાં મનુષ્ય જન્મની દુર્લભતા બતાવી છે–

"ચિરકાળ સુધી સર્વ–પ્રાણીઓને માટે મનુષ્યભવ અત્યંત દુર્લભ છે"

સ્થાનાંગ–સૂત્રમાં ત્રીજા સ્થાનકમા કહ્યુ છે કે–

"આ ત્રણ બોલોની અભિલાષા દેવ પણ રાખે છે. (૧) મનુષ્યભવ, (૨) આર્યક્ષેત્રમાં જન્મ, (૩) સુકુળની પ્રાપ્તિ"

उत्तराध्ययनसूत्रे त्रयोदशाध्ययने पुण्यसंग्रहस्य परमावश्यकता प्रतिपादिता, तथाहि—

" [1]इह जीविए राय ! असासयम्मि,
धणियं तु पुण्णाइं अकुव्वमाणे ।
से सोयइ मच्चुमुहोवणीए,
धम्मं अकाऊण परम्मि लोए ॥ २१ ॥" इति

किञ्चागमे साधुप्रभृतये आहारोपकरणादिवितरणलक्षणस्य पुण्यस्य कर्त्तव्यत्वेनोपदिष्टतयाऽऽगमप्रमाणेनोपादेयत्वसिद्धिः, तथा चागमः—

" [2]नवविहे पुण्णे पण्णत्ते,तं जहा–(१) अन्नपुण्णे, (२) पाणपुण्णे, (३) वत्थपुण्णे, (४) लेणपुण्णे, (५) सयणपुण्णे, (६) मणपुण्णे, (७) वयपुण्णे, (८) कायपुण्णे, (९) नमोक्कारपुण्णे" इति ।

---

१ इह जीविते राजन् ! अशाश्वते, अधिकं तु पुण्यान्यकुर्वाणः। स शोचति मृत्युमुखोपनीतः, धर्ममकृत्वा परस्मिन् लोके ॥ १ ॥

२ नवविधं पुण्यं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–(१) अन्नपुण्यम् , (२) पानपुण्यम् , (४) वस्त्रपुण्यम् , (४) लयनपुण्यम् , (५) शयनपुण्यम् , (६) मनःपुण्यम् , (७) वचःपुण्यम्, (८) कायपुण्यम् , (९) नमस्कारपुण्यम् । इति ।

उत्तराध्ययनके तेरहवें अध्ययनमें पुण्यके संग्रह करनेकी अत्यन्त आवश्यकता प्रतिपादन की है–

" हे राजन् ! इस नश्वर जीवनमें पुण्य और धर्म न करनेवाले इहलोक पर-लोकमें मृत्युके मुखमें गये हुए शोच करते हैं ।"

आगममें साधु आदिके लिए आहार–उपकरण आदिका दान करने रूप पुण्य कर्त्तव्य माना है । आगममें कहा है कि—

"पुण्य नव प्रकारका है वह इस प्रकार–(१) अन्न-पुण्य,(२) पान-पुण्य,

---

ઉત્તરાધ્યયનના તેરમા અધ્યયનમાં પુણ્યનો સંગ્રહ કરવાની અત્યંત આવશ્યકતા પ્રતિપાદન કરવામાં આવી છે–

"હે રાજન્ ! આ નશ્વર જીવનમાં પુણ્ય અને ધર્મ ન કરનારા ઇહલોક પરલોકમાં મૃત્યુના મુખમાં ગએલા શોચ કરે છે."

આગમમાં સાધુ આદિને માટે આહાર–ઉપકરણ આદિનું દાન કરવારૂપ પુણ્યને કર્તવ્ય માન્યું છે. આગમમાં કહ્યું છે કે—

"પુણ્ય નવ પ્રકારનું છે તે આ પ્રમાણે–(૧) અન્ન–પુણ્ય, (૨) પાન–પુણ્ય,

"पुण्णाइं खलु आउसो ? किच्चाइं करणिज्जाइं, तरणिज्जाइं, पायकराइं, धणकराइं, जसकराइं" इति ।

किञ्च पुण्ये हेयत्वहेतुभूतस्य मिथ्यात्वाऽविरतिप्रमादकषायाऽशुभयोगाऽन्यतमजनकत्वस्याभावात् तस्यानुपादेयत्वापादनं गगनकुसुमायितमेव, प्रत्युताऽशुभभावपरिपन्थितया तस्य कर्त्तव्यत्वमेव सुतरां दृढीभवति, अशुभभावपरिपन्थिनः कर्त्तव्यकोटौ विनिविष्टत्वाद् यथा संयमस्य ।

"दुविहं खवेऊण य पुण्ण-पावं" (द्विविधं क्षपयित्वा च पुण्य-पापम्) इति

पुण्यानि खलु आयुष्मन् ! कृत्यानि करणीयानी, तरणीयानि, पात्रकराणि, धनकराणि, यशःकराणि ।

---

(३) वस्त्र-पुण्य, (४) लयन-पुण्य, (५) शयन-पुण्य, (६) मनः-पुण्य, (७) वचनपुण्य, (८) कायपुण्य (९) नमस्कारपुण्य।" इति। फिर भी कहा है–

"हे आयुष्मन् ! पुण्य-कृत्य करने योग्य है, पुण्य ही पात्र बनाता है, पुण्य ही सम्पत्ति और यशको बढाता है"–इति ।

जिससे मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और अशुभ योग उत्पन्न हों या इनमेंसे कोई एक उत्पन्न होता हो, वह त्याज्य होता है। पुण्य इनमेंसे किसीको भी उत्पन्न नहीं करता। अतः उसे अनुपादेय बतलाना आकाशके पुष्पके समान असत् है। पुण्य अशुभ भावोंको दूर करता है इसलिए उसकी कर्त्तव्यता स्वयंसिद्ध है। जो अशुभ भावोंका विरोधी होता है वह अवश्य कर्त्तव्य होता है, जैसे–संयम ।

शास्त्रोंमें यह कथन किया गया है कि–"पुण्य और पाप दोनोंका

---

(૩) વસ્ત્ર-પુણ્ય, (૪) લયન-પુણ્ય, (૫) શયન-પુણ્ય, (૬) મનઃ-પુણ્ય, (૭) વચન-પુણ્ય, (૮) કાય-પુણ્ય, (૯) નમસ્કાર-પુણ્ય." ઇતિ વળી કહ્યુ છે કે—

"હે આયુષ્મન્! પુણ્ય–કૃત્ય કરવા યોગ્ય છે, પુણ્ય જ પાત્ર બનાવે છે, પુણ્ય જ સપત્તિ અને યશને વધારે છે" ઇતિ

જેથી મિથ્યાત્વ અવિરતિ પ્રમાદ કષાય અને અશુભ યોગ ઉત્પન્ન થાય, યા એમાનુ કોઇ એક ઉત્પન્ન થાય, તે ત્યાજ્ય હોય છે પુણ્ય એમાંના કોઇને ઉત્પન્ન કરતુ નથી. તેથી તેને અનુપાદેય બતાવવું એ આકાશના પુષ્પની સમાન અસત્ છે પુણ્ય અશુભ ભાવોને દૂર કરે છે, તેથી તેની કર્તવ્યતા સ્વયંસિદ્ધ છે જે અશુભ ભાવોનુ વિરોધી હોય છે તે અવશ્ય કર્તવ્ય હોય છે. જેમકે સયમ

શાસ્ત્રોમા એમ કહ્યુ છે કે–"પુણ્ય અને પાપ બન્નેના ક્ષય થવાથી મોક્ષની

यच्छ्रूयते शास्त्रे तत् पारमासाद्य तरणिपरित्यजनमिव मुक्तिप्राप्तिसमयापेक्षम्। यथा समुद्रस्य परस्मिन् पारे विद्यमानं गृहं गन्तुकामः पथिकोऽपरतीरे विभावयति- 'कथमहं तरिष्यामी'ति, तदानीं नावं विलोक्य "नौरियं परपारप्रापिकैव न तु मदीयगृहप्रापिका, अलमस्या आश्रयणेन" इत्यालोच्य यदि नावं नावलम्बते तदाऽसौ गृहं गन्तुं न शक्नोति। यदि कश्चिन्नावि संस्थितः समुद्रमध्ये पूर्वोक्तभावनां कुर्वाणो नावं परित्यजेत् तदाऽपि नासौ गृहमुपैति प्रत्युत समुद्रस्य तरलतरकल्लोलावर्त्तयुक्ताऽगाधजले पतितो निमज्जति म्रियतेऽपि च। यस्तु पुनर्विवेकी पथिको नावमाश्रयति तयाऽसौ परं पारं प्राप्य ततः परं चलितुमक्षमां तरणिं परित्यजति,

---

क्षय होनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है" सो इस प्रकार समझना चाहिए कि- जैसे समुद्रको पार करके फिर नौकाका त्याग किया जाता है। जैसे समुद्रके दूसरे किनारे पर वने हुए घरमें जानेकी इच्छा करनेवाला पथिक सोचता है कि-'मैं समुद्रको कैसे पार कर सकूँगा?' उसी समय नौकाको देख कर वह पथिक यदि यह विचार करने लगे कि 'इससे तो मैं परले पार तक ही पहुँच सकूँगा घर तक नहीं पहुँचूंगा' ऐसे विचारसे नौकाका अवलम्बन न करे तो कभी घर नहीं पहुँच सकता। यदि नौकामें वैठा हुआ कोई पथिक बीच समुद्रमें उक्त विचार करके नौकाका त्याग करदे तो भी घर नहीं पहुँच सकता, वल्कि समुद्रकी चचल तरंगों और भँवरोंसे युक्त अथाह जलमें गिर पड़ेगा और मृत्युको भी प्राप्त हो जायगा किन्तु जो विवेकी पथिक नौकाका सहारा लेता है उसे नौका

પ્રાપ્તિ થાય છે" તે એ પ્રકારે સમજવું કે-જેમ સમુદ્રને પાર કરીને પછી નૌકાનો ત્યાગ કરવામાં આવે છે જેમ સમુદ્રના બીજા કિનારા પર બનેલા ઘરમાં જવાની ઇચ્છા કરનારો પથિક વિચારે છે કે "હું સમુદ્રને કેવી રીતે ઊતરી શકીશ?" એ વખતે નૌકાને જોઈને એ પથિક જો એમ વિચાર કરવા લાગે કે "આથી તો હું પેલા કિનારા સુધી જ પહોંચી શકીશ, ઘર સુધી નહિ પહોંચી શકું," એવા વિચારથી નૌકાનું અવલંબન ન કરે તો તે કદાપિ ઘેર પહોંચી શકશે નહિ જો નૌકામાં બેઠેલો કોઈ પથિક સમુદ્રની વચ્ચે એવો વિચાર કરીને નૌકાનો ત્યાગ કરી દે તો પણ ઘેર પહોંચતો નથી બલ્કે સમુદ્રના ચંચળ તરંગો અને ભમ્મરીઓથી યુક્ત અથાગ જળમાં પડી જશે અને મરણ પણ પામશે. પરન્તુ જે વિવેકી પથિક નૌકાનો આશ્રય લે છે તેને નૌકા પેલે પાર પહોંચાડી દે છે

एवं तरणितो विमुक्तः पान्थः स्वावलम्बनो भूत्वा सुखेन सत्वरं स्वकीयं धाम समवाप्नोति, तथा भव्यजीवः संसारतः परस्मिन् पारे विद्यमानं मोक्षं गन्तुकामोऽपरपारे मनुष्यशरीरे तिष्ठन् विभावयति-"कथमहं दुःखबहुलं चतुर्गतिकसंसारं तरिष्यामि?" इति, तदानीं मुनिजनोपदेशश्रवणतो जैनागमाद्वा दयादानादिपुण्यमहिमानमवगत्य तत्र यदि विवेकी पुण्यमाश्रयते तदा स सुखेन संसारसागरमुत्तरति।

अथवा यथाऽङ्गारकामस्तावत् काष्ठादिषु वह्निं प्रज्वालयति, अन्येन वा प्रज्वालितं वह्निमुपादत्ते, ततः काष्ठगतानलं जलेन निर्वापयति, वह्निविनाशे च सति अङ्गारोत्पत्तिर्भवति, एवं वह्न्युपादानं विनाऽङ्गारो लब्धुमशक्यः। यथाऽङ्गारं

परले पार पहुँचा देती है, आगे गति करनेमें असमर्थ होनेसे पथिक उसका त्याग करके स्वावलम्बी बन कर अपने घर पहुँच जाता है।

इसी प्रकार भव्य जीव संसारसे परले पार पर अर्थात् मोक्षको जाना चाहता है। वह मनुष्यशरीररूपी इस पार पर ठहरा हुआ विचार करता है कि-'मैं दुःखोंसे भरे हुए चतुर्गतिक संसार-सागरको कैसे पार कर सकूँगा?' तब मुनिजनोंके उपदेशसे, अथवा शास्त्रोंसे दया दान आदि पुण्यकी महिमा जान कर पुण्यका आश्रय लेवे तो सुखपूर्वक संसार-सागरके पार पहुँच सकता है।

अथवा जैसे कोयले चाहनेवाले पुरुष काष्ठ आदिमें अग्नि जलाता है, अथवा दूसरेके द्वारा जलाई हुई अग्निको ग्रहण करता है, फिर उस अग्निको बुझा देता है। अग्नि बुझ जाने पर कोयला उत्पन्न होता है। इस प्रकार अग्निका आश्रय लिए विना कोयला कदापि नहीं प्राप्त हो सकता।

નૌકા આગળ ગતિ કરવામાં અસમર્થ હોવાથી પથિક એનો ત્યાગ કરીને સ્વાવલંબી બનીને પોતાને ઘેર પહોચી જાય છે

એ પ્રકારે ભવ્ય જીવ સંસારને પેલેપાર અર્થાત્ મોક્ષે જવા ઇચ્છતો હોય છે તે મનુષ્ય-શરીરરૂપી આ કિનારા પર ઉભો રહીને વિચાર કરે છે કે 'હુ દુ ખોથી ભરેલાં ચતુર્ગતિક સ સાર-સાગરને કેવી રીતે પાર કરી શકીશ?' ત્યારે મુનિજનોના ઉપદેશથી, અથવા શાસ્ત્રોદ્વારા દયા દાન આદિ પુણ્યનો મહિમા જાણીને પુણ્યનો આશ્રય લે તો સુખપૂર્વક સ સારસાગરને પેલેપાર પહોચી શકે છે

અથવા જેને કોયલા જોઇતા હોય છે તે પુરૂષ લાકડાને અગ્નિ લગાડે છે અથવા બીજાઓએ સળગાવેલા અગ્નિને ગ્રહણ કરે છે, અને પછી એ અગ્નિને હોલવી નાખે છે અગ્નિ હોલવાઈ જતાં કોયલા ઉત્પન્ન થાય છે, એ રીતે અગ્નિનો આશ્રય લીધા

प्रति वह्निध्वंसस्य कारणता, ध्वंसस्य च प्रतियोगिसापेक्षत्वेन प्रतियोगी वह्निरुपादेयो भवति, तद्वत् मोक्षं प्रति पुण्यध्वंसस्य कारणतायां तत्प्रतियोगितया पुण्यमप्युपादेयमेव। पुण्यमर्जयित्वा शुभपरिणामरूपं पुण्यं ध्यानादिशुद्धपरिणामेन क्षपयित्वा मोक्षो लब्धुं शक्यते। इत्थं चाऽऽगमप्रामाण्येन पुण्यस्य भव्यकर्त्तव्यता सुस्पष्टं सिध्यति, भव्यकर्त्तव्यतयाऽऽगमे प्रतिपादितत्वात्, शुद्धभावकारणत्वाच्चेति।

पापम्=पातयति=शुभपरिणामाद् ध्वंसयत्यात्मानमिति, यद्वा पाति=रक्षत्यात्मनोऽशुभपरिणाममिति पापं=पुण्यपरिपन्थि तत्, विस्तरस्तु श्रमणसूत्रीय-मत्कृतमुनि-

अर्थात् जैसे कोयलेकी प्राप्तिके लिए अग्निका ध्वंस कारण होता है और ध्वंस प्रतियोगिसापेक्ष होता है इसलिए अग्निके ध्वंसका प्रतियोगी अग्नि भी उपादेय होती है। इसी प्रकार मोक्षका कारण पुण्यका ध्वंस है, अतः ध्वंसका प्रतियोगी पुण्य भी मोक्षके लिए उपादेय है। उसका उपादान किये विना मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो सकती, क्योंकि पहले शुभ परिणाम रूप पुण्यका उपार्जन करके फिर ध्यान आदि शुद्ध परिणामोंसे उनका क्षय करके मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है।

इस प्रकार आगममें कर्त्तव्यरूपसे प्रतिपादन करनेसे तथा शुद्ध भावका कारण होनेसे यह भली भाँति सिद्ध हो गया कि पुण्य अवश्य कर्त्तव्य है

जो शुभ परिणामोंसे आत्माको दूर रखता है-शुभ परिणाम नहीं होने देता उसे पाप कहते हैं। वह पुण्यका विरोधी है।

વિના કોયલા કદાપિ પ્રાપ્ત થતા નથી અર્થાત્ જેમ કોયલાની પ્રાપ્તિ માટે અગ્નિનો ધ્વંસ કારણ બને છે અને ધ્વંસ પ્રતિયોગિ-સાપેક્ષ હોય છે, માટે અગ્નિના ધ્વંસનો પ્રતિયોગી અગ્નિ પણ ઉપાદેય બને છે. એજ રીતે મોક્ષનું કારણ પુણ્યનો ધ્વંસ છે એટલે ધ્વંસનું પ્રતિયોગી પુણ્ય પણ મોક્ષને માટે ઉપાદેય છે એનું ઉપાદાન કર્યા વિના મોક્ષની પ્રાપ્તિ થઇ શકતી નથી કારણ કે પહેલાં શુભ-પરિણામરૂપ પુણ્યનું ઉપાર્જન કરીને પછી ધ્યાન આદિ શુદ્ધ પરિણામોથી એનો ક્ષય કરીને મોક્ષ પ્રાપ્ત કરી શકાય છે

એ રીતે આગમમાં કર્તવ્યરૂપે પ્રતિપાદન કર્યું હોવાથી તથા શુદ્ધ ભાવનું કારણ હોવાથી એ સારી રીતે સિદ્ધ થઈ ગયું કે પુણ્ય અવશ્ય કર્તવ્ય છે

આત્માને શુભ પરિણામોથી દૂર રાખે છે-શુભ પરિણામ થવા દેતું નથી તેને પાપ કહે છે તે પુણ્યનુ વિરોધી છે

तोषणीटीकातोऽवगन्तव्यः। बन्धम्=बध्यते=परतन्त्रीक्रियतेऽनेनाऽऽत्मेति बन्धः= अभीप्सितस्थानप्राप्तिगतिप्रतिरोधलक्षणः, जीवकर्मणोरयोगोलकवह्न्योरिव तादात्म्यापन्नत्वं वा, स च द्रव्यतो निगडादिः, भावतो रागद्वेषादिः, यथा द्रव्यबन्धनबद्धो जनोऽभिमतस्थानलाभाभावेन कारागारादावेव विविधवेदनादारुणां दशामासादयन् विषीदति, तथाऽयमात्मा ज्ञानावरणीयादिकर्माष्टकनिगडसन्दानितोऽनन्ताऽक्षय्यसुखसम्पदुल्लसिताऽव्याबाधाऽभिमतशिवस्थानप्राप्तिं विना जन्मजरामरणादिजन्यानन्यसामान्यकष्टसमष्टिं स्पष्टमनुभवन्निहैव संसारगह्वरे विषीदति, तम्।

आत्मा जिससे बद्ध–परतन्त्र हो जाती है, वह अर्थात्–अभीष्ट स्थानकी प्राप्ति करानेवाली गतिको रोकनेवाला बन्ध कहलाता है। अथवा जैसे लोहेका गोला और अग्नि एकमेकसे हो जाते हैं, उसी प्रकार जीव और कर्मोंमें एकताका ज्ञान करानेवाला बन्ध होता है। बेडी आदि द्रव्यबन्ध है और रागद्वेष आदि भावबन्ध है। जैसे द्रव्यबन्ध–निगड़ आदि-से बंधा हुआ मनुष्य अभिमत स्थान पर न पहुँच सकनेके कारण कारागार आदिमें ही विविध वेदनाओंके द्वारा दारुण दशा प्राप्त करता हुआ दुःख पाता है, वैसे ही ज्ञानावरण आदि आठ कर्म–स्वरूप भाव-बन्धरूपी बेड़ीके कारण अनन्त अविनाशी सुखरूपी सम्पत्तिसे शोभित, अव्याबाध और अभीष्ट मोक्ष–स्थानकी प्राप्तिके विना जन्म जरा मरण आदिसे होनेवाले अपरिमित दुःख भोगता हुआ इसी संसाररूपी गड्ढेमें पड़ा हुआ कष्ट उठाता है।

આત્મા જેથી બદ્ધ–પરતંત્ર થઇ જાય છે તે-અર્થાત્ અભીષ્ટ સ્થાનની પ્રાપ્તિ કરાવનારી ગતિને રોકનાર બંધ કહેવાય છે અથવા જેમ લોઢાનો ગોળો અને અગ્નિ એક-મેક બની જાય છે, તેમ જીવ અને કર્મોમાં એકતાનુ જ્ઞાન કરાવનાર બંધ હોય છે બેડી આદિ દ્રવ્ય-બંધ છે અને રાગ-દ્વેષ આદિ ભાવ-બંધ છે જેમ દ્રવ્ય-બંધ-હેડ કે બેડી આદિથી બંધાયેલો મનુષ્ય ધારેલે સ્થાને ન પહોચી શકવાને કારણે કારાગાર આદિમાં જ વિવિધ વેદનાઓ દ્વારા દારૂણ દશા પ્રાપ્ત કરતા દુ.ખ પામે છે તેમ જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ કર્મસ્વરૂપ ભાવ-બંધ-રૂપી બેડીને કારણે, અનંત અવિનાશી સુખરૂપી સંપત્તિથી શોભિત, અવ્યાબાધ અને અભીષ્ટ મોક્ષસ્થાનની પ્રાપ્તિ વિના જન્મ-જરા-મરણ આદિથી થતાં અપરિમિત દુઃખ ભોગવતાં જીવ આ સંસારરૂપી ખાડામા પડીને કષ્ટ ભોગવે છે

नन्वात्मनोऽमूर्त्तत्वात्कर्मणां च मूर्त्तत्वान्न तयोः परस्परं सम्बन्धः संभवति, अमूर्त्तत्वेऽपि सम्बन्धस्वीकारे आकाशधर्माधर्मास्तिकायकालैः सहापि सम्बन्धप्रसङ्ग इति चेन्न,

आत्मनः कर्मणा सह सम्बन्धाभावाऽऽपादने हेतुत्वेनोपन्यस्तममूर्त्तत्वं किं सर्वथारूपेण किं वा कथञ्चिद्रूपेण स्वीक्रियते? नाद्यः, हेत्वसिद्धेः, सर्वथैवाऽमूर्त्तभूतस्य सिद्धात्मनः कर्मसम्बन्धाभावो मयाऽपीष्यत एव। आत्मत्वावच्छिन्नस्य सर्वथैवाऽमूर्त्तत्वं तु दुर्वचं, संसारिजीवानां कथञ्चिन्मूर्त्तत्वसद्भावात्। कथञ्चित् स्वीक्रियेत चेत्तदा यदपेक्षया मूर्त्तत्वं तदपेक्षया सम्बन्धोऽसन्दिग्ध एव। मुक्तात्मनश्च मूर्त्तत्वाभावान्न सम्बन्धाभ्युपगमः।

प्रश्न–आत्मा अमूर्त्त (अरूपी) है और कर्म मूर्त्त (रूपी) है। इस कारणसे इन दोनोंका परस्पर बन्ध कैसे हो सकता है?, यदि मूर्त्तका बन्ध अमूर्त्तके साथ हो सकता है तो आकाशास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और कालके साथ भी कर्मोंका बन्ध हो जायगा, क्योंकि वे भी अमूर्त्त हैं।

उत्तर-तुम कहते हो कि आत्मा अमूर्त्त है, सो यह बताओ कि आत्मा सर्वथा अमूर्त्त है या कथञ्चित् अमूर्त्त है?, यदि कहोगे कि आत्मा सर्वथा अमूर्त्त है तो हेतु असिद्ध हो जायगा, क्योंकि आगममें आत्माको सर्वथा अमूर्त्त नहीं माना गया है।

अगर 'कथञ्चित् अमूर्त्त' कहोगे तो कथञ्चित् मूर्त्त भी होगी, और जिस (संसारावस्थाकी) अपेक्षासे आत्मा मूर्त्त है उसी अपेक्षासे कर्मोंका बन्ध होता है। मुक्तात्मा मूर्त्त नहीं है इसलिए वहाँ बंध भी नहीं होता।

પ્રશ્ન—આત્મા અમૂર્ત (અરૂપી) છે અને કર્મ મૂર્ત (રૂપી) છે એ કારણે એ બેઉનો પરસ્પર બંધ કેવી રીતે થઇ શકે? જો મૂર્તનો બંધ અમૂર્તની સાથે થઇ શકે તો આકાશાસ્તિકાય, ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય અને કાલની સાથે પણ કર્મોનો બંધ થઇ જશે, કારણ કે તે પણ અમૂર્ત છે

ઉત્તર—તમે કહો છો કે આત્મા અમૂર્ત છે, તો બતાવો કે આત્મા સર્વથા અમૂર્ત છે કે કથચિત્ અમૂર્ત છે? જો કહેશો કે આત્મા સર્વથા અમૂર્ત છે તો હેતુ અસિદ્ધ થઇ જશે, કારણ કે આગમમાં આત્માને સર્વથા અમૂર્ત માન્યો નથી

અગર 'કથંચિત્ અમૂર્ત' કહેશો તો કથંચિત્ મૂર્ત પણ થશે, અને જે (સંસારાવસ્થાની) અપેક્ષાએ આત્મા મૂર્ત છે તે અપેક્ષાએ કર્મોનો બંધ થાય છે. મુક્તાત્મા મૂર્ત નથી તેથી તેને બંધ પણ થતો નથી

किञ्च–यथा मूर्त्तामूर्त्तयोः घटाकाशयोः संयोगरूपः सम्बन्धः, करक्रिययोर्मूर्त्तामूर्त्तयोः समवायसम्बन्धः परैरङ्गीक्रियते तथाऽऽत्मकर्मणोरमूर्त्त-मूर्त्तयोः सम्बन्धे न काचिदनुपपत्तिर्नाम । अपि च यथा शरीरमिदमात्मसम्बद्धं प्रत्यक्षमुपलभ्यते तथा प्रेत्य भवान्तरगमननिमित्तं कार्मणलक्षणं शरीरान्तरमप्यात्मसम्बद्धमिति स्वीकर्त्तव्यम् ।

नन्वपूर्वापरपर्यायाऽदृष्टहेतुकमिदमेव शरीरं तत्रास्ति न कार्मणशरीरमिति चेत्, अदृष्टममूर्त्तं मूर्त्तं वा? अमूर्त्तत्वे कथं स्थूलमूर्त्तशरीरेण तत्सम्बन्धः ? भवन्मते

अथवा जैसे आकाश अमूर्त्त है और घट मूर्त्त है तथापि उन दोनोंका संयोग–सम्बन्ध होता है, और जैसे मूर्त्त हाथ तथा हाथसे होनेवाली अमूर्त्त क्रियाका दूसरोंने समवाय–सम्बन्ध स्वीकार किया है, उसी प्रकार अमूर्त्त आत्मा और मूर्त्त कर्मका बन्ध भी युक्ति–युक्त ही है।

अथवा जैसे आत्मासे संबद्ध यह शरीर प्रत्यक्षसे सिद्ध है उसी प्रकार परलोकमें गमन करानेवाला कार्मण शरीर भी आत्मासे संबद्ध है, ऐसा स्वीकार करना चाहिए ।

यदि ऐसा कहो कि–'अपूर्व' या 'अदृष्ट'के कारण यही शरीर परलोकके लिए गति कराता है तो हम पूछेंगे कि वह अदृष्ट अमूर्त्त है या मूर्त्त?, अमूर्त्त है तो स्थूल मूर्त्त शरीरके साथ अदृष्टका संयोग कैसे

અથવા જેમ આકાશ અમૂર્ત છે અને ઘટ મૂર્ત છે, તથાપિ એ બેઉનો સંયોગ–સબંધ થાય છે, અને જેમ મૂર્ત હાથ તથા હાથથી થનારી અમૂર્ત ક્રિયાનો બીજાઓએ સમવાય–સંબંધ સ્વીકાર્યો છે, એ પ્રકારે અમૂર્ત આત્મા અને મૂર્ત કર્મનો બંધ પણ યુકિતયુકત જ છે

અથવા જેમ આત્માથી સંબદ્ધ આ શરીર પ્રત્યક્ષથી સિદ્ધ છે, તેમ પરલોકમાં ગમન કરાવનારૂ કાર્મણ શરીર પણ આત્માથી સંબદ્ધ છે એવો સ્વીકાર કરવો જોઇએ

જો એમ કહો કે 'અપૂર્વ' યા 'અદૃષ્ટ'ને કારણે આ શરીર પરલોકને માટે ગતિ કરાવે છે, તો અમે પૂછીશુ કે એ અદૃષ્ટ અમૂર્ત છે કે મૂર્ત?, અમૂર્ત છે તો સ્થૂલ મૂર્ત શરીરની સાથે અદૃષ્ટનો સયોગ કેવી રીતે થયો?, તમારે મતે

तदसम्भवात् । सम्भवे चाऽऽत्मकर्मसंयोगेन किमपराद्धम् ?, अथ मूर्त्तत्वमङ्गीक्रियते तदाऽन्धसर्पविलप्रवेशन्यायेन मूर्त्तामूर्त्तयोः सम्बन्धः स्वीकृत एव ॥

ननु कर्मसंयोगादात्मनो मूर्त्तत्वं संपद्यते, तस्मिँश्च सति वन्धसम्बन्धो युज्यते, कर्मबन्धात्पूर्वं तु आत्मनो मूर्त्तत्वाभावात् कथमिव बन्धः संभावनासरणि-

हुआ ? क्योंकि तुम्हारे मतसे ऐसा होना असंभव है। विना अदृष्टके सम्बन्धके स्थूल शरीरमें चेष्टा नहीं हो सकती । संभव मानो तो आत्मा और कर्मके संयोगने क्या अपराध किया है ?। अर्थात् जब अमूर्त्त अदृष्ट और मूर्त्त शरीरका सम्बन्ध हो सकता है तो आत्मा और कर्मका भी संयोग हो सकता है ।

अगर अदृष्ट (भाग्य) को मूर्त्त मानो तो अमूर्त्त आत्माके साथ उसका सम्बन्ध स्वीकार करनेसे यह मान ही लिया कि अमूर्त्त और मूर्त्तका सम्बन्ध होता है । जैसे अन्धा सर्प इधर उधर भटककर फिर बिलमें प्रवेश करता है वैसेही तुमने कल्पनासे इधर उधर दौड़कर अन्तमें अमूर्त्तका मूर्त्तके साथ संबन्ध स्वीकार करही लिया ।

प्रश्न—कर्मका संयोग होनेपर आत्मा मूर्त्त होती है और मूर्त्त होजाने पर बन्ध हो सकता है किन्तु कर्मबन्ध होनेसे पहले तो आत्मा मूर्त्त नहीं थी—अमूर्त्त थी, फिर बन्धकी संभावना कैसे हो सकती है ?।

એમ થવું અસંભવિત છે અદૃષ્ટના સંબંધ વિના સ્થલ શરીરમાં ચેષ્ટા થઈ શકતી નથી. સંભવ માનો તો આત્મા અને કર્મના સંયોગે શો અપરાધ કર્યો છે? અર્થાત્ જો અમૂર્ત અદૃષ્ટ અને મૂર્ત શરીરનો સંબંધ થઇ શકે છે તો આત્મા અને કર્મનો પણ સંયોગ થઇ શકે છે

અગર અદૃષ્ટ (ભાગ્ય)ને મૂર્ત માનો તો અમૂર્ત આત્માની સાથે એનો સંબંધ સ્વીકારવાથી એમ માની લીધું કે અમૂર્ત અને મૂર્તનો સંબંધ થાય છે, જેમ આંધળો સર્પ અહીં-તહીં ભટકીને પછી દરમાં પ્રવેશ કરે છે, તેમ તમે કલ્પનાથી અહીં-તહીં દોડીને છેવટે અમૂર્તનો મૂર્તની સાથે સંબંધ સ્વીકાર કરી લીધો

પ્રશ્ન—કર્મનો સંયોગ થયા પછી આત્મા મૂર્ત થાય છે અને મૂર્ત થયા પછી બંધ થઇ શકે છે, પરન્તુ કર્મબંધ થયા પહેલાં તો આત્મા મૂર્ત ન હોતો, અમૂર્ત હતો, પછી બંધની સંભાવના કેવી રીતે હોઇ શકે છે?

मारोढुं प्रभवेदिति चेन्न, जीवकर्मणोः खनौ सुवर्णोपलयोरिव संयोगस्याऽनादिकालिकत्वात् ।

नच 'जीवकर्मणोः सम्बन्धस्याऽनादित्वे मोक्षो नैव संभवति अनादेरन्ताभावादाकाशात्मनोरिवे'-ति वाच्यम्, अनाद्यनन्तत्वयोरविनाभावाऽभावात्, अनादेरपि घटादिप्रागभावस्य सान्तत्वोपलम्भात्, अनादेरपि बीजाङ्कुरादिसन्तानस्य दाहादिकारणवशात्सान्ततादर्शनाच्च, इत्यलमतिविस्तरेण । वन्धस्वरूपमुच्यते—

उत्तर-जैसे खानमें रहे हुए सुवर्ण तथा पाषाणका सम्बन्ध अनादिकालीन है, वैसेही जीव और कर्मका भी सम्बन्ध अनादिकालीन है ।

कोई-कोई ऐसा कहते हैं कि जिसकी आदि नहीं होती उसका अन्त भी नहीं होता है, जैसे जीव और आकाशका सम्बन्ध कभी नष्ट नहीं होता, इस नियमके अनुसार यदि जीव-कर्मका सम्बन्ध अनादिकालीन है तो कभी उसका भी अन्त न होगा, फिर किसीको मोक्ष मिल ही नहीं सकेगा ।

उनका यह कथन दूषित है, क्योंकि घट आदिका प्राग् अभाव यद्यपि अनादिकालीन है फिर भी घट उत्पन्न होते ही उसका अन्त हो जाता है।

बीज तथा वृक्षकी परम्परा भी अनादिकालीन है तथापि यदि बीज जल जाय तो उस परम्पराका अभाव हो जाता है, इसलिए आत्मकर्मसंयोग अनादि होनेपर भी सान्त हो सकता है। बन्धका स्वरूप कहते हैं—

ઉત્તર—જેમ ખાણમા રહેલા સુવર્ણ તથા પાષાણનો સંબંધ અનાદિ કાળનો છે. તેમ જીવ અને કર્મનો પણ સંબંધ અનાદિકાળનો છે

કોઈ—કોઈ એમ કહે છે કે જેની આદિ નથી તેનો અંત પણ હોતો નથી, જેમકે જીવ અને આકાશનો સંબંધ કદાપિ નષ્ટ થતો નથી એ નિયમાનુસાર જો જીવ—કર્મનો સંબંધ અનાદિકાળનો છે તો કદાપિ તેનો અંત થશે નહિ, પછી કોઈને મોક્ષ મળી શકશે નહિ

એનું એ કથન દૂષિત છે, કારણ કે ઘટ આદિનો પ્રાગ્ અભાવ જો કે અનાદિકાળનો છે, તોપણ ઘટ ઉત્પન્ન થતા જ તેનો અંત થઈ જાય છે બીજ તથા વૃક્ષની પરંપરા પણ અનાદિકાળની છે તથાપિ જો બીજ બળી જાય તો એ પરંપરાનો અભાવ થઈ જાય છે તેથી આત્મ-કર્મ—સંયોગ અનાદિ હોવા છતાં પણ સાન્ત થઈ શકે છે. બંધનો સ્વરૂપ કહે છે—

बन्धश्चतुर्विधः–प्रकृति-स्थित्य-नुभाग-प्रदेशभेदात्, तत्र–प्रकृतिः=स्वभावः आत्मगृहीतकर्मपुद्गलानां तत्तच्छक्तिरूपतया परिणमनलक्षणः, यथा=निम्बस्य तिक्तत्वम्, गुडस्य मधुरत्वमित्यादि, तथा ज्ञानावरणीयस्य जीवादिपदार्थानव-बोधकत्वम् (१), दर्शनावरणीयस्य जीवादीनामनालोचकत्वम् (२), वेदनीयस्या-ऽव्यावाधगुणवाधकत्वम् (३), मोहनीयस्य तत्त्वारुचित्वमव्रतित्वं च (४), आयुषो भवाधायकत्वम् मोक्षस्य साद्यनन्तस्थित्याच्छादकत्वमित्यर्थः (५), नाम्नोऽमूर्त्त-त्वगुणनिरोधकत्वम् (६), गोत्रस्यागुरुलघुगुणघातकत्वम् (७), अन्तरायस्य च

बन्ध चार प्रकारका है–(१) प्रकृतिबन्ध, (२) स्थितिबन्ध, (३) अनु-भागबन्ध और (४) प्रदेशबन्ध ।

(१) प्रकृतिबन्ध–प्रकृति स्वभावको कहते हैं । अर्थात् आत्माके द्वारा ग्रहण किये हुए कर्मोंमें अमुक अमुक प्रकारकी शक्तिका आजाना । जैसे-नीमका स्वभाव कटुकता, गुड़का स्वभाव माधुर्य, इत्यादि । इसी प्रकार ज्ञानावरण कर्मका स्वभाव है–आत्माके ज्ञानको आच्छादित करना १ । दर्शनावरणका स्वभाव है–दर्शनको रोकना२ । अव्याबाध गुणको प्रगट न होने देना वेदनीय कर्मका ३ । जीवादि तत्त्वोंमें रुचि न होने देना तथा चारित्रको रोकना मोहनीय कर्मका ४ । किसी शरीरमें रोक रखना आयुकर्मका ५ । अमूर्त्तत्व गुणको प्रगट न होने देना नामकर्मका ६ । अगुरु–लघुत्व गुणका नाश कर देना गोत्रकर्मका ७ । तथा दान लाभ

બંધ ચાર પ્રકારનો છે (૧) પ્રકૃતિ–બંધ, (૨) સ્થિતિ–બંધ, (૩) અનુભાગ-બંધ અને (૪) પ્રદેશ–બંધ

(૧) પ્રકૃતિ-બંધ–પ્રકૃતિ સ્વભાવને કહે છે, અર્થાત્ આત્મા વડે ગ્રહણ કરાયલાં કર્મોમા અમુક–અમુક પ્રકારની શક્તિ આવી જવી તે. જેમ લીંબડાનો સ્વભાવ કટુતા (કડવાશ) છે, ગોળનો સ્વભાવ મધુરતા (મિઠાશ) છે, ઇત્યાદિ. એ રીતે જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો સ્વભાવ આત્માના જ્ઞાનને આચ્છાદિત કરવાનો (ઢાકવાનો) છે ૧ દર્શનાવરણનો સ્વભાવ દર્શનને રોકવાનો છે ૨. અવ્યાબાધ ગુણને પ્રકટ ન થવા દેવા એ વેદનીય–કર્મનો સ્વભાવ છે ૩ જીવાદિ તત્ત્વોમાં રૂચિ ન થવા દેવી તથા ચારિત્રને રોકવુ એ મોહનીય–કર્મનો સ્વભાવ છે ૪ કોઈ શરીરમાં આત્માને રોકી રાખવો એ આયુ–કર્મનો સ્વભાવ છે ૫ અમૂર્તત્વ ગુણને પ્રકટ થવા ન દેવો એ નામકર્મનો સ્વભાવ છે ૬. અગુરૂ–લઘુત્વ ગુણનો નાશ કરવો

दानादिप्रतिघातकत्वम् (८), तद्रूपो बन्धः प्रकृतिबन्धः १।

स्थितिः=जघन्यादिभेदेन कर्मणामात्मना सहावस्थानं, तल्लक्षणो बन्धः स्थितिबन्धः २।

अनुभागो=रसः=कर्मणां फलदातृत्वशक्तितारतम्यं, तत्स्वरूपो बन्धोऽनुभागबन्धः ३।

प्रदेशः=कर्मदलसञ्चयस्वरूपः=अनन्तानन्तकर्मप्रदेशानामियत्तारूपेण जीवप्रदेशेषु सम्बन्धस्तल्लक्षणो बन्धः प्रदेशबन्धः ४। उक्तञ्च—

"स्वभावः प्रकृतिः प्रोक्तः, स्थितिः कालावधारणम्।
अनुभागो रसो ज्ञेयः, प्रदेशो दलसञ्चयः ॥१॥" इति।

भोग उपभोग और वीर्यमें विघ्न डालना अन्तराय कर्मका स्वभाव है ८। इसीको प्रकृतिबन्ध कहते हैं।

(२) स्थितिबन्ध–बंधे हुए कर्म आत्माके साथ जघन्य कितने काल तक रहेंगे और उत्कृष्ट कितने काल तक रहेंगे, इस कालकी मर्यादाको स्थितिबन्ध कहते हैं।

(३) अनुभागबन्ध–फल देनेवाली कर्मोंकी शक्तिके तारतम्यको अनुभागबन्ध कहते हैं।

(४) प्रदेशबन्ध–कितने कर्म आत्माके साथ बन्धको प्राप्त हुए हैं, इस प्रकार कर्मप्रदेशोंकी परिगणनाको प्रदेशबन्ध कहते हैं। कहा भी है–

"स्वभावको प्रकृतिबन्ध, कालकी मर्यादाको स्थितिबन्ध, रसको अनुभागबन्ध और कर्मपुद्गलोंके समूहको प्रदेशबन्ध कहते हैं ॥१॥"

એ ગોત્રકર્મનો સ્વભાવ છે ૭. તથા દાન લાભ ભોગ ઉપભોગ અને વીર્યમાં વિઘ્ન નાંખવું એ અંતરાય-કર્મનો સ્વભાવ છે ૮ એને પ્રકૃતિ-બંધ કહે છે

(૨) સ્થિતિ-બંધ–બંધાયલાં કર્મ આત્માના સાથે જઘન્ય કેટલા કાળસુધી રહેશે અને ઉત્કૃષ્ટ કેટલા કાળસુધી રહેશે એ કાળની મર્યાદાને સ્થિતિબંધ કહે છે.

(૩) અનુભાગ-બંધ–ફળ આપનારી કર્મોની શકિતના તારતમ્યને અનુભાગ-બંધ–કહે છે

(૪) પ્રદેશ-બંધ–કેટલા કર્મો આત્માની સાથે બંધને પ્રાપ્ત થયા છે, એ પ્રકારે કર્મપ્રદેશોની પરિગણુનાને પ્રદેશ-બંધ કહે છે કહ્યું છે કે–

"સ્વભાવને પ્રકૃતિબંધ, કાળની મર્યાદાને સ્થિતિબંધ, રસને અનુભાગ-બંધ અને કર્મ–પુદ્ગલોના સમૂહને પ્રદેશબંધ કહે છે" (૧)

एतेषां स्वरूपं च सुखाववोधाय मोदकदृष्टान्तेन प्रदर्श्यते—

यथा कस्यचिदौषधमोदकस्य प्रकृतिर्वातहारिका, कस्यचित्पित्तहारिका, कस्यचित्कफहारिणी, कस्यचिद् बुद्धिनाशिनी, तथा कस्यचित्कर्मणः प्रकृतिर्ज्ञानावरणकारिणी, कस्यचिद्दर्शनावरणविधायिनीत्येवमादिविभिन्नशक्तिमतां कर्मणां वन्धः प्रकृतिवन्धः (१)।

यथा कस्यचिन्मोदकस्य स्थितिः सप्ताहोरात्रव्यापिनी, कस्यचित्पक्षव्यापिनी, कस्यचनैकादिकमासं यावत् स्थितिस्तथा कस्यचित्कर्मणस्त्रिंशत्कोटीकोटीसागरोपमा स्थितिः, कस्यचिद्विंशतिकोटीकोटीसागरोपमा, कस्यचन सप्ततिकोटीकोटीसागरो-

---

सरलतासे समझनेके लिए मोदकका दृष्टान्त देकर चारों बन्धोंका स्वरूप दिखलाते हैं–

(१) जैसे किसी औषध–मोदककी प्रकृति वातको हरनेवाली होती है, किसीकी पित्तको हरनेवाली होती है, किसीकी कफको हरनेवाली होती है और किसी मोदककी प्रकृति बुद्धिको नष्ट करनेवाली होती है। इसी प्रकार किसी कर्मकी प्रकृति ज्ञानका आवरण करनेवाली होती है और किसीकी दर्शनका आवरण करनेवाली होती है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न शक्तिवाले कर्मोंका बन्ध होना प्रकृतिवन्ध है।

(२) जैसे किसी मोदककी स्थिति एक सप्ताहकी होती है, किसी मोदककी स्थिति एक पक्ष (पखवाड़े) की होती है, किसी मोदककी स्थिति एक मासकी होती है, वैसे ही किसी कर्मकी स्थिति तीस कोडाकोडी सागरोपमकी होती है, किसीको वीस कोडाकोडी सागरोपमकी होती है,

---

સરળતાથી સમજવાને માટે મોદકનું દૃષ્ટાંત આપીને ચારે બંધોનું સ્વરૂપ બતાવે છે—

(૧) જેમ કોઇ ઔષધ–મોદકની પ્રકૃતિ વાયુને હરવાવાળી છે કોઇની શક્તિ પિત્તને હરવાવાળી છે, કોઇની કફને હરવાવાળી છે, અને કોઇ મોદકની પ્રકૃતિ બુદ્ધિને નષ્ટ કરવાવાળી હોય છે એ રીતે કોઇ કર્મની પ્રકૃતિ જ્ઞાનનું આવરણ કરનારી હોય છે, કોઇની દર્શનનુ આવરણ કરનારી હોય છે, એ રીતે ભિન્ન-ભિન્ન શક્તિવાળાં કર્મોના બંધ થવો એ પ્રકૃતિબંધ કહેવાય છે

(૨) જેમ કોઇ મોદકની સ્થિતિ એક સપ્તાહની હોય છે, કોઇ મોદકની સ્થિતિ એક પક્ષ (પખવાડિયુ)ની હોય છે, કોઇ મોદકની સ્થિતિ એક માસની હોય છે, તેમજ કોઇ કર્મની સ્થિતિ ત્રીસ કોડાકોડી સાગરોપમની હોય છે, કોઇની વીસ કોડાકોડી સાગરોપમની હોય છે, કોઇની સત્તર કોડાકોડી સાગરોપમની

पमा, कस्यचिच्चान्तर्मुहूर्त्तपरिच्छिन्ना, एवं विभिन्नकर्मणां नियतकालावस्थानं स्थितिबन्धः (२) ।

यथा कस्यचिन्मोदकस्यानुभागो(रसो)ऽतिमधुरः स्वल्पमधुरो वा, कस्यचिदतिकटुकः स्वल्पकटुको वा, कस्यचिच्च नातिमधुरो नाप्यतिकटुको भवति, द्विगुणीकरणादिना च स एव मन्द-मन्दतरत्वादिव्यपदेशं च लभते, तथा कर्मणामपि [१]शुभाशुभादिरूपेण तीव्र-तीव्रतर-तीव्रतम-मन्द-मन्दतर-मन्दतमत्वादिभेदभिन्नो बन्धोऽनुभागबन्धो रसबन्धव्यपदेश्यः (३) ।

१ शुभकर्मणामनुभागो (रसो) द्राक्षेक्षुक्षीरमाक्षीकवदतिमधुरो भवति, यदनुभ-

किसीकी सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपमकी होती है, किसी कर्मकी अन्तर्मुहूर्त्त मात्रकी होती है, इस प्रकार विभिन्न कर्मोंका अमुक समय तक आत्माके साथ स्थित रहना स्थितिबन्ध कहलाता है ।

(३) जैसे किसी मोदकका स्वाद (रस) बहुत मीठा होता है, किसी मोदकका कम मीठा होता है, किसीका स्वाद बहुत कडुआ होता है, किसीका कम कडुआ होता है, किसीका स्वाद न अधिक मीठा होता है, न अधिक कडुआ होता है, उसे ही द्विगुण आदि करदेनेसे वही मन्द मन्दतर आदि कहलाने लगता है । वैसे ही कर्मोंका रस शुभ[१] अशुभ रूपसे तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम, मन्द, मन्दतर और मन्दतम आदि भेदोंसे विविध प्रकारका होता है । उसे ही अनुभागबन्ध या रसबन्ध कहते हैं।

१ शुभकर्मोंका अनुभाग (रस) दाख, सांठा (गन्ना), दूध या मधुके समान

હોય છે, કોઈ કર્મની સ્થિતિ માત્ર અંતર્મુહૂર્તની હોય છે. એ પ્રકારે વિભિન્ન કર્મોનું અમુક સમય સુધી આત્માની સાથે સ્થિત રહેવું એ સ્થિતિબંધ કહેવાય છે,

(૩) જેમ કોઈ મોદકનો સ્વાદ (રસ) બહુ મીઠો હોય છે કોઈ મોદકનો ઓછો મીઠો હોય છે, કોઈ મોદકનો સ્વાદ બહુ કડવો હોય છે, કોઈનો ઓછો કડવો હોય છે, કોઈનો સ્વાદ ન વધુ મીઠો કે વધુ કડવો હોય છે, તેને દ્વિગુણ (બેવડો) કરવાથી તે મંદ-મંદતર આદિ કહેવાવા લાગે છે, એજ રીતે કર્મોનો રસ શુભ[૧] અશુભ રૂપથી તીવ્ર, તીવ્રતર, તીવ્રતમ, મંદ, મંદતર, મંદતમ આદિ ભેદોએ કરીને વિવિધ પ્રકારનો થાય છે એને જ અનુભાગબંધ યા રસબંધ કહે છે.

૧ શુભ કર્મોનો અનુભાગ (રસ) દ્રાક્ષ, શેરડી, દૂધ યા મધના જેવો અતિમધુર હોય છે.

वेन जीवः सान्द्रानन्दसन्दोहतुन्दिलान्तःकरणो जायते। अशुभकर्मणां रसस्तु निम्ब-किराततिक्तादिवदतितरां तिक्तो भवति, यदनुभवेन जीवोऽनिर्वचनीयं व्याकुलीभावं भजते, तीव्रतीव्रतरत्वादिबोधनार्थं च दृष्टान्तः प्रदर्श्यते-इक्षुनिम्बयोरन्यतरस्य चतुःशेटकपरिमितो रसः 'स्वाभाविकरस' इत्युच्यते, वह्नितापद्वारोत्कालितो यदा शेटकचतुष्टयस्थाने शेटकत्रितयमात्रोऽवशिष्येत तदाऽसौ 'तीव्र' इत्युच्यते, पुनरुत्कालनेन शेटकद्वितयमात्रोऽवशिष्येत तदा 'तीव्रतर' इत्यभिधीयते, पुनरप्युत्कालनेन शेटकैकमात्रेऽवशिष्टे 'तीव्रतम' इति कथ्यते।

इक्षु-निम्बयोरेव शेटकैकमात्रो रसः 'स्वाभाविकरसः' इत्युच्यते, एकशेटक-जलमेलनेन 'मन्दरस' इति, द्विशेटकजलसंयोजनेन 'मन्दतरो रस' इति, शेटक-त्रितयपरिमितजलसम्बन्धेन 'मन्दतमो रस' इति व्यपदेशं लभते।

अतिमधुर होता है, इसके उपभोगसे आत्मामें अत्यन्त आनन्द उत्पन्न होता है। अशुभ कर्मोंका फल नीम चिरायता आदिके समान अत्यन्त तिक्त होता है, इसका अनुभव करनेसे जीव अतिशय व्याकुलता प्राप्त करता है। तीव्र तीव्रतर आदि समझानेके लिये उदाहरण देते हैं—इक्षु या नीममेंसे किसीका चार सेर रस 'स्वाभाविक रस' कहलाता है, यदि अग्निमें उकालने पर तीन सेर रह जाय तो वह तीव्र कहलाता है, फिर उकालने पर दो सेर बच जाय तो तीव्रतर कहलाता है, यदि फिर उकालने पर सिर्फ एक सेर बाकी रह जाय तो वह तीव्रतम कहलाता है।

इक्षु और निम्बका एक सेर रस स्वभाविक रस, उसमें एक सेर जल मिला दिया जाय तो मन्द, दो सेर मिलानेसे मन्दतर, तीन सेर मिलानेसे मन्दतम रस कहलाता है।

એના ઉપભોગથી આત્મામા અત્યત આનદ ઉત્પન્ન થાય છે. અશુભ કર્મોનું ફળ લીંબડો, કરિયાતુ આદિની પેઠે અત્યત તિક્ત હોય છે. એનો અનુભવ કરવાથી જીવ અતિશય વ્યાકુળતા પ્રાપ્ત કરે છે. તીવ્ર તીવ્રતર આદિ સમજાવવાને ઉદાહરણ આપે છે–શેરડી યા લીંબડામાથી કાઢેલો કોઈનો ચાર શેર રસ 'સ્વાભાવિક રસ' કહેવાય છે. જો તેને અગ્નિ પર ઉકાળવાથી ત્રણ શેર રહે તો તે તીવ્ર કહેવાય છે, ફરી ઉકાળવાથી બે શેર રહે તો તે તીવ્રતર કહેવાય છે. અને તેને ફરીથી ઉકાળતા માત્ર શેર બાકી રહે તો તે તાવ્રતમ કહેવાય છે.

શેરડી અને લીંબડાના એક શેર સ્વાભાવિક રસમાં જો એક શેર પાણી મેળવવામા આવે તો મદ, બે શેર પાણી મેળવતા મદતર અને ત્રણ શેર પાણી મેળવવાથી મદતમ રસ કહેવાય છે.

यथा कस्यचिन्मोदकस्य प्रदेशः=कणिकादिदलसञ्चयः परिमाणेन द्विकर्षमितः, कस्यचित्कर्षत्रयमितः, एवं कस्मिंश्चित् कर्मदले परिमाणतोऽधिकसंख्यकाः, कस्मिंश्चिन्न्यूनसंख्यकाः, इत्येवं न्यूनाधिक्यरूपेण कर्मवर्गणाभिरात्मनोऽभिसम्बन्धः प्रदेशबन्धः (४)।

मोक्षम्=मोक्षणं मोक्षः, स च द्रव्यभावभेदाद्विविधः, तत्र द्रव्यतो निगडादितः, भावतो ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मपाशतः पृथग्भवनमात्मनः, प्रकृते च भावमोक्षस्य आत्मनः पुनरप्रादुर्भाव्यशेषकर्मक्षयादनन्तज्ञानशाश्वतावस्थिति-कृतकृत्यत्वाऽव्याबाधसुखस्वरूपस्य ग्रहणम्।

---

(४) जैसे किसी मोदकमें आटे आदिके प्रदेश, परिमाणमें दो तोला होता है, किसीका तीन तोला होता है। इसी प्रकार किसी कर्मदलमें अधिक संख्यावाले प्रदेश हैं, किसी कर्मदलमें कम संख्यावाले प्रदेश होते हैं, अतः न्यूनाधिक रूपसे कर्मवर्गणाओंके साथ आत्माका सम्बन्ध होना प्रदेशबन्ध है।

छूटनेको मोक्ष कहते हैं, मोक्ष भी दो प्रकारका है-(१) द्रव्यमोक्ष और (२) भावमोक्ष। बेड़ी आदिसे छूटना द्रव्यमोक्ष है और ज्ञानावरण आदि आठ कर्मरूपी पाशसे आत्माका मुक्त हो जाना भावमोक्ष है।

यहां समस्त कर्मोंके आत्यन्तिक अभावसे उत्पन्न होनेवाले अनन्त ज्ञान, शाश्वत स्थिति, कृत-कृत्यता, अव्याबाध सुखस्वरूप भाव-मोक्षका ग्रहण किया गया है।

---

(૪) જેમ કોઇ મોદકમા આટા આદિનો પ્રદેશ પરિમાણમાં બે તોલા હોય છે, કોઇમાં ત્રણ તોલા હોય છે; એજ રીતે કોઇ કર્મદળમાં અધિક સંખ્યાવાળા પ્રદેશો છે, કોઈ કર્મદળમાં ઓછી સંખ્યાવાળા પ્રદેશો હોય છે, એમ ન્યૂનાધિક રૂપે કર્મવર્ગણાઓની સાથે આત્માનો સંબંધ થવો એ પ્રદેશબંધ છે.

છૂટવાને મોક્ષ કહે છે. મોક્ષના પણ બે પ્રકાર છે. (૧) દ્રવ્ય-મોક્ષ અને (૨) ભાવમોક્ષ, બેડી વગેરેથી છૂટવું એ દ્રવ્યમોક્ષ છે અને જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ કર્મરૂપી પાશથી આત્માનું મુક્ત થઈ જવું તે ભાવમોક્ષ છે

અહીં સર્વ કર્મોના આત્યન્તિક અભાવથી ઉત્પન્ન થનારાં અનંત જ્ઞાન, શાશ્વત-સ્થિતિ, કૃતકૃત્યતા, અવ્યાબાધ-સુખ-સ્વરૂપ ભાવમોક્ષને ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે.

अत्र बौद्धा-"दीपनिर्वाणवदात्मनो निर्वाणं मोक्षः" यथोक्तम्—

"दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो, नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम् ।
दिशं न काञ्चिद्विदिशं न काञ्चित्, स्नेहक्षयात्केवलमेति शान्तिम् ॥१॥
जीवस्तथा निर्वृतिमभ्युपेतो, नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम् ।
दिशं न काञ्चिद्विदिशं न काञ्चित्, क्लेशक्षयात्केवलमेति शान्तिम् ॥२॥"

इत्याहुस्तच्छाश्वतावस्थितिपदेन निराकृतम्, सतोऽत्यन्तविनाशाभावात्,

---

बौद्धमतावलम्बी मानते हैं कि-"जैसे दीपक बुझ जाता है उसी प्रकार आत्माका अभाव हो जाना मोक्ष है"। कहाभी है—

"जैसे दीपककी ज्वाला जब नष्ट हो जाती है, तब न भूमिकी ओर जाती है न आकाशकी ओर जाती है, न किसी दिशामें जाती है, न विदिशामें जाती है; किन्तु स्नेह (तेल) का अभाव हो जानेसे शान्त हो जाती है ॥ १ ॥

इसी प्रकार मुक्त जीव न भूमिकी ओर जाता है, न आकाशकी ओर जाता है, न किसी दिशामें जाता है, न किसी विदिशामें जाता है, हां, दुःखोंका क्षय होजानेसे शान्त होजाता है, अर्थात् मुक्त अवस्थामें जीवका अभाव होजाता है ॥२॥"

ऐसा माननेवाले बौद्धोंका खण्डन मोक्षके लक्षणमें आये हुए 'शाश्वत अवस्थिति' पदसे किया गया है, क्योंकि सत् पदार्थका कभी अभाव

બૌદ્ધમતાવલમ્બીઓ માને છે કે-"જેમ દીપક બુઝાઇ જાય છે તેમ આત્માનો અભાવ થઈ જવો એ મોક્ષ છે." કહ્યું છે કે—

"જેમ દીપકની જ્વાળા જ્યારે નષ્ટ થઇ જાય છે, ત્યારે નથી તે ભૂમિની તરફ જતી, નથી આકાશની તરફ જતી, નથી કોઈ દિશામા જતી, નથી વિદિશામાં જતી, પરંતુ સ્નેહ (તેલ) નો અભાવ થવાથી શાન્ત થઇ જાય છે (૧)

એ રીતે મુક્ત જીવ નથી ભૂમિનું તરફ જતો, નથી આકાશની તરફ જતો, નથી કોઈ દિશામા જતો, નથી કોઇ વિદિશામાં જતો, હા, દુઃખોનો ક્ષય થઈ જવાથી શાન્ત થઇ જાય છે, અર્થાત્ મુકત અવસ્થામા જીવનો અભાવ થઈ જાય છે" (૧)

એમ માનનારા બૌદ્ધોનું ખંડન મોક્ષના લક્ષણમા આવેલા 'શાશ્વત અવસ્થિતિ' શબ્દ વડે કરવામા આવ્યું છે, કારણ કે સત્ પદાર્થનો કદાપિ અભાવ

तस्मादात्मनः सकलकर्ममलविरहिता सद्भावस्वरूपा काचिदवस्थाऽवश्यम्भाविनी।

न च 'दीपस्याऽभ्रस्य वा निरन्वयविनाशदर्शनादात्मनः स (निरन्वयविनाशः) कथं ने-'ति शङ्कनीयम्, तयोरपि निरन्वयविनाशानभ्युपगमात्, यथा कर्पूरस्य 'पिपरमेण्ट' इति ख्यातपदार्थस्य वा वातेन ह्रियमाणस्य परिणमनसौक्ष्म्यादिन्द्रियगोचरत्वापायेऽपि न सर्वथाऽभावः किन्त्ववस्थान्तरेण परिणतिमात्रम्, तथैव प्रदीपपर्यायाऽऽपन्नाः पुद्गलास्तमस्त्वेन परिणमन्ति, एवमभ्रस्यापि विशीर्यमाणस्य पुद्गलपुञ्जः परिणामसूक्ष्मत्वेन दृष्टिपथमप्राप्तोऽपि न पुद्गलत्वेनाऽसद्भूतः। एवमेवा-

---

नहीं होता। जब सत् पदार्थका अभाव नहीं हो सकता तो आत्माकी भी समस्त कर्मोंसे रहित विद्यमान अवस्था अवश्य होनी चाहिये।

बौद्ध-जब दीपककी ज्वालाका तथा मेघका निरन्वय नाश देखा जाता है तो आत्माका निरन्वय (सर्वथा) नाश क्यों नहीं हो सकता?।

जैन-यह कहना सत्य नहीं है कि दीपककी ज्वाला और मेघ का निरन्वय नाश होजाता है। वह सूक्ष्मरूपसे परिणमन होनेसे यद्यपि इन्द्रियगोचर नहीं होता तथापि उसका सर्वथा अभाव नहीं होजाता, वह दूसरी सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त होजाता है। इसी तरह प्रदीप अवस्था वाले पुद्गल अन्धकाररूपमें परिणत होजाते हैं। मेघ जब छिन्न-भिन्न हो जाता है तो सूक्ष्मरूपमें परिणत होजाने से इन्द्रियोंद्वारा गृहीत नहीं हो सकता तथापि पुद्गल के रूपमें विद्यमान रहता ही है। ऐसे ही समस्त

થતો નથી. જો સત્ પદાર્થનો અભાવ થઇ શકતો નથી તો આત્માની પણ સર્વ કર્મોથી રહિત વિદ્યમાન અવસ્થા અવશ્ય હોવી જોઇએ

બૌદ્ધ—જો દીપકની જવાળાનો તથા મેઘનો નિરન્વય નાશ જોવામાં આવે છે, તો આત્માનો નિરન્વય (સર્વથા) નાશ કેમ ન થઇ શકે?

જૈન—એમ કહેવુ સત્ય નથી કે દીપકની જવાળા અને મેઘનો નિરન્વય નાશ થઇ જાય છે સૂક્ષ્મરૂપથી પરિણમન થવાથી જો કે તે ઇન્દ્રિયગોચર થતાં નથી, તથાપિ એનો સર્વથા અભાવ થઇ જતો નથી તે બીજી સૂક્ષ્મ અવસ્થાને પામે છે એ રીતે પ્રદીપ અવસ્થાવાળા પુદ્ગલ અંધકારરૂપમાં પરિણત થઈ જાય છે મેઘ જ્યારે છિન્ન-ભિન્ન થઇ જાય છે ત્યારે તે સૂક્ષ્મરૂપમા પરિણત થઇ જાવાથી ઇંદ્રિયોદ્વારા ગ્રહીત થઇ શકતો નથી, તોપણ પુદ્ગલના રૂપમાં વિદ્યમાન

ऽऽत्माऽपि कृत्स्नकर्मकलापविप्रमुक्तः शुद्धः सिद्धो बुद्धोऽनन्तगुणसमृद्धो मोक्षावस्थायामपि विद्यत एवेति ।

अत्र 'अनन्तज्ञाने'-तिविशेषणेन नैयायिकवैशेषिकाभिमतं मतं निरस्तम्। तथाच—

"बुद्धि-सुख-दुःखेच्छा-द्वेष-प्रयत्न-धर्मा-ऽधर्म-संस्कारस्वरूपाणां नवानामात्मविशेषणगुणानामत्यन्तविच्छेदो मोक्षः" इति। अत्रोच्यते–बुद्ध्यादयो गुणा आत्मनो भिन्ना अभिन्ना वा?, अभिन्नाश्चेत्तद्विनाशे आत्मनोऽपि विनाशोऽवश्यम्भावी तत्स्वरूपत्वात्, औष्ण्यविनाशे वह्निविनाशवत्, तथा च तदानीं कस्य

कर्मोंसे रहित, शुद्ध, सिद्ध, बुद्ध और अनन्त गुणों से समृद्ध आत्मा मोक्ष–अवस्थामें भी विद्यमान रहती है।

'अनन्तज्ञान' विशेषण से नैयायिक–वैशेषिक मत का निराकरण किया गया है।

उनकी मान्यता है कि–"बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और संस्कार, इन आत्मा के नौ विशेष गुणोंका अत्यन्त विनाश हो जाना मोक्ष है।"

यहाँ पूछना यह है कि–बुद्धि आदि गुण आत्मा से भिन्न हैं या अभिन्न?, यदि अभिन्न हैं तो गुणोंका नाश होनेपर आत्माका भी नाश हो जायगा, क्योंकि आत्मा और गुण भिन्न नहीं हैं–एक ही हैं, जैसे उष्णताका नाश होनेपर अग्निका नाश होजाता है। जब आत्मा का

તો રહે જ છે એવી જ રીતે સર્વ કર્મોથી રહિત, શુદ્ધ, સિદ્ધ, બુદ્ધ અને અનંત ગુણોથી સમૃદ્ધ આત્મા મોક્ષ અવસ્થામાં પણ વિદ્યમાન રહે છે

'અનન્ત જ્ઞાન' વિશેષણથી નૈયાયિક–વૈશેષિક મતનું નિરાકરણ કરવામાં આવ્યું છે.

તેની માન્યતા એવી છે કે "બુદ્ધિ, સુખ, દુઃખ, ઇચ્છા, દ્વેષ, પ્રયત્ન, ધર્મ, અધર્મ અને સંસ્કાર, એ આત્માના નવ વિશેષ ગુણોનો અત્યંત વિનાશ થઇ જવો એ મોક્ષ છે"

અહીં પૂછવાનું એ છે કે–બુદ્ધિ આદિ ગુણ આત્માથી ભિન્ન છે કે અભિન્ન? જો અભિન્ન છે તો ગુણોનો નાશ થયા બાદ આત્માનો પણ નાશ થઇ જશે, કારણ કે આત્મા અને ગુણ ભિન્ન નથી–એક જ છે, જેમકે ઉષ્ણતાનો નાશ થવાથી અગ્નિનો પણ નાશ થઇ જાય છે, જો આત્માનો નાશ થઈ જશે તો

मोक्षः?। भिन्नाश्चेत्तर्हि वह्निशैत्ययोरिव तयोर्गुणगुणिभावोऽनुपपन्नः समवायस्याऽसिद्धत्वात्, अत एव न बुद्ध्यादीनामात्मगुणत्वम्। अस्तु वा अयौक्तिकोऽपि गुणगुणिभावस्तथापि ज्ञानसुखाद्यभावादात्मानं को जडीकर्तुमुद्यच्छेदिच्छेदपि? ईदृशाद्भवदभिमतान्मोक्षात्संसारावस्थैव सम्यक्तराऽस्माकमस्तु, यस्मिन् सत्यपि क्लेशे कादाचित्कं स्वल्पमपि सुखं लभ्यत एव।

लोकेऽपि भवदभिमतमोक्षमाहात्म्यमुपहस्यते, यथा—

नाश होजायगा तो मोक्ष किस का होगा?। अगर कहो कि ये गुण आत्मासे भिन्न हैं तो उनका आत्मा के साथ गुण-गुणीका सम्बन्ध कैसे हुआ?, भिन्न होनेके कारण जैसे अग्नि और शीतलता में गुण-गुणि सम्बन्ध नहीं होता वैसे ही आत्मा और बुद्धि आदि का भी सम्बन्ध नहीं हो सकता। यदि समवाय सम्बन्ध से गुण-गुणिभाव मान लोगे तो बुद्धि आदि गुणों का नाश नहीं हो सकता,क्योंकि समवाय सम्बन्ध को तुमने नित्य माना है, अतः बुद्धि आदि आत्मा के गुण ही सिद्ध नहीं होते। यद्यपि यह सम्बन्ध युक्ति से तो सिद्ध नहीं होता फिर भी मान लोगे तो जबकि मोक्षमें ज्ञान और सुख आदिका अभाव हो जाता है तो कौन बुद्धिमान् अपनी आत्मा को इन गुणों से रहित जड़ के समान बनाने का प्रयत्न करेगा? तुम्हारे इस मोक्षसे तो संसार ही भला जिसमें दुःखोंके साथ-साथ कभी-कभी थोड़ा बहुत सुख भी मिल जाता है। लोकमें भी तुम्हारे माने हुए मोक्ष की हँसी उड़ाई जाती है,सुनो—

પછી મોક્ષ કોનો થશે? અગર જો કહો કે એ ગુણ આત્માથી ભિન્ન છે તો આત્માની સાથે એનો ગુણ-ગુણીનો સંબંધ કેવી રીતે થયો? ભિન્ન હોવાને કારણે જેમ અગ્નિ અને શીતલતામાં ગુણ-ગુણી સંબંધ નથી હોતો, તેવી રીતે આત્મા અને બુદ્ધિ આદિનો પણ સંબંધ નથી હોઇ શકતો. જો સમવાય સંબંધથી ગુણ-ગુણીભાવ માની લેશો તો બુદ્ધિ આદિ ગુણોનો નાશ નથી થઇ શકતો, કારણ કે સમવાય સંબંધને તમે નિત્ય માન્યો છે એથી બુદ્ધિ આદિ આત્માના ગુણ જ સિદ્ધ થતા નથી. જો કે એ સંબંધ યુક્તિથી તો સિદ્ધ નથી થતો, તોપણ માની લેશો તો જો મોક્ષમાં જ્ઞાન અને સુખ આદિનો અભાવ થઇ જાય છે તો કયો બુદ્ધિમાન પોતાના આત્માને એ ગુણોથી રહિત જડની સમાન બનાવવાનો પ્રયત્ન કરશે? તમારા એવા મોક્ષ કરતા તો સંસાર જ સારો કે જેમા દુ:ખોની સાથે સાથે કોઇ-કોઇવાર થોડુ-ઘણુ સુખ પણ મળી જાય છે લોકોમા પણ તમારા માનેલા મોક્ષની હાસી ઉડાવવામા આવે છે સાભળો—

"वरं वृन्दावने रम्ये, शृगालत्वं व्रजाम्यहम् ।
न तु वैशेषिकीं मुक्तिं, प्रार्थयामि कदाचन ॥ १ ॥" इति ।

यत्तु "अनन्तसुखरूपो मोक्षः" इति तदप्यसमीचीनम् , तथाहि—तदनन्तसुखं मुक्तात्मनो ज्ञानगोचरं भवति न वा?, आद्ये पक्षे ज्ञानाऽऽनन्त्यप्रसङ्गः, तदन्तरेणाऽनन्तसुखसंवेदनाऽसम्भवात् । द्वितीये च सुखस्वभावताभङ्गप्रसङ्गः, सातसंवेदनस्यैव सुखत्वात्,अत एवाऽनन्तज्ञानविरहितसुखस्वभावत्वं मोक्षस्य न सिध्यति। "प्रकृतावुपरतायां[1] पुरुषस्य स्वस्वरूपेणाऽवस्थानं मोक्षः" इति हि साङ्ख्याः, तद्

[1] उपरतायां=निवृत्तायाम् ।

"मैं मनोहर वृन्दावन में शृगाल हो जाना पसंद करता हूँ, किन्तु वैशेषिकका मोक्ष नहीं चाहता ॥१॥"

जो कहते हैं कि—"मोक्ष अनन्तसुखस्वरूप है" अर्थात् मोक्ष में सुख ही अवशिष्ट रह जाता है और कुछ नहीं रहता। उनका यह मानना समीचीन नहीं है। वह अनन्त सुख मुक्तात्मा के ज्ञानका विषय है या नहीं? पहला पक्ष स्वीकार करो तो अनन्त सुखको जाननेके लिए अनन्त ज्ञान भी चाहिए। अनन्त ज्ञानके विना अनन्त सुखका बोध नहीं होसकता। दूसरा पक्ष अंगीकार करो तो सुखस्वभावता सिद्ध नहीं होसकती, क्योंकि, सातारूप संवेदनको ही सुख कहते हैं। जब संवेदन ही नहीं तो सुख हो ही नहीं सकता है, इसलिए "अनन्त ज्ञानसे रहित सुखस्वभाववाला मोक्ष" नहीं मानना चाहिए।

"प्रकृति जब उपरत होजाती है तब पुरुष अपने स्वरूपमें स्थित

"હું મનોહર વૃન્દાવનમાં શૃગાળ (શિયાળ) થઇ જવાનું પસંદ કરૂં છું, પરંતુ વૈશેષિકનો મોક્ષ નથી પસંદ કરતો." (૧)

જેઓ કહે છે કે "મોક્ષ અનંત સુખસ્વરૂપ છે" અર્થાત્ મોક્ષમાં સુખ જ અવશિષ્ટ રહી જાય છે બીજું કશું નથી રહેતું, તેઓનું એ માનવું પણ સમીચીન નથી એ અનંત સુખ મુક્તાત્માના જ્ઞાનનો વિષય છે કે નહિ? પહેલો પક્ષ સ્વીકારો તો અનંત સુખને જાણવાને માટે અનંત જ્ઞાન પણ જોઇએ અનંત જ્ઞાન વિના અનંત સુખનો બોધ થઇ શકતો નથી બીજો પક્ષ સ્વીકારો તો સુખ-સ્વભાવતા સિદ્ધ થઇ શકતી નથી કારણ કે સાતારૂપ સંવેદનને જ સુખ કહે છે જો સંવેદન જ હોતું નથી તો સુખ થઇ જ શકતું નથી. તેથી "અનંત જ્ઞાનથી રહિત સુખ-સ્વભાવવાળો મોક્ષ" નહિ માનવો જોઇએ.

"પ્રકૃતિ જ્યારે ઉપરત થઇ જાય છે ત્યારે પુરુષ પોતાના સ્વરૂપમાં સ્થિત

'आत्मनः' इतिपदेन प्रत्यादिष्टम्। किञ्च-तन्मते प्रकृति-पुरुषयोः संयोगोऽपि न घटते कुतो मोक्षचर्चा?, तथाहि-नित्या प्रकृतिः प्रवृत्तिस्वभावा तदितरस्वभावा वा? तयोराद्यः सावद्यः पक्षः, तत्र तत्प्रवृत्तेरुपरत्यभावेन मोक्षासम्भवात्, उपरत्यभ्युपगमे च प्रकृतेरनित्यत्वप्रसङ्गः। द्वितीयोऽपि पक्षो न क्षोदक्षमः प्रवृत्तेरेवाऽसम्भवतः कथमिव भवसम्भवः?, भवाभावे कस्य मोक्षः? एवं तन्मते मोक्षस्यैवायौक्तिकत्वात्कथं तल्लक्षणस्य समीचीनत्वं सिध्येत्?।

हो जाता है, इसी अवस्था को मोक्ष कहते हैं।"

ऐसी सांख्यमतानुयायिओंकी मान्यता है। 'आत्मनः' पदसे उसका निराकरण किया गया है। सांख्यमतमें प्रकृति और पुरुषका संयोग ही सिद्ध नहीं होता तब मोक्ष की चर्चा ही क्या करना? सो ही आगे दिखलाते हैं कि-प्रकृति का स्वभाव प्रवृत्ति करनेका है या नहीं?, पहला पक्ष दूषित है,क्योंकि प्रकृतिका स्वभाव यदि सर्वदा प्रवृत्ति करने का है तो उस प्रवृत्तिकी निवृत्ति नहीं होसकती और इसी कारणसे कभी मोक्ष भी नहीं होगा। दूसरा पक्ष भी विचार करनेसे बाधित होजाता है। जब प्रकृति प्रवृत्ति ही नहीं करेगी तो संसार कैसे होगा?, और जब संसार (कर्मसहित अवस्था) ही नहीं तो मोक्ष किससे होगा?, अर्थात् किसी प्रकार मोक्ष ही नहीं बनता। जब मोक्ष नहीं बनता तो उसके लक्षण की निर्दोषता भी सिद्ध नहीं होसकती।

થઈ જાય છે, એ અવસ્થાને મોક્ષ કહે છે"

એવી સાંખ્યમતાનુયાયીઓની માન્યતા છે आत्मनः શબ્દથી એનું નિરાકરણ કરવામાં આવ્યું છે સાંખ્યમતમા પ્રકૃતિ અને પુરૂષનો સયોગ જ સિદ્ધ નથી થતો તો મોક્ષની ચર્ચા જ શું કરવી? તેજ આગળ બતાવવામા આવે છે કે-પ્રકૃતિનો સ્વભાવ પ્રવૃત્તિ કરવાનો છે કે નહિ? પહેલો પક્ષ દૂષિત છે, કારણુ કે પ્રકૃતિનો સ્વભાવ જો સર્વદા પ્રવૃત્તિ કરવાનો છે તો એ પ્રવૃત્તિની નિવૃત્તિ થઇ શકતી નથી, અને તે કારણે કદાપિ મોક્ષ પણુ થશે નહિ બીજો પક્ષ પણુ વિચાર કરવાથી બાધિત થઇ જાય છે. જો પ્રકૃતિ પ્રવૃત્તિ જ નહિ કરે તો સસાર કેવી રીતે થશે? અને જો સસાર (કર્મસહિત અવસ્થા) જ નથી તો મોક્ષ શાનાથી થશે? અર્થાત્ કોઇ પ્રકારે મોક્ષ જ નથી બનતુ, જો મોક્ષ નથી બનતું તો તેના લક્ષણુની નિર્દોષતા પણુ સિદ્ધ થઇ શકે નહિ

यच्चाऽऽजीवकाः (सम्प्रदायविशेषाः) मुक्तेः सकाशादात्मनः पुनरागमनमामनन्ति, तथाहि—

"ज्ञानिनो धर्मतीर्थस्य, कर्त्तारः परमं पदम् ।
गत्वाऽऽगच्छन्ति भूयोऽपि, भवं तीर्थनिकारतः ॥१॥" इति,

तत् 'पुनरप्रादुर्भाववतये'-ति पदेनाऽपाकृतम्, यतो मोक्षः कर्मनाशे सति सम्पद्यते, कर्म च कर्मणैव जन्यते, ततश्च मुक्तावस्थायां कर्माभावात्कुतः पुनः कर्मोत्पत्तिः?, तदभावे च कुतस्तरां संसारागमनम्? संसारस्य कर्महेतुकत्वात्, न कारणमन्तरेण कार्योत्पत्तिरिति सर्वसंमतत्वाच्चेति ।

आजीवक सम्प्रदाय वाले ऐसा कहते हैं कि-"आत्मा मोक्ष से वापस लौट आती है। कहाभी है—

"धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले ज्ञानी परम पदको प्राप्त होकर जब तीर्थका अनादर होने लगता है तब मोक्षसे फिर संसारमें आ जाते हैं ॥१॥"

इनका यह मत 'पुनरप्रादुर्भाववतया' इस विशेषण से खण्डित हो गया है। क्योंकि कर्मोंके नाश होने पर ही मोक्ष होता है, और कर्म कर्मोंसे ही उत्पन्न होते हैं। मोक्षमें कर्मोंका अभाव होजानेसे कर्मोंकी उत्पत्ति नहीं होती, इसलिए संसारमें आगमन संभव नहीं है। कारणके विना कार्यकी उत्पत्ति नहीं होसकती, ऐसा सब सिद्धान्तवाले स्वीकार करते हैं।

આજીવક સંપ્રદાયવાળા એમ કહે છે કે-"આત્મા મોક્ષથી પાછો ફરી આવે છે કહ્યું છે કે—

"ધર્મતીર્થની સ્થાપના કરનારા જ્ઞાનીઓ પરમ પદને પ્રાપ્ત થઈને જ્યારે તીર્થનો અનાદર થવા લાગે છે ત્યારે મોક્ષમાંથી પાછા સંસારમાં આવી જાય છે" (૧)

એનો એ મત 'पुनरप्रादुर्भाववतया' એ વિશેષણથી ખંડિત થઈ ગયો છે કારણ કે કર્મોનો નાશ થવાથી જ મોક્ષ થાય છે. અને કર્મ કર્મોથી જ ઉત્પન્ન થાય છે મોક્ષમાં કર્મોનો અભાવ થઈ જવાથી કર્મોની ઉત્પત્તિ થતી નથી, તેથી સંસારમા ફરી આવવાનો સંભવ નથી કારણ વિના કાર્યની ઉત્પત્તિ થઈ શકતી નથી, એવું સર્વ સિદ્ધાન્તવાળાઓ સ્વીકારે છે

"आत्मनः सततमूर्ध्वगतिर्मुक्ति" -रिति मण्डलीमतानुयायिनः, तच्च प्रमत्तप्रलपनप्रायम्, लोकाकाशानन्तरं धर्मास्तिकायस्यास्तित्वाभावात्। धर्मास्तिकायस्य जीवपुद्गलानां गतिनिमित्तत्वं प्रमाणसिद्धं, तथाहि-गमनोन्मुखानां जीवपुद्गलानां गतिर्बाह्यनिमित्तसापेक्षा गतित्वात् ,बाह्यनिमित्तमत्र धर्मास्तिकायोऽन्यस्यासम्भवात्, लोकाकाशाऽनन्तरं तदभावाच्च तस्मादूर्ध्वं गतिसंभवः। अत एवाऽगर्हणार्हमार्हतमताभिमतमुक्तिस्वरूपमेवेति।

ननु नरामरतिर्यङ्नारकपर्यायस्वरूप एव संसारस्तेभ्यः पृथग्भावेन न कस्य-

---

मण्डलीमत के माननेवाले कहते हैं कि-"आत्मा सदा ऊपर चली जाती है कहीं ठहरती नहीं है" यह कथन उन्मत्त पुरुषके प्रलापके सदृश है, क्योंकि लोकाकाशके बाद धर्मास्तिकायका सद्भाव नहीं है। यह बात प्रमाण से सिद्ध है कि धर्मास्तिकायके विना जीव और पुद्गलोंकी गति विना बाह्य कारण के नहीं होसकती, क्योंकि-'वह गति है, जो जो गति होती है वह बाह्य निमित्तकी अपेक्षा रखती है'। गति में बाह्य निमित्त धर्मास्तिकाय ही होसकता, क्योंकि अन्य किसीमें ऐसी शक्ति नहीं है। यह धर्मास्तिकाय लोकाकाशसे आगे नहीं है, इसलिए लोकाकाशसे आगे आत्मा गमन भी नहीं कर सकती'। अत एव सिद्ध हुआ कि 'आर्हतमत (जिनमत) में माना हुआ मोक्षका लक्षण ही सर्वथा निर्दोष है'।

-प्रश्न-मनुष्य, देव, तिर्यञ्च और नारकी-पर्यायस्वरूप ही संसार है

મંડલીમતના માનનારાઓ કહે છે કે "આત્મા સદા ઉપર ચાલ્યો જાય છે, ક્યાય થોભતો-રહેતો નથી." આ કથન ઉન્મત્ત પુરુષના પ્રલાપ જેવું છે, કારણ કે લોકાકાશની પછી ધર્માસ્તિકાયનો સદ્ભાવ જ નથી એ વાત પ્રમાણુથી સિદ્ધ થએલી છે કે ધર્માસ્તિકાય વિના જીવ અને પુદ્ગલોની ગતિ બાહ્ય કારણુ વિના થઇ શકતી નથી, કારણુ કે 'એ ગતિ છે, જે જે ગતિ હોય છે તે તે બાહ્ય નિમિત્તની અપેક્ષા રાખે છે' ગતિમાં બાહ્ય નિમિત્ત ધર્માસ્તિકાય જ હોઇ શકે છે કારણુ કે અન્ય કોઈમા એવી શકિત નથી એ ધર્માસ્તિકાય લોકાકાશથી આગળ નથી, તેથી લોકાકાશથી આગળ આત્મા ગમન કરી શકતો નથી. એટલે સિદ્ધ થયુ કે "આર્હતમત (જૈનમત)મા માનેલું મોક્ષનું લક્ષણુ જ સર્વથા નિર્દોષ છે"

પ્રશ્ન-મનુષ્ય, દેવ, તિર્યંચ અને નારકી-પર્યાયસ્વરૂપ જ સંસાર છે. એ

चिदात्मन उपलब्धिस्ततश्च मनुष्यादिस्वरूपसंसाराभावे तल्लक्षणस्याऽऽत्मनोऽपि विनाशः, अत एव 'अभावलक्षणो मोक्षः' इति चेदत्रोच्यते—

नारकादयो जीवस्य पर्यायाः, नहि पर्यायनाशे पर्यायिणोऽपि नाशः प्रत्युत पर्यायान्तरोत्पत्तिरेव संजायते, यथा कटकाऽऽकृतिविनाशेऽपि सुवर्णस्य न विनाशः किन्तु कुण्डलाद्याकारान्तरोत्पत्तिर्दृश्यते, तथैव नारकादिपर्यायनाशे नात्मनोऽपि नाशः किन्तु सिद्धत्वपर्यायान्तरं सम्पद्यते। किञ्च नारकादयः पर्यायाः कर्मकृताः सन्त्यतो हि कर्माभावे पर्यायाभावः, कारणाभावे कार्यस्याप्यभावाद् वह्न्यभावे

इन चारों अवस्थाओं से भिन्न किसी आत्माकी उपलब्धि नहीं होती, इसलिए संसारका अभाव होने से आत्माका भी अभाव होजायगा, अत एव मोक्षको अभावस्वरूप मानना चाहिए।

उत्तर–नारक आदि जीवकी पर्यायें हैं। पर्यायोंका नाश होनेसे पर्यायी (आत्मद्रव्य) का नाश नहीं होता। बल्कि दूसरी पर्याय उत्पन्न होजाती है। जैसे सोनेके कड़ेका नाश होनेसे सोनेका नाश नहीं होता किन्तु कुण्डल आदि दूसरी पर्याय उत्पन्न होजाती है, वैसे ही नारक आदि पर्यायोंका नाश होनेपर भी आत्माका नाश नहीं होता किन्तु सिद्ध पर्याय उत्पन्न होजाती है। अथवा—

नारक आदि पर्यायें कर्मकृत हैं अतःकर्मके अभाव होनेपर उनका भी अभाव होता है, क्योंकि कारणके अभाव होनेसे कार्यका भी अभाव

ચારે અવસ્થાથી ભિન્ન કોઇ આત્માની ઉપલબ્ધિ થતી નથી. તેથી સંસારનો અભાવ હોવાથી આત્માનો પણ અભાવ થઇ જશે. તેથી મોક્ષને અભાવસ્વરૂપ માનવો જોઇએ

ઉત્તર—નારક આદિ જીવના પર્યાયો છે. પર્યાયોનો નાશ થવાથી પર્યાયી (આત્મદ્રવ્ય)નો નાશ નથી થતો, બલ્કે બીજો પર્યાય ઉત્પન્ન થઇ જાય છે. જેમકે સોનાના કડાનો નાશ થવાથી સોનાનો નાશ નથી થતો, પરન્તુ કુંડલ આદિ બીજો પર્યાય ઉત્પન્ન થાય છે તેવી રીતે નારક આદિ પર્યાયોનો નાશ થતા પણ આત્માનો નાશ નથી થતો કિન્તુ સિદ્ધપર્યાય ઉત્પન્ન થાય છે. અથવા—

નારક આદિ પર્યાયો કર્મકૃત છે તેથી કર્મનો અભાવ થતાં તેનો પણ અભાવ થાય છે કારણનો અભાવ થવાથી કાર્યનો પણ અભાવ થઇ જાય છે,

धूमाभाववत्, जीवत्वं तु न कर्मकृतं तस्य स्वाभाविकत्वादतो न खलु कर्माभावे जीवाभावस्तन्त्वभावे घटाभाववत्, तस्मान्नाऽभावलक्षणो मोक्षः किन्तु शाश्वतिकावस्थितिरूपः ।

असौ (मोक्षः) च सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूपरत्नत्रयहेतुकः, अन्यतमाभावे तदसम्भवात् काञ्चनोपलवियोगवत्, यथा हि न केवलं ज्ञानमात्रेणोपलात्सुवर्ण-वियोगः सुसम्पाद्यो भवितुर्हति श्रद्धान-क्रिययोरभावात् (१), न श्रद्धानमात्रेण ज्ञान-क्रिययोरभावात् (२), नापि क्रियामात्रेण ज्ञान-श्रद्धानयोरभावात् (३), न ज्ञान-श्रद्धानमात्रेण क्रियाया अभावात् (४),न ज्ञान-क्रियामात्रेण श्रद्धानाभावात् (५),

---

होजाता है, जैसे अग्निका अभाव होनेसे धूमका अभाव होता है। आत्मा कर्मकृत नहीं है, वह स्वाभाविक है, अत एव कर्मका अभाव होनेसे आत्माका नाश संभव नहीं है। जैसे तन्तुओंका नाश होनेसे घटका अभाव नहीं होता, इसलिए मोक्ष अभाव स्वरूप नहीं है किन्तु शाश्वत स्थितिवाला है ।

सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र स्वरूप रत्नत्रय मोक्षका कारण है। रत्नत्रयमेंसे कोई एक न हो तो मोक्ष नहीं होसकता, जैसे सुवर्ण और पाषाणका वियोग। अर्थात् जैसे (१) अकेले ज्ञान द्वारा पाषाणसे सुवर्णको पृथक् नहीं कर सकते,क्योंकि श्रद्धान और क्रियाका अभाव है।(२) केवल श्रद्धानसे भी पृथक् नहीं कर सकते, क्योंकि ज्ञान और क्रियाका अभाव है। (३) केवल क्रियासे भी पृथक् नहीं कर सकते, क्योंकि ज्ञान और श्रद्धान नहीं है। (४) ज्ञान और श्रद्धानसे ही सुवर्ण

જેવી રીતે અગ્નિનો અભાવ થવાથી ધૂમાડાનો પણ અભાવ થાય છે આત્મા કર્મકૃત નથી, એ સ્વાભાવિક છે. તેથી કર્મનો અભાવ થતા આત્માનો નાશ સંભવિત નથી, જેમ તંતુઓનો નાશ થવાથી ઘટનો અભાવ થતો નથી એથી કરીને મોક્ષ એ અભાવસ્વરૂપ નથી, કિન્તુ શાશ્વત સ્થિતિવાળો છે

સમ્યગ્જ્ઞાન, સમ્યગ્દર્શન અને સમ્યક્ચારિત્ર-સ્વરૂપ રત્નત્રય મોક્ષનું કારણ છે રત્નત્રયમાંથી કોઈ એક ન હોય તો મોક્ષ થઈ શકતો નથી, જેમ કે સુવર્ણ અને પાષાણનો વિયોગ, અર્થાત્ જેમ-(૧) એકલા જ્ઞાનદ્વારા પાષાણથી સુવર્ણ અલગ કરી શકાતુ નથી, કારણ કે શ્રદ્ધાન તથા ક્રિયાનો અભાવ છે. (૨) કેવળ શ્રદ્ધાનથી પણ અલગ કરી શકાતું નથી, કારણ કે જ્ઞાન અને ક્રિયાનો અભાવ છે (૩) કેવળ ક્રિયાથી પણ અલગ કરી શકાતુ નથી કારણ કે જ્ઞાન અને શ્રદ્ધાન નથી. (૪) જ્ઞાન અને શ્રદ્ધાનથી પણ સુવર્ણ અને પાષાણ અલગ

नापि श्रद्धानक्रियामात्रेण ज्ञानाऽभावात् (६)। एवमेव मोक्षोऽप्यन्यतमाभावे न संभवत्यपि तु समुदितरत्नत्रयादेवेति। तं मोक्षं च जानीयात्=विद्यादित्यर्थः ॥१५॥

और पाषाणको पृथक् नहीं कर सकते, क्योंकि वहां क्रिया नहीं है।(५) ज्ञान और क्रियामात्रसे भी पृथक् नहीं कर सकते,क्योंकि श्रद्धान नहीं है (६) श्रद्धान और क्रिया मात्रसे भी पृथक् नहीं कर सकते, क्योंकि ज्ञानका अभाव है। इसी प्रकार मोक्ष भी समुदित तीनोंसे प्राप्त होता है, किसी एकके अभावमें नहीं होसकता।

जिस प्रकार वन में आग लगने पर, वहाँ रहे हुए अन्धा नेत्रोंके अभावसे, पङ्गु चरणों के अभावसे और अश्रद्धालु अग्निकी दाहकता-शक्ति के प्रति श्रद्धा के अभावसे उस वन से नहीं निकल सकते हैं उसी प्रकार सम्यग्ज्ञानरूपी नेत्रोंसे रहित होनेके कारण अन्ध जीव,सम्यक्चारित्र से रहित होने के कारण पङ्गु जीव और सम्यग्दर्शन के अभाव से अश्रद्धालु जीव भी जन्म-जरा-मरण रूपी भीषण दुःखोंकी प्रचण्ड अग्नि से जलते हुए इस संसार रूपी वन से नहीं निकल सकते हैं। जैसे-अन्ध,पङ्गु, और अश्रद्धालु वनाग्नि में जल मरते हैं उसी प्रकार ये भी संसाराग्निमें जल मरते हैं। परन्तु जिनके नेत्र और दोनों चरण अक्षत हैं, और अग्निकी दाहकता-शक्ति के प्रति भी श्रद्धा है वे जिस प्रकार दावाग्नि-प्रज्वलित वनको पार कर जाते हैं उसी प्रकार जो जीव सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र

કરી શકાતા નથી કારણ કે ત્યાં ક્રિયા નથી. (૫) જ્ઞાન અને ક્રિયા માત્રથી પણ અલગ કરી શકાતાં નથી, કારણ કે શ્રદ્ધાન નથી (૬) શ્રદ્ધાન અને ક્રિયાથી પણ અલગ કરી શકાતાં નથી કારણ કે જ્ઞાનનો અભાવ છે એ રીતે મોક્ષ પણ સમુદિત ત્રણેથી પ્રાપ્ત થાય છે, કોઇ એકનો અભાવ હોય તો મોક્ષ પ્રાપ્ત થતો નથી

જેમ વનમા આગ લાગવાથી, ત્યા રહેલો આંધળો નેત્રો ન હોવાથી, લંગડો પગો ન હોવાથી, અને અશ્રદ્ધાળુ અગ્નિની દાહકતા-શકિત પ્રત્યે શ્રદ્ધા ન હોવાથી તે વનમાંથી નીકળી શકતો નથી તેમ સમ્યગ્જ્ઞાનરૂપી નેત્રો ન હોવાથી આંધળો જીવ, સમ્યક્ચારિત્ર ન હોવાથી લગડો જીવ, અને સમ્યગ્દર્શન ન હોવાથી અશ્રદ્ધાળુ જીવ પણ જન્મ-જરા-મરણરૂપી ભીષણ દુ:ખોના પ્રચડ અગ્નિથી પ્રજ્વલિત આ સસારરૂપી વનમાંથી નીકળી શકતો નથી. જેમ આધળો, લગળો અને અશ્રદ્ધાળુ વનાગ્નિમાં બળી મરે છે તેમ આ જીવો પણ સસારાગ્નિમા બળી મરે છે પરન્તુ જેના નેત્રો અને બેઉ ચરણો સાબૂત છે, અને અગ્નિની દાહકતા-શકિત પ્રત્યે પણ શ્રદ્ધા છે તે જેમ દાવાગ્નિ પ્રજ્વલિત વનને પાર કરી જાય છે તેજ પ્રકારે જે જીવો સમ્યગ્જ્ઞાન, સમ્યક્ચારિત્ર અને સમ્યગ્દર્શની

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
मूलम्—जया पुण्णं च पावं च, बंधं मोक्खं च जाणइ ।
१० १७ १६ ११ १२ १३ १४ १५
तया निव्विंदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे ॥१६॥

छाया—यदा पुण्यं च पापं च, बन्धं मोक्षं च जानाति ।
तदा निर्विन्ते भोगान्, ये दिव्या ये च मानुषाः ॥१६॥

सान्वयार्थः—जया=जब पुण्णं च पावं च=पुण्य और पापको, च=तथा बंधं मुक्खं=बंध और मोक्षको जाणइ=जानता है, तया=तब जे दिव्वे=जो देव सम्बन्धी य=और जे माणुसे=जो मनुष्यसम्बन्धी (भोग हैं, उन) भोए=भोगोंको निव्विदए=तत्त्वसे विचारता है, अर्थात् निस्सार समझने लगता है ॥१६॥

टीका—'जया पुण्ण'-मित्यादि। यदा पूर्वप्रतिपादितलक्षणलक्षितं पुण्यादिकं जानाति तदा ये दिव्याः=दिवि=स्वर्गे भवाः देवसम्बन्धिनः, च=तथा ये मानुषाः=मनुष्य-सम्बन्धिनः (भोगाः सन्ति तान् सर्वानपि) भोगान्=भुज्यन्ते=निर्विश्यन्ते=तत्त-दिन्द्रियनोइन्द्रियानुकूलतयोपयुज्यन्त इति भोगाः=शब्दादिविषयास्तान् निर्विन्ते=तत्त्वतो विचारयति-"भोगिभोगोपमाः खल्विमे भोगा अशुचयोऽशुचिसम्भवाः शटन-पतन-विध्वंसनस्वभावा अशाश्वताश्च, को नाम विवेकी एवंविधानिमान् भोगा-

और सम्यग्दर्शन से युक्त हैं वे भी जन्म-जरा-मरणरूप भीषण दुःखोंके प्रचण्ड-अग्नि से जलते हुए इस संसाररूपी वनको पार कर जाते हैं।

इससे सिद्ध है कि रत्नत्रयमेंसे किसी एककी भी कमी होनेसे सिद्धि नहीं प्राप्त होसकती। उस प्रकारके मोक्षको जाने ॥१५॥

'जया पुण्णं०' इत्यादि। जब पूर्वोक्तस्वरूपवाले पुण्य, पाप, बन्ध और मोक्षको जानता है तब देवों तथा मनुष्योंके सम्बन्धी भोगोंका वास्तविक विचार करता है। इन्द्रिय और मनकी अनुकूलतारूपसे जिनका उपयोग किया जाता है उन्हें भोग कहते हैं। भोगोंके विषयमें साधु ऐसा विचार करते हैं कि—"ये भोग भुजंगके समान भयकर हैं,

युक्त छे ते જીવો પણ જન્મ-જરા-મરણરૂપ ભીષણ દુઃખોના પ્રચંડ અગ્નિથી પ્રજ્વલિત આ સંસારરૂપી વનને પાર કરી જાય છે

એથી સિદ્ધ થાય છે કે એ રત્નત્રયમાથી કોઈએક પણ જો ઓછું હોય તો સિદ્ધિ પ્રાપ્ત થઈ શકતી નથી, એ પ્રકારના મોક્ષને જાણે (૧૫)

जया पुण्णं० ઈત્યાદિ જ્યારે પૂર્વોકત-સ્વરૂપવાળા પુણ્ય પાપ બંધ અને મોક્ષને જાણે છે ત્યારે દેવો તથા મનુષ્યો સબધી ભોગોનો વાસ્તવિક વિચાર કરે છે ઇંદ્રિય અને મનની અનુકૂળતારૂપે જેનો ઉપયોગ કરવામાં આવે છે એને ભોગ કહે છે ભોગોના વિષયમા સાધુ એવો વિચાર કરે છે કે "એ ભોગો ભુજંગ (સર્પ)નાં જેવા ભયકર છે, અશુચિ છે, અશુચિ પદાર્થોથી ઉત્પન્ન થાય છે.

नुपभोक्तुमभिलषेदपि? कस्य वा विवेकिनो वान्ताशनेच्छा, अतिपूतिगन्धिपूयरुधिरप्रवाहेऽवगाहनाऽऽकाङ्क्षा, शार्दूलसदननिवासाभिलाषः, कलकलायमाने सीसककटाहादौ पतनस्पृहा, समन्ततो दन्दह्यमानभवनान्तरालपरिभ्रमणसाहसम्, अजगरविषधरमुपधानीकृत्य शयनेच्छा वा जायेत?। "खणमित्तसुक्खा बहुकालदुक्खा" इत्यादि पर्यालोचयन् निर्वेदं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥१६॥

मूलम्-जया निव्विंदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे।
तया चयइ संजोगं, सब्भिंतर-बाहिरियं ॥ १७ ॥

छाया-यदा निर्विन्ते भोगान्, ये दिव्या ये च मानुषाः।
तदा त्यजति संयोगं, साभ्यन्तर-बाह्यम् ॥१७॥

सान्वयार्थः-जया=जब जे दिव्वे=जो देवसंबंधी और जे य माणुसे=मनुष्य-

---

अशुचि हैं, अशुचि पदार्थोंसे उत्पन्न होते हैं, सड़ जाते हैं, गल जाते हैं, नष्ट होजाते हैं, नित्य नहीं रहते। कौन विवेकी ऐसे भोगोंको भोगनेकी अभिलाषा करेगा ?, किस विवेकशील व्यक्तिको वमन भक्षण करनेकी इच्छा होगी ?, अहा ! कौन चाहेगा कि-' मैं अत्यन्त दुर्गन्धवाले पीप और रुधिरके प्रवाहमें अवगाहन (स्नान) करूँ?, क्या कोई सिंहकी मांद (गुफा)में निवास करनेकी इच्छा करता है?, उकलते हुए शीशेकी कडाहीमें कौन बुद्धिमान् कूदनेकी कामना करता है? कोई नहीं करता है। अथवा चारों ओरसे धधकते हुए घरमें घुसनेका कौन साहस कर सकता है ?, और अजगर सर्पको उपधान (उसीसा-सिरहाना) बनाकर कौन शयन करना चाहेगा ?। ये विषय-भोग क्षणमात्र सुख देनेवाले हैं और बहुत काल तक दुःख देनेवाले हैं ॥" ऐसा विचार कर मुनि जन निर्वेद (वैराग्य)को प्राप्त करते हैं ॥ १६ ॥

સડી જાય છે, ગળી જાય છે, નષ્ટ થઈ જાય છે, નિત્ય રહેતા નથી કયો વિવેકી મનુષ્ય એવા ભોગો ભોગવવાની અભિલાષા કરશે ?, કઈ વિવેકશીલ વ્યક્તિને વમન કરેલાંનું ભક્ષણ કરવાની ઇચ્છા થશે ?, અહા ! કોણ ઇચ્છશે કે- હું અત્યંત દુર્ગંધવાળા પરૂ અને રૂધિરના પ્રવાહમા અવગાહન (સ્નાન) કરીશ ? શુ કોઈ સિંહની ગુફામાં નિવાસ કરવાની ઇચ્છા કરે છે ? ઊકળતા સીસાની કડાઈમાં કયો બુદ્ધિમાન્ મનુષ્ય કૂદી પડવાની કામના કરે ?, કોઇ કરે નહિ. અથવા ચારે બાજુએથી અગ્નિથી ધગી રહેલા ઘરમા પેસવાનું સાહસ કોણ કરી શકે ?, અને અજગર સર્પને ઉપધાન (ઓશીકું) બનાવીને સૂવાની કોણ ઇચ્છા કરશે ?, એ વિષય-ભોગ ક્ષણમાત્ર સુખ દેવાવાળા છે અને ઘણા કાળ સુધી દુઃખ દેવાવાળા છે" એવો વિચાર કરીને મુનિજન નિર્વેદ (વૈરાગ્ય)ને પ્રાપ્ત કરે છે (૧૬)

सम्बन्धी भोए=भोगोंको निव्विंदए=तत्त्वसे विचारता है, तया=तब सब्भिंतर-बाहिरियं=आभ्यन्तर और बाह्य संजोगं=संयोगको चयइ=त्याग देता है ॥१७॥

टीका—'जया निव्विंदए' इत्यादि। यदा दिव्य-मानुष-भोगोपभोगेषु निर्वेदो जायते तदा साऽऽभ्यन्तरबाह्यम्=बहिर्भवो बाह्यः=सुवर्णमणिमाणिक्यादिः, अभ्यन्तरे=अन्तःकरणे भव आभ्यन्तरः=क्रोधादिः, आभ्यन्तरेण सहितः साऽऽभ्यन्तरः स चासौ बाह्यश्चेति साभ्यन्तरबाह्यस्तम्, संयोगं=संयुज्यते=सम्बध्यतेऽनेनाऽऽत्मेति संयोगः=ममत्वकृतसम्बन्धस्तम् त्यजति=परिहरति ॥१७॥

१ ४ ३ २
मूलम्-जया चयइ संजोगं, सब्भिंतर-बाहिरियं।
५ ६ ७ ९ ८
तया मुंडे भवित्ताणं, पव्वइए अणगारियं ॥ १८ ॥

छाया—यदा त्यजति संयोगं, साभ्यन्तर-बाह्यम्।
तदा मुण्डो भूत्वा, प्रव्रजत्यनगारिताम् ॥१८॥

सान्वयार्थः-जया=जब सब्भिंतरबाहिरियं=आभ्यन्तर और बाह्य संजोगं=संयोगको चयइ=त्याग देता है, तया=तब मुंडे=द्रव्यभावसे मुण्डित भवित्ता=होकर अणगारियं=साधुपनेको पव्वइए=प्राप्त होता है ॥१८॥

टीका—'जया चयइ' इत्यादि। यदा बाह्याऽऽभ्यन्तरसंयोगविरहितो भवति तदा मुण्डः=मुण्डनं मुण्डः ('मुडि खण्डने' इत्यस्माद्भावे घञ्) स च द्वेधा-द्रव्यतो

'जया निव्विंदए०' इत्यादि। जब देवसम्बन्धी और मनुष्य सम्बन्धी भोगोंको जान लेता है, तब सुवर्ण-मणि-माणिक्य आदि बाह्य परिग्रहका तथा क्रोधादि आन्तरिक परिग्रहका अर्थात् बाह्याभ्यन्तर परिग्रहका त्याग कर देता है ॥१७॥

'जया चयइ' इत्यादि। जब बाह्याभ्यन्तर परिग्रहका परित्याग करता है तब मुण्डित हो जाता है। मुण्डन दो प्रकारका होता है-

---

जया निव्विंदए० ઇત્યાદિ. જ્યારે દેવસબંધી અને મનુષ્યસબંધી ભોગોને જાણી લે છે, ત્યારે મુનિ સુવર્ણ-મણિ-માણિક્યાદિ બાહ્ય પરિગ્રહને તથા ક્રોધાદિ આંતરિક પરિગ્રહને અર્થાત્ બાહ્યાભ્યંતર પરિગ્રહને ત્યજી દે છે. (૧૭)

जया चयइ० ઇત્યાદિ. જ્યારે બાહ્યાભ્યંતર પરિગ્રહનો મુનિ પરિત્યાગ કરે છે ત્યારે મુંડિત થઇ જાય છે. મુંડન બે પ્રકારનાં હોય છે-(૧) દ્રવ્ય-મુંડન

भावतश्च, तत्र द्रव्यतो मस्तककेशापनयनम्, भावतो रागद्वेषापनयनम्, मुण्डनधर्मयोगाद्धर्म्यपि मुण्डः=मुण्डित इत्यर्थः, भूत्वा अनगारिताम्=अनगारिणो भावोऽनगारिता=साधुत्वं सर्वविरतिलक्षणं सामायिकादिकमित्यर्थः, ताम् प्रव्रजति=प्राप्नोति-प्रव्रजितो भवतीत्यर्थः ॥१८॥

मूलम्-जया[1] मुंडे[2] भवित्ताणं[3], पव्वइए[5] अणगारियं[4] ।
तया[6] संवरमुक्किट्ठं[9], धम्मं[7] फासे[10] अणुत्तरं[11] ॥ १९ ॥

छाया—यदा मुण्डो भूत्वा, प्रव्रजत्यनगारिताम् ।
तदा संवरमुत्कृष्टं, धर्मं स्पृशत्यनुत्तरम् ॥१९॥

सान्वयार्थः-जया=जब मुंडे=द्रव्यभावसे मुण्डित भवित्ता=होकर अणगारियं=साधुपनेको पव्वइए=प्राप्त होता है, तया=तब उक्किट्ठं=अत्यन्त प्रशस्त अणुत्तरं=सर्वश्रेष्ठ संवरं=संवर धम्मं=धर्मको फासे=स्पर्श करता है-प्राप्त होता है॥

टीका—'जया मुंडे०'इत्यादि। यदा मुण्डो भूत्वाऽनगारितां प्रव्रजति=प्राप्नोति, तदा उत्कृष्टम्=अतिप्रशस्तम्, अनुत्तरं=निरतिचारतया सर्वश्रेष्ठम्। यद्वा स्थिरं=निश्चलम्। अथवा जिनागमसिद्धत्वात्[1]प्रतिजल्पविवर्जितम्, यद्वा 'अनुत्तर' मित्येतत् क्रियाविशेषणम्, अनुत्तरम्=उक्तार्थकं यथा स्यात्तथा स्पृशतीति सम्बन्धः।

१ अनुत्तरम्=श्रेष्ठं, प्रतिजल्पविवर्जितं, स्थिरमिति शब्दकल्पद्रुमः ।

(१) द्रव्यमुण्डन, (२) भावमुण्डन। मस्तकके केशोंका लुञ्चन करना द्रव्यमुण्डन कहलाता है। राग द्वेष आदिको दूर करना भावमुण्डन है। दोनों प्रकारोंसे मुण्डित होकर सर्वविरतिरूप सामायिक आदि चारित्रको प्राप्त होता है ॥१८॥

'जया मुंडे०' इत्यादि। जब मुण्डित होकर सर्वविरतिको प्राप्त होता है तब अत्यन्त प्रशस्त निरतिचार होनेके कारण सर्वश्रेष्ठ निश्चल आचरणीय संवर धर्मको स्पर्श करता है। आते हुए कर्म जिस आत्म-

અને (૨) ભાવ-મુંડન મસ્તકના કેશનું લુંચન કરવું એ દ્રવ્યમુંડન કહેવાય છે રાગ-દ્વેષ આદિને દૂર કરવા એ ભાવ-મુંડન છે બેઉ પ્રકારે મુંડિત થઈને સર્વ-વિરતિરૂપ સામાયિક આદિ ચારિત્રને પ્રાપ્ત થાય છે (૧૮)

જયા મુંડે૰ ઇત્યાદિ જ્યારે મુંડિત થઈને સર્વ વિરતિને પ્રાપ્ત થાય છે. અત્યંત પ્રશસ્ત નિરતિચાર થવાને કારણે સર્વશ્રેષ્ઠ નિશ્ચલ આચરણીય સંવર-

संवरं=संव्रियते=निरुध्यते आस्रवत्कर्म येन सः, यद्वा संवरणं संवरः=स्थगनम् । स द्रव्य-भावभेदाभ्यां द्विविधः । तत्र द्रव्यतस्तथाविधद्रव्येण (मसृणमृत्तिकादिना) सलिलोपरि तरत्तरण्यादेरनारतमविशन्नीराणां विवराणां पिधानम्, भावतः-समिति-गुप्तिप्रभृतिभिरात्मतरण्यां क्षरत्कर्मसलिलानां स्थगनम् । अत्र च भावसंवरश्चारित्रलक्षणो गृह्यते, तं तल्लक्षणं धर्मं स्पृशति=प्राप्नोति, अन्तःकरणत आत्मना सम्बन्धयतीत्यर्थः ॥१९॥

मूलम्–जया[1] संवरमुक्किट्ठं[4] धम्मं[2] फासे[5] अणुत्तरं[6] ।[3]

तया[7] धुणइ[10] कम्मरयं[9], अबोहिकलुसंकडं[8] ॥२०॥

छाया—यदा संवरमुत्कृष्टं, धर्मं स्पृशत्यनुत्तरम् ।

तदा धुनाति कर्मरजो-ऽबोधिकलुषकृतम् ॥२०॥

सान्वयार्थः—जया=जब उक्किट्ठं=अत्यन्त प्रशस्त अणुत्तरं=सर्वश्रेष्ठ संवरं=संवर धम्मं=धर्मको फासे=स्पर्श करता है, तया=तब अबोहिकलुसंकडं=आत्माके मिथ्यात्व परिणाम द्वारा उपार्जित किये हुए कम्मरयं=कर्मरूपी रजको धुणइ=हटा देता है ॥२०॥

परिणामसे रुक जाते हैं उसे संवर कहते हैं। संवर, द्रव्य-भावके भेदसे दो प्रकारका है । जल पर चलती हुई नौकाके छेदोंसे उसमें प्रवेश करनेवाले जलको चिकनी मिट्टी वस्त्र आदिसे बन्द कर देना द्रव्य-संवर है । आत्मारूपी नौकामें आस्रवरूपी छिद्रों द्वारा आनेवाले कर्मरूपी जलको रोक देना भाव-संवर है । यहां भाव-संवर अर्थात् चारित्रका अधिकार है । अर्थात् सर्वविरत मुनि भाव-संवर रूपी धर्मको प्राप्त करते हैं । अथवा अनुत्तर रूपसे स्पर्श करते हैं, क्योंकि 'अनुत्तर' यह क्रियाविशेषण भी हो सकता है ॥१९॥

ધર્મને સ્પર્શ કરે છે આવતાં કર્મ જે આત્મપરિણામથી રોકાઈ જાય છે તેને સંવર કહે છે સંવર દ્રવ્ય–ભાવના ભેદે કરીને બે પ્રકારનો છે. જળપર ચાલતી નૌકાના છિદ્રવાટે નૌકામાં પ્રવેશ કરનારા જળને ચીકણી માટી, વસ્ત્ર આદિથી બંધ કરી દેવું તે દ્રવ્યસંવર છે. આત્મારૂપી નૌકામાં આસ્રવરૂપી છિદ્રોદ્વારા આવનારા કર્મરૂપી જળને રોકી દેવું એ ભાવ–સંવર છે અહીં ભાવસંવર એટલે ચારિત્રનો અધિકાર છે અર્થાત્ સર્વવિરત મુનિ ભાવસંવરરૂપી ધર્મને પ્રાપ્ત કરે છે, અથવા અનુત્તર–રૂપે સ્પર્શ કરે છે, કારણકે 'અનુત્તર' એ ક્રિયાવિશેષણ પણ હોઈ શકે છે (૧૯)

टीका-'जया संवर०' इत्यादि। यदा उत्कृष्टम् अनुत्तरं संवरं धर्मं स्पृशति तदा अबोधिकलुषकृतम्=बोधनं बोधिः=आत्मनः सम्यक्त्वपरिणामः, तद्विपरीतोऽबोधिः=मिथ्यात्वाध्यवसायः स एव कलुषं=पापं तेन कृतं=जनितम् अबोधिकलुषकृतम्, तत्, 'कलुष'-मित्यत्रानुस्वार आर्षः। कर्मरजः=क्रियते=मिथ्यात्वादिपरिणामैः सम्पाद्यते यत्तत् कर्म, तद्विधा-द्रव्य-भावभेदात्, तत्र द्रव्यतः-कूपिकासंभृतकज्जलवत् सकललोकसंभृता आत्मना सह बद्धा बध्यमाना बन्धार्हाश्च तथाविधपुद्गलपरमाणवः। भावतस्तु-आत्मनो रागद्वेषादिपरिणामः, अनयोश्च बीजवृक्षयोरनादिकालिककार्यकारणभाववत् पारस्परिककार्यकारणभावः, तथा च-द्रव्यकर्म भावकर्मणः कारणं कार्यं च। भावकर्म च द्रव्य-कर्मणः (कारणं कार्यं च)।

'जया संवर०' इत्यादि। जब साधु उत्कृष्ट अनुत्तर संवरधर्मको स्पर्श करते हैं तब आत्माके मिथ्यात्वपरिणामरूपी पापसे उत्पन्न हुए कर्मरूपी रजको धो डालते हैं।

कर्मरज दो प्रकारका है (१) द्रव्यकर्मरज, और (२) भावकर्मरज। कुप्पीमें भरे हुए कज्जलकी तरह समस्त लोकाकाशमें व्याप्त तथा आत्माके साथ बंधे हुए या बंधनेवाले और बंधते हुए विशेष प्रकारके (कार्मण जातिके) पुद्गलपरमाणुओंको द्रव्यकर्म कहते हैं। आत्माके राग-द्वेष आदि विभाव-परिणामोंको भावकर्म कहते हैं। वृक्षसे बीज उत्पन्न होता है और बीजसे वृक्ष उत्पन्न होता है। दोनों में कार्य-कारणभाव अनादिकालीन है। इसी प्रकार द्रव्यकर्म और भावकर्ममें कार्य-कारण

जया संवर० ઇત્યાદિ જ્યારે સાધુ ઉત્કૃષ્ટ અનુત્તર સંવરધર્મને સ્પર્શ કરે છે ત્યારે આત્માના મિથ્યાત્વ-પરિણામરૂપી પાપથી ઉત્પન્ન થએલો કર્મરૂપ રજને ધોઈ નાખે છે.

કર્મરજ બે પ્રકારની છે.-(૧) દ્રવ્યકર્મરજ, અને (૨) ભાવકર્મરજ કુપ્પીમા ભરેલા કાજળની પેઠે સમસ્ત લોકાકાશમા વ્યાપ્ત તથા આત્માની સાથે બંધાયલા તથા બંધનારા અને બંધાતા વિશેષ પ્રકારના (કાર્મણ જાતિના) પુદ્ગલપરમાણુઓને દ્રવ્યકર્મ કહે છે આત્માના રાગ-દ્વેષ આદિ વિભાવ-પરિણામોને ભાવકર્મ કહે છે. વૃક્ષથી બીજ ઉત્પન્ન થાય છે અને બીજથી વૃક્ષ ઉત્પન્ન થાય છે બેઉ કાર્ય-કારણભાવ અનાદિકાળનો છે એ પ્રકારે દ્રવ્યકર્મ અને ભાવ-

उक्तञ्च—

"जीवस्याशुद्धरागादिभावानां कर्म कारणम् ।
कर्मणस्तस्य रागादिभावः प्रत्युपकारिवत् ॥१॥" इति ।

संसारी खल्वात्माऽनादिकालतः कर्म बध्नाति, तदुदयादात्मनि रागद्वेषाद्युत्पत्तिः, तदनु यथा वह्निसंतप्तायःपिण्डः समन्तात् स्वसंसृष्टजलमाकर्षति तथाऽऽत्मैकक्षेत्रावगाहिकर्मपुद्गलानादत्ते, तैश्च रागादिकं भावकर्मोत्पाद्यते, तच्च पुनरपि द्रव्यकर्मो-

---

भाव है, अतः द्रव्यकर्म, भावकर्मका कारण भी है और कार्य भी है। कहाभी है—

"जीवके राग आदि अशुद्ध भावोंका कारण द्रव्यकर्म है और रागादि अशुद्ध भाव द्रव्यकर्मके कारण हैं। जैसे कोई पुरुष किसीका उपकार कर देता है तो वह उपकृत पुरुष उस उपकारीका पीछा उपकार करता है ॥१॥"

संसारी जीव अनादिकालसे कर्मोंका बन्ध कर रहा है। उन बंधे हुए कर्मोंके उदय होनेपर आत्मामें राग–द्वेष आदिकी उत्पत्ति होती है। रागादिके उदय होनेपर जैसे तपा हुआ लोहेका गोला आस पासके जलको आकर्षित करलेता है वैसे ही आत्मा एकक्षेत्रावगाही अर्थात् जिस आकाशके प्रदेशमें आत्मा स्थित है उसी आकाश प्रदेशमें स्थित कर्मके पुद्गलोंको ग्रहण करती है, उन रागादि–भावोंसे फिर द्रव्यकर्म

કર્મમાં કાર્ય-કારણભાવ રહેલો છે તેથી દ્રવ્યકર્મ, ભાવકર્મનું કારણ છે અને કાર્યપણ છે, તેમજ ભાવકર્મ દ્રવ્યકર્મનું કારણ છે અને કાર્યપણ છે. કહ્યું છે કે–

"જીવના રાગાદિ અશુદ્ધ ભાવોનું કારણ દ્રવ્યકર્મ છે, અને રાગાદિ અશુદ્ધ ભાવ દ્રવ્યકર્મનું કારણ છે, જેમ કોઇ પુરૂષ કોઇનો ઉપકાર કરે છે તો એ ઉપકૃત પુરૂષ એનો પાછો ઉપકાર કરે છે. (૧)"

સસારી જીવ અનાદિ કાળથી કર્મોનો બધ કરી રહ્યો છે. એ બંધાયલાં કર્મનો ઉદય થતાં આત્મામાં રાગદ્વેષ આદિની ઉત્પત્તિ થાય છે. રાગાદિનો ઉદય થતા જેમ તપાવેલો લોખડનો ગોળો આસપાસના જળને આકર્ષિત કરી લે છે તેમ આત્મા એક-ક્ષેત્રાવગાહી અર્થાત્ જે આકાશના પ્રદેશમાં આત્મા સ્થિત છે એ આકાશપ્રદેશમાં રહેલા કર્મના પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરે છે, એ રાગાદિ–ભાવોથી ફરી દ્રવ્યકર્મ બાધે છે એ રીતે દ્રવ્યકર્મ અને ભાવકર્મ એક

त्पादयति, तदेव रज इव रजो जीवस्य मालिन्यहेतुत्वात् घातिकर्मचतुष्टयमित्यर्थः, तद् धुनाति=व्यपनयति=दूरीकरोतीत्यर्थः ।

कर्मरजोधुननं च यद्यपि धर्मध्यानेनापि जायते तथापि आत्यन्तिकतद्विधूननं शुक्लध्यानेनैव भवति, यथा मलापगमेन शुचिताधर्माभिसम्बन्धात् पटः शुक्ल इत्युच्यते तथा रागद्वेषमलापनयनाच्छुचिधर्मसम्बन्धाद् ध्यानमपि शुक्लमित्युच्यते, तच्चतुर्विधम्-(१) पृथक्त्ववितर्कसविचारम्, (२) एकत्ववितर्काविचारम्, (३) सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्ति, (४) समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपाति, इति ।

तत्र पूर्वगतश्रुतज्ञानानुसारेण ध्येयविशेषगतोत्पादादिनानापर्यायाणां द्रव्या-

---

बंधते हैं। इस प्रकार द्रव्यकर्म और भावकर्म एक दूसरेके उत्पादक हैं। इन्हीं कर्मोंको रज कहते हैं, क्योंकि ये आत्मामें मलिनता उत्पन्न कर देते हैं। संवरधर्मको ग्रहण करनेसे यह चार-घातिकर्मरूपी रज दूर होजाती है।

कर्मरजका दूर होना यद्यपि धर्म-ध्यानसे होता है तथापि आत्यन्तिक रूपसे तो शुक्ल-ध्यानसे ही होता है। जैसे मैलको दूर करनेसे शुचिताधर्म आजाता है, इसलिए वस्त्रको शुक्ल (सफेद) वस्त्र कहते हैं, इसी प्रकार राग-द्वेषरूपी मैलके हट जानेपर शुचिताधर्मके सम्बन्धसे ध्यान भी शुक्लध्यान कहलाता है।

शुक्लध्यान चार प्रकारका है-(१) पृथक्त्ववितर्क-सविचार, (२) एकत्ववितर्क-अविचार, (३) सूक्ष्मक्रिय-अनिवर्त्ति, (४) समुच्छिन्नक्रिय-अप्रतिपाति।

(१) पृथक्त्ववितर्क-पूर्वगत श्रुतज्ञानके अनुसार किसी ध्येय पदार्थकी

બીજાનાં ઉત્પાદક છે એજ કર્મોને રજ કહે છે, કારણ કે તે આત્મામાં મલિનતા ઉત્પન્ન કરે છે સંવરધર્મને ગ્રહણ કરવાથી એ ચાર ઘાતિકર્મરૂપી રજ દૂર થઇ જાય છે

જો કે કર્મરજ ધર્મધ્યાનથી દૂર થાય છે તોપણ આત્યન્તિક રૂપથી તો શુકલ ધ્યાનથીજ થાય છે જેમ મેલ દૂર કરવાથી શુચિતા-ધર્મ આવી જાય છે તેથી વસ્ત્રને શુકલ (સફેદ) વસ્ત્ર કહે છે, તેમ રાગદ્વેષરૂપી મેલ હઠી જતાં શુચિતાધર્મના સબંધથી ધ્યાન પણ શુકલધ્યાન કહેવાય છે

શુકલ ધ્યાનના ચાર પ્રકાર છે (૧) પૃથક્ત્વવિતર્ક-સવિચાર, (૨) એકત્વ-વિતર્ક-અવિચાર, (૩) સૂક્ષ્મક્રિય અનિવર્તિ, (૪) સમુચ્છિન્નક્રિય અપ્રતિપાતિ.

(૧) પૃથક્ત્વવિતર્ક-પૂર્વગત શ્રુતજ્ઞાનને અનુસાર કોઇ ધ્યેય પદાર્થના ઉત્પાદ

र्थिक-पर्यायार्थिकादिनानानयैरर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिसहितानुचिन्तनं पृथक्त्ववितर्क-सविचारम् ।

तत्रार्थसंक्रान्तिस्तावत्-ध्येयस्यैकपर्यायपरित्यागेन पर्यायान्तरे, व्यञ्जने, योगे वा संक्रमः। व्यञ्जनं चात्र चतुर्दशपूर्वात्मकश्रुतसम्बन्धिशब्दाः, तत्रत्यं किञ्चिदेकं व्यञ्जनमुपादाय ध्यानमारभ्य व्यञ्जनान्तरेऽर्थे योगे वा संक्रमणं व्यञ्जनसक्रान्तिः। योगसंक्रान्तिश्च पुनः काययोगतो मनोयोगे, मनोयोगतो वाग्योगे, इत्येवमेकस्माद् योगादन्यतरस्मिन् योगे संक्रमणम्। त्रिविधमेतत्संक्रमणं च ध्यातुरनिच्छायामपि तादृश-(असंक्रान्त)-ध्यानसंपादनसामर्थ्याभावाज्जायते ।

उत्पाद आदि पर्यायोंका द्रव्यार्थिक या पर्यायार्थिक आदि विविध नयोंसे, अर्थ, व्यञ्जन और योगकी संक्रान्ति सहित चिन्तन करना पृथक्त्ववितर्क शुक्ल ध्यान है। ध्येय वस्तुकी एक पर्यायको छोड़कर दूसरी पर्यायका ध्यान करना या व्यञ्जन अथवा योगमें संक्रान्त होजाना अर्थसंक्रान्ति है। यहाँ चौदह पूर्वरूप श्रुतके शब्दोंको व्यञ्जन कहा है। उन शब्दोंमेंसे किसी एक शब्दका ध्यान आरम्भ करके फिर किसी दूसरे व्यञ्जनका ध्यान करने लगना, अथवा अर्थ या योगमें संक्रान्त होजाना व्यञ्जनसंक्रान्ति हैं। काययोगसे मनोयोगमें, मनोयोगसे वचनयोगमें, इस प्रकार एक योगसें दूसरे योगमें संक्रान्त होजाना योगसंक्रान्ति है। यह तीनों तरहका संक्रमण ध्याताकी इच्छा न होनेपर भी उतनी अधिक सामर्थ्य न होनेके कारण होता है।

આદિ નાના પ્રકારના પર્યાયોનું દ્રવ્યાર્થિક યા પર્યાયાર્થિક આદિ વિવિધ નયોથી, અર્થ વ્યંજન અને યોગની સંક્રાન્તિસહિત ચિંતન કરવું એ પૃથક્ત્વવિતર્ક શુક્લ-ધ્યાન છે, ધ્યેયવસ્તુના એક પર્યાયને છોડીને બીજા પર્યાયનું ધ્યાન કરવું યા વ્યંજન અથવા યોગમા સંક્રાન્ત થઈ જવું એ અર્થસંક્રાન્તિ છે. અહીં ચૌદ પૂર્વરૂપ શ્રુતના શબ્દોને વ્યંજન કહેલ છે, એ શબ્દોમાંથી કોઈએક શબ્દનું ધ્યાન આરંભીને પછી કોઈ બીજા વ્યંજનનું ધ્યાન લગાવવું અથવા અર્થ યા યોગમાં સંક્રાન્ત થઈ જવું એ વ્યજનસંક્રાન્તિ છે કાયયોગથી મનોયોગમા, મનોયોગથી વચનયોગમાં, એ પ્રકારે એક યોગથી બીજા યોગમાં સંક્રાન્ત થઈ જવું એ યોગ-સંક્રાન્તિ છે એ ત્રણે જાતનું સંક્રમણ, ધ્યાતાની ઇચ્છા ન હોવા છતાં પણ એટલું અધિક સામર્થ્ય ન હોવાને કારણે થાય છે.

इदमत्र तात्पर्यम्—

अत्र पूर्वगताः शब्दास्तदर्था वा ध्येया भवन्ति, परन्तु ध्यातुस्तादृशं सामर्थ्यं न भवति येन स कश्चिदेकं शब्दं वाऽर्थं वा ध्यायेत्, अत एव कश्चिदेकमर्थं तत्पर्यायं वा परित्यज्येतरमर्थमितरपर्यायं वा ध्यायति । इदमेव च परिवर्त्तनं संक्रमणशब्देनोच्यते । उक्तञ्च—

"अर्थादर्थान्तरे शब्दाच्छब्दान्तरे च संक्रमः ।
योगाद् योगान्तरे यत्र, सविचारं तदुच्यते ॥
द्रव्याद् द्रव्यान्तरं याति, गुणाद् याति गुणान्तरम् ।
पर्यायादन्यपर्यायं, सपृथक्त्वं भवत्यतः ॥" इति,

तात्पर्य यह है कि-इस ध्यानमें पूर्वगत शब्द या उसके अर्थका ध्यान किया जाता है, किन्तु इतनी सामर्थ्य नहीं होती कि एक ही शब्द या एक ही अर्थका ध्यान करते रहें, अत एव एक पदार्थ या उसकी पर्यायको छोड़ कर दूसरी पर्यायका ध्यान करते हैं। इसी प्रकारके परिवर्त्तन या बदलनेको संक्रमण कहते हैं। कहा भी है—

"एक अर्थसे दूसरे अर्थमें, एक शब्दसे दूसरे शब्दमें, तथा एक योगसे दूसरे योगमें संक्रमण होता है, अतः उसे सविचार (संक्रान्ति) कहते हैं ॥१॥

अर्थ व्यञ्जन और योगकी संक्रान्ति रूप होते हुए निज शुद्ध आत्म-द्रव्यको, एक गुणसे दूसरे गुणको, एक पर्यायसे दूसरी पर्यायको प्राप्त होता है, अतः उसे सपृथक्त्व कहते हैं ॥२॥"

તાત્પર્ય એ છે કે-આ ધ્યાનમાં પૂર્વગત શબ્દ યા તેના અર્થનું ધ્યાન કરવામાં આવે છે, કિંતુ એટલુ સામર્થ્ય હોતું નથી કે એકજ શબ્દ યા એકજ અર્થનું ધ્યાન કરતો રહે તેથી કરીને એક પદાર્થ યા એના પર્યાયને છોડીને બીજા પર્યાયનું ધ્યાન કરે છે આ પ્રકારના પરિવર્તનને યા બદલાવાને સંક્રમણ કહે છે. કહ્યું છે કે-

"એક અર્થથી બીજા અર્થમા, એક શબ્દથી બીજા શબ્દમાં તથા એક યોગથી બીજા યોગમાં સંક્રમણ થાય છે, તેથી તેને અવિચાર (સંક્રાન્તિ) કહે છે (૧)

અર્થ વ્યજન અને યોગની સંક્રાન્તિરૂપ થતા નિજ શુદ્ધ આત્મ-દ્રવ્યને, એક ગુણથી બીજા ગુણને, એક પર્યાયથી બીજા પર્યાયને પ્રાપ્ત થાય છે, તેથી તેને સપૃથક્ત્વ કહે છે." (૨)

नन्वर्थव्यञ्जनयोगान्तरेषु संक्रान्तस्य मनसः स्थैर्यासम्भवाद् ध्यानत्वमनुपपन्नमिति चेन्न, एकमेव ध्येयं लक्ष्यीकृत्य प्रवृत्तस्य ध्यानस्यार्थादौ संक्रमणेऽपि ध्येयैकमात्रोद्देश्यकतया मनःस्थिरीकरणरूपाया ध्यानक्रियायास्तत्रापि सद्भावात्।

इदं च ध्यानं भङ्गिकश्रुतपाठकानां योगत्रयवतां वा मुनिपुङ्गवानां भवति। अनेन ध्यानेन क्षपकश्रेण्यां समारूढो मुनिरष्टमगुणस्थानादारभ्य क्रमशो दशमगुणस्थानचरमसमये बलवदपि मोहनीयकर्म क्षपयित्वा द्वितीयध्यानमाश्रित्य द्वादशं गुणस्थानमधिरोहति।

उपशमश्रेण्यां समारूढस्तु तदानीं मोहनीयकर्म शमयित्वा एकादशमुपशान्तमोहगुणस्थानमारोहति। इदं च प्रथमं ध्यानमष्टमगुणस्थानादारभ्य क्षपकश्रेण्य-

---

प्रश्न-हे गुरुमहाराज! इस ध्यानमें अर्थ, व्यञ्जन और योगोंमें मन संक्रान्त होता रहता है, इस कारण स्थिरता नहीं रह सकती; फिर इसे ध्यान कैसे कह सकते हैं?।

उत्तर-हे शिष्य! परिवर्त्तन तो होता रहता है, परन्तु ध्येय एक ही रहता है। ध्येयकी एकताके कारण यह ध्यान कहलाता है।

यह ध्यान पूर्वधारी तीन योगवाले श्रेष्ठ मुनियोंको ही होता है। इस ध्यान से दशवें गुणस्थानके अन्त समयमें क्षपकश्रेणीमें आरूढ मुनि बलवान् मोहनीय कर्मका क्षय करके बारहवें गुणस्थानमें पहुँच जाते हैं, और यदि उपशमश्रेणिमें आरूढ हों तो ग्यारहवें उपशान्तमोह गुणस्थानमें जाते हैं। यह प्रथम ध्यान उपशमश्रेणीकी अपेक्षासे आठवें

પ્રશ્ન—હે ગુરૂમહારાજ! આ ધ્યાનમા અર્થ વ્યજન અને યોગમા મન સંક્રાન્ત થયા કરે છે તે કારણુથી સ્થિરતા રહી શકતી નથી, તો પછી તેને ધ્યાન કેમ કહી શકાય?

ઉત્તર—હે શિષ્ય! પરિવર્તન તો થયા કરે છે, પરન્તુ ધ્યેય એકજ રહે છે ધ્યેયની એકતાને કારણે એ ધ્યાન કહેવાય છે

એ ધ્યાન પૂર્વધારી ત્રણ યોગવાળા શ્રેષ્ઠ મુનિઓને જ થાય છે. આ ધ્યાનથી દસમા ગુણુસ્થાનના અત સમયે ક્ષપકશ્રેણીમા આરૂઢ મુનિ બળવાન્ મોહનીય-કર્મનો ક્ષય કરીને બારમા ગુણુસ્થાનમા પહોચી જાય છે, અને જો ઉપશમ-શ્રેણીમા આરૂઢ હોય તો અગ્યારમા ઉપશાન્તમોહ ગુણુસ્થાનમા જાય છે એ પ્રથમ ધ્યાન, ઉપશમ-શ્રેણીની અપેક્ષાએ કરીને આઠમા ગુણુસ્થાનથી લઇને

पेक्षया दशमगुणस्थानं यावत्, उपशमश्रेण्यपेक्षया तु एकादशगुणस्थानं यावद्भवतीति विवेकः ।

(२) ततश्चैकत्ववितर्काऽविचारमारभते, यथा सिद्धगारुडिकादिमन्त्रः सकलशरीरस्यापि विषमं विषं मन्त्रसामर्थ्येन सर्वावयवेभ्यः समाकृष्य दंशस्थाने समानीय संस्तम्भयति, तथा पूर्वगतश्रुतानुसारतोऽर्थ-व्यञ्जन-योगसंक्रान्तिराहित्येनाशेषविषयेभ्यः संहृत्यैकस्मिन्नेव पर्याये योगस्य निर्वातस्थाने दीपशिखावत्स्थिरीकरणम्–एकत्ववितर्काऽविचारम् ।

गुणस्थानसे लेकर ग्यारहवें गुणस्थान तक होता है। क्षपकश्रेणीकी अपेक्षासे तो अष्टमसे लेकर दशम गुणस्थान तक होता है, ग्यारहवाँ गुणस्थान उपशान्तमोह होनेसे क्षपकश्रेणीमें आरूढ मुनि उसका स्पर्श न करते हुए दूसरे ध्यानका आरम्भ करके बारहवें गुणस्थान में जाते हैं ।

(२) एकत्ववितर्क-अविचार–जैसे मन्त्र जाननेवाला पुरुष समस्त शरीरमें व्याप्त विषको मंत्रकी शक्तिद्वारा अन्य-अन्य अवयवोंसे खींचकर दंशस्थान (जहां विषैला जन्तुने काटा है उस जगह) पर स्तंभित कर देता है, वैसे ही पूर्वगत श्रुतके अनुसार अर्थ, व्यञ्जन और योगोंके परिवर्त्तनसे रहित होकर समस्त विषयोंसे विमुख होकर एक ही पर्यायके ध्यानमें वायुरहित स्थानमें रखे हुए दीपककी शिखा के समान स्थिर होजाना 'एकत्ववितर्क' ध्यान कहलाता है ।

અગ્યારમા ગુણસ્થાન સુધી થાય છે ક્ષપક-શ્રેણીની અપેક્ષાએ કરીને તો આઠમાથી લઈને દસમા ગુણસ્થાન સુધી થાય છે; અગ્યારમું ગુણસ્થાન ઉપશાન્તમોહ હોવાથી ક્ષપક શ્રેણીમાં આરૂઢ મુનિ એનો સ્પર્શ ન કરતા બીજા ધ્યાનનો આરભ કરીને બારમા ગુણસ્થાનમાં જાય છે

(૨) એકત્વવિતર્ક-અવિચાર—જેમ મંત્ર જાણવાવાળો પુરૂષ આખા શરીરમા વ્યાપેલા વિષને મત્રની શકિતદ્વારા અન્ય અન્ય અવયવોમાંથી ખેંચી લઈને દંશસ્થાન (જ્યા ઝેરી જંતુ કરડયો હોય તે સ્થાન) પર સ્તભિત કરી દે છે, તેમ પૂર્વગત શ્રુતને અનુસાર અર્થ વ્યજન અને યોગના પરિવર્તનથી રહિત થઈને બધા વિષયોથી વિમુખ થઈ એકજ પર્યાયના ધ્યાનમાં, વાયુરહિત સ્થાનમાં રાખેલા દીપકની શિખાની પેઠે સ્થિર થઈ જવુ એ 'એકત્વવિતર્ક' કહેવાય છે

अयमाशयः—प्रथमं ध्यानं सपृथक्त्वं भवति, इदं तु पृथक्त्वरहितम्। अत्रैकमर्थं विहायाऽर्थान्तरे, तथैकं शब्दं विहाय शब्दान्तरे, तथा योगाद् योगान्तरे संक्रमणं न भवति तस्मादिदमेकत्ववितर्काभिधानं ध्यानमिति। इदं च ध्यानं मनोवाक्काययोगान्यतमवतामेव महामुनीनां जायते, अत्र योगानां संक्रमणाभावात्।

तथा चोक्तम्—"निजात्मद्रव्यमेकं वा, पर्यायमथवा गुणम्।
निश्चलं चिन्त्यते यत्र, तदेकत्वं विदुर्बुधाः ॥१॥
यद्व्यञ्जनार्थयोगेषु, परावर्त्तविवर्जितम्।
चिन्तनं तदविचारं, स्मृतं सद्ध्यानकोविदैः ॥२॥" इति ॥

तात्पर्य यह है कि पहला ध्यान पृथक्त्व (अनेकप्रकारता) सहित होता है किन्तु दूसरे भेदमें पृथक्त्व नहीं रहता। इसमें एक अर्थसे दूसरे अर्थमें संक्रमण नहीं होता, इसलिए इसे एकत्ववितर्क–ध्यान कहते हैं।

यह ध्यान मन वचन काय योगोंमेंसे किसी एक योगवाले मुनिराजको ही होता है, अर्थात् इस ध्यानके समय एक ही योगमें स्थिर रहते हैं, क्योंकि इसमें योगोंका संक्रमण नहीं होता। कहा भी है–

"जिस ध्यानमें केवल निज आत्मा का अथवा उसकी एक पर्यायका या एक गुणका ध्यान किया जाता है उसे 'एकत्व' कहते हैं ॥१॥ जो व्यञ्जन अर्थ और योगोंके परिवर्त्तनसे रहित चिन्तन किया जाता है उसे 'अविचार' कहते हैं ॥२॥"

તાત્પર્ય એ છે કે પહેલુ ધ્યાન પૃથક્ત્વ (અનેક–પ્રકારતા) સહિત હોય છે કિન્તુ બીજા ભેદમા પૃથક્ત્વ રહેતું નથી. એમાં એક અર્થમાંથી બીજા અર્થમાં, એક શબ્દમાંથી બીજા શબ્દમા અને એક યોગમાંથી બીજા યોગમાં સંક્રમણ થતું નથી, તેથી એને એકત્વવિતર્ક ધ્યાન કહે છે

એ ધ્યાન મન વચન કાયાના યોગોમાંના કોઇ એક યોગવાળા મુનિરાજનેજ થાય છે, અર્થાત્ એ ધ્યાનને સમયે એકજ યોગમાં સ્થિર રહે છે, કારણ કે એમાં યોગોનુ સંક્રમણ થતુ નથી કહ્યું છે કે–

"જે ધ્યાનમાં કેવળ નિજ આત્માનું અથવા એના એક પર્યાયનું યા એક ગુણનું ધ્યાન કરવામાં આવે છે, તેને 'એકત્વ' કહે છે (૧) વ્યંજન અર્થ અને યોગોના પરિવર્તનથી રહિત ચિંતન કરવામાં આવે છે તેને 'અવિચાર' કહે છે. (૨)"

इदं ध्यानं क्षीणमोहनीयगुणस्थाने एव भवति, एतद्ध्यानचरमसमये क्षपकश्रेण्यारूढो मुनिर्ज्ञानावरणीयं दर्शनावरणीयमन्तरायाख्यं च, त्रीणि कर्माणि युगपत् क्षपयति, अस्य ध्यानस्य फलं च केवलज्ञानकेवलदर्शनाऽनन्तवीर्यप्राप्तिरेव, प्रकृतध्यानद्वयमन्तरेण केवलज्ञानं लब्धुमशक्यम् । एतच्चोभयं ध्यानं छद्मस्थानां जायते, तृतीयचतुर्थे तु केवलिनामेव भवत इति बोद्धव्यम् ॥२०॥

घातिकर्मक्षयजनितफलं प्रदर्शयितुमुपक्रमते-'जया धुणइ' इत्यादि ।

मूलम्-जया[१] धुणइ[४] कम्मरयं[३], अबोहिकलुसंकडं[२] ।

तया[५] सव्वत्तगं[६] नाणं[७], दंसणं[८] चाभिगच्छइ[९] ॥ २१ ॥

छाया—यदा धुनाति कर्मरजोऽबोधिकलुषकृतम् ।

तदा सर्वत्रगं ज्ञानं, दर्शनं चाभिगच्छति ॥२१॥

सान्वयार्थः—जया=जब अबोहिकलुसंकडं=आत्माके मिथ्यात्वपरिणामद्वारा उपार्जित किये हुए कम्मरयं=कर्मरूपी रजको धुणइ=हटा देता है, तया=तब सव्वत्तगं=सब जगह जानेवाले-सब पदार्थोंको जाननेवाले नाणं=ज्ञानको च=और दंसणं=दर्शनको अभिगच्छइ=प्राप्त करता है ॥२१॥

यह ध्यान क्षीणमोहनीय गुणस्थानमें ही होता है। इस ध्यानके अन्तमें ज्ञानावरणीय,दर्शनावरणीय और अन्तराय नामक तीन घातिकर्मोंका एक साथ ही क्षय हो जाता है। इस ध्यानका फल केवलज्ञान, केवलदर्शन और अनन्तवीर्यकी प्राप्ति है। इन दोनों ध्यानोंके विना केवलज्ञान नहीं प्राप्त होसकता। ये दोनों ध्यान छद्मस्थोंको होते हैं, तथा तीसरा और चौथा ध्यान केवलियों को होता है ॥२०॥

घातिकर्मोंके क्षय होनेसे उत्पन्न होनेवाला फल बतलाते हैं-'जया धुणइ' इत्यादि ।

એ ધ્યાન ક્ષીણમોહનીય ગુણસ્થાનમા જ થાય છે એ ધ્યાનના અંતમાં જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય અને અન્તરાય નામનાં ત્રણ ઘાતિ-કર્મોનો એકીસાથે જ ક્ષય થઈ જાય છે એ ધ્યાનનું ફલ કેવળ જ્ઞાન, કેવળ દર્શન અને અનંત વીર્યની પ્રાપ્તિ છે એ બેઉ ધ્યાન વિના કેવળ જ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ શકતું નથી એ બેઉ ધ્યાન છદ્મસ્થોને થાય છે, તથા ત્રીજું અને ચોથું ધ્યાન કેવળીઓને થાય છે. (૨૦)

ઘાતીકર્મોનો ક્ષય થવાથી ઉત્પન્ન થનારૂં ફળ બતાવે છે-जया धुणइ ઈત્યાદિ

टीका—यदाऽबोधिकलुषकृतं कर्मरजो धुनाति तदा सर्वत्रगं=सर्वत्र गच्छति=व्याप्नोतीति सर्वत्रगं=सकललोकालोकव्यापि तत्, ज्ञानं=ज्ञायन्ते=परिच्छिद्यन्ते द्रव्य-गुण-पर्यायादयोऽनेनेति ज्ञानं=केवलज्ञानमित्यर्थस्तत्, दर्शनं=दृश्यन्ते=साक्षात्क्रियन्ते द्रव्यादयो येनेति दर्शनम्=केवलदर्शनमित्यर्थस्तत्। "सामान्यार्थावबोधो दर्शनं, विशेषार्थावबोधो ज्ञान"-मित्युभयोर्भेदः, तथाहि—

"जं सामण्णग्गहणं दंसणमेयं विसेसियं नाणं" इति, चः समुच्चये, अभिगच्छति=कर्मजनितसकलाऽऽवरणाभावादतिशयेन सम्प्राप्नोति सयोगिकेवलिगुणस्थानमारोहतीत्यर्थः ॥२१॥

केवलज्ञान-केवलदर्शनयोः फलमाह–'जया सव्वत्तगं' इत्यादि।

जब साधु मिथ्यात्वरूपी पापसे उत्पन्न हुए कर्मरजको नष्ट कर देते हैं तब समस्त लोकाकाश और अलोकाकाशमें व्यापी द्रव्य पर्यायोंको जाननेवाला केवलज्ञान तथा केवलदर्शन प्राप्त होता है। पदार्थोंका सामान्य ज्ञान होना दर्शन है और विशेष ज्ञान होना ज्ञान है, यही दोनोंमें भेद है, कहाभी है—

"सामान्यका ग्रहण होना दर्शन है और विशेष का ग्रहण होना ज्ञान है।"

कर्मोंसे उत्पन्न हुए समस्त आवरणोंके अभावसे इन दोनों (ज्ञानदर्शन)को प्राप्त करते हैं ॥ २१ ॥

केवलज्ञान और केवलदर्शन का फल कहते हैं–'जया सव्वत्तगं' इत्यादि।

જ્યારે સાધુ મિથ્યાત્વરૂપી પાપથી ઉત્પન્ન થએલી કર્મરજને નષ્ટ કરી નાખે છે, ત્યારે સમસ્ત લોકાકાશ અને અલોકાકાશમા વ્યાપેલા દ્રવ્ય પર્યાયોને જાણવાવાળું કેવળજ્ઞાન તથા કેવળદર્શન પ્રાપ્ત થાય છે. પદાર્થોનું સામાન્ય જ્ઞાન થવું એ દર્શન છે અને વિશેષ જ્ઞાન થવું એ જ્ઞાન છે. એ બેઉમા ભેદ છે કહ્યુ છે કે—

"સામાન્યનું ગ્રહણ થવું એ દર્શન છે. અને વિશેષનું ગ્રહણ થવું એ જ્ઞાન છે."

કર્મોથી ઉત્પન્ન થએલા સર્વ આવરણોના અભાવથી એ બેઉ (જ્ઞાન-દર્શન)ને પ્રાપ્ત કરે છે (૨૧)

કેવલજ્ઞાન અને કેવલદર્શનનું ફળ કહે છે–जया सव्वत्तगं ઇત્યાદિ

मूलम्-जया सव्वत्तगं नाणं, दंसणं चाभिगच्छइ।
तया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली ॥२२॥

छाया-यदा सर्वत्रगं ज्ञानं, दर्शनं चाभिगच्छति।
तदा लोकमलोकं च, जिनो जानाति केवली ॥२२॥

सान्वयार्थः-जया=जब सव्वत्तगं=सब जगह जानेवाले-सब पदार्थोंको जाननेवाले नाणं=ज्ञानको च=और दंसणं=दर्शनको अभिगच्छइ=प्राप्त करता है, तया=तब जिणो=वीतराग केवली=केवलज्ञानी होते-हुए लोगमलोगं च= लोक और अलोकको जाणइ=जानते हैं ॥२२॥

टीका—यदा केवलज्ञानं केवलदर्शनं च प्राप्नोति तदा जिनः=घातिकर्मविजेता, केवली=केवलज्ञानी सन् लोकं=लोक्यत इति लोकस्तं जानाति=करतलामलकव-ज्ज्ञानविषयीकरोति।

आह-ननु कोऽयं लोकपदार्थः? यदि केनचिदेको ग्रामोऽवलोकितस्तर्हि किं तावानेव लोकः? न, अपरेण ततोऽप्यधिकग्रामदर्शनात्। तर्हि यावद् ग्रामादिक-

---

जब सर्वव्यापी ज्ञान तथा दर्शनको प्राप्त करते हैं तब केवली होकर लोक और अलोकको जानते हैं।

जो देखा जाता है उसे लोक कहते हैं।

प्रश्न-यदि किसीने एक ग्राम देखा हो तो लोक क्या उतना ही होगा?

उत्तर-उतना ही नहीं होगा, क्योंकि दूसरे उससे अधिक ग्राम देखते हैं?

प्रश्न-तो हमलोग जितने ग्रामोंको देखते हैं उतना ही लोक है?

જ્યારે સર્વવ્યાપી જ્ઞાન તથા દર્શનને પ્રાપ્ત કરે છે ત્યારે કેવળી થઇને લોક અને અલોકને જાણે છે.

જે જોઇ શકાય તેને લોક કહે છે.

પ્રશ્ન—જો કોઇએ એક ગ્રામ જોયું હોય તો લોક શું એટલો જ હોય?

ઉત્તર—એટલો જ નહિ હોય, કારણ કે બીજાઓ એથી વધારે ગ્રામો જુએ છે

પ્રશ્ન—તો આપણે જેટલાં ગ્રામોને જોઇએ છીએ એટલો જ લોક છે?

मस्माभिरवलोक्यते तावानेव लोकः ?, नहि, अनन्तज्ञानसम्पन्नेन सर्वज्ञेन यो लोक्यते स लोक इति ।

नन्वेतेनाऽलोकस्यापि लोकत्वप्रसङ्गस्तस्यापि सर्वज्ञेनावलोकितत्वात्, तथाचाऽलोकोऽपि किं लोकः ? न, यतो लोक्यते धर्मास्तिकायाद्याधारभूत आकाशविशेषो यः स लोक इत्यवधार्यम् । स च कटितटोभयपार्श्वतोनिहितहस्तद्वयो विस्फारितपादयुगलोऽवस्थितः पुरुष इव नृत्यद्भैरवोपासकाकृतिको वा ऊर्ध्वाऽधस्तिर्यग्भेदभिन्नश्चतुर्दशरज्जुपरिमितोऽसंख्यातप्रदेशात्मक आकाशविशेषस्तम् । तद्विपरीतोऽलोकः ।

उत्तर-उतना ही नहीं है। अनन्तज्ञानी सर्वज्ञ भगवान् द्वारा जितना देखा जाता है उतना लोक है।

प्रश्न-केवली भगवान् अलोकको भी देखते हैं तो उनके देखनेसे अलोक भी लोक हो जायगा ?

उत्तर-नहीं होगा। भगवान्ने धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यों का आधारभूत जो आकाश देखा है उसे लोक कहते हैं, ऐसा समझना चाहिये।

वह लोक कमरपर दोनों हाथ रखकर, पैर फैलाकर खड़े हुए पुरुष के आकारका, अथवा नाचते हुए भैरवोपासक (भोपा) की आकृतिका है। इसके तीन भेद हैं-(१) उदूर्ध्वलोक, (२) मध्यलोक, (३) अधोलोक। यह चौदह राजू जितना ऊंचा और असंख्यात-प्रदेशमय है। अलोकाकाश इससे विपरीत है।

ઉત્તર—એટલો જ નહિ. અનંતજ્ઞાની સર્વજ્ઞ ભગવાનદ્વારા જેટલો જોવાય છે એટલો લોક છે.

પ્રશ્ન—કેવળી ભગવાન્ તો અલોકને પણ જુએ છે તો એમના જોવાથી અલોક પણ લોક થઈ જશે ?

ઉત્તર—નહિ થાય ભગવાને ધર્માસ્તિકાય આદિ દ્રવ્યોનું આધારભૂત જે આકાશ જોયું છે એને લોક કહે છે, એમ સમજવું જોઈએ.

એ લોક કમર પર બેઉ હાથ રાખીને, પગ ફેલાવીને ઊભેલા પુરૂષના આકારનો, અથવા નાચતા ભૈરવોપાસક (ભુવા)ની આકૃતિનો છે તેના ત્રણ ભેદ છે (૧) ઊર્ધ્વલોક, (૨) મધ્યલોક, (૩) અધોલોક એ ચૌદ રાજૂ જેવડો ઉંચો અને અસંખ્યાત પ્રદેશમય છે અલોકાકાશ એથી વિપરીત છે

अस्तु लोको जीवपुद्गलादीनामनाधारतयाऽवस्थानासम्भवात्, अलोकस्तु कथम्?, तस्याऽमूर्त्तत्वेनेन्द्रियागोचरतयाऽस्तित्वसाधकप्रमाणाभावात्, इन्द्रियागोचरे चार्थे मनःप्रवृत्तेः कदाऽप्यसम्भवादिति न शङ्कनीयम्, इन्द्रियनोइन्द्रियविषयत्वाभावमात्र-दर्शनेन तदस्तित्वनिराकरणस्याऽशक्यत्वात्, अन्यथा हि प्रपितामहादीनामपि तत एवाभावः प्राप्नुयात्। यतः 'आसन् प्रपितामहादयोऽस्मादादिशरीरस्याऽन्यथाऽनुपपन्नत्वात्' इत्यनुमानेन तेषामस्तित्वं साध्यते चेदलोकस्याप्यनुमानेन सिद्धिरनवद्यैव, तथाहि–

प्रश्न–जीव और पुद्गल आदि विना आधारके नहीं ठहर सकते; अतः लोकाकाश मानना तो ठीक है, परन्तु अलोकाकाशके अस्तित्वमें क्या प्रमाण है?, कारण यह कि इन्द्रियोंका यह विषय नहीं है, क्योंकि अमूर्त्त है। जिस विषयमें इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति नहीं होती उसमें मन भी प्रवृत्त नहीं हो सकता। अत एव न इन्द्रियोंसे अलोकाकाशको जान सकते हैं और न मनसे।

उत्तर–यह प्रश्न ठीक नहीं है, क्योंकि इन्द्रिय और मनका विषय न होनेसे उसके अस्तित्वका खण्डन नहीं हो सकता, अन्यथा दादे परदादे आदि पूर्वजोंका भी अस्तित्व सिद्ध नहीं होगा, क्योंकि वे भी इन्द्रिय और मनके विषय नहीं होते। यदि कोई इस अनुमानसे पूर्वजोंका अस्तित्व सिद्ध करे कि–पितामह (दादा) आदि पूर्वजोंका किसी समयमें अस्तित्व था, क्योंकि उनके विना हमारा शरीर नहीं बन सकता तो अनुमानसे ही अलोककी भी सिद्धि मान लेनी चाहिए। अनुमान यह है–

પ્રશ્ન—જીવ અને પુદ્ગલ આદિ આધાર વિના રહી શકતા નથી, તેથી લોકાકાશ માનવું એ તો બરાબર છે, પરન્તુ અલોકાકાશના અસ્તિત્વનું શું પ્રમાણ છે?, કારણ એ છે કે ઇંદ્રિયોનો એ વિષય નથી કેમકે અમૂર્ત છે. જે વિષયમા ઇન્દ્રિયોની પ્રવૃત્તિ થતી નથી તેમાં મન પણ પ્રવૃત્ત થઇ શકતું નથી એથી કરીને ઇન્દ્રિયોથી અલોકાકાશને જાણી શકાતુ નથી તેમજ મનથી પણ જાણી શકાતુ નથી.

ઉત્તર—એ પ્રશ્ન બરાબર નથી કેમકે ઇન્દ્રિય અને મનનો વિષય ન હોવાથી તેના અસ્તિત્વનું ખંડન થઇ શકતું નથી એમ તો દાદા પડદાદા આદિ પૂર્વજોનું પણ અસ્તિત્વ સિદ્ધ નહિ થાય, કેમકે તે પણ ઇન્દ્રિય અને મનના વિષય નથી હોતા જો કોઇ અનુમાનથી પૂર્વજોનું અસ્તિત્વ સિદ્ધ કરે કે પિતા-મહ (દાદા) આદિ પૂર્વજોનું કોઇ સમયે અસ્તિત્વ હતુ, કારણ કે એના વિના આપણું શરીર બની શકે નહિ, તો અનુમાનથી જ અલોકની પણ સિદ્ધિ માની લેવી જોઇએ, અનુમાન એ છે કે–

लोकः सप्रतिपक्षः, व्युत्पत्तिमच्छुद्धपदाभिधेयत्वात्, यो हि व्युत्पत्तिमच्छुद्धपदाभिधेयः स सप्रतिपक्ष एव भवति, यथा घटः। यश्च लोकप्रतिपक्षः स एव सद्भूतोऽलोकः, अस्तित्ववत एव प्रतिपक्षित्वसम्भवात्।

ननु 'न लोकोऽलोकः' इति व्युत्पत्त्या घटादिष्वन्यतम एवालोकः सिध्यति किं पदार्थान्तरकल्पनया? इति चेदुच्यते-'न लोकः' इत्यत्र नञः पर्युदासार्थक-

---

लोक अपने प्रतिपक्ष (विरोधी-अलोक) की अपेक्षा रखता है, क्योंकि वह व्युत्पत्तिवाले समासरहित पदका वाच्य (अर्थ) है। जो जो व्युत्पत्तिवाले समासरहित पदका वाच्य होता है वह प्रतिपक्षसहित ही होता है, जैसे घट। घट व्युत्पत्तिवाला है और समासरहित है, अर्थात् दो पद मिल कर नहीं बना हुआ है, अत एव घटके प्रतिपक्ष-अघट-पट, मुकुट, शकट, कट आदि भी अवश्य होते हैं। लोकका जो प्रतिपक्ष है वह अस्तित्ववान् अलोक है, क्योंकि अस्तित्ववान् पदार्थ ही किसीका प्रतिपक्ष हो सकता है। गधेका सींग आदि नास्तित्ववान् पदार्थ किसीके प्रतिपक्ष नहीं होते॥

प्रश्न-'जो लोक नहीं वह अलोक है' ऐसा माननेसे लोकसे भिन्न जितने घट पट आदि पदार्थ हैं वे सब अलोक होंगे, क्योंकि वे लोक नहीं है-लोकसे भिन्न हैं। फिर घट आदि पदार्थोंसे भिन्न एक अलग अलोक क्यों मानते हो?

લોક પોતાના પ્રતિપક્ષ (વિરોધી-અલોક) ની અપેક્ષા રાખે છે, કારણ કે એ વ્યુત્પત્તિવાળા સમાસરહિત શબ્દનો વાચ્ય (અર્થ) છે. જે જે વ્યુત્પત્તિવાળા સમાસરહિત શબ્દનો વાચ્ય હોય છે તે પ્રતિપક્ષસહિત જ હોય છે જેમ ઘટ, ઘટ વ્યુત્પત્તિવાળો છે અને સમાસરહિત છે, અર્થાત્ બે શબ્દો મળવાથી બનેલો નથી, તેથી ઘટનો પ્રતિપક્ષ-અઘટ-પટ, મુકુટ, શકટ, કટ આદિ પણ અવશ્ય હોય છે લોકનો જે પ્રતિપક્ષ છે તે અસ્તિત્વવાન્ અલોક છે, કારણ કે અસ્તિત્વવાન્ પદાર્થ જ કોઇનો પ્રતિપક્ષ થઇ શકે છે ગધેડાનું શીંગડું વગેરે નાસ્તિત્વવાન્ પદાર્થ કોઇનો પ્રતિપક્ષ થતો નથી.

પ્રશ્ન—'જે લોક નથી તે અલોક છે' એમ માનવાથી લોકથી ભિન્ન જેટલા ઘટ પટ આદિ પદાર્થો છે તે બધા અલોક થશે, કારણ કે તે લોક નથી-લોકથી ભિન્ન છે પછી ઘટ આદિ પદાર્થોથી ભિન્ન એક જુદો અલોક કેમ માનો છો ?

अस्तु लोको जीवपुद्गलादीनामनाधारतयाऽवस्थानासम्भवात्, अलोकस्तु कथम्?, तस्याऽमूर्त्तत्वे नेन्द्रियागोचरतयाऽस्तित्वसाधकप्रमाणाभावात्, इन्द्रियागोचरे चार्थे मनःप्रवृत्तेः कदाऽप्यसम्भवादिति न शङ्कनीयम्, इन्द्रियनोइन्द्रियविषयत्वाभावमात्रदर्शनेन तदस्तित्वनिराकरणस्याऽशक्यत्वात्, अन्यथा हि प्रपितामहादीनामपि तत एवाभावः प्राप्नुयात्। यतः 'आसन् प्रपितामहादयोऽस्मादादिशरीरस्याऽन्यथाऽनुपपन्नत्वात्' इत्यनुमानेन तेषामस्तित्वं साध्यते चेदलोकस्याप्यनुमानेन सिद्धिरनवद्यैव, तथाहि-

प्रश्न-जीव और पुद्गल आदि विना आधारके नहीं ठहर सकते; अतः लोकाकाश मानना तो ठीक है, परन्तु अलोकाकाशके अस्तित्वमें क्या प्रमाण है?, कारण यह कि इन्द्रियोंका यह विषय नहीं है, क्योंकि अमूर्त्त है। जिस विषयमें इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति नहीं होती उसमें मन भी प्रवृत्त नहीं हो सकता। अत एव न इन्द्रियोंसे अलोकाकाशको जान सकते हैं और न मनसे।

उत्तर-यह प्रश्न ठीक नहीं है, क्योंकि इन्द्रिय और मनका विषय न होनेसे उसके अस्तित्वका खण्डन नहीं हो सकता, अन्यथा दादे परदादे आदि पूर्वजोंका भी अस्तित्व सिद्ध नहीं होगा, क्योंकि वे भी इन्द्रिय और मनके विषय नहीं होते। यदि कोई इस अनुमानसे पूर्वजोंका अस्तित्व सिद्ध करे कि-पितामह (दादा) आदि पूर्वजोंका किसी समयमें अस्तित्व था, क्योंकि उनके विना हमारा शरीर नहीं बन सकता तो अनुमानसे ही अलोककी भी सिद्धि मान लेनी चाहिए। अनुमान यह है-

પ્રશ્ન—જીવ અને પુદ્ગલ આદિ આધાર વિના રહી શકતા નથી, તેથી લોકાકાશ માનવું એ તો બરાબર છે, પરન્તુ અલોકાકાશના અસ્તિત્વનું શું પ્રમાણ છે?, કારણ એ છે કે ઇંદ્રિયોનો એ વિષય નથી કેમકે અમૂર્ત છે. જે વિષયમા ઇન્દ્રિયોની પ્રવૃત્તિ થતી નથી તેમા મન પણ પ્રવૃત્ત થઇ શકતું નથી એથી કરીને ઇન્દ્રિયોથી અલોકાકાશને જાણી શકાતું નથી તેમજ મનથી પણ જાણી શકાતુ નથી.

ઉત્તર—એ પ્રશ્ન બરાબર નથી કેમકે ઇન્દ્રિય અને મનનો વિષય ન હોવાથી તેના અસ્તિત્વનુ ખડન થઇ શકતું નથી એમ તો દાદા પડદાદા આદિ પૂર્વજોનું પણ અસ્તિત્વ સિદ્ધ નહિ થાય, કેમકે તે પણ ઇન્દ્રિય અને મનના વિષય નથી હોતા જો કોઇ અનુમાનથી પૂર્વજોનુ અસ્તિત્વ સિદ્ધ કરે કે પિતા-મહ (દાદા) આદિ પૂર્વજોનુ કોઇ સમયે અસ્તિત્વ હતુ, કારણ કે એના વિના આપણુ શરીર બની શકે નહિ, તો અનુમાનથી જ અલોકની પણ સિદ્ધિ માની લેવી જોઇએ, અનુમાન એ છે કે—

लोकः सप्रतिपक्षः, व्युत्पत्तिमच्छुद्धपदाभिधेयत्वात्, यो हि व्युत्पत्तिमच्छुद्धपदाभिधेयः स सप्रतिपक्ष एव भवति, यथा घटः। यश्च लोकप्रतिपक्षः स एव सद्भूतोऽलोकः, अस्तित्ववत एव प्रतिपक्षित्वसम्भवात्।

ननु 'न लोकोऽलोकः' इति व्युत्पत्त्या घटादिष्वन्यतम एवालोकः सिध्यति किं पदार्थान्तरकल्पनया? इति चेदुच्यते-'न लोकः' इत्यत्र नञः पर्युदासार्थक-

---

लोक अपने प्रतिपक्ष (विरोधी-अलोक) की अपेक्षा रखता है, क्योंकि वह व्युत्पत्तिवाले समासरहित पदका वाच्य (अर्थ) है। जो जो व्युत्पत्तिवाले समासरहित पदका वाच्य होता है वह प्रतिपक्षसहित ही होता है, जैसे घट। घट व्युत्पत्तिवाला है और समासरहित है, अर्थात् दो पद मिल कर नहीं बना हुआ है, अत एव घटके प्रतिपक्ष-अघट-पट, मुकुट, शकट, कट आदि भी अवश्य होते हैं। लोकका जो प्रतिपक्ष है वह अस्तित्ववान् अलोक है, क्योंकि अस्तित्ववान् पदार्थ ही किसीका प्रतिपक्ष हो सकता है। गधेका सींग आदि नास्तित्ववान् पदार्थ किसीके प्रतिपक्ष नहीं होते॥

प्रश्न–'जो लोक नहीं वह अलोक है' ऐसा माननेसे लोकसे भिन्न जितने घट पट आदि पदार्थ हैं वे सब अलोक होंगे, क्योंकि वे लोक नहीं है–लोकसे भिन्न हैं। फिर घट आदि पदार्थोंसे भिन्न एक अलग अलोक क्यों मानते हो?

લોક પોતાના પ્રતિપક્ષ (વિરોધી-અલોક) ની અપેક્ષા રાખે છે, કારણ કે એ વ્યુત્પત્તિવાળા સમાસરહિત શબ્દનો વાચ્ય (અર્થ) છે. જે જે વ્યુત્પત્તિવાળા સમાસરહિત શબ્દનો વાચ્ય હોય છે તે પ્રતિપક્ષસહિત જ હોય છે. જેમ ઘટ, ઘટ વ્યુત્પત્તિવાળો છે અને સમાસરહિત છે, અર્થાત્ બે શબ્દો મળવાથી બનેલો નથી, તેથી ઘટનો પ્રતિપક્ષ–અઘટ–પટ, મુકુટ, શકટ, કટ આદિ પણ અવશ્ય હોય છે લોકનો જે પ્રતિપક્ષ છે તે અસ્તિત્વવાન્ અલોક છે, કારણ કે અસ્તિત્વવાન્ પદાર્થ જ કોઇનો પ્રતિપક્ષ થઇ શકે છે ગધેડાનું શીંગડું વગેરે નાસ્તિત્વવાન્ પદાર્થ કોઇનો પ્રતિપક્ષ થતો નથી

પ્રશ્ન—'જે લોક નથી તે અલોક છે' એમ માનવાથી લોકથી ભિન્ન જેટલા ઘટ પટ આદિ પદાર્થો છે તે બધા અલોક થશે, કારણ કે તે લોક નથી–લોકથી ભિન્ન છે પછી ઘટ આદિ પદાર્થોથી ભિન્ન એક જૂદો અલોક કેમ માનો છો?

त्वात्, 'पर्युदासः सदृशग्राही'-ति नियमान्निषेध्यसदृशेनैव भाव्यम्, निषेध्यश्चात्र जीवाऽजीवाऽऽदिद्रव्याधारभूत आकाशविशेषात्मको लोकः, अतोऽलोकोऽप्याकाशविशेषरूप एव भवितुं योग्यः, यथा 'अधनोऽयम्' इत्युक्ते धनरहितो मनुष्य एव गृह्यते न तु घटपटादिः, तथेहाऽप्यलोको लोकानुरूप एव बोद्धव्य इति ॥२२॥

उत्तर–जो लोक नहीं वह अलोक है। यहाँ नञ्समास है। नञर्थ दो प्रकारका होता है। एक नञर्थ ऐसा होता है कि वह जिसका निषेध किया जाता है उस निषेध्यके समानका ही ग्रहण करनेवाला होता है उसे पर्युदास कहते हैं। कहा भी है कि– "पर्युदास सदृशका बोधक होता है।" अत एव लोकका निषेध रूप अलोक भी लोकहीके समान होना चाहिए। निषेध्य यहां जीव अजीव आदि द्रव्योंका आधारभूत आकाशविशेष है, अतः अलोक भी आकाशविशेष (जीव अजीव आदि द्रव्योंके आधारसे भिन्न) होना चाहिए। जैसे किसीने कहाकि यह 'अधन' है। इस वाक्यमें 'अधन' शब्दसे यह नहीं समझा जाता है कि यह घड़ा है या कपड़ा है, किन्तु धनरहित मनुष्य अर्थ ही समझा जाता है। इसी प्रकार यहाँ 'अलोक' शब्दसे घड़ा नहीं समझना चाहिए किन्तु आकाशविशेष ही समझना चाहिए। केवली भगवान् इन लोक और अलोक दोनोंको जानते हैं॥२२॥

ઉત્તર—જે લોક નથી તે અલોક છે. એમાં नञ् સમાસ છે. नञर्थ બે પ્રકારના હોય છે એક नञर्थ એવો હોય છે કે તે જેનો નિષેધ કરવામાં આવે છે એ નિષેધ્યની સમાનના જ ગ્રહણ કરનાર હોય છે, તેને પર્યુદાસ કહે છે, કહ્યું છે કે– "પર્યુદાસ સદૃશનો બોધક હોય છે" તેથી કરીને લોકના નિષેધરૂપ અલોક પણ લોકની જ સમાન હોવો જોઈએ અહીં નિષેધ્ય જીવ–અજીવ આદિ દ્રવ્યોનો આધારભૂત આકાશ-વિશેષ છે, તેથી અલોક પણ આકાશ-વિશેષ (જીવ અજીવ આદિ દ્રવ્યોના આધારથી ભિન્ન) હોવો જોઈએ, જેમકે કોઈએ કહ્યું કે એ 'અધન' છે, એ વાક્યમા 'અધન' શબ્દથી એમ નથી સમજાતું કે એ ઘડો છે યા કપડું છે, કિન્તુ 'ધન-રહિત મનુષ્ય' એવો અર્થ જ સમજાય છે એ રીતે અહીં 'અલોક' શબ્દથી ઘડો યા કપડુ ન સમજવું જોઈએ, કિન્તુ આકાશવિશેષ જ સમજવો જોઈએ. કેવળી ભગવાન્ એ લોક અને અલોક બેઉને જાણે છે. (૨૨)

१ ४ ५ ६ २ ७ ३
मूलम्–जया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली ।
८ ९ १० ११ १२
तया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ ॥ २३ ॥

छाया—यदा लोकमलोकं च, जिनो जानाति केवली ।
तदा योगान्निरुध्य, शैलेशीं प्रतिपद्यते ॥२३॥

सान्वयार्थः—जया=जब जिणो=वीतराग केवली=केवलज्ञानी होये हुए लोगमलोगं च=लोक और अलोकको जाणइ=जानते हैं, तया=तब जोगे=मन-वचन-कायके योगोंका निरुंभित्ता=निरोध करके सेलेसिं=शैलेशीकरणको पडिवज्जइ=प्राप्त करते हैं ॥२३॥

टीका—'जया लोग'-मित्यादि । यदा जिनः केवली लोकालोकं जानाति तदा योगान्=मनोवाक्कायलक्षणान् निरुध्य, तथाहि–मुक्तिपदेऽन्तर्मुहूर्त्तभाविनि आयुष्यन्तर्मुहूर्त्तमात्रावशेषे सति यद्यघातिकर्मचतुष्टयं स्वभावतः समस्थितिकं स्यात्तदा निष्कलङ्कः परमकल्याणाऽऽस्पदीभूतः केवली सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्याख्यं ध्यानमारभते । उत्कृष्टत आयुषः षण्मासावशेषे समुत्पन्नकेवलस्य भगवतस्तु तदा-

"जया लोग०" इत्यादि । जब घातिकर्मोंको जीतनेवाले केवली भगवान् लोक और अलोकको जान लेते हैं तब योगोंका निरोध करके शैलेशी अवस्थाको प्राप्त करते हैं ।

(३) अन्तर्मुहूर्त्त मात्र आयु शेष रहने पर यदि बाकी रहे हुए चारों अघातिया कर्मोंकी स्थिति स्वभावसे ही बराबर हो तो निष्कलङ्क परम कल्याणके आश्रयभूत केवली प्रभु सूक्ष्मक्रिय-नामक शुक्ल ध्यानके तीसरे पायेका ध्यान प्रारम्भ करते हैं, किन्तु जिन्हें उत्कृष्ट आयुकर्म छह मास अवशेष रहने पर केवलज्ञान उत्पन्न होता है उन्हें नियमसे केवलिसमुद्घात

जया लोग० ઇત્યાદિ જ્યારે ઘાતી કર્મોને જીતવાવાળા કેવળી ભગવાન્ લોક અને અલોકને જાણી લે છે ત્યારે યોગોને નિરોધ કરીને શૈલેશી અવસ્થાને પ્રાપ્ત કરે છે

(૩) અન્તર્મુહૂર્ત માત્ર આયુ શેષ રહેતા જો બાકી રહેલા ચારે અઘાતી કર્મોની સ્થિતિ સ્વભાવથી બરાબર હોય તો નિષ્કલંક પરમ કલ્યાણના આશ્રયભૂત કેવળી પ્રભુ સૂક્ષ્મક્રિય નામના શુકલ ધ્યાનના ત્રીજા પાયાનું ધ્યાન પ્રારંભે છે કિન્તુ જેમને ઉત્કૃષ્ટ આયુકર્મ છ માસ અવશેષ રહેતા કેવળજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે, તેમને નિયમથી કેવળી સમુદ્ઘાત કરવો પડે છે, કારણ કે એમનું આયુકર્મ

युषोऽल्पत्वाद् वेदनीयनामगोत्रकर्मणां च स्थितिबाहुल्याच्च नियतसमुद्घातत्वात्, तत्कृत्वा वेदनीयादिषु चतुर्षु समस्थितिकेषु सत्सु तदारम्भः।

यदा जघन्ययोगवतः सञ्ज्ञिपर्याप्तस्य मनोद्रव्याणि समये२ निरुन्धन् असंख्यातसमयैः सम्पूर्णं मनोयोगं, तत्पश्चात्पर्याप्तद्वीन्द्रियस्य वाग्योगपर्यायतोऽसंख्यातगुणन्यूनवाग्योगपर्यायान् प्रतिसमयं निरुन्धन् असंख्यातसमयैः सम्पूर्णवाग्योगं, ततश्च प्रथमसमयसमुत्पन्ननिगोदजीवस्य जघन्यकाययोगपर्यायतोऽसंख्यातगुणहीनकाययोगं प्रतिसमयं निरुन्धन् असंख्यातसमयैर्बादरकाययोगं च सर्वथा निरुणद्धि

करना पड़ता है, क्योंकि उनका आयुकर्म अल्प होता है और उनके वेदनीय नाम गोत्र कर्मोंकी स्थिति अधिक होती है, इसलिए वे पहले समुद्घातके द्वारा चारों कर्मोंकी स्थिति बराबर करके फिर तीसरे पायेका ध्यान आरम्भ करते हैं।

जब जघन्य योगवाले सञ्ज्ञी पर्याप्तकके मनोद्रव्य और मनोद्रव्य के व्यापारोंसे असंख्यात गुणहीन मनोद्रव्योंका प्रतिसमयमें निरोध करते हुए असंख्यात समयोंमें सम्पूर्ण मनोयोगका निरोध कर देते हैं। तब मनोयोगका निरोध करके पर्याप्त द्वीन्द्रियके वचनयोगकी पर्यायोंसे असंख्यात गुणहीन वचनयोगकी पर्यायोंका प्रतिसमय निरोध करते हुए समस्त वचनयोगका निरोध करते हैं। वचन योगका सम्पूर्ण निरोध करके प्रथम समयमें उत्पन्न निगोदिया जीवके जघन्य काययोग की पर्यायों से असंख्यातगुणहीन काययोगका प्रतिसमय निरोध करते हुए असंख्यात समयोंमें बादर काययोगका भी सर्वथा निरोध कर देते हैं।

અલ્પ હોય છે અને એમના વેદનીય નામ ગોત્ર કર્મોની સ્થિતિ વધારે હોય છે. તેથી કરીને તે પહેલા સમુદ્ઘાતની દ્વારા ચારે કર્મોની સ્થિતિ બરાબર કરીને પછી ત્રીજા પાયાનું ધ્યાન આરંભે છે.

જ્યારે જઘન્ય યોગવાળા સંજ્ઞી પર્યાપ્તકના મનોદ્રવ્ય અને મનોદ્રવ્યના વ્યાપારોથી અસંખ્યાતગુણહીન મનોદ્રવ્યોનો પ્રતિ સમયે નિરોધ કરતાં અસંખ્યાત સમયોમાં સંપૂર્ણ મનોયોગનો નિરોધ કરીને પર્યાપ્ત દ્વીન્દ્રિયના વચનયોગના પર્યાયોથી અસંખ્યાતગુણહીન વચનયોગના પર્યાયોનો પ્રતિસમય નિરોધ કરતા સમસ્ત વચનયોગનો નિરોધ કરે છે વચનયોગનો સંપૂર્ણ નિરોધ કરીને પ્રથમ સમયમા ઉત્પન્ન નિગોદિયા જીવના જઘન્ય કાયયોગના પર્યાયોથી અસંખ્યાતગુણહીન કાયયોગનો પ્રતિસમય નિરોધ કરતા અસંખ્યાત સમયોમાં બાદર કાયયોગનો

तदेदं सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्तिध्यानमुपक्रमते। तत्र श्वासोच्छ्वासस्वरूपं सूक्ष्ममपि काययोगं निरुध्य=अयोगित्वं प्राप्येत्यर्थः, शैलेशीम्=शैलाः=पर्वतास्तेषामीशः शैलेशः=सुमेरुस्तद्वत् स्थैर्यं यस्यामवस्थायां सा, यद्वा शीलं=यथाख्यातचारित्रं तस्येशः=स्वामी शीलेशस्तस्येयमवस्था शैलेशी तां प्रतिपद्यते मध्यमकालेन 'अ-इ-उ-ऋ-ऌ' इत्येवंरूपपञ्चलघ्वक्षरोच्चारणसमकालस्थितिकं समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपातिध्यानमनुभवतीत्यर्थः,

अर्थात् समस्त मनोयोग और वचनयोगका तथा बादर काययोगका निरोध होने पर सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्ति नामक तीसरे ध्यानको आरंभ करते हैं। तीसरे ध्यानके समय श्वासोच्छ्वासरूप काययोगकी सूक्ष्म-क्रिया ही रहती है। इस ध्यानसे उस सूक्ष्मक्रियाका भी निरोध करके अयोगी हो जाते हैं। अयोगी होकर अर्थात् तेरहवें गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थानमें पहुंचकर शैलेशी अवस्थाको प्राप्त होते हैं। जिसमें शैलों (पर्वतों) के ईश (स्वामी) सुमेरु पर्वतके समान स्थिरता रहती है उसे शैलेशी अवस्था कहते हैं। अथवा-शील (यथाख्यातचारित्र) के ईश(स्वामी) को शीलेश कहते हैं, उनकी अवस्थाको शैलेशी कहते हैं। इस शैलेशी अवस्थाको प्राप्त होकर न धीमे न जल्दी अर्थात् मध्यम काल से 'अ-इ-उ-ऋ-ऌ' इन पांच ह्रस्व अक्षरोंके उच्चारणमें जितना समय लगता है उतने समय तक चौदहवें अयोगिकेवली गुणस्थानमें रह कर समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपाति ध्यान ध्याते हैं॥

પણ સર્વથા નિરોધ કરી નાંખે છે અર્થાત્ સમસ્ત મનોયોગ અને વચનયોગનો તથા બાદર-કાયયોગનો નિરોધ થતાં સૂક્ષ્મક્રિયાઽનિવર્તિ નામના ત્રીજા ધ્યાનનો આરંભ કરે છે. ત્રીજા ધ્યાનને સમય શ્વાસોચ્છ્વાસરૂપ કાયયોગની સૂક્ષ્મ-ક્રિયા જ રહે છે, એ ધ્યાનથી તે સૂક્ષ્મ-ક્રિયાનો પણ નિરોધ કરીને અયોગી થઇ જાય છે. અયોગી થઇને અર્થાત્ તેરમે ગુણસ્થાનેથી ચૌદમા ગુણસ્થાનમાં પહોંચીને શૈલેશી અવસ્થાને પ્રાપ્ત થાય છે જેમા શૈલો (પર્વતો)ના ઈશ (સ્વામી) સુમેરૂ પર્વતની પેઠે સ્થિરતા રહે છે તેને શૈલેશી અવસ્થા કહે છે, અથવા શીલ (યથા-ખ્યાત-ચારિત્ર)ના ઈશ (સ્વામી)ને શીલેશ કહે છે, એની અવસ્થાને શૈલેશી કહે છે એ શૈલેશી અવસ્થાને પ્રાપ્ત થઇને, નહિ ધીમે કે નહિ જલદી અર્થાત્ મધ્યમ કાલથી अ-इ-उ-ऋ-ऌ એ પાંચ હ્રસ્વ અક્ષરોના ઉચ્ચારણમા જેટલો સમય લાગે એટલા સમય સુધી ચૌદમે અયોગિકેવળી ગુણસ્થાનમાં રહીને સમુ-ચ્છિન્નક્રિયાઽપ્રતિપાતિ ધ્યાન ધ્યાવે છે

ननु सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्त्याख्यस्य शुक्लध्यानस्य कथं ध्यानपदप्रतिपाद्यता?, ध्यानं हि नाम मनःस्थैर्यम्, केवलिनश्च तदानीं मनसोऽसत्त्वादिति चेन्न,

स्थैर्यावस्थापन्नत्वमेव ध्यानत्वम्, तच्च यथा स्थिरीभावमापन्नस्य छद्मस्थीय-मनसस्तथैव केवलिकाययोगस्यापि सुस्थिरतया सुवचम्।

नन्वेवमपि समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपात्याख्यस्य शुक्लध्यानस्य कथं ध्यानत्वम्? तत्र काययोगस्याप्यभावात्, इति चेदुच्यते–यथा कुम्भकारचक्रं तद्भ्रामकदण्डा-दिसम्बन्धाभावेऽपि प्राक्कालीनवेगतो भ्रमति तथा मनोवाक्काययोगनिरोधेऽप्ययो-गिनः प्राक्कृतध्यानधारावेगतो ध्यानं सम्पद्यते।

प्रश्न–हे गुरुमहाराज! मनकी स्थिरताको ध्यान कहते हैं। केवली भगवान के उस समय मन नहीं रहता; अतः सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्ति शुक्ल ध्यान को ध्यान कैसे कहा जा सकता है?।

उत्तर–स्थिरता को ही ध्यान कहते हैं। वह स्थिरता जैसे छद्मस्थके मनोयोगकी होती है वैसे ही केवलीके काययोगकी स्थिरता होती है इसलिए उसे ध्यान कहते हैं।

प्रश्न–तो समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपाति–शुक्ल–ध्यानको ध्यान कैसे कह सकते हैं? क्योंकी वहां काययोगका भी अभाव है?।

उत्तर–जैसे कुंभारका चाक, घुमानेवाले दण्ड आदिके संयोग न होनेपर भी पूर्वकालके वेगसे घूमता रहता है वैसे ही मन वचन काय-का निरोध होजाने परभी पूर्व ध्यानकी धारा के वेगसे अयोगी केवलीके ध्यान होता है।

પ્રશ્ન—હે ગુરૂ મહારાજ! મનની સ્થિરતાને ધ્યાન કહે છે. કેવળી ભગ-વાનને એ સમયે મન રહેતું નથી એટલે સૂક્ષ્મક્રિયાઽનિવર્તિ શુકલ ધ્યાનને ધ્યાન કેવી રીતે કહી શકાય?

ઉત્તર—સ્થિરતાને જ ધ્યાન કહે છે. એ સ્થિરતા જેવી છદ્મસ્થના મનો-યોગની હોય છે તેવીજ કેવળીના કાયયોગની સ્થિરતા હોય છે, તેથી તેને ધ્યાન કહે છે.

પ્રશ્ન—તો સમુચ્છિન્નક્રિયા અપ્રતિપાતિ–શુકલ–ધ્યાનને ધ્યાન કેવી રીતે કહી શકાય? કારણ કે ત્યા કાયયોગનો પણ અભાવ છે.

ઉત્તર—જેમ કુંભારનો ચાકડો, તેને ઘુમાવનારા દંડ આદિનો સયોગ ન થવા છતા પણ પૂર્વકાળના વેગથી ઘુમ્યા કરે છે, તેમજ મન વચન કાયનો નિરોધ થઈ ગયા પછી પણ પૂર્વ ધ્યાનની ધારાના વેગથી અયોગી કેવળીને ધ્યાન હોય છે

किञ्च-तत्र द्रव्ययोगाभावेऽपि भावयोगस्य सत्त्वाद् ध्यानमुपपद्यते, जीवोपयोगरूपस्य भावमनसस्तत्रापि सद्भावात्। अथ च-यथा पुत्रभिन्नोऽपि पुत्रकार्यकरणेन पुत्र उच्यते तथा भवोपग्राहिकर्मनिर्जरणरूपस्य ध्यानकार्यस्य करणेन ध्यानत्वोपाचाराद् ध्यानशब्दाभिधेयत्वं सिद्धम्।

अथ च-यथैकस्य नानार्थकशब्दस्य बहवोऽर्था भवन्ति, तथा धातूनामनेकार्थत्वाद् ध्यैधातुनिष्पादितस्य ध्यानशब्दस्यापि समुच्छिन्नक्रियाख्यं शुक्लध्यानमप्यर्थः। अपरं च-उक्तशुक्लध्यानस्य ध्यानत्वेन जिनागमप्रतिपाद्यतया ध्यानत्वं निर्बाधमित्यलम् ॥२३॥

मूलम्-जया[१] जोगे[२] निरुंभित्ता[३], सेलेसिं[४] पडिवज्जइ[५]।
तया[६] कम्मं[७] खवित्ताणं[८], सिद्धिं[१०] गच्छइ[११] नीरओ[९] ॥२४॥

अथवा-द्रव्ययोगका अभाव होने पर भी भावयोगके सद्भावसे ध्यान होता है, क्योंकि जीवका उपयोगरूप भाव-मन उस अवस्थामें भी रहता है। अथवा जैसे पुत्र न होकर भी यदि कोई पुत्रका कार्य करता है तो वह पुत्र कहलाता है, वैसे ही भवोपग्राही कर्मोंकी निर्जरारूप ध्यानका कार्य करनेसे उपचारसे वह ध्यान कहलाता है। अथवा जैसे नानार्थक शब्दके बहुतसे अर्थ होते हैं वैसे ही धातुओंके भी अनेक अर्थ होते हैं, इसलिए यहाँ 'ध्यै' धातुसे बने हुए ध्यान शब्दका अर्थ समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपाति-शुक्ल-ध्यान अर्थात् अयोगी गुणस्थानवालोंकी क्रिया भी समझ लेना चाहिए। अथवा जिनागममें इसको ध्यान कहा है अतः इसमें ध्यानत्व निर्बाध है ॥ २३ ॥

અથવા દ્રવ્યયોગનો અભાવ થયા છતાં પણ ભાવયોગના સદ્‌ભાવથી ધ્યાન હોય છે કારણ કે જીવના ઉપયોગરૂપ ભાવમન એ અવસ્થામા પણ રહે છે. અથવા જેમ પુત્ર ન હોવા છતા જો કોઈ પુત્રનુ કાર્ય કરે છે તો તે પુત્ર કહેવાય છે, તેમજ ભવોપગ્રાહી કર્મોની નિર્જરારૂપ ધ્યાનનું કાર્ય કરવાથી ઉપચારે કરીને તે ધ્યાન કહેવાય છે. અથવા જેમ વિવિધાર્થક શબ્દના ઘણાય અર્થો થાય છે તેમ ધાતુઓના પણ અનેક અર્થો થાય છે, અહીં ધ્યૈ ધાતુથી બનેલા ધ્યાન શબ્દનો અર્થ સમુચ્છિન્નક્રિયાઽપ્રતિપાતિ-શુક્લ-ધ્યાન અર્થાત્ અયોગી ગુણસ્થાન વાળાઓની ક્રિયા પણ સમજી લેવી અથવા જિનાગમમા એને ધ્યાન કહ્યુ છે તેથી એમાં ધ્યાનત્વ નિર્બાધ છે. (૨૩)

छाया—यदा योगान्निरुध्य, शैलेशीं प्रतिपद्यते ।
तदा कर्म क्षपयित्वा, सिद्धिं गच्छति नीरजाः ॥२४॥

सान्वयार्थः-जया=जब जोगे=योगोंका निरुंभित्ता=निरोध करके सेलेसिं=शैलेशीकरणको पडिवज्जइ=प्राप्त करते हैं, तया=तब कम्मं=कर्ममात्रको खवित्ता=खपा करके नीरओ=कर्मरजरहित-सब कर्मोंसे मुक्त-होकर सिद्धिं=मोक्षको गच्छइ=जाते हैं ॥२४॥

टीका-'जया जोगे०' इत्यादि । यदा योगनिरोधं कृत्वा शैलेशीं प्राप्नोति तदा कर्म=वेदनीयाऽऽयुर्नामगोत्राख्यमघातिकर्मचतुष्टयलक्षणं क्षपयित्वा=क्षयं नीत्वा सर्वथा विनाश्येत्यर्थः 'ण'-मिति वाक्यालङ्कारे, नीरजाः=निर्गतं रजः=सकलकर्ममलं यस्मादिति, रजसः=उक्तलक्षणान्निष्क्रान्तो वा नीरजाः=सर्वकर्मोपाधिरहितः साधितात्मा प्रभुः सिद्धिं=सिध्यन्ति=निष्ठितार्था भवन्ति यस्यां सा सिद्धिः=मुक्तिलक्षणा तां गच्छति=प्राप्नोति; गत्यर्थधातूनां प्राप्त्यर्थत्वात् ॥२४॥

मूलम्-जया[१] कम्मं[२] खवित्ताणं[३], सिद्धिं[५] गच्छइ[६] नीरओ[४] ।
तया[७] लोगमत्थयत्थो[८], सिद्धो[१०] हवइ[११] सासओ[९] ॥२५॥

छाया—यदा कर्म क्षपयित्वा, सिद्धिं गच्छति नीरजाः ।
तदा लोकमस्तकस्थः, सिद्धो भवति शाश्वतः ॥२५॥

सान्वयार्थः-जया=जब कम्मं=कर्ममात्रको खवित्ता=खपा करके नीरओ=कर्मरजरहित होकर सिद्धिं=मोक्षको गच्छइ=जाते हैं, तया=तब लोगमत्थयत्थो=लोकके अग्रभाग पर स्थित सासओ=शाश्वत-नित्य सिद्धो=सिद्ध हवइ=होजाते हैं ॥२५॥

'जया जोगे' इत्यादि । जब योगोंका निरोध करके शैलेशी अवस्थाको प्राप्त होते हैं तब वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र, इन चार अघाति कर्मोंका क्षय करके सर्व कर्मोंसे मुक्त होकर भगवान् मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥

जया जोगे ઇત્યાદિ જ્યારે યોગોનો નિરોધ કરીને શૈલેશી અવસ્થાને પ્રાપ્ત થાય છે, ત્યારે વેદનીય, આયુ, નામ અને ગોત્ર એ ચાર અઘાતી કર્મોનો ક્ષય કરીને સર્વ કર્મોથી મુક્ત થઈને ભગવાન્ મોક્ષને પ્રાપ્ત થાય છે (૨૪)

जलोपरिप्रतिष्ठाना भवति तथाऽष्टविधकर्मलेपसंभारभराक्रान्त आत्मा जगज्जलधौ निमज्जति, तद्विरहितश्चोर्ध्वगतिधर्मत्वादूर्ध्वमेव गच्छति ।
तथा चोक्तं भगवता—

"[1]जह मिउलेवालित्तं, गरुयं तुंबं अहो वयइ एवं ।
आसवकयकम्मगुरू, जीवा वच्चंति अहरगइं ॥१॥
तं चेव तव्विमुक्कं, जलोवरिं ठाइ जायलहुभावं ।
जह तह कम्मविमुक्का, लोयग्गपइट्ठिया होंति ॥२॥" इति ।

---

१ छाया–"यथा मृल्लेपाऽऽलिप्तं, गुरुकं तुम्बमधो व्रजत्येवम् ।
आश्रवकृतकर्मगुरवो, जीवा व्रजन्ति अधरगतिम् ॥१॥
तदेव (तुम्बं) तद्विमुक्तं (मृल्लेपविमुक्तं), जलोपरि तिष्ठति जातलघुभावम् ।
यथा तथा कर्म्मविमुक्ता (सिद्धाः) लोकाग्रप्रतिष्ठिता भवन्ति ॥२॥"

आजाती है। इसीप्रकार आठ कर्मरूपी लेपके भारसे भारी आत्मा संसाररूपी समुद्रमें डूबी रहती है। जब कर्मरूपी लेपसे रहित होजाती है तब ऊर्ध्वगमनका स्वभाव होनेसे ऊर्ध्वगमन करती है। भगवानने कहाभी है—

"जैसे मिट्टीके लेपसे लिप्त तुम्बी भारी होनेसे नीचेकी ओर जाती है वैसेही आस्रवसे उत्पन्न कर्मोंसे आत्मा अधोगतिको प्राप्त होती है ॥१॥ जैसे तुम्बी लेपसे मुक्त होनेपर लघु होकर जलके ऊपर आजाती है उसी प्रकार कर्मसे मुक्त होकर आत्मा लोकके अग्रभाग पर विराजमान हो जाती है ॥२॥"

એ તુંબડી નીચેથી ઉઠીને જળની ઉપર આવી જાય છે. એજ પ્રકારે આઠ કર્મરૂપી લેપના ભારથી ભારે એવો આત્મા સંસારરૂપી સમુદ્રમાં ડુબી રહે છે. જ્યારે કર્મરૂપી લેપથી રહિત થઈ જાય છે ત્યારે ઊર્ધ્વગમનનો સ્વભાવ હોવાથી ઊર્ધ્વગમન કરે છે ભગવાને કહ્યુ પણ છે કે—

'જેમ માટીના લેપથી લિપ્ત તુંબડી ભારે હોવાથી નીચેની બાજુએ જાય છે, તેમજ આસ્રવથી ઉત્પન્ન થએલા કર્મોથી આત્મા અધોગતિને પ્રાપ્ત થાય છે. (૧) જેમ તુંબડી લેપથી મુકત થતા લઘુ થઈને જલની ઉપર આવી જાય છે, તેમ કર્મથી મુકત થઈને આત્મા લોકના અગ્રભાગ પર વિરાજમાન થઈ જાય છે (૨)"

मवसीयते ? इति चेच्छ्रूयताम्-तेषां गुरुत्वगुणाभावान्नाधस्तात्, कायादियोगपर-प्रेरणयोरभावाच्च न तिर्यग्गतिर्भवति,

यथा-नीरन्ध्रामतिशुष्कामनुपहतां चाऽलाबूं कुशादितृणैः परितः संवेष्ट्य तदुपरि स्निग्धमृत्तिकया सान्द्रं विलिप्याऽऽतपे संशोषयेत्, इत्थमष्टवारानुक्तप्रक्रियया यथाक्रमं तृणवेष्टन-मृल्लेपन-संशोषणादीनि विधायाऽगाधसलिले प्रक्षिप्ता साऽलाबूरष्टकृत्वोदत्तमृल्लेपजनितगौरवेणोर्ध्वसलिलतलमतिक्रम्य तदधस्ताद् भूतलसंलग्ना भवति, तदनु मन्दमन्दमनुक्रमतस्तेष्वष्टवारविनिहितमृल्लेपेषु सार्द्रतामुपगम्य विशीर्णेषु सत्सु मृत्तिकालेपजन्यभारराहित्येन लघुतामुपगता साऽलाबूरधोभूतलमतिक्रम्य

होती है ? नीचेकी ओर अथवा तिरछी गति क्यों नहीं होती ?

उत्तर-हे शिष्य ! नीचेकी ओर उसीकी गति होती है जिसमें गुरुत्व गुण (भारीपन) पाया जाता है। सिद्धोंमें गुरुत्व गुण नहीं है अत एव उनकी गति नीचेकी ओर नहीं होती। काय आदि योग और दूसरेकी प्रेरणा न होनेसे तिरछी गति भी नहीं होती।

जैसें-छिद्ररहित बिलकुल सूखी हुई, विना टूटी-फूटी तुम्बीको चारों ओर तृणपुञ्जसे बांध करके धूपमें सुखा ले, आठ वार ऐसा करके अगाध जलमें तुम्बीको डाल दे तो आठवारके लेपके भारीपनसे जलके तलमें पहुँचकर वह पृथ्वीसे लग जाती है। उसके पश्चात् गीलेपनसे जब धीरे-धीरे वह मिट्टीका लेप छूटने लगता तो क्रमशः मिट्टीके भारसे रहित होकर लघुता (हलकापन) पाकर वह तुम्बी नीचेसे उठकर जलके ऊपर

થાય છે ? નીચેની બાજુએ અથવા તિર્છી ગતિ કેમ નથી થતી ?

ઉત્તર—હે શિષ્ય ! નીચેની બાજુએ તેની ગતિ થાય છે કે જેમા ગુરૂત્વ-ગુણ (ભારેપણું) હોય છે સિદ્ધોમાં ગુરૂત્વ ગુણ નથી, તેથી તેમની ગતિ નીચેની બાજુએ નથી થતી કાય આદિ યોગ અને બીજાની પ્રેરણા ન હોવાથી તિર્છી ગતિ પણ થતી નથી.

જેમ છિદ્રરહિત, બિલકુલ સુકાયલી, તૂટ્યા ફૂટ્યા વિનાની તુબડીને ચારે બાજુએ ઘાસ-તરણાથી બાધીને તેની ઉપર ચીકણી માટીના સારી પેઠે લેપ કરીને તડકામાં સૂકવી નાંખે, આઠ વાર એમ કરીને અગાધ જળમાં એ તુબડીને નાખી દે તો આઠ વારના લેપના ભારે પણાથી જળને તળીયે પહોંચીને તે પૃથ્વીને અડીને રહે છે પછી જ્યારે લીલાપણાથી ધીરે ધીરે એ માટીનો લેપ છૂટવા લાગે છે ત્યારે ક્રમશઃ માટીના ભારથી રહિત થઈને લઘુતા (હલકાપણું) પામીને

उक्तस्वरूपाः सिद्धाश्चरमशरीरतस्तृतीयभागन्यूना उत्कृष्टतो द्वात्रिंशदङ्गुलसमधिकत्रयस्त्रिंशदुत्तरशतत्रयधनुःपरिमिताः, जघन्यतोऽष्टाङ्गुलाधिकरत्निप्रमाणाः ।

यच्च मरुदेवीदेहप्रमाणस्य सपादपञ्चशतधनुष्ट्वात्तृतीयभागे पातिते तस्याः सार्द्धत्रिशतधनुःपरिमिताऽवगाहना भवति तेनात्र न विरोधः, गजाधिरूढत्वेन वृद्धत्वेन वा शरीरसङ्कोचसम्भवात् ।

यत्तु जघन्यतः सप्तहस्तोच्छ्रितानां सिद्धिः शास्त्रेषु श्रूयते तत्तीर्थकरापेक्षया,

सिद्धोंके चरम शरीरसे त्रिभाग कम, उत्कृष्ट तीनसौ तेंतीस (३३३) धनुष और बत्तीस (३२) अंगुलकी, तथा जघन्य एकरत्नि और आठ अंगुलकी अवगाहना होती है ।

मरुदेवीके शरीरकी अवगाहना सवा पाँचसौ (५२५) धनुषकी थी, उसमेंसे तीसरा हिस्सा कम करनेसे साढे तीनसौ (३५०) धनुषकी अवगाहना होती है, किन्तु यहाँ पर उत्कृष्ट अवगाहना तीनसौ तेतीस धनुष और बत्तीस अंगुलकी बताई गई है, इससे यहां विरोध नहीं समझना चाहिए, क्योंकि मरुदेवी हाथी पर आरूढ थी, इसलिए या वृद्धावस्थाके कारण शरीरका सिकुडना (संकुचित होना) संभव है ।

यह जो आगममें सुना जाता है कि जघन्य सात हाथ ऊंचे शरीरवालोंको मोक्ष प्राप्त होता है सो यह नियम तीर्थंकरोंकी अपेक्षासे समझना चाहिए । तीर्थंकरोंके सिवाय अन्य भव्य जीव दो हाथ ऊँचे

સિદ્ધોના ચરમ શરીરથી ત્રિભાગ ઓછી, ઉત્કૃષ્ટ ત્રણુસો તેત્રીસ (૩૩૩) ધનુષ અને બત્રીસ (૩૨) આંગળની તથા જઘન્ય એક રત્નિ અને આઠ આંગળની અવગાહના હોય છે.

મરૂદેવીના શરીરની અવગાહના સવા પાંચસો (૫૨૫) ધનુષ્યની હતી, તેમાંથી ત્રીજો ભાગ ઓછો કરવાથી સાડા ત્રણુસો (૩૫૦) ધનુષ્યની અવગાહના હોય છે કિન્તુ અહીં ઉત્કૃષ્ટ અવગાહના ત્રણુસોને તેત્રીસ ધનુષ અને બત્રીસ આગળની બતાવી છે, તેથી વિરોધ સમજવો નહિ, કારણુ કે મરૂદેવી હાથી પર આરૂઢ હતી તેને લીધે યા વૃદ્ધાવસ્થાને કારણે શરીરનું સકુચિત થવું એ સભવિત છે

આગમમા જે સભળાય છે કે—જઘન્ય સાત હાથ ઉચા શરીરવાળાઓને જ મોક્ષ પ્રાપ્ત થાય છે તે નિયમ તીર્થંકરોની અપેક્ષાએ સમજવો જોઇએ તીર્થંકરો સિવાયના બીજા ભવ્ય જીવો બે હાથ ઉચા શરીરવાળા હોવા છતાં પણ મુક્ત

अथवा-यथा वातादिरूपबाधकविरहादूर्ध्वगतिस्वभावायाः प्रदीपकलिकायाः, बीजबन्धविच्छेदाद्बीजकोशगतैरण्डबीजस्य चोर्ध्वगतिः संजायते तथाऽऽत्मनोऽपि तादृशगतिस्वभावस्य विरोधिकर्मबन्धविच्छेदादूर्ध्वगतिरेवेति ।

यथैरण्डबीजमूर्ध्वं गत्वा पुनःपतति तथा तु न मुक्तात्मनः पातसम्भवः, अधःपतनहेतुभूतगुरुत्वगुणाभावादिति प्रागुक्तमेव ।

ननु शरीराभावात्तेषामात्मप्रदेशाः पारदद्रव्यवत् कथं न विकीर्णा भवन्तीति चेन्न, तद्विसर्पकनामकर्माभावात्प्रदेशवत्त्वगुणसद्भावाच्च ।

अथवा-जैसे हवा आदि किसी बाधकके न होनेसे दीपककी लौ ऊपरको जाती है, बीजकोषके बन्धके टूटनेपर एरण्डका बीज ऊपरको जाता है, उसी प्रकार आत्माके ऊर्ध्वगमनके विरोधी कर्मबन्धका सर्वथा अभाव होजानेसे आत्मा ऊर्ध्वगति करती है ।

जैसे एरण्डका बीज पहले ऊपरको जाकर फिर नीचे गिर पड़ता है वैसे आत्मा नहीं गिर सकती, क्योंकि नीचे गिरानेका कारण गुरुत्वगुण आत्मामें नहीं है, यह पहले ही कह चुके हैं ।

प्रश्न-हे गुरुमहाराज । शरीरका अभाव होनेसे सिद्धोंके आत्माके प्रदेश पारेके समान फैल क्यों नहीं जाते ?

उत्तर-हे शिष्य । आत्मप्रदेशोंको फैलानेवाले नामकर्मका अभाव होनेसे तथा प्रदेशवत्त्व गुणके सद्भावसे सिद्धोंके आत्मप्रदेश नहीं फैलते हैं ।

અથવા, જેમ હવા આદિ કોઈ બાધક ન હોવાથી દીપકની જ્યોત ઉપર જ જાય છે, બીજકોષનો બંધ તૂટવાથી એરંડાનું બીજ ઉપર જ જાય છે, તેમ આત્માના ઊર્ધ્વગમનના વિરોધી કર્મબંધનો સર્વથા અભાવ થઈ જવાથી આત્મા ઊર્ધ્વગતિ જ કરે છે

જેમ એરંડાનું બીજ પહેલા ઉપર જઈને પછી નીચે પડી જાય છે, તેમ આત્મા પડી શકતો નથી કારણ કે નીચે પાડવાનું કારણ ગુરૂત્વ ગુણ આત્મામાં નથી. એ પહેલા કહેવામાં આવેલું જ છે.

પ્રશ્ન—હે ગુરૂ મહારાજ ! શરીરનો અભાવ હોવાથી સિદ્ધોના આત્માના પ્રદેશો પારાની પેઠે ફેલાઈ કેમ જતા નથી ?

ઉત્તર—હે શિષ્ય ! આત્મપ્રદેશોને ફેલાવનારા નામકર્મનો અભાવ હોવાથી તથા પ્રદેશવત્ત્વ ગુણનો સદ્ભાવ હોવાથી સિદ્ધોના આત્મપ્રદેશ ફેલાતા નથી.

उक्तस्वरूपाः सिद्धाश्चरमशरीरतस्तृतीयभागन्यूना उत्कृष्टतो द्वात्रिंशदङ्गुल-समधिकत्रयस्त्रिंशदुत्तरशतत्रयधनुःपरिमिताः, जघन्यतोऽष्टाङ्गुलाधिकरत्निप्रमाणाः।

यच्च मरुदेवीदेहप्रमाणस्य सपादपञ्चशतधनुष्ट्वात्तत्तृतीयभागे पातिते तस्याः सार्द्धत्रिशतधनुःपरिमिताऽवगाहना भवति तेनात्र न विरोधः, गजाधिरूढत्वेन वृद्धत्वेन वा शरीरसङ्कोचसम्भवात्।

यत्तु जघन्यतः सप्तहस्तोच्छ्रितानां सिद्धिः शास्त्रेषु श्रूयते तत्तीर्थकरापेक्षया,

सिद्धोंके चरम शरीरसे त्रिभाग कम, उत्कृष्ट तीनसौ तेंतीस (३३३) धनुष और बत्तीस (३२) अंगुलकी, तथा जघन्य एकरत्नि और आठ अंगुलकी अवगाहना होती है।

मरुदेवीके शरीरकी अवगाहना सवा पाँचसौ (५२५) धनुषकी थी, उसमेंसे तीसरा हिस्सा कम करनेसे साढे तीनसौ (३५०) धनुषकी अवगाहना होती है, किन्तु यहाँ पर उत्कृष्ट अवगाहना तीनसौ तेतीस धनुष और बत्तीस अंगुलकी बताई गई है, इससे यहां विरोध नहीं समझना चाहिए, क्योंकि मरुदेवी हाथी पर आरूढ थी, इसलिए या वृद्धावस्थाके कारण शरीरका सिकुडना (संकुचित होना) संभव है।

यह जो आगममें सुना जाता है कि जघन्य सात हाथ ऊंचे शरीरवालोंको मोक्ष प्राप्त होता है सो यह नियम तीर्थंकरोंकी अपेक्षासे समझना चाहिए। तीर्थंकरोंके सिवाय अन्य भव्य जीव दो हाथ ऊँचे

સિદ્ધોના ચરમ શરીરથી ત્રિભાગ ઓછી, ઉત્કૃષ્ટ ત્રણુસો તેત્રીસ (૩૩૩) ધનુષ અને બત્રીસ (૩૨) આંગળની તથા જઘન્ય એક રત્નિ અને આઠ આંગળની અવગાહના હોય છે

મરૂદેવીના શરીરની અવગાહના સવા પાંચસો (૫૨૫) ધનુષ્યની હતી, તેમાંથી ત્રીજો ભાગ ઓછો કરવાથી સાડા ત્રણુસો (૩૫૦) ધનુષ્યની અવગાહના હોય છે કિન્તુ અહીં ઉત્કૃષ્ટ અવગાહના ત્રણુસોને તેત્રીસ ધનુષ અને બત્રીસ આગળની બતાવી છે, તેથી વિરોધ સમજવો નહિ, કારણ કે મરૂદેવી હાથી પર આરૂઢ હતી તેને લીધે યા વૃદ્ધાવસ્થાને કારણે શરીરનું સંકુચિત થવુ એ સભવિત છે

આગમમા જે સભળાય છે કે–જઘન્ય સાત હાથ ઉચા શરીરવાળાઓને જ મોક્ષ પ્રાપ્ત થાય છે તે નિયમ તીર્થંકરોની અપેક્ષાએ સમજવો જોઇએ તીર્થંકરો સિવાયના બીજા ભવ્ય જીવો બે હાથ ઉચા શરીરવાળા હોવા છતા પણ મુક્ત

अन्ये तु द्विहस्तोच्छ्रिता अपि सिध्यन्ति, तदपेक्षया हि प्रोक्तस्वरूपा जघन्याऽवगाहनाऽवसेया।

एवमुक्तस्वरूपो जन्म-जरा-मरणा-ऽऽधि-व्याधिबाधापटलीकलङ्कलीभावगर्भनिवासत्राससन्ततिविनिष्क्रान्तः शाश्वतः सिद्धो भवतीत्यर्थः। 'शाश्वत' पदेन चात्र "सम्प्राप्तसिद्धिपदो ह्यात्मा न पुनः संसारित्वमवाप्नोति हेतोरभावात्, न च कारणमन्तरेण कार्योत्पत्तिर्जायते" इति बोधितम् ॥२५॥

उक्तं सुगतिरूपं धर्मफलं, सम्प्रति तत् कस्य दुर्लभं भवती?-ति दर्शयति-'सुहसायगस्स०' इत्यादि।

मूलम्-सुहसायगस्स समणस्स, सायाउलगस्स निगामसाइस्स।
उच्छोलणापहोयस्स, दुल्लहा सुगई तारिसगस्स ॥२६॥

शरीरवाले होनेपर भी मुक्त होजाते हैं। उनकी अपेक्षासे ही सिद्धोंकी जघन्य अवगाहना एक रत्नि और आठ अंगुलकी कही गई है।

ऐसे सिद्ध जन्म-जरा-मरण, आधि, व्याधि, बाधा, कलङ्कलीभाव (संसारपरिभ्रमण), गर्भवासके दुःखोंसे रहित शाश्वत सिद्ध होजाते हैं। यहाँ 'शाश्वत' पदसे यह बोधित किया है कि सिद्धिपदको प्राप्त आत्मा फिर संसारी अवस्थाको प्राप्त नहीं होती है, क्योंकि संसारमें आनेके कारणभूत कर्मोंका अभाव है। कारणके विना कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती ॥२५॥

यहाँ तक धर्मका सुगतिरूप फल कहा, यह फल किसे दुर्लभ होता है सो दिखाते हैं-'सुहसायगस्स' इत्यादि।

થઇ જાય છે એમની અપેક્ષાએ જ સિદ્ધોની જઘન્ય અવગાહના એક રત્નિ અને આઠ આંગળની કહેવામાં આવી છે.

એવા સિદ્ધો જન્મ-જરા-મરણ, આધિ-વ્યાધિ, બાધા, કલંકલીભાવ (સંસારપરિભ્રમણ), ગર્ભવાસનાં દુઃખોથી રહિત શાશ્વત સિદ્ધ થઇ જાય છે અહીં 'શાશ્વત' શબ્દથી એમ બોધિત કરવામા આવ્યું છે કે સિદ્ધિપદને પ્રાપ્ત થએલો આત્મા ફરી સંસરી અવસ્થાને પ્રાપ્ત થતો નથી, કારણ કે સંસારમાં આવવાનાં કારણભૂત કર્મોનો અભાવ છે કારણ વિના કાર્યની ઉત્પત્તિ થતી નથી. (૨૫)

અહીં સુધી ધર્મનુ સુગતિરૂપ ફળ કહ્યું, એ ફળ કોને દુર્લભ થાય છે તે દર્શાવે છે-સુહસાયગસ્સ ઇત્યાદિ

छाया—सुखास्वादकस्य श्रमणस्य, शाताकुलकस्य निकामशायिनः ।
उत्क्षालनाप्रधौतस्य, दुर्लभा सुगतिस्तादृशकस्य ॥२६॥

सुगति की दुर्लभता बतलाते हैं—

सान्वयार्थः–**सुहसायगस्स**=सुखकी आसक्ति रखनेवाले **सायाउलगस्स**=सुखके लिए व्याकुल रहनेवाले **निगामसाइस्स**=मर्यादासे अधिक सोनेवाले **उच्छोलणापहोयस्स**=शरीरकी विभूषा करनेवाले **तारिसगस्स**=ऐसे **समणस्स**=साधुको **सुगई**=सुगति **दुल्लहा**=दुर्लभ है ॥२६॥

टीका–सुखास्वादकस्य=सुखस्य=प्राप्तमनोरमशब्दाद्युपभोगस्य आस्वादकः=आसक्त्या ग्राहकस्तस्य, शाताकुलकस्य=शातार्थम्=सुखार्थम् आकुलकः=व्यग्रः उद्विग्नो वा तस्य, निकामशायिनः=निकामम्=अतिशयितं मध्यवर्त्तियामद्वयादधिकं रात्रौ, निष्कारणं दिवसे वा शेते=स्वपिति तच्छीलो निकामशायी=सूत्रार्थमननादिसमयमुल्लङ्घ्य शयानस्तस्य, उत्क्षालनाप्रधौतस्य=उत्क्षालनया=प्रक्षालनया प्र=प्रकर्षार्थं=विभूषार्थं धौतानि=उज्ज्वलीकृतानि नयन-वदन-नख-कर-चरण-वस्त्रादीनि येन स तस्य शरीरादिविभूषाकारिण इत्यर्थः । तादृशकस्य=तीर्थकराऽऽज्ञाऽनाराधकस्य, श्रमणस्य=श्रमणब्रुवस्य वेशमात्रेण साधोः सुगतिः=सिद्धिलक्षणा गतिः दुर्लभा=दुष्प्रापा 'भवती'-ति शेषः ।

प्राप्त हुए मनोज्ञ शब्दादि उपभोगोंको आसक्तिपूर्वक ग्रहण करनेवाले, सुखप्राप्तिके लिए व्याकुल रहनेवाले, दो मध्य प्रहरोंसे अधिक रात्रिमें, या कारणविशेष विना दिनमें अर्थात् सूत्रार्थके मनन करनेके समयका उल्लंघन होने तक सोनेवाले, तथा विभूषाके लिए आँख, मुख, नख, हाथ-पैर वस्त्र आदिको धोनेवाले अर्थात् शरीरको विभूषित करनेवाले; अतः तीर्थंकरकी आज्ञाके विराधक, ऐसे श्रमणको सिद्धिगतिकी प्राप्ति दुर्लभ है।

પ્રાપ્ત થએલા મનોજ્ઞ શબ્દાદિ ઉપભોગોને આસક્તિપૂર્વક ગ્રહણ કરનારા, સુખપ્રાપ્તિને માટે વ્યાકુળ રહેનારા, બે મધ્ય પહોરોથી વધુ રાત્રિમા યા કારણ–વિશેષ વિના દિવસમા અર્થાત્ સૂત્રાર્થનું મનન કરવાના સમયનું ઉલ્લઘન થાય ત્યા સુધી સૂનારા તથા વિભૂષા (શોભા) ને માટે આખ, મુખ, નખ, હાથ-પગ વસ્ત્ર આદિને ધોનારા અર્થાત્ શરીરને વિભૂષિત કરનારા એટલે કે તીર્થંકરની આજ્ઞાના વિરાધક, એવા શ્રમણને સિદ્ધિગતિની પ્રાપ્તિ દુર્લભ છે

'सुखास्वादकस्ये'-त्यनेन सम्प्राप्तमनोज्ञशब्दादिविषयकाऽऽसक्तिर्निराकृता। 'शाताकुलकस्ये' त्यनेनाऽप्राप्तसुखव्याक्षिप्तिर्निरस्ता। 'निकामशायिनः' इत्यनेन च प्रमादनिवृत्तिः सूचिता। 'उत्क्षालनाप्रधौतस्ये'-त्यनेन च ब्रह्मचर्यरक्षार्थं विभूषाऽपाकृता ॥२६॥

एवं तर्हि कस्य सुगतिः सुलभा? इति जिज्ञासायामाह-'तवोगुण०' इत्यादि।

मूलम्-तवोगुणपहाणस्स, उज्जुमइ खंतिसंजमरयस्स।
परीसहे जिणंतस्स, सुलहा सुगई तारिसगस्स ॥ २७॥

छाया—तपोगुणप्रधानस्य, ऋजुमतेः क्षान्तिसंयमरतस्य।
परीषहान् जयतः, सुलभा सुगतिस्तादृशकस्य ॥२७॥

सान्वयार्थः-तवोगुणपहाणस्स=तपरूपी गुणोंको मुख्य समझनेवाले उज्जुमइ =सरल बुद्धिवाले खंतिसंजमरयस्स=क्षान्ति और संयममें लीन परीसहे=परीषहोंको जिणंतस्स=जीतनेवाले तारिसगस्स=ऐसे (श्रमणोंको) सुगई=सुगति सुलहा=सुलभ है ॥२७॥

'सुहसायगस्स' पदसे यह सूचित किया है कि साधुको प्राप्त शब्दादि विषयोंमें आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। 'सायाउलगस्स' पदसे अप्राप्त विषयसुखोंके लिए आकुल नहीं होना चाहिए, ऐसा सूचित किया है। 'निगामसाइस्स' पदसे प्रमादका परित्याग करना प्रदर्शित किया है। 'उच्छोलणापहोयस्स' पदसे ब्रह्मचर्यके संरक्षणके लिए शरीरको विभूषित करनेका निषेध किया गया है ॥२६॥

यदि ऐसा है तो सुगति किसके लिए सुलभ होती है? ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं-'तवोगुणपहाणस्स' इत्यादि।

सुहसायगस्स શબ્દથી એમ સૂચિત કરવામાં આવ્યું છે કે સાધુએ પ્રાપ્ત શબ્દાદિ વિષયોમાં આસક્તિ રાખવી ન જોઈએ, सायाउलगस्स શબ્દથી અપ્રાપ્ત વિષયસુખોને માટે આકુળ ન થવું જોઈએ એવું સૂચિત કર્યું છે. निगामसाइस्स શબ્દથી પ્રમાદનો પરિત્યાગ કરવાનું પ્રદર્શિત કર્યું છે उच्छोलणापहोयस्स શબ્દથી બ્રહ્મચર્યના રક્ષણને માટે શરીરને વિભૂષિત કરવાનો નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે (૨૬)

જો એમ છે તો સુગતિ કોને માટે સુલભ હોય છે? એવી જિજ્ઞાસા થતાં કહે છે-तवोगुणपहाणस्स ઇત્યાદિ.

टीका—तपोगुणप्रधानस्य तपति=अन्तर्भावितण्यर्थतया तापयति दहत्यष्टविधं कर्मेति तपः=षष्ठभक्तादि तदेव गुणस्तपोगुणः स प्रधानं=मुख्यो यस्य स तस्य, ऋजुमतेः=ऋज्वी=सरला मति=र्बुद्धिर्यस्य स तस्य, क्षान्तिसंयमरतस्य=क्षान्तिः=कषायनिग्रहः संयमः=सावद्यव्यापारोपरतिस्तयोः रतः=तत्परस्तस्य, परीषहान्=अनुकूल-प्रतिकूललक्षणान् जयतः=अभिभवतः, तादृशकस्य=रत्नत्रयाराधकस्य 'श्रमणस्ये'-त्यनुषज्यते; सुगतिः सुलभा ।

'तपोगुणप्रधानस्ये'-त्यनेनेन्द्रिय-नोइन्द्रियविजेतृत्वं सूचितम् । 'ऋजुमते'-रित्यनेन मोक्षार्थिना कपटकदाग्रहरहितेन भवितव्यमिति बोधितम् । 'क्षान्तिसंयमरतस्ये'-त्यनेन 'क्षमायुक्त एव संयमः फलदः' इति द्योतितम् । 'परीषहान् जयतः' इत्यनेन च मनःस्थैर्यं शरीरममत्वपरित्यागश्चेति ध्वनितम् ॥२७॥

जो आठ कर्मोंको भस्म करनेवाले षष्ठ अष्टम आदि तप-गुणसे प्रधान हैं, सरल-बुद्धि हैं, तथा क्रोधादि कषाय के निग्रह और सावद्य व्यापारके त्याग स्वरूप संयममें लीन हैं, अनुकूल–प्रतिकूल–परीषहोंको जीतनेवाले हैं, उन मोक्षके मार्ग–रत्नत्रय-के आराधक मुनियोंको सिद्धि-स्वरूप सुगतिकी प्राप्ति सुलभ है ।

'तवोगुणपहाणस्स' इस पदसे इन्द्रियों तथा मनका जीतना सूचित किया है। 'उज्जुमइ' पदसे यह सूचित किया गया है कि मोक्षार्थीको कपट और कदाग्रहसे रहित होना चाहिए । 'खंतिसंजमरयस्स' पदसे सूचित होता है कि वही संयम फलदाता होता है जो क्षमासे युक्त हो । 'परीसहे जिणंतस्स' पदसे मनकी स्थिरता तथा शरीरकी ममताका त्याग बतलाया गया है ॥ २७ ॥

જે આઠ કર્મોને ભસ્મ કરનારા છટ્ઠ અટ્ઠમ આદિ તપગુણથી પ્રધાન છે, સરલ-બુદ્ધિ છે, તથા ક્રોધાદિકષાયના નિગ્રહ અને સાવદ્ય વ્યાપારના ત્યાગસ્વરૂપ સંયમમાં લીન છે, અનુકૂળ–પ્રતિકૂળ–પરીષહોને જીતવાવાળા, એવા-મોક્ષના માર્ગ-રત્નત્રયના આરાધક મુનિઓને સિદ્ધિ-સ્વરૂપ સુગતિની પ્રાપ્તિ સુલભ છે.

तवोगुणपहाणस्स એ શબ્દથી ઇંદ્રિયો તથા મનને જીતવાનું સૂચિત કરેલુ છે. उज्जुमइ શબ્દથી સૂચવ્યુ છે કે મોક્ષાર્થીએ કપટ અને કદાગ્રહથી રહિત થવુ જોઈએ खंतिसंजमरयस्स એ પદથી સૂચિત થાય છે કે તેજ સયમ ફળદાતા થાય છે કે જે ક્ષમાથી યુક્ત હોય परीसहे जिणंतस्स પદથી મનની સ્થિરતા તથા શરીરની મમતાનો ત્યાગ બતાવેલો છે (૨૭)

चारित्रस्य महत्त्वमाह-'पच्छावि ते' इत्यादि ।

११ १० १२ १३ १५ १४
मूलम्-पच्छावि ते पयाया, खिप्पं गच्छंति अमरभवणाइं ।
१ ६ २ ४ ३ ६ ५ ८ ७
जेसिं पिओ तवो संजमो य खंती य बंभचेरं च ॥२८॥

छाया—पश्चादपि ते प्रयाताः, क्षिप्रं गच्छन्त्यमरभवनानि ।
येषां प्रियं तपः संयमश्च, क्षान्तिश्च ब्रह्मचर्यं च ॥२८॥

चारित्र का महत्त्व बतलाते हैं—

सान्वयार्थः-जेसिं=जिनको तवो=तपस्या संजमो=संयम य=और खंती=क्षमा य=तथा बंभचेरं=ब्रह्मचर्य पिओ=प्रिय है, ते=वे पच्छावि=पश्चात्भी अर्थात् एकवार चारित्र खण्डित हो जानेपर वापस, अथवा वृद्धावस्थामें भी पयाया=आये हुए अर्थात् चढते परिणामोंसे संयम स्वीकार कियेहुए खिप्पं=शीघ्र अमरभवणाइं=स्वर्ग अथवा अपवर्ग-मोक्ष-कोभी गच्छन्ति=प्राप्त हो जाते हैं ॥२८॥

टीका-येषां (श्रमणानां) तपः=अनशनादि द्वादशविधम्, संयमः=सावद्यव्यापारविरतिलक्षणः सप्तदशविधः, क्षान्तिः=अमर्षोत्पादकाऽऽक्षेपवचनादिसहनस्वरूपा, ब्रह्मचर्यं=विषयसेवनपरिहारलक्षणम्, चकाराः समुच्चयार्थाः, प्रियम्=अभीष्टं रुचिरमित्यर्थः, ते (श्रमणाः) पश्चादपि=चारित्रखण्डनानन्तरमपि वृद्धत्वेऽपि वा प्रयाताः=प्रवृद्धभावेन गृहीतसंयमाः सन्त आर्द्रकुमार-पुण्डरीकादिवत्, क्षिप्रं=

चारित्रका महत्त्व दिखाते हैं-'पच्छावि ते-' इत्यादि ।

जिन श्रमणोंको अनशन आदि बारह प्रकारका तप, सावद्य व्यापारका त्यागरूप सत्रह प्रकारका संयम, क्रोधजनक आक्षेपपूर्ण वचनोंका सहन करनारूप क्षान्ति, सर्वथा मैथुनका परित्याग, ये प्रिय होते हैं, वे कदाचित् मोहकर्मके उदयसे खण्डित-चारित्र होकर भी, अथवा वृद्ध होनेपर भी चढते परिणामोंसे आर्द्रकुमार, पुण्डरीक आदिके

ચારિત્રનું મહત્ત્વ બતાવે છે- पच्छावि ते० ઇત્યાદિ

જે શ્રમણોને અનશન આદિ બાર પ્રકારનો તપ, સાવદ્ય વ્યાપારના ત્યાગરૂપ સત્તર પ્રકારનો સંયમ, ક્રોધજનક આક્ષેપપૂર્ણ વચનોને સહન કરવારૂપ ક્ષાન્તિ, સર્વથા મૈથુનનો પરિત્યાગ, એ પ્રિય હોય છે, તેઓ કદાચિત મોહકર્મના ઉદયથી ખંડિતચારિત્ર થઈને પણ અથવા વૃદ્ધ હોવા છતા પણ ચડતા પરિણામોથી

शीघ्रम् अमरभवनम्=न म्रियन्त इत्यमराः=सिद्धा आयुषोऽभावात्, तेषां भवनम्= आलयः सत्ता वा तत् सिद्धक्षेत्रं सिद्धस्वरूपं वेत्यर्थः। यद्वा न म्रियते यत्र तद्-मरम्=अविनाशि तच्च तद् भवनं स्थान तत् सिद्धपदमित्यर्थः। अथवा न म्रियन्ते अकालमृत्युना इत्यमराः=देवास्तेषां भवनं तत् स्वर्गलोकमित्यर्थः। बहुवचनं चोभ-यार्थद्योतनार्थम्, गच्छन्ति=यान्ति ॥२८॥

उपसंहारमाह–'इच्चेयं' इत्यादि।

मूलम्–इच्चेयं[7] छज्जीवणियं[8], सम्मदिट्ठी[1] सया[2] जए[3]।
दुल्लहं[4] लहित्तु[6] सामन्नं[5], कम्मुणा[9] न[10] विराहिज्जासि[11]-त्तिबेमि[12] ॥२९॥

छाया—इत्येतं षड्जीवनिकायं, सम्यग्दृष्टिः सदा यतः।
दुर्लभं लब्ध्वा श्रामण्यं, कर्मणा न विराधयेत् ॥२९॥ इति ब्रवीमि।

उपसंहार करते हैं—

सान्वयार्थः–सम्मदिट्ठी=सम्यक्त्वी मनुष्य सया=सदैव जए=यतनावान् होकर दुल्लहं=दुर्लभ ऐसे सामन्नं=साधुपनेको लहित्तु=प्राप्त करके इच्चेयं=इस पूर्वोक्त स्वरूपवाले छज्जीवणियं=षड्जीवनिकाय–छह प्रकारके जीवसमूह–की कम्मुणा=मन वचन कायके व्यापारसे न विराहिज्जासि=विराधना न करे; त्तिबेमि=श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं कि मैंने भगवान् महावीर स्वामीसे जैसा सुना है वैसा ही तुमसे कहता हूँ ॥२९॥

॥ इति चतुर्थाध्ययनस्य शब्दार्थः ॥४॥

समान फिर संयमको ग्रहण करके शीघ्रही अमरभवन–(सिद्धिस्थान अथवा स्वर्गलोक) को प्राप्त होते हैं।

'अमरभवन' के दो अर्थ होते हैं–(१) जहां मृत्यु नहीं होती ऐसा स्थान मोक्ष है, क्योंकि वहां आयुकर्मका सर्वथा अभाव है, और (२) अमरभवन स्वर्गलोकको भी कहते हैं, क्योंकि स्वर्गलोकमें अकाल मृत्यु नहीं होती ॥२८॥

उपसंहार करते हैं–'इच्चेयं' इत्यादि।

આર્દ્રકુમાર, પુંડરીક આદિની પેઠે ફરી સંયમને ગ્રહણ કરીને શીઘ્ર અમરભવન (સિદ્ધસ્થાન અથવા સ્વર્ગલોક) ને પ્રાપ્ત થાય છે

'અમરભવન'ના બે અર્થ થાય છે (૧) જ્યાં મૃત્યુ હોતુ નથી એવું સ્થાન મોક્ષ છે, કારણ કે ત્યા આયુકર્મનો સર્વથા અભાવ હોય છે અને (૨) અમર-ભવન સ્વર્ગલોકને પણ કહે છે, કારણ કે સ્વર્ગલોકમાં અકાલમૃત્યુ થતુ નથી (૨૮)

ઉપસંહાર કરે છે–इच्चेयं० ઇત્યાદિ.

टीका-सम्यग्दृष्टिः=सम्यक्-यथाऽवस्थिततत्त्वेनाऽविपर्यस्ता दृष्टिः=तत्त्वरुचिरभिप्रायो वा यस्य स तथोक्तः, सम्यग्दर्शनवानित्यर्थः, सदा=नित्यं यतः=यतनावान् दुर्लभं=दुष्प्रापं, श्रामण्यं=श्रमणभावं लब्ध्वा=सम्प्राप्य इत्येतम्=उक्तलक्षणम्, षड्जीवनिकायं कर्मणा=मनोवाकायव्यापारेण न विराधयेत्=देशतः सर्वतो वा न प्रमर्दयेत् न पीडयेदित्यर्थः। 'इति ब्रवीमी'-ति प्राग्वत् ॥२९॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषा-कलित-ललित-कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्ध-गद्य-पद्य-नैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-शाहूछत्रपति-कोल्हापुरराज प्रदत्त-जैनशास्त्राचार्य-पद-भूषित-कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्य-श्रीघासीलालव्रतिविरचितायां श्रीदशवैकालिकसूत्र-स्याऽऽचारमणिमञ्जूषाख्यायां व्याख्यायां चतुर्थं 'षड्जीवनिकाया'-ऽऽख्यमध्ययनं समाप्तम् ॥ ४ ॥



तत्त्वोंके यथार्थ स्वरूपका श्रद्धान करनेवाला सम्यग्दृष्टि जीव दुर्लभ श्रमणताको प्राप्त करके सदैव पहले कहे हुए स्वरूपवाले षडजीवनिकायकी मन वचन कायसे एकदेश या सर्वदेशसे कभी भी विराधना न करे-पीड़ा न पहुँचावे ॥ श्रीसुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं-हे जम्बू! अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीरसे जैसा मैंने सुना है वैसा ही तुझे कहा है-इत्यादि पहले के समान समझ लेना ॥२९॥

इति "षड्जीवनिकाया"-नामक चौथा अध्ययनका हिन्दीभाषानुवाद समाप्त ॥४॥



तत्त्वोना यथार्थ स्वरूपनुं श्रद्धान करवावाळो सम्यग्दृष्टि जीव दुर्लभ श्रमणताने प्राप्त करीने सदैव पहेलां कहेला स्वरूपवाळा षड्जीवनिकायनी मन वचन कायाथी એકदेश या सर्वदेशे करीने कदापि विराधना न करे-पीडा न उपजावे. श्रीसुधर्मास्वामी જંબૂસ્વામીને કહે છે-હે જંબૂ! અંતિમ તીર્થંકર ભગવાન્ મહાવીર પાસેથી જેવું મેં સાંભળ્યું છે તેવું જ તને કહ્યું છે-ઇત્યાદિ પહેલાની પેઠે સમજી લેવું (૨૯)

ઇતિ "ષડ્જીવનિકાયા" નામક ચોથા અધ્યયનનું ગુજરાતીભાષાનુવાદ સમાપ્ત. (૪)

अथ पञ्चमाध्ययनम् ।

गतं चतुर्थाध्ययनम्, तत्र च षड्जीवनिकायरक्षणलक्षणो भिक्षोराचारः प्रतिपादितः, स हि शरीरस्थित्यधीनपालनकः, शरीरं चाक्षम्रक्षणमन्तरेण शकटमिव इङ्गालं विना वाष्पयन्त्रमिव जठरानलतापव्याधिबाधोपशमनौषधीभूतमाहारमन्तरेण वर्त्तितुमक्षममतोऽस्मिन् पञ्चमाध्ययने 'संयमिना कदा, कस्मात्, केन विधिना, कीदृगाहारो ग्रहीतव्यः?' इति सविस्तरं प्रतिपादयितुमुपक्रमते—

यद्वा—चतुर्थाध्ययने मूलगुणाः सन्दर्शिताः, इह तु मूलगुणपोषकोत्तरगुणा-

पांचवां अध्ययन ।

चौथे अध्ययनमें षड्जीवनिकायकी रक्षा-रूप भिक्षुका आचार प्रतिपादित किया गया है । इस आचारका पालन शरीरकी स्थिति पर निर्भर है । जैसे विना औंगन (वांगण) के गाडी नहीं चल सकती, विना कोयलेके रेलगाड़ी नहीं चल सकती, उसी प्रकार जठराग्निके संताप रूप व्याधिकी बाधाको शान्त करनेके लिए औषधिके समान आहारको ग्रहण किये विना शरीरकी स्थिति नहीं रह सकती । इसलिए पांचवें अध्ययनमें विस्तारसे यह प्रतिपादन करते हैं कि 'संयमीको कब, किससे, किस विधिसे, और किस प्रकारका आहार ग्रहण करना चाहिये?' ।

अथवा—चौथे अध्ययनमें मूल गुणोंका वर्णन किया गया है, इस अध्ययनमें मूलगुणोंको पुष्ट करनेवाले उत्तर गुणोंमेंसे पिण्डैषणाका

પાંચમું અધ્યયન.

ચોથા અધ્યયનમાં ષડ્જીવનિકાયની રક્ષારૂપ ભિક્ષુનો આચાર પ્રતિપાદિત કરવામાં આવ્યો છે. આ આચારનું પાલન શરીરની સ્થિતિ પર નિર્ભર છે. જેમ ઉંજણ વિના ગાડું ચાલી શકતું નથી અને કોયલા વિના રેલગાડી ચાલી શકતી નથી તેમ જઠરાગ્નિના સંતાપ રૂપ વ્યાધીની બાધાને શાન્ત કર્યા વિના શરીરની સ્થિતિ રહી શકતી નથી તે માટે પાચમા અધ્યયનમાં વિસ્તારથી એ પ્રતિપાદન કરવામા આવ્યું છે કે 'સંયમીએ ક્યારે, કોની પાસેથી, કેવી વિધિથી અને કેવા પ્રકારનો આહાર ગ્રહણ કરવો જોઇએ ?

અથવા—ચોથા અધ્યયનમાં મૂળ ગુણોનું વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે, આ અધ્યયનમાં મૂળ ગુણોને પુષ્ટ કરનારા ઉત્તર ગુણોમાથી પિંડૈષણાનું કથન કરવામાં આવે છે.

न्तर्गता पिण्डैषणाऽभिधीयते। पिण्डैषणा च पिण्डस्य-समयभाषया प्रसिद्धस्यान्नपानस्यैषणारूपा, तत्र पिण्डनं पिण्डः=एकत्र समुदितवहुपदार्थसमुदायः, स द्विविधः-द्रव्यपिण्डो भावपिण्डश्च, तत्र क्षुधाविघातकत्वेनाशनादिरूपो द्रव्यपिण्डः, कर्मविघातकत्वेन ज्ञानादिलक्षणः प्रशस्तभावपिण्डः, अप्रशस्तभावपिण्डस्त्वसंयमादिरूपः प्रकृतानुपयोगित्वादुपेक्षितः। द्रव्यपिण्डो हि प्रशस्तभावपिण्डपरिपोषकस्तं विना तस्यासम्पाद्यत्वात्, तथाहि-ज्ञानाद्यात्मकप्रशस्तभावपिण्डस्याराधना शरीरस्थित्यधीना, शरीरपरिस्थितिश्चाहारं विना न यथावत्साधनायालम्, आहारादिकश्च द्रव्यपिण्ड एवेति सिद्धं द्रव्यपिण्डस्य प्रशस्तभावपिण्डपरिपोषकत्वम्। तस्य च सावद्यनिरवद्य-

कथन करते हैं। 'पिण्ड' शास्त्रीय भाषामें अन्न-पान नामसे प्रसिद्ध है, उसकी एषणा करना 'पिण्डैषणा' है। एक स्थानपर बहुत पदार्थोंका समुदाय होना पिण्ड कहलाता है। पिण्ड दो प्रकारका है-(१) द्रव्यपिण्ड और (२) भावपिण्ड अशन आदिको द्रव्यपिण्ड कहते हैं, क्योंकि उससे क्षुधाका नाश होता है। ज्ञानादि प्रशस्त-भावपिण्ड है, क्योंकि वह कर्मोंका नाश करनेवाला है, अप्रशस्त-भावपिण्ड असंयमादिरूप है, उसका यहाँ अधिकार नहीं है।

द्रव्यपिण्ड, प्रशस्त-भावपिण्डका पोषक है, क्योंकि उसके विना प्रशस्त-भावपिण्डकी प्राप्ति नहीं होसकती, अर्थात् ज्ञानादिरूप प्रशस्त-भावपिण्डकी आराधना शरीरकी स्थितिके अधीन है, और शरीरकी स्थिति आहारके विना नहीं होसकती। आहार आदि द्रव्यपिण्ड ही है। इससे यह सिद्ध हुआ कि द्रव्यपिण्ड प्रशस्त भाव-

'પિંડ' શબ્દ શાસ્ત્રીય-ભાષામાં અન્નપાનના નામે ઓળખાય છે, તેની એષણા કરવી એ પિંડૈષણા કહેવાય છે. એક સ્થાન પર ઘણા પદાર્થોનો સમુદાય હોવો એ 'પિંડ' કહેવાય છે. પિંડ બે પ્રકારનો હોય છે, (૧) દ્રવ્ય-પિંડ અને (૨) ભાવપિંડ અશન આદિને દ્રવ્યપિંડ કહે છે કારણ કે તેથી ક્ષુધાનો નાશ થાય છે. જ્ઞાનાદિ એ પ્રશસ્ત-ભાવપિંડ છે, કારણ કે તે કર્મોનો નાશ કરવાવાળું છે અપ્રશસ્ત-ભાવપિંડ અસંયમાદિરૂપ છે, એનો અહીં અધિકાર નથી

દ્રવ્યપિંડ એ પ્રશસ્ત-ભાવપિંડનો પોષક છે. કારણ કે તેના વિના પ્રશસ્ત-ભાવપિંડની પ્રાપ્તિ થઈ શકતી નથી અર્થાત્ જ્ઞાનાદિ-રૂપ પ્રશસ્ત-ભાવપિંડની આરાધના શરીરની સ્થિતિને અધીન છે, અને શરીરની સ્થિતિ આહાર વિના હોઈ શકતી નથી આહારાદિ દ્રવ્યપિંડજ છે તેથી એ સિદ્ધ થયું કે દ્રવ્યપિંડ

भेदाभ्यां द्वैविध्येऽपि संयमिभिर्निरवद्यपिण्ड एव ग्राह्य इति तदेषणाधिकारः–'संपत्ते' इत्यादि ।

मूलम्–संपत्ते[2] भिक्खकालम्मि[1], असंभंतो[3] अमुच्छिओ[4] ।
इमेण[5] कमजोगेण[6], भत्तपाणं[7] गवेसए[8] ॥ १ ॥

छाया—सम्प्राप्ते भिक्षाकालेऽसम्भ्रान्तोऽमूर्च्छितः ।
अनेन क्रमयोगेन, भक्तपानं गवेषयेत् ॥१॥

॥ अथ पञ्चमाध्ययनम् ॥

सान्वयार्थः–मुनिको आहारपानी लेनेकी विधि कहते हैं—भिक्खकालम्मि= गोचरीका समय संपत्ते=होनेपर असंभंतो=उद्वेगरहित (और) अमुच्छिओ= आसक्तिरहित होकर इमेण कमजोगेण=इस आगे बताई जानेवाली विधिसे भत्तपाणं=भात-पानीकी गवेसए=गवेषणा करे ॥

टीका—भिक्षाकाले=गोचरीसमये, सम्प्राप्ते=स्वाध्यायाद्यनन्तरं द्रव्यक्षेत्र-कालभावानुकूलतया समायाते 'मुनि'-रिति शेषः, असम्भ्रान्तः=यत्किञ्चिन्नि-मित्तजनितचित्तव्याक्षेपजन्यत्वरारहितः-अनाक्षिप्तचित्त इत्यर्थः, ईर्योपयोगवानिति भावः, 'कदा कुत्र वाऽशनादिमाप्तिर्भविष्यती' त्यादिचिन्ताऽऽहितचाञ्चल्यरहित इति

पिण्डका पोषक है। द्रव्यपिण्ड, सावद्य भी होता है और निरवद्य भी होता है। संयमीको निरवद्य पिण्ड ही ग्रहण करना चाहिए; इसलिए द्रव्यपिण्डकी एषणाका अधिकार आरम्भ किया जाता है 'संपत्ते' इत्यादि।

द्रव्यक्षेत्रकालभावके अनुसार स्वाध्याय आदि क्रियाओंके पश्चात् जब गोचरीका समय हो तब मुनि किसी कारणवश उत्पन्न हुए चित्त-विक्षेपजन्य भ्रान्तिरहित होकर, अर्थात् ईर्या (गमन) में उपयोग रखकर, अथवा 'कब और कहाँ अशन आदिकी प्राप्ति होगी ?' इस

પ્રશસ્ત ભાવપિંડનો પોષક છે દ્રવ્યપિંડ સાવદ્ય પણ હોય છે અને નિરવદ્ય પણ હોય છે સંયમીએ તો નિરવદ્યપિંડ જ ગ્રહણ કરવો જોઈએ એટલા માટે દ્રવ્ય-પિંડની એષણાનો અધિકાર પ્રારંભવામાં આવે છે–संपत्ते भिक्खकालम्मि ઇત્યાદિ.

દ્રવ્ય–ક્ષેત્ર–કાળ–ભાવને અનુસાર સ્વાધ્યાયાદિ ક્રિયાઓની પછી જ્યારે ગોચરીનો સમય થાય ત્યારે મુનિ કોઈ કારણવશ ઉત્પન્ન થએલા ચિત્તવિક્ષેપથી જન્મેલી ભ્રાન્તિથી રહિત થઈને અથાત્ ઈર્યા (ગમન)માં ઉપયોગ રાખીને, અથવા ક્યારે અને ક્યાં અશન આદિની પ્રાપ્તિ થશે ? એ પ્રકારની ચિંતાજન્ય

यावत्, अमूर्च्छितः=आहारादौ मनोरमशब्दादिविषयेषु वा नासक्तः सन् अनेन= वक्ष्यमाणेनैतदध्ययनव्यावर्णितस्वरूपेण क्रमयोगेन=प्रकारेण भक्तपानं=भक्तं च पानं चेत्यनयोः समाहारे भक्तपानम्, भक्तम्,=ओदनादिकम्, पानं=द्राक्षादिजलं मुनियोग्यं गवेषयेत्=अन्वेषयेत् (अन्विच्छेत्)। 'संपत्ते' इत्यनेन मुनिना यथासमयं कार्यं सम्पादनीय' मित्याविष्कृतम्। 'असंभंतो' इत्यतो मनःस्थैर्यं विधेयमित्युपदिष्टम्। 'अमुच्छिओ' इत्यनेन विषयगृध्नुत्वमपाकृतम् ॥१॥

गवेषणाविधिमाह-'से गामे वा' इत्यादि।

मूलम्-से[1] गामे[3] वा[4] नयरे[5] वा[6], गोयरग्गगओ[7] मुणी[2]।

चरे[12] मंदमणुव्विग्गो[11], अवक्खित्तेण[10] चेयसा[8] ॥ २ ॥[9]

छाया—स ग्रामे वा नगरे वा, गोचराग्रगतो मुनिः।

चरेन्मन्दमनुद्विग्नोऽव्याक्षिप्तेन चेतसा ॥२॥

सान्वयार्थः-से=वह मुणी=साधु गामे=गाँव वा=अथवा नगरे=नगरमें वा= निश्चयसे गोयरग्गगओ=निर्दोष भिक्षाके लिए गया हुआ अणुव्विग्गो=उद्वेग

प्रकारकी चिन्ताजन्य चचलतासे रहित होकर आहार तथा मनोज्ञ शब्दादि विषयोंमें आसक्त न होता हुआ, जैसा इस अध्ययनमें वर्णन किया गया है उस विधिसे, मुनिके योग्य ओदन आदि भक्त तथा दाख आदिका धोवनरूप पानकी गवेषणा करे।

गाथामें 'संपत्ते' पदसे यह सूचित्त किया है कि मुनिको समय पर ही कार्य करना चाहिए। 'असंभंतो' पदसे यह प्रगट किया है कि साधुको मनकी स्थिरता रखनी चाहिए। 'अमुच्छिओ' पदसे विषयोंमें आसक्तिका निराकरण किया गया है ॥१॥

ચંચલતાથી રહિત થઈને આહાર તથા મનોજ્ઞ-શબ્દાદિ વિષયોમા આસક્ત ન થતાં, આ અધ્યયનમા વર્ણવ્યા પ્રમાણેની વિધિથી, મુનિને યોગ્ય ઓદન આદિ ભાત તથા દ્રાક્ષ આદિના ધોવણરૂપ પાનની ગવેષણા કરે

ગાથામા संपत्ते શબ્દથી એમ સૂચિત કરવામા આવ્યું છે કે મુનિએ સમય પર જ કાર્ય કરવું જોઈએ असंभंतो શબ્દથી એમ પ્રકટ કર્યું છે કે સાધુએ મનની સ્થિરતા રાખવી જોઈએ अमुच्छिओ શબ્દથી વિષયોમાં આસક્તિનું નિરાકરણ કરવામાં આવ્યું છે (૧)

रहित होता हुआ अव्वक्खित्तेण=शान्त-स्थिर चेयसा=चित्तसे मंदं=इर्या-समिति सोधता हुआ चरे=जावे ॥२॥

टीका—से=अथ=पिण्डगवेषणासमये, यद्वा 'से' इति तच्छब्दस्य प्रथमैकवचनरूपं तेन सः=प्रक्रान्तः मुनिः=मुणति=प्रतिजानीते सर्वसावद्यव्यापारोपरतिमिति, मन्यते=जानाति जिनाज्ञयाऽनेकान्तात्मकजीवाऽजीवादिपदार्थसार्थमिति वा [1]मुनिः=अनगारः, स च द्विविधः-द्रव्यतो भावतश्च, तत्र द्रव्यतः—मुनिकर्त्तव्यक्रियाकलापविकलो लिङ्गमात्रोपजीवी, भावतस्तु—मोहनीयकर्मक्षय-क्षयोपशमसमुद्भूतज्ञानादिरत्नत्रयप्रकटीभूतात्मस्वरूपः, प्रकृते च भावमुनिः प्रसङ्गगम्यः।

१ आद्ये 'मुण प्रतिज्ञाने' अस्मादौणादिक इन्, पृषोदरादित्वाण्णस्य नः। द्वितीये-'मन ज्ञाने' इति धातोः 'मनेरुच्चे'-त्यौणादिकसूत्रेण इन्प्रत्ययः स च कित् अकारस्योकारादेशश्च। यद्वा 'मुणी' इति प्राकृतसमः संस्कृत एव, शब्दसिद्धिरप्युक्तैव, तदा छायायां 'मुणिः' इत्यपि समावेशमर्हति।

अब गवेषणाकी विधि बताते हैं-'से गामे वा०' इत्यादि।

'मुनि' शब्दके अनेक अर्थ हैं-(१) जो समस्त सावद्य व्यापारके त्यागकी प्रतिज्ञा करते हैं उन्हे मुनि कहते हैं। (२) जिनेन्द्र भगवान्की आज्ञाके अनुसार जीव अजीव आदि पदार्थोंको अनेकान्तस्वरूप जाननेवाले मुनि कहलाते हैं। मुनि दो प्रकारके होते हैं-(१) द्रव्यमुनि और (२) भावमुनि। मुनियोंके आचारका पालन न करनेवाला मुनिवेषधारी द्रव्यमुनि कहलाता है। मोहनीय कर्मके क्षय और क्षयोपशमसे उत्पन्न हुए सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयके द्वारा जिनकी आत्माका स्वरूप प्रकट होगया है उन्हें भावमुनि कहते हैं। यहां भावमुनिका अधिकार समझना चाहिए।

હવે ગવેષણાની વિધિ બતાવે છે—से गामे वा० ઇત્યાદિ

મુનિ શબ્દના અનેક અર્થો છે. (૧) જે સર્વ સાવદ્ય વ્યાપારના ત્યાગની પ્રતિજ્ઞા કરે છે—તેને મુનિ કહે છે. (૨) જિનેન્દ્ર ભગવાનની આજ્ઞાને અનુસાર જીવ અજીવ આદિ પદાર્થોને અનેકાન્તસ્વરૂપ જાણવાવાળા મુનિ કહેવાય છે. મુનિ બે પ્રકારના હોય છે (૧) દ્રવ્યમુનિ અને (૨) ભાવમુનિ મુનિઓના આચારનું પાલન ન કરનારા મુનિવેષધારી દ્રવ્યમુનિ કહેવાય છે, મોહનીય કર્મના ક્ષય અને ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન થએલા સમ્યગ્જ્ઞાન સમ્યગ્દર્શન અને સમ્યક્ચારિત્રરૂપ રત્નત્રયની દ્વારા જેના આત્માનું સ્વરૂપ પ્રકટ થઇ ગયું છે. તેને ભાવમુનિ કહે છે. અહીં ભાવમુનિનો અધિકાર સમજવો જોઇએ,

ग्रामे वा=अथवा नगरे, द्वितीय-'वा'-शब्दात् खेटकर्वटादौ, गोचराग्रगतः=गोरिव चरणं=यथायोग्यं स्वल्पस्वल्पग्रहणं गोचरः, अग्रः=आधाकर्मादिदोपरहिततया श्रेष्ठः, स चासौ गोचरश्चेति गोचराग्रः, आर्षत्वाद्विशेषणपूर्वनिपाताभावः, अग्रगोचर इत्यर्थः, तत्र गतः=वर्त्तमानः गोचराग्रगतः अव्याक्षिप्तेन=स्थिरेण भिक्षागतसकलदोषोपयोगवतेत्यर्थः, चेतसा=चित्तेन अनुद्विग्नः=अलाभादिपरीपहजनितक्षोभरहितः, मन्दं=शनैर्यथास्यात्तथा ईर्यापथं शोधयन्नित्यर्थः, चरेत्=गच्छेत्।

'गोयरग्गगओ' इत्यनेन नवकोटिविशुद्धाहारो ग्रहीतव्य इति सूचितम्। 'अव्वक्खित्तेण चेयसा' इत्यनेन चित्तस्थैर्येणैव भिक्षादिशुद्धिर्भवतीति ध्वनितम्। 'अणुव्विग्गो' इत्यतः परीपहसहनसामर्थ्यं बोधितम् ॥ २ ॥

गोचरीगमनप्रकारानाह-'पुरओ' इत्यादि ।

वह भावमुनि पिण्ड-गवेषणाका समय होने पर ग्राम, नगर खेडा, कर्वट आदिमें यथायोग्य थोड़ा-थोडा निर्दोष आहार ग्रहण करता हुआ भिक्षाके समस्त दोषोंका उपयोग रखनेवाले अर्थात् अव्याक्षिप्त चित्तसे अलाभ आदि परीपह जनित क्षोभसे रहित होकर ईर्यापथ शोधते हुए मन्दगतिसे चले।

'गोयरग्गगओ' पदसे यह सूचित हुआ है कि साधुको नवकोटि-विशुद्ध आहार लेना चाहिए। 'अव्वक्खित्तेण चेयसा' इससे यह द्योतित होता है कि चित्तकी स्थिरतासे ही भिक्षाकी शुद्धि निभ सकती है। 'अणुव्विग्गो' पदसे परीषह सहनेका सामर्थ्य प्रगट किया है ॥२॥

गोचरीके लिए गमनविधि बताते हैं-'पुरओ' इत्यादि ।

એ ભાવ મુનિ પિંડગવેષણાનો સમય થતાં ગ્રામ, નગર, ગામડું, કર્વટ આદિમાં યથાયોગ્ય થોડો થોડો નિર્દોષ આહાર ગ્રહણ કરતાં, ભિક્ષાના બધા દોષોનો ઉપયોગ રાખવાવાળો અર્થાત્ અવ્યાક્ષિપ્ત-ચિત્તથી અલાભ આદિ પરીષહથી ઉત્પન્ન થતા ક્ષોભથી રહિત થઈને ઈર્યાપથ શોધતાં મંદ ગતિએ ચાલે.

गोयरग्गगओ શબ્દથી એમ સૂચિત થયું છે કે સાધુએ નવકોટિએ વિશુદ્ધ આહાર લેવો જોઈએ अव्वक्खित्तेण चेयसा એથી એમ પ્રકટ થાય છે કે ચિત્તની સ્થિરતાથી જ ભિક્ષાની શુદ્ધિ નભી શકે છે, अणुव्विग्गो શબ્દથી પરીષહ સહવાનું સામર્થ્ય પ્રકટ કર્યું છે (૨)

ગોચરીને માટે ગમનવિધિ બતાવે છે-पुरओ ઈત્યાદિ.

३ १ ४ २ १०
मूलम्-पुरओ जुगमायाए, पेहमाणो महिं चरे ।
९ ५ ६ ८ ७
वज्जंतो बीयहरियाइं, पाणे य दगमट्टियं ॥ ३ ॥
छाया—पुरतो युगमात्रया, प्रेक्षमाणो महीं चरेत् ।
वर्जयन् बीजहरितानि, प्राणांश्च दकमृत्तिकाम् ॥३॥

गोचरी में चलने की विधि कहते हैं—

सान्वयार्थः-पुरओ=सामने जुगमायाए=धूसर प्रमाण दृष्टिसे महिं=पृथिवीको पेहमाणो=देखता हुआ बीयहरियाइं=बीज, हरी, पाणे=द्वीन्द्रियादिक प्राणी य=और दगमट्टियं=सचित्त जल तथा सचित्त मिट्टीको वज्जंतो=वर्जता हुआ चरे=चले ॥३॥

टीका—युगमात्रया=जूसरप्रमाणया तत्प्रमाणप्रसृतयेत्यर्थः 'दृष्ट्ये'ति शेषः। वस्तुतस्तु 'क्वचिद्द्वितीयादेः' इति नियमादत्र द्वितीयार्थे षष्ठी, तेन 'जुगमायाए' इत्यस्य 'युगमात्रा'-मिति च्छाया, तथाच-युगमात्रां=प्रोक्तार्थां स्वशरीरप्रमितामिति भावः, महीं=भूमिं मार्गभूमिमिति भावः, पुरतः=स्वाग्रतः प्रेक्षमाणः=सम्यगवलोकयन् बीजहरितानि=प्रसिद्धानि, प्राणान्=द्वीन्द्रियादिप्राणिनः, दकमृत्तिकां=सचित्तं जलं मृत्तिकां च वर्जयन्=परिहरन् चरेत्=गच्छेत् ॥३॥

३ ४ ५ ६ ७
मूलम्-ओवायं विसमं खाणुं, विजलं परिवज्जए ।
८ ९ १० २ १
संकमेण न गच्छिज्जा, विज्जमाणे परक्कमे ॥ ४ ॥
छाया—अवपातं विषमं स्थाणुं, विजलं परिवर्जयेत् ।
सङ्क्रमेण न गच्छेत्, विद्यमाने पराक्रमे ॥४॥

सान्वयार्थः-परक्कमे=दूसरे मार्गके विज्जमाणे=होनेपर (साधु) ओवायं=जिस मार्गमें गिर पड़नेकी शंका हो विसमं=खड्डे आदिके कारण विकट हो खाणुं=काटे हुए धान्यके डंठलोंसे युक्त (और) विजलं=कीचड़वाला हो उस

अपने शरीर प्रमाण रास्ता सामने भली भाँति अवलोकन करता हुआ, बीज, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय आदि प्राणी सचित्तजल और सचित्त मृत्तिकाको बचाता हुआ गमन करे ॥३॥

પોતાના શરીર પ્રમાણુ રસ્તા સામે સારી રીતે અવલોકન કરતાં, બીજ, વનસ્પતિકાય, દ્વીન્દ્રિયાદિ પ્રાણી, સચિત્ત જળ અને સચિત્ત માટીને બચાવી લેતા ગમન કરે (૩)

मार्गको परिवज्जए=छोड़े, तथा संकमेण=कीचड आदिके कारण जिस मार्गमें ईंट काठ आदि लांघनेके लिए रखे हों उससे भी न गच्छेज्जा=नहीं जावे ॥४॥

टीका—'ओवायं०' इत्यादि। 'परक्कमे' इति आक्रमणमाक्रमः=अवलम्बनं परश्चासावाक्रमश्च पराक्रमः परस्याऽऽक्रमो वा पराक्रमस्तस्मिन्, यद्वा 'परक्रमे' इतिच्छाया, ततश्च परश्चासौ क्रमश्च परक्रमस्तस्मिन् 'सर्वथा गत्यन्तरे' इत्यर्थस्तथा च-पराक्रमे अथवा परक्रमे उपाये विद्यमाने=वर्त्तमाने सति अवपातः[1]=स्खलनस्थानं सत्यप्यालोके येन सञ्चरणे स्खलनमवश्यसम्भाव्यं तम्, विषमं[2]=दुर्गमत्वाद्विकटं मार्गं स्थाणुं=लूनसस्यादिस्थुडं तद्बहुलं क्षेत्रादिमार्गमित्यर्थः, विजलं=विगतं जलं यस्मात्तत् तथोक्तं पङ्किलस्थलं परिवर्जयेत्=परित्यजेत्, संक्रमेण=संक्रम्यते=समुल्लङ्घ्यते जलकर्दमादिबहुलविषमस्थानं येन स संक्रमः=इष्टका-काष्ठ-पाषाणादिनिर्मितमार्गविशेषस्तेन न गच्छेत्=न सञ्चरेत्। 'विज्जमाणे परक्कमे' इत्यनेनोपायान्तराभावे नायं प्रतिषेध इत्यपवादः सूचितः ॥४॥

१ गर्त्तमयतया संभावितस्खलनकम्।

२ उन्नताऽवनतत्वाद्दुर्गमम्।

'ओवायं०' इत्यादि। पर अवलम्बको यहाँ पर परक्रम अथवा पराक्रमसे कहा गया है अत एव अर्थ यह है कि दूसरे मार्गके रहते हुए, जिसमें चलनेसे गिर पड़नेकी संभावना हो, दुर्गम होनेके कारण विकट हो, जिसमें काटे हुए ज्वार आदिके डंठल हों, और जो कीचड़वाला हो, जल-कीचड आदिकी अधिकता होनेसे लांघनेके लिए ईंट, काष्ठ, पत्थर आदि रखे हुए हों, उस विषम मार्गसे गमन न करे।

'विज्जमाणे परक्कमे' इस पदसे यह सूचित किया है कि दूसरा

ओवायं० ઇત્યાદિ પર અવલંબનને અહીં પરક્રમ અથવા પરાક્રમથી કહેવામાં આવેલ છે, એથી એવો અર્થ થાય છે કે બીજો માર્ગ હોવા છતા, જેમાં ચાલવાથી પડી જવાની સંભાવના હોય, દુર્ગમ હોવાને લીધે વિકટ હોય, જેમાં કાપેલી જુવાર આદિનાં ઠુંઠા હોય, અને જે કીચડવાળો હોય, પાણી-કીચડ વગેરે વધુ હોવાના કારણે ઓળગવા માટે ઈંટ, લાકડું કે પત્થર આદિ રાખેલાં હોય, એવા વિષમ માર્ગથી ગમન ન કરે.

विज्जमाणे परक्कमे એ શબ્દોથી એમ સૂચવ્યું છે કે બીજો માર્ગ ન હોય

तत्र गच्छतो हानिमाह-'पवडंते' इत्यादि।

२ ३ ६ १ ४ ५ ७
मूलम्-पवडंते व से तत्थ, पक्खलंते व संजए।
१२ ११ ८ १० ९
हिंसेज्ज पाणभूयाइं, तसे अदुव थावरे॥५॥

छाया—प्रपतंश्च स तत्र, प्रस्खलँश्च संयतः।
हिंस्यात्प्राणभूतानि, त्रसान् अथवा स्थावरान्॥५॥

पूर्वोक्त मार्गसे जाने में दोष बताते हैं—

सान्वयार्थः-से=उस मार्गसे जानेवाला वह संजए=साधु व=यदि तत्थ=वहां पवडंते=गिर जाय व=अथवा पक्खलंते=रपट पड़े तो तसे=त्रस-द्वीन्द्रियादि अदुव=अथवा थावरे=स्थावर-पृथिव्यादि पाणभूयाइं=प्राणी भूतोंकी हिंसेज्जा=हिंसा करे। अर्थात् ऐसे मार्गमें जानेसे साधुको आत्म और संयम दोनोंकी विराधनाका संभव है॥५॥

टीका—तत्र=तस्मिन् अवपातादौ प्रपतन् प्रस्खलँश्च स संयतः=साधुः त्रसान्=द्वीन्द्रियादिलक्षणान्, स्थावरान्=पृथिव्याद्येकेन्द्रियान्, अथवा प्राणभूतानि=त्रसस्थावरोभयविधान् प्राणिनो हिंस्यात्=मर्दयेत् पीडयेदिति यावत्। पतनादिना चाऽऽत्मविराधनाद्यपि नियतं भावीति भावः॥५॥

मार्ग न हो तो यह निषेध नहीं है-अर्थात् अन्य मार्गके अभावमें ऐसे मार्गसे भी जा सकते हैं॥४॥

ऐसे मार्गमें चलनेसे होनेवाली हानि बताते है-'पवडंते०' इत्यादि।

यदि अवपात आदि पूर्वोक्त मार्गोंमें गमन करनेसे गिर पड़े या रपट जावे तो द्वीन्द्रिय आदि त्रस या पृथिवीकायिक आदि स्थावर जीवोंकी अथवा दोनों प्रकारके जीवोंकी हिंसा होती है तथा गिरने आदिसे आत्मविराधना भी अवश्य होती है॥५॥

તો એનો નિષેધ નથી-અર્થાત્ અન્ય માર્ગને અભાવે એવા માર્ગથી પણ જઈ શકાય છે (૪)

એવા માર્ગમાં ચાલવાથી થનારી હાનિ બતાવે છે- पवडंते० ઇત્યાદિ

જો અવપાત આદિ પૂર્વોકત માર્ગોમાં ગમન કરવાથી પડી જાય યા લપસી જાય તો દ્વીન્દ્રિયાદિ ત્રસ યા પૃથ્વીકાયિક આદિ સ્થાવર જીવોની અથવા બેઉ પ્રકારના જીવોની હિંસા થાય છે, તથા પડવાથી આત્મવિરાધના પણ અવશ્ય થાય છે (૫)

१ ७ ८ ६ ३ २
मूलम्–तम्हा तेण न गच्छिज्जा, संजए सुसमाहिए ।
९ ४ ५ १० ११
सइ अन्नेण मग्गेण, जयमेव परक्कमे ॥ ६ ॥

छाया—तस्मात् तेन न गच्छेत्, संयतः सुसमाहितः ।
सत्यन्यस्मिन् मार्गे, यतमेव पराक्रामेत् ॥६॥

सान्वयार्थः–तम्हा=इसलिए सइ अन्नेण मग्गेण=दूसरे मार्गके होते हुए सुसमाहिए=भगवान्‌की आज्ञाका आराधक संजए=साधु तेण=उस मार्गसे न गच्छिज्जा=नहीं जावे, (अगर दूसरा मार्ग न हो तो साधु उसी मार्गसे) जयमेव=जीवोंकी यतना करता हुआ परक्कमे=गमन करे ॥६॥

टीका—'तम्हा' इत्यादि । तस्मात्=त्रसस्थावरादिहिंसाभयाद्धेतोः सुसमाहितः=सकलप्राणिगणसंरक्षणप्रवणान्तःकरणः संयतः अन्यस्मिन् मार्गे सति=विद्यमाने तेन=गर्त्तादिमार्गेण न गच्छेत् । अन्यमार्गाभावे तु तेनापि गर्त्तादिमार्गेणापि यतमेव=सयत्नमेव यतनयैवेत्यर्थः, पराक्रामेत्=गच्छेत् । 'संजए' इत्यनेनाऽनगारस्य यत्नवत्त्वम्, 'सुसमाहिए' इत्यनेन चोपयोगवत्त्वं प्रतिपादितम् । अत्रेदमवधेयम्-चतुर्थगाथया प्रतिज्ञातेऽर्थे पञ्चमगाथया हेतुमुपन्यस्यानया षष्ठ-

---

'तम्हा' इत्यादि । त्रस स्थावरकी विराधनाके भयसे समस्त प्राणियोंकी रक्षा करनेकी इच्छावाले मुनि अन्य मार्ग होनेपर उस खड्डे आदिवाले मार्गसे गमन न करे। दूसरा मार्ग न हो तो उसी मार्गसे यतनापूर्वक गमन करे । 'संजए' पदसे साधुकी यतनापरायणता और 'सुसमाहिए' पदसे उपयोगवत्ता प्रगट की है ।

यहाँ पर यह बात समझनेकी है कि चौथी, पाँचवीं और छठी, इन तीनों गाथाओंसे परार्थानुमानका प्रकार दर्शाया गया है, अर्थात् चौथी

तम्हा ઇત્યાદિ. ત્રસ સ્થાવરની વિરાધનાના ભયથી બધા પ્રાણીઓની રક્ષા કરવાની ઇચ્છાવાળા મુનિ બીજો માર્ગ હોવા છતાં એ ખાડા આદિવાળા માર્ગથી ગમન કરે નહિ બીજો માર્ગ ન હોય તો એ માર્ગે યતનાપૂર્વક ગમન કરે संजए શબ્દથી સાધુની યતનાપરાયણતા અને सुसमाहिए શબ્દથી ઉપયોગવત્તા પ્રકટ કરવામાં આવી છે અહીં એ વાત સમજવાની છે કે, ચોથી પાંચમી અને છઠ્ઠી એ ત્રણ ગાથાઓથી પરાર્થાનુમાનનો પ્રકાર દર્શાવવામાં આવ્યો છે અર્થાત્ ચોથી

गाथयोपसंहारः कृत इति परार्थानुमानप्रकारो दर्शितो गाथाभिराभिस्तिसृभिरिति ६।

पृथिवीकाययतनामाह–'इंगालं' इत्यादि ।

५ ६ ८ ९ १० ७

मूलम्–इंगालं छारियं रासिं, तुसरासिं च गोमयं ।

२ ३ १ ४ ११

ससरक्खेहिं पाएहिं, संजओ तं नइक्कमे ॥ ७ ॥

छाया—आङ्गारं क्षारिकं राशिं, तुषराशिं च गोमयम् ।

सरजस्काभ्यां पादाभ्यां, संयतस्तं नातिक्रामेत् ॥७॥

पृथिवीकाय की यतना कहते हैं—

सान्वयार्थः–संजओ=साधु ससरक्खेहिं=सचित्त रजसे भरे हुए पाएहिं=पैरोंसे तं=उस इंगालं=कोयलेके तथा छारियं=राखके रासिं=पुञ्ज-ढेर-को तुसरासिं=भूसेके पुंजको च=और गोमयं=गोबरके पुञ्जको नइक्कमे=आक्रमण न करे अर्थात् इन पर पैर रखकर न जावे ॥७॥

टीका—संयतः सरजस्काभ्यां=सचित्तधूलिधूसरिताभ्यां पादाभ्याम्=चरणाभ्याम् तं=परिहार्यतया प्रसिद्धम् आङ्गारम्=अङ्गारसम्वन्धिनम्, क्षारिकं=भस्मसम्वन्धिनम् गोमयं=गोमय-(गोपुरीष)-सम्वन्धिनम् राशिं=पुञ्जम् तुषराशिं=धान्यत्वक्पुञ्जं च नातिक्रामेत्=तदुपरि सचित्तरजोऽवगुण्ठितचरणावारोप्य न चरेदित्यर्थः, पृथिवीकायविराधनासंभवात्। उपलक्षणतश्च यत्र पृथिवीकायोपमर्दनं संभवति तत्सर्वमतिक्रम्य न क्रामेदिति ॥७॥

गाथासे प्रतिज्ञा पाँचवीं गाथासे हेतु और छठी गाथासे उपसंहार किया गया है ॥६॥

अब पृथिवीकायकी यतना कहते हैं–'इंगालं' इत्यादि।

साधु, सचित्तधूलियुक्त पैरोंसे अंगार, भस्म (राख) और गोवर आदिकी राशिको न लाँघे, तथा तुषराशिका भी उल्लंघन करके न जावे। क्योंकि इससे पृथ्वीकायकी हिंसा होती है। उपलक्षणसे यह भी समझना चाहिए कि जिससे पृथिवीकायकीविराधना हो उसकोलांघकर गमन नकरे॥७॥

ગાથાથી પ્રતિજ્ઞા, પાંચમી ગાથાથી હેતુ અને છઠ્ઠી ગાથાથી ઉપસંહાર કરવામા આવ્યો છે (૬)

હવે પૃથિવીકાયની યતના કહે છે–इंगालं ઇત્યાદિ

સાધુ, સચિત્ત-ધૂળયુક્ત પગે અંગાર ભસ્મ (રાખ) અને છાણુ આદિના ઢગલાને ન ઓળંગે તથા તુષ (ભૂસુ) ના ઢગલાનું પણ ઉલ્લઘન કરીને ન જાય; કારણ કે એથી પૃથ્વીકાયની હિંસા થાય છે ઉપલક્ષણે કરીને એમ પણ સમજવું કે જેથી પૃથિકીકાયની વિરાધના થાય એને ઉલ્લઘીને ગમન ન કરે. (૭)

अप्कायादियतनामाह-'न चरेज्ज' इत्यादि ।

१० ११ १ २ ३ ४
मूलम्-न चरेज्ज वासे वासंते, मिहियाए पडंतिए ।
५ ७ ६ ८ ९
महावाए व वायंते, तिरिच्छसंपाइमेसु वा ॥ ८ ॥

छाया—न चरेद् वर्षे वर्षति, मिहिकायां पतन्त्याम् ।
महावाते वा वाति, तिर्यक्संपातेषु वा ॥८॥

अप्काय आदिकी यतना कहते हैं—

सान्वयार्थः-वासे वासंते=वर्षा बरसते हुए मिहियाए पडंतिए=धूँअर-कुहरा-गिरते हुए व=तथा महावाए वायंते=महावायु-आँधी-के चलते हुए वा=और तिरिच्छसंपाइमेसु=तीड-पतंगादिकोंके उडते हुए (साधु) न चरेज्ज=गोचरी न जावे ॥८॥

टीका—वर्षे वर्षति=वृष्टौ सत्याम्, मिहिकायां=धूमिकायां पतन्त्यां सत्यां महावाते=प्रचण्डपवने वाति=वहति सति, तिर्यक्सम्पातेषु=तिर्यक्पतनशीलेषु शलभादिषु सत्सु न चरेत् । 'वासे वासंते' इत्यनेन शीकरपातसमयेऽपि गमन-निषेधः तस्यापि वृष्टावन्तर्भावात् अप्कायविराधनासाधनत्वाच्च ॥८॥

उक्ता प्रथममहाव्रतविराधनाऽधुना चतुर्थमहाव्रतविराधनाया इतरमहाव्रतविराधना-

---

अप्कायादिकी यतना कहते हैं-'न चरेज्ज वासे०' इत्यादि ।

जब वर्षा बरस रही हो, कुहरा (धूँअर) पड़ रहा हो, आँधी चल रही हो, टिड्डी आदि उड़ रहे हों, तब साधु गमन न करे। 'वासे वासंते' इस पदसे यह भी ग्रहण कर लेना चाहिए कि जब फुहारे पड़ रहे हों तब भी गमन न करे, क्योंकि वह भी वर्षाहीमें अन्तर्गत है और उस समय जानेसे अप्कायकी विराधना होती है ॥८॥

प्रथम महाव्रतकी विराधना बतानेके बाद अब अन्य महाव्रतोंकी विराधना

અપ્કાયાદિની યતના કહે છે-ન चरेज्ज वासे० ઇત્યાદિ જ્યારે વરસાદ વરસી રહ્યો હોય, ધુમસ (ઝાકળ) પડી રહ્યો હોય, આંધી ચાલી રહી હોય, ટીડ ઉડી રહ્યાં હોય, ત્યારે સાધુ ગમન ન કરે वासे वासंते એ શબ્દથી એમ પણ ગ્રહણ કરી લેવું જોઇએ કે જ્યારે વરસાદની ફરફર પડી રહી હોય ત્યારે પણ ગમન ન કરે, કારણ કે તે પણ વરસાદમા જ આવી જાય છે, અને તે સમયે જવાથી અપ્કાયની વિરાધના થાય છે (૮)

પ્રથમ મહાવ્રતની વિરાધના બતાવ્યા પછી હવે બીજાં મહાવ્રતોની વિરાધનાના

हेतुभूततया तामाह–'न चरेज्ज वेस०' इत्यादि।

मूलम्–न चरेज्ज वेससामंते, बंभचेरवसाणुए।
बंभयारिस्स दंतस्स, हुज्जा तत्थ विसुत्तिया॥ ९॥

छाया—न चरेद् वेशसामन्ते, ब्रह्मचर्यवशानुगः।
ब्रह्मचारिणो दान्तस्य, भवेत्तत्र विस्रोतसिका॥९॥

ब्रह्मचर्य ही सब व्रतों का कारण है, अतः चतुर्थव्रत की यतना कहते हैं—

सान्वयार्थः–बंभचेरवसाणुए=ब्रह्मचर्यकी रक्षा चाहनेवाला साधु वेससामंते=वेश्याके पाड़े-मुहल्ले-में न चरेज्ज=गोचरी नहीं जावे, (क्योंकि) तत्थ=वहां (गोचरी जानेसे) दंतस्स=इन्द्रिय और मनको काबूमें रखनेवाले बंभयारिस्स=ब्रह्मचारी साधुके भी विसुत्तिया=मानसिक विकार हुज्जा=पैदा हो जाता है, साधारण मनुष्यकी तो बातही क्या? अर्थात् उसके मानसिक विकार जरूर उत्पन्न हो जाता है॥९॥ क्योंकि—

टीका—ब्रह्मचर्यवशानुगः=ब्रह्मचर्यं=कामवासनापरित्यागलक्षणव्रतं, वशं=स्वायत्तताम् अनुगमयति=प्रापयतीति स तथोक्तः ब्रह्मचारीत्यर्थः। यद्वा 'ब्रह्मचर्यावसानके' इति, 'ब्रह्मचर्यवशाऽऽनये' इति वा संस्कृतं, तस्य 'वेशसामन्ते' इत्यनेन विशेषणतया सम्बन्धस्तथा च–ब्रह्मचर्यस्यावसानम्=अन्तो यस्मात्स तस्मिन्–ब्रह्मचर्यविनाशके इति प्रथमस्यार्थः। ब्रह्मचर्यं वशमानयति=दर्शनादिना स्वाधीनं करोतीति ब्रह्मचर्यवशानयस्तस्मिन् ब्रह्मचर्यभ्रंशके इति द्वितीयस्यार्थः। वेशसामन्ते=वेशः=वेश्यागृहम् 'वेशो वेश्यागृहे गृहे' इति कोशात्, तस्य सामन्ते=समीपे वेश्यापाटके वा न चरेत्=न गच्छेत्। का हानि? रित्याह-'ब्रह्मे'-ति, तत्र=वेशसामन्ते गमनेनेति प्रसङ्गलभ्यम्, दान्तस्य=जितेन्द्रियस्यापि

के कारण होनेसे चतुर्थ महाव्रतकी विराधनाका कथन करते हैं–'न चरेज्ज वेस०' इत्यादि।

ब्रह्मचारी साधु गोचरीके लिए, ब्रह्मचर्यका नाश करनेवाले वेश्याघरके समीपमें या वेश्याके पाड़े (मुहल्ले) में न जावे। वहाँ जानेसे क्या हानि है? सो बताते हैं–वेश्याके पाडेमें गमन करनेसे जितेन्द्रिय ब्रह्म-

---

કારણ હોવાને લીધે ચતુર્થ મહાવ્રતની વિરાધનાનું કથન કરે છે: न चरेज्ज वेस० ઇત્યાદિ.

બ્રહ્મચારી સાધુ ગોચરીને માટે, બ્રહ્મચર્યનો નાશ કરવાવાળા વેશ્યાગૃહની સમીપે યા વેશ્યાઓના મહોલ્લામા ન જાય ત્યાં જવામાં શી હરકત છે? તે હવે બતાવે છે:–વેશ્યાના મહોલ્લામા ગમન કરવાથી જિતેન્દ્રિય બ્રહ્મચારી

ब्रह्मचारिणः=साधोर्विस्रोतसिका=तद्रूपलावण्यावलोकनचिन्तनादि[1]कचवरेण चेतोनलिकासमागच्छद्भावनासलिलप्रवाहनिरोधे श्रद्धाभूमिसमुत्पन्नब्रह्मचर्यमूलकाऽहिंसासत्याऽस्तेयाऽपरिग्रहरूपाऽऽलवालसंवर्द्धित–ज्ञान–क्रियास्कन्धसुदृढ–समितिगुप्त्यादिशाखाप्रशाखावितता-ऽष्टादशसहस्रशीलाङ्गपत्र-ध्यान-कुसुमा-ऽपवर्ग-फलसम्पत्समृद्धसंयमद्रुमशोषिणी चित्तविकृतिर्भवेदिति सूत्रार्थः ॥९॥

सकृद्गमनदोषं प्रतिपाद्येदानीमसकृद्गमनदोषान् प्रदर्शयति-'अणायणे'इत्यादि।

मूलम्–अणायणे[1] चरंतस्स[3], संसग्गीए[4] अभिक्खणं[2] ।
हुज्ज[10] वयाणं[5] पीला[6], सामन्नम्मि[8] य[7] संसओ[9] ॥१०॥

---

१ 'कूड़ा–करकट' 'कचरा' इति भाषा ।

चारी साधुके भी मनमें विकार उत्पन्न होसकता है । अर्थात् वेश्याके रूप–लावण्यका अवलोकन करने और विचार करनेरूप कचरेसे चित्तरूपी नलद्वारा आत्मामें आता हुआ विशुद्धभावनारूप जलका प्रवाह रुक जाता है । भावना-जलका प्रवाह रुक जानेसे वह संयमरूपी तरु सूख जाता है, जो तरु श्रद्धारूपी भूमिमें उत्पन्न होता है, ब्रह्मचर्य जिसकी जड़े हैं, अहिंसा-सत्य-अस्तेय-अपरिग्रह-रूपी क्यारी है, जो ज्ञान और क्रियारूपी स्कन्धसे दृढ है, समिति-गुप्ति आदि शाखा-प्रशाखाएँ जिसकी फैली हुई हैं, अठारह हजार शीलाङ्ग जिसके पत्ते हैं, ध्यान ही जिसके पुष्प हैं, और मुक्ति-सम्पत्तिही जिस वृक्षके फल हैं ॥९॥

एकबार गमन करनेके दोष बताकर वारंवार गमन करनेके दोष कहते हैं–'अणायणे०' इत्यादि ।

સાધુના મનમા પણ વિકાર ઉત્પન્ન થઈ શકે છે. અર્થાત્ વેશ્યાના રૂપ–લાવણ્યનું અવલોકન, વિચાર, ઈત્યાદિરૂપ કચરાથી ચિત્તરૂપી નળદ્વારા આત્મામા આવતા વિશુદ્ધ ભાવનાજળનો પ્રવાહ રોકાઈ જવાથી એ સયમરૂપી તરૂ સુકાઈ જાય છે, કે જે તરૂ શ્રદ્ધારૂપી ભૂમિમાં ઉત્પન્ન થાય છે, બ્રહ્મચર્ય જેના મૂળ છે, અહિંસા-સત્ય-અસ્તેય-અપરિગ્રહરૂપી કયારી છે, જે જ્ઞાન અને ક્રિયારૂપી થડ વડે દૃઢ છે, સમિતિ-ગુપ્તિ આદિ શાખા-પ્રશાખા જેની ફેલાઈ રહી છે, અઢાર હજાર શીલાગ જેના પાદડા છે, ધ્યાન જ જેના પુષ્પ છે અને મુક્તિસપત્તિજ તે તરૂના ફળ છે (૯)

એકવાર ગમન કરવાના દોષ બતાવીને વારંવાર ગમન કરવાના દોષે બતાવે છે–अणायणे० ઇત્યાદિ

छाया—अनायतने चरतः संसर्गेणाऽभीक्ष्णम् ।
भवेद्व्रतानां पीडा, श्रामण्ये च संशयः ॥१०॥

वेश्या के पाड़े में एकवार जाने का दोष कह कर अब अनेक बार जानेका दोष कहते हैं—

सान्वयार्थः—अणाययणे=वेश्याके पाड़ेमें अथवा इस प्रकारके दूसरे अयोग्य स्थानोंमें चरंतस्स=गोचरी जानेवाले साधुके अभिक्खणं=बारंबार संसग्गीए=संसर्ग होनेके कारण वयाणं=महाव्रतोंको पीला=पीडा हुज्ज=होती है अर्थात् वे दूषित हो जाते हैं। (इतना ही नहीं किन्तु उस साधुके) सामन्नम्मि य=चारित्र-साधुपने-में भी संसओ=सन्देह हो जाता है ॥१०॥

टीका—अनायतने=अयोग्यस्थाने वेश्यागृहसमीपादौ अभीक्ष्णं=वारंवारम् चरतः=पर्यटतः साधोः संसर्गेण=प्रेक्षणादिसंपर्केण (मूले प्राकृतत्वात्स्त्रीत्वम्) व्रता-नां=ब्रह्मचर्यादीनां पीडा=विराधना, चकारोऽप्यर्थे, नैतावत्येव हानिः किन्त्वन्या-ऽपीत्याह-श्रामण्ये=चारित्रेऽपि संशयः=पालनीयतासन्देहो भवेत्, तथाहि—

" दुश्चरब्रह्मचर्यादेर्भविष्यति फलं न वा ? ।
चेन्न जाने कियत् कीदृक्, कदा वा तद्भविष्यति ॥१॥
तथाऽप्राप्तसुखप्राप्ति,-मुद्दिश्य विहितो मया ।
उपस्थितसुखत्याग उचितः किं न वोचितः ॥२॥" इत्यादि।

वेश्या-घरके समीप या ऐसेही अन्य अयोग्य स्थानोंमें बार बार गमन करनेवाले साधुके वेश्याको देखने आदि संसर्गसे ब्रह्मचर्य आदि व्रतोंमें पीड़ा होजाती है, अर्थात् व्रत दूषित होजाते हैं। यही एक हानि नहीं है किन्तु उसके श्रामण्य (चारित्र)में भी संदेह होजाता है कि—

"इस दुश्चर ब्रह्मचर्यका फल मिलेगा या नहीं ?, यदि मिलेगा भी तो न जाने कितना मिलेगा, कैसा मिलेगा, और कब मिलेगा ? ॥१॥

मैंने अप्राप्त सुखकी प्राप्तिके लिए प्राप्त सुखका त्याग कर दिया है सो यह-उचित किया है या अनुचित ? ॥२॥" इत्यादि ।

વેશ્યાગૃહની સમીપે યા એવાજ અન્ય અયોગ્ય સ્થાનોમાં વારંવાર જવાવડે વેશ્યાને જોવા આદિ સંસર્ગથી સાધુના બ્રહ્મચર્ય આદિ વ્રતોમા પીડા થઈ જાય છે, અર્થાત્ વ્રત દૂષિત થઇ જાય છે આ એક જ હાનિ નથી પરન્તુ એના શ્રામણ્ય (ચારિત્ર)મા પણ સંદેહ ઉત્પન્ન થાય છે કે-" આ દુશ્ચર બ્રહ્મચર્યનું ફળ મળશે કે નહિ ?, જો મળશે તો પણ શી ખબર કેટલું મળશે, કેમ મળશે અને ક્યારે મળશે ? (૧) મે અપ્રાપ્ત સુખની પ્રાપ્તિને માટે પ્રાપ્ત સુખનો ત્યાગ કરી નાખ્યો છે તો એ ઉચિત કર્યું છે કે અનુચિત ? (૨)" ઇત્યાદિ,

यद्वा-'चकारादत्र' काङ्क्षा-विचिकित्सा-भेदो-न्माद-दीर्घकालिकरोग-केवलिप्रज्ञप्तधर्मभ्रंशादयो दोषाः संगृह्यन्ते ॥१०॥

उपसंहरति-'तम्हा एयं' इत्यादि ।

मूलम्-तम्हा एयं वियाणित्ता, दोसं दुग्गइवड्ढणं ।
वज्जए वेससामंतं, मुणी एगंतमस्सिए ॥ ११ ॥

छाया-तस्मादेतं विज्ञाय, दोषं दुर्गतिवर्द्धनम् ।
वर्जयेद्वेशसामन्तं, मुनिरेकान्तमाश्रितः ॥११॥

सान्वयार्थः-तम्हा=इसलिए दुग्गइवड्ढणं=दुर्गतिको बढानेवाले एयं=इस दोसं=दोषको वियाणित्ता=जानकर एगंतमस्सिए=मोक्षाभिलाषी मुणी=मुनि वेससामंतं=वेश्याके पाड़े-मोहल्ले-को वज्जए=वर्जे अर्थात् भिक्षादिके लिए वहां नहीं जावे । भावार्थ-इस प्रकारके संसर्गसे साधुका मन उद्विग्न हो जानेसे मनमें अनेक कुतर्कणाएं होने लग जाती हैं, तब उसका मन ज्ञान-ध्यान-आदि शुभ कार्योंमें नहीं लगकर आर्त्त-रौद्र-ध्यान करने लगता है। इसलिए साधु ऐसे संसर्गको ही टाले ॥११॥

टीका-तस्माद्धेतोः एतं=पूर्वोक्तं दुर्गतिवर्द्धनं=दुर्गतिप्रापकं दोषं=व्रतविराधनादि-

---

अथवा गाथामें आये हुए 'च' शब्दसे विषयसेवनकी आकांक्षा; संयमसे घृणा, भेद, उन्माद, दीर्घकालिक रोग और केवलीप्ररूपित धर्मसे भ्रष्टता आदि अनेक दोष समझ लेना चाहिये । अर्थात् ऐसे अयोग्य स्थानोंमें गमन करनेसे इत्यादि दोष होते हैं ॥१०॥

उपसंहार करते हैं-'तम्हा एयं' इत्यादि ।

इसलिए इस-दुर्गतिको बढ़ानेवाले, व्रतोंकी विराधनारूप-दोषको

અથવા ગાથામા આવેલા च શબ્દથી વિષય-સેવનની આકાંક્ષા, સયમથી ઘૃણા, ભેદ, ઉન્માદ, દીર્ઘકાલિક રોગ અને કેવળી-પ્રરૂપિત ધર્મમાંથી ભ્રષ્ટતા આદિ અનેક દોષો સમજી લેવા. અર્થાત્ એવા અયોગ્ય સ્થાનોમા ગમન કરવાથી એ પ્રકારના દોષ થાય છે (૧૦)

ઉપસહાર કરે છે-तम्हा एयं ઇત્યાદિ

એટલા માટે, એ દુર્ગતિને વધારવાવાળા, વ્રતોની વિરાધનારૂપ દોષને

लक्षणं विज्ञाय=अवबुध्य एकान्तम्=एकः=अद्वितीयः अन्तो=निश्चयो व्रत-रक्षणविषयको मोक्षप्राप्तिविषयको वा एकान्तस्तम् आश्रितः=आस्थितो मुनिः वेशसामन्तं=वेश्यापाटकगमनं वर्जयेत्=परित्यजेत् ।

'वियाणित्ता' इत्यनेन सम्यगवबोधमन्तरेण दोषपरित्यागो याथातथ्येन न संभवतीति, 'एगंतमस्सिए' इत्यनेन च मुनिना सततं मोक्षैकलक्ष्येण भवितव्यमिति सूचितम् ॥११॥

मार्गयतनामेव विशिष्याऽऽह-'साणं' इत्यादि ।

मूलम्-साणं[2] सूइयं[3] गाविं[4], दित्तं[1] गोणं[5] हयं[6] गयं[7] ।
संडिब्भं[8] कलहं[9] जुद्धं[10], दूरओ[11] परिवज्जए[12] ॥ १२ ॥

छाया-श्वानं सूतां गां, दृप्तं गोणं हयं गजम् ।
संडिब्भं कलहं युद्धं, दूरतः परिवर्जयेत् ॥१२॥

साधु जहाँ भिक्षा के लिये न जावे उन स्थानों को विशेष रूपसे कहते हैं-

सान्वयार्थः-साणं=जहां काटनेवाला कुत्ता हो सूइयं=थोडे कालकी व्याई हुई गाविं=गाय हो दित्तं=मदमस्त गोणं=गोधा साण्ड अथवा बैल (और) हयं=घोड़ा (अथवा) गयं=हाथी हो (तथा) संडिब्भं=जहां बच्चे खेल रहे हों कलहं=परस्पर वाग्युद्ध-गाली-गलोच-हो रहा हो जुद्धं=शस्त्र आदिसे युद्ध होता हो (ऐसे स्थानको साधु) दूरओ=दूरसे ही परिवज्जए=वर्जे, अर्थात् ऐसी जगह साधु

जानकर व्रतोंकी रक्षा और मोक्षकी प्राप्तिके निश्चयमें स्थित मुनि वेश्याके पाड़े (चकले)में भिक्षा आदिके लिए न जावे ।

'वियाणित्ता' पदसे यह सूचित किया है कि भलीभाँति जाने विना दोषका अच्छी तरह परित्याग नहीं हो सकता। 'एगंतमस्सिए' पदसे यह प्रगट किया है कि मुनिको सदा मोक्षप्राप्तिका लक्ष्य रखना चाहिये ॥११॥

मार्गकी यतनाको विशेषरूपसे बताते हैं- 'साणं०' इत्यादि ।

જાણીને વ્રતોની રક્ષા અને મોક્ષની પ્રાપ્તિના નિશ્ચયમા સ્થિત મુનિએ, વેશ્યાના મહોલ્લામા ભિક્ષા આદિને માટે જવું નહિ

वियाणित्ता શબ્દથી એમ સૂચિત કર્યું છે કે-સારી રીતે જાણ્યા વિના દોષોનો સારી પેઠે પરિત્યાગ થઇ શકતો નથી एगंतमस्सिए શબ્દથી એમ પ્રકટ કર્યું છે કે મુનિએ સદા મોક્ષપ્રાપ્તિનું લક્ષ્ય રાખવુ જોઇએ. (૧૧)

માર્ગની યતનાને વિશેષરૂપે બતાવે છે. साणं० ઇત્યાદિ.

कदापि गोचरी नहीं जावे। भावार्थ-ऐसे स्थानमें गोचरी जानेसे कुत्ते आदिके काटखाने आदिके कारण तथा पात्रे फूटजाने आहार गिरजाने आदि अनेक प्रकारसे संयम और आत्मा दोनोंकी विराधना होती है ॥१२॥

टीका-श्वानं कुक्कुरं, 'दृप्त'-मितीहाऽपकृष्य सम्बध्यते, तथाच-दृप्तम्=उद्धतं दंशनस्वभावम् उन्मादिनं वेत्यर्थः, नवप्रसूतशुन्या अप्युपलक्षणमेतत्। सूतां=नवप्रसूतां गां=सौरभेयीं, नवप्रसूतमहिष्या अप्युपलक्षणाद् ग्रहणम्, दृप्तं=चण्डस्वभावं गोणं=वृषभं, हयं=घोटकं, गजं=हस्तिनं च, संडिम्भं=शिशुक्रीडनस्थानं, कलहं=वाग्युद्धं, युद्धम्=दण्डादण्डि-शस्त्राशस्त्रि-प्रभृतिकम् दूरतः परिवर्जयेत्, आत्मसंयमोभयविराधनाहेतुत्वात् ॥१२॥

गमनप्रकारमाह-'अणुन्नए' इत्यादि।

मूलम्-अणुन्नए[१] नावणए[२] अप्पहिट्ठे[३] अणाउले[४]।
इंदियाइं[६] जहाभागं[७] दमइत्ता[८] मुणी[५] चरे[६] ॥१३॥

छाया-अनुन्नतो नावनतोऽप्रहृष्टोऽनाकुलः।
इन्द्रियाणि यथाभागं, दमयित्वा मुनिश्चरेत् ॥१३॥

जहां उन्मत्त (पागल-हड़क्या) या काटनेवाला कुत्ता, नयी बियाई हुई (प्रसूता) कुतिया, नवप्रसूता गाय या नवप्रसूता भैंस आदि, मदोन्मत्त बैल, घोड़ा हाथी हों उस स्थानको, तथा बच्चोंके खेलनेके, कलह (मुँहकी लडाई) के और युद्ध (शस्त्रकी लड़ाई) के स्थानको साधु दूरसे त्यागे। अर्थात् जहाँ ये सब हों वहां न जावे-दूर ही रहे, क्योंकि इससे आत्मविराधना संयमविराधना और उभयविराधना होती है ॥१२॥

चलनेका प्रकार कहते हैं-'अणुन्नए०' इत्यादि।

જ્યા ઉન્મત્ત (ગાંડો-હડકાયો) અથવા કરડનારો કૂતરો, નવી વીયાયલી (પ્રસૂતા) કૂતરી, નવપ્રસૂતા ગાય યા નવપ્રસૂતા ભેંશ આદિ, મદોન્મત્ત બળદ ઘોડો હાથી ઈત્યાદિ હોય તે સ્થાનને, તથા બાળકોએ રમવાના, કલહ (મ્હોની લડાઈ)ના અને યુદ્ધ (શસ્ત્રની લડાઈ)ના સ્થાનને સાધુ દૂરથી જ ત્યાગે, અર્થાત્ જ્યા એ બધાં હોય ત્યા ન જાય-દૂર જ રહે, કારણ કે તેથી આત્મવિરાધના, સયમવિરાધના અને ઉભયવિરાધના થાય છે (૧૨)

ચાલવાનો પ્રકાર કહે છે-अणुन्नए० ઈત્યાદિ.

गोचरी में घूमते हुए साधु को किस प्रकार की चेष्टा रखनी चाहिये सो बताते हैं-

सान्वयार्थः-मुणी=गोचरीमें घूमता हुआ साधु अणुन्नए=द्रव्यसे ऊंचा नहीं देखनेवाला, भावसे जात्यादिगर्वरहित नावणए=द्रव्यसे शरीरको अत्यन्त नहीं नमानेवाला, भावसे दीनतारहित अप्पहिट्ठे=मिलनेवाले आहार आदिके विचारसे रहित अणाउले=इष्ट अनिष्ट आहार आदिकी प्राप्ति होना न होना आदि व्याकुलतासे रहित (साधु) इंदियाइं=श्रोत्र आदि इन्द्रियोंका जहाभागं=यथाक्रम अर्थात् जिस समय जिस इन्द्रियका विषय उपस्थित हो उस समय उस इन्द्रियका दमइत्ता=दमन-निग्रह-करके चरे=विचरे ॥१३॥

टीका-अनुन्नतः-अनुच्छ्रितः, स च द्रव्यत ऊर्ध्वानवलोकयिता, भावतो जात्यादिगर्वरहितः, नावनतः=नातिप्रह्वः, स द्रव्यतो नातीवनताङ्गः, भावतो दैन्यरहितः। अप्रहृष्टः=अप्रमुदितः उपलप्स्यमानाहारवस्त्रपात्रादिभावनाजन्यप्रमोदरहित इत्यर्थः। अनाकुलः=अक्षुब्धः इष्टाऽलाभाऽनभीष्टलाभभावनाजनितमनःक्षोभवर्जित इत्यर्थः, मुनिः इन्द्रियाणि=श्रोत्रादीनि यथाभागं=भज्यते-सेव्यते इति भागो= विषयः, भागमनतिक्रम्य यथाभागं=यथाविषयं-यस्येन्द्रियस्य यो विषयः सम्प्राप्तस्तमनुसृत्येत्यर्थः, दमयित्वा=निगृह्य मनोज्ञा-ऽमनोज्ञशब्दादिविषयेषु रागापरागपरित्यागं कृत्वेत्यर्थः, चरेत्।

मार्गमें चलते समय साधु अनुन्नत अर्थात् द्रव्यसे ऊपरकी ओर न देखता हुआ, और भावसे जाति कुल आदिके अभिमानसे रहित, नावनत अर्थात् द्रव्यसे अत्यन्त न झुका हुआ, तथा भावसे दीनतारहित, अप्रहृष्ट अर्थात् मिलनेवाले आहार आदिके विचारसे प्रमोदरहित, अनाकुल अर्थात् इष्टकी अप्राप्ति तथा अनिष्टकी प्राप्तिके विचारसे उत्पन्न होनेवाली व्याकुलतासे रहित मुनि जहाँ जिस इन्द्रियका विषय उपस्थित हो वहाँ उस इन्द्रियका दमन करके अर्थात् मनोज्ञविषयमें राग और अमनोज्ञ विषयमें द्वेषका परित्याग करता हुआ भिक्षा आदिके लिए विचरे।

માર્ગમાં ચાલતી વખતે સાધુ અનુન્નત અર્થાત્ દ્રવ્યથી ઉપરની બાજુએ ન જોતા અને ભાવથી જાતિકુળના અભિમાનથી રહિત, નાવનત અર્થાત્ દ્રવ્યથી અત્યન્ત ન નમ્યા વિના તથા ભાવથી દીનતા-રહિત, અપ્રહૃષ્ટ અર્થાત્ મળવાના આહારાદિના વિચારથી પ્રમોદરહિત, અનાકુલ અર્થાત્ ઇષ્ટની અપ્રાપ્તિ તથા અનિષ્ટની પ્રાપ્તિના વિચારથી ઉત્પન્ન થનારી વ્યાકુળતાથી રહિત જ્યાં જે ઇંદ્રિયનો વિષય ઉપસ્થિત હોય ત્યા તે ઇંદ્રિયનું દમન કરીને અર્થાત્ મનોજ્ઞ વિષયમા રાગ અને અમનોજ્ઞ-વિષયમા દ્વેષનો પરિત્યાગ કરતા, ભિક્ષા આદિને માટે વિચરે

'अणुन्नए' 'नावणए' इत्येताभ्यामीर्यायतनाऽहङ्कारवर्जनदैन्यराहित्यानि सूचितानि। 'अप्पहिट्ठे' इत्यनेन माध्यस्थ्यं बोधितम्। 'अणाउले' इतिपदेन साधो रसलोलुपत्वं निराकृतम्। 'जहाभागं' इत्यनेन च यत्र यस्येन्द्रियस्य विषयप्राप्तिस्तत्र तस्यैव दमनं वास्तविकमिन्द्रियदमनं, न तु दर्शनविषये कर्णपिधानमित्यादि बोध्यम् ॥१३॥

मूलम्-दवदवस्स न गच्छेज्जा, भासमाणो य गोयरे।
हसंतो नाभिगच्छेज्जा, कुलं उच्चावयं सया ॥१४॥

छाया—द्रुतद्रुतस्य न गच्छेत्, भाषमाणश्च गोचरे।
हसन् नाभिगच्छेत्, कुलमुच्चावचं सदा ॥१४॥

सान्वयार्थः-गोयरे=भिक्षाचरीमें (साधु) दवदवस्स=अति शीघ्रतासे दड़बड़२ दौड़ता हुआ य=तथा भासमाणो=बोलता हुआ न गच्छेज्जा=नहीं चले (और) हसंतो=हँसता हुआ भी नाभिगच्छेज्जा=नहीं जावे, (तथा) उच्चावयं=उच्च-द्रव्यसे सप्तभूमिक महलोंवाले, भावसे-धन-धान्यादिसे समृद्ध, नीच-द्रव्यसे घासफूसकी झोंपडीवाले, भावसे धन-धान्यादिरहित कुलं=कुलमें सया=हमेशा जावे। (२श्रु.१अ.२उ.) आचाराङ्गसूत्रमें बताये हुए सब कुलोंमें भिक्षाके लिए जावे

'अणुन्नए' और 'नावणए' इन दो पदोंसे ईर्याकी यतना, अहङ्कारका परिहार और दीनताका त्याग सूचित किया है। 'अप्पहिट्ठे' पदसे मध्यस्थता प्रगट की है। 'अणाउले' पदसे साधुकी रसलोलुपताका निराकरण किया है। 'जहाभागं' पदसे यह प्रदर्शित किया है कि जहाँ जिस इन्द्रियका विषय उपस्थित हो वहाँ उसका दमन करना ही वास्तवमें इन्द्रियदमन कहलाता है, किन्तु चक्षुइन्द्रियका विषय उपस्थित होनेपर यदि कान मूँद लिए जायँ तो इन्द्रिय-दमन नहीं कहला सकता, इत्यादि ॥१३॥

अणुन्नए અને नावणए એ બે શબ્દોથી ઈર્યાની યતના અહંકારનો પરિહાર અને દીનતાનો ત્યાગ સૂચિત કર્યો છે अप्पहिट्ठे શબ્દથી મધ્યસ્થતા પ્રકટ કરી છે. अणाउले શબ્દથી સાધુની રસલોલુપતાનું નિરાકરણ કર્યું છે जहाभागं શબ્દથી એમ પ્રદર્શિત કર્યું છે કે જ્યાં જે ઈંદ્રિયનો વિષય ઉપસ્થિત હોય ત્યાં તેનું દમન કરવું એજ વસ્તુત. ઈંદ્રિયદમન કહેવાય છે, કિંતુ ચક્ષુ ઈન્દ્રિયનો વિષય ઉપસ્થિત થતા જો કાન સંકોચવામા આવે તો તે ઈંદ્રિયદમન કહેવાતું નથી ઇત્યાદિ. (૧૩)

अर्थात् जिस समय जिस देशमें जो कुल दुगुंछित न हों उन सब कुलोंमें गोचरी जावे, साधुको चाहिए कि ईर्यासमिति सोधता हुआ रागद्वेषरहित होकर भिक्षाके लिए विचरे ॥१४॥

टीका—गोचरे=भिक्षायां भिक्षार्थमित्यर्थः, द्रुतद्रुतस्य=शीघ्र-शीघ्रम् 'दवदवे' त्यस्याव्ययत्वेऽप्यार्षत्वात्सविभक्तिकत्वम्, यद्वा क्रियाविशेषणत्वेन द्वितीयान्त[१]-त्वौचित्येऽप्यार्षत्वात्षष्ठ्यन्तत्वम्, न गच्छेत्=न यायात्। भाषमाणः=संलपन् च=तथा हसन्=हास्यं कुर्वन् नाभिगच्छेत्। उच्चावचम्=उदक् च अवाक् च इत्युच्चावचम्–('मयूरव्यंसकादयश्च' (२।१।७२) इति निपातनात्समासः सिद्धिश्च) उच्चनीचात्मकमनेकविधमित्यर्थः। 'उच्चावचं नैकभेद'-मित्यमरः। कुलं=गृहम्[२]। तत्र द्रव्यत उच्चगृहं-सप्तभूमिकप्रासादादिकम्, शारदशशाङ्क-घनसार-हार-नीहार-कुन्दावदातसुधोज्ज्वलहर्म्यादिकं प्रोत्तुङ्गतोरणादिकं च। भावत उच्चगृहं–धनधान्यादि-

१ धातूपात्तभावनां प्रति फलांशस्य कर्मीभूततया फलसामानाधिकरण्ये द्वितीया।
२ 'कुलं जनपदे गोत्रे, सजातीयगणेऽपि च। भवने च तनौ क्लीव'-मिति मेदिनी॥

'दवदवस्स०' इत्यादि। साधु गोचरीके लिए जल्दी२ (दड़बड़२) न चले। बातचीत करता हुआ, तथा हँसता हुआ भी गमन न करे। उच्चनीच अर्थात् धनवान् और निर्धन आदिके कुलोंमें सदा भिक्षाके लिए जावे।

उच्च कुल दो प्रकारका है–(१) द्रव्यसे उच्च और (२) भावसे उच्च। (१) सतमंजिला आदि, शरदऋतुके चन्द्रमा, कपूर, हार, बर्फ, या कुन्द पुष्पके समान स्वच्छ, कलई (चूना) पोतनेसे जगमगाता हुआ, और जिसका फाटक खूब ऊंचा हो ऐसे महल आदि द्रव्य-उच्च कहलाते हैं।

(२) धन-धान्यरूपी सम्पत्तिसे समृद्ध कुल भावसे उच्च कहलाता है। नीचा कुल भी दो प्रकारका है—

દવદવસ્સ૦ ઇત્યાદિ સાધુ ગોચરીને માટે ઉતાવળો ઉતાવળો ન ચાલે વાત-ચીત કરતો કે હસતો-હસતો પણ ન ચાલે ઉચ્ચ-નીચ અર્થાત્ ધનવાન-નિર્ધન આદિનાં કુળોમા સદા ભિક્ષાને માટે જાય.

ઉચ્ચકુળ બે પ્રકારના છેઃ (૧) દ્રવ્યથી ઉચ્ચ અને (૨) ભાવથી ઉચ્ચ (૧) સાત-મજલા હોય, શરદ્ઋતુનો ચંદ્રમા કપૂર, (મોતીનો) હાર, બરફ યા કુંદપુષ્પની પેઠે સ્વચ્છ (શ્વેત) હોય, ચૂનો ધોળવાથી ઝગમગતો હોય અને જેનું ફાટક ખૂબ ઉંચુ હોય એવો મહેલ આદિ દ્રવ્ય–ઉચ્ચ કહેવાય છે (૨) ધન-ધાન્યરૂપી સપત્તિથી સમૃદ્ધ કુળ ભાવથી ઉચ્ચ કહેવાય છે.

નીચકુળ પણ બે પ્રકારનાં હોય છેઃ—

सम्पदा समृद्धम् । द्रव्यतो नीचगृहं-धनधान्यादिरहितं दरिद्रगृहम्, सदा=सर्वदा -अभिगच्छेत्=चरेत् ।

अथवा उच्चावचशब्देन उग्रकुलादीनि गृह्यन्ते, तथाहि—

'उग्गकुलाणि वा भोगकुलाणि वा राइन्नकुलाणि वा खत्तियकुलाणि वा इक्खागकुलाणि वा हरिवंसकुलाणि वा एसियकुलाणि वा वेसियकुलाणि वा गंडागकुलाणि वा कोट्टागकुलाणि वा गामरक्खकुलाणि वा बुक्कासकुलाणि वा अन्नयरेसु वा तहप्पगारेसु कुलेसु अदुगुंछिएसु अगरहिएसु असणं वा४ फासुयं जाव पडिगाहिज्जा (सू. ११- आचाराङ्ग. २ श्रु० १ अ. २ उ.)।

अत्र 'अदुगुंछिएसु' 'अगरहिएसु' इति पदाभ्यां यस्मिन् समये यत्कुल-मजुगुप्सितमगर्हितं भवेत्तदा तस्मिन्नेव कुले गन्तव्यमिति बोध्यते ।

अत्र 'दवदवस्से'-त्यादिना षट्कायरक्षणविचक्षणता समाख्याता ।

---

(१) द्रव्यसे नीचा, और (२) भावसे नीचा ।

(१) बांस, लकडी, घास, फूससे बनेहुए झोंपड़ेको द्रव्यसे नीचा कहते हैं । (२) धन-धान्य आदि संपत्तिसे रहित निर्धनके कुलको भावसे नीचा कहते हैं । इन सब प्रकारके घरोंमें साधु भिक्षाके लिए जावे ।

अथवा 'उच्चावच' शब्दसे उग्रकुलादि समझ लेना चाहिए । वे बारह प्रकारके कुल आचारांग सूत्रमें (२श्रु०१अ०२उ०सू.११में) भगवानने कहे हैं । आचारांग सूत्रमें आये हुए 'अदुगुंछिए' और 'अगरहिए' पदसे यह सूचित किया है कि जिस देश और जिस समयमें जो कुल अनिन्दित और अगर्हित हो उसमें मुनि, भिक्षाके लिए जावे ।

यहां 'दवदवस्स' इत्यादि पदसे षटकायकी रक्षामें सावधानी प्रगट की है ।

---

(૧) દ્રવ્યથી નીચુ અને (૨) ભાવથી નીચુ (૧) વાસ, લાકડા, ઘાસ-પાદડાથી બનેલા ઝુપડાને દ્રવ્યથી નીચું કહે છે. (૨) ધન-ધાન્યાદિ સપત્તિથી રહિતં નિર્ધનના કુળને ભાવથી નીચુ કહે છે એ સર્વ પ્રકારના ઘરોમા સાધુ ભિક્ષાને માટે જાય

અથવા उच्चावच શબ્દથી ઉગ્રકુળાદિ સમજી લેવા જોઈએ એ બાર પ્રકારનાં કુળો આચારાગ સૂત્રમા (૨શ્રુ૦૧અ ૨ઉ સૂ૦૧૧મા) ભગવાને કહ્યા છે આચારાગ સૂત્રમા આવેલા अदुगुंछिए અને अगरहिए શબ્દોથી એમ સૂચિત કર્યું છે કે જે દેશ અને જે સમયમા જે કુલ અનિંદિત અને અગર્હિત હોય તેમા મુનિ ભિક્ષાને માટે જાય

અહીં दवदवस्य ઇત્યાદિ શબ્દોથી ષટ્કાયની રક્ષામા સાવધાની પ્રકટ કરી છે

'भासमाणो' पदेनैकस्मिन् समये कार्यद्वयं सोपयोगं निष्पत्तुं न संभवतीति, 'हसंतो' इत्यनेन गाम्भीर्यम्, 'उच्चावचं०' इत्यादिना प्रतिबन्धराहित्यं समतासाहित्यं च द्योतितम् ॥१४॥

मूलम्-आलोअं थिग्गलं दारं, संधिं दगभवणाणि य।
चरंतो न विणिज्झाए, संकट्ठाणं विवज्जए ॥१५॥

छाया—आलोकं थिग्गलं द्वारं, सन्धिं दकभवनानि च।
चरन् न विनिर्ध्यायेत्, शङ्कास्थानं विवर्जयेत् ॥१५॥

सान्वयार्थः-चरंतो=भिक्षाके लिए घूमता हुआ साधु आलोयं=जाली-झरोखेकी तरफ थिग्गलं=ईंट आदिसे भरे हुए भींतके छिद्रकी तरफ दारं=दरवाजेकी तरफ संधिं=भींतकी सांधकी तरफ अथवा चोरोंद्वारा किये हुए भींतके छेदकी तरफ य=तथा दगभवणाणि=पलेण्डा आदिकी तरफ न विणिज्झाए=टक-टकी लगाकर नहीं देखे, (क्योंकि ये सब) संकट्ठाणं=शङ्काके स्थान हैं, (इसलिए इन्हें) विवज्जए=विशेषरूपसे त्यागे। भावार्थ=ऐसे स्थानोंको देखनेसे गृहस्थको साधुके प्रति चोर लम्पट आदिका सन्देह उत्पन्न हो जाता है, तथा एषणाकी यथोचित शुद्धि भी नहीं होती ॥१५॥

टीका—'आलोअं०' इत्यादि। चरन्=भिक्षितुं गच्छन् मुनिः आलोकं=वातायनजालिकाप्रभृति, थिग्गलं=देशीयभाषया प्रसिद्धं भित्त्यामिष्टकादिरचितम्,

---

'भासमाणो' पदसे यह प्रगट किया है कि एक ही साथ दो कार्य उपयोगपूर्वक नहीं हो सकते। 'हसंतो' पदसे गंभीरता द्योतित की है और 'उच्चावयं०' इत्यादि पदसे प्रतिबंध (नेसराय)-रहितता और समतासे सहितता प्रगट की है ॥१४॥

'आलोयं०' इत्यादि। भिक्षा लेनेके निमित्त गमन करता हुआ मुनि झरोखा, जाली, भीत, दरवाजा, सेंध (चोरों द्वारा दीवार में किया

भासमाणो શબ્દથી એમ પ્રકટ કર્યું છે કે એકીસાથે બે કાર્યો ઉપયોગપૂર્વક થઈ શકતાં નથી हसंतो શબ્દથી ગંભીરતા પ્રકટ કરી છે અને उच्चावयं ઇત્યાદિ શબ્દોથી પ્રતિબંધ (નેસરાય) રહિતતા અને સમતાથી સહિતતા પ્રકટ કરી છે (૧૪)

आलोयं ઇત્યાદિ ભિક્ષાને માટે ગમન કરતો મુનિ ઝરૂખો, જાળી, ભીંત, દરવાજો, ચોરે પાડેલું બાંકું (ખાતરીયાથી પાડેલુ બાંકોરૂ) અને ઉદકભવન અર્થાત્

द्वारं=विवरम्, सन्धि=तस्करादिखातभित्तिभागं दकभवनानि=जलस्थानानि, 'चे'-ति समुच्चये; न=नैव विनिध्यायेत्=सविशेषं विलोकयेत्। यत एतानि (आलोकादीनि) शङ्कास्थानानि=साधोराचारविषयकसन्देहोत्पादकस्थानानि, सूत्रे जातावेकवचनम्, अतस्तानि विवर्जयेत्=विशेषेण परित्यजेत् ॥१५॥

मूलम्—रन्नो^१ गिहवईणं^२ च, रहस्सारक्खियाण^३ य^४ ।
संकिलेसकरं^५ ठाणं^६, दूरओ^७ परिवज्जए^८ ॥ १६ ॥

छाया—राज्ञो गृहपतीनां च, रहस्यमारक्षकाणां च ।
संक्लेशकरं स्थानं, दूरतः परिवर्जयेत् ॥१६॥

सान्वयार्थः—रन्नो=चक्रवर्ती आदि राजा महाराजाओंके च=तथा गिहवईणं=शेठ आदि सद्गृहस्थोंके च=और आरक्खियाण=नगरके रक्षक-कोतवाल आदिके रहस्सं=सलाह करनेके एकान्त स्थानको (साधु) दूरओ=दूरहीसे परिवज्जए=त्यागे; (क्योंकि ऐसे) ठाणं=स्थान संकिलेसकरं=असमाधिको पैदा करनेवाले होते हैं। भावार्थ=राजा आदिकोंके एकान्त स्थानकी तर्फ देखनेसे अथवा वहां जानेसे उनको साधुके प्रति क्रोध अश्रद्धा होना आदि अनेक दोषोंकी संभावना है ॥१६॥

टीका:—'रन्नो०' इत्यादि। राज्ञः=चक्रयर्द्धचक्रिप्रभृतेः, गृहपतीनां=गृहस्वामिनां श्रेष्ठ्यादीनाम् आरक्षकाणां=नगररक्षिणां च रहस्यं=रहसि=एकान्ते भवं

हुआ छेद-सन्धि) और उदकभवन अर्थात् परेंडा आदि की तरफ दृष्टि न डाले, क्योंकि ये शंकास्थान हैं, इनकी ओर देखनेसे लोगोंको साधुके चारित्रमें सन्देह उत्पन्न होता है, अतएव इन शंकास्थानोंका विशेष रूपसे परित्याग करना चाहिए ॥१५॥

'रन्नो०' इत्यादि। जिस एकान्त भवनमें चक्रवर्ती, अर्द्धचक्री, माण्डलिक आदि राजा, श्रेष्ठी (सेठ) आदि गृहस्थ और नगरकी रक्षा

પાણીઆરાની તરફ દૃષ્ટિ ન નાખે, કારણ કે એ બધા શંકાસ્થાનો છે તેની તરફ જોવાથી લોકોને સાધુના ચરિત્રમાં સંદેહ ઉત્પન્ન થાય છે. તેથી એ શંકાસ્થાનોનો વિશેષરૂપે પરિત્યાગ કરવો (૧૫)

રન્નો૰ ઇત્યાદિ, જે એકાન્ત ભવનમાં ચક્રવર્તી, અર્ધચક્રી, માંડલિક આદિ રાજા, શ્રેષ્ઠી (શેઠ) આદિ ગૃહસ્થ અને નગરની રક્ષા કરનારા (કોટવાળ) વગેરે સલાહ

रहस्यं=मन्त्रगृहम्, संक्लेशकरम्=असमाधिजनकं स्थानं हेतुगर्भमिदं विशेषणं तथा च संक्लेशकरत्वादित्यर्थः, दूरतः परिवर्जयेत्=सर्वथा संत्यजेत् ॥१६॥

१ २ ३ ४ ५ ६

मूलम्-पडिकुट्टं कुलं न पविसे, मामगं परिवज्जए।

७ ८ ९ १० ११ १३ १२

अचियत्तं कुलं न पविसे, चियत्तं पविसे कुलं ॥१७॥

छाया—प्रतिक्रुष्टं कुलं न प्रविशेत्, मामकं परिवर्जयेत्।
अचियत्तं कुलं न प्रविशेत्, चियत्तं प्रविशेत्कुलम् ॥१७॥

सान्वयार्थः-पडिकुट्टं=शास्त्रनिषिद्ध कुलं=कुल-घर-में न पविसे=प्रवेश नहीं करे, मामगं=कृपणके घरको परिवज्जए=वरजे-नहीं जावे, अचियत्तं=प्रतीति-रहित अथवा प्रीतिरहित कुलं=कुल-घर-में न पविसे=प्रवेश न करे, (किन्तु) चियत्तं=प्रतीति और प्रीतिवाले कुलं=घरमें पविसे=प्रवेश करे ॥१७॥

टीका—'पडिकुट्टं०' इत्यादि। प्रतिक्रुष्टं=निषिद्धं, कुलं=गृहं न प्रविशेत्, मामकं='मा मदीयं गृहं श्रमणाः प्रविशन्तु'-इति प्रतिषेधकारिणो गृहं तथा-सामयिकव्याख्यादर्शनात्, परिवर्जयेत्। अचियत्तं=देशीयशब्दोऽयम्-अप्रीतिमत्, यत्र साधुप्रवेशेन गृहिणामप्रीतिर्भवेत् तत्, अप्रतीतिमद्वा अविश्वस्तमित्यर्थः, यत्र गमनेन परेषां साधुविषयेऽप्यविश्वासो भवेत्, तादृशं कुलं न प्रविशेत्,

---

करनेवाले (कोटवाल) आदि सलाह करते हों उस भवन को दूरहीसे त्यागे, क्योंकि ऐसे स्थान असमाधिको उत्पन्न करनेवाले होते हैं॥१६॥

'पडिकुट्टं' इत्यादि। शास्त्रोंमें निषेध किये हुए घर में साधु प्रवेश न करे। जिसने अपने घरमें आनेका निषेध कर दिया हो कि 'श्रमण निर्ग्रन्थ हमारे घर पर न आवें' उन घरोंका भी साधु त्याग करे। साधु के प्रवेश करनेसे जिस घरवालेको अप्रीति उत्पन्न हो, या जिस कुलमें विश्वास न हो ऐसे कुलमें भी प्रवेश न करे, क्योंकि इससे

(મંત્રણા) કરતા હોય, એ ભવનને મુનિ દૂરથી જ ત્યાગે, કારણ કે એવાં સ્થાનો અસમાધિને ઉત્પન્ન કરવાવાળાં હોય છે (૧૬)

પડિકુટ્ટં ઇત્યાદિ શાસ્ત્રોમા નિષેધ કરેલા ગૃહમાં સાધુ પ્રવેશ ન કરે જેણે પોતાના ઘરમા આવવાનો નિષેધ કર્યો હોય કે 'શ્રમણ નિર્ગ્રન્થે અમારા ઘરમાં આવવું નહિ' એવા ઘરોનો પણ સાધુ ત્યાગ કરે સાધુએ પ્રવેશ કરવાથી જે ઘરવાળાને અપ્રીતિ ઉત્પન્ન થાય, યા જે કુળમા વિશ્વાસ ન હોય, એવા કુળમા પણ સાધુ પ્રવેશ ન કરે, કારણ કે એથી સાધુપરથી બીજાઓનો પણ વિશ્વાસ

गृहस्थानां संक्लेशसंभवात् । नन्वेवं तर्हि कुत्र प्रविशेत्तदाह—चियत्तं=प्रीतिमत् प्रतीतिमद्वा कुलं प्रविशेत् ॥१७॥

मूलम्—साणीपावारपिहियं, अप्पणा नावपंगुरे ।
कवाडं नोपणुल्लिज्जा, उग्गहं सि अजाइया ॥१८॥

छाया—शाणी-प्रावारपिहितम् आत्मना नाऽपवृणुयात् ।
कपाटं नो प्रणुदेत्, अवग्रहं तस्याऽयाचित्वा ॥१८॥

सान्वयार्थः-सि (से)=उस गृहस्वामी की उग्गहं=आज्ञा अजाइया= लिये विना साणीपावारपिहियं=सन आदिके बने हुए परदेसे ढके हुए घरको अप्पणा=साधु खुद नावपंगुरे=नहीं खोले, (तथा) कवाडं=किवाडको भी नोपणुल्लिज्जा=नहीं उघाड़े, तात्पर्य यह है कि गृहस्वामीको पूछकर ही उघाड़ना चाहिए ॥१८॥

टीका—'साणीपावार०' इत्यादि । तस्य=गृहस्वामिनः अवग्रहं=निदेशम्, अयाचित्वा=अगृहीत्वा आज्ञामन्तरेणेत्यर्थः, शाणीप्रावारपिहितं=शाणी=शणवल्कलनिर्मितजवनिका, प्रावारः=ऊर्णादिरचितकम्बलादिस्ताभ्यां पिहितम्=आवृतम्, यद्वा शणीप्रावारेण=शणरचितपरदया[1] स्थगितं 'द्वार'-मितिशेषः, आत्मना=स्वयम् न अपवृणुयात्=नापसारयेत् । तथा कपाटम्=अररम् 'किवाडे'-ति भाषाप्रसिद्धं नो प्रणुदेद्=न प्रेरयेत् नोद्घाटयेदित्यर्थः, तदुद्घाटनस्य स्नानभोजनादिसमासक्तानां

१ परदा—परान्=परपुरुषान् दर्शनादानेन द्यति=खण्डयतीति परदा ।

दूसरोंका साधुपरसे भी विश्वास हट जाता है। साधु उस घरमें प्रवेश करे जिसमें प्रवेश करनेसे गृहस्थको प्रीति और विश्वास हो ॥१७॥

'साणीपावार' इत्यादि। गृहस्वामीकी आज्ञा लिये विना टट्टर या कम्बल आदि किसी वस्तुसे ढँके हुए या सनके परदासे बंद द्वारको तथा किवाडको स्वयं न खोले, क्योंकि ऐसा करना स्नानादि

હઠી જાય છે સાધુ એ ઘરમાં પ્રવેશ કરે કે જેમા પ્રવેશ કરવાથી ગૃહસ્થને પ્રીતિ અને વિશ્વાસ ઉપજે (૧૭)

साणीपावार० ઇત્યાદિ ગૃહસ્વામીની આજ્ઞા લીધા વિના ટાટ યા કાંબળી આદિ કોઇ વસ્તુથી ઢાંકેલુ યા સણુના પડદાથી બંધ કરેલું એવું દ્વાર તથા કમાડ, સાધુ પોતે ન ખોલે, કારણ કે એમ કરવું એ સ્નાનાદિ કરતી સ્ત્રી આદિને

स्त्र्यादीनामप्रतीतिकारणत्वात्, तादृशव्यवहारानौचित्याच्च, तस्मादावश्यकतायां तत्स्वामिनं पृष्ट्वैवोद्घाटयेदिति भावः ॥१८॥

मूलम्—गोयरग्गपविट्ठो[1] य,[2] वच्च-मुत्तं[3] न[4] धारए।
ओगासं[6] फासुअं[5] नच्चा,[7] अणुन्नविअ[8] वोसिरे[9] ॥१९॥

छाया—गोचराग्रप्रविष्टश्च, वर्चो-मूत्रं न धारयेत्।
अवकाशं प्रासुकं ज्ञात्वा, अनुज्ञाप्य व्युत्सृजेत् ॥१९॥

सान्वयार्थः—गोयरग्गपविट्ठो=गोचरीमें गया हुआ मुनि वच्च-मुत्तं=मल और मूत्रको नधारए=नहीं रोके अर्थात् मल-मूत्र-की बाधा उपस्थित होनेपर उनके वेगका अवरोध न करे, (किन्तु) फासुयं=प्राशुक-जीवरहित ओगासं=स्थण्डिल-भूमिको नच्चा=जानकर अणुन्नविय=गृहस्थकी आज्ञा लेकर वोसिरे=मल-मूत्रका त्याग करे ॥१९॥

टीका—'गोयरग्ग०' इत्यादि। पूर्वं निवृत्तबाधोऽपि गोचराग्रप्रविष्टो मुनिः पुनस्तद्बाधायामुपस्थितायां वर्चो-मूत्रं=मलं प्रस्रावं च न-धारयेत्=नावरुन्ध्यात्। यत उक्तम्—

"जओ मुत्तनिरोहे चक्खूवघाओ भवति, वच्चनिरोहे जीविओवघाओ

करती हुई स्त्री आदिको अप्रतीतिका कारण है, तथा लोकव्यवहारसे भी अनुचित है, अतः आवश्यकता होने पर उसके स्वामीको पूछ करके ही किवाड़ परदा आदि खोलना चाहिए ॥१८॥

'गोयरग्ग०' इत्यादि। गोचरी जानेके पहले लघुनीत और बड़ीनीतकी शंकाको निवृत्त करलेने पर भी यदि गोचरीके लिए चले जाने पर पुनः लघुशंका आदि की शंका होजाय तो मल-मूत्र को रोके नहीं, क्योंकि कहा है—

"मूत्रके निरोध करने से नेत्रोंको हानि होती है और मलका

અપ્રતીતિનું કારણ બને છે, તથા લોકવ્યવહારથી પણ અનુચિત છે તેથી જરૂર પડતા તેના સ્વામીને પૂછી લઇને જ કમાડ પડદા આદિ ખોલવાં જોઇએ. (૧૮)

ગોયરગ્ગ૦ ઇત્યાદિ ગોચરીએ જવા પહેલાં લઘુનીતિ અને વડીનીતિની શંકાને નિવૃત્ત કરવા છતા પણ જો ગોચરી માટે નીકળી ગયા પછી ફરી લઘુ-શંકા આદિની શંકા થઈ જાય તો મળ-મૂત્રને રોકવા નહિ, કારણ કે કહ્યું છે કે—

'મૂત્રનો નિરોધ કરવાથી નેત્રોને હાની થાય છે અને મળનો નિરોધ કરવાથી

असोहणा य आयविराहणा इत्यादि।

नन्वेवं तर्हि किं कुर्यात्? इत्याह—प्रासुकं=निर्जन्तुकं निरवद्यमित्यर्थः, अव-काशं=स्थण्डिलं ज्ञात्वा, अनुज्ञाप्य=गृहस्थं संस्तुत्य तदाज्ञामादायेत्यर्थः, व्युत्सृजेत्=परित्यजेत् ॥१९॥

मूलम्—णीयदुवारं[1] तमसं[2] कुट्ठगं[3] परिवज्जए[4]।
अचक्खुविसओ[7] जत्थ[6], पाणा[5] दुप्पडिलेहगा[8] ॥२०॥

छाया—नीचद्वारं तामसं, कोष्ठकं परिवर्जयेत्।
अचक्षुर्विषयो यत्र, प्राणाः दुष्प्रतिलेखकाः ॥२०॥

सान्वयार्थः—णीयदुवारं=नीचे द्वारवाले तमसं=प्रकाशरहित कुट्ठगं=कोठेको परिवज्जए=वरजे अर्थात् वहां आहार-पानी नहीं लेवे, क्योंकि जत्थ=जहां अचक्खुविसओ=आँखका प्रसार नहीं होता (वहां) पाणा=द्वीन्द्रिय आदि प्राणियोंका दुप्पडिलेहगा=प्रतिलेखन नहीं हो सकता ॥२०॥

टीका—'णीयदुवारं०' इत्यादि। नीचद्वारं=नीचं=निम्नं द्वारं=प्रवेश-निर्गम-मार्गो यस्य स तं तथोक्तम्, तादृशप्रदेशे प्रवेश-निर्गमाभ्यामात्मसंयमविराधनायाः संभवात्, तामसम्=तमोयुक्तमप्रकाशमित्यर्थः, कोष्ठकं=गृहाभ्यन्तरमपवरकादिकं परिवर्जयेत् न तत्राऽऽहारादिकं गृह्णीयादित्यर्थः। किं सामान्येनायं निषेधः?

निरोध करने से जीवन को हानि पहुंचती है, तथा बुरी तरह आत्म-विराधना होती है।"

तो क्या करे सो बताते हैं—जीवरहित (निरवद्य) स्थान देखकर गृहस्थकी आज्ञा लेकर उस स्थानमें मल-मूत्रका त्याग करे ॥१९॥

'णीयदुवारं०' इत्यादि। नीचे द्वारवाले कोठेमें भिक्षाके लिए नहीं जाना चाहिये, क्योंकि उसमें जाने-आनेसे आत्मा और संयमकी विराधनाका संभव है। तथा अन्धकारयुक्त कोठेमें भी आहार आदि

જીવનને હાનિ પહોંચે છે, અને ખરાબ રીતે આત્મ-વિરાધના થાય છે,'

તો શું કરવુ, તે હવે બતાવે છે—જીવરહિત (નિરવદ્ય) સ્થાન જોઇને ગૃહસ્થની આજ્ઞા લઇને એ સ્થાનમાં મળ-મૂત્રનો ત્યાગ કરે (૧૯)

णीयदुवारं ઇત્યાદિ નીચા દ્વારવાળા ઓરડામાં ભિક્ષાને માટે ન જવું, કારણ કે તેમા જવા-આવવાથી આત્મા અને સંયમની વિરાધનાનો સંભવ છે. તથા અંધકારયુક્ત ઓરડામા પણ આહાર આદિ ગ્રહણ ન કરવા; તાત્પર્ય એ

नेत्याह-यत्र=यस्मिन् कोष्ठकादौ, अचक्षुर्विषयः=अत्र 'अ' 'चक्षुर्विषयः' इति पृथक् पदद्वयं, तत्र 'अ' इति निपातो नञर्थकः 'अभावे नह्य-ऽ-नो-नाऽपी'-त्यमरात्, तथाच-चक्षुर्विषयः=चक्षुरिन्द्रियजन्यव्यापारप्रसरः अ=न भवेदिति शेषः, ततः किमित्याह=प्राणाः=द्वीन्द्रियादयः दुष्प्रतिलेखकाः=दुर्निरीक्ष्या'भवन्ती'-ति शेषः, तत्र भिक्षां गृह्णतः साधोरीर्यै-षणयोः शुद्धिर्न जायते ॥२०॥

१ ३ ४ ५ २

मूलम्-जत्थ पुप्फाइं बीयाइं, विप्पइन्नाइं कुट्ठए ।

६ ७ ८ ९ १०

अहुणोवलित्तं उल्लं, दट्ठूणं परिवज्जए ॥ २१ ॥

छाया—यत्र पुष्पाणि बीजानि, विप्रकीर्णानि कोष्ठके ।

अधुनोपलिप्तमार्द्रं, दृष्ट्वा परिवर्जयेत् ॥२१॥

सान्वयार्थः-जत्थ=जिस कुट्ठए=कोठेमें पुप्फाइं=फूल (और) बीयाइं=बीज विप्पइन्नाइं=बिखरे हुए हों उस कोठेको, तथा अहुणोवलित्तं=तुरन्तके लिपे हुए उल्लं=गीले कोठेको दट्ठूणं=देखकर परिवज्जए=वरजे ॥२१॥

टीका—'जत्थ' इत्यादि । यत्र कोष्ठके गृहे वा सचित्तानि पुष्पाणि बीजानि वा विप्रकीर्णानि=इतस्ततः प्रसृतानि भवेयुः, यद्वा तत्काललिप्तमत एवार्द्रं कोष्ठकादि तत् साधुः परिवर्जयेत्=तत्र न गच्छेदित्यर्थः ॥२१॥

ग्रहण न करे। तात्पर्य यह है कि जिस कोठेमें अन्धकारके कारण नेत्रोंकी प्रवृत्ति न होती हो, और इसीलिए द्वीन्द्रिय प्राणी सरलतासे दिखाई न देते हों उसमें भिक्षा लेनेसे ईर्या और एषणा की शुद्धि नहीं होती ॥२०॥

'जत्थ पुप्फाइं० इत्यादि । जिस कोठे आदिमें सचित्त पुष्प सचित्त बीज बिखरे हुए हों, तथा तत्काल लिपनेसे जो गीला हो उस कोठे या अन्य-गृह आदिमें प्रवेश न करे ॥२१॥

છે કે જે ઓરડામા અધકારને કારણે નેત્રો કામ ન કરી શકતાં હોય અને તેથી કરીને દ્વીન્દ્રિયાદિ પ્રાણી સહેલાઈથી ન જોઈ શકાતા હોય તેમા ભિક્ષા લેવાથી સાધુની ઈર્યા તથા એષણાની શુદ્ધિ જળવાતી નથી (૨૦)

જત્થ પુપ્ફાઇં૦ ઈત્યાદિ જે ઓરડા આદિમાં સચિત્ત પુષ્પ સચિત્ત બીજ વેરાયલા હોય તથા તત્કાળ લીંપવામા આવ્યો હોવાથી લીલો હોય તે ઓરડામાં યા ગૃહાદિમાં પ્રવેશ ન કરવો (૨૧)

मूलम्-एलगं दारगं साणं, वच्छगं वावि कोट्ठए ।
उल्लंघिया न पविसे, विउहित्ताण व संजए ॥ २२ ॥

छाया—एडकं दारकं श्वानं, वत्सकं वाऽपि कोष्ठके ।
उल्लङ्घ्य न प्रविशेत्, व्यूह्य वा संयतः ॥२२॥

सान्वयार्थः-एलगं=भेड दारगं=बालक साणं=कुत्ते वच्छगं=बछडे अपिवा= इस प्रकार दूसरे अर्थात् बकरा-बकरी पाडा-पाडी आदिको उल्लंघिया=लांघ करके, वा=अथवा विउहित्ताण=हाथ आदिसे हटाकर संजए=साधु कोट्ठए= कोठे-घर-में न पविसे=प्रवेश नहीं करे ॥२२॥

टीका—'एलगं' इत्यादि । संयतः=भिक्षुः, एडकं=गड्डुकं, दारकम्=अर्भकम्= श्वानं=कुक्कुरं, वत्सकं=गोशिशुं वा, अपिशब्दादजामहिष्यादिशिशुग्रहणम्, उल्ल-ङ्घ्य=अतिक्रम्य व्यूह्य=अपोह्य हस्तादिनाऽपसार्येत्यर्थः, कोष्ठके न प्रविशेत् ॥२२॥

मूलम्-असंसत्तं पलोइज्जा, नाइदूरावलोयए ।
उप्फुल्लं न विणिज्झाए, नियट्टिज्ज अयंपिरो ॥२३॥

छाया—असंसक्तं प्रलोकेत, नातिदूरमवलोकेत ।
उत्फुल्लं न विनिर्ध्यायेत् निवर्त्तेताऽजल्पन् ॥२३॥

सान्वयार्थः-असंसत्तं=आसक्तिरहित होकर पलोइज्जा=देखे अर्थात् रागादि-पूर्वक किसीको न देखे, नाइदूरावलोयए=अत्यन्त दूर दृष्टि डालकर-लम्बी दृष्टिसे न देखे तथा उप्फुल्लं=आँखें फाड़-फाडकर अथवा मुसकराता हुआ टकटकी लगाकर नविणिज्झाए=नहीं देखे, (भिक्षाकी प्राप्ति न हो तो) अयंपिरो=कुछभी नहीं बोलता हुआ अर्थात् बडबडाहट नहीं करता हुआ वहांसे नियट्टिज्ज=वापस लौट जावे ॥२३॥

टीका-'असंसत्तं०' इत्यादि । असंसक्तम्=आसक्तिरहितं यथास्यात्तथा

'एलगं०' इत्यादि । भेड़ तथा बकरा, बालक, कुत्ता, बछड़ा तथा पाडा-पाडी आदिका उल्लंघन करके, अथवा उनको हाथ आदिसे हटाकर साधु कोठे आदिमें प्रवेश न करे ॥२२॥

'असंसत्तं०' इत्यादि । आसक्त होकर रागादिपूर्वक किसीका

एलगं० ઈત્યાદિ. ઘેટું તથા બકરું, બાળક, કૂતરું, વાછડો તથા પાડા-પાડી આદિને ઓળંગીને અથવા તેને હાથ આદિથી હઠાવીને સાધુ ઓરડામાં પ્રવેશ ન કરે (૨૨)

असंसत्तं० ઈત્યાદિ આસક્ત થઈને રાગાદિપૂર્વક કોઈનું અવલોકન ન કરવું.

प्रलोकेत=पश्येत्, अन्यथा रागादिसम्भवात् । अतिदूरं=दातुरागमनप्रदेशात्परं नावलोकेत, साधौ तस्करतादिशङ्कासंभवात् । उत्फुल्लं=स्मेरं यथा स्यात्तथा नेत्रे विस्फार्येत्यर्थः न विनिर्ध्यायेत्=न पश्येत् । कदाचिद्भिक्षाया अलाभे अजल्पन्=दैन्योपालम्भवचनानि अब्रुवन् निवर्त्तेत=प्रत्यावर्त्तेत ।

'असंसत्तं' इति पदेन दृष्ट्यनुरागोऽपाकृतः । 'नाइदूरा०' इत्यादिना साधौ चौरत्वाद्याशङ्का निराकृता । 'उप्फुल्लं०' इत्यादिना, वराकेणानेन साधुना नावलोकितो नाप्यनुभूत एतादृशो विभवोऽतोऽयं दीनः' इत्याद्याशङ्का व्युदस्ता ॥२३॥

मूलम्-अइभूमिं[3] न[4] गच्छिज्जा[5], गोयरग्गगओ[1] मुणी[2] ।
कुलस्स[6] भूमिं[7] जाणित्ता[8], मियं[9] भूमिं[10] परक्कमे[11] ॥२४॥

अवलोकन न करे । दाता जिस स्थानसे आता हो उस स्थानसे ज्यादा दूर न देखे, क्योंकि दूर तक देखनेसे किसीको ऐसी शंका हो जाय कि 'यह चोर है' इत्यादि । किसी पदार्थकी ओर आंखें फाड़-फाड़ कर न देखे । यदि भिक्षाकी प्राप्ति न हो तो दीन वचन न बोले-न बड़बड़ावे, किन्तु मौनसहित पीछा फिर जावे ।

'असंसत्तं' पदसे नेत्रविषयक अनुराग का त्याग प्रगट किया है । 'नाइदूरा०' इत्यादि पदसे यह सूचित किया है कि साधुको ऐसा आचरण करना चाहिए जिससे किसीको चोर आदि होनेका सन्देह न हो । 'उप्फुल्लं०' इत्यादि पदसे इस सन्देह को दूर किया है कि कोई यह न समझे कि-'अरे! इस बेचारे साधुने ऐसी विभूति न कभी देखी है और न कभी भोगी है इसलिए यह बड़ा दीन है ॥२३॥

દાતા જે સ્થાનમાંથી આવતો હોય એ સ્થાનથી વધારે દૂર ન જોવું, કારણ કે દૂર સુધી જોવાથી કોઇને એવી શંકા આવી જાય કે 'આ ચોર છે' ઇત્યાદિ. જો ભિક્ષાની પ્રાપ્તિ ન થાય તો દીન વચન ન બોલવાં, કે ન બડબડવુ, પરન્તુ મૌનસહિત પાછાં ફરવું

असंसत्तं० શબ્દથી નેત્રવિષયક અનુરાગનો ત્યાગ પ્રકટ કર્યો છે नाइदूरा० ઇત્યાદિથી એમ સૂચિત કરવામાં આવ્યુ છે કે સાધુએ એવું આચરણ કરવું જોઇએ કે જેથી કોઇને ચોર આદિ હોવાનો સંદેહ ન પડે उप्फुल्लं० ઇત્યાદિ શબ્દથી એ સંદેહ દૂર કર્યો છે કે કોઇ એમ ન સમજે કે 'અરે! આ બિચારા સાધુએ એવી વિભૂતિ નથી કોઇવાર જોઇ અને નથી કોઇવાર ભોગવી તેથી એ બહુ જ દીન છે (૨૩)

छाया—अतिभूमिं न गच्छेत्, गोचराग्रगतो मुनिः ।
कुलस्य भूमिं ज्ञात्वा, मितां भूमिं पराक्रामेत् ॥२४॥

सान्वयार्थः—गोयरग्गगओ=गोचरीमें गया हुआ मुणी=साधु अइभूमिं=गृहस्थकी मर्यादित भूमिसे अगाड़ी उसकी आज्ञाके विना न गच्छिज्जा=नहीं जावे, (किन्तु) कुलस्स=गृहस्थके घरकी भूमिं=मर्यादित भूमिको जाणित्ता=जानकर मियं भूमिं=जिस घरमें जहांतक जानेकी मर्यादा हो वहांतक ही परक्कमे=जावे ॥२४॥

टीका—'अइभूमिं०' इत्यादि । गोचराग्रगतो मुनिः अतिभूमिं=परप्रवेशाय गृहस्थाननुमतां भूमिमतिक्रम्य=उल्लङ्घ्य न गच्छेत् । तर्हि किं कुर्यात्? इत्याह-कुलस्य भूमिं=मर्यादां स्थित्यवधिं ज्ञात्वा मितां=परिच्छिन्नां स्वावस्थानयोग्यां भूमिं=स्थानं पराक्रामेत्=गत्वा तिष्ठेत्, विपरीताचरणे हि गृहस्थरोषादि-सम्भवः ॥२४॥

मूलम्—तत्थेव[2] पडिलेहिज्जा[4], भूमिभागं[3] वियक्खणो[1] ।
सिणाणस्स[5] य[7] वच्चस्स[6], संलोगं[8] परिवज्जए[9] ॥२५॥

छाया—तत्रैव प्रतिलिखेत्, भूमिभागं विचक्षणः ।
स्नानस्य च वर्चसः, संलोकं परिवर्जयेत् ॥२५॥

सान्वयार्थः—तत्थेव=जिस मर्यादित भूमिपर खड़ा है उसी भूमिभागे=भूमि-भागको वियक्खणो=विचक्षण साधु पडिलेहिज्जा=प्रतिलेखन करे, अर्थात् वहांकी

'अइभूमिं०' इत्यादि । जिस घरमें भूमिकी जितनी मर्यादा हो उसे उल्लंघन करके मुनि गृहस्थकी आज्ञा विना आगे नहीं जावे, किन्तु उस कुलकी मर्यादाको जानकर गमन करने योग्य परिमित स्थान तकही जाकर खड़ा हो जाय-अर्थात् किसीकी मर्यादाका उल्लंघन न करे। इसके विपरीत आचरण करनेसे गृहस्थको क्रोध आने आदिकी संभावना रहती है ॥२४॥

अइभूमिं० ઇત્યાદિ જે ઘરમાં ભૂમિની જેટલી મર્યાદા હોય એને ઉલ્લંઘીને મુનિ ગૃહસ્થની આજ્ઞા વિના આગળ ન જાય, પરન્તુ એ કુળની મર્યાદાને જાણીને ગમન કરવા યોગ્ય પરિમિત સ્થાન સુધી જ જઈને ઊભો રહે, અર્થાત્-કોઈની મર્યાદાનું ઉલ્લંઘન ન કરે, એથી વિપરીત આચરણ કરવાથી ગૃહસ્થને ક્રોધ આદિ ઉત્પન્ન થવાની સંભાવના રહે છે (૨૪)

भूमिको पूंजकर खड़ा रहे और सिणाणस्स=स्नानघरकी तर्फ य=तथा वच्चस्स= टट्टी-पेशाब-घरकी तर्फ संलोगं=दृष्टि परिवज्जए=न डाले ॥२५॥

टीका—'तत्थेव०' इत्यादि। विचक्षणः=निपुणः तत्रैव=स्वाधिष्ठानस्थान एव भूमिभागं प्रतिलिखेत्=संपश्येत्, स्नानस्य=स्नानगृहस्य वर्चसः=वर्चोगृहस्य च मलपरित्यागगृहस्येत्यर्थः, संलोकं=प्रेक्षणं परिवर्जयेत्। 'विअक्खणो' इत्यनेनाऽगीतार्थस्य स्वतन्त्रतया गोचरीगमनं निषिद्धम्। 'सिणाणस्स' इत्यादिना च नग्नस्त्र्यादिदर्शनाद्रागादिसंभव इति सूचितम् ॥२५॥

मूलम्-दगमट्टियआयाणे, बीयाणि हरियाणि य।
परिवज्जंतो चिट्ठिज्जा, सव्विंदियसमाहिए ॥२६॥

छाया—दकमृत्तिकाऽऽदानं, बीजानि हरितानि च ॥
परिवर्जयंस्तिष्ठेत्, सर्वेन्द्रियसमाहितः ॥२६॥

सान्वयार्थः-(और वहांभी) दगमट्टियआयाणे=सचित्त जल और मिट्टीयुक्त मार्गको बीयाणि=शालि आदि बीजोंको य=और हरियाणि=हरित कायको परिवज्जंतो=वरजता हुआ अर्थात् उससे हटकर सव्विंदियसमाहिए=सब इन्द्रियोंको गोपता हुआ चिट्ठिज्जा=खड़ा रहे ॥२६॥

'तत्थेव०' इत्यादि। विचक्षण भिक्षु जिस मर्यादित भूमिपर खड़ा है वहींके भूमिभागका प्रतिलेखन करे, स्नानघर तथा उच्चार आदिके स्थानकी ओर दृष्टि न डाले। 'वियक्खणो' पदसे अगीतार्थ साधुको स्वतन्त्र गोचरी करनेका निषेध किया गया है। 'सिणाणस्स' इत्यादि पदोंसे-'नग्नस्त्री आदि दीखजानेके कारण रागादि भाव उत्पन्न होना संभव है'-यह सूचित किया गया है ॥२५॥

तत्थेव० ઇત્યાદિ વિચક્ષણ ભિક્ષુ જે મર્યાદિત ભૂમિ પર ઊભો હોય ત્યાના ભૂમિભાગનુ પ્રતિલેખન કરે, સ્નાન-ઘર તથા ઉચ્ચાર આદિના સ્થાન (જાજરૂ)ની તરફ દૃષ્ટિ ન ફેંકે वियक्खणो શબ્દથી અગીતાર્થ સાધુને સ્વતંત્ર ગોચરી કરવાનો નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે सिणाणस्स ઇત્યાદિ પદોથી 'નગ્ન સ્ત્રી આદિ દેખાઈ જવાને કારણે રાગાદિ ભાવ ઉત્પન્ન થવાનો સંભવ છે'-એમ સૂચિત કરવામા આવ્યું છે (૨૫)

टीका—'दगमट्टिय०' इत्यादि। 'दकमृत्तिकाऽऽदानं=दकं च मृत्तिका चेति दकमृत्तिके, आदीयते=आनीयतेऽनेनेत्यादानं=मार्गः, दकमृत्तिकयोरादानं दकमृत्तिकाऽऽदानं=जलमृत्तिकाऽऽनयनमार्गस्तत्। बीजानि=सचित्तानि शाल्यादीनि, हरितानि=वनस्पतिमात्राणि, चकारादन्यान्यप्यकल्प्यवस्तुजातानि परिवर्जयन्=परित्यजन् सर्वेन्द्रियसमाहितः=तत्तदिन्द्रियविषयव्यासङ्गरहितस्तिष्ठेत्=अवस्थितिं कुर्यात् ॥२६॥

मूलम्—तत्थ[1] से[3] चिट्ठमाणस्स[2], आहरे[5] पाणभोयणं[4]।
अकप्पियं[6] न[7] गेण्हिज्जा[8], पडिगाहिज्ज[10] कप्पियं[9] ॥२७॥

छाया—तत्र तस्मै तिष्ठते, आहरेत्पान-भोजनम्।
अकल्पिकं न गृह्णीयात्, प्रतिगृह्णीयात्कल्पिकम् ॥२७॥

सान्वयार्थः—तत्थ=वहां चिट्ठमाणस्स=खड़े हुए तस्स=उस साधुके लिए (गृहस्थ) पाणभोयणं=आहार-पानी आहरे=लाकर देवे तो (साधु उसमें) अकप्पियं=अकल्पनीय आहार आदि न गेण्हिज्जा=नहीं लेवे, (किन्तु) कप्पियं=कल्पनीय होवे तो पडिगाहिज्ज=लेवे ॥२७॥

टीका—'तत्थ से०' इत्यादि। तत्र=गृहस्थगृहे तिष्ठते तस्मै[2] भिक्षवे

१ दकशब्दो जलपर्यायवचनः—'प्रोक्तं प्राज्ञैर्भुवनमतं जीवनीयं दकं च।' इति हलायुधकोशात्।

२ सूत्रे प्राकृतत्वाच्चतुर्थ्याः षष्ठी।

'दगमट्टिय०' इत्यादि। सचित्त जल और मृत्तिका लानेके मार्गका, और शालि आदि सचित्त बीज, वनस्पतिकाय तथा अन्य अकल्प्य पदार्थोंका वर्जन करता हुआ—उनसे दूर हट कर सब इन्द्रियोंका संयम करता हुआ खड़ा होवे ॥२६॥

'तत्थ से' इत्यादि। गृहस्थके घरमें खड़े हुए साधुको गृहिणी (स्त्री)

दगमट्टिय० ઇત્યાદિ સચિત્ત જળ અને માટીનું અને શાલિ (ડાંગર) આદિ સચિત્ત બીજ, વનસ્પતિકાય તથા અન્ય અકલ્પ્ય પદાર્થોનું વર્જન કરતા-તેનાથી દૂર હઠીને સર્વ ઇંદ્રિયોનો સંયમ કરતા ઊભો રહે (૨૬)

तत्थ से ઇત્યાદિ ગૃહસ્થના ઘરમાં ઊભેલા સાધુને ગૃહિણી (સ્ત્રી) આદિ

गृहिण्यादिः पानभोजनं=पानं-पेयं तिलतण्डुलादिधावनजलम् भोजनं=भोज्यमन्नादिकम् आहरेत्=उपनयेत्-दद्यादित्यर्थः। तत्रायं विशेषः=उपनतेषु पानभोजनादिषु अकल्पिकं=कल्पितुमयोग्यमनेषणीयमित्यर्थः, न गृह्णीयात्=नाददीत, कल्पिकं=कल्प्यं निरवद्यं प्रतिगृह्णीयात् ॥२७॥

१ २ ३ ५ ४
मूलम्-आहरंती सिया तत्थ, परिसाडिज्ज भोयणं ।
६ ७ ८ ११ १० १२ ९
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥ २८ ॥

छाया-आहरन्ती स्यात्तत्र, भोजनं परिशाटयेत् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥२८॥

सान्वयार्थः-और-आहरंती=आहार-पानी देती हुई वह-दात्री सिया=कदाचित् अगर तत्थ=वहां भोयणं=भोजन-पान परिसाडिज्ज=नीचे गिरावे तो दिंतियं=देती-हुई उस बाईसे (साधु) पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहार-पानी मे=मुझे न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥२८॥

टीका-'आहरंती०' इत्यादि। आहरन्ती=भिक्षामानीय ददती गृहिणी स्यात्=कदाचित् तत्र स्थाने भोजनम्=आहारं परिशाटयेत्=इतस्ततो विकिरेत् जानुप्रमाणोच्चप्रदेशात् कणादिमात्रमपि, तदधःप्रदेशाच्च निरन्तरं पातयेदिति वृद्धाः, तदा ददतीं प्रति भिक्षुः आचक्षीत=ब्रुवीत, तादृशम्=उक्तप्रकारकमन्नादिकं मे=मम न-कल्पते=न-युज्यते न ग्राह्यमिति भावः ।

आदि तिल तण्डुल आदिका धोवन, तथा अन्नादिक देवे तो उनमेंसे अकल्पनीय (अनेषणीय) पदार्थोंका ग्रहण न करे, कल्पनीयका ग्रहण करे ॥ २७ ॥

'आहरंती' इत्यादि। अशनादि देते समय दाताके हाथसे घुटनेसे ऊपरके प्रदेशसे यदि एक भी कण गिर जाय, अथवा घुटनेसे नीचेके प्रदेशसे निरन्तर गिर रहा हो तो भिक्षु दातासे कहे कि ऐसा अन्नादिक मेरे लिए ग्राह्य नहीं है।

તલ તંદુલ (ચોખા) આદિનું ધોવણ તથા અન્નાદિક આપે તો એમાંથી અકલ્પનીય (અનેષણીય) પદાર્થોને ગ્રહણ ન કરે, કલ્પનીયને ગ્રહણ કરે. (૨૭)

આહરંતી૦ ઇત્યાદિ. અશનાદિ દેતી વખતે દાતાના હાથમાથી ઘુંટણની ઉપરના પ્રદેશથી જો એક પણ કણ પડી જાય, અથવા ઘુંટણથી નીચેના પ્રદેશથી નિરંતર પડી રહ્યું હોય તો ભિક્ષુ દાતાને કહે કે એવાં અશનાદિ મારે ગ્રાહ્ય નથી.

टीका—'दगमट्टिय०' इत्यादि । [1]दकमृत्तिकाऽऽदानं=दकं च मृत्तिका चेति दकमृत्तिके, आदीयते=आनीयतेऽनेनेत्यादानं=मार्गः, दकमृत्तिकयोरादानं दकमृत्तिकाऽऽदानं=जलमृत्तिकाऽऽनयनमार्गस्तत् । बीजानि=सचित्तानि शाल्यादीनि, हरितानि=वनस्पतिमात्राणि, चकारादन्यान्यप्यकल्प्यवस्तुजातानि परिवर्जयन्=परित्यजन् सर्वेन्द्रियसमाहितः=तत्तदिन्द्रियविषयव्यासङ्गरहितस्तिष्ठेत्=अवस्थितिं कुर्यात् ॥२६॥

मूलम्–तत्थ से चिट्ठमाणस्स, आहरे पाणभोयणं ।
अकप्पियं न गेण्हिज्जा, पडिगाहिज्ज कप्पियं ॥२७॥

छाया—तत्र तस्मै तिष्ठते, आहरेत्पान-भोजनम् ।
अकल्पिकं न गृह्णीयात्, प्रतिगृह्णीयात्कल्पिकम् ॥२७॥

सान्वयार्थः–तत्थ=वहां चिट्ठमाणस्स=खड़े हुए तस्स=उस साधुके लिए (गृहस्थ) पाणभोयणं=आहार-पानी आहरे=लाकर देवे तो (साधु उसमें) अकप्पियं=अकल्पनीय आहार आदि न गेण्हिज्जा=नहीं लेवे, (किन्तु) कप्पियं=कल्पनीय होवे तो पडिगाहिज्ज=लेवे ॥२७॥

टीका—'तत्थ से०' इत्यादि । तत्र=गृहस्थगृहे तिष्ठते तस्मै[2] भिक्षवे

१ दकशब्दो जलपर्यायवचनः–'प्रोक्तं प्राज्ञैर्भुवनममृतं जीवनीयं दकं च ।' इति हलायुधकोशात् ।

२ सूत्रे प्राकृतत्वाच्चतुर्थ्याः षष्ठी ।

'दगमट्टिय०' इत्यादि । सचित्त जल और मृत्तिका लानेके मार्गका, और शालि आदि सचित्त बीज, वनस्पतिकाय तथा अन्य अकल्प्य पदार्थोंका वर्जन करता हुआ–उनसे दूर हट कर सब इन्द्रियोंका संयम करता हुआ खड़ा होवे ॥२६॥

'तत्थ से' इत्यादि । गृहस्थके घरमें खड़े हुए साधुको गृहिणी (स्त्री)

दगमट्टिय० ઇત્યાદિ સચિત્ત જળ અને માટીનું અને શાલિ (ડાંગર) આદિ સચિત્ત બીજ, વનસ્પતિકાય તથા અન્ય અકલ્પ્ય પદાર્થોનું વર્જન કરતા-તેનાથી દૂર હટીને સર્વ ઇંદ્રિયોનો સંયમ કરતા ઊભો રહે. (૨૬)

तत्थ से ઇત્યાદિ ગૃહસ્થના ઘરમાં ઊભેલા સાધુને ગૃહિણી (સ્ત્રી) આદિ

गृहिण्यादिः पानभोजनं=पानं-पेयं तिलतण्डुलादिधावनजलम् भोजनं=भोज्यमन्ना-दिकम् आहरेत्=उपनयेत्-दद्यादित्यर्थः। तत्रायं विशेषः=उपनतेषु पानभोजनादिषु अकल्पिकं=कल्पितुमयोग्यमनेषणीयमित्यर्थः, न गृह्णीयात्=नाददीत, कल्पिकं= कल्प्यं निरवद्यं प्रतिगृह्णीयात् ॥२७॥

मूलम्-आहरंती[1] सिया[2] तत्थ[3], परिसाडिज्ज[5] भोयणं[4]।
दिंतियं[6] पडियाइक्खे[7], न[8] मे[11] कप्पइ[10] तारिसं[12] ॥ २८ ॥

छाया-आहरन्ती स्यात्तत्र, भोजनं परिशाटयेत्।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥२८॥

सान्वयार्थः-और-आहरंती=आहार-पानी देती हुई वह-दात्री सिया=कदा-चित् अगर तत्थ=वहां भोयणं=भोजन-पान परिसाडिज्ज=नीचे गिरावे तो दिंतियं=देती-हुई उस बाईसे (साधु) पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहार-पानी मे=मुझे न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥२८॥

टीका-'आहरंती०' इत्यादि। आहरन्ती=भिक्षामानीय ददती गृहिणी स्यात्=कदाचित् तत्र स्थाने भोजनम्=आहारं परिशाटयेत्=इतस्ततो विकिरेत् जानुप्रमाणोच्चप्रदेशात् कणादिमात्रमपि, तदधःप्रदेशाच्च निरन्तरं पातयेदिति वृद्धाः, तदा ददतीं प्रति भिक्षुः आचक्षीत=ब्रुवीत, तादृशम्=उक्तप्रकारकमन्नादिकं मे= मम न-कल्पते=न-युज्यते न ग्राह्यमिति भावः।

आदि तिल तण्डुल आदिका धोवन, तथा अन्नादिक देवे तो उनमेंसे अकल्पनीय (अनेषणीय) पदार्थोंका ग्रहण न करे, कल्पनीयका ग्रहण करे ॥ २७ ॥

'आहरंती' इत्यादि। अशनादि देते समय दाताके हाथसे घुटनेसे ऊपरके प्रदेशसे यदि एक भी कण गिर जाय, अथवा घुटनेसे नीचेके प्रदेशसे निरन्तर गिर रहा हो तो भिक्षु दातासे कहे कि ऐसा अन्नादिक मेरे लिए ग्राह्य नहीं है।

तल तदुल (ચોખા) આદિનું ધોવણ તથા અન્નાદિક આપે તો એમાથી અકલ્પ-નીય (અનેષણીય) પદાર્થોને ગ્રહણ ન કરે, કલ્પનીયને ગ્રહણ કરે (૨૭)

आहरंती० ઇત્યાદિ અશનાદિ દેતી વખતે દાતાના હાથમાથી ઘુંટણની ઉપરના પ્રદેશથી જો એક પણ કણ પડી જાય, અથવા ઘુંટણથી નીચેના પ્રદેશથી નિરંતર પડી રહ્યું હોય તો ભિક્ષુ દાતાને કહે કે એવાં અશનાદિ મારે ગ્રાહ્ય નથી.

पाकादिगृहकार्याणां प्रायः स्त्र्यधीनत्वेन तत्रोपस्थितिप्राधान्यात्तद्ग्रहणम् ।२८।

मूलम्-संमद्दमाणी पाणाणि, बीयाणि हरियाणि य ।
असंजमकरिं नच्चा, तारिसं परिवज्जए ॥ २९ ॥

छाया—संमर्दयन्ती प्राणान्, बीजानि हरितानि च ।
असंयमकरीं ज्ञात्वा तादृशीं परिवर्जयेत् ॥२९॥

सान्वयार्थः-तथा-पाणाणि=बेइन्द्रियादिक प्राणियोंको बीयाणि=शालि आदि बीजोंको य=और हरियाणि=हरी वनस्पतिकायको संमद्दमाणी=पैरोंसे कुचलती हुई (आहार-पानी देवे तो) उसे असंजमकरिं=साधुके लिये अयतना करनेवाली नच्चा=जानकर (साधु) तारिसं=सदोष आहार देने वाली उसे परिवज्जए=वरजे अर्थात् उसके हाथसे आहार-पानी नहीं लेवे ॥२९॥

टीका-'संमद्दमाणी०' इत्यादि । प्राणान् बीजानि हरितानि च संमर्दयन्ती= पादसंघट्टनादिना पीडयन्ती अशनादिकं दद्यादिति शेषः, तदा असंयमकरीं=साधु-निमित्तमयतनाकारिणीम् ज्ञात्वा तादृशीम्=उक्तस्वरूपां सदोषमाहारादिकं ददतीं तां परिवर्जयेत्=प्रत्यादिशेत्, तद्धस्ततो नान्नादिकं गृह्णीयादित्यर्थः । इयं भिक्षादा-नार्थमागच्छन्ती प्राणादीनि मर्दयतीति तद्विराधना मय्यप्यापद्येतेति भावयन् भिक्षां न गृह्णीयादिति भावः ॥२९॥

रसोईका काम प्रायः स्त्रियोंके अधीन रहता है और रसोईमें मुख्य-तया स्त्री मौजूद रहती है, अत एव गाथामें स्त्रीका ग्रहण किया है ॥२८॥

'संमद्दमाणी०' इत्यादि । प्राण बीज वनस्पति आदि सचित्तको कुचलती-रौंदती हुई अन्नादि देवे तो साधुके लिए अयतना करनेवाली समझकर उसे त्याग देवे, अर्थात् उसके हाथसे अन्नादि ग्रहण न करे। तात्पर्य यह है कि-'यह भिक्षा देनेके लिए जो अयतना कर रही है ऐसी

રસોઇનુ કામ પ્રાયઃ સ્ત્રીઓને અધીન રહે છે અને રસોઇમા મુખ્યત્વે સ્ત્રી હાજર રહે છે, તેથી ગાથામા સ્ત્રીને ગ્રહણ કરવામા આવી છે (૨૮)

संमद्दमाणी० ઇત્યાદિ પ્રાણ બીજ વનસ્પતિ આદિ સચિત્તને કચડતી-ઢાળતી (સ્ત્રી) અન્નાદિ આપે તો સાધુને માટે અયતના કરનારી સમજીને તેને ત્યજી દે અર્થાત્ એના હાથથી અન્નાદિ ગ્રહણ ન કરે તાત્પર્ય એ છે કે-'આ ભિક્ષા આપવાને જે અયતના કરી રહી છે, એવી અવસ્થામા આહાર લેવાથી

२ ३ ४ ५
मूलम्-साहट्टु निक्खवित्ताणं, सचित्तं घट्टियाणिय ।
६ १ ७ ८
तहेव समणट्टाए, उदगं संपणुल्लिया ॥ ३० ॥
९ १० १२ ११
ओगाहइत्ता चलइत्ता, आहरे पाणभोयणं ।
१३ १४ १७ १५ १८ १६
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥३१॥

छाया—संहृत्य निक्षिप्य, सचित्तं घट्टयित्वा ।
तथैव श्रमणार्थम्, उदकं संप्रणुद्य ॥३०॥
अवगाह्य चालयित्वाऽऽहरेत्पानभोजनम् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥३१॥

सान्वयार्थः-समणट्टाए=साधुके लिए साहट्टु=संहरण करके अर्थात् एक वरतनसे दूसरे वरतनमें डालकरके, निक्खिवित्ताणं=सचित्त वस्तु पर आहारादिको रखकर अथवा आहारादिके ऊपर सचित्त वस्तुको रखकर, सचित्तं=सचित्त वस्तुका घट्टियाणिय=संघट्टा-स्पर्श-करके, तहेव=उसीप्रकार उदगं=सचित्त अप्कायको संपणुल्लिया=इधर-उधर रखकर, ओगाहइत्ता=वर्षासे आँगनमें भरे हुए पानीमें अवगाहन-प्रवेश-करके, चलइत्ता=रुके हुए जलको नालीद्वारा या हाथसे बाहर निकालकर यदि पाणभोयणं=आहार-पानी आहरे=देवे तो दिंतियं=देती हुई उस बाईसे (साधु) पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहारपानी मे=मुझे न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥३०-३१॥

टीका—'साहट्टु०' इत्यादि, 'ओगाहइत्ता' इत्यादि च । यदि श्रमणार्थं=भिक्षुनिमित्तं संहृत्य=भाजनाद्भाजनान्तरे संहरणं कृत्वा ,

---

अवस्थामें आहार लेनेसे मुझे भी इस हिंसाका भागी बनना पड़ेगा' ऐसा विचार करके मुनि उससे आहार न ले ॥२९॥

'साहट्टु०' इत्यादि, और 'ओगाहइत्ता०' इत्यादि । यदि श्रमणके लिए एक वर्त्तनसे दूसरे वर्त्तनमें संहरण करके (निकालकर), निक्षेपण

મારે પણ એ હિંસાના ભાગી બનવું પડશે.' એવો વિચાર કરીને મુનિ તેના હાથથી આહાર લે નહિ

साहट्टु० ઇત્યાદિ, અને ओगाहइत्ता० ઇત્યાદિ. જો શ્રમણને માટે એક વાસણમાંથી બીજા વાસણમાં સંહરણ કરીને (કાઢીને), નિક્ષેપણ કરીને (એકને

संहरणस्य चतुर्भङ्गी यथा–

(१) सचित्ते सचित्तस्य, (२) सचित्तेऽचित्तस्य, (३) अचित्ते सचित्तस्य, (४) अचित्तेऽचित्तस्य संहरणम् । एषु चतुर्थो भङ्गो ग्राह्यः । अस्यापि चत्वारो भङ्गा भवन्ति, तद्यथा—

(१) शुष्के शुष्कस्य, (२) शुष्के आर्द्रस्य, (३) आर्द्रे शुष्कस्य, (४) आर्द्रे आर्द्रस्य संहरणम् ।

करके (एकके ऊपर दूसरेको रखकर), सचित्तके साथ संघटा करके (जलको हिलाकर), तथा अवगाहन करके–वर्षा ऋतुमें घरके आंगनमें रुके (भरे) हुए वारिसके जलमें प्रवेश करके या उसे नालीद्वारा निकालकर पान-भोजन देवे तो देनेवालीसे श्रमण कहे कि 'ऐसा अन्न-पान आदि मुझे ग्राह्य नहीं है।'

पहले संहरणका वर्णन करते हैं–संहरणकी चौभंगी इस प्रकार होती है—

(१) सचित्तमें सचित्तका, (२) सचित्तमें अचित्तका (३) अचित्तमें सचित्तका, (४) अचित्तमें अचित्तका ।

इन चार भंगोंमेंसे चौथा भंग साधुको कल्पनीय है। इसके भी चार भंग होते हैं—

(१) सूखेमें सूखेका, (२) सूखेमें गीलेका ।

(३) गीलेमें सूखेका, (४) गीलेमें गीलेका ।

ઉપર બીજાને રાખીને), સચિત્તની સાથે સંઘટો કરીને, જળનું ઉપમર્દન કરીને (જળને હલાવીને) તથા અવગાહન કરીને, વર્ષા ઋતુમા ઘરના આંગણામા ભરેલા વરસાદના પાણીમાં પ્રવેશ કરીને યા એને નાળી (ખાળ) વડે કાઢી નાંખીને ભોજન-પાન આપે તો એ આપનારીને શ્રમણ કહે કે "એવા અન્ન-પાન મારે ગ્રાહ્ય નથી"

પહેલાં સંહરણનું વર્ણન કરે છે. સંહરણની ચોભંગી આ પ્રકારે થાય છે:—

(૧) સચિત્તમા સચિત્તનું, (૨) સચિત્તમાં અચિત્તનું, (૩) અચિત્તમાં સચિત્તનું, (૪) અચિત્તમાં અચિત્તનુ

એ ચાર ભાંગામાથી ચોથો ભાગો સાધુને માટે કલ્પનીય છે એના પણ ચાર ભાગા થાય છે—

[૧] સૂકામા સૂકાનું, (૨) સૂકામાં લીલાનું, (૩) લીલામાં સૂકાનુ અને (૪) લીલામાં લીલાનુ

एतेऽपि पुनः प्रत्येकं स्वगताल्पत्वबहुत्वाभ्यां भिन्नाश्चतुर्भङ्गान् भजन्ते। तत्र [१] 'शुष्के शुष्कस्ये'-त्येतदाख्यप्रथमभङ्गस्य चतुर्भङ्गी यथा—

(१) अल्पशुष्के अल्पशुष्कस्य, (२) अल्पशुष्के बहुशुष्कस्य, (३) बहुशुष्केऽल्पशुष्कस्य, (४) बहुशुष्के बहुशुष्कस्य संहरणम्।

[२] 'शुष्के आर्द्रस्ये'-त्येतद्द्वितीयभङ्गस्य चतुर्भङ्गी यथा—

(१) अल्पशुष्केऽल्पार्द्रस्य, (२) अल्पशुष्के बह्वार्द्रस्य, (३) बहुशुष्केऽल्पार्द्रस्य, (४) बहुशुष्के बह्वार्द्रस्य संहरणम्।

[३] 'आर्द्रे शुष्कस्ये'-तितृतीयभङ्गस्य चतुर्भङ्गी यथा—

(१) अल्पार्द्रेऽल्पशुष्कस्य, (२) अल्पार्द्रे बहुशुष्कस्य, (३) बह्वार्द्रेऽल्पशुष्कस्य,

---

ये चारों भंग भी अल्पता और बहुलताके भेदसे चार चार प्रकारके होते हैं—

[१] 'सूखेमें सूखेका' इस प्रथम भंगकी चौभंगी इस तरह है—

(१) थोड़े सूखेमें थोड़े सूखेका, (२) थोड़े सूखेमें बहुत सूखेका। (३) बहुत सूखेमें थोड़े सूखेका, (४) बहुत सूखेमें बहुत सूखेका।

[२] 'सूखेमें गीलेका' इस दूसरे भंगकी चौभंगी-

(१) थोड़े सूखेमें थोड़े गीलेका, (२) थोड़े सूखेमें बहुत गीलेका, (३) बहुत सूखेमें थोड़े गीलेका, (४) बहुत सूखेमें बहुत गीलेका।

[३] 'गीलेमें सूखेका' इस तीसरे भंगकी चौभंगी-

(१) थोड़े गीलेमें थोड़े सूखेका, (२) थोड़े गीलेमें बहुत सूखेका,

---

એ ચાર ભાંગો પણ અલ્પતા અને બહુલતાના ભેદ કરીને ચાર ચાર પ્રકારના થાય છે.—

[૧] 'સૂકામાં સૂકાનુ' એ પ્રથમની ચૌભગી આ પ્રમાણે છે:-

(૧) થોડા સૂકામા થોડા સૂકાનુ, (૨) થોડા સૂકામાં બહુ સૂકાનું, (૩) બહુ સૂકામાં થોડા સૂકાનું, (૪) બહુ સૂકામા બહુ સૂકાનું

[૨] 'સૂકામા લીલાનુ' એ બીજા ભાગાની ચૌભગી-

(૧) થોડા સૂકામાં થોડા લીલાનું, (૨) થોડા સૂકામાં બહુ લીલાનું (૩) બહુ સૂકામાં થોડા લીલાનુ, (૪) બહુ સૂકામા બહુ લીલાનુ

[૩] 'લીલામાં સૂકાનુ' એ ત્રીજા ભાગાની ચૌભગી-

(૧) થોડા લીલામાં થોડા સૂકાનુ, (૨) થોડા લીલામાં બહુ સૂકાનું,

(४) बह्वार्द्रे बहुशुष्कस्य संहरणम् ।

[४] 'आर्द्रे आर्द्रस्ये'-ति चतुर्थभङ्गस्य चतुर्भङ्गी यथा—

(१) अल्पार्द्रेऽल्पार्द्रस्य, (२) अल्पार्द्रे-बह्वार्द्रस्य, (३) बह्वार्द्रेऽल्पार्द्रस्य, (४) बह्वार्द्रे बह्वार्द्रस्य संहरणम् ।

आसु पूर्वोक्तभङ्गीषु प्रत्येकचतुर्भङ्ग्याः 'अल्पशुष्केऽल्पशुष्कस्य' 'बहुशुष्केऽल्पशुष्कस्ये—त्यादिरूपौ प्रथम-तृतीयभङ्गौ कल्प्यौ शेषावकल्प्यौ, तथाग्रहणे पात्रोत्थापनादिना दातुः कष्ट-पात्रस्फुटन-तद्गतवस्तुविकरणाऽप्रीत्यादिसम्भवात् ।

---

(३) बहुत गीलेमें थोड़े सूखेका, (४) बहुत गीलेमें बहुत सूखेका ।

[४] 'गीलेमें गीलेका' इस चौथे भंगकी चौभंगी—

(१) थोड़े गीलेमें थोड़े गीलेका (२) थोड़े गीलेमें बहुत गीलेका । (३) बहुत गीलेमें थोड़े गीलेका, (४) बहुत गीलेमें बहुत गीलेका ।

इन चारों चौभंगियोंमेंसे 'थोड़े सूखेमें थोड़ा सूखा मिलाना' और 'बहुत सूखेमें थोड़ा सूखा मिलाना' ये पहले और तीसरे भंग ग्राह्य हैं। दूसरे और चौथे भंग ग्राह्य नहीं हैं । इस प्रकारके ग्रहण करनेसे वर्त्तन उठानेके कारण दाताको कष्ट, वर्त्तनका फूटजाना, और वस्तुका बिखर-जाना, और अप्रीति होना आदि दूषण होते हैं। जैसे किसी दाताने बहुत गीलेका या बहुत सूखेका संहरण करनेके लिए बड़ा भारी वर्त्तन उठाया तो उसे कष्ट होगा।

---

(૩) બહુ લીલામાં થોડા સૂકાનું, (૪) બહુ લીલામાં બહુ સૂકાનું

[૪] લીલામા લીલાનુ ' એ ચોથા ભાંગાની ચૌભંગી—

(૧) થોડા લીલામા થોડા લીલાનું, (૨) થોડા લીલામાં બહુ લીલાનુ, (૩) બહુ લીલામા થોડા લીલાનું, (૪) બહુ લીલામાં બહુ લીલાનું.

આ ચાર ચૌભંગીઓમાથી 'થોડા સૂકામા થોડું સૂકુ મેળવવુ' અને 'બહુ સૂકામા થોડું સૂકુ મેળવવું' એ પહેલા અને ત્રીજા ભાગા ગ્રાહ્ય છે. બીજા અને ચોથા ભાગા ગ્રાહ્ય નથી એ પ્રમાણે ગ્રહણ કરવાથી વાસણ ઉપાડવાને કારણે દાતાને કષ્ટ, વાસણ ફૂટી જવું અને વસ્તુ વેરાઇ–ઢાળાઇ જવી, અને અપ્રીતિ થવી આદિ દૂષણ થાય છે, જેમકે કોઇ દાતાએ બહુ લીલાનુ યા બહુ સૂકાનું સંહરણ કરવાને માટે બહુ ભારે વાસણ ઉપાડયુ હોય તેને કષ્ટ થાય.

निक्षिप्य=एकस्योपर्यन्यस्य निक्षेपणं कृत्वा। निक्षेपणं च त्रिधा-सचित्तमचित्तं मिश्रं चेति, एतानाश्रित्य तिस्रश्चतुर्भङ्ग्यो भवन्ति। तत्र-

[१] सचित्ता-ऽचित्तयोश्चतुर्भङ्गी यथा-

(१) सचित्ते सचित्तस्य, (२) सचित्तेऽचित्तस्य, (३) अचित्ते सचित्तस्य, (४) अचित्तेऽचित्तस्य निक्षेपणम्। १।

[२] सचित्तमिश्रयोश्चतुर्भङ्गी यथा-

(१) सचित्त सचित्तस्य, (२) सचित्ते मिश्रस्य, (३) मिश्रे सचित्तस्य, (४) मिश्रे मिश्रस्य निक्षेपणम्। २।

[३] अचित्त-मिश्रयोश्चतुर्भङ्गी यथा-

(१) अचित्तेऽचित्तस्य, (२) अचित्ते मिश्रस्य, (३) मिश्रेऽचित्तस्य, (४) मिश्रे

निक्षेपण दोष तीन प्रकारका है-(१) सचित्त, (२) अचित्त, और (३) मिश्र। इन तीनोंको आश्रित करके तीन चौभंगियाँ होती हैं।

[१] सचित्त-अचित्तकी चौभंगी-

(१) सचित्तपर सचित्तका, (२) सचित्तपर अचित्तका, (३) अचित्त पर सचित्तका, (४) अचित्तपर अचित्तका। १।

[२] सचित्त-मिश्रकी चौभंगी—

(१) सचित्त पर सचित्तका, (२) सचित्त पर मिश्रका, (३) मिश्रपर सचित्तका, (४ मिश्रपर मिश्रका निक्षेप करना। २।

[३] अचित्त-मिश्रकी चौभंगी—

(१) अचित्त पर अचित्तका, (२) अचित्त पर मिश्रका। (३) मिश्रपर

નિક્ષેપણ દોષ ત્રણ પ્રકારનો છે (૧) સચિત્ત, (૨) અચિત્ત, (૩) મિશ્ર. એ ત્રણને આશ્રિત કરવાથી ત્રણ ચૌભંગીઓ થાય છે.

[૧] સચિત્ત-અચિત્તની ચૌભંગી

(૧) સચિત્ત પર સચિત્તનું, (૨) સચિત્તપર અચિત્તનું, (૩) અચિત્ત પર સચિત્તનું (૪) અચિત્તપર અચિત્તનું ।૧।

[૨] સચિત્ત-મિશ્રની ચૌભંગી—

(૧) સચિત્ત પર સચિત્તનુ, (૨) સચિત્ત પર મિશ્રનુ, (૩) મિશ્ર પર સચિત્તનું, (૪) મિશ્ર પર મિશ્રનું, નિક્ષેપણ કરવું ।૨।

[૩] અચિત્ત-મિશ્રની ચૌભંગી—

(૧) અચિત્ત પર અચિત્તનું, (૨) અચિત્ત પર મિશ્રનું, (૩) મિશ્ર પર

मिश्रस्य निक्षेपणमिति । ३ ।

पुनरपि पृथिव्यादिकायषट्कोपरि पृथिव्यादीनां निक्षेपणेन प्रथमचतुर्भङ्गीस्थितप्रथमभङ्गस्य 'सचित्ते सचित्तस्ये'-त्येवंरूपस्य षट्त्रिंशद्भेदा भवन्ति, तद्यथा-

(१) पृथिव्यां पृथिव्याः, (२) अपाम्, (३) तेजसः, (४) वायोः, (५) वनस्पतेः, (६) त्रसस्य निक्षेपणमिति षट् (६) ।

एवमप्कायादावपि प्रत्येककायस्य निक्षेपणेन षट्त्रिंशद् भेदा जायन्ते। एवं शेषभङ्गत्रयस्यापि प्रत्येकं षट्त्रिंशद् भेदा भवन्ति । संकलनया प्रथमचतुर्भङ्ग्या-

---

अचित्तका, (४) मिश्रपर मिश्रका निक्षेप करना । ३ ।

फिर भी पृथिवी आदि षट्काय पर पृथिवीकायका निक्षेपण करनेसे प्रथम चतुर्भंगीके 'सचित्त पर सचित्तका' इस प्रथम भंगके छत्तीस भंग होते हैं । वे इस प्रकार हैं—

(१) पृथिवी पर पृथिवीका, (२) अप्का, (३) तेजका, (४) वायुका, (५) वनस्पतिका और (६) त्रसका निक्षेपण करना ।

इसी प्रकार अप्काय आदि पर पृथिवीकाय आदि छह कायोंका निक्षेपण करनेसे छत्तीस भंग होते हैं, अर्थात् छह काय पर छह कायका निक्षेपण होता है अतः छहसे छहका गुणन करनेसे प्रथम भंगके छत्तीस भेदोंकी संख्या निकलती है । ऐसे 'सचित्त पर सचित्तका' 'सचित्त पर मिश्रका' मिश्र पर सचित्तका, और 'मिश्र पर मिश्रका' इन सब (४) भंगोंकी छत्तीस छत्तीस संख्या जोड़ देनेसे(३६+३६+३६+३६)-

---

અચિત્તનું, (૪) મિશ્ર પર મિશ્રનું નિક્ષેપણુ કરવું ।૩।

વળી પણ પૃથિવી આદિ ષટ્કાય પર પૃથિવીકાયનું નિક્ષેપણુ કરવાથી પ્રથમ ચઉભંગીના 'સચિત્ત પર સચિત્તનું' એ પ્રથમ ભાંગાના છત્રીસ ભાંગા થાય છે. તે આ પ્રમાણે છે—

(૧) પૃથિવી પર પૃથિવીનું, (૨) અપ્ (જળ)નું (૩) તેજનું (૪) વાયુનું, (૫) વનસ્પતિનું, (૬) ત્રસનું નિક્ષેપણુ કરવુ

એ રીતે અપ્કાય આદિ પર પૃથિવીકાય આદિ છ કાયોનું નિક્ષેપણુ કરવાથી છત્રીસ ભાંગા થાય છે, અર્થાત્ છ કાય પર છકાયનું નિક્ષેપણુ થાય છે એટલે છને છએ ગુણવાથી પ્રથમ ભગના છત્રીસ ભેદોની સંખ્યા નીકળે છે. એમ 'સચિત્ત પર સચિત્તનુ' 'સચિત્ત પર મિશ્રનુ' 'મિશ્ર પર સચિત્તનું' અને 'મિશ્ર પર મિશ્રનું' એ બધા (૪) ભાંગાની છત્રીસ-છત્રીસ સખ્યા જોડી દેવાથી

श्चतुश्चत्वारिंशदुत्तरमेकशतं भङ्गा भवन्ति। उक्तप्रकारेण शेषचतुर्भङ्गीद्विकस्यापि भङ्गसम्पादने संकलनया सर्वे भेदा द्वात्रिंशदधिकानि चतुःशतानि (४३२) सम्पद्यन्ते।

इमे एककायस्योपर्येकस्यैव कायस्य निक्षेपणभेदाः प्रदर्शिताः, किन्तु 'एक-काये कायद्वयस्य, कायद्वये चैकस्ये'-त्यादिनिक्षेपणेन चाऽन्येषामपि संभवः, यथा-

'पृथिव्यां पृथिव्यप्काययो'-रित्यादि, पृथिव्यप्काययोर्वनस्पते'-रित्यादि च स्वयमवसेयमिति विस्तरभयाद्विरम्यते।

पूर्वोक्तेषु भङ्गसमुदयेषु 'अचित्तेऽचित्तनिक्षेपण'-लक्षणभङ्गस्य कल्प्यत्वम्, शेषा

एकसौ चँवालीस (१४४) भंग हो जाते हैं। दूसरी दो चौभंगियोंके भी इतने ही भंग होते हैं, उनको जोड़नेसे चारसौ बत्तीस (४३२) भंग होते हैं।

ये चारसौ बत्तीस (४३२) भंग एक काय पर एक कायका निक्षेपण करनेसे होते हैं, किन्तु एक काय पर दो कायका, जैसे—

पृथिवीकाय पर पृथिवीकायका और अप्कायका निक्षेपण करनेसे, तथा दो कायों पर एक कायका, जैसे पूर्वोक्त दो कायों पर वनस्पति आदि किसी एक कायका निक्षेपण करनेसे और भी बहुतेरे भंग होते हैं। संयोगसे बननेवाले इन उत्तर भंगोंको स्वयं समझ लेना चाहिए, विस्तार भयसे यहाँ नहीं बताते।

पूर्वोक्त भंगोंमेंसे अचित्त पर अचित्तका निक्षेपण करनेरूप एक भंग कल्पनीय है, अवशेष साक्षात् या पारम्परिक निक्षेपणरूप सब

(३६+३६+३६+३६) એકસો ચુવાળીસ (૧૪૪) ભાંગા થાય છે. બીજી બે ચોભંગી-ઓના પણ એટલાજ ભેદ થાય છે, એને જોડવાથી ચારસોને બત્રીસ (૪૩૨) ભાગા થાય છે

એ ૪૩૨ ભાંગા એક કાય પર એક કાયનું નિક્ષેપણ કરવાથી થાય છે, પરન્તુ એક કાય પર બે કાયનું, જેમકે—

પૃથિવી કાય પર પૃથિવી કાયનું અને અપ્કાયનું નિક્ષેપણ કરવાથી, તથા બે કાયો પર એક કાયનું જેમ પૂર્વોક્ત બે કાયો પર વનસ્પતિ આદિ કોઈ એક કાયનું નિક્ષેપણ કરવાથી બીજા પણ ઘણા ભાગા થાય છે. એ સયોગથી થતા ઉત્તર ભાગા પોતાની મેળે સમજી લેવા, બહુ વિસ્તાર થવાને કારણે અહીં આપ્યા નથી

પૂર્વોક્ત ભાંગામાંથી અચિત્ત પર અચિત્તનું નિક્ષેપણ કરવારૂપ એક ભાંગો

आनन्तर्यस्वरूपाः पारम्पर्यस्वरूपा वा निखिला अकल्प्या एवेति बोद्धव्यम् ।

सचित्तं=सचित्तपृथिव्यादिकं घट्टयित्वा=संस्पृश्य संचाल्य वा, संस्पर्शनं सचित्ताऽचित्त-मिश्रभेदात्त्रिविधं, तदपि पृथिव्यादिकायषट्केन भिद्यमानमष्टादशविधं, पुनर्दातृ-देय-भेदाभ्यां द्विविधतया संकलनया षट्त्रिंशद् भेदा जायन्ते, एतेषामपि पुनः-आनन्तर्य-पारम्पर्यभेदाद् द्वासप्ततिर्भेदा भवन्ति । एवं कायद्वयकायत्रिकादिसंस्पर्शनेनोत्तरोत्तरभूरिभेदाः स्वयमूहनीयाः प्रेक्षावद्भिरिति ।

ननु पारम्परिकसंघट्टनेन दीयमानाऽऽहारादिवर्जने पृथ्वीसंघट्टनमनिवार्यमिति-

---

भंग अकल्प्य हैं ।

संस्पर्शन तीन प्रकारका है-(१) सचित्त संस्पर्शन, (२) अचित्त संस्पर्शन, और (३) मिश्र संस्पर्शन । इन तीनोंके पृथिवी आदि षट्कायके भेदसे अठारह भेद होते हैं । दाता और देय (वस्तु) के भेदसे छत्तीस भेद होते हैं । और अनन्तर तथा परम्पराके भेदसे बहत्तर (७२) भेद होजाते हैं । इनके सिवाय दो कायका या तीन कायका स्पर्श करनेसे और भी भेद होजाते हैं, वे भेद बुद्धिमानोंको स्वयं विचार लेने चाहिए।

प्रश्न-हे गुरुमहाराज ! यदि पारम्परिक संघट्टनसे दिये हुए आहार आदिका भी त्याग किया जायगा तो साधु कभी आहार नहीं ले सकेंगे क्योंकि पृथ्वीका संघट्टन अनिवार्य है-आहार आदि पृथिवीपर रहते हैं और सचित्त जल भी पृथ्वी पर रहता है, अतः सचित्त जलका पृथिवीका

કલ્પનીય છે, બાકીના સાક્ષાત્ યા પારંપરિક નિક્ષેપણરૂપ બધા ભાગા અકલ્પનીય છે

સસ્પર્શન ત્રણ પ્રકારનાં છેઃ-(૧) સચિત્ત સંસ્પર્શન, (૨) અચિત્ત સસ્પર્શન, અને (૩) મિશ્ર સંસ્પર્શન એ ત્રણેના પૃથિવી આદિ ષટ્કાયના ભેદે, કરીને અઢાર ભેદ થાય છે દાતા અને દેય (વસ્તુ)ના ભેદે કરીને છત્રીસ ભેદ થાય છે અને પછી તેવી જ પરપરાના ભેદે કરીને બોતેર (૭૨) ભેદ થાય છે તે ઉપરાંત બે કાયને યા ત્રણ કાયને સ્પર્શ કરવાથી બીજા પણ ભેદ થાય છે. તે ભેદો બુદ્ધિમાનોએ સ્વયં વિચારી લેવા

પ્રશ્ન—હે ગુરૂ મહારાજ! જો પારસ્પરિક સંઘટનથી આપેલા આહારાદિનો પણ ત્યાગ કરવામાં આવશે તો સાધુ કદાપિ આહાર લઇ શકશે નહિ, કારણ કે પૃથિવીનું સઘટન અનિવાર્ય છે-આહારાદિ પૃથિવી પર રહે છે અને સચિત્ત જળ પણ પૃથિવી પર જ રહે છે. એટલે સચિત્ત જળનું પૃથિવી સાથે સઘટન છે

तत्संघट्टनेऽपि वर्जनप्रसक्तौ भिक्षूणां सर्वदाऽऽहारप्रतिषेधप्रसङ्ग इति चेन्न, पृथिव्या अचलतया तत्सञ्चलनाद्यभावेन तत्संघट्टने जीवबाधाया असम्भवात्, तत्संघट्टिताऽऽहाराऽऽदानं भिक्षूणामप्रतिषेध्यमिति भावः। उक्तपारम्परिकसंघट्टिताऽऽहाराऽऽदानविषये प्रतिषेधश्चलाऽऽधारविषयः, तत्र प्राणिपीडासंभवात् व्यवहारदोषाच्चेति भावः।

एतेषु मध्ये गाथोक्तं सचित्तम्, अन्तर्गर्भितत्वान्मिश्रं च संस्पृश्य सञ्चाल्य वा तथैव=पुनरपि उदकम्=अप्कायं 'सचित्त'-मित्यनुवर्त्तते सम्प्रणुद्य=संप्रेर्य इतस्ततः कृत्वेत्यर्थः ॥३०॥ तथा—

अवगाह्य=वर्षाकाले [1]गृहाङ्गणप्रतिरुद्धजलान्तः प्रविश्य, चालयित्वा=प्रणालिकादिना निस्सार्य च पानभोजनमाहरेत् तदा ददतीमित्यादि पूर्ववत् ॥३१॥

पुरःकर्मदोषमाह—'पुरेकम्मेण' इत्यादि ।

१ 'गृहाङ्गने'ति तु सम्यक्, तवर्गपञ्चमान्तस्याङ्गनशब्दस्यैवाकरग्रन्थेषु निर्णीतत्वादिति श्रीरुचिपत्युपाध्यायाः ।

संघटा है और पृथिवीका आहारादिके साथ संघटा है, इसलिए आहारादिका तथा सचित्त जलका पारम्परिक संघटा होता ही है।

उत्तर-हे शिष्य! पृथिवी अचल है, उसका संचलन नहीं होता, अत एव ऐसे संघटेसे जीवोंको बाधा नहीं होती, इसलिए पृथिवीसे संघट्टित आहारका ग्रहण करना साधुओंके लिए निषिद्ध नहीं है। पहले पारम्परिक सघट्टित आहारका जो त्याग बताया गया है उसे चल-आधार विषयक ही समझना चाहिये, क्योंकि उस संघट्टनसे प्राणियोंको पीडा होती है तथा व्यवहारदोष भी लगता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अब पुरःकर्म्मदोष कहते हैं-'पुरेकम्मेण०' इत्यादि

અને પૃથિવીનુ આહારાદિ સાથે સઘટ્ટન છે, તેથી કરીને આહારાદિનું તથા સચિત્ત જળનું પારમ્પરિક સઘટન થતુ જ હોય છે

ઉત્તર—હે શિષ્ય! પૃથિવી અચલ છે, તેનું સચલન થતુ નથી, તેથી એવા સઘટનથી જીવોને બાધા થતી નથી એથી કરીને પૃથિવીથી સઘટિત આહારનું ગ્રહણ કરવું એ સાધુઓને માટે નિષિદ્ધ નથી પૂર્વે પારમ્પરિક સઘટિત આહારનો જે ત્યાગ બતાવવામાં આવ્યો છે, તેને ચલ—આધાર વિષયક જ સમજવો જોઇએ, કારણ કે એ સઘટનથી પ્રાણીઓને પીડા થાય છે તથા વ્યવહારદોષ પણ લાગે છે (૩૦-૩૧)

હવે પુર.કર્મદોષ કહે છે—પુરેકમ્મેણ૦ ઇત્યાદિ

मूलम्-पुरेकम्मेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
दिंतियं पडिआइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥३२॥

छाया—पुरःकर्मणा हस्तेन, दर्व्या भाजनेन वा ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, तादृशं मे न कल्पते ॥३२॥

पुरःकर्म दोष कहते हैं—

सान्वयार्थः-पुरेकम्मेण=साधुके आनेके पहले या सामने साधुके लिए सचित्त जलसे किया हुआ हस्तादिधावन पुरःकर्म कहलाता है, उस पुरःकर्म-वाले हत्थेण=हाथसे दव्वीए=उस प्रकारकी कडछी अथवा चमचासे वा=अथवा भायणेण=दूसरे वरतनसे (आहारादि) दिंतियं=देती हुईको पडियाइक्खे=कहेकि तारिसं=इस प्रकारका आहार मे=मुझे न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥३२॥

टीका—पुरःकर्मणा=पुरः=पूर्वम् अग्रतो वा कर्म=क्रिया पुरःकर्म, तेन पुरः-कर्मणा, लक्षणया पुरःकर्मयुक्तेनेत्यर्थः, अस्य च हस्तादिभिस्त्रिभिः सम्बन्धः, हस्तेन=करेण, दर्व्या=खजाकया, भाजनेन=अमत्रेण वा ददतीं प्रत्याचक्षीतेत्यादि पूर्ववत्।

नन्वेवं गृहस्थानां पचन-पाचनादिक्रियामन्तरेणाऽऽहाराद्यसंभव इति साध्वा-गमनात्प्राक् पचनादिक्रियाऽवश्यं कर्त्तव्या, तथा सति पुरःकर्मदोषदूषितत्वेन

साधूके आनेसे पहले या सामने की जानेवाली क्रिया को पुरःकर्म कहते हैं। पुरःकर्मयुक्त हाथसे, कुडछी (चमचा) से, अथवा वर्तनसे देनेवालीके प्रति साधु कहे कि ऐसा आहार मुझे नहीं कल्पता है।

प्रश्न-हे गुरुमहाराज ! गृहस्थ जवतक पचन-पाचन आदि क्रिया न करे तव तक आहार वन नहीं सकता है, अत एव मुनिके आगमनके पहले पचन-पाचन आदि क्रिया अवश्य करनी पडती है। ऐसा करनेसे वह आहार पुरःकर्मसे दूषित होगा तो भिक्षु कभी भिक्षा ग्रहण नहीं

સાધુ આવતાની પહેલા યા સાધુની સામે કરવામા આવતી ક્રિયાને પુરઃકર્મ કહે છે, પુરઃકર્મયુક્ત કડછીથી કે વાસણથી દેનારીની પ્રત્યે સાધુ કહે કે એવો આહાર મને કલ્પતો નથી

પ્રશ્ન-હે ગુરૂ મહારાજ ! ગૃહસ્થ જ્યાંસુધી પચન-પાચન આદિ ક્રિયા કરતો નથી, ત્યાંસુધી આહાર બની શકતો નથી, એટલે મુનિના આગમન પહેલાં પચન-પાચનાદિ ક્રિયા જરૂર કરવી પડે છે એમ કરવાથી એ આહાર પુરઃકર્મથી દૂષિત થાય તો ભિક્ષુ કદાપિ ભિક્ષા ગ્રહણ કરી શકે નહિ. સાધુની સામે કરવામાં

साधूनामाहारग्रहणाप्रसक्तिः, साधुसमक्षं क्रियमाणानां क्रियाणां पुरःकर्मत्वे गृहस्थ-कृताऽभ्युत्थानादिक्रियाणामपि पुरःकर्मत्वापत्तौ तद्गृहस्थप्रदत्तभिक्षाया अपि पुरः-कर्मदोषयुक्तत्वेन ग्रहणाभावप्रसङ्गः ? इति चेत्, अत्रोच्यते—

व्युत्पत्त्याऽभ्युत्थानगमनपचनपाचनादीनामपि पुरःकर्मत्वसंभवेऽपि समय-परिभाषावलात् केवलं भिक्षादानतः प्राक् साधुमुद्दिश्य सचित्तोदकेन हस्तभाजना-दिप्रक्षालनस्यैव पुरःकर्मत्वेन सिद्धान्तितत्वम्, न तु पचन-पाचनाभ्युत्थानादेरपीति।

अत्र दातृ-द्रव्य-गृहाण्याश्रित्याष्टौ भङ्गा भवन्ति यथा—

कर सकते, साधुके सामने की जानेवाली क्रियाको भी पुरःकर्म माना जाय तो गृहस्थकी अभ्युत्थान-वन्दन-आदि क्रियाएँ भी पुरःकर्म कहलायेंगी, इसलिए उसके द्वारा दिया हुआ पुरःकर्मसे दूषित आहार साधु कैसे ग्रहण करेंगे ?

उत्तर–हे शिष्य ! व्युत्पत्तिसे पचन-पाचन आदि क्रियाएँ भले ही पुरःकर्म कहलावें; किन्तु समय-(शास्त्र)-की परिभाषासे भिक्षादानसे पहले साधुको उद्देश्य करके सचित्त जलसे हाथ या वर्त्तन आदिका प्रक्षालन करना ही पुरःकर्म कहलाता है, पचन-पाचन आदि क्रियाओंको अथवा खड़े होने आदिको पुरःकर्म नहीं कहते ।

इस पुरःकर्मके, दाता, द्रव्य और गृहकी विवक्षासे आठ भंग होते हैं, वे यहाँ बताते हैं—

આવનારી ક્રિયાને પણ જો પુર.કર્મ માનવામા આવે તો ગૃહસ્થની અભ્યુત્થાન-વંદન-આદિ ક્રિયાઓ પણ પુર.કર્મ કહેવાશે, તો પછી તેને હાથે આપવામાં આવેલો પુર.કર્મથી દૂષિત આહાર સાધુ કેવી રીતે ગ્રહણ કરશે ?

ઉત્તર–હે શિષ્ય ! વ્યુત્પત્તિથી પચન-પાચન-આદિ ક્રિયાઓ ભલે પુર:કર્મ કહેવાય, પરન્તુ સમય-(શાસ્ર)-ની પરિભાષા પ્રમાણે ભિક્ષાદાનની પહેલાં સાધુને ઉદ્દેશ્ય કરીને સચિત્ત જલથી હાથ યા વાસણ આદિ ધોવા એ જ પુર.કર્મ કહેવાય છે પચન-પાચન-આદિ ક્રિયાઓ અથવા ઊભા થવા આદિની ક્રિયા એ પુર.કર્મ કહેવાતા નથી

આ પુર.કર્મના, દાતા, દ્રવ્ય અને ગૃહની વિવક્ષાએ કરીને આઠ ભાગા થાય છે, તે અહીં બતાવે છે–

(१) स दाता (पुरःकर्मकर्त्ता), अन्यद् द्रव्यम्, अन्यद्गृहम् ।
(२) स दाता, अन्यद्द्रव्यम् तद्गृहम् (यत्र पुरःकर्म कृतम्) ।
(३) स दाता, तद्द्रव्यम् (यद्द्रव्यमुद्दिश्य पुरःकर्म कृतम्), अन्यद्गृहम् ।
(४) स दाता, तद्द्रव्यं, तद्गृहम् ।
(५) अन्यो दाता, तद्द्रव्यं, तद्गृहम् ।
(६) अन्यो दाता, तद्द्रव्यम्, अन्यद्गृहम् ।
(७) अन्यो दाता, अन्यद्द्रव्यं, तद्गृहम् ।
(८) अन्यो दाता, अन्यद्द्रव्यम्, अन्यद्गृहम् ।

एष्वष्टसु भङ्गेषु प्रथमाऽष्टमौ भङ्गौ साधूनां कल्प्यौ, तदितरे भङ्गा अकल्प्याः ।

१—	वही (पुरःकर्म करनेवाला) दाता,	अन्य द्रव्य,	अन्य गृह ।
२—	वही दाता,	अन्य द्रव्य,	वही गृह ।
३—	वही दाता,	वही द्रव्य,	अन्य गृह ।
४—	वही दाता,	वही द्रव्य,	वही गृह ।
५—	अन्य दाता,	वही द्रव्य,	वही गृह ।
६—	अन्य दाता,	वही द्रव्य,	अन्य गृह ।
७—	अन्य दाता,	अन्य द्रव्य,	वही गृह ।
८—	अन्य दाता,	अन्य द्रव्य,	अन्य गृह ।

इन आठ भंगोमेंसे पहला भंग और आठवाँ भंग साधुके लिये कल्प्य हैं और अन्य सब अकल्प्य हैं ।

१	એજ (પુરઃકર્મ કરનાર) દાતા,	અન્ય દ્રવ્ય,	અન્ય ગૃહ
૨	એજ દાતા,	અન્ય દ્રવ્ય,	એજ ગૃહ
૩	એજ દાતા,	એજ દ્રવ્ય,	અન્ય ગૃહ
૪	એજ દાતા,	એજ દ્રવ્ય,	એજ ગૃહ
૫	અન્ય દાતા,	એજ દ્રવ્ય,	એજ ગૃહ
૬	અન્ય દાતા,	એજ દ્રવ્ય,	અન્ય ગૃહ
૭	અન્ય દાતા,	અન્ય દ્રવ્ય,	એજ ગૃહ
૮	અન્ય દાતા,	અન્ય દ્રવ્ય,	અન્ય ગૃહ

આ આઠ ભાંગામાંથી પહેલો ભાગો અને આઠમો ભાગો સાધુને માટે કલ્પનીય છે અને બીજા બધા અકલ્પનીય છે.

साधूनुद्दिश्य करदर्व्यादिप्रक्षालने पुरःकर्मनिमित्तको दोषो भवत्येवेति न तद्दिने तत्राशनादिकं ग्राह्यम् ।

ननु कस्मिंश्चिद्भवने येन पुरःकर्म्माचरितं तदितरस्य करतो भिक्षोपादाने कथं दोषः ? इति चेदुच्यते—

यथा येन विषाक्तमन्नं सम्पाद्यते तदितरस्य हस्तादप्युपादीयमानं तदेवान्नं महतेऽनर्थाय कल्पते, तथा पुरःकर्मदूषितमपि। अत्रायं विशेषः—यत्र गृहे पुरःकर्म समाचरितं तत्र तस्मिन् दिवसे सर्वं द्रव्यमकल्प्यमेव ॥३२॥

यह सदा स्मरण रखना चाहिये कि यदि साधुके निमित्त हाथ या कुड़छी आदिको धोया हो तो पुरःकर्म दोष लगता ही है, इसलिये उस घरमें साधु, भिक्षा नहीं लेवे ।

प्रश्न–हे गुरुमहाराज ! किसी मकानमें एकने पुरःकर्म किया तो उससे आहार आदि न लेकर, दूसरे वर्त्तन या दूसरे व्यक्तिके हाथसे लिया जाय तो क्यों दोष लगता है ?

उत्तर–हे शिष्य ! जैसे–किसीने विष-मिश्रित आहार बनाया हो तो बनाने वालेसे न लेकर दूसरेके हाथसे लिया जाय तो भी वह आहार महान् अनर्थकारी होता है, उसी प्रकार, पुरःकर्म-दूषित आहार आदि भी अनर्थकारक होता है ।

इतनी फिर विशेषता समझनी चाहिये कि, जिस घरमें पुरःकर्म किया गया हो उस घरमें उस दिन सब द्रव्य अकल्प्य होते हैं ॥ ३२ ॥

એ વાત સદા યાદ રાખવી કે જો સાધુને નિમિત્તે હાથ યા કડછી આદિને ધોવા હોય તો પુરઃકર્મ દોષ લાગે છે જ, તેથી એ દિવસે એ ઘરમાં સાધુ ભિક્ષા લે નહિ

પ્રશ્ન–હે ગુરૂ મહારાજ ! કોઈ મકાનમા એકે પુરઃકર્મ કર્યું હોય તો ત્યા તેનાથી આહારાદિ ન લેતા, બીજા વાસણથી યા બીજી વ્યક્તિના હાથથી લેવામાં આવે તો કેમ દોષ લાગે ?

ઉત્તર–હે શિષ્ય ! જેવી રીતે કોઈએ વિષમિશ્રિત આહાર બનાવ્યો હોય તો બનાવનારના હાથથી ન લેતા બીજાના હાથથી લેવામા આવે તોપણ એ આહાર મહાન્ અનર્થકારી થાય છે, તેમ પુર.કર્મદૂષિત આહારાદિ પણ અનર્થકારક થાય છે

એટલી વિશેષતા સમજવી જોઈએ કે, જે ઘરમા પુર.કર્મ કરવામાં આવ્યુ હોય તે ઘરમાં એ દિવસે બધાં દ્રવ્યો અકલ્પનીય બને છે (૩૨)

मूलम्-एवं उदउल्ले ससिणिद्धे ससरक्खे मट्टिया ऊसे।
हरियाले हिंगुलए, मणोसिला अंजणे लोणे ॥३३॥
गेरुय-वन्निय-सेडिय,-सोरट्ठिय-पिट्ठ-कुक्कुस कए य।
उक्किट्ठ-मसंसट्ठे, संसट्ठे चेव बोद्धव्वे ॥ ३४ ॥

छाया—एवम् उदकार्द्रः सस्निग्धः, सरजस्को मृत्तिका ऊषः।
हरितालं हिङ्गुलकं, मनःशिलाऽञ्जनं लवणम् ॥३३॥
गैरिक-वर्णिक -सेटिका,-सौराष्ट्रिका-पिष्ट-कुक्कुसाः कृतश्च।
उत्कृष्टमसंसृष्टः, संसृष्ट एव बोद्धव्यः ॥३४॥

सान्वयार्थः-एवं=इसी प्रकार उदउल्ले=टपकते हुए जलसहित ससणिद्धे=गीली रेखाओंसे सहित या ससरक्खे=सचित्त रजसे गुण्ठित-सहित हाथ आदि हो, (तथा) मट्टिया=सचित्त मिट्टी ऊसे=साजीखार हरियाले=हरताल हिंगुलए=हिंगलू मणोसिला=मैनसिल अंजणे=सौवीराञ्जन लोणे=सचित्त नमक ॥ गेरुय=गेरु वन्निय=पीली मिट्टी सेडिय=श्वेत मिट्टी-खड़ी सोरट्ठिय=सोरठी मिट्टी-गोपीचन्दन पिट्ठ=तत्कालका पीसा हुआ आटा (तथा) कुकुस=तत्कालके खांडे-हुए धान्यके तुष-भूसे-से भरे हुए य=और उक्किट्ठं=चाकूसे बनाये हुए कोले, तूंबे, ककड़ी आदिके कोमल कोमल टुकड़े, इन पूर्वोक्त किसी वस्तुसे भी असंसट्ठे=खरडे-लिपे-हुए हाथ आदिको साधुके लिए किसी प्रकारसे अलिप्त बनाया हो, धोकर या पूंछकर साफ किया हो, ऐसे हाथको संसट्ठे=चेव कए लिप्तही बोद्धव्वे=जान लेवे, अर्थात् इस प्रकारके असंसृष्ट हाथ आदिसे अथवा इनसे संसृष्ट हाथ आदि से साधु आहार-पानी नहीं लेवे, यह प्रकरणगत सम्बन्ध है ॥३३-३४॥

टीका—'एवम् उदउल्ले०' इत्यादि। एवम्=इत्थमेव पुरःकर्मवदित्यर्थः। उदकार्द्रः=गलत्सचित्तजलबिन्दुकः, सस्निग्धः=ईषदार्द्रः=आर्द्रीभूतहस्तरेखादिकः-

---

'एवं उदउल्ले' इत्यादि, 'गेरुय' इत्यादि च।
इसी प्रकार, गिरते हुए सचित्त जलकी बूंदोंसे युक्त, थोडा, गीला

એવં ઉદઉલ્લે ઇત્યાદિ ગેરુય ઇત્યાદિ
એ પ્રમાણે, પડતા સચિત્ત જળનાં બિંદુઓથી યુક્ત, થોડા લીલા (હાથની

त्रिन्दुनिपातरहित इति यावत्, सरजस्कः=सचित्तरजोऽवगुण्ठितः, हस्तादिर्वोद्धव्यः, तथा मृत्तिका=साधारणसचित्तमृत्तिका, ऊपः=क्षारमृत्तिका, हरितालं=स्वनामप्रसिद्धपीतवर्णधातुविशेषः, हिङ्गुलकं=स्वनामख्यातपार्थिवरागद्रव्यविशेषः, मनःशिला=स्वनामख्यातरक्तवर्णधातुविशेषः 'मेनसील' इतिप्रसिद्धः अञ्जनं=सौवीराञ्जनम्, लवणं=सचित्तसामुद्रिकलवणम्, गैरिक-वर्णिक-सेटिका-सौराष्ट्रिका-पिष्ट-कुक्कुसा इति, मूले आर्षत्वाल्लुप्तविभक्तिकं पदम्, तत्र गैरिकः=स्वनामप्रसिद्धो धातुः, वर्णिका=पीतवर्णमृत्तिका, सेटिका=श्वेतमृत्तिका 'खडी' इतिभाषाप्रसिद्धा, सौराष्ट्रिका=गोपीचन्दनं पिष्टं=गोधूमादिचूर्णम्, कुकुसः=तत्कालकण्डितधान्यतुषः, च=पुनः उत्कृष्ट=कूष्माण्डा-लावू-त्रपुप-तरम्बुजादीनां शस्त्रकृतं श्लक्ष्णखण्डम्, एतैर्मृत्तिकादिभिरसंसृष्टः=साधवे भिक्षां ददामीतिकृत्वा संसर्गसम्मार्जनेन तदलिप्तः, संसृष्टः=तत्संसर्गसम्मार्जनेनापि तल्लिप्त एव कृतः=विहितो हस्तादिर्बोध्यः। पुरःकर्मयुक्तेन हस्तादिनेव उदकार्द्रादिहस्तादिना, तथा मृत्तिकादिसंसृष्टहस्तादिकं केनापि विधिना साधुनिमित्तमसंसृष्टीकृत्य सम्मार्ज्य, एवं मृत्तिकादिसंसृष्टहस्तादिना च ददतीं प्रत्याचक्षीत—तादृशं मे न कल्पत इति ॥३३॥३४॥

(हाथकी रेखा गीली हो), सचित्त रजसे सहित तथा साधारण सचित्त मिट्टी, खारी मिट्टी, हरताल, हिंगुल, मैनसील, अंजन, सचित्त नमक, गेरू, पीली मिट्टी, खडिया मिट्टी, गोपीचन्दन, ताजा पीसा हुआ गेहूं आदिका आटा, तत्काल खांडा हुआ धान्यका तुष (बुस्सा), कुम्भड़ा (कद्दू), तुम्बा (ककड़ी), तथा तरबूजके छोटे२ खंड, इन सबसे हाथ लिप्त हो अथवा किसी प्रकारसे साधुके लिये उसे (सचित्तसे लिप्त हाथको) अलिप्त किया हो और उस हाथसे भिक्षा देवे तो साधु कहें कि 'ऐसा आहार हमें नहीं कल्पता है' ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

રેખાઓ લીલી હોય,) સચિત્ત રજથી સહિત, તથા સાધારણ સચિત્ત માટી, ખારી માટી, હરતાલ, હિંગળો, મણસીલ, સુરમો, સચિત્ત મીઠું, ગેરૂ, પીળી માટી, ખડીની માટી, ગોપીચંદન, તાજા દળેલા ઘઉં આદિનો આટો, તાજા ખાંડેલા ધાન્યના તુષ (થૂલુ), કોહલુ, દૂધી તથા તડબૂચના કકડા, એ બધાથી હાથ લિપ્ત હોય, અથવા કોઈ પ્રકારે સાધુને માટે તેને (સચિત્તથી ખરડાયલા હાથને) અલિપ્ત કર્યા હોય અને એ હાથથી ભિક્ષા આપે તો સાધુ કહે કે 'એવો આહાર મને કલ્પતો નથી.' (૩૩–૩૪)

४ ५ ६ ७ ८

मूलम्—असंसट्ठेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।

९ १० ११ २ १ ३

दिज्जमाणं न इच्छिज्जा, पच्छाकम्मं जहिं भवे ॥३५॥

छाया—असंसृष्टेन हस्तेन, दर्व्या भाजनेन वा ।

दीयमानं नेच्छेत्, पश्चात्कर्म यत्र भवेत् ॥३५॥

सान्वयार्थः—जहिं=जहां पच्छाकम्मं=पश्चात्कर्म-साधुको आहार आदि देनेके वाद सचित्त जलसे हाथ आदिका धोना भवे=होनेवाला हो उस प्रकारके **असंसट्ठेण**=व्यञ्जन शाक कढ़ी आदि-से अलिप्त याने साफ 'ऐसे' हत्थेण=हाथ दव्वीए=कुडछी वा=अथवा भायणेण=वरतनसे दिज्जमाणं=दिये जानेवाले आहार आदिकी साधु न इच्छिज्जा=इच्छा न करे, अर्थात् उस आहारादिको साधु न लेवे ॥३५॥

टीका—पश्चात्कर्म-दोषमाह—'असंसट्ठेण०' इत्यादि । यत्र=हस्तादौ पश्चात्=दानानन्तरं कर्म भवेत्=सम्भवेत् तादृशेन असंसृष्टेन=व्यञ्जनादिनाऽलिप्तेन हस्तेन दर्व्या भाजनेन वा 'असंसृष्टेने'-त्येतत्प्रत्येकं सम्बध्यते, दीयमानमाहारादिकं नेच्छेत्=नाभिलषेत् मनसाऽपीत्यर्थात् । यत्र स्वार्थं व्यञ्जनादिना हस्तादिकं नोपलिप्तं किन्तु भिक्षुमुद्दिश्य भक्तादिदानार्थं हस्ताद्युपलेपो जायते, तत्र दानानन्तरं

अब पश्चात्कर्मदोष बताते हैं—' असंसट्ठेण ' इत्यादि । भिक्षा देनेके अनन्तर गृहस्थको साधुके निमित्तसे सचित्त जल आदिके द्वारा हाथ आदि प्रक्षालन करनेकी संभावना हो तो साधु, ऐसे व्यञ्जन आदिसे अलिप्त हाथ, कुडछी अथवा वर्त्तनसे दिये जानेवाले आहारकी अभिलाषा न करे ।

गृहस्थके हाथ अपनेलिये व्यञ्जन आदिसे लिप्त न हों तो उन हाथोंसे साधुको भिक्षा देवे, तदनन्तर सचित्त जलसे हाथका धोना सम्भव है

હવે પશ્ચાત્કર્મદોષ બતાવે છે—અસંસટ્ઠેણ ઈત્યાદિ.

ભિક્ષા આપ્યા પછી સાધુને નિમિત્તે સચિત્ત જળ આદિ દ્વારા હાથ આદિ ધોઈ નાખવાની ગૃહસ્થને માટે સભાવના હોય, તો સાધુ એવા વ્યજન આદિથી અલિપ્ત હાથ, કડછી અથવા વાસણથી આપવામા આવનારા આહારની અભિલાષા ન કરે

ગૃહસ્થના હાથ પોતાને માટે વ્યંજનાદિથી લિપ્ત ન હોય તો એ હાથથી સાધુને ભિક્ષા આપે, પછી સચિત્ત જળથી હાથ ધોવાનો સંભવ છે અને એ

सचित्तजलेन तत्करादिक्षालनसम्भवः, तच्च प्रक्षालनादिकं भिक्षुनिमित्तकमिति पश्चात्कर्मदोषो विज्ञेयः, यद्येवंविधेनापि हस्तादिना स्वयं भुञ्जीतान्यस्मै वा परिवेषयेत्तदा न पश्चात्कर्मदोषः, तत्र पश्चाद्भाविनः प्रक्षालनादेर्भिक्षुनिमित्तत्वाभावात्, यत्र दर्व्यादौ पश्चात्कर्मदोषसम्भावनाया अभावस्तत्र नायं प्रतिषेध इत्याशयः ॥३५॥

मूलम्-संसट्ठेण[१] य[३] हत्थेण[२], दव्वीए[४] भायणेण[६] वा[५] ।
दिज्जमाणं[७] पडिच्छिज्जा[८], जं[९] तत्थेसणियं[१०] [११] भवे[१२] ॥३६॥

छाया—संसृष्टेन च हस्तेन, दर्व्या भाजनेन वा ।
दीयमानं प्रतीच्छेत्, यत्तत्रैषणीयं भवेत् ॥३६॥

सान्वयार्थः-संसट्ठेण=व्यञ्जनादिसे लिप्त हत्थेण=हाथ य=या दव्वीए=कडछी वा=अथवा भायणेण=बरतनसे दिज्जमाणं=दियाजानेवाला आहारादि हो तत्थ=वहां-उस आहारादिमें जं=जो एसणियं=उद्गम-उत्पादना-आदि-दोष-रहित भवे=हो, उसे पडिच्छिज्जा=लेवे ॥३६॥

टीका—'संसट्ठेण' इत्यादि । टीका स्पष्टा ॥३६॥

और वह प्रक्षालन साधुके निमित्तसे होगा, इसलिये वहाँ पश्चात्कर्मदोष लगता है। यदि ऐसे (लिप्त किये हुए) ही हाथसे स्वयं भोजन करे या दूसरेको परोसे तो पश्चात्कर्मदोष नहीं लगता, क्योंकि बादमें होनेवाले उस प्रक्षालन आदि कर्मका निमित्त, साधु नहीं रहता है-अर्थात् जिस कुडछी आदिमें पश्चात्कर्म होनेकी सम्भावना न हो वहाँ यह निषेध नहीं है-यानी वह लेना कल्पता है ॥ ३५ ॥

'संसट्ठेण' इत्यादि। संसृष्ट हाथ, कुडछी और वर्त्तनसे दिये जानेवाले आहारमेंसे जो एषणीय अर्थात् उद्गम-उत्पादना-आदिदोषरहित हो वह साधु ग्रहण करें ॥ ३६ ॥

પ્રક્ષાલન સાધુના નિમિત્તે થાય, તેથી તેમાં પશ્ચાત્કર્મદોષ લાગે છે જો એવા (લિપ્ત કરેલા-ખરડાયલા)જ હાથથી પોતે ભોજન કરે યા બીજાને પીરસે તો પશ્ચાત્કર્મદોષ લાગતો નથી, કારણ કે ત્યારબાદ થનારૂ પ્રક્ષાલન-આદિ કર્મનું નિમિત્ત સાધુ રહેતો નથી. અર્થાત્ જે કડછી આદિમાં પશ્ચાત્કર્મ થવાની સંભાવના નહિ હોય, ત્યા એ નિષેધ નથી એટલે કે એ આહાર લેવો સાધુને કલ્પે છે (૩૫)

संसट्ठेण ઇત્યાદિ. સસૃષ્ટ હાથ, કડછી અને વાસણથી આપવામાં આવતા આહારમાંથી જે એષણીય અર્થાત્ ઉદ્ગમ-ઉત્પાદના-આદિ દોષથી રહિત હોય તે સાધુ ગ્રહણ કરે (૩૬)

२ ४ ३ ५ १ ६
मूलम्-दुण्हं तु भुंजमाणाणं, एगो तत्थ निमंतए।
७ ८ ९ ११ १० १२
दिज्जमाणं न इच्छिज्जा, छंदं से पडिलेहए ॥३७॥

छाया—द्वयोस्तु भुञ्जानयोः, एकस्तत्र निमन्त्रयेत् ।
दीयमानं नेच्छेत्, छन्दं तस्य प्रतिलेखयेत् ॥३७॥

सान्वयार्थः-तत्थ=वहां भुंजमाणाणं=भोजन करते हुए दुण्हं=दोनोंमेंसे तु=यदि एगो=एक आदमी निमंतए=निमन्त्रित करे-आहारादि देना चाहे तो दिज्जमाणं=वह दियाजानेवाला आहारादि (साधु) न इच्छिज्जा=न चाहे-न लेवे; (किन्तु) से=उस नहीं निमन्त्रण करनेवालेके छंदं=अभिप्रायको पडिलेहए=देखे ॥३७॥

टीका—'दुण्हं तु' इत्यादि। तत्र=तयोः=एकवस्तुस्वामित्वेन प्रसिद्धयोः, द्वयोः भुञ्जानयोः=(अत्र सप्तम्यर्थे षष्ठी भुजधातुश्च पालनाभ्यवहारोभयार्थकस्ततश्च) पालयतोः, भोक्तुमुद्यतयोश्च मध्ये (पालनार्थकत्वे तु परस्मैपदं स्वयमूहनीयम्) (यदि) एकः=अन्यतरः निमन्त्रयेत्=दातुमुद्यतेत, तदा दीयमानम् (आहारादि) भिक्षुः नेच्छेत्, किन्तु तस्य=दानोद्यतेतरस्य छन्दं=अभिप्रायं भ्रू-नेत्रविकारादि-रूपचिह्नैः प्रतिलेखयेत्=प्रेक्षेत-'दानमस्येष्टं न वे'-ति निश्चिनुयादित्यर्थः ॥३७॥

ततः किं कुर्यादित्याह-'दुण्हं तु' इत्यादि।

'दुण्हं तु०' इत्यादि। यदि एक वस्तुके दो स्वामी हों तथा दो गृहस्थ भोजन करनेके लिये उद्यत हुए हों, और उन दोनोंमेंसे एक व्यक्ति आहार देनेके लिये उद्यत हो तो ऐसे आहारकी इच्छा भिक्षु न करे, किन्तु दूसरेके भोंह नेत्र आदि विकारसे अभिप्रायका अनुभव करे कि वहराने (देने)में इसकी सम्मति है या नहीं? ॥ ३७ ॥

इसके पश्चात् क्या करे? सो कहते हैं-'दुण्हं तु०' इत्यादि।

दुण्हं तु० ઇત્યાદિ. જો એક વસ્તુના બે સ્વામી હોય તથા બે ગૃહસ્થો ભોજન કરતા હોય અને એ બેમાથી એક આહાર આપવા માટે ઉદ્યત હોય તો એવા આહારની ઇચ્છા ભિક્ષુ ન કરે પરંતુ બીજાના ભ્રમરો, નેત્ર, આદિના વિકારથી અભિપ્રાયનો અનુભવ કરે કે વહોરાવવામા એની સંમતિ છે કે નહિ? (૩૭)

એ પછી શું કરે? તે કહે છે-दुण्हं तु० ઇત્યાદિ

२ ४ ३ ५ १ ६

मूलम्-दुण्हं तु भुंजमाणाणं, दोवि तत्थ निमंतए ।

११ १२ ८ ७ ९ १०

दिज्जमाणं पडिच्छिज्जा, जं तत्थेसणियं भवे ॥३८॥

छाया—द्वयोस्तु भुञ्जानयो,-र्द्वावपि तत्र निमन्त्रयेताम् ।

दीयमानं प्रतीच्छे,-द्यत्तत्रैषणीयं भवेत् ॥३८॥

सान्वयार्थः-अगर-भुंजमाणाणं=भोजन या खाद्य पदार्थोंके रक्षण करते हुए दुण्हं=दोमेंसे तु=यदि तत्थ=वहां दोवि=दोनों ही निमंतए=निमन्त्रण करे-आहारादि धामे तो तत्थ=उस आहारादिमेंसे जं=जो एसणियं=एषणीय-निर्दोष हो वह दिज्जमाणं=दिया जानेवाला आहारादि पडिच्छिज्जा=लेवे ॥३८॥

टीका-यद्युभावपि निमन्त्रयेतां तदा तत्र यदेषणीयं तद् गृह्णीयादित्यर्थः ॥३८॥

१ २ ३ ४

मूलम्-गुव्विणीए उवण्णत्थं, विविहं पाणभोयणं ।

५ ६ ७ ८

भुंजमाणं विवज्जिज्जा, भुत्तसेसं पडिच्छए ॥३९॥

छाया—गुर्विण्यै उपन्यस्तं, विविधं पान-भोजनम् ।

भुज्यमानं विवर्जयेद्, भुक्तशेषं प्रतीच्छेत् ॥३९॥

सान्वयार्थः-गुव्विणीए=गर्भवतीके लिए उवण्णत्थं=बनाकर रखा हुआ विविहं=नाना प्रकारका पाणभोयणं=खान-पान (यदि वह) भुंजमाणं=खा रही हो तो (उस आहारादिको साधु) विवज्जिज्जा=वरजे-न लेवे, (किन्तु) भुत्तसेसं=गर्भवतीके भोजन करलेनेके बाद जो शेष रहा हो तो उसे पडिच्छए=लेवे ॥३९॥

टीका-'गुव्विणीए०' इत्यादि। गुर्विण्यै=गर्भवत्यै, उपन्यस्तं=गर्भपोषणार्थं= तदीयरुच्यनुकूलतया सम्पादितं स्थापितं वा विविधं=नैकप्रकारं पान-भोजनं=

यदि वे दोनों आहार देनेको उद्यत हों और वह आहार एषणीय हो, तो ग्रहण कर लेवे ॥३८॥

'गुव्विणीए०' इत्यादि। गर्भवती स्त्रीकी इच्छा के अनुसार अर्थात् उसके लिये बनाये हुए तथा गर्भको पुष्ट करनेवाले अनेक प्रकारके पान

જો આહાર આપવામા એ બેઉ ઉદ્યત હોય અને એ આહાર એષણીય હોય તો સાધુ તે ગ્રહણ કરે (૩૮)

ગુવ્વિણીએ૦ ઇત્યાદિ ગર્ભવતી સ્ત્રીની ઇચ્છાને અનુસરીને અર્થાત્ એને માટે બનાવેલા તથા ગર્ભને પુષ્ટ કરનારા અનેક પ્રકારના પાન અને ભોજન

पानं=पेयं-प्रपाणकादिकं, भोजनं=भोज्यं मोदकादिकं (तया) भुज्यमानम्=उपभुज्यमानं च विवर्जयेत्=न गृह्णीयात् यतस्तदर्थोपकल्पिताऽऽहारादिग्रहणे यथा-रुच्याहाराद्यभावात्तदिच्छाभङ्गस्ततश्च गर्भपीडा-तत्पातादिसम्भवः। ननु तर्हि किं सर्वथा विवर्जयेदित्याह-'भुक्ते'ति-भुक्तशेषं=भुक्तादवशिष्टं प्रतीच्छेत्=उपाददीत ॥३९॥

मूलम्-सिया[५] य[१] समणट्ठाए[६], गुव्विणी[४] कालमासिणी[३]।
उट्ठिया[२] वा[८] निसीएज्जा[७], निसन्ना[९] वा[१२] पुणुट्ठए[१०][११] ॥४०॥
तं[१३] भवे[१८] भत्तपाणं[१४] तु, संजयाण[१५] अकप्पियं[१६][१७]।
दिंतियं[१९] पडिआइक्खे[२०], न[२३] मे[२२] कप्पइ[२४] तारिसं[२१] ॥४१॥

छाया—स्याच्च श्रमणार्थं, गुर्विणी कालमासिनी।
उत्थिता वा निषीदेत्, निषण्णा वा पुनरुत्तिष्ठेत् ॥४०॥
तद्भवेद्भक्त-पानं तु, संयतानामकल्पिक(त)म्।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥४१॥

सान्वयार्थः-य=और कालमासिणी=नजदीक प्रसवकालवाली गुव्विणी=गर्भवती स्त्री सिया=यदि-कदाचित् उट्ठिया वा=पहलेसे खड़ी हो (किन्तु) समणट्ठाए=साधुके लिए अर्थात् साधुको आहारादि देनेके लिए निसीएज्जा=बैठे वा=अथवा निसन्ना=पहलेसे बैठी हुई (साधुके लिए) पुण=फिर उट्ठए=ऊठे,

---

और भोजन (मोदक आदि) का और वह जिसका उपभोग कर रही हो उस आहारका (साधु) त्याग करे-ग्रहण न करे। क्योंकि उसके लिये बनाये हुए भोजनको ग्रहण करनेसे उसकी इच्छाका भंग होकर गर्भको पीडा पहुँचेगी, और गर्भपात तक होनेका सम्भव हो जायगा। तो क्या वैसा आहार लेवे ही नहीं? सो कहते हैं-गर्भवती के भोजन कर लेने बाद जो आहार अवशेष रहे उसे ग्रहण करनेमें दोष नहीं है ॥३९॥

(મોદક આદિ)નો અને તે જેનો ઉપભોગ કરી રહી હોય તે આહારનો સાધુ ત્યાગ કરે-ગ્રહણ ન કરે, કારણ કે એને માટે બનાવવામાં આવેલા ભોજનને ગ્રહણ કરવાથી તેને રૂચિને અનુસાર ભોજન નહિ મળે, તેથી એની ઇચ્છાનો ભંગ થશે અને ગર્ભને પીડા પહોંચશે, અને ગર્ભપાત પણ થઇ જવાનો સંભવ રહેશે તો શું એવો આહાર લેવોજ નહિ? તે માટે કહે છે કે-ગર્ભવતી ભોજન કરી રહે ત્યારપછી જે આહાર અવશેષ રહે તેને ગ્રહણ કરવામાં દોષ નથી (૩૯)

तं तु=तो वह भत्तपाणं=आहार-पानी संजयाणं=साधुओंके लिए अकप्पियं=अकल्पनीय भवे=होता है, (अतः) दिंतियं=देनेवालीसे (साधु) पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे न कप्पइ=नहीं कल्पता है ।४०।४१।

टीका-'सिया य०' 'तं भवे' इत्यादि । च=पुनः उत्थिता=दण्डवत्समवस्थिता, कालमासिनी=कालमासशब्देनात्र प्रसवकालमासो गृह्यते, स च सप्तमासादारभ्य सार्द्धसप्तरात्राधिकं नवमासं यावत्, तद्वती-प्राप्तप्रसवयोग्यसमयेत्यर्थः, गुर्विणी=गर्भवती, स्यात्=कदाचित्, श्रमणार्थं=साधुनिमित्तं-साधवे दातुमित्यर्थः, निषीदेत्=उपविशेत्, वा=अथवा, निषण्णा=उपविष्टा पुनरुत्तिष्ठेत्, तदा तत्=तया दीयमानं भक्त-पानं तु संयतानां=संयमवताम् अकल्पिक(त)म्=अग्राह्यम्, अतो ददतीं प्रत्याचक्षीतेत्यादि पूर्ववत् ।

'सर्वं वाक्यं सावधारणं भवती'-तिन्यायेन उत्थिता यदि दातुमुपविशेदेव,

---

'सिया य०' इत्यादि 'तं भवे०' इत्यादि च । प्रसव-काल-मासवाली अर्थात् सातवें महीनेसे आरम्भ करके साढ़े सात रात सहित नववें महीनें तक, अर्थात् सातवें महीनेके बाद प्रसव होनेतकके समयवाली स्त्री, यदि खड़ी हुई हो और साधुको भिक्षा देनेके लिये बैठे, अथवा बैठी हुई हो किन्तु भिक्षा देनेके लिये उठे तो उसके द्वारा दिया जानेवाला आहार, संयमियोंके लिये कल्प्य नहीं है, अतः देनेवाली (स्त्री) से कहे कि 'ऐसा आहार हमें कल्पता नहीं है ॥'

सब वाक्य, 'सावधारण अर्थात् निश्चय करानेवाले होते हैं' इस न्यायके बलसे यहाँ पर यह तात्पर्य निकलता है कि यदि देनेवाली बैठी हो और खड़ी होकरके ही आहार देवे, या खडी हो किन्तु बैठ करके ही

સિયા ય૦ ઇત્યાદિ તં ભવે૦ ઇત્યાદિ પ્રસવકાળ-માસવાળી અર્થાત્ સાતમા મહીનાથી આરંભીને સાડા સાત રાત સહિત નવમા મહીના સુધી, એટલે કે સાતમા મહિના પછી પ્રસવ થાય ત્યાંસુધીના સમયવાળી સ્ત્રી જો ઊભી હોય અને સાધુને ભિક્ષા આપવાને માટે બેસે, અથવા બેઠી હોય પરન્તુ ભિક્ષા આપવાને માટે ઉઠે તો તેણે આપેલો આહાર સંયમીઓને માટે કલ્પનીય નથી, દેનારી સ્ત્રીને કહેવું કે 'એવો આહાર મને કલ્પતો નથી'

બધાં વાક્યો 'સાવધારણ અર્થાત્ નિશ્ચય કરાવવાવાળાં હોય છે' એ ન્યાયાનુસાર અહીં એ તાત્પર્ય નીકળે છે કે જો આપનારી બેઠી હોય અને ઊભી થઈને જ આહાર આપે યા ઊભી હોય પરન્તુ બેસીને જ આહાર આપે તો એ

उपविष्टा वोत्तिष्ठेदेव तदा दीयमानमाहारादिकमकल्पिकं(तं) स्यादिति । तत्तात्पर्याऽवधारणेनेदमायाति–उत्थिता तादृशी गर्भवती यद्युत्थितैव, उपविष्टा वोपविष्टैव दद्यात्तदा साधूनां नाऽकल्पिकं(तं) किन्तु ग्राह्यमेवेति स्थविरकल्पिकापेक्षमिदम् । जिनकल्पिभिस्तु प्रथमदिवसादेव तया दीयमानं न गृह्यते इति वृद्धाः ॥

'कालमासिनी' पदेन, षष्ठमासानन्तरं गर्भस्य गुरुत्वेनोत्थानादिक्रियायां तत्सञ्चलनादिना तस्या गर्भस्य च पीडाऽवश्यंभाविनीति संसूचितम् ॥४०॥४१॥

४ ५ १ ३ २
मूलम्–थणगं पिज्जमाणी (य), दारगं वा कुमारियं ।
६ ८ ७ १० ९
तं निक्खिवित्तु रोयंतं, आहरे पाण-भोयणं ॥४२॥
११ १६ १२ १३ १४ १५
तं भवे भत्त-पाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
१७ १८ २१ २० २२ १९
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥४३॥

आहार देवे तो उससे दिया जानेवाला आहार अकल्प्य होता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि ऐसी गर्भवती स्त्री यदि बैठी हो और बैठी-बैठी ही आहार देवे या खड़ी हो और खड़ी-खडी ही आहार देवे तो साधुओंके लिये अकल्प्य नहीं है, किन्तु कल्पनीय ही है। यह बात, स्थविर-कल्पकी अपेक्षासे समझनी चाहिये। वृद्धोंका मत है कि जिनकल्पी महाराज, गर्भके प्रथम दिनसे ही गर्भवती स्त्रीके हाथसे दिया जानेवाला आहार सर्वथा नहीं लेते हैं।

'कालमासिनी' पदसे यह सूचित किया है कि-छठे महीनेके बाद गर्भ भारी हो जाता है, इस कारण हिलने-डोलनेसे गर्भवतीको तथा उसके गर्भको पीडा अवश्य होती है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

રીતે આપવામાં આવતો આહાર અકલ્પ્ય બને છે એનું તાત્પર્ય એ થયું કે એવી ગર્ભવતી સ્ત્રી જો બેઠી હોય તો બેઠી-બેઠી જ આહાર આપે યા ઊભી હોય તો ઊભી ઊભી આહાર આપે તો સાધુને માટે તે અકલ્પ્ય નથી, પરંતુ કલ્પનીય છે આ વાત સ્થવિર-કલ્પની અપેક્ષાએ સમજવી જોઇએ વૃદ્ધોનો મત એવો છે કે જિનકલ્પી મહારાજ ગર્ભના પ્રથમ દિવસથી જ ગર્ભવતી સ્ત્રીના હાથથી આપવામા આવતો આહાર સર્વથા લેતા નથી.

कालमासिनी એ શબ્દથી સૂચિત કરવામા આવ્યું છે કે છઠા મહીના પછી ગર્ભ ભારે થઇ જાય છે તેથી હીલ-ચાલ કરવાથી ગર્ભવતી તથા એના ગર્ભને અવશ્ય પીડા થાય છે (૪૦-૪૧)

छाया—स्तन्यं पाययन्ती (च), दारकं वा कुमारिकाम् ।
तं निक्षिप्य रुदन्त,-माहरेत्पान-भोजनम् ॥४२॥
तद्भवेद्भक्त-पानं तु, संयतानामकल्पिक(त)म् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥४३॥

सान्वयार्थः-दारगं=लड़के कुमारियं=लड़की वा=अथवा नपुंसक किसीभी बच्चेको थणगं=स्तन्य-दूध पिज्जमाणी=पिलाती हुई तं=उस बच्चेको रोयंतं=रोते हुएको निक्खिवित्तु=भूमि आदि पर रखकर (यदि) पाण-भोयणं=आहार-पानी आहरे=देवे, तं तु=तो वह भत्तपाणं=आहार-पानी संजयाणं=साधुओंके लिए अकप्पियं=अकल्पनीय भवे=होता है, (अतः) दिंतियं=देनेवालीसे पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥४२-४३॥

टीका—'थणगं' इत्यादि । दारकं=शिशुम्, कुमारिकां=बालिकाम्, 'वा' शब्दात्संगृहीतं नपुंसकञ्च, स्तन्यं=दुग्धं पाययन्ती, तं=पिबन्तं शिशुप्रभृतिकं रुदन्तं=क्रन्दन्तं निक्षिप्य=भूम्यादौ निधाय पान-भोजनमाहरेत् तदा तद्भक्त-पानं तु संयतानामकल्पिकं(तं) भवेत्, अतो ददतीं प्रत्याचक्षीत—तादृशं मे न कल्पत इति ।

अत्रायमभिसन्धिः—यदि दारकादिः केवलं स्तन्यपानोपजीवी स्तन्यपानान्न-भोजनोभयोपजीवी वा भवेत् तं पाययन्ती स्तन्यपानं सन्त्याज्य पानभोजनं दद्यात्,

---

'थणगं' इत्यादि, 'तं भवे' इत्यादि ।

स्त्री यदि, लड़के, लड़की या नपुंसकको दूध पिलाती हो और उस पीनेवाले रोते हुए बालक आदिको, जमीन पर रख कर, पान-भोजन देवे तो साधु कहे कि 'ऐसा आहार, मुझे नहीं कल्पता है,' यहाँ तात्पर्य यह है कि, यदि बालक दूधमुहाँ हो अथवा दूध भी पीता हो और अन्न भी खाता हो, उस बालकको स्तनपान छुड़ा कर आहार पानी देवे,

---

थणगं० ઇત્યાદિ, तं भवे० ઇત્યાદિ

જો સ્ત્રી પુત્ર પુત્રી કે નપુંસકને દૂધ પાતી હોય અને એ પીનારા રોતા બાળક આદિને જમીન પર મૂકીને ભોજન-પાન આપે તો સાધુ કહે કે 'એવો આહાર મને કલ્પતો નથી' અહીં તાત્પર્ય એ છે કે જો બાળક દૂધમુખ (દૂધ પર જ) હોય અથવા દૂધ પીતુ હોય તથા અન્ન પણ ખાતુ હોય, તો એવા બાળકને સ્તનપાન છોડાવીને આહાર-પાણી આપે, અથવા કોઇ બાળક સ્તનપાન

अथवा यः शिशुः स्तन्यमपिवन्नङ्के समीपे वा तिष्ठेत्तं परित्यज्य दातुं पृथग्भूतायां तस्यां यदि स रुद्यात् तदापि तया दीयमानमाहारादिकं संयतानामकल्पिक(त)म्, शिशवाद्याहारान्तराय–कर्कशहस्त–भूमि-मञ्चकादिस्पर्शजनितपीड़ा-मांसाशि-मार्जार-कुक्कुरादिजन्तुकृतोपघातादिसम्भवात्, दृश्यते हि क्वचन निर्जनादौ स्थाने शृगालादयो बालानपहृत्य पलायन्त इति ॥४२॥४३॥

१ ६ २ ३ ४ ५
मूलम्–जं भवे भत्तपाणं तु, कप्पाकप्पंमि संकियं ।
७ ८ ११ १० १२ ९
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥४४॥

छाया—यद्भवेद्भक्त-पानन्तु, कल्प्याकल्प्ये शङ्कितम् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥४४॥

सान्वयार्थः–जं=जो भत्तपाणं तु=अशनादि कप्पाकप्पम्मि=कल्प्य अकल्प्यके विषयमें संकियं=शङ्कित-शङ्कास्पद भवे=हो तो दिंतियं=देनेवालीसे पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥४४॥

या कोई बालक, स्तन-पान न करता हुआ भी गोदमें या समीपमें बैठा हो, उसे छोड़कर स्त्री आहार देनेके लिये जावे और बालक रोने लगे तो भी उसके द्वारा दिया जानेवाला आहार, संयमियोंको ग्राह्य नहीं है, क्योंकि इससे उसके बालकके आहारमें अन्तराय पड़ती है, मातृ-विरहजन्य दुःख होता है, कठोर हाथ, भूमि, खाट आदिके स्पर्शसे पीड़ा होती है और मांसभोजी बिलाव कुत्ते आदि जानवरोंके द्वारा उपघात होनेका सम्भव रहता है। कहीं२ (पहाड़ी प्रदेशोंमें) शृगाल (गीदड़), बालकोंको उठा कर ले भागते हैं ऐसा देखा जाता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

न કરતુ હોય પણ ખોળામા યા સમીપમા બેઠુ હોય, તેને છોડીને સ્ત્રી આહાર આપવાને માટે જાય અને બાળક રોવા લાગે તોપણ તેણે આપેલો આહાર સયમીઓને માટે ગ્રાહ્ય નથી, કારણ કે તેથી તેના બાળકના આહારમા અતરાય પડે છે, માતૃવિરહજન્ય દુ.ખ થાય છે, કઠોર હાથ, ભૂમિ, ખાટલા આદિના સ્પર્શથી પીડા થાય છે અને માસભોજી બીલાડા કૂતરા આદિ જાનવરો દ્વારા ઉપઘાત થવાનો પણ સભવ રહે છે ક્યાક ક્યાક (પહાડી પ્રદેશોમા) શિયાળ બાળકોને ઉઠાવી જાય છે, એવુ જોવામા આવે છે (૪૨-૪૩)

टीका—'जं भवे०' इत्यादि। यद्भक्त-पानं तु कल्प्याकल्प्ये=कल्प्यं च अकल्प्यञ्चेति समाहारद्वन्द्वे कल्प्याकल्प्यं तस्मिन्, भावप्रधानश्चाय निर्देशस्ततश्च कल्प्यत्वेऽकल्प्यत्वे चेत्यर्थः, कल्प्यत्वमुद्गमादिदोषरहितत्वमकल्प्यत्वं च तत्सहितत्वम्, तत्र शङ्कितं=शङ्का(संशय)युक्तत्वम् 'इदं भक्तपानं कल्प्यमकल्प्यं वे'-त्येवंविधसंशयविषयीभूतमित्यर्थः, भवेत् तत् ददतीं प्रत्याचक्षीत-तादृशं मे न कल्पत इति ॥४४॥

मूलम्-दगवारेण[१] पिहियं[११], नीसाए[२] पीढएण[३] वा[४]।
लोढेण[५] वा[६] विलेवेण[७], सिलेसेण[९] वि[१०] केणइ[८] ॥४५॥
तं[१२] च[१३] उब्भिदिआ[१५] दिज्जा[१६], समणट्ठाए[१४] व[१८] दावए[१७]।
दिंतियं[१९] पडियाइक्खे[२०], न[२३] मे[२२] कप्पइ[२४] तारिसं[२१] ॥४६॥

छाया—दकवारेण पिहितं, निश्रया पीठकेन वा।
लोष्ठेन वा विलेपेन, श्लेषेण वा केनापि ॥४५॥
तच्चोद्भिद्य दद्यात्, श्रमणार्थं वा दापयेत्।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥४६॥

सान्वयार्थः-दगवारेण=जलके भरे हुए घड़ेसे नीसाए=घंटीके पुडियेसे या पीसनेकी शिलासे वा=अथवा पीढएण=पीढेसे लोढेण=लोढेसे वा=अथवा विलेवेण=मिट्टी आदिके लेपसे वि=अथवा केणइ=दूसरे किसी प्रकारके सिलेसेण=मोम लाख आदि चिकने पदार्थसे पिहियं=आच्छादित या मुद्रित किया-हुआ अशनादिका बरतन हो, तं च=उसे यदि समणट्ठाए=साधुके लिए उब्भिदिआ=उघाड़ (खोल) कर दिज्जा=खुद देवे वा=अथवा दावए=दूसरेसे दिलावे तो दिंतियं=देती हुईसे साधु पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=ऐसा आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥४५-४६॥

'जं भवे' इत्यादि। 'यह भक्त-पान कल्प्य है या अकल्प्य' इस प्रकार जिसमें सन्देह हो वह भक्त-पान देनेवालीसे साधु कहे कि ऐसा आहार मुझे ग्राह्य नहीं है ॥ ४४ ॥

जं भवे० ઈત્યાદિ 'આ ભોજન-પાન કલ્પ્ય છે કે અકલ્પ્ય?' એ પ્રકારનો જેમાં સન્દેહ ઉત્પન્ન થાય તે ભોજન-પાન આપનારીને સાધુ કહે કે એવો આહાર મને ગ્રાહ્ય નથી (૪૪)

टीका–'दगवारेण०' 'तं च' इत्यादि । दकेति दकं=जलं (प्रोक्तं प्राज्ञैर्भुवनममृत जीवनीयं दकं च' इति हलायुधः,) वारयति=बहिर्निःसरणतो निरुणद्धीति दकवारः=जलसंभृत-कलसादिभाजनं तेन, निश्रया=घरट्टेन-पेषणचक्रेण शिलापट्टेन (पेषणार्थपाषाणेन) वा, पीठकेन=काष्ठनिर्मिताऽऽसनेन, लोष्टेन=शिलादिखण्डेन, विलेपेन=मृत्तिकादिलेपेन, केनापि श्लेषेण=सिक्थ-लाक्षादिना वा पिहितम्=आच्छादितं मुद्रितं वा यदन्नादिभाजनमिति प्रसङ्गलभ्यं भवेत्, तच्च श्रमणार्थमुद्भिद्य=उद्घाटच (स्वयं) दद्याद्दापयेद्वा तदा गुरुतरवस्तूत्थापनक्लेशहिंसादिसम्भावनया ददतीं प्रत्याचक्षीतेत्यादि पूर्ववत् ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

मूलम्–असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा ।
जं जाणेज्जा सुणेज्जा वा, दाणट्ठा पगडं इमं ॥४७॥
तं भवे भत्त-पाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥४८॥

'दकवारेण०' इत्यादि, 'तं च' इत्यादि ।

जलसे भरेहुए बर्त्तनसे, चक्की के पुडसे, मसाला आदि पीसनेकी शिलासे, पीढ़े (बाजोट) से, लोढे (मसाला आदि पीसनेके वजनदार पत्थर) से ढके हुए, तथा मिट्टी आदिके लेपसे, अथवा अन्य किसीसे छांदे या लाख आदिसे मुद्रित किया हुवा अन्न-पान, साधुके लिये उघाड़कर स्वयं देवे या दूसरेसे दिलावे तो क्लेश और हिंसाकी सम्भावनाके कारण देनेवालीको कहे कि ऐसा आहार हमें ग्राह्य नहीं है। तात्पर्य यह है कि, भारी वस्तुके उठानेमें स्व-पर-विराधना आदि अनेक दोषोंकी सम्भावना होनेसे यह निषेध किया गया है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

दकवारेण० ઇત્યાદિ, तं च ઇત્યાદિ.

જળથી ભરેલા વાસણથી, ઘટીના પડથી, મસાલો વાટવાના ઓરશિયાથી બાજોઠથી, મસાલો વાટવાના વજનદાર પત્થરથી, ઢાંકેલું તથા માટી આદિના લેપથી અથવા અન્ય કોઈ પદાર્થથી છાંદેલુ કે લાખ આદિથી બંધ કરેલુ વાસણ સાધુને માટે ઉઘાડીને અન્ન-પાન પોતે આપે યા બીજા પાસે અપાવે તો કલેશ અને હિંસાની સંભાવનાથી આપનારીને સાધુ કહે કે એવો આહાર મને ગ્રાહ્ય નથી. તાત્પર્ય એ છે કે ભારે વસ્તુ ઉપાડવામા સ્વપર-વિરાધના આદિ અનેક દોષોની સંભાવના હોવાથી એ નિષેધ કરવામા આવ્યો છે (૪૫-૪૬)

छाया—अशनं पानकं वापि खाद्यं स्वाद्यं तथा ।
यज्जानीयात् शृणुयाद्वा, दानार्थं प्रकृतमिदम् ॥४७॥
तद्भवेद्भक्त-पानं तु, संयतानामकल्पिक(त)म् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥४८॥

सान्वयार्थः–जं=जो असणं=ओदन आदि अशन पाणगं=दाख आदिका धोवन वावि=अथवा खाइमं=केला आदि खाद्य तहा=और साइमं=एलची लूंग आदि स्वाद्य इमं=यह 'दाणट्ठा' पथिकोंको देनेके लिए पगडं=उपकल्पित-निकाला हुआ है जो अपने या अपने कुटुम्बके लिए काममें नहीं लाया जावे ऐसा जाणेज्ज=जान लेवे वा=अथवा सुणिज्जा=किसीसे सुन लेवे तो तं=वह भत्तपाणं तु=आहार-पानी संजयाणं=साधुओंके लिए अकप्पियं=अकल्पनीय भवे=होता है, (अतः) दिंतियं=देती हुईसे साधु पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं= इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥४७-४८॥

टीका–'असणं०' इत्यादि, 'तं भवे०' इत्यादि च । यत् अशनं=भोज्य-मोदन-पूरिकादिकं, पानकं=द्राक्षादिजलम्, अपिवा=अथवा खाद्यं=कदलीफला-दिकं, स्वाद्यम्=एला-लवङ्ग-कर्पूर-पूगीफलादिकम्, 'दानार्थं=देशान्तरादागतेन वणिगादिना साधुवादार्थं स्वकीयप्रशसानिमित्तं दातुम्, इदं प्रकृतं=नियतरूपेणोप-कल्पितम्' इति जानीयात्=आमन्त्रणादिना अवगच्छेत्, शृणुयाद्वा=कुतश्चि-

'असणं०' इत्यादि, तथा 'तं भवे०' इत्यादि ।

ओदन-आदि अशन, दाखका जल आदि पान, केला आदि खाद्य, लोंग, कपूर, इलायची, सुपारी आदि स्वाद्य, 'यह देशान्तरसे आये हुए वणिक् आदिने अपनी प्रशंसाके निमित्त देनेके लिये रक्खा है।' ऐसा जो समझे या किसीसे सुने तो वह अशनादि, संयमियोंको कल्पनीय नहीं है,

असणं ઇત્યાદિ, તથા तं भवे० ઇત્યાદિ

ઓદન આદિ અશન, દ્રાક્ષના ધોવણનું જળ આદિ પાન, કેળાં આદિ ખાદ્ય, લવીંગ, કપૂર, ઇલાયચી, સોપારી આદિ સ્વાદ્ય, "આ દેશાન્તરથી આવેલા વણિક આદિએ પોતાની પ્રશંસાને લીધે આપવાને માટે રાખેલ છે" એવું જો સમજવામાં કે કોઇ પાસેથી સાંભળવામા આવે તો એ અશનાદિ સંયમીઓને

दाकर्णयेद्वा तद्भक्तपानं तु संयतानामकल्पिकं भवेत्, अतस्तद्ददतीं प्रत्याचक्षीत—तादृशं मे न कल्पत इति ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

२ ३ ५ ४ ६ ८ ७
मूलम्—असणं पाणगं वावि, खाइमं साइमं तहा ।
१ १२ १३ १४ ९ ११ १०
जं जाणेज्ज सुणेज्जा वा, पुण्णट्ठा पगडं इमं ॥४९॥
१५ २० १६ १७ १८ १९
तं भवे भत्त-पाणं तु संजयाण अकप्पियं ।
२१ २२ २५ २४ २६ २३
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥५०॥

छाया—अशनं पानकं वापि, खाद्यं स्वाद्यं तथा ।
यज्जानीयाच्छृणुयाद्वा, पुण्यार्थं प्रकृतमिदम् ॥४९॥
तद्भवेद्भक्तपानं तु, संयतानामकल्पिक(त)म् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥५०॥

सान्वयार्थः-जं असणं पाणगं वावि खाइमं तहा साइमं=जो अशन पान खादिम स्वादिम इमं पुण्णट्ठा पगडं=' यह करुणाबुद्धिसे दीन-हीन-जनोंके लिए पुण्यार्थ निकाल रखा है' इस प्रकार जाणेज्ज=जान लेवे वा=अथवा सुणिज्जा=किसी दूसरेसे सुन लेवे तो तं=वह भत्तपाणं तु=आहार-पानी संजयाणं=साधुओंके लिए अकप्पियं=अकल्पनीय भवे=होता है, (अतः) दिंतियं=देती हुईसे साधु पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥४९॥-५०॥

टीका—'असणं०' इत्यादि, 'तं भवे०' इत्यादि च। यदशनादिकं 'पुण्यार्थं=पुण्याय=सुकृतायेदं दयाधिया,वनीय(प)क-श्रमणार्थोपकल्पितस्याग्रे वक्ष्य-

---

इसलिये ऐसा भक्त-पान आदि देनेवाली से कहे कि यह मुझे नहीं कल्पता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

'असणं०' इत्यादि, तथा 'तं भवे०' इत्यादि ।

जो 'अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य दया-बुद्धिसे दीन-हीन जनोंको

માટે કલ્પનીય નથી તેથી એવા ભોજન-પાન આદિ આપનારીને સાધુ કહે કે એ મને કલ્પતા નથી. (૪૭-૪૮)

असणं० ઇત્યાદિ, તથા तं भवे० ઇત્યાદિ

"આ અશન, પાન, ખાદ્ય, સ્વાદ્ય, દયા-બુદ્ધિથી દીનહીન જનોને આપવાને

माणत्वादत्र दीनेभ्यो वितरणार्थमिदं प्रकृतम्=उपकल्पितम्-स्व-स्वपोष्यवर्गोभयोपभोग्यभिन्नतया स्थापितमिति यावत्' इति जानीयात् शृणुयाद्वा तद्भक्तपानमित्यादि पूर्ववत्। पूर्वगाथायां 'दाणट्ठा' इत्यत्र दान-शब्देन स्वप्रशंसार्थं दानं गृह्यते, प्रकृते 'पुण्णट्ठा' इत्यत्र पुण्य-शब्देन स्वप्रशंसाव्यतिरिक्तफलाभिसन्धानेन दानं गृह्यते, इति दानपुण्ययोर्भेदः। 'महाव्रतधारिभ्य एव यद्दीयते तत्रैव पुण्यं न तु तदितरेभ्यः प्रदाने, तथा सति हि प्रत्युत पापकलापः समुत्पद्यते' इति केचिदाहुः, ('तेरहपथी' शब्देन प्रसिद्धाः साधव आहुः,) तद् भ्रान्तिविलसितम्,

देनेके लिये है-अर्थात् पुण्यार्थ बनाया गया है' ऐसा जाने या सुने तो वह संयमीके लिये ग्राह्य नहीं है, अत एव ऐसा आहार देनेवालीसे कहे कि-'यह भक्त-पान लेना मुझे नहीं कल्पता है'। पहली गथामें आये हुए 'दाणट्ठा' पदके 'दान' शब्दसे 'अपनी प्रशंसाके लिये दिया जानेवाला दान' अर्थ ग्रहण किया है, किन्तु इस गाथामें 'पुण्णट्ठा'के 'पुण्य' शब्दसें अपनी प्रशंसाके सिवाय अन्य किसी प्रयोजनसे दिया जानेवाला दान' अर्थ होता है-दान और पुण्यमें यही अन्तर है।

[1]कोई-कोई कहते हैं कि-"महाव्रतधारी मुनियोंको जो दान दिया जाता है उसीमें पुण्य है-दूसरोंको देनेमें नहीं, दूसरोंको देनेसे उलटा पाप लगता है"। उनका यह कहना भ्रान्ति-मूलक है, क्योंकि, भगवान्ने

१ तेरहपंथी सम्प्रदाय के साधु।

માટે છે, અર્થાત્ પુણ્યાર્થ બનાવવામા આવ્યા છે" એવુ જાણવામા યા સાંભળવામા આવે તો એ સંયમીને માટે ગ્રાહ્ય નથી તેથી કરીને એવો આહાર આપનારીને સાધુ કહે કે-એ ભોજન-પાન લેવા મને કલ્પતા નથી. પહેલી ગાથામા આવેલા **दाणट्ठा** પદના **दान** શબ્દથી 'પોતાની પ્રશંસાને માટે આપવામાં આવતું દાન' એવો અર્થ ગ્રહણ કર્યો છે, પણ આ ગાથામા **पुण्णट्ठा** માના **पुण्य** શબ્દથી 'પોતાની પ્રશસા સિવાયના અન્ય કોઇ પ્રયોજનથી આપવામા આવતુ દાન' એવો અર્થ થાય છે દાન અને પુણ્યમાં એ અતર છે.

[1]કોઇ-કોઇ કહે છે કે-"મહાવ્રતધારી મુનિઓને જે દાન આપવામા આવે છે તેમા પુણ્ય છે બીજાઓને દેવામા પુણ્ય નથી, બીજાઓને દેવામા ઉલટું પાપ લાગે છે" એમનુ એવું કહેવું ભ્રાન્તિમૂલક છે, કારણ કે ભગવાને **पुण्णट्ठा पगडं**

૧ તેરહપથી સપ્રદાયના સાધુઓ।

भगवता हि 'पुण्णट्ठा पगडं' इत्यनेन 'पुण्यार्थमुपकल्पितं द्रव्यं साधूनामकल्प्य'-मिति वोधितं, तत्र महाव्रतधारकेतरेभ्यः प्रदातुमुपकल्पितस्य द्रव्यस्य तन्मते पुण्यार्थत्वाभावेन 'पुण्णट्ठा पगडं' इति वाक्यं निर्विषयतामपद्येत ।

ननु पुण्यार्थोपकल्पितद्रव्यस्याकल्प्यत्वस्वीकारे साधोः शिष्टकुले भिक्षाग्रहण-मेवाकल्प्यं स्यात्, पुण्यार्थमेव तेषां पाकप्रवृत्तेर्न तु क्षुद्रजन्तुवत्स्वोदरपूर्त्तिमात्रार्थ-मिति चेन्न, तथाहि–यद्यपि शिष्टकुले सम्पादितमन्नं पुण्यार्थप्रकृतं तथापि यदन्येभ्यो

'पुण्णट्ठा पगडं' इस कथनसे पुण्यके लिये निकाले हुए द्रव्यको साधुओंके वास्ते अकल्पनीय बताया है। यदि महाव्रतियोंको छोड़कर अन्य किसीको देनेमें पुण्य न हो तो भगवान्का किया हुआ यह निषेध किस पर लागू पड़ेगा ?, तात्पर्य यह है कि पुण्यके लिये निकाले हुए द्रव्यको, मुनियोंके लिये अकल्प्य बतानेसे यह सिद्ध होता है कि दूसरोंको दान देनेसे भी पुण्यकी प्राप्ति होती है ।

शंका–यदि पुण्यार्थ निकाला हुआ द्रव्य, साधुओंको ग्राह्य नहीं है तो शिष्टकुलमें साधु, कभी भिक्षा ग्रहण कर ही नहीं सकते, क्योंकि शिष्ट जन, पुण्यके लिये ही रसोईका आरम्भ करते हैं, साधारण (क्षुद्र) प्राणियोंकी तरह अपने ही उदरकी पूर्त्तिके लिये नहीं ।

समाधान–यद्यपि शिष्टकुलमें तैयार किया हुआ आहार पुण्यके लिये ही संपादित होता है तथापि जो आहार दूसरोंको ही देनेके लिये बनाया

એ કથન વડે પુણ્યને માટે કાઢેલા દ્રવ્યને સાધુઓને માટે અકલ્પનીય બતાવ્યું છે જો મહાવ્રતીઓ સિવાયના બીજાઓને આપવામાં પુણ્ય ન હોય તો ભગવાને કરેલો એ નિષેધ કોને લાગુ પડશે ?, તાત્પર્ય એ છે કે પુણ્યને માટે કાઢેલા દ્રવ્યને મુનિઓને માટે અકલ્પ્ય બતાવ્યુ હોવાથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે બીજા-ઓને દાન આપવાથી પણ પુણ્યની પ્રાપ્તિ થાય છે

શંકા–જો પુણ્યાર્થ કાઢેલું દ્રવ્ય સાધુઓને માટે ગ્રાહ્ય ન હોય તો શિષ્ટ કુળમા સાધુ કદાપિ ભિક્ષા ગ્રહણ કરી શકશે જ નહિ, કારણ કે શિષ્ટજન પુણ્યને માટે જ રસોઈનો આરંભ કરે છે સાધારણ (ક્ષુદ્ર) પ્રાણીઓની પેઠે માત્ર પોતાનુંજ ઉદર ભરવાને માટે નહિ

સમાધાન–જો કે શિષ્ટ કુળમાં તૈયાર કરવામાં આવતો આહાર પુણ્યને માટે જ સંપાદિત હોય છે, તોપણ જે આહાર બીજાઓને આપવાને માટે બનાવવામા આવે છે, પોતાના ઉપભોગને માટે નહિ, તે पुण्णट्ठा पगडं (पुण्यार्थं निष्पादित)

दातुमेव निष्पादितं न तु स्वोपभोगार्थं तदेवान्नं 'पुण्यार्थप्रकृत'-शब्देनात्र गृह्यते, एतदेव देयमित्युच्यते। ईदृशस्यैव ग्रहणे प्रतिषेधः, आरम्भान्तरायादिदोषप्रसङ्गात्। यत्तु स्वस्य स्वपोष्यवर्गस्य चोपभोगार्थमुदारबुद्ध्या सम्पादितं, तच्चानियतदानार्थत्वाददेयमित्युच्यते। अस्य ग्रहणे साधोर्नारम्भादिदोषप्रसङ्गः, साध्वर्थपाकप्रवृत्तेरभावात्। किञ्च-शास्त्रे, शिष्टकुले भिक्षाग्रहणस्य विधानान्न तथाविधाऽऽहारग्रहणे दोष इत्यलं पल्लवितेन ॥ ४९ ॥ ५० ॥

मूलम्-असणं पाणगं वावि, खाइमं साइमं तहा।
जं जाणेज्ज सुणेज्जा वा, वणिमट्ठा पगडं इमं ॥५१॥

जाता है अपने उपभोगके लिये नहीं, वही 'पुण्णट्ठा पगडं' (पुण्यार्थ निष्पादित) और वही 'देय' कहलाता है। इस प्रकारके आहारको ही ग्रहण करनेका निषेध किया गया है। क्योंकि, उसे लेलेनेसे आरंभ और अन्तराय आदि दोषोंका प्रसंग होता है।

जो आहार, अपने और अपने आश्रित जनोंके उपभोगके लिये उदार बुद्धिसे निष्पन्न किया जाता है, वह अनियत दानके लिये होनेसे 'अदेय' कहलाता है। इस अदेय आहारको ग्रहण करनेसे साधुको आरम्भ-आदि दोष नहीं लगते हैं, क्योंकि वह साधुके निमित्त नहीं बनाया जाता है, तथा शास्त्रमें, शिष्टकुलमें भिक्षा ग्रहण करनेका विधान है, इसलिये भी शिष्टकुलमें आहार ग्रहण करनेमें दोष नहीं आसकता, इतना ही समाधान काफी है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

અને એજ 'દેય' કહેવાય છે એ પ્રકારના આહારને પણ ગ્રહણ કરવાનો નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે, કારણ કે એ લેવાથી આરંભ અને અંતરાય આદિ દોષોનો પ્રસંગ ઉત્પન્ન થાય છે

જે આહાર પોતાને માટે અને પોતાના આશ્રિત જનોના ઉપભોગને માટે ઉદાર-બુદ્ધિથી નિષ્પન્ન કરવામાં આવે છે તે અનિયત દાનને માટે હોવાથી 'અદેય' કહેવાય છે એ અદેય આહાર ગ્રહણ કરવાથી સાધુને આરંભ-આદિ દોષો લાગતા નથી, કારણ કે એ સાધુને માટે બનાવવામાં આવેલો હોતો નથી. તથા શાસ્ત્રમાં શિષ્ટકુળમાં ભિક્ષા ગ્રહણ કરવાનું વિધાન છે, તેથી પણ શિષ્ટ-કુળમાં આહાર ગ્રહણ કરવામાં દોષ લાગી શકતો નથી એટલું જ સમાધાન પૂરતું છે (૪૯-૫૦)

१५ २० १६ १७ १८ १९
तं भवे भत्त-पाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
२१ २२ २५ २४ २६ २३
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥ ५२ ॥

छाया—अशनं पानकं वापि, खाद्यं स्वाद्यं तथा ।
यज्जानीयाच्छृणुयाद्वा, वनीय-(प)-कार्थं प्रकृतमिदम् ॥५१॥
तद्भवेद्भक्त-पानं तु, संयतानामकल्पिकम् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥५२॥

सान्वयार्थः-जं असणं पाणगं वावि खाइमं तहा साइमं=जो अशन पान खादिम स्वादिम इमं वणिमट्ठा पगडं=यह भिखारी और दरिद्रोंके लिए उपकल्पित है ऐसा जाणेज्ज=जान लेवे वा=अथवा सुणिज्जा=किसी दूसरेसे सुन लेवे तो तं=वह भत्तपाणं तु=आहार-पानी संजयाणं=साधुओंके लिए अकप्पियं=अकल्पनीय भवे=होता है, (अतः) दिंतियं=देती हुईसे साधु पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥५१-५२॥

टीका-'असणं०' इत्यादि 'तं भवे०' इत्यादि च । यद् अशनादिकं वनीय-(प)कार्थम्=वनीय(प)कः=याचकमात्रं, यद्वा सिद्धान्नमात्रोपजीवी, अथवा वनी=स्वकीयदुरवस्थाप्रदर्शनपुरःसरं प्रियाऽऽलापादिना लभ्यद्रव्यं, तां याति=प्राप्नोतीति वनीयः, स एव वनीयकः, 'वनीपके'तिपाठपक्षे तु तां पूर्वोक्तां वनीं पिवति=आस्वादयतीति, पाति=रक्षति वा वनीपः, स एव वनीपकः, अथवा वनुते=प्रायो दातुः सम्माननीयेष्वात्मनो भक्तिं प्रकटयन् याचत इति वा, ('वनु याचने' अस्माद्धातोरौणादिक ईपकप्रत्ययः ।) यद्विा वं=सान्त्वनं-बुभुक्षाजनिततापो-

---

'असणं०' इत्यादि, तथा 'त भवे०' इत्यादि ।

याचकमात्रको अथवा सिद्ध (तैयार) भिक्षा लेकर जीवन-निर्वाह करनेवालेको वनीयक कहते हैं, 'वनीपक' पाठपक्षमें-दाताके माननीय गुरु आदिमें भक्ति प्रकट करके लीजानेवाली भिक्षाको वनी कहते हैं, और ऐसी भिक्षा लेनेवाला 'वनीपक' कहलाता है, अथवा जो, भूखका ताप

असण० ઇત્યાદિ તથા तं भवे० ઇત્યાદિ

યાચક-માત્રને અથવા સિદ્ધ (તૈયાર) ભિક્ષા લઈને જીવન નિર્વાહકરનારાને 'વનીયક' કહે છે वनीपक પાઠના પક્ષમા-દાતાના માનનીય ગુરૂઆદિમા ભક્તિ પ્રકટ કરીને લેવામાં આવતી ભિક્ષાને वनी કહે છે, અને એવી ભિક્ષા લેનાર वनीपक કહેવાય છે. અથવા જે ભૂખનો તાપ મિટાવીને સાંત્વના આપે

पशमनलक्षणं नयति=प्रापयतीति वनीः, यद्वा वन्यते=याच्यते=भिक्ष्यत इति वनी=भिक्षणीयद्रव्यम्, ('वनु याचने' अस्मादौणादिक इन् कृदिकारादिति ङीष्) तां पाति=उपकल्प्य रक्षतीति वनीपः=गृहस्थस्तं कायति=प्रार्थयते प्रियोक्त्यादिनेति वनीपकस्तदर्थमिदं प्रकृतमित्यादि पूर्ववत् ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

मूलम्-असणं पाणगं वावि, खाइमं साइमं तहा ।
जं जाणेज्ज सुणेज्जा वा, समणट्ठा पगडं इमं ॥५३॥
तं भवे भत्त-पाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तादिसं ॥५४॥

छाया—अशनं पानकं वापि, खाद्यं स्वाद्यं तथा ।
यज्जानीयाच्छृणुयाद्वा, श्रमणार्थं प्रकृतमिदम् ॥५३॥
तद्भवेद्भक्त-पानं तु, संयतानामकल्पिकम् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥५४॥

सान्वयार्थः-जं असणं पाणगं वावि खाइमं तहा साइमं=जो अशन पान खादिम स्वादिम इमं समणट्ठा पगडं=यह निर्ग्रन्थ शाक्य तापस गैरिक और आजीवक, इन पांच प्रकारके श्रमणोंके लिए उपकल्पित है, ऐसा जाणेज्ज=जान लेवे वा=अथवा सुणिज्जा=किसी दूसरेसे सुन लेवे तो तं=वह भत्तपाणं तु=आहार-पानी संजयाणं=साधुओंके लिए अकप्पियं=अकल्पनीय भवे=होता है, (अतः) दिंतियं=देती हुईसे साधु पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥५३-५४॥

मिटाकर सान्त्वना प्रदान करे उसे वनी (भिक्षा देनेके लिये रखा हुआ अन्नादि) कहते हैं, उसको सुरक्षित रखनेवाला गृहस्थ 'वनीप' कहलाता है, और उस वनीप (गृहस्थ)से प्रार्थना करके भिक्षा प्राप्त करने वालेको 'वनीपक' कहते हैं। उस वनीपकके लिये बनाया हुआ देवे तो देनेवालीसे कहे कि ऐसा आहार मुझे कल्पना नहीं है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

તેને वनी (ભિક્ષા આપવાને રાખેલા અન્નાદિ) કહે છે એને સુરક્ષિત રાખનાર ગૃહસ્થ वनीप કહેવાય છે, અને એ वनीप (ગૃહસ્થ)ને પ્રાર્થના કરીને ભિક્ષા પ્રાપ્ત કરનારને वनीपक કહે છે એ વનીપકને માટે બનાવેલો આહાર આપે તો આપનારીને સાધુ કહે કે એવો આહાર મને કલ્પતો નથી (૫૧-૫૨)

टीका—'असणं०' इत्यादि, तथा 'तं भवे०' इत्यादि। श्रमणार्थं=श्रमणाः-लोकप्रसिद्ध्यनुरोधतो निर्ग्रन्थ-शाक्य-तापस-गैरिका-ऽऽजीवकभेदेन पञ्चधा, तत्र निर्ग्रन्थाः=पञ्चमहाव्रतधारिणः, शाक्याः=सौगताः, तापसाः=जटाधारिणः, गैरिकाः=रक्तवर्णधातुविशेषरञ्जितवस्त्रधारिणः, परिव्राजका इत्यर्थः, आजीवकाः=गोशालकमतानुयायिनस्तदर्थमिदं प्रकृतमित्यादि प्राग्वत् ॥५३॥५४॥

मूलम्—उद्देसियं[1] कीयगडं[2], पूइकम्मं[3] च[7] आहडं[4]।
अज्झोयरय[5] पामिच्चं[6], मीसजायं[8] विवज्जए[9] ॥५५॥

छाया—औद्देशिकं क्रीतकृतं, पूतिकर्म चाभ्याहृतम्।
अध्यवपूरकं प्रामित्यं, मिश्रजातं विवर्जयेत् ॥५५॥

सान्वयार्थः—उद्देसियं=औद्देशिक-किसी एकको उद्देश करके बनाये हुए अशनादिको कीयगडं=खरीदे हुएको पूइकम्मं=आधाकर्मादिदोषसे दूषित ऐसे आहारसे मिले हुएको आहडं=सामने लाये हुएको पामिच्चं=उधार लाये हुएको च=और मीसजाए=अपने तथा साधुओंके लिए मिश्रित (भेला) करके बनाये हुए अशनादिको (साधु) विवज्जए=वरजे, अर्थात् ऐसा आहार हो तो नहीं लेवे ॥ ५५ ॥

'असणं०' इत्यादि तथा 'तं भवे०' इत्यादि।

लोकमें पाँच प्रकारके श्रमण होते हैं-(१) निर्ग्रन्थ (पंच-महाव्रतधारी), (२) सौगत (बुद्धके अनुयायी), (३) तापस (जटाधारी), गैरिक (गेरुआ वस्त्र पहिननेवाले), (५) आजीवक (गोशालके मतानुयायी)। इनके लिये जो आहार बनाया गया हो वह, संयमियोंके लिये कल्प्य नहीं है, अत एव ऐसा आहार देनेवालीसे साधु कहे कि मुझे नहीं कल्पता है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

અસણં૦ ઇત્યાદિ તથા તં ભવે૦ ઇત્યાદિ.

લોકમાં પાંચ પ્રકારના શ્રમણો હોય છે. (૧) નિર્ગ્રંથ (પંચમહાવ્રતધારી), (૨) સૌગત (બુદ્ધના અનુયાયી), (૩) તાપસ (જટાધારી), (૪) ગૈરિક (ગેરૂઆ વસ્ત્રો પહેરનારા), (૫) આજીવક (ગોશાળના મતાનુયાયી) એમને માટે જે આહાર બનાવવામાં આવ્યો હોય તે સંયમીઓને માટે કલ્પ્ય નથી, તેથી એવો આહાર આપનારીને સાધુ કહે કે તે મને કલ્પતો નથી (૫૩-૫૪)

टीका-'उद्देसियं०' इत्यादि। १-औद्देशिकम्=उद्देशनमुद्देशस्तेन कृत-मौद्देशिकम्। तद्विविधं-सामान्यौद्देशिकं विशेषौद्देशिकं च, तत्राद्यं-प्रतिदिनं स्वार्थं सम्पाद्यते तावत्सम्पादनप्रवृत्तौ सत्यां 'भिक्षादानं गृहस्थाऽऽचारः' इति बुद्ध्या 'यः कश्चित्साधुरागच्छेत्तस्मै देय'-मिति सामान्यत उद्दिश्य समधिकं निष्पादितम्। द्वितीयं-कमप्येकं साधुं व्यक्ति-विशेषरूपेणोद्दिश्य सम्पादितम्। २-क्रीतकृतं=क्रयणं गृहस्थकर्तृकं, तेन सम्पादितं क्रीतकृतं क्रीतमित्यर्थः, तत्त्रिविधं-द्रव्यक्रीतं, भावक्रीतं, मिश्रक्रीतञ्च, तत्र द्रव्य-क्रीतं=स्वपरतदुभयभेदेन त्रिधा-स्वद्रव्यक्रीतं, परद्रव्यक्रीतम्, उभयद्रव्यक्रीतञ्च। तदपि सचित्ताऽ-चित्त-मिश्रभेदात्प्रत्येकं

'उद्देसियं०' इत्यादि। [१] किसीको उद्देश करके बनाया हुआ आहार, औद्देशिक कहलाता है। वह दो प्रकारका है-१-सामान्य-औद्देशिक और २-विशेष-औद्देशिक। जितना आहार, प्रतिदिन गृहस्थ बनाता है उतना आहार बनाते समय ऐसा विचार करना कि 'भिक्षा देना गृहस्थका कर्त्तव्य है, इसलिये जो कोई साधु आवेगा उसे दे देंगे' ऐसा विचार कर बनाया हुआ आहार 'सामान्य-औद्देशिक' और किसी एक साधुके निमित्त बनाया हुआ आहार, 'विशेष-औद्देशिक' कहलाता है।

[२] खरीद किया हुआ आहार क्रीतकृत कहलाता है। वह तीन प्रकारका है (१)-द्रव्य-क्रीत (२)-भावक्रीत (३)-मिश्रक्रीत। द्रव्यक्रीत तीन प्रकारका है- (१)-अपने द्रव्यसे खरीदा हुआ, (२)-पराये द्रव्यसे खरीदा हुआ, (३)-दोनों द्रव्योंसे खरीदा हुआ। ये तीनों भेद तीन२ प्रकारके हैं। स्वद्रव्य

उद्देसियं० ઇત્યાદિ (૧)-કોઇને ઉદ્દેશીને બનાવેલો આહાર ઔદ્દેશિક કહેવાય છે તે બે પ્રકારનો હોય છે (૧) સામાન્ય-ઔદ્દેશિક અને (૨) વિશેષ-ઔદ્દેશિક જેટલો આહાર પ્રતિદિન ગૃહસ્થ બનાવે છે એટલો આહાર બનાવતી વખતે એવો વિચાર કરવો કે 'ભિક્ષા આપવી એ ગૃહસ્થનુ કર્તવ્ય છે, તેથી જો કોઇ સાધુ આવશે તો તેને આપીશ' એવો વિચાર કરીને બનાવેલો આહાર સામાન્ય-ઔદ્દેશિક, અને કોઇ એક સાધુને નિમિત્તે બનાવેલો આહાર વિશેષ-ઔદ્દેશિક કહેવાય છે

(૨)-ખરીદ કરેલો આહાર ક્રીતકૃત કહેવાય છે તે ત્રણ પ્રકારનો છે- (૧) દ્રવ્યક્રીત, (૨) ભાવક્રીત, (૩) મિશ્રક્રીત દ્રવ્યક્રીત ત્રણ પ્રકારનો છે-(૧) પોતાના દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૨) પરાયા દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૩) બેઉ દ્રવ્યોથી ખરીદેલો

त्रिविधं–सचित्तस्वद्रव्यक्रीतम्, अचित्तस्वद्रव्यक्रीतं, मिश्रस्वद्रव्यक्रीतं, सचित्तपरद्रव्यक्रीतम्, अचित्तपरद्रव्यक्रीतं, मिश्रपरद्रव्यक्रीतं, सचित्तोभयद्रव्यक्रीतम्, अचित्तोभयद्रव्यक्रीतं, मिश्रोभयद्रव्यक्रीतश्चेति। इत्थं द्रव्य-क्रीतं नवधा भवति।

भाव-क्रीतं द्विविधं–स्वभावक्रीतं परभावक्रीतञ्च; तत्र स्वभावक्रीतं–साधौ समुपागते तदर्थं गृहस्थेन स्वविद्या-[१]मन्त्रादि दत्त्वा क्रीतम्। परभावक्रीतं–विद्या-

१–विद्या-ससाधना रोहिणीप्रज्ञप्त्यादिरूपा, मन्त्रः–असाधनो वशीकरणादिः।

क्रीतके भेद–(१) अपने सचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ, (२)–अपने अचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ, (३)–अपने सचित्त और अचित्त, दोनों प्रकारके द्रव्यसे खरीदा हुआ।

परद्रव्यक्रीतके भेद–(१)–दूसरेके सचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ, (२)–दूसरेके अचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ, (३) दूसरेके दोनों प्रकारके द्रव्यसे खरीदा हुआ।

उभयक्रीतके भेद–(१)–दोनोंके सचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ (२) दोनोंके अचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ (३) दोनोंके सचित्त और अचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ। ये सब द्रव्यक्रीत हैं।

भाव-क्रीत, दो–प्रकारका है–(१)–स्व-भावक्रीत, (२)–पर-भावक्रीत। साधुके आने पर, साधुके लिये, अपनी विद्या या अपना मन्त्र दे कर, गृहस्थद्वारा खरीदा हुआ आहार स्व-भावक्रीत है, दूसरेने विद्या-मंत्र

એ ત્રણે ભેદ ત્રણ-ત્રણ પ્રકારના છે સ્વદ્રવ્યક્રીતના ભેદ–(૧) પોતાના સચિત્ત દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૨) પોતાના અચિત્ત દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૩) પોતાના સચિત્ત અને અચિત્ત બેઉ પ્રકારના દ્રવ્યથી ખરીદેલો

પરદ્રવ્યક્રીતના ભેદ–(૧) બીજાના સચિત્ત દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૨) બીજાના અચિત્ત દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૩) બીજાના બેઉ પ્રકારના દ્રવ્યથી ખરીદેલો

ઉભયક્રીતના ભેદ–(૧) બેઉના સચિત્ત દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૨) બેઉના અચિત્ત દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૩) બેઉના સચિત્ત અને અચિત્ત દ્રવ્યથી ખરીદેલો એ બધો દ્રવ્યક્રીત છે

ભાવક્રીત બે પ્રકારનો છે (૧) સ્વ-ભાવક્રીત, (૨) પર-ભાવક્રીત, સાધુ આવે ત્યારે સાધુને માટે પોતાની વિદ્યા યા પોતાનો મંત્ર આપીને ગૃહસ્થદ્વારા ખરીદેલો આહાર એ સ્વ-ભાવક્રીત છે. બીજાએ વિદ્યા-મંત્ર આપીને સાધુને માટે

मन्त्रादि दत्त्वा साधुकृते परेण क्रीतमुपलभ्यान्येन गृहस्थेन दीयमानं तदनेकविधं स्वयमूह्यम् ।

मिश्र-(द्रव्य-भावरूप)-क्रीतस्य च नव भङ्गाः, यथा—

१—स्वकीयेन द्रव्येण स्वकीयेन भावेन ।
२—स्वकीयेन द्रव्येण परकीयेण भावेन ।
३—परकीयेण द्रव्येण स्वकीयेन भावेन ।
४—परकीयेण द्रव्येण परकीयेण भावेन ।
५—स्वकीय-द्रव्य-भावाभ्यां परकीयेण द्रव्येण ।
६—स्वकीय-द्रव्य-भावाभ्यां परकीयेण भावेन ।

देकर, साधुके लिये आहार आदि खरीदा हो और साधुके आने पर उस आहारको दूसरा लेलेवे तो उसे परभाव-क्रीत कहते हैं, वह अनेक प्रकारका है सो स्वयं समझ लेना चाहिये ।

मिश्र-(द्रव्य-भावरूप)-क्रीतके नौ भंग होते हैं—

१-अपने द्रव्यसे　　अपने भावसे ।
२-अपने द्रव्यसे　　परके भावसे ।
३-परके द्रव्यसे　　अपने भावसे ।
४-परके द्रव्यसे　　परके भावसे ।
५-अपने द्रव्य-भावसे　　परके द्रव्यसे ।
६-अपने द्रव्य-भावसे　　परके भावसे ।

આહારાદિ ખરીદેલા હોય અને સાધુ આવે ત્યારે એ આહારને બીજો લઈ લે તો તે પરભાવક્રીત કહેવાય છે તે અનેક પ્રકારના હોય છે તે પોતાની મેળે સમજી લેવુ

મિશ્ર (દ્રવ્ય-ભાવરૂપ) ક્રીતના નવ ભાગા થાય છે

૧ પોતાના દ્રવ્યથી પોતાના ભાવથી
૨ પોતાના દ્રવ્યથી પરના ભાવથી.
૩ પરના દ્રવ્યથી પોતાના ભાવથી
૪ પરના દ્રવ્યથી પરના ભાવથી
૫ પોતાના દ્રવ્ય-ભાવથી પરના દ્રવ્યથી
૬ પોતાના દ્રવ્ય-ભાવથી પરના ભાવથી

७—परकीय-द्रव्य-भावाभ्यां स्वकीयेन द्रव्येण ।

८—परकीय-द्रव्य-भावाभ्यां स्वकीयेन भावेन ।

९—स्वकीय-द्रव्य-भावाभ्यां परकीय-द्रव्यभावाभ्याञ्च क्रीतम्, इति ।

एष च दोष उद्गमदोषान्तर्गतत्वेन गृहस्थोत्थितः, उक्तञ्च—

"सोलस उग्गम-दोसे, गिहिणो उ समुट्ठिए वियाणाहि ।
उप्पायणा य दोसे, साहूओ समुट्ठिए जाण ॥ १ ॥ इति'

३-पूतिकर्म=पूतेः=अपवित्रस्य कर्म=मिलनरूपं पूतिकर्म लक्षणया तेन युक्तं पूतिकर्म । पूतिकरणं द्रव्यभावभेदाद्विप्रकारकम्, तत्र-

द्रव्यतो यथा-शुचिद्रव्येऽपवित्र-सम्मेलनं, यथा पेय-पयःपरिपूरितपात्रेऽल्पी-

---

७-परके द्रव्य-भावसे अपने द्रव्यसे ।

८-परके द्रव्य-भावसे अपने भावसे ।

९-अपने द्रव्य-भावसे और परके द्रव्य-भावसे खरीदा हुआ ।

यह क्रीतकृत दोष, उद्गमदोषोंके अन्तर्गत है, इसलिये गृहस्थके द्वारा लगता है । कहा भी है—

" सोलह उद्गम दोष, गृहस्थके द्वारा लगते हैं और उत्पादना दोष, साधु द्वारा लगते हैं । "

[३] पूतिकर्म-पवित्र वस्तुमें अपवित्र वस्तुके मिल जानेको पूतिकर्म कहते हैं, यह दो प्रकारका है-(१)-द्रव्य-पूतिकर्म और (२) भाव-पूतिकर्म । (१)-पवित्र द्रव्यमें अपवित्र द्रव्य मिलाना द्रव्य-पूति-कर्म है, जैसे पीने योग्य दूधसे भरे हुए वर्त्तनमें थोडीसी भी मदिराका मिलजाना, अथवा

---

૭ પરના દ્રવ્ય-ભાવથી પોતાના દ્રવ્યથી

૮ પરના દ્રવ્ય-ભાવથી પોતાના ભાવથી

૯ પોતાના દ્રવ્ય-ભાવથી અને પરના દ્રવ્ય ભાવથી ખરીદેલો.

એ ક્રીતકૃત દોષ ઉદ્‌ગમ દોષની અંદર રહેલો છે, તેથી કરીને ગૃહસ્થની દ્વારા લાગે છે કહ્યું છે કે-"સોળ ઉદ્‌ગમદોષ ગૃહસ્થદ્વારા લાગે છે અને ઉત્પાદનાદોષ સાધુદ્વારા લાગે છે."

(૩) પૂતિકર્મ-પવિત્ર વસ્તુમા અપવિત્ર વસ્તુ મળી જાય તેને પૂતિકર્મ કહે છે. એ પ્રકારનું છે (૧) દ્રવ્ય-પૂતિકર્મ અને (૨) ભાવ-પૂતિકર્મ (૧) પવિત્ર દ્રવ્યમા અપવિત્ર દ્રવ્ય મેળવવું એ દ્રવ્ય-પૂતિકર્મ છે, જેમકે પીવા યોગ્ય દૂધથી ભરેલા વાસણમા થોડીક મદિરાનુ મળી જવું, અથવા પીવા યોગ્ય ખીર આદિમાં

यानपि सुरासंसर्गः, यद्वा पायसादिपवित्रभोक्तव्यपदार्थे क्षतादिक्षरद्रक्त-पूयादि-बिन्दुमात्रस्यापि मिश्रणम् ।

भावतः—विशुद्ध आहारादावाधाकर्मादिदोषदूषितान्नादेः सिक्थमात्रेणापि मेलनम्, तदशनेन च साधूनां चारित्रमालिन्यं भवतीति भावपूतिरभिधीयते ।

दोषोऽयमाधाकर्मादिदोषदूषितान्नादिसंसृष्टहस्तभाजनादिनिमित्तेनापि सम्भवति ।

४-आहृतं=साधुनिमित्तं गृहादितोऽभिमुखमानीतम् । ५-'अज्झोयरय' इति लुप्त-विभक्तिकं पदम्, 'अध्यवपूरक' मिति तच्छाया, स्वार्थं पाकक्रियायां समारब्धायां

खाने योग्य खीर आदिमें रक्त पीप आदि अपवित्र पदार्थका मिल जाना। (२) विशुद्ध आहार आदिमें आधाकर्मी आदि दोषोंसे दूषित अन्नका एक भी सीथ (कण) मिल जाना, भाव-पूतिकर्म है। ऐसा आहार लेनेसे मुनियोंके चारित्रमें मलिनता आजाती है, इस कारण इसे भावपूति कहते हैं।

आधाकर्मी दोषसे दूषित अन्न आदिसे भरे हुए हाथ या बर्त्तनके निमित्तसे भी यह दोष लग जाता है।

[४]–आहृत–साधुके लिये साधुके सामने लाया हुआ आहार आदि अभ्याहृत कहलाता है, ऐसा आहार लेना अभ्याहृत-दोष-दूषित आहार है।

[५] अध्यवपूरक–अपने लिये भोजन बनाना प्रारम्भ किया हो उस समय, 'गाँवमें साधु पधारे हैं' यह सुनकर और अधिक मिला कर

લોહી પરૂ આદિ અપવિત્ર પદાર્થનું પડી જવુ (૨) વિશુદ્ધ આહારાદિમા આધાકર્મી આદિ દોષોથી દૂષિત અન્નનો એક પણ કણ મળી જવો એ ભાવપૂતિ કર્મ છે એવો આહાર લેવાથી મુનિઓના ચારિત્રમા મલિનતા આવી જાય છે. તેથી તેને ભાવપૂતિ કહે છે

આધાકર્મી દોષથી દૂષિત અન્નાદિથી ભરેલા હાથ યા વાસણના નિમિત્તથી પણ એ દોષ લાગી જાય છે

(૪) આહૃત–સાધુને માટે સાધુની સામે લાવેલો આહાર આદિ અભ્યાહૃત કહેવાય છે એવો આહાર અભ્યાહૃત દોષ-દૂષિત આહાર છે,

(૫) અધ્યવપૂરક–પોતાને માટે ભોજન બનાવવાનો પ્રારભ કર્યો હોય, તે સમયે 'ગામમા સાધુ પધાર્યા છે' એમ સાંભળીને બીજું વધારે મેળવીને બના-

ग्रामे साधुसमागमनं निशम्य तदर्थमधिकनिक्षेपणेन सम्पादितमिति तदर्थः । इद-मत्र हृदयम्–यद्येवमन्यलिङ्गनिमित्तमधिकं पूरितं, तत्र तद्दानानन्तरमवशिष्टमन्नादिकं साधुभिर्ग्राह्यं, तत्रान्तरायदोषानवतारादिति । ६-प्रामित्यं=साधुनिमित्तमुद्धाररूपेण कुतश्चिदानीय दीयमानम् ।७-मिश्रजातं=मिश्रेण मिश्रभावेन [1]पूर्वत एव दातृ-भिक्षा-चरोभयानुसन्धानेनेत्यर्थः जातं=निष्पन्नम् । तद्द्विविधं सामान्यमिश्रजातं विशेषमि-श्रजातं चेति, तत्र–सामान्यमिश्रजातं=सामान्यरूपेण स्वपोष्यवर्गार्थं गृहस्थागृहस्थ-साधु-पाखण्डिप्रभृतिभिक्षाचरार्थञ्चैकत्र रन्धितम्, विशेषमिश्रजातं यद्दातृनिमित्त

१ पूर्वतः=पाकार्थं प्रवृत्तेः प्रागेव ।

बनाया हुआ आहार अध्यवपूरक कहलाता है, तात्पर्य यह कि यदि अन्यलिङ्गियोंके निमित्त अधिक आहार मिला कर बनाया हो तो उन्हें दे देनेके बाद बचा हुआ आहार, साधुओंको ग्राह्य है, क्योंकि वहाँ अन्तराय-दोष नहीं लगता ।

[६] प्रामित्य-साधुके निमित्त कहींसे उधार लेकर दिया जानेवाला आहार, प्रामित्य कहलाता है ।

[७] मिश्रजात–पहलेसे ही दाता और भिक्षु दोनोंके लिये बनाया हुआ आहार, मिश्रजात है ।

मिश्रजातके दो भेद हैं–(१)-सामान्य मिश्रजात और (२)-विशेष मिश्रजात । (१)-साधारण तौर पर अपने पोष्यवर्गके लिये तथा गृहस्थ, अगृहस्थ, साधु, पाखण्डी आदिके लिये मिलाकर रांधा हुआ आहार 'सामान्य मिश्रजात' कहलाता है । (२)–जो आहार आदि अपने लिये

વેલો આહાર અધ્યવપૂરક કહેવાય છે તાત્પર્ય એ છે કે જો અન્યલિંગીઓ (અન્યધર્મીઓ)ને નિમિત્તે વધારે આહાર મેળવીને બનાવ્યો હોય તો તેને આપી દીધા પછી વધેલો આહાર સાધુઓને માટે ગ્રાહ્ય બને છે, કારણ કે તેમાં અંતરાય દોષ લાગતો નથી

(૬) પ્રામિત્ય–સાધુને નિમિત્તે કહીંથી ઉધાર લાવીને આપવામાં આવેલો આહાર પ્રામિત્ય કહેવાય છે

(૭) મિશ્રજાત–પહેલા જ દાતા અને ભિક્ષુ બેઉને માટે બનાવેલો આહાર મિશ્રજાત છે. મિશ્રજાતના બે ભેદ છે (૧) સામાન્ય-મિશ્રજાત (૨) વિશેષ-મિશ્ર-જાત. (૧) સાધારણ રીતે પોતાના પોષ્યવર્ગને માટે તથા ગૃહસ્થ, અગૃહસ્થ, સાધુ પાખંડી આદિને માટે એકઠો કરીને રાંધેલો આહાર 'સામાન્ય-મિશ્રજાત' કહેવાય છે

केवलं[1] साधुनिमित्तश्च सहैव निष्पन्नमन्नादिकम्, तद् विवर्जयेत्=परित्यजेत् न गृह्णीयादित्यर्थः, साधुरिति शेषः। औद्देशिका-ध्यवपूरक-मिश्रजातेषु परस्परमेष विशेषः-औद्देशिकं-पाकप्रवृत्त्यनन्तरं साध्वागमनात्प्रागेकमेव साधुं सामान्यरूपेण विशेषरूपेण वोद्दिश्य सम्पादिते सम्भवति। अध्यवपूरकं=साधुसमागमश्रवणसमनन्तरमधिकनिक्षेपेण जायते। मिश्रजातं-पाकप्रवृत्तिसमय एव गृहस्थ-भिक्षाचरयोः कृते संमिश्रितेऽन्नादौ समुत्पद्यते ॥ ५५ ॥

मूलम्-उग्गमं से अ पुच्छिज्जा, कस्सट्ठा केण वा कडं?।
सुच्चा निस्संकियं सुद्धं, पडिगाहिज्ज संजओ ॥५६॥

छाया—उद्गमं तस्य च पृच्छेत्कस्यार्थं केन वा कृतम्?।
श्रुत्वा निःशङ्कितं शुद्धं, प्रतिगृह्णीयात्संयतः ॥५६॥

१ इतरभिक्षाचरव्यतिरेकेण।

और साधुके लिये मिलाकर बनाया जाय उसे 'विशेषमिश्रजात' कहते हैं। ऊपर कहे हुए सब प्रकारके आहारका अनगारको परिहार करना चाहिये।

औद्देशिक, अध्यवपूरक और मिश्रजात दोषोंमें यह भेद है-भोजन बनानेमें प्रवृत्त होनेके पश्चात् और साधुके आनेसे पहले, किसी भी एक साधुके लिये अथवा अमुक एक साधुके लिये बनाये हुए आहारमें औद्देशिक दोष होता है। आहार बनाते समय, साधुका आगमन सुन कर अधनमें अधिक ऊर (डाल) कर बनानेसे अध्यवपूरक दोष होता है। भोजन बनाते समय, गृहस्थ और भिक्षु, दोनोंके लिये भोजन बनानेसे मिश्रजात दोष लगता है ॥५५॥

(२) જે આહાર આદિ પોતાને માટે અને સાધુને માટે એકઠો કરીને બનાવવામા આવે તેને વિશેષ-મિશ્રજાત કહે છે ઉપર કહેલા બધા પ્રકારના આહારનો અણગારે પરિહાર કરવો જોઇએ

ઔદ્દેશિક, અધ્યવપૂરક અને મિશ્રજાત દોષોમા આ ભેદ છે-ભોજન બનાવવામા પ્રવૃત્ત થયા પછી અને સાધુ આવ્યા પહેલા, કોઇ પણ એક સાધુને માટે અથવા અમુક એક સાધુને માટે બનાવેલા આહારમાં ઔદ્દેશિક દોષ લાગે છે આહાર બનાવતી વખતે સાધુનુ આગમન સાભળીને આધણમા વધારે ઓરી દેવાથી અધ્યવપૂરક દોષ લાગે છે ભોજન બનાવતી વખતે ગૃહસ્થ અને ભિક્ષુ બેઉને માટે ભોજન બનાવવાથી મિશ્રજાત દોષ લાગે છે (૫૫)

सान्वयार्थः-से=उस आहारादिकी उग्गमं=उत्पत्ति पुच्छिज्जा=पूछे कि-(यह अशनादि) कस्सट्ठा=किसके लिए वा=और केण=किसने कडं=बनाया है?, फिर सुच्चा=गृहस्थके मुखसे अशनादिकी उत्पत्ति सुनकर (यदि वह) निस्संकियं=औद्देशिक आदि शङ्कारहित य=और सुद्धं=निर्दोष हो तो संजए=साधु पडिगाहिज्ज=ग्रहण कर लेवे ॥५६॥

टीका—'उग्गमं' इत्यादि। कस्यार्थे=किंनिमित्तम्, केन वा कर्त्रा कृतं=निष्पादितम्, अन्नादौ 'विशुद्धमविशुद्धं वे'ति संशये तन्निराकरणाय तस्य संशयितस्यान्नादेः उद्गमम्=उद्गमनमुद्गमस्तम् उत्पत्तिमित्यर्थः, पृच्छेत्=प्रतिवचनेन ज्ञातुमिच्छेत्, श्रुत्वा 'प्रतिवचन'-मितिशेषः, संयतः=शङ्किताऽऽहारग्रहणभीरुः साधुः, निःशङ्कितं=दोषशङ्कावर्जितम् अत एव शुद्धं=निरवद्यं प्रतिगृह्णीयात्-निरवद्यत्वेन निश्चये सतीति भावः ॥ ५६ ॥

मूलम्-असणं[1] पाणगं[2] वावि[4 3], खाइमं[5] साइमं[7] तहा[6]।
पुप्फेसु[8] होज्ज[13] उम्मीसं[12], बीएसु[9] हरिएसु[10] वा[11] ॥५७॥
तं[14] भवे[19] भत्त-पाणं[15] तु[16], संजयाण[17] अकप्पियं[18]।
दिंतियं[20] पडियाइक्खे[21], न[24] मे[23] कप्पइ[25] तारिसं[22] ॥५८॥

छाया—अशनं पानकं वाऽपि, खाद्यं स्वाद्यं तथा।
पुष्पैर्भवेदुन्मिश्रं, बीजैर्हरितैर्वा ॥५७॥
तद्भवेद्भक्त-पानं तु, संयतानामकल्पिक(त)म्।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥५८॥

'उग्गमं०' इत्यादि। 'आहार अशुद्ध है या विशुद्ध है' इस प्रकारका सन्देह होने पर साधु, ऐसा पूछ लेवें कि यह आहार, किसके लिये बनाया गया है और किसने बनाया है?, इसका उत्तर सुन कर निर-वद्यताका निश्चय करके निःशंकित अत एव निरवद्य आहार हो तो साधु ग्रहण करें ॥५६॥

उग्गमं० ઇત્યાદિ 'આહાર અશુદ્ધ છે કે વિશુદ્ધ છે' એ પ્રકારનો સંદેહ પડતા સાધુ એવું પૂછી લે કે આહાર કોને માટે બનાવેલો છે અને કોણે બનાવ્યો છે ?, એનો ઉત્તર સાંભળીને નિરવદ્યતાનો નિશ્ચય કરીને નિઃશંકિત, એટલે નિરવદ્ય આહાર હોય તો સાધુ ગ્રહણ કરે (૫૬)

सान्वयार्थः-असणं पाणगं वावि खाइमं तहा साइमं=अशन पान खादिम तथा स्वादिम (यदि) पुप्फेसु=सचित्त फूलोंसे बीएसु=शालि आदि बीजोंसे वा=अथवा हरिएसु=हरित कायसे उम्मीसं=मिश्रित होज्ज=हो तो तं=वह भत्तपाणं तु=अशनादि संजयाणं=साधुओंके लिए अकप्पियं=अकल्पनीय भवे=है, (अतः) दिंतियं=देती हुईसे साधु पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥५७॥-५८॥

टीका-'असणं०' इत्यादि, 'तं भवे०' इत्यादि च। यदशनादिकं सचित्त-पुष्प-बीज-हरितकायैरुन्मिश्रं=संयुक्तं भवेत्तदकल्प्यमिति वाक्यार्थः। सूत्रे 'पुप्फेसु' इत्यादौ तृतीयार्थे सप्तमी ॥५७॥५८॥

मूलम्-असणं[१] पाणगं[२] वावि[४], खाइमं[३] साइमं[५] तहा[७]।
उदगम्मि[८] होज[१२] निक्खित्तं[११], उत्तिंगपणगेसु[९] वा[१०] ॥५९॥
तं[१३] भवे[१८] भत्तपाणं[१४] तु[१५], संजयाण[१६] अकप्पियं[१७]।
दिंतियं[१९] पडियाइक्खे[२०], न[२३] मे[२२] कप्पइ[२४] तारिसं[२१] ॥६०॥

छाया—अशनं पानकं वापि, खाद्यं स्वाद्यं तथा।
उदके भवेन्निक्षिप्तमुत्तिङ्गपनकेषु वा ॥५९॥
तद्भवेद्भक्त-पानं तु, संयतानामकल्पिक(त) म्।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥६०॥

सान्वयार्थः-असणं पाणगं वावि खाइमं तहा साइमं=जो अशनादि चार प्रकारका आहार (यदि) उदगम्मि=सचित्त जलके ऊपर वा=अथवा उत्तिंगपणगेसु=कीड़ियोंके दरके ऊपर या लीलन-फूलन पर निक्खित्तं=रखा

'असणं०' इत्यादि, तथा 'तं भवे' इत्यादि। जो अशन पान आदि, सचित्त पुष्प, सचित्त बीज और हरितकायसे युक्त हो वह, संयमीके लिये कल्पनीय नहीं है, अतः ऐसा आहार देनेवालीसे साधु कहे कि-ऐसा आहार मुझे नहीं कल्पता है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

असणं० ઇત્યાદિ, તથા तं भवे० ઇત્યાદિ જે અશનપાન આદિ, સચિત્ત પુષ્પ, સચિત્ત બીજ અને હરિતકાય (વનસ્પતિ) થી યુકત હોય તે સયમીને માટે કલ્પનીય નથી, એટલે એવા આહાર આપનારીને સાધુ કહે કે-એવા આહાર મને કલ્પતો નથી (૫૭-૫૮)

हुआ होज्ज=हो तो तं=वह भत्तपाणं तु=अशनादि संजयाणं=साधुओंके लिए अकप्पियं=अकल्पनीय भवे=है, (अतः) दिंतियं=देती हुईसे साधु पडियाइक्खे= कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥५९॥६०॥

टीका—'असणं०' इत्यादि, 'तं भवे०' इत्यादि च। यदशनादिकमुदके= सचित्तजलोपरि, उत्तिङ्गपनकादिषु=उत्तिङ्गाः=भूमौ वर्त्तुलविवरविधायिनो गर्दभमुखाऽऽकृतयः क्षुद्रकीटविशेषाः, कीटिकानगरादयो वा, पनकः=अङ्कुरितोऽनङ्कुरितो वा पञ्चवर्णानन्तकायवनस्पतिविशेषः, तत्र निक्षिप्तं=स्थापितं भवेत्, तद्भक्त-पानं संयतानामकल्पिक(त)-मित्यादि पूर्ववत् ॥५९॥६०॥

मूलम्-असणं पाणगं वावि, खाइमं साइमं तहा ।
तेउम्मि हुज्ज निक्खित्तं, तं च संघट्टिया दए ॥६१॥
तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥ ६२ ॥

छाया—अशनं पानकं वापि, खाद्यं स्वाद्यं तथा ।
तेजसि भवेन्निक्षिप्तं, तच्च संघट्ट्य दद्यात् ॥६१॥
तद्भवेद्भक्तपानं तु, संयतानामकल्पिक(त)म् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥६२॥

सान्वयार्थः-असणं पाणगं वावि खाइमं तहा साइमं=जो अशन पान

'असणं०' इत्यादि, तथा 'तं भवे०' इत्यादि। जो अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य सचित्त जल पर रखा हुआ हो तथा किडीनगर (चिउँटियोंके समूह) या लीलन-फूलन पर रक्खा हो वह, संयमियोंके लिये कल्प्य नहीं है, अतः ऐसा आहार देनेवालीसे कहे कि 'ऐसा आहार मुझे कल्पता नहीं है' ॥ ५९ ॥ ६० ॥

असणं० ઇત્યાદિ, તથા तं भवे० ઇત્યાદિ જે અશન, પાન, ખાદ્ય, સ્વાદ્ય સચિત્ત જળ પર રાખેલો હોય, તથા કીડીનગર (કીડીઓનો સમૂહ) યા લીલન-ફૂલન પર રાખેલો હોય, તે સંયમીઓને માટે કલ્પનીય નથી. એટલે એવો આહાર આપનારીને સાધુ કહે કે-'એવો આહાર મને કલ્પતો નથી' (૫૯-૬૦)

खादिम स्वादिम तेउम्मि=तेजस्काय पर निक्खित्तं=रखा हुआ हुज्ज=हो च= अथवा तं=उस तेजस्कायको संघट्टिया=संघट्टा (छू) करके दए=देवे तो तं=वह भत्तपाणं तु=अशनादि संजयाणं=साधुओंके लिए अकप्पियं=अकल्पनीय भवे=है, (अतः) दिंतियं=देती हुईसे साधु पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥६१॥६२॥

टीका—'असणं०' इत्यादि, 'तं भवे०' इत्यादि च। यदशनादिकं तेजसि= तेजस्कायोपरि निक्षिप्तं=निहितं भवेत्, यच्च तत्=तेजः-अग्निकायमित्यर्थः, संघट्य= संस्पृश्य दद्यात्, तत्=उभयविधं भक्तपानं तु संयतानामकल्पिकं(तं) भवेत्, अतस्त-द्ददतीं प्रत्याचक्षीत-तादृशं मे न कल्पत इति ॥६१॥६२॥

मूलम्-एवं[१] उस्सिक्किया[२] ओसिक्किया[३], उज्जालिया[४] पज्जालिया[५]।
निव्वाविया[६] उस्सिंचिया[७], निस्सिंचिया[८] ओवत्तिया[९] ओयारिया[१०] दए[११]॥६३॥
तं[१२] भवे[१७] भत्त-पाणं[१३] तु[१४], संजयाण[१५] अकप्पियं[१६]।
दिंतियं[१८] पडियाइक्खे[१९], न[२२] मे[२१] कप्पइ[२३] तारिसं[२०] ॥ ६४ ॥

छाया—एवम् उत्क्षिप्य अवक्षिप्य, उज्ज्वाल्य प्रज्वाल्य ।
निर्वाप्य उत्सिच्य, निषिच्य अपवर्त्य अवतार्य दद्यात् ॥६३॥
तद्भवेद्भक्त-पानं तु, संयतानामकल्पिक(त)म् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥६४॥

अग्निकायके साक्षात् संघट्टेका निषेध करके अब परम्परा-संघट्टेका निषेध करते हैं—

सान्वयार्थः=एवं=जिस प्रकार अग्निकायको स्पर्श करके दिया जानेवाला अशनादि नहीं लेते, उसी प्रकार उस्सिक्किया=चूल्हे आदिमें इन्धनको अन्दर

'असणं०' इत्यादि, तथा 'तं भवे०' इत्यादि। जो अशन पान आदि, तेजस्काय पर रक्खा हो अथवा अग्निकायका संघट्टा करके देवे तो वह, साधुके लिये ग्राह्य नहीं है। अतः देनेवालीसे कहे कि-'ऐसा आहार, मुझे नहीं कल्पता है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

અસણં૦ ઇત્યાદિ, તથા તં ભવે૦ ઇત્યાદિ જે અશન પાન આદિ તેજસ્કાય પર રાખેલો હોય અથવા અગ્નિકાયનું સઘટન કરીને આપે તો તે સાધુને માટે ગ્રાહ્ય નથી એટલે તે આપનારીને સાધુ કહે કે 'એવો આહાર મને કલ્પતો નથી' (૬૧-૬૨)

सरका कर ओसिक्किया=अधिक इन्धनको चूल्हेके अन्दरसे बाहर निकालकर उज्जालिया=बुझी हुई अग्निको फूंक आदिसे उद्दीपित-सलगा-कर पज्जालिया= जलती हुई अग्निको अधिक प्रदीप्त कर निव्वाविया=अग्निको पानी आदिसे बुझाकर उस्सिंचिया=अग्निपर पकते हुए अन्नादिको कुछ बाहर निकाल कर निस्सिंचिया=उभरते हुए दुग्धादिमें जल छिड़ककर ओवत्तिया=अग्निपर रहे हुए अन्नादिको दूसरे बरतनमें निकालकर ओयारिया=अग्निपर रहे हुए अन्नादिके बरतनको नीचे उतारकर अर्थात् अग्निकायका परम्परासे संघट्टा करके दए=अशनादि देवे तो तं=वह भत्तपाणं तु=अशनादि संजयाणं=साधुओंके लिए अकप्पियं=अकल्पनीय भवे=है, (अतः) दितियं=देती हुईसे साधु पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ= नहीं कल्पता है ॥६३॥६४॥

टीका-'एवं०' इत्यादि, 'तं भवे०' इत्यादि च। एवम्=उक्तप्रकारेण तेजस्कायविषय इवेति भावः, उत्क्षिप्य='यावत्कालं साधवेऽन्नादिकं ददामि तावत्कालमग्निर्मा प्रशाम्यतु' इति बुद्ध्या चुल्ल्यादाविन्धनमुत्सार्य, अवक्षिप्य=दाहभयादिन्धनं निःसार्य, उज्ज्वाल्य अनुज्ज्वलितं फूत्कारादिनोद्दीप्य, प्रज्वाल्य=उद्दीप्तं प्रकर्षेण संवर्ध्य, निर्वाप्य=प्रशान्तीकृत्य, उत्सिच्य=अग्न्युपरिस्थितमन्नादिकं किञ्चिद्बहिष्कृत्य, निषिच्य=उच्छलद्दुग्धादिकं जलेन प्रशाम्य, अपवर्त्य=भाजनान्तरे

'एवं उस्सिक्किया०' इत्यादि, तथा 'तं भवे' इत्यादि।

'जब तक आहार देती हूं तब तक, अग्नि न बुझ जाय' ऐसा विचार कर चूल्हेमें इंधन सुलगाकर, अन्न आदि जलनेके भयसे इंधन बाहर निकाल कर, फूँक आदिसे चूल्हा जला कर, जलती अग्निको तेज कर या बुझा कर, अग्नि पर पकते हुए आहारको कुछ एक ओर कर, तथा पानी डाल कर उबाल (उफान) को शान्त कर, अथवा अन्न आदि सहित

एवं उस्सिक्किया० ઇત્યાદિ, તથા तं भवे० ઇત્યાદિ.

'જ્યાં સુધી આહાર આપતી હોઉં, ત્યાં સુધી અગ્નિ હોલવાઈ ન જાય,' એવો વિચાર કરીને ચૂલામાં ઈંધણાં સળગાવીને, અન્નાદિ બળી જવાના ભયથી ઈંધણાં બહાર કાઢીને, ફુંક આદિથી ચૂલો સળગાવીને, બળતા અગ્નિને તેજ કરીને યા બુઝાવીને, અગ્નિ પર પાકતા આહારને કોઇ એક બાજુએ કરીને તથા પાણી નાંખીને ઊભરાને શાંત કરીને, અથવા અન્નાદિ સહિત વાસણને નીચે

निधाय, अवतार्य=अन्नादिसहितं भाजनमेवोत्तार्य वा दद्यात्, तद्भक्त-पानं तु संयता-नामकल्पिकं(तं) भवेदतस्तद्ददतीं प्रत्याचक्षीत-'तादृशं मे न कल्पते' इति ६३॥६४॥

११ २ ५ ४ ३ ८ ७ ६ १
मूलम्-हुज्ज कट्ठं सिलं वावि, इट्टालं वावि एगया।
१० ९ १२ १३ १५ १४
ठवियं संकमट्ठाए, तं च होज्ज चलाचलं ॥६५॥
१९ १६ १८ २० २६ २४ २५
न तेण भिक्खू गच्छेज्जा, दिट्ठो तत्थ असंजमो।
२२ २३ २१ १९
गंभीरं झुसिरं चेव, सव्विंदिय-समाहिए ॥ ६६ ॥

छाया—भवेत्काष्ठं शिला वाऽपि, इष्टालं वाऽप्येकदा ।
स्थापितं संक्रमार्थं, तच्च भवेच्चलाचलम् ॥ ६५ ॥
न तेन भिक्षुर्गच्छेद्दृष्टस्तत्रासंयमः ॥
गम्भीरं शुषिरं चैव, सर्वेन्द्रिय-समाहितः ॥ ६६ ॥

सान्वयार्थः--एगया=किसी समय अर्थात् वर्षा आदिके समय संकमट्ठाए=जाने-आनेके लिए कट्ठं=काठ वावि=या सिलं=शिला वावि=अथवा इट्टालं=ईंटका टुकड़ा ठवियं=रखा हुआ हुज्ज=हो च=और तं=वह (यदि) चलाचलं=अस्थिर-डग-मगाता हुज्ज=हो तो तेण=उस मार्गसे तथा जो गंभीरं=ऊंडा-गहरा और झुसिरं=पोला स्थान हो उससे सव्विंदियसमाहिए=समस्त इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला भिक्खू=साधु न गच्छेज्जा=नहीं जावे, (क्योंकि) तत्थ=वहां पर केवली भगवानने असंजमो=असंयम दिट्ठो=देखा है ॥६५॥६६॥

टीका—'हुज्ज कट्ठं०' इत्यादि, 'न तेण०' इत्यादि च। एकदा=एकस्मिन् काले वर्षादौ यत् काष्ठं=सञ्चरणोपयोगि दारु, अपिवा शिला=प्रस्तरखण्डम् अपिवा

बर्त्तनको नीचे उतार कर यदि आहार देवे तो वह आहार अनगारके लिये ग्रहण करने योग्य नहीं है। अतः देनेवालीसे कहे कि-'ऐसा आहार मुझे नहीं कल्पता है' ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

'हुज्ज कट्ठं०' इत्यादि, तथा 'न तेण०' इत्यादि।

नदी आदिमें बरसात आदिके समय, जाने-आनेके लिये जो काठ,

ઉતારીને જો આહાર આપે તો તે આહાર અનગાર ને માટે ગ્રહણ કરવા યોગ્ય નથી એટલે તે આપનારીને સાધુ કહે કે-'એવો આહાર મને કલ્પતો નથી' (૬૩-૬૪)

હુજ્જ કટ્ઠં૦ ઇત્યાદિ તથા ન તેણ૦ ઇત્યાદિ

નદી આદિમા વરસાદને વખતે આવવા-જવા માટે જે લાકડાં, પત્થર, ઇંટ

इष्टालम्=इष्टकाशकलं, संक्रमार्थं=गमनागमनार्थं स्थापितम्=आरोपितं भवेत्, तच्च काष्ठादिकं यदि चलाचलम्=अस्थिरं कम्पमान भवेत् तदा तेन काष्ठादिना सर्वेन्द्रियसमाहितः=वशीकृतसकलेन्द्रियो भिक्षुः=साधुः न गच्छेत्। 'चेव'-शब्दः समुच्चये अपिचेत्यर्थः, गम्भीरं-निम्नत्वेन प्रकाशशून्यं, शुपिरं=गह्वरवत्सावकाशं 'प्रदेश'-मिति शेषः, न गच्छेदिति पूर्वेण सम्बन्धः। अगमने हेतुमाह-तत्रेति, तत्र=तस्मिन् असंयमः=स्वपरविराधनादिरूपो दृष्टः=अवलोकितः केवलिभिरिति शेषः। चलाचलविशेषणककाष्ठादिपदेन प्रस्खलन-पतनादिनाऽऽत्मविराधना, एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रियादिप्राणिगणोपमर्दनेन पर-विराधनासम्भावना च सूचिता। गम्भीरादिप्रदेशगमनेनापि प्रोक्तदोषसमधिकहिंस्रादिजन्तुजनितोपघातादिप्रचुरदोषसम्भवः सूचितः।

'सव्विंदियसमाहिए' इतिपदेन साधोरिन्द्रियविषयाऽऽसक्तिनिराकरण-

पत्थर या ईंट आदि रोप दिया हो और यदि वह हिलता हो तो समाधिमान् संयमी, उस मार्गसे गमन न करे। और जो प्रदेश, नीचा होनेसे अन्धकारमय हो या खड्डेवाला हो उससे भी साधुको गमन नहीं करना चाहिये, क्योंकि ऐसे मार्गमें गमन करनेसे स्व-पर-विराधना-रूप असंयम केवली भगवान्ने देखा है।

हिलते हुए काठ आदिपर चलनेसे रपटने या गिर पड़नेसे आत्मविराधनाकी और एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय आदि प्राणियोंके उपमर्दनसे पर-विराधनाकी सम्भावना सूचित की है। गहरे (नीचे) प्रदेशमें गमन करनेसे उक्त दोषोंके सिवाय हिंसक जन्तुओंसे उत्पन्न होनेवाला उपघात आदि बहुतसे दोषोंका होना सूचित किया है। 'सव्विंदियसमाहिए' पदसे यह

વગેરે રોપેલાં હોય અને જો તે હલતા હોય તો સમાધિવાન સંયમી એ માર્ગે ગમન ન કરે અને જે પ્રદેશ નીચો હોવાથી અંધકારમય હોય યા ખાડાવાળો હોય તે માર્ગે પણ સાધુએ ગમન કરવું ન જોઈએ, કારણ કે એવા માર્ગે ગમન કરવાથી સ્વ-પર-વિરાધનારૂપ અસંયમ કેવળી ભગવાને જોયો છે

હલતાં લાકડા આદિ પર ચાલવાથી લપસી જવાથી યા પડી જવાથી આત્મ-વિરાધનાની અને એકેન્દ્રિય દ્વીન્દ્રિય પ્રાણીઓના ઉપમર્દનથી પર-વિરાધનાની સંભાવના સૂચિત કરી છે નીચાણવાળા પ્રદેશમાં ગમન કરવાથી ઉક્તદોષો ઉપરાંત હિંસક જંતુઓથી ઉત્પન્ન થનારો ઉપઘાત આદિ ઘણા દોષો હોવાનું સૂચિત કર્યું છે. सव्विंदियसमाहिए પદથી એમ કહેવામાં આવ્યું છે કે સાધુઓએ

परायणता प्रतिपादिता । 'भिक्खु' पदेन च यमनियमपूर्वकमेव भिक्षाग्राहित्वमिति बोधितम् ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

मूलम्-निस्सेणिं फलगं पीढं, उस्सवित्ताणमारुहे ।
मंचं कीलं च पासायं, समणट्ठाए व दावए ॥ ६७ ॥
दुरूहमाणी पवडेज्जा, हत्थं पायं च लूसए ।
पुढवीजीवेवि हिंसेज्जा, जे य तन्निसिया जगे ॥ ६८ ॥
एयारिसे महादोसे, जाणिऊण महेसिणो ।
तम्हा मालोहडं भिक्खं, न पडिगिण्हंति संजया ॥ ६९ ॥

छाया—निश्रेणिं फलकं पीठम्, उत्सृज्य आरोहेत् ।
मञ्चं कीलञ्च प्रासादं, श्रमणार्थमेव दायिका ॥६७॥
दुरा (दू) रोहन्ती प्रपतेत्, हस्तौ पादौ च लूषयेत् ।
पृथ्वीजीवानपि हिंस्या,-द्यानि च तन्निःश्रितानि जगन्ति ॥६८॥
एतादृशान्महादोषान्, ज्ञात्वा महर्षयः ।
तस्मान्मालापहृतां भिक्षां, न गृह्णन्ति संयताः ॥६९॥

सान्वयार्थः-दावए=दान देनेवाली स्त्री यदि समणट्ठा एव=साधुके लिएही निस्सेणिं=नसैनी-निसरणी-सीढी फलगं=पाटे पीढं=पीढे मंचं=खाट व=और कीलं=कीलेको उस्सवित्ताणं=ऊंचा-खड़ा करके पासायं=प्रासाद-मंजिल पर आरुहे=चढे तो दुरूहमाणी=इस प्रकार कष्टसे चढती हुई वह पवडेज्जा=शायद गिर जायगी व=और अपना हत्थं=हाथ पायं=पैर लूसए=तोड़ बैठेगी तथा पुढवीजीवे अवि=पृथिवीकायके जीवोंको भी च=और जे=जो तन्निस्सिया= उस पृथ्वीकी नेसरायमें रहे हुए जगे=द्वीन्द्रियादि जीव हैं उन्हें भी हिंसेज्जा=मारेगी ॥६७॥६८॥

प्रकट किया गया है कि साधुओंको इन्द्रिय-चपलताका त्याग करना चाहिये। 'भिक्खु' पदसे द्योतित किया गया है कि साधुओंको यम-नियमोंका पालन करते हुए ही भिक्षा ग्रहण करना चाहिये ॥६५॥६६॥

ઇન્દ્રિય ચપલતાનો ત્યાગ કરવો જોઈએ. भिक्खु શબ્દથી એમ પ્રકટ કરવામાં આવ્યુ છે કે સાધુઓએ યમ-નિયમોનું પાલન કરતાં જ ભિક્ષા ગ્રહણ કરવી જોઈએ (૬૫-૬૬)

तम्हा=इसीलिए एयारिसे=ऐसे पूर्वोक्त प्रकारके महादोसें=दाताकी मृत्यु तक होनेकी संभावनाके कारण महादोषोंको जाणिऊण=जानकर संजया= सकल सावद्य व्यापारसे विरत हुए महेसिणो=महर्षि लोग मालोहडं=मालापहृत (मालसे लाई हुई) भिक्खं=भिक्षाको न पडिगिण्हंति=नहीं लेते हैं ॥६९॥

टीका—मालापहृतभिक्षादोषमाह-'निस्सेणिं' इत्यादि । 'दावए' इत्यत्र प्राकृतत्वाल्लिङ्गव्यत्ययस्तथा च दायिका=दात्री, श्रमणार्थमेव=साधुनिमित्त-मेव-साधवे भिक्षादानार्थमेवेत्यर्थः, निश्रेणिं=वंशादिनिर्मितं सोपानं, फलकं=शय-नोपयोगि दारुमयाऽऽसनं, पीठं=काष्ठनिर्मितोपवेशनोपयोगि लघ्वासनं-'पीढ़ा' इति प्रसिद्धं, मञ्चं=खट्वां वंशदलादिरचितोच्चासनं वा, कीलं=शङ्कुं, चकारान्मु-सलादिकम् उत्सृज्य=ऊर्ध्वीकृत्य, प्रासादम्=उच्चगृहं तत्रानेकभूमिकासम्भवेना-ऽऽरोहणादिकं युज्यत इति तद्भूमिकायां लक्षणा, तथा च—उच्चगृहभूमिकामित्यर्थः, आरोहेत्=उपलक्षणया गच्छेदित्यर्थः । तेन त्रिसृषु वक्ष्यमाणासु मालापहृतासु भिक्षासु समन्वयः । निश्रेण्यादिना सदुःखमारोहणं भवतीत्यत आह—दुरा (दू) रोहन्ती=सदुःखमूर्ध्वप्रदेशमासादयन्ती सती प्रपतेत्, हस्तौ पादौ च लूषयेत्= त्रोटयेत्, पृथ्वीजीवानपि हिंस्यात्=पीडयेत्, यानि च तन्निःश्रितानि=पृथिव्या-

मालापहृत भिक्षाके दोष बताते हैं-'निस्सेणिं' इत्यादि, 'दुरूहमाणी' इत्यादि, तथा 'एयारिसे' इत्यादि ।

दाता, यदि साधुके लिये नसैनी, सीढी (निसरणी), पाटा, पीढा (बाजोट), मांचा, खूंटी अथवा मूसल आदिको ऊँचा करके ऊँचे मकानकी दूसरी मंजिल पर चढ़ कर, आहार लावे तो वह आहार आदि, मालापहृत कहलाता है । नसैनी (सीढी) आदि पर चढनेसे यदि गिर पड़े तो हाथ पैर टूट जायँ, पृथ्वीकाय-आदि जीवोंकी विराधना होजाय

હવે માલાપહૃત ભિક્ષાના દોષો બતાવે છે—निस्सेणिं ઇત્યાદિ, दुरुहमाणी. ઇત્યાદિ, તથા एयारिसे ઇત્યાદિ

જો દાતા સાધુને માટે સીઢી (નીસરણી), પાટ, બાજોઠ, માંચો, ખૂંટી અથવા મૂશળ (સાંબેલું) આદિને ઉંચા કરીને ઉંચા મકાનના બીજા મજલા પર ચઢીને આહાર લાવે તો તે આહાર માલાપહૃત કહેવાય છે. સીડી આદિ પર ચડવાથી જો પડી જાય તો હાથ-પગ તૂટી જાય, પૃથ્વીકાય આદિ જીવોની

श्रितानि जगन्ति=प्राणिनस्तानि हिंस्यादिति पूर्वेण सम्बन्धः तस्मात्=यतो निश्रे-ण्यादिना समारोहणे पतनादिद्वारा दातुः स्व-परोभयविराधना सम्भवति अतः कारणात् एतादृशान्=उक्तलक्षणान् महादोषान्=दातृप्रभृतीनां मृत्योरपि सम्भवेन दारुणकर्मविपाकहेतुत्वात्प्रकृष्टदूषणानि ज्ञात्वा संयताः=सकलसावद्ययोगसमुपरताः महर्षयः=घोरपरीषहोपसर्गसहिष्णुत्वान्महामुनयः, मालापहृतां=मालो[1] भूमिका-वाची देशीयशब्दः, ततः अपहृताम्=आनीतां भिक्षां न प्रतिगृह्णन्ति=न स्वीकुर्वन्ति।

मालापहृता भिक्षा भूमिकाया ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्भेदेन त्रिविधा-ऊर्ध्वमालापहृता, अधोमालापहृता, तिर्यङ्मालाऽपहृता चेति। तत्रोर्ध्वमालापहृता पूर्वं व्याख्याता। अधोमालाऽपहृता=यस्या भूमिकाया निश्रेण्यादिनाऽवरुह्य आनीता। तिर्यङ्माला-

१ मालः 'मंजिल' इति भाषाप्रसिद्धः।

तथा जो प्राणी, पृथ्वीपर सञ्चार कर रहे हों उनकी भी हिंसा होजाय, इसलिये ऐसी अवस्थामें स्व, पर और उभयकी विराधनाका होना सम्भव है, यहाँ तककि दाताकी मृत्यु भी हो जा सकती है, अतः इन महादोषोंको अत्यन्त दुःखदायी जान कर, संयमी महामुनि, नसैनी (सीढ़ी) आदि द्वारा माला (मंजिल) से उतारा हुआ आहार आदि स्वीकार नहीं करते ॥

मालाके भेदसे मालापहृत भिक्षा, तीन प्रकारकी है-(१) ऊर्ध्व-माला-पहृत (२)-अधो-मालापहृत और (३)-तिर्यग्मालापहृत। इनमें, ऊर्ध्व-मालापहृत भिक्षाका विवेचन, पहले कह आये हैं। ऊपरके मंजिलसे नीचेकी ओर नसैनी (निसरणी) लगाकर, लाई हुई भिक्षा, अधोमाला-

વિરાધના થાય, તથા જે પ્રાણી પૃથ્વી પર સચાર કરી રહ્યા હોય તેમની પણ હિંસા થઈ જાય, તેથી એવી અવસ્થામાં સ્વ, પર અને ઉભયની વિરાધના થવી સભવિત છે, એટલે સુધી કે દાતાનું મૃત્યુ પણ થઈ જઈ શકે છે, તેથી કરીને એ મહાદોષોને અત્યત દુ:ખદાયી જાણીને સયમી મહામુનિ નીસરણી આદિદ્વારા માળથી ઉતારેલો આહાર આદિ સ્વીકારે નહિ

માળ-મજલા-ના ભેદે કરીને માલાપહૃત ભિક્ષા ત્રણ પ્રકારની છે (૧) ઉર્ધ્વ-માલાપહૃત, (૨) અધોમાલાપહૃત અને (૩) તિર્યગ્-માલાપહૃત એમાં ઊર્ધ્વ-માલાપહૃત ભિક્ષાનું વિવેચન પહેલા કરવામા આવ્યુ છે ઉપરના મજલાથી નીચેની બાજુએ નીસરણી લગાવીને લાવેલી ભિક્ષા અધોમાલાપહૃત કહેવાય છે.

पहृता तु यस्यां भूमिकायां दायिका तिष्ठेत्तस्यामेव, नद्यादौ जलप्रवाहावरोधिसेतुवन्निश्रेण्यादिकं तिर्यक् संस्थाप्य तद्द्वारा असंश्लिष्टापरभागे गमनागमनेनाऽऽनीता। दुष्प्रापशिक्यादिस्थस्यातिगम्भीरकुसूलादिस्थस्य चान्नादेर्ग्रहणे चरणोन्नमनादिनाऽनेकविधकष्टसम्भवादेवंविधापि भिक्षा तदन्तर्ज्ञेयेति ॥६७॥६८॥६९॥

मूलम्-कंदं मूलं पलंबं वा, आमं छिन्नं च सन्निरं।
तुंबागं सिंगबेरं च, आमगं परिवज्जए ॥ ७० ॥

छाया—कन्दं मूलं प्रलम्बं वा, आमं छिन्नं च सन्निरम् ।
तुम्बकं शृङ्गबेरञ्च, आमकं परिवर्जयेत् ॥७०॥

सान्वयार्थः-आमं=सचित्त कंदं=सूरण आदि कन्द मूलं=विदारिकादि मूल पलंबं=ताल आदिके फल वा=तथा छिन्नं च=काटी हुई भी सन्निरं=बथुए आदिकी भाजीको (तथा) आमगं=सचित्त तुंबागं=तूंबे च=और सिंगबेरं=अदरख-आदे-को साधु परिवज्जए=वरजे ॥७०॥

पहृत कहलाती है। जिस मंजिलमें देनेवाली मौजूद हो उसीकी बराबरी पर, दूसरी ओर जानेके लिये पुलकी तरह नसैनी (निसरणी) या लकड़ी आदिको तिरछा रख कर चढे तो वहाँसे लाई हुई भिक्षा, तिर्यग्मालापहृत कहलाती है। बड़ी कठिनाईसे पहुँचने योग्य छींके या आलेमें तथा गहरी कोठरीमें रक्खी हुई भिक्षा ग्रहण करनेसे पैर उठाने आदि अनेक कष्ट होते हैं इसलिये, ऐसी भिक्षा भी इसी मालापहृत भिक्षामें अन्तर्गत समझनी चाहिये। यह सब प्रकारकी भिक्षा साधुको अकल्प्य है ॥ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

જે મજલામાં ભિક્ષા આપનારી હાજર હોય, તેની બરાબર, બીજી બાજુએ જવાને માટે પૂલની પેઠે નીસરણી યા લાકડું-પાટિયું તીછું રાખીને ચડે તો ત્યાથી લાવેલી ભિક્ષા તિર્યગ્માલાપહૃત કહેવાય છે બહુ મુશ્કેલીથી પહોચી શકાય એવાં સીકા, યા છાજલીમા તથા ઉડી કોટડીમા રાખેલા અશનાદિ ગ્રહણ કરવાથી પગ ઉપાડવા આદિના અનેક કષ્ટો પડે છે, તેથી એવી ભિક્ષા પણ આ (માલાપહૃત) ભિક્ષામાંજ સમાયલી સમજી લેવી એ સર્વ પ્રકારની ભિક્ષા સાધુને માટે અકલ્પ્ય છે (૬૭-૬૮-૬૯)

टीका—'कंदं' इत्यादि। कन्दं, मूलम्, इमे प्राग्व्याख्याते, वा=अथवा प्रलम्बं=तालादिफलम् आमम्=अपक्वं-सचित्तमित्यर्थः। च=पुनः छिन्नं=कर्त्तितमपि सन्निरं=पत्रशाकं-वास्तूकादिकं, तुम्बकम्=अलाबूविशेषं, शृङ्गबेरम्=आर्द्रकं चकारादन्यदपि प्रत्येकसाधारणवनस्पतिमात्रम् आमकम्=अपक्वं सचित्तं परिवर्जयेत्=त्यजेत्--न गृह्णीयादित्यर्थः ॥७०॥

मूलम्-तहेव सत्तुचुन्नाइं कोल-चुन्नाइं आवणे।
सक्कुलिं फाणियं पूअं, अन्नं वावि तहाविहं ॥७१॥
विक्कायमाणं पसढं, रएणं परिफासियं।
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥७२॥

छाया—तथैव सक्तु-चूर्णानि, कोल-चूर्णानि आपणे।
शष्कुलीं फाणितं, पूपमन्यद्वापि तथाविधम् ॥७१॥
विक्रीयमाणं प्रसह्य, रजसा परिस्पृष्टम्।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥७२॥

सान्वयार्थः-तहेव=जिसप्रकार सचित्त कन्दादि अग्राह्य हैं उसीप्रकार सत्तुचुन्नाइं=भुने हुए जौ या चनेका आटा-सत्तू कोलचुन्नाइं=बेरोंका चूरा सक्कुलिं=तिलपापड़ी फाणियं=गीला गुड़ पूयं=मालपूवा (तथा) तहाविहं=उसीप्रकारके अन्नं वावि=औरभी पदार्थ जो आवणे=दुकानपर विक्कायमाणं=बेचनेके लिए रखे हुए हैं वे (यदि) पसढं=वस्त्रसे आच्छादित होनेपर भी रएणं=सचित्त सूक्ष्म रजसे परिफासियं=व्याप्त हों तो दिंतियं=देनेवालीसे पडियाइक्खे=कहे कि

'कदं' इत्यादि। सचित्त कन्द, मूल, ताड-फल आदि तथा कटा हुआ भी सचित्त पत्तोंका शाक-बथुआ आदि, और सचित्त तुम्बा तथा अदरख भी साधु ग्रहण न करे। 'च' शब्दसे यह भी समझना चाहिये कि इनके सिवाय कोई भी सचित्त-प्रत्येक या साधारण वनस्पति, साधुको नहीं कल्पती है ॥ ७० ॥

कदं० ઈત્યાદિ સચિત્ત કંદ, મૂળ, તાડફળ આદિ તથા કાપેલા હોવા છતાં સચિત્ત પાંદડાનું શાક-બથુઆની ભાજી આદિ અને સચિત્ત દૂધી આદિ તથા આદુ પણ સાધુ ગ્રહણ ન કરે च શબ્દથી એમ પણ સમજવું કે તે ઉપરાંત કોઈ પણ સચિત્ત-પ્રત્યેક યા સાધારણ વનસ્પતિ સાધુને કલ્પતી નથી (૭૦)

तारिसं=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ=नहीं कल्पता हैं ॥७२॥

टीका—'तहेव' इत्यादि, 'विक्कायमाणं' इत्यादि च। तथैव=यथा पूर्वोक्तं सचित्तकन्दादिकमग्राह्यं तेनैव प्रकारेण सक्तु-चूर्णानि=सक्तव एव चूर्णानि तानि सक्तूनित्यर्थः, भृष्टयवादिचूर्णान्येव सक्तव उच्यन्ते, कोल-चूर्णानि=बदरी-फलचूर्णानि, शष्कुलीं=तिलपर्पटिकां, फाणितं=द्रुतगुडं, पूपम्=अपूपम्, तथाविधं= तादृशम् अन्यदपिवा दध्यादिकम्, आपणे=क्रय-विक्रयस्थाने, विक्रीयमाणं= विक्रयार्थं स्थाप्यमानं, रजसा=सचित्तरेणुना, प्रसह्य=हठात् वस्त्रादिनाऽऽच्छादनेऽपि यथाकथञ्चित्प्रकारेणेति भाव, परिस्पृष्टं=व्याप्तं-वायुसमुत्थितरजःसंस्पृष्टम् ददतीं प्रत्याचक्षीत—'तादृशं मे न कल्पत' इति ॥७१॥७२॥

मूलम्—बहुअट्ठियं[१] पुग्गलं[२], अणिमिसं[३] वा[४] बहुकंटयं[५]।
अच्छियं[६] तिंदुयं[७] बिल्लं[८], उच्छुखंडं[९] व[१०] सिंबलिं[११] ॥७३॥
अप्पे[१३] सिया[१६] भोयणजाए[१२], बहु[१५] उज्झणधम्मिए[१४]।
दिंतियं[१७] पडियाइक्खे[१८], न[२१] मे[२०] कप्पइ[२२] तारिसं[१९] ॥७४॥

'तहेव' इत्यादि, तथा 'विक्कायमाणं' इत्यादि।

जैसे, सचित्त कन्द, मूल आदि त्याज्य हैं वैसेही सत्तू, बेरोंका चूर्ण, तिलपापडी, पिघला हुआ गुड, पूआ तथा ऐसी दही आदि अन्यान्य वस्तुएँ, बेचनेके लिये दुकानमें रक्खी हों, और सचित्त रजसे व्याप्त हों, अर्थात् वस्त्रसे ढँक रखने पर भी पवनके द्वारा पहुँची हुई सूक्ष्म सचित्त रजसे युक्त हों तो वह आहार कल्पनीय नहीं है। इसलिये साधु, देनेवालीसे कहे कि 'ऐसा आहार, मुझे नहीं कल्पता है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

તહેવ ઇત્યાદિ તથા વિક્કાયમાણ ઇત્યાદિ

જેમ સચિત્ત કંદ-મૂળ આદિ ત્યાજ્ય છે, તેમજ સત્તૂ, બોરનું ચૂર્ણ, તલપાપડી, નરમ ગોળ, તથા એવા પ્રકારની બીજી દહીં આદિ નરમ વસ્તુઓ વેચવાને માટે દુકાનમા રાખી હોય અને સચિત્ત રજથી વ્યાપ્ત હોય અર્થાત વસ્ત્રથી ઢાંકી રાખ્યા છતા પવનદ્વારા પહોચેલી સૂક્ષ્મ સચિત્ત રજથી યુકત હોય તો તે આહાર કલ્પનીય નથી તેથી સાધુ તે આપનારીને કહે કે એવો આહાર મને કલ્પતો નથી (૭૧ ૭૨)

छाया—बह्वष्टिकं पुद्गलम्, अनिमिषं वा बहुकण्टकम्।
अक्षीवं तिन्दुकं बिल्वम्, इक्षुखण्डं वा शाल्मलिम् ॥७३॥
अल्पं स्याद्भोजनजातं, बहूज्झनधर्मिकम्।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥७४॥

सान्वयार्थः-बहुअट्ठियं=बहुबीजा अर्थात् सीताफल अणिमिसं=अनन्नास बहुकंटयं=पनस-कटहल अच्छियं=शोभाञ्जनकी फली, जो 'मुनगा' नामसे प्रसिद्ध है; तिंदुयं=तेन्दु बिल्लं=बेल सिंबलिं=सेमल इन नामके पुग्गलं=फलोंको व=और उच्छुखंडं=गन्ने-शेरडी-के टुकड़ोंको, तथा जिस पदार्थमें भोयणजाए=खानेयोग्य अंश अप्पे सिया=थोडा हो और उज्झणधम्मिए=डालदेनेयोग्य अंश बहु=बहुत हो ऐसे फल आदि दितियं=देनेवालीसे साधु पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥७३॥७४॥

टीका-'बहुअट्ठियं०' इत्यादि, 'अप्पे सिया' इत्यादि च। बह्वस्थिकम्=बहूनि, अस्थीनि=बीजानि-अस्थि=बीजमिति रायमुकुटः, वैद्यकश्चेति शब्दकल्पद्रुमः; यस्मिन्, यद्वा बहूनि अस्थिकानि 'अस्थिकं=बीजे मेदोजधातौ चेति राजनिघण्टुः' इति वैद्यकशब्दसिन्धुः; यस्मिंस्तत्, बहुबीजकं-योगरूढमेतत्, सीताफलादिकमित्यर्थः—

'बहुअट्ठियं' इत्यादि तथा 'अप्पे सिया' इत्यादि। 'अस्थि' शब्दका अर्थ, बीज होता है, रायमुकुट तथा वैद्यकोषोंमें 'अस्थि' शब्दका बीज ही अर्थ है, ऐसा 'शब्दकल्पद्रुम' अभिधानमें भी लिखा है। अत एव बह्वस्थिक शब्दका अर्थ है-बहुत बीजोंवाला। यह शब्द योगरूढ है, अत एव सीताफल अर्थ होता है। निघण्टुमें भी सीताफल (सरीफा)के इतने नाम गिनाये हैं-

---

बहुअट्ठियं० ઇત્યાદિ, તથા अप्पे सिया० ઇત્યાદિ 'અસ્થિ' શબ્દનો અર્થ બીજ (ઠળીયો) થાય છે રાયમુકુટ તથા વૈદ્યકોષોમા અસ્થિ શબ્દનો બીજ એવો જ અર્થ છે, એમ 'શબ્દકલ્પદ્રુમ' મા પણ લખ્યું છે એટલે बह्वस्थिक શબ્દનો અર્થ થાય છે બહુ બીજો વાળું, એ શબ્દ યોગરૂઢ છે, એટલે સીતાફળ અર્થ થાય છે નિઘટુમાં પણ સીતાફળનાં આટલાં નામ ગણાવ્યાં છે-

"सीताफलं गण्डमात्रं, वैदेहीवल्लभं तथा ।
कृष्णवीजं चाग्रिमाख्यमातृप्यं वहुवीजकम् ॥१॥" इति निघण्टुकोषः।

यद्वा 'वहुअट्टियं' इत्यस्य 'वह्वष्ठिक' मितिच्छाया, 'फलवीजे पुमानष्ठिः' इति कोषात्, अर्थस्तूक्त एव। पुद्गलम्=रसवृद्धयात्मकपूरणपरिपाकानन्तराधःपतनात्मकगलनधर्मकत्वात्पुद्गलः फलसामान्यं तम्, अग्रेऽप्यस्य सम्वन्धः, सीताफलादिनामकं फलमिति भावः। अनिमिषम्=अनन्नासम् अन्तर्वहिःसकण्टकं वङ्गादिदेशप्रसिद्धम्। वहुकण्टकं=कण्टकिफलं–पनसं 'कटहर' इत्यनेन प्रसिद्धम्, अस्य त्वग्भावे, सर्वावयवावच्छेदेन कण्टकव्याप्त्या वहुकण्टकत्वं सिध्यति, अनिमिषपदार्थस्य त्वन्तर्वहिः सकण्टकत्वेऽपि विरलकत्वादस्माद्भेदः।अक्षीवं=शोभाञ्जनम् फलप्रकरणात्तत्फलिकाम्, त्वचः स्थौल्य-कार्कश्याधिक्यदोषेभ्यो वीजानां वाहुल्याच्चात्यधिकत्याज्यभागां 'मुनिगा' इति देशविशेषप्रसिद्धाम्। तिन्दुकम्=अण्डाकृतिकं फलविशेषम् अल्पाकारस्याप्यस्य फलस्य वीजानां स्थौल्यवाहुल्यादिदं त्याज्यांशवहुलं 'तेंदु' इति

"सीताफल, गण्डमात्र, वैदेहीवल्लभ, कृष्णवीज, अग्रिम, आतृप्य और वहुवीजक ॥१॥"

इनमें 'वहुबीजक' शब्द भी सीताफलके लिये आया है, और यह ऊपर बताया ही जा चुका है कि 'अस्थि' शब्दका अर्थ वीज होता है। इसलिये बहुबीजक और बह्वस्थिक एक ही है, अतः बह्वस्थिकका अर्थ सीताफल ही है। अथवा 'अट्टिय'की छाया, 'अष्ठिक' होती है, कोषमें लिखा है कि फलके बीजको 'अष्ठि' कहते हैं। इससे भी पूर्वोक्त अर्थ ही सिद्ध होता है, इसलिये, सीताफलको तथा बंग आदि अन्य अन्य देशोंमें प्रसिद्ध अनन्नाश (अनास) फल विशेष, कटहर, मुनिगा (सोहिंजन) की फली, तेन्दू, वेल, गन्नेका खण्ड

"સીતાફળ, ગંડમાત્ર, વૈદેહીવલ્લભ, કૃષ્ણબીજ અગ્રિમ, આતપ્ય અને બહુબીજક"

એમા 'બહુબીજક' શબ્દ પણ સીતાફળને માટે આવ્યો છે, અને ઉપર બતાવવામા આવ્યુ જ છે કે 'અસ્થિ' શબ્દનો અર્થ 'બીજ' થાય છે એટલે બહુબીજક અને બહ્વસ્થિક એક જ છે, અર્થાત્ બહ્વસ્થિકનો અર્થ સીતાફળ જ છે અથવા અટ્ટિય નો છાયા અષ્ઠિક થાય છે, કોષમાં લખ્યુ છે કે ફળના બીજને 'અષ્ઠિ' કહે છે તેથી પણ પૂર્વોક્ત અર્થ જ સિદ્ધ થાય છે એ રીતે સીતાફળ, તથા બંગ આદિ અન્ય-અન્ય દેશોમા પ્રસિદ્ધ અનનાસ, કટહર, મુનિગાની (એક પ્રકારની) ફળી, તેન્દુ, બિલ્વફળ, (બીલા) શેરડીની કાતળી, સેમલ આદિ ફળ, જેમા ખાદ્ય

प्रसिद्धम्। विल्वम्, इक्षुखण्डं, शाल्मलिं च, एतानि प्रसिद्धार्थकानि। तथा यत्र भोजनजातं=भोज्यांशः अल्पं=स्वल्पम्, उज्झनधर्मिकं=त्याज्यांशः वहु=अधिकं स्यात्=भवेत् तत्फलादिकमन्यदपि ददतीं प्रत्याचक्षीत-तादृशं मे न कल्पते इति। सामान्यलक्षणेन त्याज्यफलादिज्ञानं शिष्याणां दुष्करं स्यादिति प्रथमं विशेषरूपेण कतिचित्फलानि प्रदर्श्य त्याज्यसामान्यलक्षणं निरूपितं तेन न पूर्वगाथायास्तात्पर्यानुपपत्तिरिति दिक् ॥७३॥७४॥

मूलम्-तहेवुच्चावयं[1] पाणं[3], अदुवा[2] वार-धोयणं[4][5]।
संसेइमं[6] चाउलोदगं[7], अहुणाधोयं[8] विवज्जए[9] ॥७५॥

एवं सेमल आदि फल, जिनमें खाद्य अंश कम हों तथा त्याज्य अंश अधिक हो उन सब फल आदिको देनेवालीसे कहे कि ऐसा आहार, मुझे नहीं कल्पता है।

अनन्नासमें भीतर भी काँटे होते हैं और बाहर भी, और कटहरके छिलकेमें सर्वत्र काँटे ही काँटे होते हैं। दोनों बहुकण्टक हैं, किन्तु अनन्नासमें काँटे कम और तीखे होते हैं, अतः वह कटहरसे भिन्न है। अन्य भेद लोक-प्रसिद्ध ही हैं।

सामान्य लक्षण करनेसे त्यागने योग्य फलोंका ज्ञान शिष्योंको कठिनतासे होता, अतः पहले कुछ विशेष फलोंके नाम गिना कर, उस प्रकारके सभी-फलोंका त्याग बताया है। इसलिये, पहली गाथासे इसका सम्बन्ध ठीक बैठता है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

અંશ ઓછો હોય તથાં ત્યાજ્ય અંશ વધારે હોય એ બધાં ફળ આદિ આપનારીને સાધુ કહે કે એવો આહાર મને કલ્પતો નથી

અનન્નાસમા અંદર કાંટા હોય છે અને બહાર પણ હોય છે, અને કટહરના છોતરામાં સર્વત્ર કાંટા જ હોય છે બેઉ બહુકંટક છે, પરન્તુ અનન્નાસમા કાંટા ઓછા અને તીખા હોય છે, તેથી તે કટહરથી જૂદું ફળ છે. અન્ય ભેદ લોક-પ્રસિદ્ધ છે

સામાન્ય લક્ષણ બતાવવાથી ત્યાગવા યોગ્ય ફળોનું જ્ઞાન શિષ્યોને મુશ્કેલીથી થાય છે, એટલે પહેલા કેટલાક વિશેષ ફળોના નામ ગણાવીને એ પ્રકારના બધા ફળોનો ત્યાગ બતાવ્યો છે. તેથી પહેલી ગાથાથી આનો સબંધ ઠીક બધ બેસે છે (૭૩-૭૪)

छाया—तथैवोच्चावचं पान,-मथवा वारकधावनम् ।
संस्वेदिमं तण्डुलोदकम्, अधुनाधौतं विवर्जयेत् ॥७५॥

अब पान ग्रहण करने की विधि बताते हैं—

सान्वयार्थः-तहेव=जैसे अशन उसीप्रकार पाणं=पान उच्चावयं=उच्च-सुन्दर वर्णादिसे युक्त, जैसे दाख आदिका धोवन, अवच-सुन्दर वर्णादिसे रहित जैसे मेथी केर आदिका धोवन वारधोयणं=गुड़के घड़ेका धोवन संसेइमं=भाजीका तथा आटेकी थालीका धोवन अदुवा=अथवा चाउलोदगं=चाँवलोंका धोवन (ये सब यदि) अहुणाधोयं=तुरन्तका धोया हुआ हो तो उसे (साधु) विवज्जए=वर्जे-न लेवे ॥७५॥

टीका—अशनग्रहणविधेरनन्तरं पानग्रहणविधिमाह-'तहेवुच्चावयं' इत्यादि । तथैव=यथाऽशनं तेनैव प्रकारेण, पानं=पेयं, कर्मणि ल्युट्, उच्चावचमिति-उदक् च अवाक् च उच्चावचम्-अनेकप्रकारम्, उत्कृष्टानुत्कृष्टमित्यर्थः, तत्र उत्कृष्टं=रुचिर-वर्णगन्धरसस्पर्शयुक्तं द्राक्षादिधावनजलं प्रपाणकादिकं च, अनुत्कृष्टं=रुचिर-वर्णादिहीनं मेथिका-करीर-शमीफलिका-तिलादिधावनजलम् । वारकधावनं=गुड-घट-घृतघटादि धावनजलं, संस्वेदिमं=क्वथितशाकादिजलं पिष्टस्थालीप्रक्षालनजलञ्च, तण्डुलोदकं=तण्डुलधावनजलम् । एतत्सर्वम् अधुनाधौतम्=तत्काल-धौतम्-अन्त-

---

अशन ग्रहण करनेकी विधि बताकर अब पान ग्रहण करनेकी विधि दिखाते हैं-'तहेवुच्चावयं' इत्यादि ।

उच्च (उत्कृष्ट) मनोज्ञ वर्ण गन्ध रस स्पर्शवाला दाख आदिका धोवन तथा शर्बत आदि पान, अवच (अनुत्कृष्ट) अमनोज्ञ वर्ण गन्ध रस स्पर्शवाला मेथी केर साँगरी तथा तिल छाछ आदिका धोवन आदि पान, गुड़ या घीके घड़ेका धोवन, औटाये (उबाले) हुए हरा शाक आदि-का पानी, आटेकी थाली आदिका धोवन, चावलका धोवन । ये सब यदि तत्कालके धोये हुए हों अर्थात् अन्तर्मुहूर्तके अभ्यन्तरके धोये हों तो

અશન ગ્રહણ કરવાની વિધિ બતાવીને હવે પાન ગ્રહણ કરવાની વિધિ બતાવે છે.—तहेवुच्चावयं ઇત્યાદિ

ઉચ્ચ (ઉત્કૃષ્ટ) મનોહર વર્ણ ગંધ રસ સ્પર્શવાળું દ્રાક્ષ આદિનું ધોવણ તથા શરબત આદિ પાન, અવચ (અનુત્કૃષ્ટ) અમનોજ્ઞ વર્ણ ગંધ રસ સ્પર્શવાળું મેથી, કેરા, બીજડાની કળી (સાંગરિઓ) તથા તલ છાશ આદિનું ધોવણ આદિ પાન, ગોળ યા ઘીના ઘડાનું ધોવણ, ઉકાળેલાં લીલાં શાક આદિનું પાણી, આટાની થાળી આદિનું ધોવણ, ચોખાનું ધોવણ, એ બધા જો તાજાં ધોએલાં હોય

मूहूर्त्तान्तर्धौतं चेदित्यर्थस्तदा विवर्जयेत्=न गृह्णीयात् । उपलक्षणमेतत्, उक्तञ्चाऽऽचाराङ्गे श्रीभगवता—

"से[1] भिक्खू वा२ जाव अणुपविट्ठे समाणे से जं पुण पाणगजायं जाणेज्जा, तं जहा-उस्सेइमं वा संसेइमं वा चाउलोदगं वा अन्नयरं वा तहप्पगारं पाणगजातं अहुणाधोयं अणंबिलं अवोक्कंतं अपरिणत अविद्धत्थं अफासुयं जाव णो पडिगाहेज्जा । अह पुण एवं जाणेज्जा चिराधोयं अंबिलं वोक्कंतं परिणतं विद्धत्थं फासुयं जाव पडिगाहेज्जा । से भिक्खू वा२ जाव अणुप्पविट्ठे समाणे से जं पुण पाणगजातं

छाया-१-"अथ भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा यावत्-अनुप्रविष्टः सन् स यत्पुनः पानकजातं जानीयात्, तद्यथा-उत्स्वेदिमं वा संस्वेदिमं वा तण्डुलोदकं वा अन्यतरद् वा तथाप्रकारं पानकजातम् अधुनाधौतम् अनम्लम् अव्युत्क्रान्तम् अपरिणतम् अविध्वस्तम् अप्रासुकं यावत् नो प्रतिगृह्णीयात्। अथ पुनरेवं जानीयात्-चिरधौतम् अम्लं व्युत्क्रान्तं परिणतं विध्वस्तं प्रासुकं यावत् प्रतिगृह्णीयात्। अथ भिक्षुर्वा २ यावत्अनुप्रविष्टः सन् स यत्पुनः पानकजातं जानीयात्, तद्यथा-तिलोदकं वा

इनको ग्रहण न करे । ये तो उपलक्षण मात्र हैं, आचारांग सूत्रमें भगवानने कहा है—

" साधु अथवा साध्वी पानीके लिए गृहस्थके घरमें प्रवेश करके-आटेके बरतनका धोवन, शाक आदिका बाफा हुआ पानी, चावलोंका धोवन तथा इस प्रकारका और भी कोई पानी तुरतका धोया हुआ हो, स्वादसे चलित न हुआ हो अर्थात् जिसका धोवन हो उस वस्तुका स्वाद न आता हो, जिसका वर्ण रस गन्ध स्पर्श न बदला हो-सर्वथा अचित न हुआ हो, शस्त्र-परिणत न हो तो ग्रहण न करे। यदि तुरतका धोया हुआ न हो-बहुत देरका धोया हुआ हो, स्वादसे चलित हो गया हो

અર્થાત્ અંતર્મુહૂર્તની અંદર અંદરની ધોએલાં હોય તો તેને ગ્રહણ કરવાં નહિ એ તો ઉપલક્ષણમાત્ર છે **આચારાંગ** સૂત્રમાં ભગવાને કહ્યુ છે કે—

"સાધુ અથવા સાધ્વી પાણીને માટે ગૃહસ્થના ઘરમા પ્રવેશ કરીને; આટાના વાસણનુ ધોવણ, શાક આદિ જેમા બાફેલાં હોય તે પાણી, ચોખાનું ધોવણ, તથા એ પ્રકારનું બીજુ પણ કોઈ પાણી તુરતનુ ધોએલુ હોય, સ્વાદથી ચલિત થયુ ન હોય, અર્થાત્ જેનુ ધોવણ હોય તે વસ્તુનો સ્વાદ ન આવતો હોય, જેના વર્ણ રસ ગધ સ્પર્શ ન બદલાયા હોય-સર્વથા અચિત્ત ન થયું હોય, શસ્ત્રપરિણત ન હોય, તો તે ગ્રહણ ન કરે જો તુરતનુ ધોએલુ ન હોય-બહુ વખતનું ધોએલું હોય, સ્વાદથી ચલિત થયું હોય, અને શસ્ત્રપરિણત હોય તો

जाणेज्जा तंजहा-तिलोदगं वा तुसोदगं वा जवोदगं वा आयामं वा सोवीरं वा सुद्धवियडं वा अण्णयरं वा तहप्पगारं पाणगजायं पुव्वामेव आलोएज्जा-आउसोत्ति वा० ७। से भिक्खू वा२ जाव समाणे से जं पुण जाणेज्जा तंजहा-अंबपाणगं वा अंबाडगपाणगं वा कविट्ठपाणगं वा मातुलिंगपाणगं वा मुद्दियापाणगं वा दालिमपाणगं वा खज्जूरपाणगं वा नालिकेरपाणगं वा करीरपाणगं वा कोलपाणगं वा आमलगपाणगं वा चिंचापाणगं वा अन्नयरं वा तहप्पगारं पाणगजायं''इत्यादि।

उक्तं दिगम्बराचार्येण वट्टकेरस्वामिनाऽपि मूलाचारे—

तुषोदकं वा यवोदकं वा आयामं वा सौवीरं वा शुद्धविकृतं वा अन्यतरत् वा तथा-प्रकारं पानकजातं पूर्वमेव आलोचयेत्-आयुष्मन्! इति वा ७। अथ भिक्षुर्वा२ यावत् अनुप्रविष्टः सन् स यत्पुनर्जानीयात्, तद्यथा-आम्रपानकं वा आम्रातकपानकं वा कपित्थपानकं वा मातुलुङ्गपानकं वा मृद्वीकापानकं वा दाडिमपानकं वा खर्जूर-पानकं वा नालिकेरपानकं वा करीरपानकं वा कोलपानकं वा आमलपानकं वा चिञ्चापानकं वा, अन्यतरद्वा तथाप्रकारं पानकजातम्'' इत्यादि ।

और शस्त्रपरिणत हो तो ग्रहण करे। तिलोदक, तुषोदक, यवोदक, ओसामण, सोवीर (अगछण), उष्णोदक तथा इस प्रकारका और भी पानी गृहस्थका दिया हुआ कल्पता है। साधु यदि आमका धोवन, अंबाडगका धोवन, कविठ (कैथ)का धोवन, बिजौरेका धोवन, द्राक्षका धोवन, अनारका धोवन, खजूरका धोवन, नारियलका पानी (धोवन), केरका धोवन, बेरका धोवन, आँवलेका धोवन, इमलीका धोवन, अथवा इस प्रकारका और भी धोवन जाने और यदि वह अत्यम्ल न हो, तुरतका धोया हुआ न हो, स्वादचलित हो और शस्त्रपरिणत हो तो कल्पता है।''

दिगम्बराचार्य वट्टकेर-स्वामीने भी मूलाचारमें कहा है—

ग्रહણ કરે તિલોદક, તુષોદક, યવોદક, ઓસામણ, સોવીર, ઉષ્ણોદક તથા એ પ્રકારનું બીજું પણ પાણી ગૃહસ્થે આપેલું હોય તે કલ્પે છે જો સાધુ કેરીનું ધોવણ, અ બાડગ (આંબોળિયાનું) ધોવણ, કોઠાનું ધોવણ, બીજોરાનું ધોવણ, દ્રાક્ષનું ધોવણ, અનારનું ધોવણ, ખજૂરનું ધોવણ, નારિયેળનું પાણી (ધોવણ), કેરાનું ધોવણ, બોરનું ધોવણ, આમળાનું ધોવણ, આંબલીનું ધોવણ, અથવા એ પ્રકારનું બીજું પણ ધોવણ જાણે અને જો તે બહુ અમ્લ (ખાટું) ન હોય, તુરતનું ધોએલું ન હોય, સ્વાદચલિત હોય અને શસ્ત્રપરિણત હોય તો કલ્પે છે''

દિગંબરાચાર્ય વટ્ટકેર-સ્વામીએ પણ મૂલાચારમાં કહ્યું છે:—

१"तिलतंडुल-उसणोदय,-चणोदय-तुसोदय-अविद्धत्थं ।
अण्णं तहाविहं वा, अपरिणदं णेव गेण्हिज्जा ॥४७३॥" इति ।
इति गाथार्थः ॥७५॥

तर्हि कीदृशं पानं गृह्णीयात् ? इत्यत आह—'जं जाणेज्ज' इत्यादि, 'अजीवं' इत्यादि च ।

मूलम्—जं जाणेज्ज चिराधोयं, मईए दंसणेण वा ।
पडिपुच्छिऊण सुच्चा वा, जं च निस्संकियं भवे ॥७६॥
अजीवं परिणयं नच्चा, पडिगाहिज्ज संजए ।
अह संकियं भविज्जा, आसाइत्ताण रोयए ॥७७॥

छाया—यज्जानीयाच्चिराद्धौतं, मत्या दर्शनेन वा ।
प्रतिपृच्छ्य श्रुत्वा वा, यच्च निश्शङ्कितं भवेत् ॥७६॥
अजीवं परिणतं ज्ञात्वा, प्रतिगृह्णीयात्संयतः ।
अथ शङ्कितं भवेत्, आस्वाद्य रोचयेत् ॥७७॥

सान्वयार्थः—मईए=बुद्धिसे वा=अथवा दंसणेण=देखनेसे पडिपुच्छिऊण=

छाया—१ तिलतण्डुलोष्णोदकं चणकोदकं तुषोदकम् अविध्वस्तम् ।
अन्यत् तथाविधं वा, अपरिणतं नैव गृह्णीयात् ॥४७३॥

"तिलोदक, तन्दुलोदक, उष्णोदक, चनेका पानी, तुषका पानी, तथा इस प्रकारका और भी जल यदि अविध्वस्त (सचित्त) हो और शस्त्रपरिणत न हो तो ग्रहण नहीं करना चाहिए अर्थात् शस्त्रपरिणत हो तो लेना कल्पता है ॥१॥" (मूलाचार गा. (४७३) ॥७५ ॥

कैसा धोवन ग्रहण करना चाहिए ? सो बताते हैं—'जं जाणेज्ज' इत्यादि, 'अजीवं' इत्यादि ।

"तिलोदक, तन्दुलोदक, उष्णोदक, चणानुं पाणी, तुषनु पाणी, तथा ए प्रकारनु बीजु पण जळ जो अविध्वस्त (सचित्त) होय अने शस्त्रपरिणत न होय तो ग्रहणु करवुं न जोईए अर्थात् शस्त्रपरिणत होय तो लेवु कल्पे छे (मूलाचार गा ४७३) (७५)

केवु धोवणु ग्रहणु करवुं जोईए ? ते बतावे छे:—जं जाणेज्ज० ईत्यादि, तथा अजीवं ईत्यादि

पूछकर वा=अथवा सुच्चा=बात करते हुए सुनकर जं=जिस धोवनको चिराधोयं= चिरधौत-बहुत देरका धोया हुआ जाणेज्ज=जाने, च=तथा जं=जो निस्संकियं= 'इससे तृषा शान्त होगी या नहीं ?' इस प्रकारकी शङ्कारहित भवे=हो तो उसे अजीवं=जीवरहित–अचित्त-और परिणयं=शस्त्रपरिणत नच्चा=जानकर संजए= साधु पडिग्गाहिज्ज=लेवे; अह=अथ–अगर वह संकियं='इससे तृषा बूझेगी या नहीं ?' इस प्रकारकी शङ्कासे युक्त भविज्जा=हो तो उसे आसाइत्ताण=चख- करके रोयए=निर्णय करे ॥७६॥७७॥

टीका—मत्या=बुद्धया दर्शनेन=दृष्टया वा धौतजले तदीयवर्णादिपरिज्ञानाय तत्राऽऽगमानुगामिन्या मनीषया दृष्टिनिपातेन वेति भावः, प्रतिपृच्छय=सम्यक् पृष्ट्वा श्रुत्वा वा तत्प्रतिवचनं प्रश्नमन्तरेणाऽपि कस्यचिन्मुखाद्वा निशम्य यत् चिरा- द्धौतं जानीयात्, यच्च निश्शङ्कितम्=अनुपयोगित्वशङ्कारहितं भवेत् तद् अजीवं=प्रा- सुकं परिणतं=स्वपरशस्त्रादिनाऽवस्थान्तरं प्राप्तं ज्ञात्वा संयतः=साधुः प्रतिगृह्णीयात्।

ये तु 'घटिकाद्वयानन्तरं धावनजलं सचित्तं भवतीति मुहूर्त्तात्परं तत्तोयमनुपा- देय' मित्याहुः, तन्न समीचीनम्, व्यञ्जनाद्युपलिप्तकरदर्वीधावनार्थं पाकप्रदेशे पूर्व-

---

आगमानुसार बुद्धि अथवा दृष्टिसे धोवनका वर्ण आदि जान कर पूछ कर अथवा किसीसे सुन कर धोवन बहुत देरका धोया हुआ हो तो ग्रहण करे। तथा 'उपयोगी है या अनुपयोगी ?' इस प्रकारकी शंकाका निर्णय करके प्रासुक तथा अवस्थान्तरको प्राप्त होगया जानकर साधु ग्रहण करे।

जो लोग यह कहते हैं कि–' धोवन जल दो घड़ीके बाद सचित्त होनेसे अग्राह्य है' यह उनका कहना ठीक नहीं, क्योंकि, यदि दो घड़ीके बाद धोवन जल सचित्त हो जाय तो शाक आदिसे लिप्त हाथ

આગમાનુસાર બુદ્ધિ અથવા દૃષ્ટિથી ધોવણનો વર્ણાદિ જાણી-પૂછીને અથવા કોઇ પાસેથી સાભળીને ધોવણ બહુ વખતથી ધોએલુ હોય તો તે ગ્રહણ કરે તેમજ 'ઉપયોગી છે કે અનુપયોગી ?' એ પ્રકારની શંકાનો નિર્ણય કરીને પ્રાસુક તથા અવસ્થાતરને પ્રાપ્ત થએલું જાણીને સાધુ તે ગ્રહણ કરે

જે લોકો કહે છે કે–' ધોવણનુ પાણી બે ઘડી પછી સચિત્ત હોવાથી અગ્રાહ્ય છે' તે તેમનુ કહેવાનું બરાબર નથી. કારણ કે જો બે ઘડી પછી ધોવણનુ જળ સચિત્ત થઇ જાય તો શાક આદિથી ખરડાયલા હાથ યા કડછી-આદિ

स्थापितजलस्य मुहूर्त्तानन्तरं तन्मते सचित्ततायां तदानीं तदुदकक्षालितकरदर्व्यादिना निरवद्याशनग्रहणमपि तेषां दोषावहं भवेत्, तत्संमतसचित्तजलसंस्पृष्टकरदर्वीसंसर्गवत्त्वात्। मुहूर्तात्परमेव धावनजलस्य सचित्तत्वाङ्गीकारे 'अहुणाधोयं विवज्जए' इति प्रकृतसूत्रस्य ' जं जाणेज्ज चिराधोयं ' इति प्रकृतसूत्रस्य च विरोधापत्तिः, तथाहि—अधुनाधौतस्य मुहूर्त्तान्तर्गततया तत्र तन्मते सचित्ततायाः अभावे तद्वर्जनोपदेशाऽसङ्गतिः, चिराद्धौतस्य च मुहूर्त्तानन्तरं तन्मते सचित्ततया तदुपादानोपदेशस्य चासङ्गतिः स्यात्, तस्मात् पिपासापनोदनशक्तिशालिनश्चिराद्धौतस्य ग्रहणं शास्त्रसंमतमित्यवधेयम्।

या कुडछी आदि धोनेके लिए गृहस्थ (रसोया) रसोईके समय अपने पास एक पानीका बरतन रखता है, उस जलसे हाथ और कुडछी धो धो कर दाल आदि परोसता है, ऐसी दशामें उक्त मतसे देर तक रक्खे रहनेके कारण यदि वह हाथ या कुडछी आदिका धोवन सचित्त हो जाता है तो उस धोवनमें धोयी हुई कुडछी या हाथसे दिया जानेवाला निरवद्य अन्नादि भी उनको अग्राह्य हो जायगा। 'तहेवुच्चावयं' इस गाथाके अन्तिम चरणमें 'अहुणाधोयं विवज्जए' यह कह कर भगवानने यह स्पष्ट कर दिया है कि तुरतका धोया हुआ जल अग्राह्य है, और इसीको 'द्विर्बद्धं सुबद्धं भवति' इस न्यायसे 'जं जाणेज्ज चिराधोयं' इस गाथासे सुस्पष्ट कर दिया है कि देरका धोया हुआ धोवन ग्रहण करना चाहिए। अतः दो घड़ीके बाद धोवनमें जीवोंकी उत्पत्ति मानना जैनागमसे विरुद्ध है और उत्सूत्र-प्ररूपणाका भागी बनना है।

ધોવાને માટે ગૃહસ્થ (રસોઇયો) રસોઈને સમયે પોતાની પાસે પાણીનું એક વાસણ રાખે છે, એ જળથી હાથ અને કડછી ધોઈ-ધોઈને દાળ આદિ પીરસે છે, એવી દશામા ઉકત મત પ્રમાણે કેટલાક સમય સુધી રહેલું હોવાને કારણે જો એ હાથ યા કડછી આદિનું ધોવણ સચિત્ત થઈ જાય તો એ ધોવણમા ધોએલી કડછી યા હાથથી આપવામા આવતુ નિરવદ્ય અન્નાદિ પણ એમને અગ્રાહ્ય બની જાય तहेवुच्चावयं એ ગાથાના અતિમ ચરણમા अहुणाधोयं विवज्जए એમ કહીને ભગવાને એ સ્પષ્ટ કરી આપ્યુ છે કે તુરતનું ધોએલુ જળ અગ્રાહ્ય છે, અને એને द्विर्बद्धं सुबद्धं भवति એ ન્યાયે કરીને जं जाणेज्ज चिराधोयं એ ગાથાથી સુસ્પષ્ટ કરી આપ્યુ છે કે કેટલાક સમય પહેલાંનું ધોએલુ ધોવણ ગ્રહણ કરવુ જોઇએ એટલે બે ઘડી પછી ધોવણમાં જીવોની ઉત્પત્તિ માનવી એ જૈનાગમથી વિરૂદ્ધ છે અને ઉત્સૂત્રપ્રરૂપણાના ભાગી બનવુ છે

अथ शङ्कितं='पिपासाऽपनोदकं न वा?' इति संशयविषयो भवेत्तदा आस्वाद्य=उक्तसंशयापनोदयार्थं किञ्चित्पीत्वा रोचयेत्=निर्णयेत् ॥

"अजीव"-मित्यनेन जीवराहित्यं 'परिणत'-मित्यनेन च सर्वथाऽचित्तत्वं सूचितम् ॥७६॥७७॥

आस्वादनविधिं प्रदर्शयन् निर्णयप्रकारमाह-'थोव०' इत्यादि।

मूलम्-थोवमासायणट्ठाए, हत्थगम्मि दलाहि मे।
मा मे अच्चंबिलं पूयं, नालं तिण्हं विणित्तए ॥७८॥

छाया—स्तोकमास्वादनार्थं, हस्तके देहि मे।
मा मे अत्यम्लं पूति, नालं तृष्णां विनेतुम् ॥७८॥

सान्वयार्थः-(निर्णय करनेके लिए साधु दातासे कहे कि-हे आयुष्मन्!) आसायणट्ठाए=चखनेके लिए थोवं=थोड़ासा धोवन मे=मेरे हत्थगम्मि=हाथमें दलाहि=दो, (हाथमें लेकर चखने पर यदि निश्चय हो जाय कि वह धोवन) अच्चबिलं=अत्यन्त खट्टा पूयं=दुर्गन्धित और तिण्हं=प्यास विणित्तए=बुझानेके लिए नालं=समर्थ नहीं है इसलिये यह मे=मेरे लिए उपयोगी मा=नहीं है ॥७८॥

तथा 'इससे प्यास मिट जायगी या नहीं?' ऐसा सन्देह उत्पन्न हो जाय तो उस सन्देहको दूर करनेके लिए थोड़ासा पानी चख कर निर्णय करे।

'अजीवं' पदसे जीवराहित्य और 'परिणयं' पदसे मिश्रकी शंकाका अभाव सूचित किया है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

आस्वादन (चखने) की विधि बताते हुए निर्णय करनेका प्रकार बताते हैं-'थोव०' इत्यादि।

તેમજ 'એથી તરસ મટશે કે નહિ?' એવો સંદેહ ઉત્પન્ન થાય તો એ સંદેહ દૂર કરવાને થોડું પાણી ચાખીને નિર્ણય કરવો. अजीवं શબ્દથી જીવરાહિત્ય અને परिणयं શબ્દથી મિશ્રની શંકાનો અભાવ સૂચિત કર્યો છે (૭૬-૭૭)

આસ્વાદન (ચાખવા)ની વિધિ બતાવતા નિર્ણય કરવાનો પ્રકાર બતાવે છે-थोव० ઇત્યાદિ

टीका—आस्वादनार्थम्=उपयोगित्वाऽनुपयोगित्वज्ञानार्थं स्तोकं स्वल्पं तिल-तण्डुलादिजलं मे=मम हस्ते 'देहि' इति दात्रीमुद्दिश्य वदेदिति भावः। तद्दत्तं धौतजलमास्वाद्य निश्चिनुयात्-इदम् अत्यम्लं पूति=अनिष्टगन्धयुक्तं तृष्णां=पिपासां विनेतुम्=अपाकर्तुं नालं=न समर्थम्, इति मे=मम मा=नहि उपयोगीति शेषः ॥७८॥

निश्चयानन्तरं कर्त्तव्यमाह-'तं च' इत्यादि।

मूलम्-तं[१] च[२] अच्चंबिलं[३] पूयं[४], नालं[७] तिण्हं[५] विणित्तए[६]।
दिंतियं[८] पडियाइक्खे[९], न[११] मे[१२] कप्पइ[१३] तारिसं[१०] ॥ ७९ ॥

छाया—तच्चाऽत्यम्लं पूति, नालं तृष्णां विनेतुम्।
दृदतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥७९॥

तब वह साधु क्या करे?, सो बताते हैं—

सान्वयार्थः-अच्चंबिलं=अत्यन्त खट्टे पूयं=दुर्गन्धियुक्त और तिण्हं विणित्तए नालं=प्यास मिटानेके लिए असमर्थ तं च=उस धोवनको दिंतियं=देनेवालीसे साधु पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका धोवन मे=मुझे न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥७९॥

टीका—तच्च धौतजलमत्यम्लं पूति तृष्णां विनेतुं नालमिति ददतीं प्रत्याचक्षीत-तादृशं मे न कल्पते इति ॥७९॥

'धोवन उपयोगी है या नहीं?' इस शंकाका निवारण करनेके लिए देनेवाली बाईसे साधु कहे कि-'मेरे हाथमें थोड़ासा पानी दो।' उस दिये हुए धोवनका आस्वादन करके निश्चय करे कि-'यह बहुत खट्टा है, दुर्गन्धवाला है, प्यास शान्त करनेके लिए समर्थ नहीं है अतः मेरे लिए उपयोगी नहीं है ॥ ७८ ॥'

ऐसा निश्चय करके क्या करना चाहिए? सो कहते हैं-'तं च' इत्यादि।

उस बहुत खट्टे, दुर्गन्धित और प्यास बुझानेमें असमर्थ धोवनको देनेवाली बाईसे कहे कि ऐसा धोवन मुझे नहीं कल्पता है ॥ ७९ ॥

'ધોવણ ઉપયોગી છે કે નહિ?' એ શંકાનુ નિવારણ કરવાને માટે ધોવણ આપનારી બાઈને સાધુ કહે કે "મારા હાથમાં થોડું પાણી આપો' એ આપેલા ધોવણનું આસ્વાદન કરીને નિશ્ચય કરે કે 'આ બહુ ખાટું છે, દુર્ગંધ વાળુ છે, તરસ શાંત કરવા માટે સમર્થ નથી, તેથી મારે માટે ઉપયોગી નથી' (૭૮)

એવો નિશ્ચય કરીને શું કરવું જોઈએ? તે હવે કહે છે-तं च० ઇત્યાદિ

એવા બહુ ખાટા, દુર્ગંધિત અને તરસ છીપાવવામા અસમર્થ ધોવણને આપનારી બાઈને સાધુ કહે કે એવું ધોવણ મને કલ્પતુ નથી (૭૯)

१ २ ६ ३ ४ ५
मूलम्-तं च होज्ज अकामेणं, विमणेण पडिच्छियं ।
७ ८ ९ १० ११ १३ १२ १४
तं अप्पणा न पिबे, नो वि अन्नस्स दावए ॥८०॥

छाया—तच्च भवेद् अकामेन, विमनसा प्रतिगृहीतम् ।
तद् आत्मना न पिबेत्, नो अपि अन्यस्मै दापयेत् ॥८०॥

सान्वयार्थः—तं=वह उस प्रकारका धोवन यदि अकामेणं=विना इच्छासे दाताके अनुरोधसे च=तथा विमणेणं=मनके दूसरी तरफ होनेके कारण पडिच्छियं=लेलिया गया हो तो तं=उस धोवनको न=न तो अप्पणा=अपने खुद पिबे=पिये और नो=न अन्नस्स अवि=दूसरोंकोभी दावए=देवे ॥८०॥

टीका—'तं च' इत्यादि। तच्च धौतजलं यदि अकामेन=स्वानिच्छया, दात्र्यनुरोधेनेति भावः; विमनसा=अन्यमनस्कतया, 'हेतौ तृतीया' प्रतिगृहीतं तद् आत्मना स्वयं न पिबेत् नो अपि अन्यस्मै दापयेत् ॥८०॥

तर्हि किं कुर्यात्? इत्याह-'एगंत०' इत्यादि ।

१ २ ३ ४
मूलम्-एगंतमवक्कमित्ता, अचित्तं पडिलेहिया ।
५ ६ ७ ८
जयं परिट्ठविज्जा, परिट्ठप्प पडिक्कमे ॥ ८१ ॥

छाया—एकान्तमवक्रम्याऽचित्तं प्रत्युपेक्ष्य ।
यतं परिष्ठापयेत्, परिष्ठाप्य प्रतिक्रामेत् ॥ ८१ ॥

उस धोवनका क्या करे ? सो बताते हैं—

सान्वयार्थः-एगंतं=एकान्त स्थानम अवक्कमित्ता=जाकरके अचित्तं=एकेन्द्रियादिप्राणीरहित अचित्त स्थानको पडिलेहिया=पूंजकर उस धोवनको जयं=

'तं च' इत्यादि। यदि ऐसा पानी अनिच्छापूर्वक दाताके अनुरोधसे अथवा विना ध्यानसे ग्रहण कर लिया हो तो स्वय उसे न पिये और न दूसरेको पिलावे ॥ ८० ॥

फिर क्या करे सो कहते हैं-'एगंत०' इत्यादि ।

तं च ઈત્યાદિ જો એવું પાણી અનિચ્છાપૂર્વક દાતાના અનુરોધથી અથવા બે-ધ્યાનથી ગ્રહણ કરી લીધું હોય તો પોતે તે ન પીએ અને ન બીજાને પીવડાવે. (૮૦)

પછી શું કરે તે કહે છે-एगंत० ઈત્યાદિ

यतनासे परिट्ठविज्जा=परिठवे-डाले, परिट्ठप्प=परिठवके आकर पडिक्कमे=इरियावहिया पडिकमे—करे ॥८१॥

टीका—एकान्तं विविक्तप्रदेशम्, अवक्रम्य=गत्वा तत्र अचित्तम्=एकेन्द्रियादिप्राणिवर्जितं प्रत्युपेक्ष्य=निरीक्ष्य यतं=सयत्नं यथास्यात्तथा परिष्ठापयेत्, सविधि "वोसिरे" इति त्रिरुच्चार्य व्युत्सृजेत् । परिष्ठाप्य=परिष्ठापनानन्तरं ग्रामाद्बहिरबहिर्वाऽऽसन्नभूमिमागत्य प्रतिक्रामेत्=ऐर्यापथिकीं कुर्यात् ॥८१॥

अशनपानग्रहणविधेरनन्तरं भोजनविधिमाह—'सिया' इत्यादि, 'अणुन्नविंत्तु' इत्यादि च ।

मूलम्—सिया[१] य[२] गोयरग्गगओ[३], इच्छिज्जा[५] परिभुत्तुउं[४] ।
कुट्टगं[७] भित्तिमूलं[८] वा[९], पडिलेहित्ताण[१०] फासुयं[६] ॥८२॥
अणुन्नवित्तु[११] मेहावी[१४], पडिच्छन्नम्मि[१२] संवुडे[१३] ।
हत्थगं[१६] संपमज्जित्ता[१७], तत्थ[१८] भुंजिज्ज[१९] संजए[१५] ॥८३॥

छाया—स्याच्च गोचराग्रगतः इच्छेत् परिभोक्तुम्
कोष्ठकं भित्तिमूलं वा, प्रत्युपेक्ष्य प्रासुकम् ॥८२॥
अनुज्ञाप्य मेधावी, प्रतिच्छन्ने संवृते ।
हस्तकं संप्रमृज्य तत्र भुञ्जीत संयतः ॥८३॥

एकान्त स्थानमें जाकर एकेन्द्रिय आदि प्राणियोंसे रहित स्थान देखकर यतनापूर्वक "वोसिरे" ऐसा तीन बार उच्चारण करके परिठवे। परिठवनेके पश्चात् गाँवमें या गाँवके बाहर ठहरनेके स्थान पर आकर इरियावहियाका प्रतिक्रमण करे ॥ ८१ ॥

अशन-पान ग्रहण करनेकी विधि बतानेके बाद आहार करनेकी विधि बताते हैं—'सिया य' इत्यादि, 'अणुन्नवित्तु' इत्यादि ।

એકાત સ્થાનમા જઇને એકેન્દ્રિય આદિ પ્રાણીઓથી રહિત સ્થાન જોઇને યતનાપૂર્વક 'वोसिरे' એવું ત્રણવાર ઉચ્ચારણ કરીને પરિઠવે પરિઠવ્યા પછી ગામમા યા ગામની બહાર રહેવાના સ્થાન પર આવીને ઇરિયાવહિયાનુ પ્રતિક્રમણ કરે (૮૧)

અશન-પાન ગ્રહણ કરવાની વિધિ બતાવ્યા બાદ આહાર કરવાની વિધિ બતાવે છે-सिया य ઇત્યાદિ તથા अणुन्नवित्तु ઇત્યાદિ.

सान्वयार्थः—गोयरग्गगओ=गोचरीमें गया हुआ मेहावी=सामाचारीका जानकार संजए=साधु सिया य=कदाचित् अगर बाल्यावस्थाके अथवा ग्लानपनेके कारण वहीं परिभुत्तुं=आहार करना इच्छिज्जा=चाहे तो वहां फासुयं=प्रासुक-एकेन्द्रियादिप्राणी रहित कुट्टगं=कोठेको वा=अथवा भित्तिमूलं=भींतके समीपके स्थानको पडिलेहित्ताण=पूंजकर तथा दृष्टिसे देखकर अणुन्नवित्तु=गृहस्थकी आज्ञा मांगकर तत्थ=वहां पडिच्छन्नम्मि=ऊपरसे छाये हुए और संवुडे=चारों तर्फसे घिरे हुए स्थानमें हत्थगं=हाथोंको अथवा अपने शरीरको संपमज्जित्ता=पूंजकरके (साधु) भुंजिज्ज=आहार करे ॥८२॥८३॥

टीका—स्याच्च=कदाचित् गोचराग्रगतः=भिक्षामनुप्रविष्टो मुनिः, बाल्य-ग्लानत्व-पिपासादिकारणवशात्परिभोक्तुमिच्छेत् तदा प्रासुकम्=एकेन्द्रियादिप्राणिविवर्जितं कोष्ठकम्=अन्तर्गृहादिकं वा=अथवा भित्तिमूलं=कुडयसमीपवर्तिप्रदेशं प्रत्युपेक्ष्य=दृष्ट्वा विलोक्य अनुज्ञाप्य=तत्स्वामिनोऽनुज्ञामादाय तत्र प्रतिच्छन्ने=ऊर्ध्वतस्तृणादिभिराच्छादिते, संवृते=समन्तत आवृते किन्तु प्रकाशयुक्ते प्रदेशे, यद्वा 'संवृतः' इति प्रथमान्तं संयतस्य विशेषणं तेन, मेधावी=साधुसामाचारीकुशलः संयतः=साधुः संवृतः=मनोवाक्कायगुप्तः सन् हस्तकं=हस्तौ संप्रमृज्य=संशोध्य, अथवा 'हस्तकम्' इति तृतीयार्थे प्रथमा, तथा च—हस्तकेन=हस्तं कायति=धातूना-

---

यदि भिक्षाके लिए गये हुए भिक्षुको बालकपन, ग्लानता अथवा प्यास आदि किसी कारणसे आहार करनेकी इच्छा हो जाय तो वहाँ प्रासुक कोठा अथवा भींतके पास कोने आदिकी प्रतिलेखना करके मकानके स्वामीकी आज्ञा लेकर ऊपरको तृण आदिसे छाये हुए चारों ओरसे बन्द किन्तु प्रकाशयुक्त स्थानमें स्थित होकर मन वचन कायकी सम्यक् प्रकार प्रवृत्ति करता हुआ साधुसामाचारीका ज्ञाता मुनि हाथोंको

જો ભિક્ષાને માટે ગએલા ભિક્ષુને બાળકપણુ, ગ્લાનતા અથવા તરસ આદિ કોઈ કારણે આહાર કરવાની ઈચ્છા થઈ જાય તો ત્યા પ્રાસુક કોઠો અથવા ભીતની પાસે ખૂણા આદિની પ્રતિલેખના કરીને મકાનના સ્વામીની આજ્ઞા લઈને ઉપર ઘાસ આદિથી છાએલા ચારે બાજુથી બંધ પરન્તુ પ્રકાશયુક્ત સ્થાનમાં રહીને મન વચન કાયાની સમ્યક્ પ્રકારે પ્રવૃત્તિ કરતાં સાધુ-સમાચારીનો જ્ઞાતા મુનિ હાથને પ્રમાર્જિત કરીને (સાફ કરીને) યા હસ્તક (હસ્તગત રજોહરણ)થી

मनेकार्थत्वात्प्राप्नोतीति हस्तकम्, ('आतोऽनुपसर्गे कः' इति कप्रत्ययः,) रजोहरणं तेन, तस्य धारणे हस्तस्य सर्वथा निमित्तत्वात्, प्रायः कक्षप्रदेशे धारणेऽपि हस्ताश्रयं विना तदीयधारणासम्भवाच्च। संप्रमृज्य=तत्स्थानं कायं च संशोध्य भुञ्जीत=अभ्यवहरेत्।

यत्तु "हस्तकं मुखवस्त्रिकारूपमादाय तेन कायं संप्रमृज्य" इति व्याख्यातं तदयुक्तं, 'हस्तक' पदार्थस्य 'संप्रमृज्य' पदार्थेऽन्वयसम्भवे 'आदाये'-ति पदान्तराक्षेपपूर्वकमन्यपदार्थेऽन्वयकल्पनाया अनौचित्यात्। किञ्च कोप-व्याकरणादिषु हि हस्तकशब्दो मुखवस्त्रिकारूपेऽर्थे न दृश्यते। शास्त्रेऽपि-"मुहपत्तिं पडिलेहित्ता" इत्यादि दृश्यते न तु 'हत्थगं' पडिलेहित्ता' इत्यादि।

यच्च-"विधिना तेन मुखवस्त्रिकारूपेण हस्तकेन कायं प्रमृज्य तत्र भुञ्जीत"

प्रमार्जित (साफ) करके या हस्तक अर्थात् हस्तगत रजोहरणसे काय और स्थानकी प्रमार्जना करके आहार करे।

किसी-किसीने 'हस्तकं संप्रमृज्य' का ऐसा अर्थ किया है कि 'मुखवस्त्रिका लेकर उससे शरीर-प्रमार्जना करे' ऐसा अर्थ करना ठीक नहीं है, क्योंकि मुखवस्त्रिकाके साथ प्रमार्जन करनेका सम्बन्ध मिलते न देख उन्हें एक 'आदाय' शब्द (लेकर) अपनी ओरसे मिला दिया है। इस प्रकार सम्बन्ध मिलाना उचित नहीं है। इसके सिवाय कोषोंमें कहीं 'हस्तक' शब्दका अर्थ मुखवस्त्रिका नहीं किया है और न व्याकरणमें ही ऐसा देखाजाता है। आगमोंमें 'मुहपत्तिं पडिलेहित्ता' इत्यादि पद देखे जाते हैं, किन्तु 'हत्थगं पडिलेहित्ता' कहीं नहीं देखा जाता।

तथा "मुखवस्त्रिकारूप हस्तकसे कायकी प्रमार्जना करके आहार करे"

કાયા અને સ્થાનની પ્રમાર્જના કરીને આહાર કરે

કોઈ-કોઈએ हस्तकं संप्रमृज्य નો એવો અર્થ કર્યો છે કે-'મુખવસ્ત્રિકા લઈને તેથી શરીરની પ્રમાર્જના કરે,' પણ એવો અર્થ કરવો એ બરાબર નથી, કારણ કે મુખવસ્ત્રિકાની સાથે પ્રમાર્જન કરવાનો સબંધ મળતો નહિ જોવાથી તેમણે એક आदाय શબ્દ (લઈને) પોતાની તરફથી મિલાવી દીધો છે આ પ્રમાણે સબંધ મિલાવી દેવો એ ઉચિત નથી વળી કોષોમાં કયાય 'હસ્તક' શબ્દનો અર્થ મુખવસ્ત્રિકા કર્યો નથી અને વ્યાકરણમા પણ એવો અર્થ જોવામા આવતો નથી, આગમોમા मुहपत्तिं पडिलेहित्ता ઇત્યાદિ પદ જોવામા આવે છે, કિન્તુ हत्थगं पडिलेहित्ता કયાય જોવામા આવતુ નથી

તથા 'મુખવસ્ત્રિકારૂપ હસ્તકથી કાયની પ્રમાર્જના કરીને આહાર કરે"

इति व्याख्यातं तदप्ययुक्ततरम् । हस्ते मुखवस्त्रिकाधारणे मुखवस्त्रिकाधारणोद्देश्यभूतायाः सूक्ष्मव्यापिसम्पातिमवायुकायादिजीवहिंसानिवृत्तेरसिद्धया मुखवस्त्रिका मुख एव धारणीयेत्याशयस्य जागरूकत्वात्, अत एव भगवताऽपि सूक्ष्मव्यापिसम्पातिमवायुकायादिजीवाऽयतनानिवृत्तये मुखोपरि धारणीयसदोरकाष्टपुटमुखप्रमाणवस्त्रखण्डरूपेऽर्थे मुखवस्त्रिकाशब्दः प्रयुक्तो, न तु हस्तवस्त्रिकाशब्द इति कथमपि हस्तकशब्देन मुखवस्त्रिकारूपोऽर्थो न लभ्यते । एवं च तेन कायप्रमार्जनकथनं सर्वथाऽऽगमविरुद्धमेवेति बोध्यम् ॥८२॥८३॥

ऐसी व्याख्या करना भी अत्यन्त अयुक्त है, क्योंकि मुखवस्त्रिका धारण करनेका प्रयोजन सूक्ष्म, व्यापी, सम्पातिम तथा वायुकाय आदि जीवोंकी हिंसाका परिहार करना है। मुखवस्त्रिकाको हाथमें रखनेसे उक्त प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। इससे यह सिद्ध होता है कि मुखवस्त्रिका मुखपर ही धारण करनी चाहिए। इसलिए मुखके निमित्तसे होनेवाली, सूक्ष्म, व्यापी, सम्पातिम और वायुकाय आदि जीवोंकी विराधनाकी निवृत्तिके लिए मुख पर धारण करने योग्य उस मुखपरिमाण सदोरक और आठ पुड़वाले वस्त्रखण्डको भगवानने 'मुखवस्त्रिका' शब्दसे कहा है, 'हस्तवस्त्रिका' शब्दका प्रयोग कहीं नहीं किया, अत एव 'हस्तक' शब्दसे मुखवस्त्रिकाका अर्थ किसीभी प्रकार नहीं निकल सकता। इस प्रकार 'उससे कायकी प्रमार्जना करना' यह अर्थ आगमसे सर्वथा विरुद्ध है ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

એવી વ્યાખ્યા કરવી એ પણ અત્યંત અયુક્ત છે, કારણ કે મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરવાનું પ્રયોજન સૂક્ષ્મ, વ્યાપી, સમ્પાતિમ તથા વાયુકાય આદિ જીવોની હિંસાનો પરિહાર કરવો એ છે મુખવસ્ત્રિકાને હાથમા રાખવાથી ઉક્ત પ્રયોજન સિદ્ધ થતુ નથી એથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે મુખવસ્ત્રિકા મુખ પર જ ધારણ કરવી જોઈએ તેથી મુખના નિમિત્તે થનારી સૂક્ષ્મ, વ્યાપી, સપાતિમ અને વાયુકાય આદિ જીવોની વિરાધનાની નિવૃત્તિને માટે મુખ પર ધારણ કરવા યોગ્ય એ મુખ પરિમાણ દોરા સાથેના અને આઠ પડવાળા વસ્ત્રખંડને ભગવાને 'મુખવસ્ત્રિકા' કહી છે, 'હસ્તવસ્ત્રિકા' શબ્દનો પ્રયોગ કર્યો નથી એટલે 'હસ્તક' શબ્દથી મુખવસ્ત્રિકાનો અર્થ કોઈ પણ પ્રકારે નીકળી શકતો નથી. એ રીતે 'મુખવસ્ત્રિકાથી કાયાની પ્રમાર્જના કરવી' એ અર્થ આગમથી સર્વથા વિરુદ્ધ છે (૮૨-૮૩)

१ ३ २ ४ ५ १२
मूलम्-तत्थ से भुंजमाणस्स, अट्ठियं कंटओ सिया ।
८ ७ ६ ९ १० ११
तण-कट्ठ-सक्करं वावि, अन्नं वावि तहाविहं ॥८४॥
१३ १४ १५ १६ १७ १८ १९
तं उक्खिवित्तु न निक्खिवे, आसएण न छड्डुए ।
२१ २० २२ २३ २४
हत्थेण तं गहेऊण, एगंतमवक्कमे ॥ ८५ ॥

छाया—तत्र तस्य भुञ्जानस्य, अष्ठिकं कण्टकः स्यात् ।
तृण-काष्ठ-शर्करं वाऽपि, अन्यद्वापि तथाविधम् ॥८४॥
तद् उत्क्षिप्य न निक्षिपेत्, आस्येन नोज्झेत् ।
हस्तेन तद् गृहीत्वा, एकान्तमपक्रामेत् ॥८५॥

सान्वयार्थः-तत्थ=वहां कोठे आदिमें भुंजमाणस्स=आहार करते हुए से=उस साधुके (आहारमें) अट्ठियं=बीज कंटओ=कांटा तण=तिनका कट्ठ=काठ वावि=और सक्करं=छोटा कंकर वा=तथा अन्नं वावि=औरभी तहाविहं=उस प्रकारका पदार्थ सिया=आगया हो तो तं=उसे उक्खिवित्तु=निकालकर न निक्खिवे=इधर-उधर नहीं डाले, तथा आसएणं=मुखसे भी न छड्डुए=न फेंके-न थूके (किन्तु) तं=उसे हत्थेण=हाथसे गहेऊण=लेकर एगंतं=एकान्त स्थानमें अवक्कमे=जावे ॥८४॥८५॥

टीका—'तत्थ से' इत्यादि, 'तं उक्खिवित्तु' इत्यादि च। तत्र कोष्ठकादिस्थाने भुञ्जानस्य तस्य भिक्षोर्भोजने अष्ठिकं=बीजं, कण्टकः=तीक्ष्णाग्रो द्रुम-गुल्म-लताद्यङ्गविशेषः, अपिवा तृण-काष्ठ-शर्करं=तृणं च काष्ठं च शर्करा चैतेषां समाहारः। तत्र तृणं=कुशादिकं, काष्ठं=खदिरादिसमुद्भवं दारु, शर्करा=क्षुद्रपाषाणखण्डम् । अन्यदपि वा तथाविधं=तज्जातीयं स्यात्=भवेत् तद्=अष्ठिकादिकम् उत्क्षिप्य न निक्षिपेत्=उत्क्षेपणं कृत्वा यत्र तत्र न क्षिपेत्, आस्येन=मुखेनापि नोज्झेत्=थूत्कृत्य

'तत्थ से' इत्यादि, 'तं उक्खिवित्तु' इत्यादि । उस कोठे आदिमें आहार करनेवाले भिक्षुके भोजनमें बीज, काँटा, तिनका, लकडी, किरकिरी-कंकर या और कोई उस प्रकारकी वस्तु हो तो उसे निकाल कर जहाँ-तहाँ न डाले तथा मुखसे भी न थूके किन्तु उसको हाथमें

तत्थ से० ઇત્યાદિ, તથા तं उक्खिवित्तु० ઇત્યાદિ એ કોઠામાં આહાર કરનારા ભિક્ષુના ભોજનમાં બીજ, કાંટા, તણખલાં લાકડું, કાંકરી-કાંકરા યા એવા પ્રકારની બીજી કોઈ વસ્તુ હોય તો તે કાઢી નાખી જ્યાં-ત્યાં નાંખે નહિ, તથા

न क्षिपेत्। तर्हि किं कुर्यात्? इत्याह–तद् हस्तेन गृहीत्वा एकान्तमपक्रामेत्=गच्छेत् ॥८४॥८५॥

मूलम्–एगंतमवक्कमित्ता, अचित्तं पडिलेहिया।
जयं परिट्ठविज्जा, परिट्ठप्प पडिक्कमे ॥ ८६ ॥

छाया—एकान्तमपक्रम्याऽचित्तां प्रत्युपेक्ष्य।
यतं परिष्ठापयेत्, परिष्ठाप्य प्रतिक्रामेत् ॥८६॥

एकान्त में जाकर क्या करे? सो बताते हैं—

सान्वयार्थः–एगंतं=एकान्त स्थानमे अवक्कमित्ता=जाकरके अचित्तं=एकेन्द्रियादिप्राणीरहित अचित्त स्थानको पडिलेहिया=पूंजकर उस धोवनको जयं=यतनासे परिट्ठविज्जा=परिठवे-डाले, परिट्ठप्प=परिठवके आकर पडिक्कमे=इरियावहिया पडिकमे–करे ॥८६॥

टीका—'एगंत०' इत्यादि। विजनप्रदेशं गत्वा अचित्तां भूमिं चक्षुषा निरीक्ष्य वीजादिकं सयत्नं व्युत्सृजेत्, तदनु स्थानमागत्य प्रतिक्रामेत्=ऐर्यापथिकीं कुर्यादिति भावः।

मूलम्–सिया य भिक्खू इच्छिज्जा, सिज्जमागम्म भुत्तुअं।
सपिंडपायमागम्म उंडुअं से पडिलेहिया ॥ ८७ ॥
विणएणं पविसित्ता, सगासे गुरुणो मुणी।
इरियावहियमायाय, आगओ य पडिक्कमे ॥ ८८ ॥

छाया—स्याच्च भिक्षुरिच्छेत्, शय्यामागम्य भोक्तुम्।
सपिण्डपातमागम्य, उन्दुकं से (तत्र) प्रत्युपेक्ष्य ॥८७॥

लेकर एकान्त स्थानमें जावे ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

'एगंत०' इत्यादि। एकान्तमें जाकर अचित्त भूमि देख कर वहाँ यतनाके साथ उस बीज काँटे आदिको डाले। फिर अपने स्थान पर आकर ईरियावहियाका प्रतिक्रमण करे ॥ ८६ ॥

મુખથી પણ થૂંકે નહિ, પરન્તુ તેને હાથમાં લઇને એકાન્ત સ્થાનમાં જાય (૮૪-૮૫)

एगंत० ઇત્યાદિ. એકાન્તમાં જઇને અચિત્ત ભૂમિ જોઇને ત્યાં યતનાપૂર્વક એ બીજ કાંટા આદિને નાખે પછી પોતાના સ્થાન પર આવીને ઇરિયાવહિયાનું પ્રતિક્રમણ કરે (૮૬)

विनयेन प्रविश्य, सकाशे गुरोर्मुनिः ।
ऐर्यापथिकीमादाय, आगतश्च प्रतिक्रामेत् ॥८८॥

सान्वयार्थः-सिया य=अगर भिक्खू=साधु सिज्जं=वसति उपाश्रयमें ही आगम्म=आकर भुत्तुवं=आहार करना इच्छिज्जा=चाहे तो सपिंडवायं=भिक्षाके सहित आगम्म=आकर विणएणं='मत्थएण वंदामि निस्सीहि' इस प्रकार बोलनेरूप विनयसे पविसित्ता=उपाश्रयमें प्रवेश करके से-वहां उंडुयं=भोजनके स्थानको पडिलेहिया=अच्छी तरह देखकर गुरुणो=रत्नाधिकके सगासे=समीप आगओ य=आया हुआ मुणी=मुनि इरियावहियं=इरियावहियाका पाठ आयाय=लेकर-पढकर पडिक्कमे=कायोत्सर्ग करे। तात्पर्य यह है कि प्रबल पिपासा आदि खास कारण के विना तो उपाश्रयमें आकर ही साधुको आहार करना चाहिये किन्तु गृहस्थके घरमें नहीं करे ॥८७॥८८॥

टीका—'सिया य' इत्यादि, 'विणएणं' इत्यादि च। भिक्षुः=साधुः शय्यां=वसतिं स्यात्=एव आगम्य भोक्तुमिच्छेत्। 'अत्र स्यादित्यव्ययमवधारणार्थे तेन 'प्रबलपिपासादिकारणाभावे वसतिं विहायाऽन्यत्र न भोक्तव्य'मिति तात्पर्यं गम्यते। तदा सपिण्डपातं=पिण्डपातो-भिक्षालाभस्तेन सहाऽऽगम्य विनयेन="मत्थएण वंदामि निस्सीहि" इतिपठनलक्षणेन प्रविश्य उपाश्रयमिति शेषः, से=सः, यद्वा सेशब्दो मगधदेशप्रसिद्धः 'तत्र'-शब्दार्थे वर्त्तते तेन से=तत्र उन्दुकं=स्थानं प्रत्यु-

---

'सिया य' इत्यादि, 'विणएणं' इत्यादि। साधु उपाश्रयमें आकर ही आहार करनेकी इच्छा करे। यहाँ 'स्यात्' अव्यय निश्चय-बोधक है इससे यह तात्पर्य प्रगट होता है कि पिपासा आदि किसी प्रबल कारणके विना उपाश्रयके सिवाय अन्यत्र आहार नहीं करना चाहिए। अत एव भिक्षा लाकर "मत्थएण वंदामि निस्सीहि ?' यह पाठ उच्चारण करके उपाश्रयमें प्रवेश करे फिर भोजन करनेके स्थानकी

सिया य० ઇત્યાદિ, તથા विणएणं ઇત્યાદિ સાધુ ઉપાશ્રયમાં આવીને જ આહાર કરવાની ઇચ્છા કરે, અહીં स्यात् અવ્યય નિશ્ચયબોધક છે, તેથી એ તાત્પર્ય પ્રકટ થાય છે કે તરસ આદિ કોઇ પ્રબળ કારણ વિના ઉપાશ્રય સિવાય અન્યત્ર આહાર ન કરવો જોઇએ એટલે ભિક્ષા લાવીને मत्थएण वंदामि निस्सीहि એ પાઠ ઉચ્ચારીને ઉપાશ્રયમાં પ્રવેશ કરે પછી ભોજન કરવાના સ્થાનની સમ્યક્

पेक्ष्य=सम्यङ् निरीक्ष्य गुरोः=रत्नाधिकस्य सकाशे आगतश्च मुनिः ऐर्यापथिकीम् "इच्छामि पडिक्कमिउं" इत्यादिलक्षणाम् आदाय=पठित्वा प्रतिक्रामेत्=कायोत्सर्गं कुर्यात् ॥८७॥८८॥

तत्र (कायोत्सर्गे) किं कुर्यात्? इत्याह–'आभोइत्ताण' इत्यादि, 'उज्जुप्पन्नो' इत्यादि च।

१० ७ ८ ९
मूलम्–आभोइत्ताण नीसेसं, अइयारं जहक्कमं।
२ ३ ४ ५ ६ १
गमणागमणे चेव, भत्ते पाणे य संजए॥ ८९॥
११ १२ १३ १४
उज्जुप्पन्नो अणुव्विग्गो, अव्वक्खित्तेण चेयसा।
१९ १५ १६ १७ १८
आलोए गुरुसगासे, जं जहा-गहियं भवे ॥ ९०॥

छाया—आभोग्य निश्शेषम्, अतिचारं यथाक्रमम्।
गमनागमने चैव, भक्ते पाने च संयतः ॥८९॥
ऋजुप्रज्ञः अनुद्विग्नः, अव्याक्षिप्तेन चेतसा।
आलोचयेद् गुरुसकाशे, यद् यथा गृहीतं भवेत् ॥९०॥

सान्वयार्थः–संजए=कायोत्सर्गमें रहा हुआ मुनि गमणागमणे=जानेआनेमें चेव=और भत्ते=आहार य=तथा पाणे=पानीके ग्रहण करनेमे (लगे हुए) नीसेसं=सब प्रकारके अइयारं=अतिचारोंको, तथा जं=जो अशनादि जहा=जिस प्रकार गहियं भवे=ग्रहण किया हुआ हो उसे भी, जहक्कमं=यथाक्रम-अनुक्रमसे आभोइत्ताण=उपयोगसहित चिन्तन करके, उज्जुप्पन्नो=सरल बुद्धि-वाला अणुव्विग्गो=उद्वेगरहित वह मुनि अव्वक्खित्तेण=विक्षेपरहित-एकाग्र चेयसा=चित्तसे गुरुसगासे=गुरुके समीप आलोए=आलोवे ॥८९॥९०॥

सम्यक् प्रकार प्रतिलेखना करके दीक्षामें बड़े मुनिके समीप आकर "इच्छामि पडिक्कमिउ" इत्यादि ईरियावहियाका पाठ बोल करके कायोत्सर्ग करे॥ ८७॥ ८८॥

कायोत्सर्गमें क्या करना चाहिए सो कहते हैं–'आभोइत्ताण' इत्यादि, 'उज्जुप्पन्नो' इत्यादि।

પ્રકારે પ્રતિલેખના કરીને દીક્ષામા મોટા મુનિની સમીપે આવીને इच्छामि पडिक्कमिउं ઇત્યાદિ ઇરિયાવહિયાનો પાઠ બોલીને કાયોત્સર્ગ કરે. (૮૭-૮૮)

કાયોત્સર્ગમા શું કરવુ જોઇએ તે કહે છે–आभोइत्ताण० ઇત્યાદિ. તથા उज्जुप्पन्नो० ઇત્યાદિ

टीका—संयतः=कायोत्सर्गस्थो मुनिः, गमनागमने=गतागते चैव भक्ते पाने च संजातं निश्शेषं=समग्रम् अतिचारं=मुनिमर्यादालङ्घनलक्षणम् यथाक्रमम् आभोग्य=सोपयोगं विचिन्त्य ऋजुप्रज्ञः=सरलबुद्धिः अनुद्विग्नः=प्रशान्तः, अव्याक्षिप्तेन=अव्याकुलेन चेतसा=मनसा गुरुसकाशे=शुद्धं प्रमादादिवशेनाऽशुद्धं वा यद् यस्माद् यत्र वा यथा गृहीतं भवेत् तदपि गुरुसमीपे कथयेदित्यर्थः।

'उज्जुप्पन्नो' इत्यनेनाऽकुटिलमतिरेव सम्यगालोचयतीति सूचितम्। 'अणुव्विग्गो' अनेन क्षुधादिपरिषहजेतृत्वमावेदितम्। 'अव्वक्खित्तेण चेयसा' इत्यनेन 'एकाग्रचित्तेनैवाऽतिचारस्य सम्यक् स्मरणं भवती'-ति स्पष्टीकृतम् ॥८९॥९०॥

कायोत्सर्गमें स्थित होकर गमनाऽऽगमनमें, तथा-आहार पानीके लेनेमें जो अतिचार लगे हों उन सबका क्रमशः चिन्तन करके सरलबुद्धि शान्त-चित्तवाला संयमी व्याकुलतारहित चित्तसे गुरुके समीप आलोचना करे। प्रमाद आदिके वशसे जहां जैसा शुद्ध या अशुद्ध आहार आदि लिया गया हो वह भी गुरुसे निवेदन करे।

'उज्जुप्पन्नो' पदसे यह सूचित किया है कि कुटिलतारहित बुद्धिवाला ही यथार्थ आलोचना कर सकता है। 'अणुव्विग्गो' पदसे क्षुधा आदि परीषहोंका जीतना प्रगट किया है। 'अव्वक्खित्तेण चेयसा' पदसे यह सूचित किया है कि एकाग्र-चित्तसे ही अतिचारोंका अच्छी तरह स्मरण हो सकता है ॥ ८९ ॥ ९० ॥

કાયોત્સર્ગમાં સ્થિર થઇને ગમનાગમનમાં, તથા આહારપાણી લેવામાં જે અતિચાર લાગ્યા હોય તે સર્વનું ક્રમશઃ ચિંતન કરીને સરલબુદ્ધિ શાન્ત-ચિત્તવાળો સંયમી વ્યાકુળતા-રહિત ચિત્તથી ગુરૂની સમીપે આલોચના કરે પ્રમાદ આદિને વશ થઇને જ્યા જેવો શુદ્ધ યા અશુદ્ધ આહાર આદિ લેવામાં આવેલ હોય તે પણ ગુરૂને નિવેદન કરે

उज्जुप्पन्नो શબ્દથી એમ સૂચિત કરવામાં આવ્યું છે કે કુટિલતારહિત બુદ્ધિવાળો જ યથાર્થ આલોચના કરી શકે છે, अणुव्विग्गो શબ્દથી ક્ષુધા આદિ પરીષહોને જીતવાનું પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે अव्वक्खित्तेण चेयसा શબ્દથી એમ સૂચિત કર્યું છે કે એકાગ્ર-ચિત્તથી જ અતિચારોનું સારી રીતે સ્મરણ થઇ શકે છે (૮૯-૯૦)

मूलम्-न सम्ममालोइयं हुज्जा, पुव्विं पच्छा व जं कडं।
पुणो पडिक्कमे तस्स वोसट्ठो चिंतए इमं ॥ ९१ ॥

छाया—न सम्यगालोचितं भवेत्, पूर्वं पश्चाद्वा यत्कृतम् ।
पुनः प्रतिक्रामेत्तस्य, व्युत्सृष्टश्चिन्तयेदिदम् ॥९१॥

सान्वयार्थः-जं=जो अतिचार पुव्विं=पहले व=तथा पच्छा=पीछे कडं=किया है वह सम्मं=सम्यक् प्रकारसे-अच्छी तरह याने-'पहले लगे हुए पापको पहले आलोवे और पीछे लगे हुए पापको पीछे आलोवे' इस प्रकार आलोइयं=आलोचित न कुज्जा=नहीं किया हो तो तस्स=उस अतिचारको पुणो=फिरसे पडिक्कमे=आलोवे, (और) वोसट्ठो=कायोत्सर्गमें रहा हुआ साधु इमं=इस-'आगे कहा जानेवाला' प्रकार चिंतए=चिन्तन करे ॥९१॥

टीका—'न सम्म०' इत्यादि । यत्=यस्माद्धेतोः पूर्वं पश्चाद्वा कृतमतिचारं सम्यक्=प्राक्कृतं प्रागालोचितव्यं पश्चात्कृतं च पश्चादालोचितव्यमिति क्रमेण आलोचितं=प्रकाशितं न भवेच्चेदतः तस्य=अतिचारस्य (सम्बन्धसामान्ये षष्ठी) पुनः प्रतिक्रामेत् । व्युत्सृष्टः=कायोत्सर्गस्थः इदं=वक्ष्यमाणं चिन्तयेत् ॥९१॥

तदेवाऽऽह-'अहो' इत्यादि ।

मूलम्-अहो जिणेहिं असावज्जा, वित्ती साहूण देसिया ।
मोक्खसाहणहेउस्स, साहुदेहस्स धारणा ॥ ९२ ॥

'न सम्म०' इत्यादि । आगे-पीछे किये हुए अतिचारोंकी सम्यक् प्रकार अर्थात् पहले किये हुए अतिचारोंकी पहले और पश्चात् किये हुएकी पश्चात्-आलोचना न की गई हो तो अतिचारोंका पुनः प्रतिक्रमण करना चाहिए और कायोत्सर्गमें स्थित होकर ऐसा (अगली गाथामें कहे जानेवाला) विचार करे ॥ ९१ ॥

उसी विचारको कहते हैं-'अहो' इत्यादि ।

न सम्म० ઇત્યાદિ આગળ પાછળ કરેલા અતિચારોની સમ્યક્ પ્રકારે અર્થાત પહેલા કરેલા અતિચારોની પહેલા અને પાછળ કરેલા અતિચારોની પાછળ આલોચના ન કરવામાં આવી હોય તો અતિચારોનો પુનઃપ્રતિક્રમણ કરવું જોઇએ, અને કાયોત્સર્ગમાં સ્થિત થઇને એવો (આગલી ગાથામાં કહેવામાં આવનારો) વિચાર કરે (૯૧)

એ વિચાર હવે કહે છે-अहो० ઇત્યાદિ

छाया—अहो ! जिनैः असावद्या, वृत्तिः साधुभ्यो देशिता ।
मोक्षसाधनहेतोः, साधुदेहस्य धारणाय ॥९२॥

सान्वयार्थः-अहो=आश्चर्य है कि-मोक्खसाहणहेउस्स=मोक्ष प्राप्तिके निमित्तभूत साहुदेहस्स=साधुशरीरके धारणा=निर्वाह-स्थितिमात्र-के लिए साहूण=मुनियोंको जिणेहिं-तीर्थङ्कर भगवानने असावज्जा=निर्दोष वित्ती= भिक्षावृत्ति-(आचार) देसिया=वताई है ॥९२॥

टीका—अहो=आश्चर्यं मोक्षसाधनहेतोः=अपवर्गसिद्धिनिमित्तभूतस्य साधु-शरीरस्य धारणाय=स्थितिमात्रार्थं साधुभ्यः=मुनीनुद्दिश्य जिनैः=तीर्थङ्करैः, असा-वद्या=दोषरहिता वृत्तिः=भिक्षालक्षणा देशिता=उपदिष्टा ॥९२॥

मूलम्-णमुक्कारेण[२] पारित्ता[३], करित्ता[५] जिणसंथवं[४] ।
सज्झायं[६] पट्ठवित्ताणं[७], वीसमेज्ज[९] खणं[८] मुणी[१] ॥९३॥

छाया—नमस्कारेण पारयित्वा, कृत्वा जिनसंस्तवम् ।
स्वाध्यायं पठित्वा, विश्राम्येत् क्षणं मुनिः ॥९३॥

सान्वयार्थः-कायोत्सर्ग में पूर्वोक्त प्रकार से चिन्तन करनेके वाद मुणी=साधु नमुक्कारेण=नमस्कार मन्त्रसे पारित्ता=कायोत्सर्गको पार-समाप्त करके जिण-संथवं="लोगस्स उज्जोयगरे" इत्यादि संपूर्ण जिणसंथव-(जिन भगवान्‌की स्तुति) करित्ता=करके तथा सज्झायं=सज्झाय-कमसे कम मूलशास्त्रकी पांच गाथाओंका स्वाध्याय पट्ठवित्ता=पढकर खणं=क्षणभर 'जितनेमें दूसरे मुनिराज भी शामिल हो जाते हैं' इस अभिप्रायसे कुछ देर वीसमेज्ज=विश्राम करे ॥९३॥

टीका—'णमुक्कारेण' इत्यादि। मुनिः संयतः नमस्कारेण='णमो अरिहंताणं' इत्युच्चारणलक्षणेन कायोत्सर्गमिति शेषः, पारयित्वा=समाप्य जिनसंस्तवं "लोगस्स

अहो! यह शरीर मोक्षकी सिद्धिका कारण है अतः इसकी स्थितिके लिए तीर्थङ्कर भगवानने साधुओंको निर्दोष भिक्षा लेनेका उपदेश दिया है ॥ ९२ ॥

'णमुक्कारेण' इत्यादि। मुनि 'णमो अरिहंताणं' पदका उच्चारण करके कायोत्सर्गको समाप्त करे। फिर 'लोगस्स उज्जोयगरे' इत्यादि

અહો! આ શરીર મોક્ષની સિદ્ધિનું કારણ છે, એટલે એની સ્થિતિને માટે તીર્થંકર ભગવાને સાધુઓને નિર્દોષ ભિક્ષા લેવાનો જ ઉપદેશ આપ્યો છે (૯૨)

णमुक्कारेण ઇત્યાદિ મુનિ णमो अरिहंताणं પદનું ઉચ્ચારણ કરીને કાયો-ત્સર્ગને સમાપ્ત કરે, પછી लोगस्स उज्जोयगरे ઇત્યાદિ જિનસંસ્તવ પૂર્ણ કરીને

उज्जोयगरे" इत्यादिलक्षणं सम्पूर्णं कृत्वा=विधाय स्वाध्यायं="धम्मो मंगलमुक्किट्ठं०" इत्यादिगाथापञ्चकादन्यूनं मूलशास्त्रं पठित्वा क्षणं=क्षणमात्रं 'मण्डलेऽन्यमुनयोऽपि समागत्य संमिलिता भवन्तु' इत्याशयेन विश्राम्येत्=विश्रान्तिं कुर्यात् ॥९३॥

विश्राम्यन् मुनिः किं कुर्यात् ? इत्याह—

मूलम्—वीसमंतो[1] इमं[3] चिंते[6], हियमट्ठं[4 5] लाभमट्ठिओ[2] ।
जइ[7] मे[9] अणुग्गहं[10] कुज्जा[11], साहू[8] हुज्जामि[12] तारिओ[13] ॥९४॥

छाया—विश्राम्यन् (मुनिः) इदं चिन्तयेत्, हितमर्थं लाभार्थिकः ।
यदि मम अनुग्रहं कुर्यात्, साधुर्भवामि तारितः ॥९४॥

विश्रामके समय मुनि क्या करे ? सो बताते हैं—

सान्वयार्थः—वीसमंतो=विश्राम करता हुआ लाभमट्ठिओ=कर्मनिर्जराका अभिलाषी साधु इमं=इस-इसी गाथाके उत्तरार्द्धमें कहेजानेवाले-प्रकार हियं= मोक्षप्राप्तिरूप हितके करनेवाले अट्ठं=भावी प्रयोजनको चिंते=चिन्तन करे, जैसे जइ=यदि—अगर साहू=कोईभी मुनिराज मे=मेरे ऊपर अणुग्गहं कुज्जा=अनुग्रह करें अर्थात्-मेरे भागके आहारमेंसे कुछ आहार लेलें तो मैं तारिओ हुज्जा= इस संसार-समुद्रको तैर जाऊं-पार कर जाऊं ॥९४॥

टीका—विश्राम्यन्=विश्रान्तिं कुर्वाणो लाभार्थिकः=कर्मनिर्जराभिलाषी इदं= गाथोत्तरार्द्धे वक्ष्यमाणं हितं=मुक्त्यवाप्तिरूपम् अर्थं=भाविप्रयोजनं चिन्तयेत्=विचारयेत्, यदि कोऽपि साधुः=मुनिः मम=मदुपरि अनुग्रहं=मया मदर्थं चोपनीतस्याहारादेर्ग्रहणलक्षणं कुर्यात् तर्हि अहं तारितः=दुस्तरभवसागरतः समुत्तारितो भवामीत्यर्थः ॥९४॥

जिन संस्तव पूर्ण करके 'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं' इत्यादि कमसे कम पांच गाथाओंकी मूल-शास्त्रकी सज्झाय करके थोड़ी देर विश्राम करे कि जिससे अन्य मुनि भी आकर शामिल हो जावें ॥ ९३ ॥

विश्राम करता हुआ मुनि क्या करे सो कहते हैं—'वीसमंतो' इत्यादि ।

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं ઇત્યાદિ ઓછામાં ઓછી પાંચ ગાથાઓની મૂળશાસ્ત્રની સઝ્ઝાય કરી થોડીવાર વિશ્રામ કરે કે જેથી અન્ય મુનિ પણ આવીને શામિલ થઇ જાય (૯૩)

વિશ્રામ કરતાં મુનિ શું કરે તે કહે છે—वीसमंतो० ઇત્યાદિ.

एवं विचिन्त्य स पूर्वं स्वभागमन्नादिकं ग्राहयितुं सर्वेषु मुनिषु रत्नाधिकं प्रार्थयेत् । यदि गृह्णीयात्तर्हि सम्यक्, नाङ्गीकुर्याच्चेदेवं निवेदयेत्-"आर्यपादाः ! कस्मैचिन्मुनये भवद्भिः स्वयमेव वितीर्यताम्"-मिति । अथ रत्नाधिको यथेच्छं दद्यात् । यदि चाऽदत्वा रत्नाधिकः 'त्वमेव यथेच्छं प्रयच्छे'-ति ब्रूयात् तदा तेन शिष्येण किं कर्त्तव्यम् ? इत्याह-'साहवो' इत्यादि ।

मूलम्-साहवो(२) तो(१) चियत्तेणं(३), निमंतिज्ज(५) जहक्कमं(४) ।
जइ(६) तत्थ(७) केइ(८) इच्छिज्जा(९), तेहिं(१०) सद्धिं(११) तु(१२) भुंजए(१३) ॥ ९५ ॥

छाया—साधून् ततः चियत्तेणं, निमन्त्रयेद् यथाक्रमम् ।
यदि तत्र केऽपि इच्छेयुः, तैः सार्द्धं भुञ्जीत ॥९५॥

कर्मोंकी निर्जराका अभिलाषी साधु विश्राम करते समय इस मुक्ति रूप हितके करनेवाले अर्थका चिन्तन करे—यदि कोई मुनिराज मुझ पर अनुग्रह करके मेरे भागके अन्न आदिको ग्रहण करें तो मैं इस दुस्तर भवसागरसे तिर जाऊँ ॥ ९४ ॥

ऐसा विचार करके प्रथम सब मुनियोंमे जो रत्नाधिक (दीक्षामें बड़े) हों उनसे अपना भाग ग्रहण करनेकी प्रार्थना करे । यदि ग्रहण करें तो अच्छा ही है । न ग्रहण करें तो ऐसा निवेदन करे-'हे भदन्त ! आप ही किसी मुनिको यह आहार वितीर्ण कीजिए' फिर रत्नाधिक इच्छानुसार देदेवें । यदि वे न देकर यह आज्ञा देवें कि-'तुम्ही इच्छानुसार देदो' तो शिष्यको क्या करना चाहिए ? सो बताते हैं-'साहवो' इत्यादि ।

કર્મોની નિર્જરાનો અભિલાષી સાધુ વિશ્રામ કરતી વખતે આવા મુકિતરૂપ હિતના કરવાવાળા અર્થનુ ચિંતન કરે—જો કોઇ મુનિરાજ મારા પર અનુગ્રહ કરીને મારા ભાગના અન્ન આદિને ગ્રહણ કરે તો હુ આ દુસ્તર ભવસાગરથી તરી જઉ (૯૪)

એવો વિચાર કરીને પહેલા બધા મુનિઓમા જે રત્નાધિક (દીક્ષામા વડા) હોય તેમને પોતાનો ભાગ ગ્રહણ કરવાની પ્રાર્થના કરે જો તે ગ્રહણ કરે તો સારૂં, ન ગ્રહણ કરે તો એવું નિવેદન કરે કે—'હે ભદંત ! આપ જ કોઇ મુનિને આ આહાર વહેંચી આપો' પછી રત્નાધિક ઇચ્છાનુસાર આપે જો તે ન આપતા એવી આજ્ઞા કરે કે 'તમે ઇચ્છાનુસાર આપી દો' તો શિષ્યે શુ કરવુ જોઇએ ? તે બતાવે છે—સાહવો૦ ઇત્યાદિ

पूर्वोक्त प्रकार से चिन्तन करके अपने हिस्से का अशनादिको लेनेके लिये सब मुनियोंमें से रत्नाधिक-दीक्षा म वड़े-मुनिसे पहले प्रार्थना करे, यदि वे लें तो अच्छा ही है, अगर वे न लें तो उनसे कहे-' हे भगवन् ! आपही अपने हाथ से किसी दूसरे सन्त को दीजिये'। ऐसा कहने पर यदि वे अपने हाथ से किसी को दें तो ठीक ही है, यदि खुद न देकर उसीसे कह देवें कि 'तुमही तुम्हारी इच्छा के अनुसार जो लेवे उसको दे दो' तव उसे क्या करना चाहिये, सो वताते हैं—

सान्वयार्थः—तो=इस प्रकार गुरु महाराजकी आज्ञा प्राप्त होने पर वह साधु **साहवो**=सव सन्तोंको **चियत्तेणं**=त्याग-वुद्धिसे अर्थात् उदार चित्तसे **जहक्कमं**= रत्नाधिकके क्रमानुसार **निमंतिज्ज**=निमन्त्रण करे-आहार धामे, जइ=यदि-अगर तत्थ=उनमेंसे केइ=कोई साधु इच्छिज्जा=आहार लेना चाहें तो (उन्हें देकर) **तेहिं सद्धिं तु**=उनके साथ वैठकर **भुंजए**=खुद भी आहार करे ॥९५॥

टीका—तो=ततः गुरोरादेशाऽनन्तरम् असौ साधून् चियत्तेणं='देशीयशब्दोऽयम्' परमप्रीत्या उदारचेतसेत्यर्थः, यथाक्रमं=रत्नाधिकक्रममनुसृत्य निमन्त्रयेत्= स्वभागग्रहणाय प्रार्थयेत्-'इदं गृहीत्वाऽनुगृह्यता'-मिति वदेदित्यर्थः। यदि तत्र= मुनीनां मध्ये केऽपि मुनय इच्छेयुः=ग्रहीतुमभिलषेयुस्तदा तेभ्योऽपि वितीर्य तैः सार्द्धं स्वयमपि भुञ्जीत='चपड़-चपड़े' ति शब्दमकुर्वन्नभ्यवहरेत् ॥९५॥

१ २ ३ ४ ५ १२ ७
मूलम्—अह कोइ न इच्छिज्जा, तओ भुंजिज्ज एगओ ।
८ ९ ६ १० ११
आलोए भायणे साहू, जयं अपरिस्साडियं ॥ ९६ ॥

गुरुकी आज्ञा मिलनेके अनन्तर प्रसन्न चित्तसे उदारताके साथ दीक्षामें वड़े-छोटेके क्रमसे साधुओंको अपना भाग ग्रहण करनेकी प्रार्थना करे, अर्थात् 'यह आहार ग्रहण करनेका अनुग्रह कीजिए' ऐसा कहे। उन मुनियोंमेंसे कोई ग्रहण करनेकी इच्छा करें तो उन्हें वितीर्ण करके उनके साथ आप भी चपड़-चपड़ शब्द न करता हुआ आहार करे ॥ ९५ ॥

ગુરુની આજ્ઞા મળ્યા પછી પ્રસન્ન ચિત્તથી ઉદારતાની સાથે દીક્ષામાં મોટા-નાનાના ક્રમે કરીને સાધુઓને પોતાનો ભાગ ગ્રહણ કરવાની પ્રાર્થના કરે અર્થાત્ 'આ આહાર ગ્રહણ કરવાનો અનુગ્રહ કરો' એમ કહે એ મુનિઓમાંથી કોઈ ગ્રહણ કરવાની ઇચ્છા કરે તો તેમને વહેંચી આપીને તેમની સાથે પોતે પણ ચપડ-ચપડ અવાજ કર્યા વિના આહાર કરે. (૯૫)

लवणं=लवणरसयुक्त, इत्यादि प्रकारका कैसा भी हो; किन्तु-अन्नट्ठपउत्तं=साधुको न उद्देश करके गृहस्थने अपने लिये बनाये हुए, अथवा-स्वादसुखके सिवाय सिर्फ शरीर-निर्वाहके लिए विधान किये हुए और लद्धं=आगमोक्त विधिसे मिले हुए एयं=इस पूर्वोक्त प्रकारके तीखे आदि अशनादिको संजए=रागद्वेषरहित साधु महु-घयं व=मीठे घी-शक्करकी तरह अर्थात् जिस प्रकार घी-शक्कर युक्त भोजनको रुचिपूर्वक भोगते हैं उसी प्रकार भुंजिज्ज=भोगवे ॥९७॥

टीका—'तित्तगं' इत्यादि। संयतः तिक्तकं, कटुकं, कषायम्, अम्लं, मधुरं, वा=अथवा लवणं=क्षारम्, तत्तद्रसयुक्तमित्यर्थः। एतत्सर्वमन्नादिकम् अन्यार्थ-प्रयुक्तं=गृहस्थैः स्वनिमित्तं सम्पादितं न तु साध्वर्थं शुद्धमित्यर्थः, यद्वा अन्यार्थं=स्वादसुखादन्यस्मै प्रयोजनाय शरीरमात्रनिर्वाहार्थमिति यावत्, प्रयुक्तम्=आगमेन विहितं लब्धं=प्राप्तं सत् मधुघृतमिव, तत्र मधु=शर्करादिमधुरद्रव्यं घृतं=प्रतीतं तद्वत्, यथा मधुघृतभोजने प्रवृत्तिर्जायते तथाऽन्यान्यपि तिक्तकादीनि तत्तुल्य-भावेन भुञ्जीत। उक्तञ्च सङ्ग्रहगाथयोः—

'तित्तगं' इत्यादि। तीखे, कडुवे, कसायले, खट्टे मीठे अथवा क्षाररसवाले पदार्थ जो गृहस्थने अपने लिए बनाये हैं अर्थात् साधुके लिए न बनाये हों, अथवा स्वाद-सुखके सिवाय अन्य प्रयोजनके लिए अर्थात् शरीरके निर्वाहके लिए यदि आगमानुसार विधिसे प्राप्त हुए हों तो उन्हें ऐसे भोगे जैसे घी-शक्करका आहार किया जाता है। तात्पर्य यह है कि—साधुको निरवद्य अन्त-प्रान्त आदि जैसाआहार मिले उस सबको समभावसे भोगना चाहिए। जैसे संग्रह गाथाओंमें कहा है—

तित्तगं ઇત્યાદિ તીખા, કડવા, કસાયલા, ખાટા, મીઠા, અથવા ક્ષારરસવાળા પદાર્થો જે ગૃહસ્થે પોતાને માટે બનાવ્યા હોય અર્થાત્ સાધુને માટે ન બનાવ્યા હોય અથવા સ્વાદ-સુખ સિવાય અન્ય પ્રયોજનને માટે અર્થાત્ શરીરના નિર્વાહને માટે જો આગમાનુસાર વિધિથી પ્રાપ્ત થયા હોય તો તેમને એવી રીતે ભોગવે કે જેમ ઘી-સાકરનો આહાર કરવામાં આવતો હોય તાત્પર્ય એ છે કે-સાધુને નિરવદ્ય અંત-પ્રાંત આદિ જેવો આહાર મળે એ બધાને સમભાવથી ભોગવવો જોઈએ. સંગ્રહ ગાથામાં કહ્યું છે કે—

छाया—अथ कोऽपि न इच्छेत्, ततो भुञ्जीत एककः।
आलोके भाजने साधुः, यतम् अपरिशातयन् ॥९६॥

सान्वयार्थः—अह=अथ-यदि कोइ=कोई न इच्छिज्जा=आहार लेना नहीं चाहे तो तओ=फिर साहू=वह साधु एगओ=अकेला-द्रव्यसे स्वयं एक ही, भावसे राग-द्वेष-संग-रहित आलोए=प्रकाशयुक्त-चौड़े मुंहवाले भायणे=पात्रमें जयं=यतनापूर्वक अर्थात् मांडलेके दोषोंको टालकर अपरिसाडियं=सीथ-कणका विन्दु-मात्र भी आहार नहीं गिराता हुआ भुंजिज्ज=आहार करे ॥९६॥

टीका—'अह' इत्यादि। यदि कोऽपि ग्रहीतुं नेच्छेत् तदनन्तरं साधु एककः= द्रव्येण स्वयमेव, भावेन रागद्वेषरहितः आलोके प्रकाशमाने भाजने मशकादि-क्षुद्रजन्तवो यथा दृष्टिपथमागच्छेयुस्तदर्थमिति भावः। यतं=सयतनं मण्डलदोष-भावानुसन्धानपूर्वकम् अपरिशातयन् सिक्थादिकमविकिरन् भुञ्जीत ॥९६॥

मूलम्—तित्तगं[2] च[3] कडुयं[4] च[5] कसायं,[6] अंबिलं[7] च[8] महुरं[9] लवणं[11] वा[10]।
एय[12] लद्धमन्नट्ठपउत्तं,[14][13] महुघयं[15] व[16] भुंजिज्ज[17] संजए[1] ॥९७॥

छाया—तिक्तकं च कटुकं च कषायम्, अम्लं च मधुरं लवणं वा।
एतल्लब्धमन्यार्थप्रयुक्तं, मधु-घृतमिव भुञ्जीत संयतः ॥९७॥

सान्वयार्थः—वह आहार यदि-तित्तगं=तीखा कडुयं=कड़वा च=और कसायं=कषायला च=और अंबिलं=खट्टा च=और महुरं=मीठा वा=अथवा

'अह' इत्यादि। यदि कोई भी मुनि आहार ग्रहण करने की इच्छा प्रकाशित न करें अर्थात् न लें तो अकेला-रागद्वेषरहित वह साधु, ऐसे पात्रमें भोजन करे जिसमें प्रकाश पड़ रहा हो। प्रकाश-युक्त पात्रमें आहार करनेका विधान इसलिए किया है कि मच्छर आदि सूक्ष्म जन्तु दीख सके। मण्डल दोषोंका विचार करता हुआ सीथ-मात्र भी अन्नादि न विखेरता हुआ आहार करे ॥ ९६ ॥

અહ૦ ઇત્યાદિ જો કોઈ પણ મુનિ આહાર ગ્રહણ કરવાની ઇચ્છા પ્રકાશિત ન કરે અર્થાત્ ન લે તો એકલા-રાગદ્વેષરહિત તે એવા પાત્રમા ભોજન કરે કે જેમાં પ્રકાશ પડતો હોય પ્રકાશયુક્ત પાત્રમા આહાર કરવાનું વિધાન એટલા માટે કર્યું છે કે મચ્છર આદિ સૂક્ષ્મ જંતુ દેખી શકાય. મંડલ દોષોનો વિચાર કરતા એક કણ જેટલુ પણ અન્ન ન વેરાવા દેતા આહાર કરે. (૯૬)

छाया—अरसं विरसं वाऽपि, सूचितं वा असूचितम् ।
आर्द्रं वा यदि वा शुष्कं, मन्थु-कुल्माष-भोजनम् ॥९८॥
उत्पन्नं नातिहीलयेत्, अल्पं वा बहु प्रासुकम् ।
मुधालब्धं मुधाजीवी, भुञ्जीत दोषवर्जितम् ॥९९॥

सान्वयार्थः—अरसं=नमक आदि रसरहित वावि=तथा विरसं=अधिक दिनोंकी बनी हुई विरस-वासी-सूखी-रोटी आदि या पुराने चाँवल आदिका भोजन सूइयं=हींग आदिका वघार (छौंक) दिया हुआ वा=अथवा असूइयं=नहीं वघार दिया हुआ शाक आदि उल्लं=गीला-करंबा, राइता आदि वा=तथा सुक्कं=सूखा-भुने हुए चने-भूंगडे-आदि जइवा=अथवा मंथुकुम्मासभोयणं=बेरके चूरेका भोजन या कुलथीका भोजन अथवा उड़दका बाकुला (यह पूर्वोक्त सब प्रकारका अशनादि) उप्पण्णं=जो गोचरीके समय शास्त्रमर्यादासे मिल गया वह अप्पं=थोड़ा हो वा=या बहु=बहुत हो उसकी नाइहीलिज्जा=अवहेलना न करे, किन्तु फासुयं=प्रासुक-अचित्त और मुहालद्धं=निष्काम-विना किसी प्रत्युपकारके प्राप्त हुए-उस अशनादिको मुहाजीवी=निष्काम-सिर्फ संयम-यात्राका निर्वाहसे-जीनेवाला अर्थात् निरपेक्ष भिक्षा लेनेवाला साधु दोसवज्जियं=भोजनके संयोजनादि दोषोंको टालकर भुंजिज्जा=भोगवे ॥९८॥९९॥

टीका—'अरसं' इत्यादि, 'उप्पण्णं' इत्यादि च । अरसं=लवणादिरसरहितम्, अप्राप्तरसं वालचणकादिनिष्पादितं वा, अपिवा विरसं=चिरकालनिष्पादितत्वेन विगतरसं, पुराणौदनादिकं वा, सूचितं=हिङ्ग्वादिसंस्कृतं वा=अथवा असूचितं=तद्वर्जितम्, आर्द्रं=करम्भादिकं, शुष्कं=भर्जितचणकादिकम् । मन्थुकुल्माषभोजनं=मन्थुश्च कुल्माषश्चाऽनयोः समाहारे मन्थुकुल्माषं, तद्, भुज्यते यत्तद्भोजनं, मन्थुकुल्माषं च तद्भोजनं चेति विग्रहः, तत्र मन्थुः=बदरचूर्णादिकम्, कुल्माषः=कुलत्थः,

'अरसं' इत्यादि, 'उप्पण्णं' इ[illegible] तथा बाल
चणक आदि अरस या बहुत पुराना [illegible] आदि
द्वारा छौंका हुआ या न छौंका हु[illegible] सूखे-भुने
हुए चने आदि, बेर[illegible]

અરસ ઇત્યાદિ, [illegible]
આદિ અરસ યા બહુ [illegible]
ન વધારેલું, લીલો [illegible]

यद्वा अर्द्धस्विन्नमाषः 'उडदवाकुला' इति भाषाप्रसिद्धः। एतत् पूर्वोक्तं सर्वम् उत्पन्नं=शास्त्रमर्यादयोपलब्धं, प्रासुकं=निर्जीवं, मुधालब्धं=मन्त्रतन्त्रादिप्रकारमन्तरेण प्राप्तं, तद् यदि अल्पं=स्वल्पं सरसमन्नादिकं, वा=अथवा बहु प्रचुरम् असारमशनादिकम्, उपलक्ष्येति शेषः, नातिहीलयेत्=न निन्देत्। अल्पीयसि सरसवस्तुनि लब्धे-"कथमेतावतैवोदरपूर्त्तिर्भवेत्" इति, एवमसारवस्तुनि प्रचुरतरे लब्धे सति "किमनेन प्रचुरतरेणापि निष्प्रयोजनेने"-त्येवंरूपां निन्दां न कुर्यादिति हृदयम्। किन्तु मुधाजीवी=मुधा-व्यर्थं-निष्प्रयोजनं शरीरेन्द्रियपुष्टिप्रयोजनविकलं जीवितुं शीलमस्येति सः, संयमयात्रानिर्वाहार्थमेव भिक्षाग्रहणशील इति भावः। यद्वा मुधाजीवी=निर्दोषभिक्षाजीवी-जात्याद्यनाविष्करणपूर्वकभिक्षाग्राहक इत्यर्थः, दोषवर्जितं=संयोजनादिमण्डलदोषा यथा न भवेयुस्तथा भुञ्जीत। 'उत्पन्नं' इत्यनेन

भोजन। ये सब यदि शास्त्रोक्त विधिसे प्राप्त हुए हों, प्रासुक हों, मंत्र-तंत्र आदिका प्रयोग किये विना मिले हों, थोड़े हों या बहुत हों अर्थात् सरस अन्नादि थोड़ा हो और नीरस आहार बहुत हो तो मुधाजीवी-अर्थात् संयमयात्राके निर्वाहके लिए जीवन धारण करनेवाला, अथवा निर्दोष अर्थात् जाति-आदिको न प्रगट करके भिक्षा लेनेवाला साधु उस आहारकी अवहेलना न करे। तात्पर्य यह है कि-सरस आहार कम मिले तो ऐसा न कहे कि-'इतने थोड़े आहारसे उदरपूर्त्ति कैसे होगी।' नीरस आहार अधिक मिले तो ऐसा न कहे कि-'इस बहुतेरे व्यर्थ आहारसे क्या लाभ?।' इस प्रकार आहारकी निन्दा न करे, किन्तु आहारके संयोजना आदि मण्डल दोषोंको टाल कर भोगे।

અથવા કળથી યા અડદના બાકળાનું ભોજન, એ સર્વ જો શાસ્ત્રોકત વિધિથી પ્રાપ્ત થયા હોય, પ્રાસુક હોય, મન્ત્ર-તન્ત્ર આદિનો પ્રયોગ કર્યા વિના મળ્યા હોય, થોડા હોય યા વધારે હોય, અર્થાત્ સરસ અન્નાદિ થોડું હોય અને નીરસ આહાર વધારે હોય, તો મુધાજીવી-અર્થાત્ સંયમયાત્રાના નિર્વાહને માટે જીવન ધારણ કરનારો અથવા નિર્દોષ અર્થાત્ જાતિ આદિને પ્રકટ કર્યા વિના ભિક્ષા લેનારો સાધુ એ આહારની અવહેલના કરે નહિ, તાત્પર્ય એ છે કે-સરસ આહાર ઓછો મળે તો એમ ન કહે કે 'આટલા થોડા આહારથી ઉદરપૂર્તિ કેવી રીતે થશે?' નીરસ આહાર વધારે મળે તો એમ ન કહે કે 'આ ઘણા બધા વ્યર્થ આહારથી શો લાભ?' એ પ્રમાણે આહારની નિન્દા ન કરે, પરન્તુ આહારના સંયોજના આદિ મંડલ દોષોને ટાળીને ભોગવે.

छाया—अरसं विरसं वाऽपि, सूचितं वा असूचितम् ।
आर्द्रं वा यदि वा शुष्कं, मन्थु-कुल्माष-भोजनम् ॥९८॥
उत्पन्नं नातिहीलयेत्, अल्पं वा बहु प्रासुकम् ।
मुधालब्धं मुधाजीवी, भुञ्जीत दोषवर्जितम् ॥९९॥

सान्वयार्थः-अरसं=नमक आदि रसरहित वावि=तथा विरसं=अधिक दिनोंकी बनी हुई विरस-वासी-सूखी-रोटी आदि या पुराने चाँवल आदिका भोजन सूइयं=हींग आदिका वघार (छौंक) दिया हुआ वा=अथवा असूइयं=नहीं वघार दिया हुआ शाक आदि उल्लं=गीला-करंबा, राइता आदि वा=तथा सुक्कं=सूखा-भुने हुए चने-भूंगडे-आदि जइवा=अथवा मंथुकुम्मासभोयणं=वेरके चूरेका भोजन या कुलथीका भोजन अथवा उड़दका वाकुला (यह पूर्वोक्त सब प्रकारका अशनादि) उप्पण्णं=जो गोचरीके समय शास्त्रमर्यादासे मिल गया वह अप्पं=थोड़ा हो वा=या वहु=वहुत हो उसकी नाइहीलिज्जा=अवहेलना न करे, किन्तु फासुयं=प्रासुक-अचित्त और मुहालद्धं=निष्काम-विना किसी प्रत्युपकारके प्राप्त हुए-उस अशनादिको मुहाजीवी=निष्काम-सिर्फ संयम-यात्राका निर्वाहसे-जीनेवाला अर्थात् निरपेक्ष भिक्षा लेनेवाला साधु दोसवज्जियं=भोजनके संयोजनादि दोषोंको टालकर भुंजिज्जा=भोगवे ॥९८॥९९॥

टीका-'अरसं' इत्यादि, 'उप्पण्णं' इत्यादि च। अरसं=लवणादिरसरहितम्, अप्राप्तरसं वालचणकादिनिष्पादितं वा, अपिवा विरसं=चिरकालनिष्पादितत्वेन विगतरसं, पुराणौदनादिकं वा, सूचितं=हिङ्ग्वादिसंस्कृतं वा=अथवा असूचितं=तद्वर्जितम्, आर्द्रं=करम्भादिक, शुष्कं=भर्जितचणकादिकम् । मन्थुकुल्माषभोजनं=मन्थुश्च कुल्माषश्चाऽनयोः समाहारे मन्थुकुल्माषं, तद्, भुज्यते यत्तद्भोजनं, मन्थुकुल्माषं च तद्भोजनं चेति विग्रहः, तत्र मन्थुः=वदरचूर्णादिकम्, कुल्माषः=कुलत्थः,

'अरसं' इत्यादि, 'उप्पण्णं' इत्यादि च। नमकरहित तथा बाल चणक आदि अरस या बहुत पुराना ओदन आदि विरस, हींग आदि द्वारा छोंका हुआ या न छोंका हुआ, गीला-करंबा आदि, सूखे-भुने हुए चने आदि, वेरका चूर्ण आदि, अथवा कुलथी या उड़दके बाकलाका

અરસ ઇત્યાદિ, તથા ઉપ્પણ્ણં૦ ઇત્યાદિ મીઠાથી રહિત તથા વાલ-ચણા આદિ અરસ યા બહુ જૂનો ઓદન-આદિ વિરસ, હીંગ આદિથી વઘારેલું યા ન વઘારેલું, લીલો કરમો આદિ, સૂકા-ભૂંજેલા ચણા આદિ, બોરનું ચૂર્ણ આદિ

यद्वा अर्द्धस्विन्नमाषः 'उडदवाकुला' इति भाषाप्रसिद्धः। एतत् पूर्वोक्तं सर्वम् उत्पन्नं=शास्त्रमर्यादयोपलब्धं, प्रासुकं=निर्जीवं, मुधालब्धं=मन्त्रतन्त्रादिप्रकारमन्तरेण प्राप्तं, तद् यदि अल्पं=स्वल्पं सरसमन्नादिकं, वा=अथवा बहु प्रचुरम् असारमशनादिकम्, उपलक्ष्येति शेषः, नातिहीलयेत्=न निन्देत्। अल्पीयसि सरसवस्तुनि लब्धे-"कथमेतावतैवोदरपूर्त्तिर्भवेत्" इति, एवमसारवस्तुनि प्रचुरतरे लब्धे सति "किमनेन प्रचुरतरेणापि निष्प्रयोजनेने"-त्येवंरूपां निन्दां न कुर्यादिति हृदयम्। किन्तु मुधाजीवी=मुधा-व्यर्थं-निष्प्रयोजनं शरीरेन्द्रियपुष्टिप्रयोजनविकलं जीवितुं शीलमस्येति सः, संयमयात्रानिर्वाहार्थमेव भिक्षाग्रहणशील इति भावः। यद्वा मुधाजीवी=निर्दोषभिक्षाजीवी-जात्याद्यनाविष्करणपूर्वकभिक्षाग्राहक इत्यर्थः, दोषवर्जितं=संयोजनादिमण्डलदोषा यथा न भवेयुस्तथा भुञ्जीत। 'उत्पन्नं' इत्यनेन

भोजन। ये सब यदि शास्त्रोक्त विधिसे प्राप्त हुए हों, प्रासुक हों, मंत्र-तंत्र आदिका प्रयोग किये विना मिले हों, थोड़े हों या बहुत हों अर्थात् सरस अन्नादि थोड़ा हो और नीरस आहार बहुत हो तो मुधाजीवी-अर्थात् संयमयात्राके निर्वाहके लिए जीवन धारण करनेवाला, अथवा निर्दोष अर्थात् जाति-आदिको न प्रगट करके भिक्षा लेनेवाला साधु उस आहारकी अवहेलना न करे। तात्पर्य यह है कि-सरस आहार कम मिले तो ऐसा न कहे कि-'इतने थोड़े आहारसे उदरपूर्त्ति कैसे होगी।' नीरस आहार अधिक मिले तो ऐसा न कहे कि-'इस बहुतेरे व्यर्थ आहारसे क्या लाभ?।' इस प्रकार आहारकी निन्दा न करे, किन्तु आहारके संयोजना आदि मण्डल दोषोंको टाल कर भोगे।

અથવા કળથી યા અડદના બાકળાનું ભોજન, એ સર્વ જો શાસ્ત્રોકત વિધિથી પ્રાપ્ત થયાં હોય, પ્રાસુક હોય, મંત્ર-તંત્ર આદિના પ્રયોગ કર્યા વિના મળ્યા હોય, થોડા હોય યા વધારે હોય, અર્થાત્ સરસ અન્નાદિ થોડું હોય અને નીરસ આહાર વધારે હોય, તો મુધાજીવી-અર્થાત સંયમયાત્રાના નિર્વાહને માટે જીવન ધારણ કરનારો અથવા નિર્દોષ અર્થાત્ જાતિ આદિને પ્રકટ કર્યા વિના ભિક્ષા લેનારો સાધુ એ આહારની અવહેલના કરે નહિ, તાત્પર્ય એ છે કે-સરસ આહાર ઓછો મળે તો એમ ન કહે કે 'આટલા થોડા આહારથી ઉદરપૂર્તિ કેવી રીતે થશે?' નીરસ આહાર વધારે મળે તો એમ ન કહે કે 'આ ઘણા બધા વ્યર્થ આહારથી શો લાભ?' એ પ્રમાણે આહારની નિન્દા ન કરે, પરન્તુ આહારના સંયોજના આદિ મંડલ દોષોને ટાળીને ભોગવે

शास्त्रमर्यादयैव गीतार्थेनान्नादि ग्राह्यमिति सूचितम् । 'फासुयं' अनेन सचित्तमचित्तं वेति परीक्ष्य ग्रहीतव्यमिति दर्शितम् । 'मुहालद्धं' इतिपदेन दातुरुपकारं विधाय भिक्षाग्रहणे आधाकर्मादयो बहवो दोषाः समापतन्तीति तथा नोपादेयमिति प्रकटितम् । 'दोसवज्जियं' इतिपदेन निर्दोषभिक्षामाप्तावपि मण्डलदोषवत्त्वेन सदोषत्वं दुर्निवारमिति मण्डलदोषरहितं भोक्तव्यमिति प्रादुष्कृतम् ॥९८॥९९॥

मूलम्-दुल्लहाओ[२] मुहादाई[१], मुहाजीवी[३] वि[४] दुल्लहा[५] ।
मुहादाई[६] मुहाजीवी[७], दोवि[८] गच्छंति[१०] सुग्गइं[९] ॥१००॥
॥ त्तिबेमि ॥

छाया—दुर्लभा मुधादातारः, मुधाजीविनोऽपि दुर्लभाः ।
मुधादातारः मुधाजीविनः, द्वावपि गच्छतः सुगतिम् ॥१००॥
इति ब्रवीमि ॥

सान्वयार्थः-मुहादाई=निष्काम-प्रत्युपकारकी आशा न रखकर-देनेवाले दुल्लहाओ=दुर्लभ हैं और मुहाजीवीवि=निष्काम-दाताके कार्यकी अपेक्षा न

'उप्पन्नं' पदसे यह सूचित किया है कि गीतार्थ साधुको शास्त्रकी मर्यादाके अनुसार ही आहार ग्रहण करना चाहिए । 'फासुयं' पदसे सचित्त-अचित्तकी परीक्षा करके ग्रहण करना द्योतित किया है । 'मुहालद्धं' पदसे यह दर्शाया है कि दाताका उपकार करके भिक्षा ग्रहण करनेसे आधाकर्म आदि बहुतसे दोष आते हैं, अतः ऐसी भिक्षा नहीं लेनी चाहिए । 'दोसवज्जियं' पदसे यह प्रगट किया है कि निर्दोष भिक्षा उपलब्ध होजाने पर भी मण्डल दोष लगनेसे वह भिक्षा अवश्य दूषित होजाती है; इसलिए उनका परिहार करके ही आहार करना चाहिए ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

उप्पन्नं शब्दथी એમ સૂચિત કરવામાં આવ્યું છે કે ગીતાર્થ સાધુએ શાસ્ત્રની મર્યાદાને અનુસાર જ આહાર ગ્રહણ કરવો જોઈએ. फासुयं શબ્દથી સચિત્ત અચિત્તની પરીક્ષા કરીને ગ્રહણ કરવાનું કહેવામાં આવ્યું છે मुहालद्धं શબ્દથી એમ દર્શાવવામા આવ્યું છે કે દાતાનો ઉપકાર કરીને ભિક્ષા ગ્રહણ કરવાથી આધાકર્મ આદિ ઘણા દોષો લાગે છે, તેથી એવી ભિક્ષા ન લેવી જોઈએ. दोसवज्जियं શબ્દથી એમ બતાવવામા આવ્યુ છે કે નિર્દોષ ભિક્ષા ઉપલબ્ધ થતાં પણ મંડલ દોષ લાગવાથી એ ભિક્ષા અવશ્ય દૂષિત થઈ જાય છે, તેથી એનો પરિહાર કરીને જ આહાર કરવો જોઈએ. (૯૮-૯૯)

रखकर-निरपेक्ष-लेनेवाले भी दुल्लहा=दुर्लभ हैं, क्योंकि मुहादाई=निष्काम देने-वाले और मुहाजीवी=निष्काम-निरपेक्ष लेनेवाले दोवि=ये पूर्वोक्त दोनों ही सुग्गइं=मोक्षगतिको गच्छंति=प्राप्त होते हैं। श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं कि हे जम्बू! त्ति=भगवान् महावीर स्वामीने जैसा फरमाया है वैसा ही तुझे बेमि=मैं कहता हूं ॥१००॥

॥इति श्रीदशवैकालिक सूत्रके पांचवें अध्ययनके पहले उद्देशका सान्वयार्थ संपूर्ण॥

टीका—'दुल्लहाओ' इत्यादि । मुधादातारः=प्रत्युपकारानभिलाषिणो दायकाः दुर्लभाः=दुष्प्रापास्तादृशानां विरलत्वात्, मुधाजीविनोऽपि=दातृकार्यान-पेक्षनिरपेक्षभिक्षाग्राहिणोऽपि दुर्लभाः, मुधादातारः मुधाजीविनश्च द्वावपि=दाता भिक्षुश्च उभावप्युक्तविधौ सुगतिं=सिद्धगतिं गच्छतः=प्राप्नुतः । 'मुधादातारः' 'मुधाजीविनः' इत्यत्र बहुवचनं व्यक्तिविवक्षया । 'द्वावपि' इत्यत्र द्विवचनं तु मुधादातृत्व-मुधाजीवित्वोभयधर्मगतद्वित्वसंख्याविवक्षयेति बोध्यम् ॥ इति ब्रवीमीति प्राग्वत् ॥१००॥

। इति श्री-दशवैकालिकसूत्रस्याऽऽचारमणिमञ्जूषाख्यायां व्याख्यायां पञ्चमाध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥ ५-१ ।

'दुल्लहाओ' इत्यादि । प्रत्युपकार (बदला) की आशा न रखनेवाले दाता दुर्लभ हैं, और दाताका कार्य न करके भिक्षा ग्रहण करनेवाले साधु भी विरले होते हैं। प्रत्युपकारकी चाह न रखनेवाले दाता और किसीका कार्य विना किये भिक्षा ग्रहण करनेवाला आत्मार्थी साधु, इन दोनोंको मोक्षगतिकी प्राप्ति होती है।

श्रीसुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं-हे जम्बू! चरम जिनेश्वर भगवान् महावीर स्वामीने जैसा उपदेश दिया है वैसा मैंने कहा है ॥१००॥

इति दशवैकालिक सूत्रके पाँचवें अध्यनके पहले
उद्देशका हिन्दी-भाषानुवाद समाप्त ॥५-१ ॥

दुल्लहाओ० ઇત્યાદિ નિષ્કામ-પ્રત્યુપકાર (બદલા)ની આશા ન રાખનાર-દાતા દુર્લભ છે અને નિષ્કામ-દાતાનું કાર્ય ન કરતાં ભિક્ષા ગ્રહણ કરનાર-સાધુ પણ વિરલ જ હોય છે પ્રત્યુપકારની ઇચ્છા ન રાખનાર દાતા અને કોઇનું કાર્ય કર્યા વિના ભિક્ષા ગ્રહણ કરનાર આત્માર્થી સાધુ, એ બેઉને મોક્ષ ગતિની પ્રાપ્તિ થાય છે

શ્રી સુધર્મા સ્વામી જંબૂ સ્વામીને કહે છે કે-હે જમ્બૂ ! ચરમ જિનેશ્વર ભગવાન્ મહાવીર સ્વામીએ જેવો ઉપદેશ આપ્યો છે તેવો જ મે કહ્યો છે (૧૦૦)

ઇતિ દશવૈકાલિકસૂત્રના પાચમા અધ્યયનનો પહેલા ઉદ્દેશાનો ગુજરાતી-ભાષાનુવાદ સમાપ્ત (૫-૧)

॥ अथ पञ्चमाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः ॥

प्रथमोद्देशकथितपिण्डैषणाया अवशिष्टविधिमाह–'पडिग्गहं' इत्यादि ।

मूलम्–पडिग्गहं संलिहित्ताणं, लेवमायाइ संजए ।
दुगंधं वा सुगंधं वा, सव्वं भुंजे न छड्डए ॥ १ ॥

छाया—प्रतिग्रहं संलिह्य, लेपमर्यादया संयतः ।
दुर्गन्धं वा सुगन्धं वा, सर्वं भुञ्जीत न मुञ्चेत् ॥ १ ॥

सान्वयार्थः–पडिग्गहं=पात्रको लेवमायाए=लेपकी मर्यादासे अर्थात् जब तक छांछ आदिका लेप लगा रहे तब तक संलिहित्ताणं=अंगुलीसे पोंछकर संजए=साधु दुगंधं वा=अनिष्ट गन्धवाला हो चाहे सुगंधं वा=सुरभि गन्धवाला पदार्थ हो उस सव्वं=सबको भुंजे=भोगवे; किन्तु न छड्डए=कुछभी न छोड़े-जूठन न डाले ॥१॥

टीका—प्रतिग्रहं=पात्रं लेपमर्यादया=लेपं मर्यादीकृत्य यथा लेपसम्बन्धः पात्रे नावतिष्ठेत तथा संलिह्य पात्रस्थं तक्रादिलेपमङ्गुल्यादिना निश्शेषं प्रोञ्छ्य संयतः=मुनिः, दुर्गन्धम्=अनिष्टगन्धयुक्तं-पुरातनगोधूमवर्जरिकावल्लचणकादि-

---

। पांचवाँ अध्ययनका दूसरा उद्देश ।

प्रथम उद्देशमें कही हुई विधिके अतिरिक्त-अवशिष्ट पिण्डैषणाकी विधि इस दूसरे उद्देशमें कहते हैं–'पडिग्गहं' इत्यादि ।

आहार करनेके पात्रमें जो लेप लगा रह जाय उसे अंगुली–आदि द्वारा पोंछकर मुनि अमनोज्ञ गन्ध या मनोज्ञ गन्धवाले समस्त अन्न पानको भोगे; उसे छोड़े नहीं, अर्थात् सीथ मात्र भी जूठा न डाले । पुराने गेहूँ, बाजरे, वाल, चने आदिकी बनी हुई ठडी या गर्म रोटी आदि अन्न,

---

અધ્યયન પાંચમું-ઉદ્દેશ બીજો.

પ્રથમ ઉદ્દેશમાં કહેલી વિધિ ઉપરાંત અવશિષ્ટ પિંડૈષણાની વિધિ આ બીજા ઉદ્દેશમાં કહે છે—पडिग्गहं ઈત્યાદિ

આહાર કરવામાં પાત્રમાં જે લેપ લાગેલો રહી જાય, તેને આંગળી આદિ વડે લૂછીને મુનિ અમનોજ્ઞ ગંધ યા મનોજ્ઞ ગંધવાળાં બધાં અન્ન-પાનને ભોગવે, તેને છોડે નહિ, અર્થાત્ જરા પણ બાકી ન રાખે. જૂના ઘઉં, બાજરી, વાલ,

निष्पादितं शीतमुष्णं वाऽन्नम्, अम्लतक्रपाचितवल्लचणकचूर्णनिष्पादितं शीतमुष्णं वा शाकविशेषादिकं, पर्युषिततक्रादिरूपं पानं च, तेषाममनोज्ञगन्धवत्त्वादिति भावः। सुगन्धं=सुरभिगन्धयुक्तं वा घृतपूरपायसादि तस्यैलालवङ्गकेसरकर्पूरादिमनोज्ञगन्धवत्त्वादिति भावः। सर्वं=मनोज्ञामनोज्ञरूपं सकलं भुञ्जीत न तु मुञ्चेत्=परित्यजेत्-नावशेषयेदिति भावः ॥ १ ॥

मूलम्–सेज्जा[1] निसीहियाए[2], समावन्नो[5] य[4] गोयरे[3]।
अयावयट्ठा[6] भुच्चाणं[7], जइ[8] तेणं[9] न[10] संथरे[11] ॥ २ ॥
तओ[12] कारणमुप्पण्णे[13], भत्तपाणं[14][20] गवेसए[21]।
विहिणा[19] पुव्वउत्तेण[15] इमेणं[16] उत्तरेण[17] य[18] ॥ ३ ॥

छाया—शय्यायां नैषेधिक्यां, समापन्नश्च गोचरे।
अयावदर्थं भुक्त्वा, यदि तेन न संस्तरेत् ॥ २ ॥
ततः कारणे उत्पन्ने, भक्त-पानं गवेषयेत्।
विधिना पूर्वोक्तेन, अनेन उत्तरेण च ॥ ३ ॥

सान्वयार्थः–सेज्जा=वसति-उपाश्रय-में निसीहियाए=आहार करनेके स्थान पर य=अथवा गोयरे=भिक्षाचरीमें समावन्नो=प्राप्त हुआ मुनि अयावयट्ठा=जरूरीसे कम अर्थात् थोड़ा भुच्चाणं=खाकर-खालेनेपर जइ=यदि-अगर तेणं=उस अशनादिसे न संथरे=न सरे अर्थात् संयमयात्राका निर्वाहके लिए पर्याप्त-पूरा न हो तओ=तो कारणं=क्षुधा-वेदनीयकी शान्ति न होनेरूप कारण के उप्पन्ने=उत्पन्न होनेपर साधु पुव्वउत्तेण=पूर्वोक्त-"संपत्ते भिक्खकालम्मि"

खट्टी छाछकी बनी-हुई ठढी या गर्म कढी आदि शाक, पर्युषित (वासी) खट्टी छाछ आदि पान, ये अमनोज्ञ गन्धवाले होते हैं। और घेवर पायस आदि, एलची लवंग केसर आदिके मिश्रित होनेसे मनोज्ञ गन्धवाले होते हैं, इन सबको समभावसे भोगवे ॥१॥

ચણા આદિની બનાવેલી ઠંડી યા ગરમ રોટલી આદિ અન્ન, ખાટી છાશની બનેલી ઠંડી યા ગરમ કઢી આદિ શાક, પર્યુષિત ખાટી છાશ આદિ પાન, એ બધાં અમનોજ્ઞ ગંધવાળાં હોય છે અને ઘેબર, પાયસ (દૂધપાક) આદિ, એલચી, લવીંગ, કેસર આદિથી મિશ્રિત હોઈને મનોજ્ઞ ગંધવાળા હોય છે, એ બધાને સમભાવે ભોગવે. (૧)

इत्यादिरूप विधिसे य=तथा इमेणं=इस उत्तरेणं=आगे कहे जानेवाली-"कालेण णिक्खमे भिक्खू" इत्यादिरूप विधिसे भत्तपाणं=आहार-पानी गवेसए=गवेषे अर्थात् भिक्षा लेनेके लिए जावे ॥२॥३॥

टीका—'सेज्जा' इत्यादि, 'तओ' इत्यादि च। शय्यायां=वसतौ, नैषेधिक्यां=निषदनस्थाने स्वाध्यायभूमिकायामित्यर्थः, गोचरे=भिक्षाचर्यायां च=वा समापन्नः=सम्प्राप्तो मुनिः, उपलब्धमन्नादिकम् अयावदर्थम्=अपरिसमाप्तम् अल्पं=क्षुधोपशमनानर्हमित्यर्थः संयमनिर्वाहार्थं यावताऽन्नादिकेन भाव्यं तावन्नेति यावत्, भुक्त्वा यदि तेन भोजनेन न संस्तरेत्=संयमयात्रां निर्वोढुं न शक्नुयात् ।२।

ततः=तदनन्तरं कारणे=प्रयोजने आर्षत्वात्सप्तम्यर्थे प्रथमा, उत्पन्ने सति=क्षुधावेदनोपशमनाभावे पूर्वोक्तेन="संपत्ते भिक्खकालम्मि" इत्यादिरूपेण अनेन उत्तरेण="कालेण णिक्खमे भिक्खू०" इत्यादिवक्ष्यमाणलक्षणेन विधिना=प्रकारेण भक्तपानं गवेषयेत्=अन्वेषयेत् पुनर्भिक्षार्थं गच्छेदिति सूत्रार्थः।३।

'सेज्जा' इत्यादि, 'तओ' इत्यादि। उपाश्रयमें बैठनेके स्थानमें अर्थात् स्वाध्याय भूमिमें तथा गोचरीमें गए हुए मुनिको अल्प, अर्थात् क्षुधाकी शान्ति न हो सकने योग्य अन्न आदि मिला हो और उससे संयमयात्राका निर्वाह न हो सके, अर्थात् लाया हुआ आहार पर्याप्त न हो तो ऐसा कारण उत्पन्न होने पर, अर्थात् क्षुधावेदनीयके शान्त न होने पर "संपत्ते भिक्खकालम्मि" इत्यादि पूर्वोक्त विधिसे, तथा "कालेण णिक्खमे भिक्खू" इस गाथासे प्रारम्भ करके आगे बताई जानेवाली विधिसे भक्त-पानकी गवेषणा करे, अर्थात् भिक्षाके लिए फिर गमन करे ॥ २ ॥ ३ ॥

सेज्जा० ઇત્યાદિ, તથા तओ० ઇત્યાદિ ઉપાશ્રયમાં બેસવાના સ્થાનમાં અર્થાત્ સ્વાધ્યાયભૂમિમાં તથા ગોચરીમાં ગએલા મુનિને અલ્પ અર્થાત્ ક્ષુધાની શાન્તિ ન થઈ શકે અર્થાત્ લાવેલો આહાર પૂરતો ન હોય, તો એવુ કારણ ઉત્પન્ન થતા અર્થાત્ ક્ષુધાવેદનીય શાન્ત ન થવાને લીધે संपत्ते भिक्खकालम्मि ઇત્યાદિ પૂર્વોક્ત વિધિથી, તથા कालेण णिक्खमे भिक्खू એ ગાથાથી પ્રારભ કરીને આગળ બતાવવામાં આવનારી વિધિથી ભક્ત-પાનની ગવેષણા કરે અર્થાત્ ભિક્ષાને માટે ફરીથી ગમન કરે (૨-૩)

तमेव विधिमुपदर्शयन् कालयतनामाह–'कालेण' इत्यादि।

मूलम्–कालेण णिक्खमे भिक्खू, कालेण य पडिक्कमे।
अकालं च विवज्जित्ता, काले कालं समायरे ॥ ४ ॥

छाया–कालेन निष्क्रामेद् भिक्षुः, कालेन च प्रतिक्रामेत्।
अकालं च विवर्ज्य, काले कालं समाचरेत् ॥ ४ ॥

अब भिक्षा लेने की विधि बताते हैं—

सान्वयार्थः–भिक्खू=मुधाजीवी मुनि कालेण=गोचरीके समयसे–जिस देशमें जो समय भोजनका हो उस समयके होनेसे णिक्खमे=भिक्षाके लिए जावे, य= और कालेण=समयसे ही–वापस आनेका उचित समय हो जानेसे पडिक्कमे= वापस लौट आवे, च=और अकालं=भिक्षाके अनुचित समयको विवज्जित्ता= छोड़कर काले=उचित समयमें कालं=भिक्षादिक समायरे=आचरे–गोचरीके लिए घूमे ॥ ४ ॥

टीका–भिक्षुः=मुधाजीवी मुनिः कालेन=भिक्षोचितसमयेन यस्मिन् देशे यो गृहस्थानां भोजनसमयः स एव भिक्षूणां भिक्षाकालस्तेनेत्यर्थः निष्क्रामेत्=निर्गच्छेत्, भिक्षायै इति शेषः; कालेनैव=प्रत्यागमनोचितसमयेनैव, यथा स्वाध्यायप्रतिबन्धो न भवेत् तथा भिक्षां गतस्य साधोः परावर्त्तनसमयो निर्दिष्टस्तेनैवेति भावः। (करणे सहार्थे वा तृतीया)। 'चकारोऽत्र 'एव'-कारार्थकः' प्रतिक्रामेत्=प्रत्यागच्छेत्। अकालं=भिक्षानुचितसमयं विवर्ज्य=परित्यज्य काले=भिक्षोचितवेलायां कालं=लक्षणया तत्कालोचितकृत्यं भिक्षादिकं समाचरेत्=भिक्षार्थं

उसी विधिको दिखाते हुए कालकी यतना कहते हैं–'कालेण' इत्यादि।

जिस देशमें गृहस्थोंके भोजनका जो समय हो वही समय भिक्षुको भिक्षाके लिए उचित है, अत एव भिक्षाके लिए उसी समय जाना चाहिए और गोचरीके लिए गये हुए साधुको ऐसे उचित समय पर लौट आना चाहिए, जिससे स्वाध्याय आदि क्रियाओंमें अन्तराय न पड़े।

એ વિધિને બતાવતા કાળની યતના કહે છે.–कालेण० ઇત્યાદિ

જે દેશમાં ગૃહસ્થોના ભોજનનો જે સમય હોય તે સમય ભિક્ષાને માટે ઉચિત છે, તેથી ભિક્ષાને માટે તે સમયે જવું જોઇએ અને ગોચરીને માટે ગએલા સાધુએ એવા ઉચિત સમયે પાછા ફરવું જોઇએ કે જેથી સ્વાધ્યાય આદિ ક્રિયાઓમા અતરાય ન પડે તથા જે સમય ભિક્ષાને

क्रामेदित्यर्थः। बहुशः कालशब्दोपादानं 'मुनीनां यथाकालमेव सकलं कृत्यं विधेय'-मिति ध्वनयति ॥ ४ ॥

अकालचारित्वेनाऽलब्धभिक्षो भिक्षुः केनचित्साधुना "भोः! भिक्षा त्वया लब्धा न वा" इति पृष्टो वदति-"कुतोऽत्र मितम्पचानां हीनदीनानां ग्रामे भिक्षालाभः?" तदाऽसौ अकालचारिणं कथयति-'अकाले' इत्यादि।

मूलम्-अकाले[2] चरिसी[3] भिक्खू[1], कालं[4] न[5] पडिलेहिसि[6]।
अप्पाणं[7] च[8] किलामेसि[9], संनिवेसं[10] च[11] गरिहसि[12] ॥५॥

छाया—अकाले चरसि भिक्षो!, कालं न प्रत्युपेक्षसे।
आत्मानं च क्लमयसि, संनिवेशं च गर्हसे ॥५॥

अकालचारी होने के कारण भिक्षा नहीं मिलने पर असन्तुष्ट हुए साधुको कालचारी साधु पूछता है-हे साधु! आपको भिक्षा मिली कि नहीं?, तब वह कहता है-इस कंजूसों के गाम में भिक्षा कहाँ पड़ी है। इस पर वह कालचारी साधु उससे कहता है—

सान्वयार्थः-भिक्खू=हे भिक्षु! आप अकाले=असमयमें भिक्षाका समय न होनेपर ही चरिसी=गोचरी फिरते हो, च=और कालं=गोचरीका समय न

तथा जो समय भिक्षाके लिए उचित न हो उसका परिहार करके द्रव्य क्षेत्र काल भावसे उचित समय पर ही भिक्षाके लिए जाना चाहिए। गाथामें बहुत वार काल शब्दका प्रयोग करनेसे यह आशय प्रगट होता है कि-साधुओंको प्रत्येक क्रिया उचित समय पर ही करनी चाहिए ॥ ४ ॥

कोई साधु असमयमें भिक्षाके लिए जानेवाले दूसरे साधुसे पूछा गया कि-'हे भिक्षु! तुम्हें भिक्षाका लाभ हुआ या नहीं?' तब उसने कहा-'इन कंगाल कंजूसोंके गाँवमें भिक्षा कहाँ प्राप्त होसकती है?'। तब वह अकालमें गोचरी करनेवालेके प्रति कहता है-'अकाले०' इत्यादि।

માટે ઉચિત ન હોય તેનો પરિહાર કરીને દ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાળ ભાવથી ઉચિત સમયે જ ભિક્ષાને માટે જવું જોઈએ ગાથામાં ઘણીવાર કાલ શબ્દનો પ્રયોગ કરવાથી એ આશય પ્રકટ થાય છે કે-સાધુઓએ પ્રત્યેક ક્રિયા ઉચિત સમયે જ કરવી જોઈએ (૪)

કોઈ સાધુ અસમયમાં ભિક્ષાને માટે જનારા બીજા સાધુને પૂછ્યું કે-'હે ભિક્ષુ! તમને ભિક્ષાનો લાભ થયો કે નહિ?' ત્યારે તેણે કહ્યું 'આ કંગાલ કંજૂસોના ગામમા ભિક્ષા ક્યાથી પ્રાપ્ત થઈ શકે?' ત્યારે એ અકાળે ગોચરી કરનારા સાધુ પ્રતે કહે છે-અકાલે० ઇત્યાદિ.

पडिलेहिसी=नहीं देखते, अतः अप्पाणं=आत्माको किलामेसि=किलामना-खेद-पहुंचाते हो च=और संनिवेसं=गामकी गरिहसि=निन्दा करते हो। तात्पर्य यह हुआ कि गोचरीका समय हुए विना घूमनेसे साधु भगवानकी आज्ञाका विराधक होता है, और दीनता प्रगट करनेके कारण उसके चारित्रमें मलिनता होती है; अतः जिस देशमें जो भिक्षाका समय हो उसी समयमें साधुको भिक्षाके लिए जाना चाहिये ॥५॥

टीका—हे भिक्षो ! त्वम् अकाले=असमये चरसि=भिक्षार्थं गच्छसि किन्तु कालं=भिक्षोचितसमयं न प्रत्युपेक्षसे=नाद्रियसे, तेन च हेतुनाऽऽत्मानं क्लमयसि=पीडयसि भिक्षालाभाभावेन भ्रमणाधिक्येन चेति भावः। संनिवेशं=ग्रामं च पुनः गर्हसे=निन्दसि। भगवदाज्ञाविराधकत्वेन दैन्यप्रकाशनेन च चारित्रमालिन्यं जायते, ततोऽनुचितकाले भिक्षार्थं न गन्तव्यमिति ॥ ५ ॥

मूलम्-सइ[3] काले[2] चरे[4] भिक्खू[1], कुज्जा[6] पुरिसकारियं[5]।
अलाभु-त्ति[7] न[8] सोइज्जा[9], तवु-त्ति[10] अहियासए[11] ॥ ६ ॥

छाया—सति काले चरेद् भिक्षुः, कुर्यात्पुरुषकारम्।
अलाभ इति न शोचेत्, तप इति अधिषहेत ॥ ६ ॥

सान्वयार्थः-भिक्खू=साधुको काले=भिक्षाका समय सइ=होनेपर चरे=गोचरीके लिए घूमना चाहिए और पुरिसकारियं=उत्साह पूर्वक घूमनेरूप

हे भिक्षु ! आप असमयमें भिक्षाके लिए जाते हैं, समयका खयाल नहीं रखते। इसी कारण अधिक भ्रमण करनेसे या भिक्षाके न मिलनेसे तुम अपनी आत्माको पीडित करते हो, और ग्राम-नगरकी निन्दा करते हो। अकालमें भिक्षाके लिये गमनरूप भगवानकी आज्ञाकी विराधना करनेसे तथा दीनता प्रगट करनेसे चारित्रमें मलिनता आती है इसलिए अनुचित समयमें भिक्षाके लिए नहीं जाना चाहिए ॥५॥

હે ભિક્ષુ ! આપ અસમયમા ભિક્ષાને માટે જાઓ છો, સમયનો ખ્યાલ રાખતા નથી એ કારણે વધારે ફરવાથી યા ભિક્ષા ન મળવાથી તમે તમારા આત્માને પીડિત કરો છો અને ગ્રામ-નગરની નિંદા કરો છો અકાળે ભિક્ષાને માટે જવારૂપી ભગવાનની આજ્ઞાની વિરાધના કરવાથી તથા દીનતા પ્રકટ કરવાથી ચારિત્રમાં મલિનતા આવે છે, તેથી અનુચિત સમયે ભિક્ષાને માટે જવું ન જોઈએ (૫)

पुरुपार्थ भी कुज्जा=करना चाहिये, और भिक्षा न मिलनेपर वह अलाभु=आज मुझे भिक्षा नहीं मिली त्ति=इस प्रकार न सोइज्जा=सोच न करे, किन्तु तवु= आज मेरे अनशन ऊनोदरी आदि तप हुआ है त्ति=इस प्रकार सोचकर अहियासए=क्षुधा-परीपहको सहन करे—सन्तुष्ट रहे। तात्पर्य यह है कि—साधुओंको सिर्फ भिक्षाके ही लिए गोचरीमें घुमना नहीं हैं किन्तु वीर्याचारके लिए भी भगवान्‌ने गोचरीमें घुमना कहा है ॥६॥

टीका—'सइ' इत्यादि। भिक्षुः काले=भिक्षोचितसमये प्राप्ते सति, यद्वा 'सइकाले' इत्यस्य 'स्मृतिकाले' इतिच्छाया तत्र-स्मर्यन्ते साधवो दातृभिर्दानार्थं यस्मिन् समये तस्मिन्नित्यर्थः, चरेत्=भिक्षार्थं गच्छेत्। पुरुपकारं=पराक्रमम् उत्साहपूर्वकभिक्षार्थभ्रमणलक्षणं कुर्यात्=विदध्यात्। कदाचिदलाभे सति अलाभः= अद्य भिक्षालाभो न संजात इति न शोचेत्=न परितपेत्, किन्तु तपः= अद्य मेऽनशनावमौदरिकादिरूपं तपः सम्पन्नमिति कृत्वा अधिपहेत=सन्तुष्येत्। भिक्षाया अलाभेऽपि वीर्यचारो मया सम्यगाराधितः, यतो न केवलमन्नाद्यर्थमेव भिक्षाचरणं भिक्षूणां, किन्तु वीर्याचारार्थमपि भगवता समादिष्टमिति भावार्थः ॥ ६ ॥

'सइ काले' इत्यादि। भिक्षु उचित समय प्राप्त होनेपर ही भिक्षाके लिए जावें। उत्साहपूर्वक भिक्षार्थ भ्रमणरूप पुरुपार्थ करें। कभी भिक्षाका लाभ न हो तो ऐसा सोच न करें कि—'आज मुझे भिक्षा नहीं मिली,' किन्तु ऐसा विचार करके सन्तुष्ट रहें कि—आज भिक्षा न मिली तो सहज ही मेरे अनशन आदि तप होगया, अर्थात् भिक्षाका लाभ न होनेपर भी मैंने भली भाँति वीर्याचारका आराधन किया है। साधु केवल अन्नादिककी प्राप्तिके लिए भिक्षाचरी नहीं करते किन्तु वीर्याचारकी आराधनाके लिए भी भिक्षाचरीमें जाना भगवान्‌ने बताया है ॥६॥

सइ काले० ઇત્યાદિ ભિક્ષુ ઉચિત સમય થતા જ ભિક્ષાને માટે જાય. ઉત્સાહપૂર્વક ભિક્ષાર્થ ભ્રમણરૂપ પુરૂપાર્થ કરે કોઈવાર ભિક્ષાનો લાભ ન થાય તો એવો વિચાર ન કરે કે 'આજ મને ભિક્ષા ન મળી.' પરંતુ એવો વિચાર કરીને સંતુષ્ટ રહે કે—'આજ ભિક્ષા ન મળી તો સહેજે મારાથી અનશન આદિ તપ થઈ ગયું અર્થાત્ ભિક્ષાનો લાભ ન થવાથી પણ મે ભલીપેઠે વીર્યાચારનુ આરાધન કર્યું છે' સાધુ કેવળ અન્નાદિની પ્રાપ્તિને માટે જ ભિક્ષાચરી કરતા નથી, કિન્તુ વીર્યાચારની આરાધનાને માટે પણ ભિક્ષાચરીમાં જવુ ભગવાને બતાવ્યુ છે. (૬)

क्षेत्रयतनामाह-' तहेवु० ' इत्यादि ।

मूलम्-तहेवुच्चावया[1] पाणा[2], भत्तट्ठाए[3] समागया[4] ।[5]
तं[6] उज्जुयं[7] न[8] गच्छिज्जा[9], जयमेव[10] परक्कमे[11] ॥ ७ ॥

छाया—तथैवोच्चावचाः प्राणाः, भक्तार्थं समागताः ।
तेषामृजुकं न गच्छेत्, यतमेव पराक्रामेत् ॥ ७ ॥

सान्वयार्थः-तहेव=उसीप्रकार उच्चावया=उच्च जातिके हंसादिक अवच-नीच जातिके कौए आदि पाणा=प्राणी (यदि) भत्तट्ठाए=चुगा-पानीके लिए समागया=आये हों-इकट्ठे हुए हों तो तं उज्जुयं=उन प्राणियोंके सामने न गच्छिज्जा= नहीं जावे, (किन्तु) जयमेव=यतनापूर्वक ही-आसपाससे अथवा अन्य मार्गसे अर्थात् जिस तरह उन प्राणियोंको किसी प्रकारका त्रास न पहुचे उसीतरह परक्कमे=जावे ॥७॥

टीका—तथैव=तद्वत् उच्चावचाः=तत्र उदञ्चः=उच्चजातीया हंसादयः, अनाञ्चः= नीचजातीयाः काकप्रभृतयः, यद्वा उच्चावचाः=अनेकविधाः, "उच्चावचं नैकभेद"-मित्यमरात्, प्राणाः=प्राणिनः भक्तार्थम्=अन्न-पानार्थं मार्गादौ समागताः=समायाता भवन्ति चेत् 'तं'-तेषाम्, आर्षत्वात् षष्ठीबहुत्वे प्रथमैकवचनम्, ऋजुकं= संमुखं न गच्छेत्, तेषामन्नपानान्तरायादिप्रचुरदोषापातात् । तर्हि किं कुर्यात् ? यतमेव=सयतनमेव=यथा तेषां संत्रासो न भवेत्तथा पराक्रामेत्=चरेत् अन्यमार्गेण

अब क्षेत्रकी यतना हैं-'तहेवु० इत्यादि ।

हंस-आदि उच्च-जातीय और काक-आदि नीच-जातीय प्राणी यदि भोजन-पानके लिए रास्तेमें आये हों तो उनके सामने न जावें । सामने जानेसे उनके चुगे-पानीमें विघ्न पड़ जानेके कारण भक्त-पानकी अन्तराय आदि अनेक दोष लगते हैं, अतः यतना-पूर्वक, अर्थात् जिससे वे भयभीत न हों उस प्रकार दूसरे मार्गसे या एक किनारेसे गमन करें।

હવે ક્ષેત્રની યતના કહે છે.-तहेवु० ઇત્યાદિ

હંસ-આદિ ઉચ્ચ-જાતીય અને કાગડા-આદિ નીચ જાતીય પ્રાણી જો ભોજન-પાનને માટે રસ્તામા આવેલા હોય તો તેની સામે ન જવુ સામે જવાથી તેમને પાણી પીવા ચણવા વગેરેમા વિઘ્ન પડવાથી ભકત-પાનની અંતરાય આદિ અનેક દોષો લાગે છે એટલે યતનાપૂર્વક અર્થાત્ જે રીતે તેઓ ભયભીત ન થાય એ રીતે બીજે માર્ગે યા એક બાજુએથી ગમન કરવુ. તાત્પર્ય એ છે કે

तत्पार्श्वतो वा गन्तुं यतेतेत्यर्थः, हंसादिभिः प्राणिभिः सर्वतः समाक्रान्ते पथि अन्यमार्गेण, एकदेशावच्छेदेन समाक्रान्ते च पार्श्वतोऽन्यभागेनेति विवेकः ॥७॥

मूलम्–गोयरग्गपविट्ठो य, न निसीइज्ज कत्थइ ।
कहं च न पवंधिज्जा, चिट्ठित्ताण व संजए ॥ ८ ॥

छाया—गोचराग्रप्रविष्टश्च, न निषीदेत् कुत्रापि ।
कथां च न प्रबध्नीयात्, स्थित्वा च संयतः ॥८॥

सान्वयार्थः–संजए=साधु गोयरग्गपविट्ठो य=गोचरीके लिए गया हुआ कत्थई=कहींभी न निसीइज्ज=नहीं बैठे, च=और चिट्ठित्ताण व=खड़ा रहकरभी कहं=धर्मकथा न पवंधिज्जा=न कहे ॥८॥

टीका—'गोयरग्ग०' इत्यादि । संयतः=मुनिः गोचराग्रप्रविष्टः सन् कुत्रापि गृहादौ न निषीदेत्=नोपविशेत्, च=अथच स्थित्वा=तिष्ठन् उपविश्य वा कथां= धर्मकथां न प्रबध्नीयात्=ससन्दर्भं वक्तुं नारभेत, किन्त्वेकस्यैव प्रश्नस्य संक्षेपत एकमेव समाधानं कर्तुमर्हति, अन्यथा दायकाऽरुचिप्रभृतिविविधदोषप्रसङ्गः ॥८॥

तात्पर्य यह है कि–अगर समस्त मार्ग हंस कबूतर या कौए आदि प्राणियोंसे व्याप्त हो तो दूसरे मार्गसे, और एक तरफ चुगा-पानी करते हों तो एक किनारे होकर गमन करना चाहिए ॥ ७ ॥

'गोयरग्ग०' इत्यादि । गोचरीके लिए गये हुए मुनि किसीके घरमें न बैठें, न खड़े-खड़े संदर्भके साथ धर्मकथा कहना आरम्भ करें, । अवसर हो तो एक प्रश्नका एक ही समाधान खड़े-खड़े संक्षेपसे कर देवें। बैठनेसे या लम्बी धर्मकथा करनेसे दाताकी अरुचि आदि अनेक दोष होते हैं ॥ ८ ॥

જો આખો માર્ગ હંસ કબૂતર યા કાગડા વગેરે પ્રાણીઓથી ભરેલો હોય તો બીજે માર્ગે, અને એક તરફ તેઓ ચણતાં–પાણીપીતા હોય તો તેની બાજુએ થઇને ગમન કરવુ જોઇએ (૭)

ગોઅરગ્ગ૦ ઇત્યાદિ ગોચરીને માટે ગએલો મુનિ કોઇના ઘરમાં ન બેસે, ઊભો-ઊભો સંદર્ભ સહિત ધર્મ કથા કહેવાનો આરંભ ન કરે. અવસર હોય તો એક પ્રશ્નનું એકજ સમાધાન ઊભા ઊભાં સક્ષેપમાં કરી દે બેસવાથી યા લાંબી ધર્મકથા કરવાથી દાતાની અરૂચિ આદિ અનેક દોષો થાય છે (૮)

द्रव्ययतनामाह-'अग्गलं' इत्यादि।

मूलम्-अग्गलं फलिहं दारं, कवाडं वावि संजए।
अवलंबिया न चिट्ठिज्जा, गोयरग्गगओ मुणी ॥ ९ ॥

छाया—अर्गलं फलकं द्वारं, कपाटं वाऽपि संयतः।
अवलम्ब्य न तिष्ठेत्, गोचराग्रगतो मुनिः ॥ ९ ॥

सान्वयार्थः-गोयरग्गगओ=गोचरीके लिए गया हुआ संजए=इन्द्रियोंका संयम रखनेवाला मुणी=साधु अग्गलं=आगल-भोगल अथवा सकली फलिहं=दोनों किवाडोंको रोक रखनेवाला काष्ठ (हुड़ा) को दारं=दरवाजा वावि=अथवा कवाडं=किवाड़को अवलंबिया=पकड़कर या इनका सहारा लेकर न चिट्ठिज्जा=खड़ा न होवे ॥९॥

टीका—गोचराग्रगतः=भिक्षाचरीनिर्गतः, संयतः=संयमी मुनिः, अर्गलं=कपाटपट्टद्वयदृढसंयोजककाष्ठादिनिर्मितकीलविशेषं शृङ्खलादि च, फलकम्=अवष्टम्भककाष्ठविशेषं, द्वारं=गृहादेर्निर्गमप्रवेशमार्गम्, अपिवा कपाटं=स्वनामप्रसिद्धद्वाराच्छादकदारुफलकविशेषम् अवलम्ब्य=आश्रित्य न तिष्ठेत् ॥ ९ ॥

मूलम्-समणं माहणं वावि, किविणं वा वणीमगं।
उवसंकमंतं भत्तट्ठा, पाणट्ठा एव संजए ॥ १० ॥
तमइक्कमित्तु न पविसे, नवि चिट्ठे चक्खुगोयरे।
एगंतमवक्कमित्ता, तत्थ चिट्ठिज्ज संजए ॥ ११ ॥

छाया—श्रमणं ब्राह्मणं वाऽपि, कृपणं वा वनीपकम्।
उपसंक्रामन्तं भिक्षार्थं, पानार्थमेव संयतः ॥ १० ॥
तम् अतिक्रम्य न प्रविशेत्, नापि तिष्ठेत् चक्षुर्गोचरे।
एकान्तमवक्रम्य तत्र तिष्ठेत् संयतः ॥ ११ ॥

अब द्रव्ययतना कहते हैं-'अग्गलं' इत्यादि।

गोचरीके लिए गये हुए मुनिको आगल, सांकल, फलक (खूंटीआदि), दरवाजा या किवाडका सहारा लेकर खड़ा नहीं रहना चाहिए ॥९॥

હવે દ્રવ્ય-યતના કહે છે-अग्गलं ઇત્યાદિ

ગોચરી માટે ગએલા મુનિએ આગળો, સાંકળ, ફલક (ખૂટી આદિ) દરવાજો યા કમાડનો આધાર લઈને ઊભા રહેવું ન જોઈએ (૯)

सान्वयार्थः-संजए=साधु भत्तट्ठा=अन्नके लिए और पाणट्ठा एव=पानी लिए ही उवसंकमंतं=गृहस्थके घर पर आते हुए समणं=निर्ग्रन्थ मुनिको वा अथवा माहणं=ब्राह्मणको किविणं=कृपण वा=अथवा वणीमगं=दरि भिखारीको (देखकर) तं=उन श्रमणादिको अइक्कमित्तु=लांघकर न पविसे गृहस्थके घरमें न जावे, नवि=और न चक्खुगोयरे=उनके दृष्टिगोचर-दृष्टिमार्ग चिट्ठे=ठहरे, (किन्तु) एगंतं=एकान्त स्थानमें-जहां उनकी दृष्टि न पडती हो ऐसी जगह अवक्कमित्ता=जाकर संजए=इन्द्रियोंका संयम करता हुआ-चुप-चाप तत्थ=वहां चिट्ठे=खड़ा रहे ॥१०॥११॥

टीका—'समणं' इत्यादि, 'तमइ०' इत्यादि च। संयतः, गृहस्थद्वारे भक्तार्थमेव पानार्थमेव, एवशब्दस्योभयत्र सम्बन्धः। उपसंक्रामन्तं=समीपमायान्तं यान्तं वा श्रमणादिकं दृष्ट्वेति शेषः। तत्र वनीपकः=याचकविशेषः, अन्यत् सुगमम्। तं=श्रमणादिकम् अतिक्रम्य=उल्लङ्घ्य तस्याग्रतो भूत्वेत्यर्थः गृहस्थगृहं न प्रविशेत्, एतावदपि न, तेषां चक्षुर्गोचरेऽपि=दृष्टिपथेऽपि न तिष्ठेत् किन्तु स संयत एकान्तं=यत्र तेषां दृष्टिर्न पतेत् तं प्रदेशम् अवक्रम्य=गत्वा तत्र तिष्ठेत् ॥१०॥११॥

पूर्वोक्तविधेरपालने दोषमाह-'वणीमगस्स' इत्यादि।

मूलम्-वणीमगस्स वा तस्स, दायगस्सुभयस्स वा।
अप्पत्तियं सिया हुज्जा, लहुत्तं पवयणस्स वा ॥१२॥

'समणं' इत्यादि, 'तमइ०' इत्यादि। श्रमण, ब्राह्मण, कृपण और वनीपकको गृहस्थके दर्वाजे पर भोजन या पानीके लिए आया देखकर साधु उसे उल्लङ्घन करके गृहस्थके घरमें प्रवेश न करें, इतना ही नहीं, जहाँ उनकी दृष्टि पड़ती हो ऐसे स्थान पर भी खड़े न हों, किन्तु एकान्त प्रदेशमें जाकर स्थित होवें, जहां उनकी दृष्टि न पहुँचे॥१०॥११॥

ऐसा न करनेमें दोष कहते हैं—'वणीमगस्स' इत्यादि।

समण० ઇત્યાદિ તથા तमइ० ઇત્યાદિ શ્રમણ, બ્રાહ્મણ, કૃપણ અને વની-પકને ગૃહસ્થના દરવાજા પર ભોજન યા પાણીને માટે આવેલા જોઈને સાધુ એમને ઓળંગીને ગૃહસ્થના ઘરમાં પ્રવેશ ન કરે, એટલું જ નહિ જ્યાં એમની દૃષ્ટિ પડતી હોય એવા સ્થાન પર પણ ઊભો ન રહે, કિન્તુ એકાંત પ્રદેશમાં જઈને ઊભો રહે કે જ્યાં એમની દૃષ્ટિ પહોંચે નહિ (૧૦-૧૧)

એમ ન કરવામાં દોષ કહે છે—'वणीमगस्स०' ઇત્યાદિ.

छाया—वनीपकस्य वा तस्य, दायकस्योभयोर्वा।
अप्रीतिकं स्याद् भवेत्, लघुत्वं प्रवचनस्य वा ॥ १२ ॥

पूर्वोक्त विधिके अपालन में दोष बताते हैं—

सान्वयार्थः-(ऐसा न करनेसे) सिया=कदाचित्-शायद तस्स=उस वणीमगस्स=श्रमणादि वनीपक पर्यन्तको वा=अथवा दायगस्स=दाताको वा=या उभयस्स=दोनों-दाता और याचक-को अप्पत्तियं=अप्रीति-द्वेष या मनमें खेद हो जाती है, वा=और पवयणस्स=जिनशासनकी लहुत्तं=लघुता हुज्जा=होती है ॥ १२ ॥

टीका—स्यात् कदाचित् वनीपकस्य=याचकविशेषस्य वा=अथवा तस्य=श्रमणादेः, दायकस्य=दातुर्वा, उभयोः=दातृ-याचकयोर्वा अप्रीतिकं=द्वेषः, मनः-खेदो वा भवेत्, प्रवचनस्य=जिनशासनस्य लघुत्वं=लघुता वा भवेदिति सम्बन्धः ॥ १२ ॥

कदा गन्तव्य ?-मित्याह-'पडिसेहिए' इत्यादि।

मूलम्-पडिसेहिए[१] व[२] दिन्ने[३] वा,[४] तओ[५] तम्मि[६] नियत्तिए[७]।
उवसंकमिज्ज[१२] भत्तट्ठा,[९] पाणट्ठाए[१०] व[११] संजए[८] ॥ १३ ॥

छाया—प्रतिषेधिते वा दत्ते वा, ततस्तस्मिन् निवृत्ते।
उपसंक्रामेत् भक्तार्थं, पानार्थं वा संयतः ॥ १३ ॥

कब जाना चाहिये, सो बताते हैं—

सान्वयार्थः-पडिसेहिए=दाताके निषेध कर देने पर व=अथवा दिन्ने=अन्नादिके दिये जाने पर वा=या-दाताके मौन साधने पर तओ=उस स्थानसे

संभव है, उन्हें उल्लङ्घन करके जानेसे या उनके सामने खड़े रहनेसे उस वनीपक या दाताको अथवा दोनोंको द्वेष तथा खेद उत्पन्न होजाय। तथा प्रवचनकी लघुता होती है। अतः उन्हें उल्लंघन करके जाना साधुका कल्प नहीं है ॥ १२ ॥

कब जाना चाहिए ? सो कहते हैं-'पडिसेहिए' इत्यादि।

સંભવિત છે તેમને ઓળંગીને જવાથી યા એમની સામે ઊભા રહેવાથી એ વનીપક યા દાતાને અથવા બેઉને દ્વેષ તથા ખેદ ઉત્પન્ન થઇ જાય. તથા પ્રવચનની લઘુતા થાય છે, એટલે એમને ઓળંગીને જવું એ સાધુનો કલ્પ નથી (૧૨)

ક્યારે જવું જોઇએ ? તે કહે છે-पडिसेहिए० ઇત્યાદિ.

तम्मि=उन श्रमणादिकोंके नियत्तिए=चले जाने पर संजए=साधु भत्तट्ठा= आहार व=अथवा पाणट्ठाए=पानीके लिए उवसंकमिज्ज=जावे ॥१३॥

टीका—प्रतिषेधिते=दात्रा प्रतिषेधं प्राप्ते वा=अथवा दत्ते अन्नादिके, वाशब्दाद्दातुस्तूष्णींभावावलम्बनाद् विलम्बादिनिमित्तवशाद्वा ततः=तत्स्थानात् तस्मिन्=वनीपकादौ निवृत्ते प्रतिनिवृत्ते सति संयतः भक्तार्थं पानार्थं वा उपसंक्रामेत्=भिक्षां ग्रहीतुं गच्छेत् ॥ १३ ॥

मूलम्-उप्पलं पउमं वावि, कुमुयं वा मगदंतियं ।
अन्नं वा पुप्फसच्चित्तं, तं च संलुंचिया दए ॥ १४ ॥
तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥ १५ ॥

छाया—उत्पलं पद्मं वाऽपि, कुमुदं वा मगदन्तिकाम् ।
अन्यद्वा पुष्पसचित्तं, तच्च संलुञ्च्य दद्यात् ॥ १४ ॥
तद् भवेद् भक्तपानं तु संयतानामकल्पिकम् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥ १५ ॥

सान्वयार्थः-उप्पलं=नील कमल पउमं=रक्त कमल वावि=अथवा कुमुयं= चन्द्रविकासी कमल वा=या मगदंतियं=मालती-मोगरेके फूलको वा=अथवा अन्नं=दूसरे भी इसी प्रकारके जो पुप्फसच्चित्तं=सचित्त पुष्प हों तंच=उनको भी (अगर) संलुंचिया=लोंच करके दए=देवे तो तं=वह भत्तपाणं तु=आहार-पानी संजयाण=संयमियोंको अकप्पियं=अकल्पनीय भवे=होता है, अतः दिंतियं=देनेवालीसे पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहार मे= मुझे न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥१४॥१५॥

दाताके वनीपक आदिको दान देनेकी मना कर देने पर, अथवा अन्न आदिके दे देने पर या मौन साध लेने पर, अथवा विलम्ब होने आदिके कारणसे जब वह वनीपक आदि उस घरसे लौट जाय तब संयमीको भक्त-पानके लिए उस घरमें जाना चाहिए ॥ १३ ॥

દાતાએ વનીપક આદિને દાન દેવાની મનાઈ કર્યા પછી અથવા અન્ન આદિ આપી ચૂક્યા પછી યા મૌન સાધી લીધા પછી, અથવા વિલંબ થવા ઇત્યાદિને કારણે જ્યારે એ વનીપક આદિ એ ઘરથી પાછા ફરે ત્યારે સંયમીએ ભક્ત-પાનને માટે એ ઘરમાં જવું જોઈએ (૧૩)

टीका—'उप्पलं' इत्यादि 'तं भवे' इत्यादि च। उत्पलं=श्यामल-धवल-लोहित-भेदेन त्रिविधं कमलम्, अपिवा पद्मं=सूर्यविकासि कमलं, कुमुदं=चन्द्रविकासि कमलं वा=अथवा मगदन्तिकां=मालतीपुष्पम्, अन्यद्वा पुष्पसचित्तं=पुष्पेषु सचित्तं पुष्पसचित्तं सचित्तपुष्पमात्रमित्यर्थः, तच्च संलुञ्च्य=संछिद्य यदि दात्री भक्त-पानं दद्यात्, तर्हि तद् भक्तपानं तु संयतानामग्राह्यं भवेदिति ददतीं प्रत्याचक्षीत-तादृशं=दोषयुक्तं मे=मम न कल्पत इति ॥ १४ ॥ १५ ॥

मूलम्-उप्पलं[१] पउमं[४] वावि[३] कुमुयं[२] वा[५] मंगदंतियं[६]।[७]
अन्नं[८] वा[९] पुप्फसचित्तं[१०], तं[११] च[१२] संमद्दिया[१३] दए[१४] ॥ १६ ॥
तं[१५] भवे[२०] भत्तपाणं[१६] तु[१७], संजयाण[१८] अकप्पियं[१९]।
दिंतियं[२१] पडियाइक्खे[२२], न[२५] मे[२४] कप्पइ[२६] तारिसं[२३] ॥ १७ ॥

छाया—उत्पलं पद्मं वाऽपि कुमुदं वा मगदन्तिकाम्।
अन्यद्वा पुष्पसचित्तं तच्च संमर्द्य दद्यात् ॥ १६ ॥
तद् भवेद् भक्तपानं, तु संयतानामकल्पिकम्।
ददतीं प्रत्याचक्षीत न मे कल्पते तादृशम् ॥ १७ ॥

सान्वयार्थः-उप्पलं=नील कमल पउमं=रक्त कमल वावि=अथवा कुमुयं=चन्द्रविकासी कमल वा=या मगदंतियं=मालती-मोगरेके फूलको वा=अथवा अन्नं=दूसरे भी इसी प्रकारके जो पुप्फसच्चित्तं=सचित्त पुष्प हैं तंच=उनको भी (अगर) संमद्दिया=पैरों आदिसे कुचलकर दए=देवे तो तं=वह भत्तपाणं तु=

'उप्पल' इत्पादि, 'तं भवे' इत्यादि। दाता नीला सफेद और लाल कमल, सूर्यविकासी कमल, चन्द्रविकासी कमल, मालतीका फूल तथा अन्य सचित्त पुष्प तोड़ कर आहारपानी देवे तो वह संयमियोंके लिए ग्राह्य नहीं है इसलिए देनेवालीसे कहे कि ऐसा दोषयुक्त आहार मुझे नहीं कल्पता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

उप्पलं० ઇત્યાદિ તથા तं भवे० ઇત્યાદિ જો દાતા, નીલુ સફેદ યા લાલ કમળ, સૂર્યવિકાસી કમળ, ચન્દ્રવિકાસી કમળ, માલતીનું ફુલ તથા અન્ય સચિત્ત પુષ્પ તોડીને પછી આહાર પાણી આપે તો તે સયમીઓને માટે ગ્રાહ્ય નથી તેથી તે આપનારીને સાધુ કહે કે એવો દોષયુકત આહાર મને કલ્પતો નથી (૧૪-૧૫)

आहार-पानी संजयाणं=संयमियोंको अकप्पियं=अकल्प्य भवे=होता है, (अतः) दितियं=देनेवालीसे पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहार मे=मुझे न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥१६॥१७॥

टीका—'उप्पलं' इत्यादि, 'तं भवे' इत्यादि च। उत्पलादिकं संमर्द्य=करचरणादिना तत्संमर्दनं कृत्वा, अशनादि दद्यात् तद् भक्त-पानं तु संयतानामग्राह्यमित्यादि पूर्ववद् व्याख्येयम्। अत्र 'संमर्द्य' शब्देन संमर्दनं यथा कथञ्चित्स्पर्शमात्रमपि गृह्यते, उत्पलादिगतसूक्ष्मजीवानां तावताऽपि पीडोत्पत्तेरवश्यम्भावात्। 'संमद्दमाणी पाणाणि बीयाणि हरियाणि य' इत्यस्यैव प्रथमोद्देशके समस्तवनस्पतीनां ग्रहणेऽपि पुनरत्रोत्पलादीनां ग्रहणं न पुनरुक्तिदोपजनकं, पूर्वत्र सामान्यरूपेणाऽत्र च विशेषरूपेणोपादानादिति बोध्यम् ॥ १६ ॥ १७ ॥

'उप्पल' इत्यादि, 'तं भवे' इत्यादि। पूर्वोक्त उत्पलादिकोंमेंसे किसी सचित्त फूलको मर्दन करके अथवा संघट्टा मात्र भी करके आहार देवे तो देनेवालीसे साधु कहे कि ऐसा आहार लेना मुझे नहीं कल्पता है॥ यहां 'मर्दन' शब्दसे स्पर्शमात्रका भी ग्रहण होता है, क्योंकि कमल आदिके जीवोंको स्पर्श करनेसे भी अवश्य पीडा होती है। प्रथम उद्देशमें "संमद्दमाणी पाणाणि बीयाणि हरियाणि य' इस पदसे ही सब वनस्पतिकायका ग्रहण कर लिया था, यहाँ फिर उत्पल आदिका ग्रहण किया है यह पुनरुक्ति दोष नहीं समझना चाहिए, क्योंकि पहले सामान्यरूपसे निषेध किया था और यहां विशेषरूपसे निषेध किया है ॥ १६ ॥ १७ ॥

उप्पल ઇત્યાદિ, તથા तं भवे ઇત્યાદિ. પૂર્વોક્ત કમળ આદિમાંથી કોઇ સચિત્ત ફૂલનું મર્દન કરીને અથવા માત્ર સંઘટન પણ કરીને આહાર આપે તો આપનારીને સાધુ કહે કે એવો આહાર લેવો મને કલ્પતો નથી. અહીં 'મર્દન' શબ્દથી સ્પર્શ-માત્રનું પણ ગ્રહણ થાય છે, કારણ કે કમળ આદિના જીવોને સ્પર્શ કરવાથી પણ અવશ્ય પીડા થાય છે. પ્રથમ ઉદ્દેશમાં संमद्दमाणी पाणाणि बीयाणि हरियाणि य એ પદથી જ બધી વનસ્પતિકાયનું ગ્રહણ કરવામાં આવ્યું હતું, અહીં ફરીથી કમળ આદિનું ગ્રહણ કર્યું છે, એ પુનરુક્તિ દોષ સમજવો નહિ, કારણ કે પહેલાં સામાન્યરૂપે નિષેધ કર્યો હતો, અને અહીં વિશેષરૂપે નિષેધ કર્યો છે, (૧૬-૧૭)

मूलम्-सालुयं वा विरालियं, कुमुयं उप्पलनालियं।
मुणालियं सासवनालियं, उच्छुखंडं अनिव्वुडं ॥१८॥
तरुणगं वा पवालं, रुक्खस्स तणगस्स वा।
अन्नस्स वावि हरियस्स, आमगं परिवज्जए ॥१९॥

छाया—शालूकं वा विरालिकां, कुमुदम् उत्पलनालिकाम्।
मृणालिकां सर्षपनालिकाम्, इक्षुखण्डम् अनिर्वृतम् ॥ १८ ॥
तरुणकं वा प्रवालं, वृक्षस्य, तृणकस्य वा।
अन्यस्य वाऽपि हरितस्य, आमकं परिवर्जयेत् ॥ १९ ॥

सान्वयार्थः—सालुयं=कुमुदादिका मूल विरालियं=पलासका कन्द-साधारण वनस्पतिविशेष कुमुयं=चन्द्रविकासी श्वेत कमल उप्पलनालियं=कमलनाल मुणालियं=कमलतन्तु सासवनालियं=सरसोंकी भाजी या कान्दल वा=अथवा उच्छुखंडं=गन्नेके टुकड़े, (ये सब यदि) अनिव्वुडं=शस्त्रपरिणत-अचित्त-न हों तो, (तथा) रुक्खस्स=इमली आदि वृक्षके वा=अथवा तरुणगस्स=मधुर तृणादिकोंके वा=और अन्नस्सवि=दूसरे प्रकारके भी हरियस्स=हरित कायके तरुणगं=कोंपल पत्ते आदि वा=अथवा पवालं=कच्ची कोंपल-नहीं खिले हुए पत्ते-आदि आमगं=सचित्त हों तो उन्हें परिवज्जए=वरजे-नहीं लेवे ॥१८॥१९॥

टीका—'सालुयं' इत्यादि 'तरुणगं' इत्यादि च। शालूकं=कुमुदादिमूलं, विरालिकां=पलाशकन्दं साधारणवनस्पतिजातिविशेषं, कुमुदं=चन्द्रविकासिश्वेतकमलम्, उत्पलनालिकां=कमलनालं, मृणालिकां=बिसं 'भे' इति भाषाप्रसिद्धां, सर्षपनालिकां=सर्षपपत्रशाकं, सर्षपकन्दलीं वा, इक्षुखण्डम्=इक्षुशकलं वा, एतत्सर्वम् अनिर्वृतम्=शस्त्राऽपरिणतम्। तथा वृक्षस्य=अम्लिकादेः वा=अथवा

'सालुयं' इत्यादि, 'तरुणगं' इत्यादि। कमलका मूल, पलाश (ढाक) का मूल अर्थात् साधारण वनस्पतिकी जातिविशेष, तथा सफेद कमल, कमलकी नाल, सरसोंके पत्तेका शाक, गन्नेका खण्ड, ये सब

सालुय० ઇત્યાદિ, तरुणग० ઇત્યાદિ કમળનું મૂળ, પલાશનું મૂલ, અર્થાત્ સાધારણ વનસ્પતિની જાતિ વિશેષ, તથા સફેદ કમળ, કમળની નાળ, સરસવના પાંદડાનું શાક, શેરડીની કાતળી, એ બધા જો શસ્ત્રથી પરિણિત ન હોય તો એનો

तृणकस्य=मधुरतृणादेः, अन्यस्य हरितस्यापि वा हरितकायमात्रस्य तरुणकं=तरुणदशाऽऽपन्नं पत्रादिकं, प्रवालं=सुकुमारं पत्रादिकं वा, आमकं=सचित्तं परिवर्जयेत् ॥ १८ ॥ १९ ॥

मूलम्-तरुणियं वा छिवाडिं, आमियं भज्जियं सइं।
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥ २० ॥

छाया—तरुणिकां वा छिवाडीम्, आमिकां भर्जितां सकृत्।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥ २० ॥

सान्वयार्थः-तरुणियं=कच्ची-जिसके बीज पके नहीं हों ऐसी वा=अथवा सइं=एक वार भज्जियं=भुनी हुई आमियं=सचित्त छिवाडिं=फलीको दिंतियं=देनेवालीसे (साधु) पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहार मे=मुझे न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥ २० ॥

टीका—'तरुणियं' इत्यादि। तरुणिकाम्=अपरिपक्वबीजाम् अपरित्यक्तत्वक्संश्लेषावस्थापन्नामित्यर्थः, छिवाडीं=' देशीयोऽयं शब्दः ' मुद्ग-चवल-तुवरिकादिफलिकां सकृद्भर्जिताम्=एकवारं भृष्टां वा=अथवा आमिकां=सचित्तां ददतीं प्रत्याचक्षीत तादृशं मे न कल्पत इति। ॥२०॥

यदि शस्त्रसे परिणत न हों तो इनका, तथा-इमली आदि वृक्षके, मधुर तृण आदिके तथा अन्य हरेक वनस्पतिके पत्ते कोंपल आदि जो सचित्त हों तो उनका त्याग करना चाहिए ॥ १८ ॥ १९ ॥

'तरुणियं' इत्यादि। जिसके बीज न पके हों ऐसी मूँग, चवला, तुअर (अरहर) आदिकी फली एक-वार भूँजी हुई हो तथा सचित हो तो देनेवाली बाईसे साधु कहे कि यह लेना मुझे नहीं कल्पता है ॥ २० ॥

તથા આંબલી આદિના વૃક્ષના, મધુર તૃણ આદિનાં, તથા બીજી બધી વનસ્પતિના પાંદડા, કુંપળ, આદિ જો સચિત્ત હોય તો એનો ત્યાગ કરવો જોઈએ. (૧૮) (૧૯)

तरुणियं ઈત્યાદિ. જેના બીજ પાકયાં ન હોય એવા મગ, ચોળા, તુવેર આદિની સીંગ એકવાર ભૂંજેલી હોય તથા સચિત્ત હોય તો તે આપનારી બાઈને સાધુ કહે કે એ લેવી મને કલ્પતી નથી.

१ ३ २ ५ ६
मूलम्-तहा कोलमणुस्सिन्नं, वेलुयं कासवनालियं ।
७ ८ ४ १०
तिलपप्पडगं नीमं, आमगं परिवज्जए ॥ २१ ॥

छाया—तथा कोलमनुत्स्विन्नं, वेणुकं काश्यपनालिकाम् ।
तिलपर्पटकं नीपम्, आमकं परिवर्जयेत् ॥ २१ ॥

सान्वयार्थः-तहा=उसी प्रकार अणुस्सिन्नं=विना उवाले हुए कोलं=वेर तथा वेलुयं=केर या वांसकी कोंपल कासवनालियं=श्रीपर्णीका फल तिल-पप्पडगं=तिलपापड़ी नीमं=कदम्बका फल (ये सब यदि) आमगं=सचित्त हों तो उन्हें परिवज्जए=वर्जे ॥२१॥

टीका—'तहा' इत्यादि । तथा=तद्वत् अनुत्स्विन्नं=सलिलानलसंयोगेनाऽनुत्कालितम् - अक्वथितमित्यर्थः, कोलं=वदरीफलम्, आमकम्=अशस्त्रोपहतम्, अस्य वेणुकादौ सर्वत्र सम्बन्धः, वेणुकं=वंशकरीरं वंशाङ्कुरमित्यर्थः, काश्यपनालिकां=श्रीपर्णीफलम्, अत्र - 'आमग'-मित्यस्य लिङ्गविपरिणामेनान्वयः । तिलपर्पटकं प्रसिद्धमेव, [1]नीपं=कदम्बफलं परिवर्जयेत् ॥ २१ ॥

१ २ ३ ६ ४ ५
मूलम्-तहेव चाउलं पिट्ठं, वियडं वा तत्तनिव्वुडं ।
६ ७ ८ ९
तिल-पिट्ठं पूइ-पिन्नागं, आमगं परिवज्जए ॥२२॥

छाया—तथैव ताण्डुलं पिष्टं, विकटं वा तप्तनिर्वृतम् ।
तिलपिष्टं पूतिपिण्याकम्, आमकं परिवर्जयेत् ॥ २२ ॥

सान्वयार्थः-तहेव=उसी प्रकार चाउल पिट्ठं=चाँवलोंका आटा तथा और भी किसी तरहका आटा वा=अथवा तत्तनिव्वुडं=पहले गर्म किया हुआ किन्तु

१ 'नीमं' इत्यत्र 'नीपाऽऽपीडे मो वा' (प्रा. ८।१।२३४) इति प्राकृतसूत्रेण पस्य मः॥

'तहा कोल०' इत्यादि । इसी प्रकार जल और अग्निमें नहीं उबाले हुए वेर, सचित्त वाँसके अंकुर तथा काश्यपनालिका (गंभारीफल) तिलपापडी और कदम्बके फल ये सब यदि सचित्त हों तो इनका त्याग करे-ग्रहण न करे ॥ २१ ॥

तहा कोल० ઇત્યાદિ એ પ્રમાણે જળ અને અગ્નિમાં નહિ ઉકાળેલાં બોર, સચિત્ત વાંસના અંકુર તથા કાશ્યપનાલિકા (ગંભારી ફળ), તલપાપડી અને કદમ્બના ફળ જો સચિત્ત હોય તો એનો ત્યાગ કરવો-ગ્રહણ કરવાં નહિ (૨૧)

फिर ठंडा होया हुआ वियडं=पानी तिलपिट्ठं=तिलकुट्टा पूइपिन्नागं=सरसोंकी खल (ये) आमगं=सचित्त हों तो परिवज्जए=वरजे ॥२२॥

टीका—'तहेव' इत्यादि । तथैव=तेनैव प्रकारेण ताण्डुलं=तण्डुलसम्बन्धि पिष्टं=चूर्णम्, उपलक्षणमेतद्गोधूमादेरपि, वा=अथवा तप्तनिर्वृत=पूर्वं तप्तं पश्चान्निर्वृत=शीतलं यत्तत्तथोक्तम्, उष्णोदकं यदा शैत्यापन्नं ततः कालादारभ्य ग्रीष्मे यामपञ्चकादूर्ध्वं शीतकाले यामचतुष्टयात्परं, वर्षाकाले च प्रहरत्रयानन्तरं सचित्तं जायते । अत्रेयं सङ्ग्रहगाथा–

"जम्मि[1] समयम्मि उण्हो,–दगं च सीयं भवे तओ पच्छा ।
पंच-चउ-तिय-जामा, गिम्हे हेमंत-पाऊसे ॥ १ ॥" इति ॥

विकट=समयपरिभाषया सलिलं, तिलपिष्टं=तिलकुट्ट प्रसिद्धं, पूतिपिण्याकं=सर्षपकल्कम् आमकं=सचित्तं परिवर्जयेत् ॥ २२ ॥

---

१ छाया-" यस्मिन् समये उष्णोदक च शीत भवेत्ततः पश्चात् ।
पञ्चचतुस्त्रिकयामाः, ग्रीष्मे हेमन्त-प्रावृषोः ॥ १ ॥

'तहेव' इत्यादि । इसी प्रकार तत्कालका पीसा हुआ चाँवल गेहूँ आदिका आटा तथा पहले अचित्त होने पर भी कालकी मर्यादा व्यतीत होने पर पुनः सचित्त हुआ जल, तुरतका बना हुआ तिलकुट, तत्कालकी सरसों आदिकी खली, इन सचित्त वस्तुओंको ग्रहण न करे । गर्म पानीके अचित्त रहनेकी मर्यादा–ठंढा होजाने पर ग्रीष्म ऋतुमें पांच पहर, शीतकालमें चार पहर और वर्षाकालमें तीन पहरकी होती है, उसके बाद वह (जल) सचित्त होजाता है । इस विषयमें एक संग्रह गाथा है जो संस्कृत-टीकामें लिखी गई है ॥ २२ ॥

तहेव० ઇત્યાદિ એ જ પ્રમાણે તતકાળનો દળેલો ચોખા ઘઉં આદિનો આટો, તથા પહેલા અચિત્ત હોવા છતા પણ કાળની મર્યાદા વ્યતીત થતાં પુનઃ સચિત્ત થએલું જળ, તુરતનો બનાવેલો તલકુટ, તુરતની સરસવ આદિની ખોળ એ સચિત્ત વસ્તુઓને પણ ગ્રહણ ન કરે ગરમ પાણી અચિત્ત રહેવાની મર્યાદા-ઠંડુ થઇ ગયા પછી ગ્રીષ્મ ઋતુમાં પાચ પહોર, શીયાળામા ચાર પહોર અને વર્ષાઋતુમાં ત્રણ પહોરની હોય છે, ત્યારબાદ એ જળ સચિત્ત બની જાય છે એ વિષયમા એક સગ્રહગાથા છે તે સસ્કૃત ટીકામા લખી છે (૨૨)

मूलम्-कविट्ठं[1] माउलिंगं[2] च, मूलगं[5] मूलगत्तियं[3][4]।
आमं[6] असत्थपरिणयं[7], मणसावि[8] न[9] पत्थए[10] ॥ २३ ॥

छाया—कपित्थं मातुलिङ्गं च, मूलकं मूलकर्त्तिकाम् ।
आमम् अशस्त्रपरिणतं, मनसाऽपि न प्रार्थयेत् ॥ २३ ॥

सान्वयार्थः-कविट्ठं=कैथ-कविठ माउलिंगं=विजौरा मूलगं=मूला च=और मूलगत्तियं=मूलेके कन्दका टुकड़ा आमं=कच्चा असत्थपरिणयं=स्वकाय परकाय आदि शस्त्रसे परिणत न हुआ हो तो उसे मणसावि=मनसे भी न पत्थए=न चाहे ॥२३॥

टीका—'कविट्ठं' इत्यादि । कपित्थं 'कैथ कविठ' इति भाषायां, मातुलिङ्गं=बीजपूरकं 'विजौरा नींबू' इति भाषायां, मूलकं=सपत्रं, मूलकर्त्तिकां=मूलककन्दखण्डम्, आमम्=अपक्कम्, अशस्त्रपरिणतम्=अलब्धस्वपरकायादिशस्त्रयोगं मनसाऽपि न प्रार्थयेत्-एतद्विषयिणीमिच्छामपि न कुर्यादित्यर्थः । 'आमम्' इत्यस्य 'अशस्त्रपरिणतम्' इत्यस्य च लिङ्गविपरिणामेन 'मूलकर्त्तिका'-मित्यत्र सम्बन्धः । मूलकस्याऽनन्तकायत्वात् शस्त्रपरिणतिर्दुष्करेति बोधयितुमेकार्थकस्याऽऽमादिशब्दद्वयस्योपादानम् ॥ २३ ॥

मूलम्-तहेव[1] फलमंथूणि[2], बीयमंथूणि[3] जाणिय[8]।
विहेलगं[4] पियालं[6] च[5], आमगं[7] परिवज्जए[9] ॥ २४ ॥

छाया—तथैव फलमन्थून् बीजमन्थून् ज्ञात्वा ।
बिभीतकं प्रियालं च, आमकं परिवर्जयेत् ॥ २४ ॥

'कविट्ठं' इत्यादि । कैथ (कविठ) बिजौरा नीबू, मूला और मूलेके खण्ड यदि अचित्त-शस्त्रपरिणत न हों तो इन्हें ग्रहण करनेकी इच्छा भी नहीं करनी चाहिए । मूला अनन्तकाय है, अतः उसका शस्त्रपरिणत होना कठिन है इसीसे यहां एक अर्थवाले 'आमक' और 'अशस्त्र-परिणत' ये दो शब्द दिये हैं ॥ २३ ॥

कविट्ठं- ઇત્યાદિ કોઠું, બીજોરા-લીંબુ, મૂળા અને મૂળાના કકડા જો અચિત્ત-શસ્ત્રપરિણત ન હોય તો તે ગ્રહણ કરવાની ઇચ્છા પણ ન કરવી જોઇએ મૂળો અનંતકાય છે એટલે એ શસ્ત્રપરિણત થવો કઠિન છે, તેથી અહીં એક અર્થવાળા 'આમક' અને 'અશસ્ત્ર-પરિણત' એવા બે શબ્દો આપેલાં છે. (૨૩)

सान्वयार्थः—तहेव=इसी प्रकार फलमंथूणि=बेर आदि फलोंका चूर्ण-चूरा बीयमंथूणि=शालि आदि बीजोंका चूर्ण-चूरा विहेलगं=बहेडा च=और पियाल=रायण अथवा दाख (इन्हें) आमगं=सचित्त जाणिय=जानकर=जाने तो परिवज्जए=वरजे-न ले ॥ २४ ॥

टीका—'तहेव फल०' इत्यादि । तथैव=तद्वत् फलमन्थून्=बदरादिचूर्णान्, बीजमन्थून=फलबीजचूर्णान्, विभीतकं 'बहेडा' इति प्रसिद्धं, च=पुनः प्रियालं=राजादनफलं 'रायण' इति भाषाप्रसिद्धम् । यद्वा 'प्रियाला'-मिति च्छाया, प्रियालां=द्राक्षाम्, आमकं=सचित्तं ज्ञात्वा परिवर्जयेत्, सचित्तं चेन्न गृह्णीयादित्यर्थः । यद्वा 'जाणिय' इत्यस्य 'याँश्चे'-ति च्छाया; याँश्च बीजमन्थूनित्यन्वयः ॥ २४ ॥

मूलम्-समुयाणं(५) चरे(६) भिक्खू(१), कुलं(४) उच्चावयं(३) सया(२) ।
नीयं(७) कुलमइक्कम्म(८), ऊसढं(९) नाभिधारए(१०)(११) ॥ २५ ॥

छाया—समुदानं चरेद् भिक्षुः, कुलमुच्चावचं सदा ।
नीचं कुलमतिक्रम्य, उच्छ्रितं नाभिधारयेत् ॥२५॥

सान्वयार्थः—भिक्खू=साधुको सया=हमेशा उच्चावयं=ऊंच-नीच अर्थात् धनवान् और गरीब कुलं=कुल-घर-में समुयाणं=शुद्ध भिक्षाका अनुसन्धान-पूर्वक चरे=घूमना चाहिए, (किन्तु) नीयं=गरीब कुलं=कुल-घर-को अइक्कम्म=छोड़कर ऊसढं=धनवान्के घरपर नाभिधारए=नहीं जाना चाहिए ॥२५॥

टीका-'समुयाणं' इत्यादि । भिक्षुः सदा=नित्यम् उच्चावचम्=उदक्= उच्चं धनधान्यादिसमृद्धम्, अवाक्=अवचं=तद्विकलं कुलं प्रति समुदानं=गृहस्थ-

---

'तहेव फल०' इत्यादि। इसीप्रकार बेर आदिका चूरा, फलके बीजोंका चूरा, तथा बहेडा, रायण अथवा दाख, ये सचित्त हों तो ग्रहण न करे ॥ २४ ॥

'समुयाणं' इत्यादि । भिक्षु सदा धन-धान्य आदिसे समृद्ध कुलोंमें तथा धन-धान्यहीन कुलोंमें समुदानी भिक्षाके लिए गमन करें। एकही

तहेव फल० ઇત્યાદિ એ પ્રકારે બોર આદિનું ચૂર્ણ, ફળનાં બીજોનું ચૂર્ણ, તથા બહેડા, રાયણ અથવા દ્રાક્ષ એ સચિત્ત હોય તો ગ્રહણ કરવા નહિ (૨૪)

समुयाणं० ઇત્યાદિ ભિક્ષુ સદા ધન-ધાન્ય આદિથી સમૃદ્ધ કુળોમા તથા ધન-ધાન્યથી હીન કુળોમા સમુદાની ભિક્ષાને માટે ગમન કરે એક જ ઘેરથી

समुदायसम्वन्धि भैक्ष्यं, न त्वेकस्मिन्नेव गृहे तत्राऽऽधाकर्मादिदोपसम्भवादिति भावः, चरेत्=गच्छेत् । नीचं=विभवविधुरं कुलम् अतिक्रम्य=उल्लङ्घ्य परित्यज्येति यावत्, उच्छ्रितं=समृद्धं कुलं नाभिधारयेत्=न गच्छेत् प्रचुरसरसभक्तपानादि-लिप्सया निर्धनं विहाय विभवसंपन्नं सदनं नाभिगच्छेत्, किन्तु उभयत्रापि याया-दिति भावः । 'समुयाणं' इति-पदेनाऽनेकगृहतः स्वल्पं-स्वल्पं ग्रहणाद् भिक्षाया निर्दोषता सूचिता । 'उच्चावयं' इति-पदेन समभावो व्यक्तीकृतः । 'नीयं कुलं' इत्युत्तरार्द्धेन रसलोलुपतापरित्याग आविष्कृत इति ॥ २५ ॥

मूलम्-अदीणो वित्तिमेसिज्जा, न विसीएज्ज पंडिए ।
अमुच्छिओ भोयणम्मि, मायन्ने एसणारए ॥ २६ ॥

छाया—अदीनः वृत्तिमेषयेत्, न विषीदेत् पण्डितः ।
अमूर्च्छितो भोजने, मात्राज्ञ एषणारतः ॥२६॥

सान्वयार्थः—पंडिए=बुद्धिमान् साधु भोयणम्मि=भोजनमें अमुच्छिओ=गृद्धि-लोलुपता-रहित मायन्ने=आहार-पानीकी मात्राको जाननेवाला एसणारए=आहारकी शुद्धिमें तत्पर अदीणो=दीनता नहीं दिखलाता हुआ वित्तिं=भिक्षा-गोचरी-की एसिज्जा=गवेषणा करे, (किन्तु भिक्षा न मिलने पर)न विसीएज्ज=खेद न करे ॥२६॥

घरसे भिक्षा न लें, क्योंकि आधाकर्म आदि दोष लगनेकी संभावना है। निर्धन कुलको छोड़कर सरस भक्त-पानकी लालसासे सम्पत्तिशाली कुलमें भिक्षाके लिए नहीं जाना चाहिए।

'समुयाणं' पदसे यह सूचित किया है कि अनेक कुलोंसे थोड़ी-थोड़ी भिक्षा लेनेसे ही भिक्षाकी निर्दोषता होती है। 'उच्चावयं' पदसे समभाव सूचित किया है। 'नीयं कुलं' इत्यादि उत्तरार्द्धसे रसलोलुपताका त्याग व्यक्त किया है ॥ २५ ॥

ભિક્ષા ન લે, કારણ કે આધાકર્મ આદિ દોષ લાગવાનો સંભવ છે. નિર્ધન કુળને છોડીને સરસ ભકત-પાનની લાલસાથી સંપત્તિશાળી કુળમા ભિક્ષાને માટે જવું ન જોઈએ

समुयाणं પદથી એમ સૂચિત કરવામાં આવ્યું છે કે અનેક કુળોમાંથી થોડી-થોડી ભિક્ષા લેવાથી જ ભિક્ષાની નિર્દોષતા જળવાય છે उच्चावयं શબ્દથી સમભાવ સૂચિત કર્યો છે नीयं कुलं ઇત્યાદિ ઉત્તરાર્ધથી રસ-લોલુપતાનો ત્યાગ વ્યકત કર્યો છે (૨૫)

टीका-'अदीणो' इत्यादि। पण्डितः=सकलभिक्षादोषज्ञः साधुः भोजने=आहारे अमूर्च्छितः=अगृध्नुः मात्राज्ञः=मात्रां=भक्तपानेन स्वकीयोदरपूर्तिप्रमाणं क्षुन्निमित्तकवैकल्यप्रशमनैकसाधनप्रमाणं वा जानातीति मात्राज्ञः, प्रमाणाधिक-भोजनेन प्रमादादिदोषोद्भवस्य संभवेन साधूनामाहारप्रमाणमवश्यं विधेयमिति। एषणारतः=उद्गमादिदूषणव्यतिरिच्यमानगवेषणपरायणः, अदीनः=दैन्यरहितः सन् वृत्तिं=भिक्षालक्षणाम् एषयेत्=अन्वेषयेत्, अलाभे सति न विषीदेत्=न खिद्येत्। 'अदीणो' इति-पदेन स्वदैन्याऽऽविष्करणेनाऽऽत्मनोऽधःपतनं शासन-लघुता च प्रसज्यते, इति व्यज्यते। 'न विसीएज्ज' अनेन भिक्षाया अलाभेऽपि स्वात्मप्रसन्नतां न परित्यजेदिति द्योतितम्। 'पंडिए' इत्यनेन सर्वथापरिशुद्ध

'अदीणो' इत्यादि। भिक्षाके समस्त दोषोंका ज्ञाता मुनि आहारमें मूर्च्छा न रखें और आहारके परिमाणका ख्याल रखें। जितने आहारसे क्षुधावेदनीय उपशान्त होजाय वही आहारका परिमाण है, उससे अधिक आहार करनेसे प्रमाद आदि दोष उत्पन्न होते हैं, इसलिए साधुओंको आहारका परिमाण अवश्य करना चाहिए। साधु उद्गम आदि दोषोंको न लगाते हुए दीनताका त्याग करके भिक्षाकी गवेषणा करें, और भिक्षाका लाभ न हो तो खेद न करें।

'अदीणो' पदसे यह प्रगट होता है कि दीनता दिखानेसे आत्माका अधःपतन और जिनशासनकी लघुता होती है। 'न विसीएज्ज' पदसे यह सूचित किया है कि आहार-लाभ न हो तो भी आत्मिक प्रसन्नताका परित्याग न करना चाहिए। 'पंडिए' पदसे सर्वथाशुद्ध भिक्षा ग्रहण

अदीणो० ઇત્યાદિ. ભિક્ષાના બધા દોષોનો જ્ઞાતા મુનિ આહારમાં મૂર્ચ્છા ન રાખે અને આહારના પરિમાણનો ખ્યાલ રાખે જેટલા આહારથી ક્ષુધા-વેદનીય ઉપશાન્ત થઈ જાય તે જ આહારનું પરિમાણ છે એથી વધારે આહાર કરવાથી પ્રમાદ આદિ દોષ ઉત્પન્ન થાય છે, તેથી સાધુઓએ આહારનું પરિમાણ અવશ્ય કરવું જોઈએ. સાધુ ઉદ્ગમ આદિ દોષો ન લાગવા દેતા દીનતાનો ત્યાગ કરીને ભિક્ષાની ગવેષણા કરે, અને ભિક્ષાનો લાભ ન થાય તો તેથી ખેદ ન કરે.

अदीणो શબ્દથી એમ પ્રકટ થાય છે કે દીનતા બતાવવાથી આત્માનું અધ.પતન અને જિનશાસનની લઘુતા થાય છે न विसीएज्ज શબ્દથી એમ સૂચિત કર્યું છે કે આહારલાભ ન થાય તો પણ આત્મિક પ્રસન્નતાનો પરિત્યાગ ન કરવો જોઈએ पडिए શબ્દથી સર્વથા શુદ્ધ ભિક્ષા ગ્રહણ કરવાની યોગ્યતા

भिक्षाग्रहणयोग्यताऽऽवेदिता। 'अमुच्छिओ' इतिपदेनाऽऽहारादिलोलुपता निराकृता। 'मायन्ने' इत्यनेन निर्दोषसरसभक्तपानादौ प्राचुर्येण दीयमानेऽपि प्रमाणाधिकं न ग्राह्यमिति स्पष्टीकृतम्। 'एसणारए' इति-पदेनाऽऽधाकर्मादि-सकलभिक्षादोषानुसन्धानेनैव विशुद्धभिक्षाग्रहणं भवितुमर्हतीत्याविष्कृतम् ॥२६॥

मूलम्-बहुं[5] परघरे[1] अत्थि[6] विविहं[2] खाइम[3] साइमं[4]।
न[14] तत्थ[12] पंडिओ[13] कुप्पे,[15] इच्छा[7] देज्ज[9] परो[8] न[10] वा[11] ॥ २७ ॥

छाया—बहु परगृहे अस्ति, विविधं खाद्यं स्वाद्यम्।
न तत्र पण्डितः कुप्येत्, इच्छा दद्यात् परो न वा ॥२७॥

सान्वयार्थः-परघरे=गृहस्थके घरमें विविहं=नाना प्रकारका खाइमं=दाख पिस्ता बादाम आदि खाद्य साइमं=एलची लूंग आदि स्वाद्य बहुं=बहुत अत्थि=है, (किन्तु) इच्छा=इच्छा-मरजी-है कि परो=गृहस्थ देज्ज-देवे वा=अथवा न=न देवे। नहीं देने पर तत्थ=उस गृहस्थ पर पंडिओ=बुद्धिमान् साधु न कुप्पे=कुपित न होवे ॥२७॥

टीका-'बहु' इत्यादि। परगृहे=गृहस्थभवने विविधं=नैकप्रकारं खाद्यं=द्राक्षा-पिस्तबादामादिकं, स्वाद्यम्=एलालवङ्गादिकम् बहु=प्रभूतमस्ति, किन्तु इच्छा चेत्

करनेकी योग्यता व्यक्त होती है। 'अमुच्छिओ' पदसे आहार आदिकी लोलुपताका त्याग ध्वनित होता है। 'मायन्ने' पदसे यह सूचित किया है कि निर्दोष और सरस आहार अधिक प्राप्त हो रहा हो तो भी प्रमाणसे अधिक नहीं ग्रहण करना चाहिए। 'एसणारए' पदसे यह द्योतित किया है कि आधाकर्म आदि भिक्षाके समस्त दोषोंका अनुसन्धान करनेसे ही विशुद्ध भिक्षाका ग्रहण होना संभव है ॥ २६ ॥

'बहु' इत्यादि। गृहस्थके घरमें भाँति-भाँतिके खाद्य और भाँति-भाँतिके स्वाद्य विद्यमान रहते हैं, उसकी इच्छा हो तो देवे, न हो तो

વ્યકત થાય છે अमुच्छिओ શબ્દથી આહાર આદિની લોલુપતાનો ત્યાગ ધ્વનિત થાય છે मायन्ने શબ્દથી એજ સૂચિત કરવામા આવ્યુ છે કે નિર્દોષ અને સરસ આહાર વધારે પ્રાપ્ત થઇ રહ્યો હોય તો પણ પ્રમાણથી વધારે ગ્રહણ ન કરવો જોઇએ. एसणारए શબ્દથી એમ સૂચિત કરવામા આવ્યુ છે કે આધાકર્મ આદિ ભિક્ષાના બધા દોષોનુ અનુસધાન કરવાથી જ વિશુદ્ધ ભિક્ષાનુ ગ્રહણ સભવિત છે (૨૬)

बहुं० ઇત્યાદિ ગૃહસ્થના ઘરમા તરેહ-તરેહના ખાદ્ય અને ભાત-ભાતના સ્વાદ્ય વિદ્યમાન હોય છે; તેની ઇચ્છા હોય તો આપે અને ન હોય તો ન આપે.

परः=गृहस्थः दद्यात् न वा दद्यात्, तत्र=दातरि, यद्वा तत्र=खाद्ये स्वाद्ये तु अदीयमाने सति न कुप्येत्=न क्रुध्येत्–'कीदृशोऽयमविवेकी ? प्रचुरेऽपि बहुविधखाद्यादिके विद्यमाने साधवे न ददातीति क्रोधावेशदूषितान्तःकरणो न भवेत्। अत्र 'पंडिए' इति-पदेन सदसद्विवेकशालित्वं, तेन च मनोविजयित्वमावेदितम् ॥२७॥

एतदेव प्रपञ्च्यते–'सयणा०' इत्यादि।

मूलम्–सयणासणवत्थं वा, भत्तं पाणं व संजए।
अदिंतस्स न कुप्पेज्जा, पच्चक्खेवि य दीसउ ॥ २८ ॥

छाया—शयनासनवस्त्रं वा, भक्तं पानं वा संयतः।
अददतो न कुप्येत्, प्रत्यक्षेऽपि च दृश्यमाने ॥२८॥

पूर्वोक्त विषय को ही विशद करते हुए कहते हैं—

सान्वयार्थः–सयणासणवत्थं–शयन-वसति, आसन-पाटलादिक, वस्त्र-चादर आदि वा=अथवा भत्तं=आहार व=तथा पाणं=पानी आदि किसी भी वस्तुके पच्चक्खेवि य=प्रत्यक्ष-सामने पड़ी दीसउ=दीखने पर भी अदिंतस्स=नहीं देते हुए गृहस्थ पर संजए=साधु न कुप्पेज्जा=कोप न करे, (क्योंकि)–"इच्छा देज्ज परो न वा" देवे न देवे गृहस्थकी मरजी है, ऐसा पूर्व गाथासे संबंध है ॥२८॥

टीका—संयतः शयनासनवस्त्रं=शयनं च आसनं च वस्त्रं चेत्येषां समाहारः, तत्र शय्यतेऽस्मिन्निति शयनं वसतिः, आस्यते=उपविश्यतेऽस्मिन्निति-आसनं=पीठफलकादिकं, वस्यते=आच्छाद्यते शरीरमनेनेति वस्त्रं=शाटकादिकं, भक्तं=

न देवे। यदि न दे तो साधुको ऐसा क्रोध न करना चाहिए कि–'यह कैसा अविवेकी है कि इतना बहुत खाद्य स्वाद्य मौजूद होने पर भी साधुको नहीं देता।' यहाँ 'पंडिए' पदसे सत् और असत्का विवेक प्रगट किया है और उससे मनको जीतना सूचित किया है ॥ २७॥

इसीका विस्तार-पूर्वक कथन करते हैं–'सयणा०' इत्यादि।

यदि कोई गृहस्थ शय्या, आसन, वस्त्र, भक्त या पान सामने

જો ન આપે તો સાધુએ એવો ક્રોધ ન કરવો જોઇએ કે, 'આ કેવો અવિવેકી છે કે 'આટલાં બધાં ખાદ્ય-સ્વાદ્ય હાજર હોવા છતા પણ સાધુને આપતો નથી' અહીં पंडिए શબ્દથી સત્ અને અસત્નો વિવેક પ્રકટ કર્યો છે, અને તેથી મનને જીતવાનું સૂચિત કર્યું છે (૨૭)

એનું વિસ્તારપૂર્વક કથન કરે છે–सयणा० ઇત્યાદિ

જે કોઇ ગૃહસ્થ શય્યા, આસન, વસ્ત્ર, ભક્ત યા પાન સામે દેખાતા

भोज्यं, पानं=पेयम् अददतः=अप्रयच्छतः, (अत्र सम्बन्धसामान्ये षष्ठी,) प्रत्यक्षेऽपि दृश्यमाने शयनादौ न कुप्येत्=कोपावेशेन चित्तविकृतिं न कुर्यादिति सूत्रार्थः॥२८॥

१ ४ ३ २ ५ ६ ७
मूलम्–इत्थियं पुरिसं वावि, डहरं वा महल्लगं ।
८ ९ १० १४ १२ ११ १३ १५
वंदमाणं न जाएज्जा, नो अ णं फरुसं वए ॥ २९ ॥

छाया—स्त्रियं पुरुषं वाऽपि, डहरं वा महान्तम् ।
वन्दमानं न याचेत, नो च तं परुषं वदेत् ॥ २९ ॥

सान्वयार्थः–इत्थियं=स्त्री वावि=अथवा पुरिसं=पुरुष डहरं=छोटा-वालक वा=या महल्लगं=बड़ा–जुवान या बुड्ढा हो वंदमाणं=वन्दना करते हुएको न जाएज्जा=न जाँचे-उससे भिक्षाके लिए याचना न करे, (और दूसरे समय याचना करने पर यदि किसी कारण वश वह भिक्षा न दे तो) णं=उस गृहस्थके प्रति साधु फरुसं=कठोर वचन नो य=नहीं वए=बोले ॥२९॥

टीका—'इत्थियं' इत्यादि। स्त्रियम् अपिवा पुरुषं डहरं=बालकं, 'देशीयोऽयं शब्दः' जन्मतः पञ्चदशवर्षं यावत्, वा=अथवा महान्तं=तरुणं स्थविरं वा वन्दमानं= वन्दनां कुर्वन्तं न याचेत=न-भिक्षेत। वन्दनप्रवृत्तस्य गृहस्थस्य याचनायां चित्त-विक्षेपादिना वन्दनान्तरायः, चित्तवैरस्यप्रसङ्गश्च - 'कीदृशोऽयं कुक्षिम्भरिः साधु-र्यद्वन्दनसमयेऽपि न धैर्यं दधाति, भिक्षायामेव दत्तचित्तो रङ्कव'–दित्यादि।

दिखाई देनेपर भी साधुको न दे तो भी साधु क्रोध न करें ॥ २८ ॥

'इत्थियं' इत्यादि। स्त्री, बालक, युवक (जुवान) या वृद्ध, वन्दना कर रहा हो तो उससे उस समय भिक्षाकी याचना नहीं करनी चाहिए। कोई वन्दना कर रहा हो और उससे याचना करे तो वन्दनामें अन्तराय पड़ती है, और गृहस्थके मनमें ऐसा विचार आता है कि–'देखो यह साधु कैसा पेटू (पेट-भरा) है कि वन्दना करते समय भी धीरज नहीं

હોવા છતાં પણ સાધુને ન આપે તો પણ સાધુ ક્રોધ ન કરે (૨૮)

इत्थियं० ઇત્યાદિ સ્ત્રી, બાળક, જુવાન યા વૃદ્ધ વંદના કરી રહ્યાં હોય તો તે વખતે તેમની પાસે ભિક્ષાની યાચના કરવી ન જોઇએ કોઇ વંદના કરી રહ્યાં હોય અને તેમની પાસે યાચના કરવામાં આવે તો વંદનામા અંતરાય પડે છે, અને ગૃહસ્થના મનમા એવો વિચાર આવે છે કે 'જુઓ, આ સાધુ કેવો પેટ ભરો છે કે વંદના કરતી વખતે પણ ધીરજ ધરતો નથી, રંકની પેઠે

अन्यदा याचितेऽपि भक्तपानाद्यभावाददाने तं च गृहस्थं परुषं=निष्ठुरवाक्यं न वदेत् मुनिरिति शेषः । यथा व्यर्थैव त्वद्वन्दनचेष्टा, नाल साधुतोषाय, केवलं-किंशुककुसुमवद्बाह्यरमणीयतामात्रमाकलयसी'-त्यादि ॥२९॥

मूलम्-जे[१] न[२] वंदे[३] न[४] से[५] कुप्पे[६], वंदिओ[७] न[८] समुक्कसे[९] ।
एवमन्नेसमाणस्स[१०], सामन्नमणुचिट्ठई[११] ॥ ३० ॥

छाया—यो न वन्दते न तस्य कुप्येत्, वन्दितो न समुत्कर्षयेत् ।
एवमन्वेषमाणस्य, श्रामण्यमनुतिष्ठति ॥ ३० ॥

सान्वयार्थः-जे=जो गृहस्थ न वंदे=साधुको वन्दना न करे तो से=उस पर न कुप्पे=क्रोध न करे (और) वंदिओ=वन्दना किया हुआ न समुक्कसे=गर्वित न होवे-घमड न करे। एवं=इस प्रकार अन्नेसमाणस्स=जिनशासनकी आराधना करनेवालेके सामन्नं=साधुपना-चारित्र अणुचिट्ठइ=आराधित स्थिर-होता है, अर्थात् मान अपमानमें समान रहनेवाले मुनिको ही सम्यक् प्रकारसे चारित्रकी आराधना होती है ॥३०॥

टीका-'जे' इत्यादि । यो गृहस्थः साधुं न वन्दते से=तस्य अवन्दमानस्य न कुप्येत्=क्रोधमय विवेकविकलः, यन्मामुपस्थित साधुमवमन्यते' इति कृत्वा

धरता, रंककी तरह केवल भिक्षाकी चिन्ता कर रहा है। अन्य समय याचना करने पर भी यदि गृहस्थ भिक्षा न दे तो कठोर वचन न बोले कि-'बस रहने दे, तेरी वन्दना वृथा है, इससे साधुओंको सन्तोष नहीं हो सकता, तू टेसू (पलाश-केसूडा) के फूलकी नाई दिखावटी रमणीयता (नम्रता) धारण करता है' इत्यादि ॥ २९ ॥

'जे' इत्यादि। कोई साधुको वन्दना न करे तो उसे उसपर कुपित न होना चाहिए कि-'यह कैसा अविवेकी है कि सामने उपस्थित साधुका

કેવળ ભિક્ષાની ચિંતા કરી રહ્યો છે' બીજા સમયે યાચના કરતા પણ જો ગૃહસ્થ ભિક્ષા ન આપે તો સાધુ કઠોર વચન ન બોલે કે 'બસ, રહેવા દો, તારી વંદના વૃથા છે, તેથી સાધુઓને સંતોષ નથી થઈ શકતો, તુ કેસૂડાના ફૂલની પેઠે દેખાડવાની રમણીયતા (નમ્રતા) ધારણ કરનારો છે,' ઇત્યાદિ (૨૯)

જે૦ ઇત્યાદિ કોઈ સાધુને વંદના ન કરે તો સાધુએ તેના પર કુપિત ન થવું જોઈએ કે 'આ કેવો અવિવેકી છે કે સામે ઊભેલા સાધુનો અનાદર કરે છે?'

कोपावेशेन मनो विकृतं न विदध्यात् । वन्दितः=सार्वभौमादिनाऽपि नमस्कृतश्च न समुत्कर्षयेत् आत्मानमिति शेषः, 'अहमेतादृशो माननीयो जगति, यदेवंविधा नरेन्द्रादयोऽपि मम चरणौ प्रणमन्ती'-त्याद्यभिमानं न कुर्यादित्यर्थः । एवम्=उक्तप्रकारेण अन्वेषमाणस्य=जिनशासनमनुतिष्ठतः साधोः श्रामण्यं=साधुत्वं चारित्रमिति यावत् अनुतिष्ठति=स्थिरीभवति, मानापमानसमानमानसस्यैव साधोर्निरतिचारचारित्रं सम्पद्यत इति भावः ॥ ३० ॥

स्वपक्षे चौर्यं निषेधयति-'सिया' इत्यादि ।

मूलम्-सिया[1] एगइओ[2] लद्धुं[3], लोभेण[4] विणिगूहइ[5] ।
मामेयं[6] दाइयं[7] संतं[8], दट्ठूणं[9] सयमायए[10] ॥ ३१ ॥

छाया—स्यात् एककः लब्ध्वा, लोभेन विनिगूहते ।
ममेदं दर्शितं सद्, दृष्ट्वा स्वयमाददीत ॥ ३१ ॥

अब स्वपक्ष-साधुपक्ष में चोरी का निषेध बताते है—

सान्वयार्थः-सिया=कदाचित्-अगर एगइओ=जघन्यप्रकृतिवाला अकेला गोचरी गया हुआ साधु लद्धुं=सरस अशनादि पाकर लोभेण=खानेके लोभसे (उसे) विणिगूहइ=छिपा लेवे-नीरस वस्तुको ऊपर रखकर सरस वस्तुको उसके नीचे दबा रखे, क्योंकि मम=मेरी दाइय संतं=दिखलाई हुई एयं=इस वस्तुको दट्ठूणं=सरस देखकर सयं=स्वय-आचार्य आदि खुद आयए=लेलेंगे अर्थात् मुझे नहीं देंगे या थोड़ी देंगे ॥३१॥

अनादर करता है?, तथा चक्रवर्त्ती आदि राजा-महाराजा भी वन्दना करें तो आत्मप्रशंसा (घमंड) न करे कि-'मैं संसारमें ऐसा माननीय हूँ कि ऐसे राजा महाराजा भी मेरे चरणोंमें गिरते हैं । इस प्रकार जिन-शासनमें स्थित साधुका चारित्र स्थिर (दृढ) रहता है, अर्थात् सत्कार और तिरस्कार होने पर अन्तःकरणमें विकार न करनेवाले अनगारका आचार निरतिचार पलता है ॥ ३० ॥

स्वपक्षमें चौर्यका निषेध करते हैं-'सिया' इत्यादि ।

તથા ચક્રવર્તી આદિ રાજા-મહારાજા પણ વંદના કરે તો આત્મપ્રશંસા (ઘમંડ) ન કરે કે હું જગતમાં એવો માનનીય છું કે એવા રાજા મહારાજા પણ મારા ચરણોમા પડે છે' એ રીતે જિનશાસનમાં સ્થિત એવા સાધુનું ચારિત્ર સ્થિર (દૃઢ) રહે છે, અર્થાત્ સત્કાર અને તિરસ્કાર થતાં પણ અંતઃકરણમા વિકાર ન કરનારા અનગારનો આચાર નિરતિચાર પણે પલે છે (૩૦)

સ્વપક્ષમાં ચૌર્યનો નિષેધ કરે છે-**સિયા** ઈત્યાદિ.

टीका—स्यात्=कदाचित् एककः=कश्चिज्जघन्यप्रकृतिकः साधुः लब्ध्वा=प्राप्य आहारादिकमिति शेषः लोभेन=उत्कृष्टसरसवस्तुलिप्सया विनिगूहते=संवृणुते-नीरसवस्तुजातमुपरि कृत्वोत्कृष्टरसवद्वस्तु समपह्नुते। अपह्नवे हेतुमाह-ममेदमुत्कृष्टं वस्तु 'दाइय'=दर्शितं सत् दृष्ट्वा आचार्यादिः स्वयमेवाऽऽददीत=गृह्णीयात्, न मह्यं दास्यति अल्पं वा दास्यतीति भावः ॥ ३१ ॥

अपह्नवकरणस्य दोषमाह-'अत्तट्ठा' इत्यादि।

मूलम्-अत्तट्ठागुरुओ[1] लुद्धो[2], बहु[3] पावं[4] पकुव्वई[5]।
दुत्तोसओ[8] य[7] से[6] होइ[9], निव्वाणं[10] च[11] न[12] गच्छई[13] ॥ ३२ ॥

छाया—आत्मार्थगुरुको लुब्धः, बहुपापं प्रकुरुते।
दुस्तोषकश्च स भवति, निर्वाणं च न गच्छति ॥ ३२ ॥

पूर्वोक्त आचरण करनेवाले साधु की क्या दशा होती है? सो बताते हैं—

सान्वयार्थः-अत्तट्ठागुरुओ=अपने स्वार्थ साधनमें लगा हुआ लुद्धो=जिह्वाका लोलुपी से=वह साधु बहु=बहुत पावं=पाप पकुव्वई=करता है, य=और (इस भवमें) दुत्तोसओ=असन्तोषी होइ=बना रहता है, च=तथा निव्वाणं=मोक्षको न गच्छइ=नहीं पाता है, अर्थात् अनन्तसंसारी होकर चतुर्गतिमें भटकता है ॥ ३२ ॥

टीका—आत्मार्थगुरुकः=आत्मनः अर्थः=प्रयोजनमित्यात्मार्थः स एव गुरुः=प्रधानं यस्य स तथोक्तः स्वार्थसाधनसमर्थ इत्यर्थः, यद्वा आत्मार्थमेव गुरु=प्रधान वस्तु यस्य स तथोक्तः अन्याऽलक्षितोत्कृष्टसरसवस्तुजाताऽऽस्वादकः अत एव लुब्धः=मनोरमरसाभिलाषी सन् बहु=प्रचुरं पापम्=आत्ममालिन्यजनकं दुष्कर्म

जो क्षुद्रप्रकृतिवाला साधु उत्कृष्ट सरस आहार प्राप्त करके इस विचारसे उसे छिपा लेता है कि-मैं इसे दिखा दूंगा तो आचार्य आदि इसे ले लेंगे-मुझे न देंगे अथवा थोड़ासा देंगे ॥ ३१ ॥

'अत्तट्ठा' इत्यादि। वह दूसरोंसे छिपाकर सरस आहार करनेवाला स्वार्थ-साधनमें समर्थ साधु मनोज्ञ रसका अभिलाषी होकर अत्यन्त ही

જે ક્ષુદ્ર પ્રકૃતિવાળો સાધુ ઉત્કૃષ્ટ સરસ આહાર પ્રાપ્ત કરીને એવા વિચારથી એને છુપાવે કે-હું એને બતાવીશ તો આચાર્ય આદિ એ લઈ લેશે, મને નહિ આપે અથવા થોડો જ આપશે' (૩૧)

अत्तट्ठा० ઇત્યાદિ એ બીજાથી છુપાવીને સરસ આહાર કરનારો સ્વાર્થ સાધનમા સમર્થ સાધુ મનોજ્ઞ રસનો અભિલાષી થઈને અત્યત પાપકર્મનું

करोति=विधत्ते, स चाऽस्मिन् जन्मनि दुस्तोषकः=अन्तप्रान्ताद्याहारेण दुःसम्पादनीयतोषः-असन्तोषी भवति, निर्वाणं=मोक्षं च न गच्छति=नोपैति ।

'अत्तट्ठागुरुओ' इत्यनेन पुद्गलानन्दित्वं, 'लुद्धो' अनेन मायापरत्वं तस्करवृत्तित्वं च प्रकटितम्, 'दुत्तोसओ' इत्यनेन चेप्सितवस्त्वप्राप्तौ सन्तोषाभावः सूचितः ॥ ३२ ॥

गुरुसमक्षापहारकमुक्त्वा गुरुपरोक्षतोऽपहारकमाह-'सिया' इत्यादि ।

मूलम्-सिया एगइओ लद्धुं, विविहं पाण-भोयणं ।
भद्दगं भद्दगं भोच्चा विवन्नं विरसमाहरे ॥३३॥

छाया—स्यात् एककः लब्ध्वा, विविधं पान-भोजनम् ।
भद्रकं भद्रकं भुक्त्वा, विवर्णं विरसमाहरेत् ॥ ३३ ॥

सान्वयार्थः-एगइओ=अकेला पूर्वोक्त स्वभाववाला रसलोलुपी साधु गोचरी गया हुआ सिया=कदाचित्-कोई वख्त ऐसा भी करे कि विविहं=नाना प्रकारके पाणभोयणं=आहार-पानीको लद्धुं=पाकर (उसमेंसे) भद्दगं-भद्दगं=अच्छे-अच्छे सरस आहारको भुच्चा=वहीं कहीं एकान्त स्थानमें खाकर विविन्नं=विकृत वर्ण-

---

पापकर्मका उपार्जन करता है । वह इस जन्ममें साधारण, नीरस आहारसे कभी सन्तुष्ट नहीं होता, न मोक्ष प्राप्त कर सकता है ।

'अत्तट्ठागुरुओ' इस पदसे पुद्गलानन्दीपन, 'लुद्धो' पदसे मायाचारमें परायणता तथा तस्करवृत्ति (चोरी) और 'दुत्तोसओ' पदसे अभीष्ट वस्तु न मिलने पर असन्तोष सूचित किया है ॥ ३२ ॥

गुरुसमक्षका अपहार कहकर अब गुरुके परोक्षका अपहार कहते हैं-'सिया' इत्यादि ।

ઉપાર્જન કરે છે. તે આ જન્મમાં સાધારણ નીરસ આહારથી કદાપિ સંતુષ્ટ ન થતાં મોક્ષને પ્રાપ્ત કરી શકતો નથી

अत्तट्ठागुरुओ એ પદથી પુદ્ગલાનંદીપણુ, लुद्धो પદથી માયાચારમાં પરાયણતા તથા તસ્કરવૃત્તિ (ચૌર્યવૃત્તિ) અને दुत्तोसओ પદથી અભીષ્ટ વસ્તુ ન મળવાથી ઉપજતો અસંતોષ સૂચિત કર્યો છે (૩૨)

ગુરૂ સમક્ષનો અપહાર કહીને હવે ગુરૂની પરોક્ષનો અપહાર કહે છે-सिया० ઇત્યાદિ

वाले वाल चने आदिका वना हुआ तुष आदि जिसमें वहुत हों ऐसे (तथा) विरसं=लवणादि रस सहित अशनादिको आहरे=उपाश्रयमें लावे ॥३३॥

टीका—स्यात्=कदाचित् एककः=कश्चित् रसलोलुपी विविधं पान-भोजनं लब्ध्वा भिक्षाचर्यायामेव यत्र-कुत्रचिदलक्षितप्रदेशे भद्रकं भद्रकम्=उत्कृष्टमुत्कृष्टं वहुविधान्नादिषु प्रशस्तं प्रशस्तमेव घृतपूराऽपूपादिकं भुक्त्वा विवर्णं=विकृतवर्णं वल्लचणकादिनिष्पन्नं तुषादिवहुलं विरसं=लवणादिरसवर्जितमन्नादिकम् आहरेत्= आनयेत् वसताविति शेषः ॥३३॥

एवं करणे किं प्रयोजनम्? इत्याह—'जाणंतु' इत्यादि।

मूलम्—जाणंतु^12 ता^1 इमे^2 समणा^3, आययट्ठी^6 अयं^4 मुणी^5
संतुट्ठो^7 सेवई^11 पंतं^10, लूहवित्ती^8 सुतोसओ^9 ॥३४॥

छाया—जानन्तु तावत् इमे श्रमणाः आत्मार्थी अयं मुनिः।
सन्तुष्टः सेवते प्रान्तं, रूक्षवृत्तिः सुतोषकः ॥ ३४ ॥

वह ऐसा क्यों करता है? इसमें कारण कहते हैं—

सान्वयार्थः—ता=प्रथम इमे=ये-उपाश्रयमें रहे हुए दूसरे समणा=साधु (मुझे इस प्रकार) जाणंतु=जानें कि अय=यह मुणी=साधु आययट्ठी=मोक्षार्थी-आत्मार्थी है, संतुट्ठो=जैसा मिला उसीमें सन्तोष करनेवाला लूहवित्ती=सरस स्निग्धादि आहारकी अभिलाषारहित सुतोसओ=थोड़े आहारसे भी संतोषी है और पंतं=वासी-कुसी तथा निस्सार अन्नादिका सेवई=सेवन करता है ॥३४॥

कदाचित् कोई रसलोलुपी साधु विविध प्रकारका पान-भोजन पाकर अच्छा-अच्छा भोजन भिक्षाचरीमें ही किसी एकान्त स्थानमें खावे, और वाल चणक आदि अन्त-प्रान्त तथा विना नमक मसालेका ठंढा आहार उपाश्रयमें ले आवे ॥ ३३ ॥

ऐसा करनेका प्रयोजन कहते हैं—'जाणंतु' इत्यादि।

કદાચિત્ કોઈ રસલોલુપી સાધુ વિવિધ પ્રકારના પાન-ભોજન મેળવીને સારૂ-સારૂં ભોજન ભિક્ષાચરીમા જ કોઈ એકાત સ્થાનમા ખાઈ લે અને વાલ ચણા આદિ અત-પ્રાત તથા મીઠા-મરચા વિનાનો નીરસ ઠંડો આહાર ઉપાશ્રયમાં લઈ આવે (૩૩)

એમ કરવાનું પ્રયોજન કહે છે—जाणंतु० ઇત્યાદિ.

टीका—तावत्=निश्चयेन इमे=मानसप्रत्यक्षविषयाः उपाश्रयस्थाः श्रमणाः= साधवः- 'अयं मुनिः आत्मार्थी=आत्महितार्थी सन्तुष्टः=यथालब्धसन्तोषी रूक्षवृत्तिः= सरसाऽनभिकाङ्क्षी सुतोषकः=अल्पेनापि परितोषशीलः प्रान्तं=पर्युषितं निस्सारं वाऽन्नादिकं सेवते' इति मां जानन्तु ॥ ३४ ॥

किमर्थं स्वदोषगोपनमाचरती ?-त्याह-'पूयणट्ठा' इत्यादि ।

मूलम्-पूयणट्ठा जसोकामी, माणसम्माणकामए ।
बहुं पसवई पावं, मायासल्लं च कुव्वइ ॥ ३५ ॥

छाया—पूजनार्थः यशःकामी, मानसम्मानकामुकः ।
बहु प्रसूते पाप, मायाशल्य च कुरुते ॥३५॥

उपर्युक्त साधु के दोष बताते हैं—

सान्वयार्थः-पूयणट्ठा=वस्त्र-पात्रादिसे सत्कार चाहनेवाला जसोकामी= अपने महत्त्व और प्रसिद्धिका इच्छुक माणसम्माणकामए=मान-सम्मानका अभिलाषी साधु बहुं=बहुत पावं=पाप-मोहनीयादि-को पसवई=पैदा करता है, च=और मायासल्लं=कपटरूप भावशल्यको कुव्वइ=उत्पन्न करता है। तात्पर्य यह है कि-हृदयमें खुचे हुए बाणके अग्रभागरूप द्रव्य-शल्यकी तरह हृदयमें रहा हुआ यह मायारूप भाव-शल्य मनुष्यको, अनन्त दुस्सह दुःखोंका कारणभूत चतुर्गतिक संसारमें घूमाता हुआ अविचलशान्तिमय सुखसे वञ्चित कर देता है ॥३५॥

ये उपाश्रयमें स्थित साधु मुझे ऐसा समझें कि-'यह साधु आत्मार्थी है, जैसा मिला उसीमें सन्तोषी है, सरस आहारकी आकांक्षा नहीं करता, थोड़े ही आहारसे सन्तुष्ट हो जाता है और साररहित ठंढा अन्त-प्रान्त आहारका सेवन करता है' ॥३४॥

अपना दोष छिपाता क्यों है? सो कहते हैं-'पूयणट्ठा' इत्यादि ।

આ ઉપાશ્રયમાં રહેલા સાધુ મને એવો માને કે-'આ સાધુ આત્માર્થી છે, જેવો આહાર મળ્યો તેમાં સંતોષ માનનારો છે, સરસ આહારની આકાંક્ષા કરતો નથી થોડા જ આહારથી સંતુષ્ટ થઈ જાય છે, અને સારરહિત ઠંડા અંત-પ્રાંત આહારનું સેવન કરે છે,' (૩૪)

પોતાના દોષ કેમ છુપાવે છે? તે કહે છે—पूयणट्ठा० ઇત્યાદિ

टीका—पूजनार्थः=पूजनं=वस्त्र-पात्रा-ऽन्न-पानादिना सत्कारः स एवार्थः=प्रयोजनं यस्य स तथोक्तः प्रशस्तवस्तूपभोगार्थीत्यर्थः, अत एव यशःकामी=यशः=स्वमहत्त्वप्रसिद्धिस्तत्कामयते=इच्छतीति 'अहो! अयमेव सः' इत्येवं प्रशंसावचनाभिलापीत्यर्थः, मानसम्मानकामुकः=मानश्च सम्मानश्चेति मान-सम्मानौ तयोः कामुक इति विग्रहः, तत्र मानः=अभ्युत्थानादिलक्षण आदरः, सम्मानः=गुणोत्कीर्त्तनेन गौरवप्रकटनम्, आदरगौरवाभिलाषुक इत्यर्थः। एवं कुर्वन् साधुः किं सम्पादयती? त्याह-बहु=प्रभूत पापं=दुष्कृत प्रसूते=जनयति, च=पुनः माया-शल्यं=माया=शाठ्येन मनोवाक्कायप्रवृत्तिः, सैव शल्यं=शल्यते=बाध्यते पीड्यते आत्माऽनेनेति विग्रहः, मायालक्षणं भावशल्यं कुरुते=उत्पादयति, हृदयनिखात-त्रुटितबाणाग्ररूपद्रव्यशल्यवदिदं मायारूपं भावशल्यं हृदयस्थित सत् निरन्तराऽनन्त-दुस्सहदुःखकारणीभवत् चतुर्गतिकसंसारे भ्रामयत् अविचलशान्तिसुखाद् दूर-तरीकरोति तादृशं साधुमिति भावः ॥३५॥

अच्छे-अच्छे वस्त्र पात्र अन्न पान आदिसे अपना सत्कार चाहनेवाला, प्रशस्त वस्तुओंके भोगका लोलुपी, 'अहो! यह वही है' ऐसे यशका अभिलाषी, मान (आनेपर खड़ा होजाना) तथा सम्मान (गुणगान द्वारा गौरव प्रगट करना) की इच्छावाला साधु बहुत पापोंको तथा कपटरूप मायाशल्यको उत्पन्न करता है। छातीमें चुभकर वहीं टूट जानेवाले द्रव्य-शल्य (तीरकी नोंक) की तरह हृदयमें स्थित मायारूप भाव-शल्य निरन्तर असीम व्यथाका कारण होता है, तथा चतुर्गति संसारमें इधर-उधर भटकाता हुआ अविचल शान्तिमय सुखसे उस साधुको वञ्चित (अलग) कर देता है ॥३५॥

સારા—સારા વસ્ત્ર-પાત્ર-અન્ન-પાન આદિથી પોતાનો સત્કાર ચાહનાર, પ્રશસ્ત વસ્તુઓનાભોગનો લોલુપી—'અહો ! એ આ જ છે' એવા યશનો અભિલાષી, માન (આવતા જ ઉભા થઈ જવું) તથા સમ્માન (ગુણગાનદ્વારા ગૌરવ પ્રકટ કરવું) ની ઇચ્છાવાળો સાધુ ઘણાં પાપોને તથા કપટરૂપ માયા-શલ્યને ઉત્પન્ન કરે છે છાતીમા પેસીને ત્યા જ તૂટી જનારા દ્રવ્ય-શલ્ય (તીરની અણી) ની પેઠે હૃદયમા રહેલુ માયારૂપ ભાવ-શલ્ય નિરંતર અસીમ વ્યથાનુ કારણ બને છે, તથા ચતુર્ગતિ સંસારમા અહીં-તહીં ભટકાતા અવિચલ શાન્તિમય સુખથી એ સાધુને વંચિત (રહિત) કરી નાખે છે (૩૫)

मद्यपानप्रतिषेधमाह-'सुरं वा' इत्यादि ।

५ ६ ७ ९ ८ १० ११ १२

मूलम्-सुरं वा, मेरगं वावि, अन्नं वा मज्जगं रसं ।

१३ १४ १५ १ ३ ४ २

ससक्खं न पिबे भिक्खू, जसं सारक्खमप्पणो ॥ ३६ ॥

छाया—सुरां वा मेरकं वाऽपि, अन्यद् वा माद्यक रसम् ।
ससाक्षि न पिवेद् भिक्षुः, यशः संरक्षन् आत्मनः ॥३६॥

अब मद्यपान का दोष बताते हैं—

सान्वयार्थः-भिक्खू=साधु अप्पणो=अपने जसं=संयमको सारक्खं= बचाता हुआ सुरं=गौड़ी, माध्वी और पैष्टी, इन तीनों प्रकारकी मदिराको वा= 'वा' शब्दसे अथवा बारहों प्रकारकी मदिराको वावि=तथा मेरगं=सरकेको अन्नं वा=और भी दूसरे प्रकारके मज्जगं=मदजनक भंग गांजा अफीम चरस आदि मादक रसं=रस-द्रव्य-को ससक्खं=केवली भगवान्‌की साक्षीसे अर्थात् उनका ज्ञान सर्वव्यापक होनेसे एकान्तमें भी न पिबे=नहीं पिये ॥ मदिराके बारह भेद इस प्रकार हैं-(१) महुआ, (२) फणस, (३) द्राख, (४) खजूर, (५) ताड (ताडी), (६) गन्ना=शेरडी, (७) धावड़ीके फूल, (८) मक्खियोंकी शहद, (९) कैठ (कठोती), (१०) मधु (अन्य प्रकारकी शहद), (११) नारियल, और (१२) पिष्ट (आटा), मदिरा इन बारह वस्तुओंसे बनती है ॥३६॥

टीका—भिक्षुः आत्मनः=स्वस्य यशः=संयमं संरक्षन् सुरां=मदिरां, सा च त्रिविधा-गौडी, माध्वी, पैष्टी चे'-ति । 'तत्र गौडी=गुडनिष्पादिता, माध्वी=मधु-(महुडा) संपादिता, पैष्टी=व्रीह्यादिपिष्टनिर्वृत्तेति । यद्वा 'पिट्ठेण सुरा होइ' इति

मद्य-पानका निषेध कहते हैं-'सुरं वा' इत्यादि ।

जो साधु अपने संयमकी रक्षा करना चाहते हैं उन्हें मदिरा या सिरका एकान्तमें भी कदापि न पीना चाहिए। मदिरा तीन प्रकारकी है (१) गौड़ी (२) माध्वी और (३) पैष्टी। गुड़से बनाई हुई गौडी, महुआसे बनाई हुई माध्वी तथा धान्य आदिके पिष्ट (आटे) से बनाई हुई पैष्टी कहलाती है। 'पिट्ठेण सुरा होइ' इस वचनसे यही जान पडता है कि-

---

મધપાનનો નિષેધ કહે છે-सुरं वा० ઇત્યાદિ

જે સાધુ પોતાના સયમની રક્ષા કરવા ઇચ્છે છે, તેણે મદિરા યા સરકો એકાતમાં પણ કદાપિ પીવો ન જોઇએ મદિરા ત્રણ પ્રકારની છે (૧) ગૌડી, (૨) માધ્વી, (૩) પૈષ્ટી ગોળમાથી બનાવેલી ગૌડી, મહુડાંમાથી બનાવેલી માધ્વી તથા ધાન્ય આદિના પિષ્ટ (આટા) માંથી બનાવેલી પૈષ્ટી કહેવાય છે.

वचनाद् व्रीह्यादिपिष्टनिर्वृत्तैव सुरेत्युच्यते। चन्द्रहासाभिधं मद्यमिति वा। मेरकं=सरकानामधेयं मद्यम्। अन्यद्वा माद्यकं=मदजनकं रसम्। मादकत्वेन द्वादशविधमद्यस्य तदितरस्य विजयादेश्च सर्वस्य संग्रहः, तदुक्तमितरत्र-मदहेतुद्रवद्रव्यं मद्यमित्यभिधीयते' इति। द्वादशविधमद्यानि यथा—

" माध्वीकं पानसं द्राक्षं, खार्जूरं तालमैक्षवम्।
मैरेयं माक्षिकं टाङ्कं, माधूकं नारिकेलजम्॥१॥
मुख्यमन्नविकारोत्थं, मद्यानि द्वादशैव च। " इति।

एतत्सर्वं सुरादिकं ससाक्षि न पिबेत्, साक्षिभिः केवल्यादिभिः सहेति ससाक्षि

धान्य आदिके आटेसे मदिरा बनती है। अथवा पैष्टी मदिरा 'चन्द्रहास' नामकी मदिरा समझनी चाहिए। इनके सिवाय भंग गाँजे आदि और कोई भी नशीली वस्तुका साधुको सेवन नहीं करना चाहिए जैसा कि कहा है—'मदके कारण-स्वरूप पिघले हुए पदार्थको मद्य कहते हैं।' मद्य बारह प्रकारके समझने चाहिएँ वे ये हैं—

"(१) महुआका, (२) पनसका, (३) दाखका, (४) खजूरका, (५) ताड़का (ताड़ी), (६) सांठेका, (७) मैरेय-धौ-धावड़ीके फूलका, (८) माक्षिक (मक्खियोंकी शहद) का, (९) टंक (कवीठ-कैथ) का, (१०) मधुका, (११) नारियलका और (१२) पिष्ट (आटे) का बना हुआ मद्य। ये मद्यके मुख्य भेद बारह हैं।"

इन सबको केवली भगवानकी साक्षीसे न पिये। केवल भगवानकी

पिट्ठेण सुरा होइ એ વચનથી એમ માલુમ પડે છે કે—ધાન્ય આદિના આટાથી મદિરા બને છે અથવા પૈષ્ટી મદિરા 'ચન્દ્રહાસ' નામની મદિરા સમજવી જોઈએ તે ઉપરાંત ભાંગ, ગાંજો, બીજી-બીજી કોઈ પણ કેફી વસ્તુનું સેવન સાધુ ન કરે, જેમકે કહ્યું છે કે—

'મદના કારણ સ્વરૂપ પીગળેલા પદાર્થને મદ્ય કહે છે' મદ્ય બાર પ્રકારના સમજવા, તે નીચે મુજબ—

"(૧) મહુડાનો, (૨) ફણસનો, (૩) દ્રાક્ષનો (૪) ખજૂરનો (૫) તાડનો (તાડી), (૬) શેરડીનો, (૭) મૈરેય-ધાવડીના ફૂલનો, (૮) માક્ષિક—મધનો, (૯) ટંક (કોઠા)નો, (૧૦) મધુનો, (૧૧) નારિએળનો, અને (૧૨) પિષ્ટ (આટા) નો બનેલો મદ્ય એમ મદ્યના મુખ્ય ભેદ બાર છે

એ બધાને કેવળી ભગવાનની સાક્ષીએ પીએ નહિ. કેવળી ભગવાનની સાક્ષી

केवल्यादीनां साक्षित्वं कदापि कचिदपि प्रतिरोद्धुमशक्यं, तेषां सर्वज्ञत्वात्सर्वदर्शित्वाच्च, तेन एकान्तेऽपि न पिबेदित्यर्थः ॥३६॥

७ २ १ ३ ४ ५ ६

मूलम्-पियए एगओ तेणो, न मे कोई वियाणइ ।

८ १० ९ १२ ११ १४ १३

तस्स पस्सह दोसाइं, नियडिं च सुणेह मे ॥ ३७ ॥

छाया—पिबति एककः स्तेनः, न मे कोऽपि विजानाति ।

तस्य पश्यत दोषान्, निकृतिं च शृणुत मे ॥३७॥

सान्वयार्थः-तेणो=जो भगवानकी आज्ञाके विना ग्रहण करनेवाला होनेके कारण चोर साधु एगओ=अकेला, एकान्तमें रहा हुआ अर्थात् अपने सहचर धर्मको भी छोड़ा हुआ, 'मे=मेरे-इस मदिरापान-को या मुझे कोई=कोईभी न वियाणइ=नहीं जानता है' (ऐसा समझ कर) पियए=मदिरा पीता है, तस्स= उस साधुके दोसाइं=संयममें मलिनता पैदा करनेवाले दोषोंको पस्सह=देखो, च=और नियडिं=एक कपटको छिपानेके लिए किये जानेवाले दूसरे कपटको मे=मेरेसे सुणेह=सुनो ॥३७॥

टीका—'पियए' इत्यादि । यः स्तेनः तीर्थङ्करानादिष्टत्वेनाऽदत्ताऽऽदायित्वाच्चौरः, एककः=एकान्तस्थितः आत्मसहचरं धर्ममपि विहाय वर्त्तमानः सन् 'न मे=न मां, न मम सुरादिपानं वा कोऽपि विजानाति' इति मत्वा पिबति=गलविलाधःसंयोगानुकूलव्यापारविषयं करोति सुरादिकमिति शेषः, तस्य=द्रव्यलि-

---

साक्षी कभी कहीं नहीं रुक सकती, क्योंकि वे सर्वदर्शी हैं, अतः तात्पर्य यह हुआ कि एकान्तमें भी मद्य न पिये ॥ ३६ ॥

'पियए' इत्यादि । हे शिष्य ! भगवान् तीर्थङ्करकी आज्ञाके विना ग्रहण करनेवाला, अत एव चोर, आत्माके सहचर धर्मको भी त्याग कर एकान्तमें स्थित होकर ऐसा समझता है कि-'मुझे या मेरे मदिरा-पानको कोई नहीं जानता' ऐसा जानकर मदिरा-पान करता है, उस द्रव्यलिंगी

કદાપિ ક્યાંય રોકાતી નથી, કારણ કે તે સર્વદર્શી છે, એટલે તાત્પર્ય એ છે કે એકાંતમાં પણ મદ્ય પીવો નહિ (૩૬)

पियए० ઇત્યાદિ હે શિષ્ય ! ભગવાન્ તીર્થંકરની આજ્ઞા વિના ગ્રહણ કરનાર એટલે ચોર, આત્માના સહચર ધર્મને પણ ત્યાગીને એકાંતમાં સ્થિત થઈને એમ સમજે છે કે-'મારા આ મદિરાપાનને કોઇ જાણતું નથી' એમ સમજીને જે મદિરાપાન કરે છે તે દ્રવ્યલિંગી સાધુના સંયમને દૂષિત કરનારી ચેષ્ટાઓ

ङ्गिनः साधोः दोषान्=संयममालिन्यकारिचेष्टाविशेषान् पश्यत=ज्ञानविषयीकुरु च=पुनः निकृतिं=पूर्वकृतकपटावरणाय कपटान्तरकरणलक्षणां मायां, प्रथमकं सुरापानं, द्वितीयमनृतभाषणेन तत्संगोपनमिति भावः, मे=मम निरूपयतः सकाशा शृणुत=श्रवणगोचरीकुरुत । गुरुः शिष्यानामन्त्र्य कथयतीति भावः ॥३७॥

पूर्वप्रतिज्ञातदोषानुपदर्शयति–'वड्ढई' इत्यादि ।

१३ ४ १ ६ ७ ५ २

मूलम्–वड्ढई सुंडिया तस्स, माया मोसं च भिक्खुणो ।

९ ८ १० ३ ११ १२

अयसो य अनिव्वाणं, सययं च असाहुया ॥ ३८ ॥

छाया—वर्द्धते शौण्डिका तस्य, माया मृषा च भिक्षोः ।

अयशश्च अनिर्वाणं, सततं च असाधुता ॥३८॥

सान्वयार्थः–तस्स=उस मदिरा पीनेवाले भिक्खुणो=साधुकी सुंडिया मद्यपान संबन्धी आसक्ति माया=कपट च=और मोसं=झूठ अयसो=अपकीर्ति य=तथा अनिव्वाणं=अतृप्ति, ये सब दोष सययं=निरन्तर वड्ढइ=बढते रहते हैं च=और (आखिर उसके) असाहुया=असाधुता हो जाती है, अर्थात् वह असाधुपनको प्राप्त हो जाता है, यानी चारित्रसे भ्रष्ट हो जाता है ॥३८॥

टीका–तस्य=सुरापायिनः भिक्षोः=साधोः सततं=निरन्तरं शौण्डिका=मद्यपानविषयासक्तिः, च=पुनः, माया=निकृतिः, मृषा=असत्यभाषणम् , यद्वा 'माया-

---

साधुके संयमको दूषित करनेवाली चेष्टाओं (दोषों) को तो देखो ! एक तो मदिरापानका मायाचार, फिर उसे छुपानेके लिए दूसरे अनेक मायाचार और मृषावाद आदिका सेवन किया जाता है सो मुझसे सुनो, अर्थात् गुरुमहाराज शिष्यको आमन्त्रित करके कथन करते हैं॥ ३७॥

पूर्वप्रतिज्ञात दोष कहते हैं–'वड्ढई' इत्यादि ।

मदिरापान करनेवाला साधु सदा मदिरा पीनेमें ही मग्न रहता है। वह मायाचार करता है, मृषा बोलता है, अथवा कपट–सहित झूठ

(દોષો)ને તો જુઓ ! એક તો મદિરાપાનનો માયાચાર, વળી તેને છુપાવવા માટે બીજા અનેક માયાચાર અને મૃષાવાદ આદિનું સેવન કરવામા આવે છે તે મારી પાસેથી સાંભળો–અર્થાત્ ગુરૂ મહારાજ શિષ્યને આમત્રિત કરીને કથન કરે છે. (૩૭)

પૂર્વપ્રતિજ્ઞાત દોષો કહે છે–વડ્ઢઇ૦ ઇત્યાદિ

મદિરાપાન કરનાર સાધુ સદા મદિરા પીવામા જ મગ્ન રહે છે તે માયાચાર કરે છે, મૃષા બોલે છે, અથવા કપટસહિત જૂઠું બોલે છે દુરાચારી હોવાને

मोसं' इत्येकं पदं तेन मायया सह मृषा मायामृषा=परप्रतारणपूर्वकमसत्यभाषणमित्यर्थः, च=पुनः, अयशः=असदृवृत्तत्वेनाऽपकीर्त्तिः, अनिर्वाणम्=अनुपशान्तिरतृप्तिः उत्तरोत्तरस्पृहावर्द्धनात्, च=तथा असाधुता=असंयतत्वं साधूचिताचारराहित्येन साधुपदाऽनर्हत्वमित्यर्थः, वर्द्धते=वृद्धिं गच्छति ।

'सुंडिया' इत्यनेन मद्यपायिनो मद्यासक्तिरपरिहार्या भवतीति सूचितम् । मद्यासक्तौ सत्यां माया मृषा च कदापि तं न विजहाति, मायामृषावृद्धौ स्वपरपक्षे निन्दाऽवश्यम्भाविनी, निन्दायामपि सत्यां मद्यपानासक्तस्याऽनिर्वृतिः साहचर्यं न मुञ्चति, तथा सति सर्वथा साधुपदानधिकारित्वमुपजायतेऽतः सर्वानर्थमूलं मद्यपानमिति बोध्यम् ॥३८॥

बोलता है । दुराचारी होनेके कारण उसकी अपकीर्त्ति फैल जाती है । उसकी लोलुपता अधिकाधिक बढती चली जाती है-उसे कभी तृप्ति नहीं होती । तथा मुनिके योग्य आचरणसे हीन होनेके कारण वह साधु कहलाने योग्य नहीं रहता, अतः उसकी असाधुता बढती है ।

'सुंडिया' पदसे यह सूचित किया है कि शराबीकी शराब पीनेकी आदत छूटनी कठिन होती है । मदिरामें आसक्ति होने पर माया-मृषा मदिरापायीका पीछा नहीं छोड़ती, अर्थात् वह माया-मृषा दोषोंमें तत्पर रहता है । माया और मृषाकी वृद्धि होनेपर स्वपक्ष परपक्षमें निश्चय ही निन्दा होती है और निन्दा होनेपर भी मदिरा पानमें मस्त होकर मदिरा-पान नहीं त्यागता । ऐसी अवस्थामें वह साधु कहलाने योग्य बिलकुल ही नहीं रहता ॥ ३८ ॥

કારણે તેની અપકીર્તિ ફેલાઇ જાય છે, એની લોલુપતા અધિકાધિક વધતી જાય છે, તેથી કદાપિ તૃપ્તિ થતી નથી. મુનિને યોગ્ય આચરણથી હીન હોવાને કારણે એ સાધુ કહેવાવાને યોગ્ય નથી રહેતો, એટલે એની અસાધુતા વધે છે.

'सुंडिया' શબ્દથી એમ સૂચિત કર્યુ છે કે શરાબીની શરાબ પીવાની આદત છૂટવી કઠિન હોય છે મદિરામા આસકિત થતાં માયા-મૃષા મદિરાપાન કરનારને પીછો છોડતી નથી, અર્થાત્ એ માયા-મૃષા દોષોમા તત્પર રહે છે માયા અને મૃષાની વૃદ્ધિ થતા સ્વ-પક્ષ પર-પક્ષમા જરૂર નિંદા થાય છે, અને નિંદા થતાં છતાં પણ મદિરાપાનમા મસ્ત થઇને તે મદિરાપાન ત્યાગતો નથી એવી અવસ્થામા તે જરાએ સાધુ કહેવાવાને યોગ્ય રહેતો નથી (૩૮)

उक्तमेवार्थं प्रकारान्तरेण द्रढयति-'निच्चुव्विग्गो' इत्यादि ।

मूलम्-निच्चुव्विग्गो जहा तेणो, अत्तकम्मेहिं दुम्मई ।
तारिसो मरणंतेऽपि, नाराहेइ संवरं ॥ ३९ ॥

छाया—नित्योद्विग्नः यथा स्तेनः, आत्मकर्मभिर्दुर्मतिः ।
तादृशः मरणान्तेऽपि, न आराधयति संवरम् ॥ ३९ ॥

सान्वयार्थः-जहा=जिस प्रकार तेणो=चोर अत्तकम्मेहिं=अपने किये हुए दुश्चरित्रोंसे निच्चुव्विग्गो=हमेशा व्याकुल बना रहता है, उसी तरह तारिसो=मदिरा पीनेवाला वह दुम्मई=दुर्बुद्धि साधु भी नित्य उद्विग्न बना रहता है, फिर वह मरणंतेवि=मरण समय तक भी संवरं=संवरधर्म-चारित्रको नाराहेइ=नहीं आराध सकता है, अर्थात् वह साधु जिन्दगीभर चारित्रसे वञ्चित रहता है ॥३९॥

टीका—यथा स्तेनः=तस्करः आत्मकर्मभिः=स्वकीयदुश्चरितैः नित्योद्विग्नः=सदा व्याकुलः चित्तोपशान्तिरहितो भवति, तादृशः=स्तेनसदृशः, यथा चौरः-'मदीयमिदं दुश्चरितं कोऽपि मा विद्यात्, अन्यथा राजगृहीतस्य मम प्राणाद्यपहारो भवे'-दिति चिन्तया कदाचिदपि चेतसि नोपशान्तिं गच्छति, तथा मद्यसेवी साधुरपि स्वकीये दुश्चरिते प्रकटिते सति पूजाप्रतिष्ठादिप्रतिघातशङ्कया स्वकृत-

---

इसी विषयको दूसरी तरहसे कहते हैं-'निच्चुव्विग्गो' इत्यादि ।

जैसे चोर अपने कुकर्मोंके कारण सदा व्याकुल बना रहता है अर्थात् उसे सदा यही भय बना रहता है कि मेरे कुकर्मको कोई जान न ले, नहीं तो राजा मुझे पकड़ लेगा और प्राणोंसे हाथ धोना पड़ेगा। इस प्रकारकी चिन्तासे चोरके चित्तमें सदा धुक-धुकी (खल-बली) मची रहती है। उसी प्रकार मदिरा-पान करनेवाले मुनिके मनमें हमेशा असमाधि रहती है कि-कहीं मेरा मदिरा-पानका दुराचार प्रगट न हो जाय, नहीं तो मान सम्मान सब मिट जायगा। इस प्रकारकी आशंकासे वह

એ વિષયને બીજી રીતે કહે છે-निच्चुव्विग्गो० ઇત્યાદિ.

જેમ ચોર પોતાના કુકર્મોને કારણે સદા વ્યાકુળ રહ્યા કરે છે, અર્થાત તેને સદા એવો ભય રહે છે કે મારા કુકર્મને કોઇ જાણી ન લે, નહિ તો રાજા મને પકડી લેશે અને પ્રાણ ગુમાવવા પડશે એ પ્રકારની ચિંતાથી ચોરના ચિત્તમાં સદા ખળભળાટ મચ્યા કરે છે એજ રીતે મદિરાપાન કરનાર મુનિના મનમાં હમેશાં અસમાધિ રહે છે કે-ક્યાંક મારો મદિરાપાનનો દુરાચાર પ્રકટ ન થઇ જાય, નહિ તો માન સન્માન બધું નાશ પામશે એ પ્રકારની આશંકાથી તે

दुष्कृतसंगोपनाय नवनवमायामृषाकल्पितवचनरचनादिनानाप्रकारकोपायमनुसंदधानो न जातु संयमसमाधिमधिगच्छतीति भावः । दुर्मतिः=विपर्यस्तबुद्धिः साधुः, मरणान्तेऽपि मरणावधिसमयेऽपि संवरं=सर्वसावद्यविरतिलक्षणं चारित्रं कदापि नाराधयति=न निष्पादयति, चारित्रसाधकशुद्धपरिणामाभावात् ।

'निच्चुव्विग्गो' इत्यनेन पापात्मना नित्यशङ्कितत्वं सूचितम् । 'दुम्मई'-पदेन व्यसनिनां मतिमालिन्यमवश्यम्भावीत्याविष्कृतम् ॥ ३९ ॥

मूलम्-आयरिए नाराहेइ समणे आवि तारिसो ।
गिहत्था वि णं गरिहंति, जेण जाणंति तारिसं ॥ ४० ॥

छाया—आचार्यान् नाराधयति, श्रमणांश्चापि तादृशः ।
गृहस्था अपि तं गर्हन्ते, येन जानन्ति तादृशम् ॥४०॥

सान्वयार्थः-तारिसो=उस-पूर्वोक्त-प्रकारका दुराचारी साधु आयरिए=रत्नाधिकोंको अवि य=तथा समणे=साधुओंको भी नाराहेइ=विनय वैयावच्च आदिसे नहीं आराध सकता है, जेण=जिस कारणसे गिहत्था वि=गृहस्थ भी णं=

अपने किये हुए दुराचारको छिपानेके लिए मायाचार और असत्य आदिके नये-नये उपाय सोचा करता है। उसकी संयम सम्बन्धी समाधि किसी प्रकार भी नहीं रहती। ऐसा दुर्बुद्धि साधु मृत्युकी अवधिके समय भी सर्वसावद्ययोगके त्यागरूप संवर की आराधना नहीं करता, क्योंकि उसके वैसे विशुद्ध भाव नहीं होते।

'निच्चुव्विग्गो' इससे ऐसा सूचित किया है कि पापी सदा सशंक रहता है। 'दुम्मई' पदसे यह प्रगट किया है कि कुव्यसनीकी मतिमें मलिनता अवश्य आजाती है ॥ ३९ ॥

પોતાના દુરાચારને છુપાવવાને માયાચાર અને અસત્ય આદિના નવા નવા ઉપાયો વિચાર્યા કરે છે એની સંયમ સંબંધી સમાધિ કોઈ પ્રકારે રહેતી નથી. એવો દુર્બુદ્ધિ સાધુ મૃત્યુની અવધિના સમયે પણ સર્વસાવદ્યયોગના ત્યાગરૂપ સંવરની આરાધના કરતો નથી, કારણ કે તેના એવા વિશુદ્ધ ભાવ થતા નથી.

निच्चुव्विग्गो શબ્દથી એમ સૂચિત કરવામાં આવ્યું છે કે પાપી સદા સશંક રહે છે. दुम्मई શબ્દથી એમ પ્રકટ કર્યું છે કે દુર્વ્યસનીની મતિમા મલિનતા અવશ્ય આવે છે (૩૯)

उसे तारिसं=उस प्रकारका अर्थात् मद्य पीनेवाला जाणंति=जानलेते हैं (अतः वे उसकी) गरिहंति=निन्दा करते हैं ॥४०॥

टीका—'आयरिए' इत्यादि । तादृशः=पुरोदीरितदुराचारशीलः साधुः आचार्यान् अपिच श्रमणान्=रत्नाधिकान् साधून् नाराधयति कलुषितान्तः-करणत्वादिति भावः, येन हेतुना गृहस्था अपि तादृशं=तथाविधं दुराचारिणं जानन्ति तेन हेतुना णं=तं साधुं गर्हन्ते=निन्दन्ति, स सकलजननिन्दनीयो भवतीति सूत्रार्थः ॥ ४० ॥

अकृत्यसेविदोषानुपसंहरन्नाह—'एवं तु' इत्यादि ।

मूलम्—एवं तु अगुणप्पेही, गुणाणं च विवज्जए ।
तारिसो मरणंतेवि, नाराहेइ संवरं ॥ ४१ ॥

छाया—एवं तु अगुणप्रेक्षी, गुणानां च विवर्जकः ।
तादृशः मरणान्तेऽपि, नाराधयति संवरम् ॥४१॥

सान्वयार्थः—एवं तु=इस प्रकार अगुणप्पेही=प्रमादादि दोषोंको ग्रहण करनेवाला च=और गुणाणं=ज्ञानादि गुणोंका विवज्जए=त्यागी तारिसो=उस प्रकारका साधु मरणंतेवि=मरणकालमें भी संवरं=संवर-चारित्र-की नाराहेइ=आराधना नहीं कर सकता ॥४१॥

टीका—एवम्=उक्तरीत्या तु अगुणप्रेक्षी=दोषदर्शी प्रमादादिदोषनिरत

'आयरिए' इत्यादि। ऐसा दुराचारी साधु आचार्य तथा रत्नाधिक श्रमणकी भी आराधना नहीं करता, क्योंकि उसका अन्तःकरण कलुषित होजाता है, जिससे कि गृहस्थ भी उस साधुको पहचान लेते हैं और उसकी निन्दा करते हैं। तात्पर्य यह है कि ऐसा साधु सबका निन्दनीय बन जाता है ॥ ४० ॥

'एव तु' इत्यादि । प्रमाद आदि दोषोंमें लीन, सम्यग्ज्ञान-दर्शन-

---

आयरिए० ઇત્યાદિ. એવો દુરાચારી સાધુ આચાર્ય તથા રત્નાધિક શ્રમણની પણ આરાધના કરતો નથી, કારણ કે એનું અંતઃકરણ કલુષિત થઈ જાય છે, જેથી ગૃહસ્થ પણ એ સાધુને પિછાણી લે છે અને એની નિંદા કરે છે. તાત્પર્ય એ છે કે એવો સાધુ સૌને નિંદનીય બની જાય છે. (૪૦)

एवं तु० ઇત્યાદિ પ્રમાદ આદિ દોષોમાં લીન, સમ્યગ્જ્ઞાન-દર્શન-ચારિત્ર

इत्यर्थः, गुणानां च=ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणानां क्षान्त्यादीनां वा विवर्जकः=परित्याजकः गुणाऽनाराधक इत्यर्थः, तादृशो मरणान्तेऽपि संवरं नाराधयतीति व्याख्यातपूर्वं सुगमं चेति ॥ ४१ ॥

पूर्वोक्तदोषपरित्यागिनो गुणानाह-'तवं' इत्यादि ।

मूलम्-तवं कुव्वइ मेहावी, पणीयं वज्जए रसं ।
मज्जप्पमायविरओ, तवस्सी अइउक्कसो ॥ ४२ ॥

छाया—तपः कुरुते मेधावी, प्रणीतं वर्जयति रसम् ।
मद्यप्रमादविरतः, तपस्वी अत्युत्कर्षः ॥४२॥

सान्वयार्थः-मज्जप्पमायविरओ=जो मद्य और प्रमादसे रहित तवस्सी=तपस्वी साधु मेहावी=आगमोक्त मर्यादामें चलनेवाला अइउक्कसो=घमंड नहीं करता हुआ तवं=तपस्या कुव्वइ=करता है, (और) पणीयं=स्निग्ध रसं=रसवाले पदार्थ घी दूध घेवर आदिको वज्जए=त्यागता है ॥४२॥

टीका—यः तपस्वी=साधुः मद्यप्रमादविरतः=मादयति=विवेकविकलीकरोत्यात्मानमिति मद्यं=मादकद्रव्य, तदेव प्रमादजनकत्वात्प्रमाद इति मद्यप्रमादस्तस्माद्विरतस्तद्वर्जक इत्यर्थः, मेधावी=आगमोक्तविध्यनुस्मरणशीलः संयममर्यादाऽवस्थित इत्यर्थः, अत्युत्कर्षः=उत्कर्षः='अहं तपस्वी'-त्याद्यभिमानस्तमतिक्रम्य=उल्लङ्घ्य=परित्यज्य वर्त्तत इति अत्युत्कर्षः, तपःप्रधानगुणाभिमानशून्यः सन् तपः=

चारित्र तथा क्षान्ति आदि गुणोंका त्याग करनेवाला ऐसा साधु मृत्यु-समय भी संवरकी आराधना नहीं करता ॥ ४१ ॥

पूर्वोक्त दोषोंके त्यागीके गुण कहते हैं-' तवं ' इत्यादि ।

जो तपस्वी साधु आत्माको विवेक-विकल बनानेवाले शराबसे विरत रहते हैं, प्रवचन-प्रतिपादित संयम-मर्यादामें स्थित हैं, ' सबसे बड़ा तपस्वी मैं ही हूँ ' ऐसा तपका दर्प (अभिमान) नहीं करते हुए चतुर्थ

તથા ક્ષાન્તિ આદિ ગુણોનો ત્યાગ કરનાર એવો સાધુ મૃત્યુ સમયે પણ સંવરની આરાધના કરતો નથી (૪૧)

પૂર્વોક્ત દોષોના ત્યાગીના ગુણ કહે છે-તવં૦ ઇત્યાદિ

જે તપસ્વી સાધુ આત્માને વિવેકવિકળ બનાવનાર શરાબથી વિરત રહે છે, તે પ્રવચન-પ્રતિપાદિત સંયમમર્યાદામાં સ્થિત રહે છે, 'સૌથી મોટો તપસ્વી હું છું' એવો તપનો દર્પ (અભિમાન) ન કરતાં ચતુર્થભક્ત આદિ તપ કરે છે,

चतुर्थभक्तादिकं करोति पुनरपि प्रणीतं=गलत्स्नेहबिन्दुकं गूढस्नेहं वा भोज्यं, स्नेहावगाढं कृशरादि, गूढस्नेहं घृतपूरादिकं, रसं=घृतदुग्धादिकं वर्जयति=परित्यजति ॥४२॥

मूलम्-तस्स पस्सह कल्लाणं, अणेगसाहुपूइयं ।
विउलं अत्थसंजुत्तं, कित्तइस्सं सुणेह मे ॥ ४३ ॥

छाया—तस्य पश्यत कल्याणम् , अनेकसाधुपूजितम् ।
विपुलार्थसंयुक्तं, कीर्त्तयिष्यामि शृणुत मे ॥४३॥

सान्वयार्थः-तस्स=उस साधुके अणेगसाहुपूइयं=अनेक मुनियोंके वन्दनीय विउलं=मुक्तिपदका साधक होनेसे महान् अत्थसंजुत्तं=मोक्षरूप अर्थ-प्रयोजनसे युक्त ऐसे कल्लाणं=कल्याण-संयम-को पस्सह=देखो, (और मैं उसके गुणोंका) कित्तइस्सं=वर्णन करूंगा, (तुम) मे=मुझसे सुणेह=सुनो ॥४३॥

टीका—'तस्स' इत्यादि । तस्य=उक्तगुणवतः साधोः अनेकसाधुपूजितं=मुनिवृन्दवन्दितं विपुलं=महत् मुक्तिपदसाधकत्वात् , अर्थसंयुक्तम्=अर्थः=मुमुक्षूणां प्रयोजनं मोक्षलक्षणं तेन संयुक्तं=संवलितं तत्फलदातृत्वात् , कल्याणं=नितान्तसुखावहत्वात्संयमं पश्यत=अवलोकयत भोशिष्याः ! इति शेषः । कीर्त्तयिष्यामि=तद्गुणान् वर्णयिष्यामि मे=मम सकाशात् शृणुत=आकर्णयत ॥४३॥

भक्त आदि तप करते हैं, तथा घेवर आदि प्रणीत भोजनको और घी-दूध आदि पुष्टिकर रसोंको त्याग देते हैं ॥ ४२ ॥

'तस्स' इत्यादि । हे शिष्य ! उस उक्तगुणविशिष्ट साधुके अनेक-मुनि-समूहसे प्रशंसित, मुक्तिपदका साधक होनेसे महान्, मोक्षरूपी अर्थसे युक्त, अनन्त सुखदाता कल्याण अर्थात् संयमको देखो । मैं उसके गुणोंका वर्णन करूंगा, तुम मुझसे सुनो ॥ ४३ ॥

તથા ઘેવર આદિ પ્રણીત ભોજનને અને ઘી દૂધ આદિ પુષ્ટિકારક રસોને ત્યાગે છે. (૪૨)

તસ્સ૦ ઇત્યાદિ હે શિષ્ય ! ઉક્તગુણવિશિષ્ટ એવા સાધુના અનેક-મુનિ-સમૂહથી પ્રશંસિત, મુક્તિપદનો સાધક થવાથી મહાન્, મોક્ષરૂપી અર્થથી યુક્ત, અનંતસુખદાતા કલ્યાણ અર્થાત્ સંયમને જુઓ. હું એના ગુણોનું વર્ણન કરીશ, તે તમે સાંભળો. (૪૩)

मूलम्-एवं तु गुणप्पेही, अगुणाणं च विवज्जए।
तारिसो मरणंतेवि, आराहेइ संवरं ॥ ४४ ॥

छाया—एवं तु गुणप्रेक्षी, अगुणानां च विवर्जकः।
तादृशः मरणान्तेऽपि आराधयति संवरम् ॥४४॥

सान्वयार्थः-एवं तु=इस प्रकार गुणप्पेही=ज्ञानादि गुणोंके ग्रहण करनेमें तत्पर च=और अगुणाणं=प्रमादादि दोषोंका विवज्जए=त्यागी तारिसो=इस प्रकारका साधु मरणंतेवि=मरणान्त-समयमें अवश्य, अथवा मरणान्त कष्ट पड़नेपर भी संवरं=चारित्रको आराहेइ=आराधता है-नहीं छोड़ता है ॥४४॥

टीका—'एवं तु' इत्यादि। एवं तु गुणप्रेक्षी=गुणदर्शी ज्ञानादिगुणोपार्जनदत्तचित्त इत्यर्थः, अगुणानां च=प्रमादादिदोषाणां विवर्जकः=परित्यजनशीलः तादृशः =तथाविधःसाधुर्मरणान्ते=मरणसमये अपि=निश्चयेन संवरं=चारित्रम् आराधयति= सेवते। यद्वा मरणान्तेऽपि=मरणसमक्लेशोपस्थितावपि संवरमाराधयति न परित्यजतीत्यर्थः ॥४४॥

मूलम्-आयरिए आराहेइ, समणे यावि तारिसो।
गिहत्था वि णं पूयंति, जेण जाणंति तारिसं ॥ ४५ ॥

छाया—आचार्यान् आराधयति, श्रमणान् अपि च तादृशः।
गृहस्था अपि तं पूजयन्ति, येन जानन्ति तादृशम् ॥ ४५ ॥

सान्वयार्थः-तारिसो=पूर्वोक्त गुणवाला साधु आयरिए=आचार्यादिकोंकी अवि य=और समणे=साधुओंकी भी आराहेइ=आराधना करता है, जेण=जिस

'एवं तु' इत्यादि। इस प्रकार ज्ञानादि-गुणोंके उपार्जनमें लीन, प्रमाद आदि अवगुणोंके त्यागी ऐसे साधु मृत्यु समयमें अवश्य संवर= चारित्र-धर्मकी आराधना करते हैं। अथवा मृत्युके समान कष्ट उपस्थित होनेपर भी वे संवरकी आराधना करते हैं, अर्थात् उस समय भी वे संवरका त्याग नहीं करते ॥४४॥

एवं तु० ઇત્યાદિ એ રીતે જ્ઞાનાદિ-ગુણોના ઉપાર્જનમાં લીન, પ્રમાદ આદિ અવગુણોના ત્યાગી એવા સાધુઓ મૃત્યુ સમયે અવશ્ય સંવર=ચારિત્ર ધર્મની આરાધના કરે છે અથવા મૃત્યુસમાન કષ્ટ ઉપસ્થિત થતા પણ તેઓ સંવરની આરાધના કરે છે, અર્થાત્ એ સમયે પણ તેઓ સંવરનો ત્યાગ કરતા નથી. (૪૪)

कारणसे गिहत्थावि=गृहस्थ भी णं=उसे तारिसं-उस प्रकारका जाणंति=जानते हैं, (अतः उसका) पूयंति=वस्त्र पात्रादिसे सम्मान करते हैं, तथा साधु भी उसकी प्रशंसा करते हैं ॥४५॥

टीका—'आयरिए' इत्यादि। तादृशः=उक्तगुणविशिष्टः साधुः आचार्यान् श्रमणाँश्चाप्याराधयति=स्वकीयसंयमोत्कर्षेणाऽऽचार्यादीन् प्रसादयतीत्यर्थः, येन हेतुना गृहस्थाः तं=साधुं तादृशं=तथाविधं जानन्ति तेन कारणेन पूजयन्ति=वस्त्रपात्रादिपुरस्कारेण मानयन्ति। 'अपि' शब्देन न केवलं गृहस्थाः किन्तु साधवोऽपि पूजयन्ति=प्रशंसन्तीति सूत्रार्थः ॥४५॥

मूलम्–तवतेणे[३] वयतेणे[४], रूवतेणे[६] य[५] जे[१] नरे[२]।
आयारभावतेणे[८] य, कुव्वई[७] देवकिव्विसं[१०] ॥ ४६ ॥

छाया—तपःस्तेनो वचःस्तेनो, रूपस्तेनश्च यो नरः।
आचारभावस्तेनश्च, कुरुते देवकिल्बिषम् ॥४६॥

सान्वयार्थः–जे=जो नरे=साधु तवतेणे=तपस्याका चोर-दूसरेकी तपस्याका अपनेमें आरोप करनेवाला, वयतेणे=वचनका चोर-दूसरेके व्याख्यानका अपनेमें आरोप करनेवाला, य=तथा रूवतेणे=रूपका चोर-दूसरेके रूपका अपनेमें आरोप करनेवाला, य=और आयारभावतेणे=आचारका चोर–दूसरेके ज्ञानादि आचारोंका अपनेमें आरोप करनेवाला, भावका चोर=जीवादि पदार्थोंका जानकार नहीं होने पर भी अपनेको जानकार बतानेवाला होता है, वह देवकिव्विसं=

'आयरिए' इत्यादि। ऐसे साधु आचार्योंकी तथा श्रमणोंकी आराधना करते हैं, अर्थात् आचार्यादिकोंको अपने संयमकी उत्कृष्टतासे प्रसन्न करते हैं, जिससे गृहस्थ भी उन्हें वैसाही उत्कृष्ट समझते और सन्मान करते हैं। केवल गृहस्थ ही उनका सन्मान नहीं करते किन्तु साधु भी उनकी प्रशंसा करता हैं ॥४५॥

आयरिए ઇત્યાદિ એવા સાધુઓ, આચાર્યોની તથા શ્રમણોની આરાધના કરે છે, અર્થાત્ આચાર્યાદિકને પોતાના સંયમની ઉત્કૃષ્ટતાથી પ્રસન્ન કરે છે, જેથી ગૃહસ્થો પણ તેમને એવા જ ઉત્કૃષ્ટ સમજે છે અને તેમનું સન્માન કરે છે કેવળ ગૃહસ્થો જ એમનું સન્માન નથી કરતા, પરન્તુ સાધુઓ પણ એમની પ્રશંસા કરે છે (૪૫)

किल्बिष नामके देवभवको कुव्वई=करता है, अर्थात् देवलोकमें किल्बिषिक देवपने उत्पन्न होता है ॥४६॥

टीका—'तवतेणे' इत्यादि। [१] यो नरः=यः साधुः तपःस्तेनः—तपश्चौरः, अत्र चौर्यं परकीयतपसोऽनुकरणं स्वपूजाद्यर्थं स्वस्मिन्नारोपणम्। स च तपःस्तेनस्त्रिविधो यथा—स्वयमतपस्वी कश्चित्साधुः केनचित् 'तपस्वी भवान्?' इति पृष्टः सन् 'अहमस्मि तपस्वी'—त्यर्थसूचकः प्रथमः (१)। द्वितीयो विनैव तपसा स्वभावाद् रोगादिकारणान्तरवशाद्वा कृशशरीरः साधुः केनचित् 'किं भवानेव श्रुतपूर्वस्तपस्वी?' इति पृष्टः सन् 'साधवस्तपस्विन एव भवन्ति किमनेन प्रश्नेन?' इत्युत्तरदः (२)।

'तवतेणे' इत्यादि। जो साधु तपके चोर, वचनके चोर, रूपके चोर अथवा आचारके चोर और भावके चोर होते हैं वे देवोंमें उत्पन्न होकरके भी किल्बिष ही होते हैं॥

तात्पर्य यह है कि परकी तपस्याको अपनी प्रतिष्ठाके लिए अपनी बताना तपकी चोरी है। [१] तपके चोर तीन प्रकारके हैं—

(१) किसी अतपस्वी साधुसे किसीने पूछा—'क्या आप तपस्वी हैं?' इसके उत्तरमें 'हाँ मैं तपस्वी हूँ' ऐसा कहनेवाला तपचोर है।

(२) विना तपस्या किये रोग आदि किसी कारणसे या स्वभावसे क्षीण शरीरवाले साधुसे किसीने पूछा—क्या आप ही वह तपस्वी हैं, जिनकी कीर्त्ति पहले हमने सुनी है?' ऐसा पूछनेपर 'साधु तो तपस्वी होते ही हैं, यह प्रश्न करना ही वृथा है' इस प्रकारका उत्तर देनेवाला तपचोर है।

तवतेणे० ઇત્યાદિ. જે સાધુઓ તપના ચોર, વચનના ચોર, રૂપના ચોર અથવા આચારના ચોર તથા ભાવના ચોર હોય છે. તેઓ દેવોમાં ઉત્પન્ન થઇને પણ કિલ્બિષી જ બને છે.

તાત્પર્ય એ છે કે-પરની તપસ્યાને પોતાની પ્રતિષ્ઠાને માટે પોતાની બતાવવી એ તપની ચોરી છે. (૧) તપના ચોર ત્રણ પ્રકારના છે.

(૧) કોઈ અતપસ્વી સાધુને કોઈ પૂછે કે-'આપ તપસ્વી છો ?' તેના ઉત્તરમાં 'હા, હું તપસ્વી છું' એમ કહેનાર તપચોર છે.

(૨) તપસ્યા કર્યા વિના રોગાદિ એવા કોઈ કારણથી યા સ્વભાવથી જ ક્ષીણ શરીરવાળા સાધુને કોઈ પૂછે 'શું આપ એજ તપસ્વી છો કે જેની કીર્તિ અમે પહેલાં સાંભળી છે ?' એમ પૂછતાં 'સાધુ તો તપસ્વી જ હોય છે, આ પ્રશ્ન કરવો જ વૃથા છે, એવા પ્રકારનો ઉત્તર આપનાર તે તપ ચોર છે.

तृतीयस्तु–'उग्रतपस्वी भवानेव किम्?' इति केनचित्पृष्टः सन् स्वख्याति-कामनया केवलं मौनमालम्बते न तु किञ्चित्प्रतिभाषते तेन प्रच्छकोऽधिगच्छति-अयं महातपस्वी यतः स्वगुणाख्यानं कर्त्तुं मनागपि नोत्सहते, पृष्टोऽपि च प्रतिवचनं न प्रयच्छतीति (३)।

[२] वचःस्तेनः=वचः=वाक्यं तस्य स्तेनः, यथा-'धर्मदेशनाप्रवीणतया श्रूयमाणो मुनिर्भवानेव किम्?' इति केनचित्पृष्टः 'साधवो धर्मदेशनानिपुणा एव भवन्ती'-त्यादिवक्ता तूष्णींभूतश्च। अथवा स्वस्य शास्त्रानभिज्ञत्वेऽपि वागाडम्बरमात्रेण परिषदि प्रसादितायां सत्यां केनचित्-'आचाराद्यङ्गोपाङ्गविज्ञो भवान्' इति पृष्टः

---

(३) 'क्या आपही उग्र तपस्वी हैं?' ऐसा प्रश्न करनेपर स्वकीय कीर्त्तिकी कामना करके केवल मौन साध लेनेवाला–कुछ न बोलनेवाला तपचोर है, क्योंकि मौन साधनेसे प्रश्न कर्त्ता यह समझ लेता है कि–'ये बड़े भारी तपस्वी हैं कि अपने गुण वर्णन करनेमें तनिक भी प्रवृत्त नहीं होते, यहां तक कि पूछने पर भी उत्तर नहीं देते।'

[२] वाक्यके चोरको वचनचोर कहते हैं। जैसे किसीने पूछा–'जो धर्म-देशना देनेमें अत्यन्त निपुण सुने जाते हैं वे क्या आपही हैं?' इस प्रश्नके उत्तरमें ऐसा कहना कि–'साधु, धर्मदेशना देनेमें निपुण होते ही हैं,' अथवा चुप्पी साध लेना, अथवा हो तो शास्त्रोंसे अनभिज्ञ; किन्तु वागा-डम्बरसे परिषद्को प्रसन्न करनेपर कोई पूछे कि–'आप अंग उपांगोंको जानते हैं क्या?' ऐसा प्रश्न करनेपर 'साधु, अंग उपांगोंके ज्ञाता

---

(૩) 'શું આપ જ ઉગ્ર તપસ્વી છો?' એવો પ્રશ્ન પૂછવામાં આવતાં પોતાની કીર્તિની કામના કરીને કેવળ મૌન સાધનાર-કાંઈ ન બોલનાર પણ તપચોર છે, કારણ કે મૌન સાધવાથી પ્રશ્નકર્તા એમ સમજી લે છે કે-'એ બહુ મોટા તપસ્વી છે, તેથી પોતાના ગુણ વર્ણન કરવામાં જરા પણ પ્રવૃત્ત થતા નથી, એટલે સુધી કે પૂછતાં છતાં ઉત્તર પણ નથી આપતા.'

[૨] વાકયના ચોરને વચનચોર કહે છે. જેમ કે, કોઈ પૂછે 'જે ધર્મદેશના આપવામાં અત્યંત નિપુણ સંભળાય છે તે શું આપ જ છો?' એ પ્રશ્નના ઉત્તરમાં એમ કહેવું કે 'સાધુ ધર્મદેશના આપવામાં નિપુણ જ હોય છે' અથવા ચુપકી પકડવી અથવા શાસ્ત્રોથી અનભિજ્ઞ હોવા છતાં વાગાડમ્બરથી પરિષદ્‌ને પ્રસન્ન કરતાં કોઈ પૂછે કે 'આપ અંગ-ઉપાંગોને જાણો છો કે? એવા પ્રશ્નના ઉત્તરમાં

'साधवस्तज्ज्ञा भवन्त्येवे'तिप्रत्यायकः ।

[३] रूपस्तेनः=स्वात्मनि परकीयरूपारोपणकारकः, यथा प्रकृष्टरूपवन्तं साधुं समालोक्य 'किमसौ ज्ञातपूर्वरूपवान् भवानेव ?' इतिपृष्टो वागादिना तदङ्गीकुर्वाणो मौनावलम्बी वा ।

आचारभावस्तेनः=आचारश्च भावश्चेति द्वन्द्वे आचारभावौ, तयोः स्तेनः, तेन-आचारस्तेनः भावस्तेनश्चेति फलितम्, 'द्वन्द्वादौ द्वन्द्वान्ते वा श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते' इति न्यायेन द्वन्द्वोत्तरस्थस्य स्तेनपदस्य प्रत्येकं सम्बन्धात् । तत्र–

[४] आचारस्तेनः–परकीयज्ञानाद्याचारपञ्चकस्य स्वस्मिन्नारोपयिता, यथा–'श्रूयमाणः क्रियापात्रं भवानेव किम् ?' इति केनाप्यनुयुक्तः सन् पूर्ववत्समाधायकः ।

[५] भावस्तेनश्च-भावो=जीवादिपदार्थस्तस्य स्तेनः, सूत्रार्थसन्देहं गीतार्थात्

होते ही हैं' ऐसा कथन करनेवाला वचनचोर है ।

[३] परके रूपका अपनेमें आरोपण करनेवाला रूपचोर कहलाता है। जैसे किसीने पूछा–' पूर्वज्ञात रूपवान् क्या आप ही हैं ? ' इसके उत्तरमें वचनसे स्वीकार करनेवाला अथवा चुप रह जानेवाला रूपचोर है ।

[४] परके ज्ञानादि पाँच आचारोंको अपनेमें आरोपित करनेवाला आचारचोर कहलाता है। जैसे किसीने पूछा–'क्या सुने जानेवाले उत्कृष्ट क्रियापात्र आप ही हैं ? ' ऐसा पूछने पर पूर्वकी भाँति समाधान करनेवाला, अर्थात् ' साधु तो क्रियापात्र होते ही हैं ' ऐसा कहनेवाला आचारचोर है।

[५] किन्हीं गीतार्थ मुनिसे सूत्रार्थका सन्देह निवारण करके ऐसा कहे कि-

---

'સાધુ અંગ ઉપાંગોના જ્ઞાતા જ હોય છે' એમ કહેનાર વચનચોર છે

[૩] પરના રૂપનું પોતામાં આરોપણ કરનાર રૂપચોર કહેવાય છે જેમકે કોઈ પૂછે કે 'પૂર્વજ્ઞાત રૂપવાન્ શું આપ જ છો ?' તેના ઉત્તરમાં વચનથી સ્વીકાર કરનાર અથવા ચૂપ રહેનાર રૂપચોર છે

[૪] પરના જ્ઞાનાદિ પાંચ આચારોને પોતામાં આરોપિત કરનાર આચારચોર કહેવાય છે જેમ કે કોઈ પૂછે 'શું સાંભળવામાં આવતા ઉત્કૃષ્ટ ક્રિયાપાત્ર આપ જ છો ?' એમ પૂછવામાં આવતાં પહેલાની પેઠે સમાધાન કરનાર અર્થાત્ 'સાધુ તો ક્રિયાપાત્ર જ હોય છે' એમ કહેનાર આચારચોર છે

[૫] કોઈ ગીતાર્થ મુનિ પાસેથી સૂત્રાર્થના સંદેહનું નિવારણ કરીને એમ કહે કે-

प्रश्नपूर्वकमवबुध्यानन्तरं 'प्रागेवेदं' विज्ञातमस्ति न तु किञ्चिदपूर्वमिदानीं भवन्मुखादाकर्ण्यते' इति प्रतिपादकः । स तपःस्तेनादिः देवकिल्विषं=देवानां मध्ये किल्विषः=पापः, अत एवाऽस्पृश्यत्वादिधर्मा, तं कुरुते=भावयति-तपःस्तेयादिकर्मणि देवकिल्विषनामक भवमुत्पादयतीत्यर्थः ॥४६॥

२ १ ४ ३
मूलम्-लद्धूणवि देवत्तं, उववन्नो देवकिव्विसे ।
५ ६ १२ १३ ७ ६ ८ १० ११
तत्थावि से न याणाइ, किं मे किच्चा इमं फलं ॥ ४७ ॥

छाया—लब्ध्वाऽपि देवत्वम्, उपपन्नो देवकिल्विषे ।
तत्रापि स न जानाति, किं मे कृत्वा इदं फलम् ॥४७॥

सान्वयार्थः-देवत्तं=कुछ क्रियाकलाप करनेसे देवपनेको लद्धूणवि=पाकर भी वह देवकिव्विसे=किल्विप-अस्पृश्य जातिके देवोंमें उववन्नो=उत्पन्न होता है, तत्थावि=वहां पर भी से=वह 'किं=क्या कर्म किचा=करनेसे मे=मेरे इमं=यह फलं=फल प्राप्त हुआ है' ऐसा न याणाइ=नहीं जानता है, क्योंकि देवलोकमें तीन ज्ञान अवश्य होनेवाले होनेपर भी चोरी आदि प्रबल पापकर्मके प्रभावसे उसके तीव्र ज्ञानावरणका उदय होता है ।

टीका—'लद्धूणवि' इत्यादि । देवत्वं=देवजातिं लब्ध्वाऽपि=प्राप्यापि देव-

---

'यह तो मुझे पहले ही मालूम था, आपके मुखसे कुछ भी नवीनता नहीं सुनी जाती' उसे भाव-(जीवादि-पदार्थ)-का चोर कहते हैं।

ऐसे तप आदिके चोर साधु देवताओंमें अस्पृश्य किल्विष देवके कर्मको उपार्जन करते हैं, अर्थात् वह साधु देवभव पा करके भी किल्विष देव होता है ॥ ४६ ॥

'लद्धूणवि' इत्यादि । देवगति प्राप्त करके भी किल्विष देवोंमें

'એ તો હું પહેલેથી જાણુતો જ હતો, આપના મુખેથી કાંઈ નવીનતા સાંભળવામાં આવતી નથી' તો તે ભાવ (જીવાદિ-પદાર્થ) નો ચોર કહેવાય છે

એવા તપ આદિનો ચોર સાધુ દેવતાઓનાં અસ્પૃશ્ય કિલ્વિષી દેવનાં કર્મોને ઉપાર્જે છે, અર્થાત્ એ સાધુ દેવભવ પામીને પણ કિલ્વિષી દેવ થાય છે (૪૬)

લદ્ધૂણવિ૦ ઇત્યાદિ. દેવગતિ પ્રાપ્ત કરીને પણ કિલ્વિષી દેવોમાં ઉત્પન્ન

किल्विषे=किल्विषदेवमध्ये उपपन्नः=संप्राप्तः, तत्रापि सः, 'किं कर्म कृत्वा मे=मम इदं फलं संजात'-मिति न जानाति। किञ्चित्क्रियाकरणक्लेशेनाऽवश्यम्भाविज्ञानत्रयकदेवत्वजातिलाभेऽपि स्तेयादिपापकर्मप्रभावेण ज्ञानावरणस्य प्रबलोदयेनाऽविशुद्धावधिसद्भावादिति भावः ॥४७॥

एतावदेव तस्य फलं न, किन्तु ततोऽन्यदपीति तद्दर्शयति-'तत्तोवि' इत्यादि।

मूलम्-तत्तोवि[2] से[1] चइत्ताणं[3], लब्भिही[5] एलमूयगं[4]।
नरगं[6] तिरिक्खजोणिं[7] वा, बोही[8] जत्थ[10] सुदुल्लहा[9] ॥ ४८ ॥[11]

छाया—ततोऽपि स च्युत्वा, लप्स्यते एलमूकत्वम्।
नरकं तिर्यग्योनिं वा, बोधिर्यत्र सुदुर्लभा ॥४८॥

सान्वयार्थः-से=वह किल्विषी देव तत्तोवि=उस-किल्विष देवभवसे भी चइत्ताणं=चवकर मनुष्य भवमें एलमूयगं=बकरेकी तरह अस्पष्ट बोलनेरूप गूंगेपनको लब्भिही=प्राप्त होगा, (और वहाँ मरकर फिर) नरगं=नरक गतिको वा=अथवा तिरिक्खजोणिं=तिर्यञ्च योनिको लब्भिही=प्राप्त होगा कि जत्थ=जहां फिर बोही=बोधि-जिनधर्मकी प्राप्ति होना सुदुल्लहा=महा-मुश्किल है ॥४८॥

उत्पन्न होकर यह नहीं जानता कि-'मुझे कौन कर्म करनेसे यह फल मिला है?' तात्पर्य यह है कि कुछ कायक्लेश करनेसे वहां भवप्रत्ययक अवधि-ज्ञान तक तीन ज्ञान होजाते हैं, फिर भी चोरी आदि पाप कर्मोंके प्रभावसे ज्ञानावरणका प्रबल उदय होनेके कारण अविशुद्ध अवधि रहता है ॥ ४७ ॥

उक्त चोरीका इतना ही फल नहीं है, किन्तु और भी होता है सो दिखाते हैं-'तत्तोवि' इत्यादि।

થઇને એ નથી જાણુતો કે-'મને કયા કર્મો કરવાથી આ ફળ મળ્યુ છે?' તાત્પર્ય એ છે કે કાંઇક કાયકલેશ કરવાથી ભવપ્રત્યયિક અવધિ-જ્ઞાન સુધી ત્રણ જ્ઞાન થઇ જાય છે, તો પણુ ચોરી આદિ પાપ કર્મોના પ્રભાવથી જ્ઞાનાવરણુનો પ્રબળ ઉદય થવાને કારણે અવિશુદ્ધ અવધિ રહે છે (૪૭)

ઉક્ત ચોરીનું એટલું જ ફળ નથી, પરંતુ બીજું પણુ ફળ મળે છે તે દર્શાવે છે-તત્તોવિ ઇત્યાદિ

टीका—सः=किल्विषदेवः ततोऽपि=किल्विषदेवभवादपि च्युत्वा=प्रच्युत्य मनुष्यभवेऽपि एलमूकत्वम्=भाषणश्रवणोभयशक्तिशून्यत्वं, लप्स्यते=प्राप्स्यति, ततोऽपि मृत्वा नरकं तिर्यग्योनिं वा लप्स्यते, यत्र=मनुष्यादिभवे बोधिः=सम्यक्त्वं सुदुर्लभा=अतिशयेन दुष्प्रापा भविष्यतीति भावः ॥४८॥

उपसंहरन्नाह-'एयं च' इत्यादि ।

मूलम्-एयं[1] च[2] दोसं[3] दट्ठूणं[5], नायपुत्तेण[4] भासियं[6] ।
अणुमायंपि[8] मेहावी[7], मायामोसं[9] विवज्जए[10] ॥४९॥

छाया—एतं च दोषं दृष्ट्वा, ज्ञातपुत्रेण भाषितम् ।
अणुमात्रमपि मेधावी, माया-मृषा विवर्जयेत् ॥४९॥

सान्वयार्थः-एयं च=इस पूर्वोक्त प्रकारके दोसं=दोष-पापको नायपुत्तेण=महावीर भगवानने दट्ठूणं=केवल ज्ञानसे देखकर भासियं=फरमाया है, (अतः) मेहावी=कृत्याकृत्यमें कुशल साधु अणुमायंपि=अणुमात्र-थोड़े-भी माया-मोसं=कपट और झूंठको विवज्जए=वरजे-न आचरे ॥४९॥

टीका—एतं च पूर्वप्रतिपादितं दोषं=पापं गृहीतेऽपि चारित्रे किल्विषिकदेवत्वाद्यापादकलक्षणं ज्ञातपुत्रेण=ज्ञातः=सिद्धार्थभूपस्तस्य पुत्रो ज्ञातपुत्रः=महावीरस्तेन

वह किल्विष देव देव-भवसे चवकर मनुष्य भवमें अज (बकरे)की तरह बोलनेवाला-गूँगा होगा, और फिर नरकगति या तिर्यञ्च गतिको प्राप्त होगा, जहाँ पर बोधि (सम्यक्त्वकी प्राप्ति) अत्यन्त दुर्लभ है ॥४८॥

उपसंहार करते हुए कहते हैं-'एयं च' इत्यादि ।

चारित्रको अंगीकार करनेके पश्चात् भी किल्विष-देवत्वकी प्राप्ति आदि दोष ज्ञातपुत्र (सिद्धार्थनन्दन) भगवान् वर्द्धमान स्वामीने केवल

એ કિલ્વિષી દેવ દેવભવથી ચવીને મનુષ્ય ભવમાં અજ (બકરા)ની પેઠે બોલનાર-બોબડો થશે, અને પછી નરકગતિ યા તિર્યંચ ગતિને પ્રાપ્ત થશે, કે જ્યાં બોધિ (સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિ) અત્યંત દુર્લભ છે. (૪૮)

ઉપસંહાર કરતાં કહે છે-एयं च० ઇત્યાદિ

ચારિત્રને અંગીકાર્યા પછી પણ કિલ્વિષ-દેવત્વની પ્રાપ્તિ આદિ દોષ જ્ઞાતપુત્ર (સિદ્ધાર્થનંદન) ભગવાન્ વર્ધમાન સ્વામીએ કેવળજ્ઞાનથી જાણીને

दृष्ट्वा=केवलालोकेनाऽऽलोक्य भाषितं=कथितम्-अर्थत उपदिष्टमित्यर्थः, अतः मेधावी=कृत्याकृत्यविवेककुशलः, अणुमात्रमपि=स्वल्पमपि मायामृषा=मायामृषावादं विवर्जयेत्=संत्यजेत्-नाऽऽचरेदिति भावः ॥४९॥

मूलम्-सिक्खिऊण[६] भिक्खेसणसोहिं[५], संजयाण[३] बुद्धाण[२] सगासे[४]।
तत्थ[९] भिक्खु[१] सुप्पणिहि-इंदिए[७], तिव्वलज्जगुणवं[८]
विहरिज्जासि[१०]-त्तिबेमि[११] ॥ ५० ॥

छाया—शिक्षित्वा भिक्षैषणशोधिं, संयतानां बुद्धानां सकाशे ।
तत्र भिक्षुः सुप्रणिहितेन्द्रियः, तीव्रलज्जागुणवान् विहरेत् ।
इति ब्रवीमि ॥५०॥

सान्वयार्थः-बुद्धाण=सकल तत्त्वोंके जाननेवाले संजयाण=मुनियोंके सगासे=समीप भिक्खेसणसोहिं=भिक्षाके आधाकर्मादि दोषोंकी शुद्धिको सिक्खिऊण=सीखकर तिव्वलज्जगुणवं=अकृत्याचरणमें अत्यन्त लज्जावान् सुप्पणिहिइंदिए=जितेन्द्रिय-एकाग्रचित्तवाला भिक्खु=साधु तत्थ=वहां-भिक्षाकी एषणामें विहरिज्जासि=विचरे-लगे। त्तिबेमि=श्रीसुधर्मास्वामी जंबूस्वामीसे कहते हैं कि जैसा भगवान् महावीर स्वामीने फरमाया है वैसाही मैं तेरेसे कहता हूँ ॥५०॥

। इति पांचवे अध्ययनके दूसरे उद्देशका सान्वयार्थ समाप्त ॥ ५-२ ॥

॥ इति श्रीदशवैकालिकसूत्रके पांचवें अध्ययनका सान्वयार्थ समाप्त ॥५॥

टीका—'सिक्खिऊण' इत्यादि। भिक्षुः बुद्धानाम्=अवगतसकलतत्त्वानां, संयतानां=सयमवतां सकाशे=समीपे भिक्षैषणशोधिं=भिक्षागताऽऽधाकर्मादिदोष-

---

ज्ञानसे जानकर प्रतिपादन किये हैं, इसलिए कार्य-अकार्यके विवेकी श्रमणोंको अणुमात्र भी माया-मृषावादका आचरण नहीं करना चाहिए, अर्थात् मुनि माया-मृषावादका थोड़ा भी सेवन नहीं करें ॥ ४९ ॥

'सिक्खिऊण' इत्यादि। भिक्षु, तत्त्वके ज्ञानी संयमियोंके समीप

प्रतिपादन कर्या छे तेथी करीने कार्य-अकार्यना विवेकी श्रमणोए अणुमात्र पण माया-मृषावादनुं आचरण न करवुं जोईए, अर्थात् मुनि माया-मृषावादनुं थोडुं पण सेवन न करे (४९)

सिक्खिऊण इत्यादि तत्त्वना ज्ञानी संयमीओनी समीपे आधाकर्म आदि

संशुद्धि-दोपज्ञानपूर्वकतत्परिहारविधिमित्यर्थः, शिक्षित्वा=सम्यगभ्यस्य सुप्रणिहितेन्द्रियः=सुवशीकृतेन्द्रियः-एकाग्रचेता इत्यर्थः । तीव्रलज्जागुणवान्=अकृत्याऽऽचरणेऽतीवलज्जाधारकः, तत्र=भिक्षैपणविपये विहरेत्=विचरेत् ।

'संजयाण बुद्धाण' इतिपदाभ्यां ज्ञानक्रियोभयवद्भ्य एव शिक्षाशुद्धिर्जायत इति, 'सुप्पणिहिइंदिए' इत्यनेन शिष्येण एकाग्रचेतसा भाव्यमिति, 'तिव्वलज्जगुणवं' इति पदेन लज्जावानेव प्रवचनमर्यादां पालयतीति च प्रकटीकृतम् । इति ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥५०॥

। इति पञ्चमाध्ययनस्य द्वितीयोद्देशः समाप्तः ॥

आधाकर्म आदि दोषोंके ज्ञानपूर्वक आहारकी विधिको सम्यक् प्रकार जान करके जितेन्द्रिय हो कर तथा अकार्य करनेसे तीव्र लज्जा पाते हुए विचरें ॥

'संजयाण बुद्धाण' इन दोनों पदोंसे यह ध्वनित किया है कि ज्ञान और क्रिया दोनोंसे ही भिक्षाशुद्धि होती है। 'सुप्पणिहिइंदिए' पदसे यह सूचित किया है कि शिष्यको एकाग्रचित्त होना चाहिए। 'तिव्वलज्जगुणवं' से यह प्रदर्शित किया है कि लज्जावान् ही प्रवचन-प्रतिपादित मर्यादा (आचार) का परिपालन करता है।

श्री सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं कि–हे जम्बू! मैंने भगवान् श्रीमहावीरस्वामीसे जैसा सुना वैसा ही तुमसे कहा है ॥ ५० ॥

। इति पांचवें अध्ययनका दूसरा उद्देश समाप्त ।

દોષોનું જ્ઞાન મેળવીને, આહારની વિધિને સમ્યક્ પ્રકારે જાણીને, જિતેન્દ્રિય થઈને તથા અકાર્ય કરવાથી તીવ્ર લજ્જા પામતાં ભિક્ષુ વિચરે.

सजयाण बुद्धाण એ બેઉ શબ્દોથી એમ ધ્વનિત કર્યું છે કે જ્ઞાન અને ક્રિયા બેઉથી જ ભિક્ષા-શુદ્ધિ થાય છે सुप्पणिहिइंदिए એ પદથી એમ સૂચિત કર્યું છે કે શિષ્યે એકાગ્રચિત્ત થવું જોઈએ तिव्वलज्जगुणवं થી એમ પ્રદર્શિત કર્યું છે કે લજ્જાવાન્ જ પ્રવચનપ્રતિપાદિત મર્યાદા (આચાર)નું પરિપાલન કરે છે

શ્રી સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે કે–હે જમ્બૂ! મે ભગવાન શ્રી મહાવીર સ્વામી પાસેથી જેવું સાંભળ્યું તેવુ જ તમને કહ્યું છે (૫૦)

ઈતિ પાંચમા અધ્યયનનો બીજો ઉદ્દેશો સમાપ્ત.

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषा-कलित-ललित-कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्ध-गद्य-पद्य-नैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-शाहूछत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-जैनशास्त्राचार्य-पद-भूषित-कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्य-श्रीघासीलालव्रतिविरचितायां श्रीदशवैकालिकसूत्रस्याऽऽचारमणिमञ्जूषाख्यायां व्याख्यायां पञ्चमं 'पिण्डैषणा'ऽऽख्यमध्ययनं समाप्तम् ॥ ५ ॥

— * —

इति श्रीदशवैकालिकसूत्रके "पिण्डैषणा" नामक पाँचवें अध्ययनकी 'आचारमणिमञ्जूषा' टीकाका हिन्दीभाषानुवाद समाप्त ॥ ५ ॥

— ❀ —

ઇતિ શ્રીદશવૈકાલિકસૂત્રના "પિંડૈષણા" નામક પાંચમા અધ્યયનની 'આચારમણિમંજૂષા' ટીકાનો ગુજરાતીભાષાનુવાદ સમાપ્ત. (૫)

—×—

समाप्त

પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનાં
બનાવેલાં સૂત્રો.

કાશ્મીર.....થી.....કન્યાકુમારી

તેમજ

કરાંચી.....થી.....કલકત્તા

સુધી

દરેક સ્થળે હોંશથી વંચાય છે.

કારણ કે,

આવી રીતે શાસ્ત્રો તૈયાર કરવાનુ અનોખું કાર્ય
હજુ સુધી કોઇ કરી શકયું નથી.

* * *

શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સમાજ

ઉપરાંત

શ્રી દેરાવાસી સંપ્રદાયના મહાન આચાર્યશ્રી રામવિજયસૂરીજી
તથા અન્ય મુનિવરોએ

તેમજ

તેરાપથી મહાસભા કલકત્તાવાળાએ આ સૂત્રો અપનાવ્યા છે

* *

દેશ-પરદેશના મેમ્બરો સૂત્રો વાચી જૈન ધર્મના શ્રુતજ્ઞાનનો અણમોલો
લાભ લઇ રહ્યા છે

હાલમાંજ લંડનની ઇન્ડીઆ ઓફીસ લાયબ્રેરીએ આ સૂત્રો મગાવ્યા છે

* * *

આપ રૂપીઆ ૨૫૧-૦-૦ મોકલી મેમ્બર તરીકે નામ નોધાવી હપ્તે હપ્તે લગભગ રૂપીઆ પાચસો સુધીની કિંમતનાં શાસ્રો વિના મૂલ્યે મેળવી શકો છે

વધુ વિગત માટે લખો.

ઠે ગ્રીન લોજ પાસે,
ગરેડીઆ કુવા રોડ
રાજકોટ.

મંત્રિ
શ્રી અખિલ ભારત શ્વે. સ્થા. જૈન
શાસ્રોદ્ધાર સમિતિ.

શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

ગરેડીઆ કુવા રોડ - ગ્રીન લોજ પાસે

રા જ કો ટ.



સમિતિની શરૂઆત તા. ૧૮-૧૦-૪૪ થી
તા. ૩૦-૪-૫૭ સુધીમાં દાનવીર મહાશયો
તરફથી મળેલી રકમોની નામાવલી.



[રૂા. અઢીસોથી ઓછી રકમો આ યાદીમાં સામેલ કરેલ નથી.]



આદ્ય મુરબ્બીશ્રી–૪

(ઓછામાં ઓછી રૂ. ૫૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧૦૦૦૦	શેઠ શાંતિલાલ મંગળદાસભાઇ, પ્રમુખ સાહેબ	અમદાવાદ
૬૦૦૦	શેઠ હરખચંદ કાલીદાસભાઈ (હા શેઠ લાલચંદભાઇ, જેચંદભાઇ, નગીનદાસભાઇ, વૃજલાલભાઇ તથા વલ્લભદાસભાઇ)	ભાણુવડ
૫૨૫૧	કોઠારી જેચંદભાઇ અજરામર હા હરગોવિંદભાઈ જેચંદ	રાજકોટ
૫૦૦૧	શેઠ ધારશીભાઇ જીવનભાઇ	સોલાપુર

મુરબ્બીશ્રીઓ–૨૦

(ઓછામાં ઓછી રૂા ૧૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

૩૬૦૫	વકીલ જીવરાજ વર્ધમાન હા કોઠારી કહાનદાસભાઇ તથા વેણીલાલભાઇ	જેતપુર
૩૬૦૪	દોશી પ્રભુદાસ મુળજીભાઇ	રાજકોટ
૩૨૮લાા—ાા	મહેતા ગુલાબચંદ પાનાચંદ	,,
૩૧૦૧	સંઘવી પીતામ્બરદાસ ગુલાબચંદ	જામનગર
૨૫૦૦	શેઠ શામજીભાઇ વેલજી વીરાણી	રાજકોટ
૨૦૦૦	નામદાર ઠાકોર સાહેબ લખધીરસીંહજી બહાદુર	મોરબી
૨૦૦૦	શેઠ લહેરચંદ કુંવરજી હા. શેઠ ન્યાલચંદભાઈ લહેરચંદ	સીધપુર
૨૦૦૦	શાહ છગનલાલ હેમચંદ વસા હા મોહનલાલભાઈ તથા મોતીલાલભાઈ	મુંબાઇ
૧૯૬૩	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	મોરબી
૧૦૦૧	શેઠ આત્મારામ માણેકલાલ	અમદાવાદ
૧૦૦૧	શેઠ માણેકલાલ ભાણજીભાઇ	પોરબંદર
૧૦૦૦	શેઠ સોમચંદ તુલસીદાસ	રતલામ
૧૦૦૦	કોઠારી છબીલદાસ હરખચંદ	મુંબઇ
૧૦૦૦	કોઠારી રંગીલદાસ હરખચંદ	શીહોર
૧૦૦૨	બગડીઆ જગજીવનદાસ રતનશી	દામનગર
૧૦૦૧	શ્રીમાન ચંદ્રસિંહજી મહેતા (રેલ્વે મેનેજર સાહેબ)	કલકત્તા
૧૦૦૧	મહેતા પોપટલાલ માવજીભાઇ	જામજોધપુર
૧૦૦૧	મહેતા સોમચંદ નેણશીભાઇ (કરાચીવાળા)	મોરબી
૧૦૦૧	શાહ હરીલાલ અનુપચંદ	ખંભાત
૧૦૦૨	દોશી કપુરચંદ અમરશી હા. દલપતરામ કપુરચંદ દોશી	જામ જોધપુર

સહાયક મેમ્બરો-૨૧

(ઓછામાં ઓછી રૂા ૫૦૦ ની રકમ આપનાર)

૭૫૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હા. શેઠ ઝુંઝાભાઇ વેલસીભાઇ	વઢવાણ શહેર
૭૫૦	મોદી કેશવલાલ હરખચંદ	સાબરમતી
૭૦૦	શેઠ નરોત્તમદાસ ઓઘડભાઇ	જોરાવરનગર
૫૦૧	શેઠ શીવલાલ ડમરભાઈ	લીંબડી
૫૦૦	કામદાર તારાચંદ પોપટલાલ ધોરાજીવાળા	રાજકોટ
૫૦૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	થાનગઢ
૫૦૦	શેઠ તારાચંદજી પુખરાજજી	ઔરંગાબાદ
૫૦૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ ૧૫૦ શેઠ શેષમલજી જીવરાજજી ૧૨૫ ,, અનરાજજી લાલચંદજી ૧૨૫ ,, ધુકડચંદજી રૂપચંદજી ૧૦૦ ,, દગડુમલજી ચાંદમલજી ૫૦૦	ઔરંગાબાદ
૫૦૦	મહેતા મોહનલાલ કપુરચંદ	રાજકોટ
૫૦૦	શેઠ ગોવીંદજી પોપટભાઇ	રાજકોટ
૫૦૦	મહેતા મુળચંદ રાઘવજી હા. મગનલાલભાઈ તથા દુર્લભજીભાઇ	ધ્રાફા
૫૦૦	શેઠ હરખચંદ પરસોત્તમ હા ભાઇ ઇન્દુકુમાર	ચોરવાડ
૫૦૧	શેઠ ખીમજી બાવાભાઈ હા તેમના પુત્રો ફુલચંદભાઇ નાગરદાસભાઈ, ગુલાબચંદભાઇ, તથા જમનાદાસભાઈ	મુંબઈ
૫૦૧	શેઠ મણીલાલ મોહનલાલ ડગલી હા. શેઠ મુલજીભાઇ મણીલાલ	મુંબઇ
૫૦૧	શેઠ ઇશ્વરલાલ પુરૂષોતમદાસ	અમદાવાદ
૫૦૧	શેઠ ચંદુલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ
૫૦૧	સ્વ કાંતીલાલભાઇના સ્મરણાથે હ. શેઠ બાલચંદ સાકરચંદ	મુંબઇ
૫૦૦	અ. સૌ બેન મણીગૌરી મગનલાલ તે મહેતા સોમચંદ તુલસીદાસના ધર્મપત્નિ	રતલામ
૫૦૧	સ્વ. પીતાશ્રી નંદાજીના સ્મરણાર્થે હ વેણીચંદ શાંતીલાલ (જાબુઆવાળા)	મેઘનગર

૭૫૧	શાહ રંગજીભાઇ મોહનલાલ	અમદાવાદ
૫૦૧	કામદાર રતીલાલ દુર્લભજી જેતપુરવાળા	મુંબઇ

પ્રથમ વર્ગના મેમ્બરો

(ઓછામા ઓછી રકમ રૂા. ૨૫૦ આપનાર)

૪૦૨	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	ધ્રાફા
૪૦૦	ધી વાડીલાલ ડાઇંગ એન્ડ પ્રિન્ટીંગ વર્કસ	રાજકોટ
૩૫૩	શેઠ રતનશી હીરજીભાઇ હા ગોરધનદાસભાઇ	જામજોધપુર
૩૦૧	શેઠ જેચંદભાઇ માણેકચંદ	ભાણવડ
૨૫૧	સંઘવી માણેકચંદ માધવજી	ભાણવડ
૨૫૧	શેઠ લાલજીભાઇ માણેકચંદ (લાલપુરવાળા)	ભાણવડ
૨૫૧	શેઠ રામજી જીણાભાઇ	ભાણવડ
૨૫૧	પંચમીયા ભવાનભાઇ કાળાભાઇ	વડીઆ
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	વાંકાનેર
૨૫૧	શેઠ રતીલાલ ન્યાલચંદ	રાજકોટ
૨૫૦	બાબુ પરશુરામ છગનલાલ શેઠ (ઉદેપુરવાળા)	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ મગનલાલ છગનલાલ વિશ્રામ (ધ્રાફાવાળા)	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ જેઠાલાલ ગોરધનદાસ	ઉપલેટા
૨૫૧	સ્વ. બહેન સંતોક કચરા હા. ઓતમચંદભાઇ, છોટાલાલભાઈ તથા અમૃતલાલભાઈ વાલજી (કલ્યાણવાળા)	ઉપલેટા
૨૫૧	શેઠ ખુશાલચંદભાઇ કાનજીભાઇ હા શેઠ પ્રતાપભાઇ	ઉપલેટા
૪૭૭	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	ખાખીજાળીયા
૨૫૧	શેઠ છોટાલાલ કેશવજી	જામનગર
૨૫૧	શાહ લક્ષ્મીચંદ કપુરચંદ	જેતલસર જંકશન
૨૫૧	શાહ ચતુરદાસ ઠાકરશીભાઇ	જામનગર
૨૫૧	ખંઢેરીયા કાન્તીલાલ ત્રંબકલાલ (સ્ટેશન માસ્તર)	સુરેન્દ્રનગર
૨૫૧	શાહ કેશવલાલ જેચંદ	વેરાવલ
૨૫૧	શાહ ખીમચંદ શોભાગચંદ વસનજી	વેરાવલ
૨૫૧	સ્વ બાખડા વચ્છરાજ તુલસીદાસના ધર્મપત્ની કમળબાઇ તરફથી હા માણેકચદભાઇ તથા કપુરચંદભાઇ	ગોંડલ
૨૫૧	શેઠ છગનલાલ નાગજીભાઇ	મુંબઇ
૨૫૧	ઘેલાણી ત્રીકમજી લાધાભાઇ	જુનાડેવ

૨૫૧	શેઠ ગીરધરલાલ કરમચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ છોટાલાલ વખતચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	ગોસલિયા હરિલાલ લાલચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ પ્રેમચંદ માણેકચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ માણેકલાલ ભગવાનદાસ	ખંભાત
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હા. શેઠ મોહનલાલ ઇચ્છારામ	ખંભાત
૨૫૧	શેઠ રમણીકલાલ એ કપાસી	આણંદ
૨૫૧	બહેન સુરીબહેન (લક્ષ્મીબેન)	
	હા મહેતા હરીલાલ પીતામ્બરદાસ	પાલણપુર
૨૫૦	શેઠ વાડીલાલ નેમચંદ વકીલ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ વીઠલદાસ મોદી માસ્તર	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ નાગરદાસ માણેકચંદ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ મણીલાલ જીવણલાલ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ નાગરદાસ વાઘજીભાઇ	અમલનેર
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	અમલનેર
૨૫૧	શેઠ મનુભાઇ મુળચંદ (ઇન્જીનીયર સાહેબ)	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ શાંતિલાલ પ્રેમચંદ	
	[તેમનાં ધર્મપત્નીના વરસીતપ પ્રસંગે ખુશાલીના]	રાજકોટ
૨૫૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હા. ચંપાલાલજી મારવે	ડોંડાઇચા
૨૫૧	શેઠ મોતીલાલજી રણજીતલાલજી હીગડ	ઉદેપુર
૨૫૦	શેઠ બાદરમલજી સુરજમલજી બેન્કર્સ	યાદગીરી
૨૫૦	શેઠ ગોપાલજી મીઠાભાઇ	હાટીના માળીયા
૨૫૧	ઉદાણી ન્યાલચંદ હાકેમચંદ (વકીલ)	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ પ્રજારામ વીઠલજી	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ મેઘરાજજી દેવીચંદજી મહેતા	મદ્રાસ
૨૫૧	પટેલ ગોવીંદલાલ ભગવાનજી	કોલકી
૩૦૨	પટેલ ખીમજી જેઠાભાઇ વાઘાણી	કોલકી
૨૫૧	શેઠ હકમીચંદ દીપચંદ ગોંડલવાળા [સ્ટેશન માસ્તર ભકિતનગર]	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ વસનજી નારણજી	જામખભાળીયા
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	જામખભાળીયા
૨૫૧	શેઠ કીશનલાલ પૃથ્વીરાજ	ખીચન (પાલી)
૨૫૧	શેઠ પદમસી ભીમજી ફોફરીયા	ભાણવડ

૨૫૧	અ. સૌ. બહેન બચીબહેન બાબુભાઇ	ધોરાજી
૨૫૧	શેઠ નેમચંદ સવજીભાઇ મોદી	લાલપુર
૨૫૦	શ્રી સ્થા જૈન સંઘ હા. પ્રમુખ શેઠ પ્રેમચંદ ભગવાનલાલ	નંદુરબાર
૨૫૧	શેઠ અમૃતલાલ હીરજીભાઇ જસાપરવાળા હા. નરભેરામભાઇ	જેતપુર
૨૫૧	દોશી છોટાલાલ વનેચંદ	જેતપુર
૨૫૧	કામદાર લીલાધર જીવરાજના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્ની બાઈ ઝબકબહેન તરફથી હા ભાઇ શાંતિલાલ	જેતલસર
૨૮૭	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	જામજોધપુર
૨૫૧	સ્વ. બહેન વિજયાગૌરી રાયચંદ હા શેઠ રાયચંદ પાનાચંદ	ધોરાજી
૨૫૦	ગાંધી પોપટલાલ જેચંદભાઇ	ધોરાજી
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હા. પ્રમુખ રાયચંદ વૃજલાલ અજમેરા	વીંછીયા
૨૫૧	શેઠ મુળચંદ પોપટલાલ હા. મણીલાલભાઇ તથા જેસીંગલાલભાઇ	લાલપુર
૨૫૧	શેઠ મણીલાલ મીઠાભાઇ હા. હરિલાલભાઈ હાટીના માળીયાવાળા	જુનાગઢ
૨૫૧	સ્વ વસાણી હરગોવીંદદાસ છગનલાલના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્ની બાઇ છબલબેન તરફથી	બોટાદ
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	ચુડા (ઝાલાવાડ)
૨૫૧	શેઠ મગનલાલજી બાગરેચા	ઉદેપુર
૨૫૧	શેઠ ચાપશીભાઇ સુખલાલ	સુરેન્દ્રનગર
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	બોટાદ
૨૫૧	સ્વ. પૂજ્ય માતુશ્રી સમરતબાઇના સ્મરણાર્થે હા. ડોકટર સાહેબ નરોત્તદાસ ચુનીલાલ કાપડીયા	રાણપુર
૨૫૧	સ્વ. તુરખીયા લહેરચંદ માણેકચંદ સુદામડાવાળાના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્ની જીવતીબાઇ તરફથી હા જયંતીલાલ લહેરચંદ	ડભાસ
૨૫૧	શ્રી સ્થા. જૈન મોટા સંઘ	ધ્રાંગધ્રા
૨૫૧	શાહ દીલીપકુંવર સવાઇલાલ હા. શેઠ સવાઇલાલ ત્રંબકલાલ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	શેઠ છોટુભાઇ હરગોવીંદદાસ કટોરીવાળા	મુંબઇ
૨૫૧	રા રા નાથાલાલ ડી મ્હેતા	મોમ્બાસા
૨૫૧	સંઘવી પ્રાણલાલ લવજીભાઈ	જામખંભાળીયા

૨૫૧	બાવીશી મણીલાલ ચત્રભુજના સ્મરણાર્થે	
	તેમનાં ધર્મપત્ની બાઇ મણીબેન તરફથી	
	હા. ભાઈ રસીકલાલ, અનીલકાંત તથા વિનોદરાય	આસનસોલ
૨૫૦	શેઠ માણેકલાલ અમુલખરાય મ્હેતા	ઘાટકોપર
૨૫૧	ભાવસાર ખોડીદાસ ગણેશભાઈ	ધંધુકા
૨૫૧	શાહ પોપટલાલ ધનજીભાઇ	ધંધુકા
૨૫૧	સ્વ. ગુલાબચંદભાઈના સ્મરણાર્થે	
	હા વોરા પોપટલાલ નાનચંદ	ધંધુકા
૨૫૧	શેઠ ચત્રભુજ વાઘજીભાઇ વસાણી	ધંધુકા
૨૫૧	સ્વ મોહનલાલ નરસીદાસના સ્મરણાર્થે	
	તેમનાં ધર્મપત્ની સુરજબેન મોરારજી તરફથી	બરવાળા
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	પાણશણા (લીંબડી)
૨૫૧	સંઘાણી મુળશંકર હરજીવનભાઈના સ્મરણાર્થે	
	હા તેમના પુત્રો જયંતિલાલભાઇ તથા રમણીકલાલભાઇ	ઉપલેટા
૨૫૧	શાહ મગનલાલ ગોકળદાસ	
	હા રતીલાલ મગનલાલ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	સંઘવી મુળચંદ બેચરભાઇ	
	હા જીવનલાલ ગફલદાસ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	બ્હેન સુર્યબાળા નૌતમલાલ જસાણી	
	[વરસીતપનાં પારણાંની ખુશાલીમાં]	રાજકોટ
૨૫૧	શાહ રાયચંદ ઠાકરશીના સ્મરણાર્થે	
	હા ભાઈ શાંતીલાલ રાયચંદ	લખતર
૨૫૧	ભાવસાર હરજીવનદાસ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે	
	હા ભાઇ ત્રીભોવનદાસ હરજીવનદાસ	લખતર
૨૫૧	શાહ તલકશી હીરાચંદના સ્મરણાર્થે	
	હા ભાઈ અમૃતલાલ તલકશી	લખતર
૨૫૧	શાહ ચુનીલાલ માણેકચંદ	લખતર
૨૫૧	શેઠ વૃજલાલ સુખલાલ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	શેઠ કાંતિલાલ નાગરદાસ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	વોરા ચત્રભુજ મગનલાલ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	સંઘવી શીવલાલ હીમજીભાઇ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	શાહ દેવશીભાઇ દેવકરણ	વઢવાણ શહેર

૨૫૧	શાહ જાદવજી ઓઘડભાઈ સદાદવાળાના સ્મરણાર્થે હા ભાઈ શાંતીલાલ જાદવજી	લખતર
૨૫૧	ભાવસાર ચુનીલાલ પ્રેમચંદભાઇ	સુરેન્દ્રનગર
૨૫૧	શ્રી વર્ધમાન શ્વેતામ્બર સ્થા શ્રાવક સંઘ હા શેઠ કેસરીમલજી અનોપચંદજી ગુગળીયા	મલાડ (મુંબઇ)
૨૫૧	દોશી ઠાકરશી ગુલાબચંદના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્ની સમરતબેન વૃજલાલ તરફથી હા ભાઈ જયતિલાલ ઠાકરશી	લખતર
૩૦૦	શાહ અમુલખ ઉર્ફે બચુભાઇ નાગરદાસનાં ધર્મપત્ની અ. સૌ બેન લીલાવંતીના વરસી તપનાં પારણાની ખુશાલીમાં હા ભાઈ કાતીલાલ નાગરદાસ	વીરમગામ
૨૫૧	કામદાર કેશવલાલ હીમતરામ પ્રોફેસરસાહેબ (ગોંડલવાળા)	વડોદરા
૨૫૧	શેઠ ડુંગરશી હંસરાજ વીસરીયા	મુંબઇ
૨૫૧	શેઠ ધનરાજ મુળચંદ મુથા	લોનાવાલા (પુના)
૨૫૧	મ્હેતા નાનાલાલ છગનલાલનાં ધર્મપત્ની સ્વ. ચંચળબેન તથા પુરીબેનના સ્મરણાર્થે હા ભાઈ મનહરલાલ નાનાલાલ	મુ વણી (વીરમગામ)
૨૫૧	દોશી ચુનીલાલ ફુલચંદ મોરબીવાળા	મુ શાલબની (બંગાળ)
૩૦૧	શાહ હીરાચંદ છગનલાલ હા શાહ ચીમનલાલ હીરાચંદ	સાણંદ
૨૫૧	શેઠ મોહનલાલ જેઠાભાઇના સ્મરણાર્થે હા શેઠ આત્મારામ મોહનલાલ	કલોલ
૨૫૧	શાહ રમણીકલાલ કાળીદાસ તથા અ સૌ કાંતાબેન રમણીકલાલ (ધ્રાગધ્રાવાળા)	મુંબઇ
૨૫૧	ડોકટર મયાચંદ મગનલાલ હા ડૉ. રતનચંદ મયાચંદ	કલોલ
૨૫૧	સ્વ શાહ નાથાલાલ ઉમેદચંદના સ્મરણાર્થે હા. શાહ રતીલાલ નાથાલાલ	કલોલ
૨૫૧	શ્રી સ્થા દરીયાપુરી જૈન સંઘ હ ભાવસાર દામોદરદાસ ઇશ્વરભાઇ	કડી
૨૫૧	શાહ મણીલાલ તલકચંદના સ્મરણાર્થે હા. મારફતીયા ચંદુલાલ મણીલાલ	કલોલ
૨૫૧	અ સૌ ચંપાબેન હ. શેઠ જીવરાજ લાલચંદ દોશી	સાણંદ
૨૫૧	પટેલ મહાસુખલાલ ડોસાભાઈ	સાણંદ

૨૫૧	શાહ સાકરચંદ કાનજીભાઈ	સાણંદ
૨૫૧	શાહ હીંમતલાલ હરજીવનદાસ	મુંબઈ
૨૫૧	શાહ જીતેન્દ્રકુમાર વાડીલાલ માણેકચંદ (રાજસીતાપુરવાળા)	સાબરમતી
૨૫૧	અ. સૌ. સમરતબેન પ્રેમચંદ C/o પ્રેમચંદ માણેકચંદ (રાજસીતાપુરવાળા)	સાબરમતી
૨૫૧	શા કાતીલાલ ત્રીભોવનદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	સ્વ. શેઠ ઉજમશી નાનચંદના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા શેઠ ચુનીલાલ નાનચંદ	વીરમગામ
૨૫૧	સ્વ. શાહ મણીલાલ લક્ષ્મીચંદના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા. ખીમચંદભાઈ	વીરમગામ
૨૫૧	સ્વ શેઠ હરીલાલ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે હા શેઠ અનુભાઈ હરીલાલ	વીરમગામ
૨૫૧	સંઘવી જેચંદભાઈ નારણદાસ	વીરમગામ
૨૫૧	સ્વ શાહ વેલશીભાઈ સાકરચંદના સ્મરણાર્થે હા ચીમનલાલ વેલશી કત્રાજવાળા	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ પોચાલાલ પીતામ્બરદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	પારેખ મણીલાલ ટોકરશી લાતીવાળા તરફથી મોટીબેનના સ્મરણાર્થે	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ નારણદાસ નાનજીભાઈના સુપુત્ર વાડીભાઈનાં ધર્મપત્ની અ સૌ નારંગીબેનના વરસીતપ નિમીત્તે હા શાંતીભાઈ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ પોપટલાલ મોહનલાલ	અમદાવાદ
૨૫૦	શેઠ પ્રેમચંદ સાકરચંદ	અમદાવાદ
૩૫૧	લાલા પુરણચંદજી જૈન (સેન્ટ્રલબેંકવાલા)	દીલ્હી
૨૫૧	સ્વ છબીલદાસ ગોકળદાસના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ કમળાબેન તરફથી હા. મંજુલાકુમારી	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ રતીલાલ વાડીલાલ	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ લાલભાઈ મંગળદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	અ સૌ. કમળાબેન તે કામદાર ગોરધનદાસ મગનલાલના ધર્મપત્નિ (વઢવાણવાળા)	રંગુન
૨૫૧	વોરા ડોસાભાઈ લાલચંદ સ્થા જૈન સંઘ હા વોરા નાનચંદ શીવલાલ	વઢવાણ શહેર

૨૫૧	વોરા ધનજીભાઇ લાલચંદ સ્થા. જૈન સંઘ હા વોરા પાનાચંદ ગોબરદાસ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	સ્વ. અમૃતલાલ વર્ધમાનના સ્મરણાર્થે હા. કહાનજીભાઇ અમૃતલાલ દેશાઇ	અમદાવાદ
૨૫૧	શ્રી વીરમગામ સ્થા જૈન શ્રાવિકા સંઘ	વીરમગામ
૨૫૧	સ્વ ત્રિભોવનદાસ દેવચંદ તથા સ્વ. અ સૌ. ચંચળબેનના સ્મરણાર્થે હા. ડોકટર હિંમતલાલ સુખલાલ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ મુલચંદ કાનજીભાઇ તરફથી હા શાહ નાગરદાસ ઓઘડભાઇ	વીરમગામ
૨૫૧	શેઠ મોહનલાલ પીતાંબરદાસ હા ભાઇ કેશવલાલ તથા મનસુખલાલભાઇ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ રતનશી મોણશીની કુા	મુંબાઇ
૨૫૧	ભાવસાર ભોગીલાલ જમનાદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ શીવજી માણેકભાઇ	બેરાઝા (કચ્છ)
૨૫૧	શાહ લુણાજી ગુલાબચંદ	સંજેલી (પંચમહાલ)
૨૫૧	શ્રી સ્થા જૈન સંઘ હા. શાહ પ્રેમચંદ દલીચંદ	સંજેલી (પંચમહાલ)
૨૫૧	શાહ કુંવરજી ગુલાબચંદ	લીમડી (પંચમહાલ)
૨૫૧	શાહ પાનાચંદ સંઘજીભાઇ હા ત્ર્યબકલાલ રતીલાલ	મુંબઇ
૩૦૧	શાહ અમુલખભાઇ મુળજી હા પ્રકાશચંદ અમુલખ	હારીજ
૩૦૧	સ્વ બેન ચંદ્રકાંતાના સ્મરણાર્થે હા. અમુલખ મુળજીભાઇ	હારીજ
૨૫૧	સ્વ પદમશી સુરચંદના સ્મરણાર્થે હા શીવલાલ પદમશી	મેસાણા
૨૫૧	શાહ ગોકળદાસ શામજી ઉદાણી	એડન કેમ્પ
૨૫૧	બાટવીયા ગીરધરલાલ પ્રમાણંદ હા અમીચંદ ગીરધરલાલ	ખાખીજાળીયા
૨૫૧	શ્રીમતિ અ સૌ બેન ચંદ્રાવતી તે શ્રીમાન બહોતલાલજી નાહરના ધર્મપત્નિ. હા શેઠ રણજીતલાલજી હીંગડ	ઉદેપુર
૨૫૧	સ્વ શેઠ વીરચંદભાઇ જેસીંગ લખતરવાળાના સ્મરણાર્થે હા. કેશવલાલ વીરચંદ શેઠ	મુંબાઇ
૨૫૧।=	છાજેડ ઘાસીરામ ગુલાબચંદ	લીમડી (પંચમહાલ)
૨૫૧	મહેતા પ્રભુદાસ મુળજીભાઇ	ધોરાજી
૩૦૧	શ્રીમતી હીરાબેન નથુભાઇના વરસીતપ નીમીત્તે હા નથુભાઇ નાનચંદ શાહ	વીરમગામ
૨૫૧	સ્વ મણિયાર પરસોતમ સુંદરજીના સ્મરણાર્થે હા. સાકરચંદ પરસોતમ	વીરમગામ

૨૫૧	શેઠ મણીલાલ શીવલાલ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ ત્રીભોવનદાસ ભગવાનજી પાનેલીવાળા	જામજોધપુર
૨૫૧	શાહ નટવરલાલ ચંદુલાલ	અમદાવાદ
૩૦૧	શાહ ત્રીભોવનદાસ છગનલાલ	ગોધરા
૨૫૧	શાહ નરસીદાસ ત્રીભોવનદાસ	અમદાવાદ
૩૦૧	બીપીનચંદ્ર તથા ઉમાકાંત ચુનીલાલ ગોપાણી હા. ગોપાણી ચુનીલાલ માણેકચંદ	રાણપુર
૨૫૧	શ્રી શાહપુર દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા. જૈન ઉપાશ્રય હા. વહીવટ કરનાર શેઠ ઇશ્વરદાસ પુરૂષોત્તમદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	શ્રી છીપાપોળ દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા. જૈન સંઘ હા શેઠ ચંદુલાલ અમૃતલાલ	અમદાવાદ
૨૭૭	શ્રી સ્થાનકવાસી છકોટી જૈન સંઘ હા મહેતા ચુનીલાલ વેલજી	માંડવી (કચ્છ)
૨૫૧	વકીલ મણીલાલ કેશવલાલ શાહ	વડોદરા
૨૫૧	વોરા મણીલાલ પોપટલાલ	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ ચીનુભાઇ બાલાભાઇ C/o શાહ બાલાભાઇ મહાસુખરામ	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ ભાઇલાલ ઉજમશી	અમદાવાદ
૨૫૧	સ્વ કેશવલાલ મુળજીભાઈનાં ધર્મપત્ની, સ્વ અમૃતબાઈના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈલાલ કેશવલાલ થાનગઢવાળા	સુરેન્દ્રનગર
૨૫૧	પુરીબેન ચીમનલાલ કલ્યાણજી સંઘવી લીમડીવાળાના સ્મરણાર્થે હા વાડીલાલ મોહનલાલ કોઠારી	સાણંદ
૨૫૧	પારેખ નેમચંદ મોતીચંદ મુળીવાળાના સ્મરણાર્થે હા ભીખાલાલ નેમચંદ	સાણંદ
૨૫૧	સંઘવી નારણદાસ ધરમશીના સ્મરણાર્થે હા જયંતીલાલ નારણદાસ	સાણંદ
૨૫૧	શા પ્રવિણચંદ્ર નરસીદાસ સાણંદવાળા	બોડેલી (ગુજરાત)
૨૫૧	માસ્તર જેઠાલાલ મોનજીભાઇ હા મહેતા અમૃતલાલ જેઠાલાલ સીવીલ ઇન્જીનીયર સાહેબ	લાખેરી (રાજસ્થાન)
૨૫૧	શ્રી સુખલાલ ડી શેઠ હા ડો કુ સરસ્વતી બ્હેન શેઠ	અમદાવાદ
૨૫૧	શ્રી સૌરાષ્ટ્ર સ્થા. જૈન સંઘ હા શાહ કાંતીલાલ જીવનલાલ	અમદાવાદ
૨૫૧	સ્વ. શેઠ કાળુલાલજી લોઢાના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ દોલતસિંહજી લોઢા	ઉદેપુર

૨૫૧	સ્વ મહેતા કુંવરજી નાથાભાઈના સ્મરણાર્થે હા તેમનાં ધર્મપત્નિ કુંવરબાઈ હરખચંદ તરફથી (માનકુવા સ્થા જૈન સંઘને માટે)	માનકુવા (કચ્છ)
૨૫૧	મોદી નાથાલાલ મહાદેવદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ મોહનલાલ ત્રીકમદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	સ્વ. શેઠ પ્રતાપમલજી સાખલાના સ્મરણાર્થે હા. પ્રાણુલાલ હીરાલાલ સાખલા	ઉદેપુર
૨૫૧	શ્રી છકોટી સ્થા. જૈન સંઘ હા. શાહ પોચાલાલ પીતામ્બરદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	દોશી વીરચંદ સુરચંદ હા. દોશી નાનચંદ ઉજમશી	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	સ્વ. વોરા મણીલાલ મગનલાલ હા વોરા ચત્રભુજ મગનલાલ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	શાહ પોપટલાલ હંસરાજના સ્મરણાર્થે હા. શાહ બાબુલાલ પોપટલાલ	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ કુંવરજી હંસરાજ	મુંબઈ
૨૫૧	દેશાઈ અમૃતલાલ વર્ધમાન બાપોદરાવાળા હા. ભાઈલાલ અમૃતલાલ દેશાઈ	અમદાવાદ
૨૫૧	દેશાઈ અમૃતલાલ વર્ધમાન બોપોદરાવાળા હા. દલીચંદ અમૃતલાલ દેશાઈ	મુંબઈ
૨૫૧	શાહ સાકરચંદ મોહનલાલ	ખંભાત
૨૫૧	શાહ નવનીતલાલ અમુલખરાય	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ મણીલાલ આશારામ	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ ચીનુભાઈ સાકરચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	અ સૌ. ચંપાબેન ગોસલીયા હા. ગોસલીયા હરીલાલ લાલચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	શ્રી વટામણ સ્થા. જૈન સંઘ હા શ્રી ડાહ્યાભાઈ હલુભાઈ	વટામણ (ધોળકા)

*

કુલ્લ મેમ્બરોની સંખ્યા

૪	આદ્ય મુરબ્બીશ્રીઓ	૨૦૩	પ્રથમ વર્ગના મેમ્બરો
૨૦	મુરબ્બીશ્રીઓ	૮૭	બીજા વર્ગના મેમ્બરો
૨૧	સહાયક મેમ્બરો	૩૩૫	કુલ્લ મેમ્બરો

(બીજા વર્ગને સદંતર બંધ કરવામાં આવેલ છે)

શ્રી જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનો ટુંક પરિચય.....



જૈન સમાજ અને ખાસ કરીને શ્રી સ્થા. જૈન સમાજ માટે ગૌરવનો વિષય છે કે **આગમોદ્ધારક પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ** જેવા પ્રખર વિદ્વાન સમાજમાં અગ્રસ્થાને બીરાજે છે તેમની અદ્‌ભુત સ્મરણ શકિત તેમજ વિદ્વતાનો લાભ સમાજને મળી શકે તેવા ઉચ્ચ આશયથી તેઓશ્રી પાસેથી બત્રીસ આગમોના જુદી જુદી ભાષાના અનુવાદ આ સમિતિ કરાવી રહી છે, અને વીર-વાણીનો ખરો રસ આજના સમાજને આપી રહી છે, અને ભવિષ્યની પેઢી દર પેઢી માટે ખરો વારસો અનામત મૂકવાનું મહદ્ કાર્ય કરી રહી છે.

છેલ્લાં તેર વર્ષ થયાં આ સમિતી શાસ્ત્રોના પ્રાકૃત-સંસ્કૃત-હિન્દી અને ગુજરાતી ભાષામાં અનુવાદો તૈયાર કરાવી છપાવવાનું કાર્ય કરી રહી છે અને તે કાર્યને સૌરાષ્ટ્રની, ગુજરાતની અને હિન્દના જુદા જુદા ભાગની જનતાએ તનમન અને ધનથી સહકાર આપ્યો છે. અને હજુ અસ્ખલિત પ્રવાહ મદદને માટે ચાલુ છે જેથી સમિતિના કાર્યવાહકો કાર્યને હીંમતથી આગળ ધપાવી રહ્યા છે.

ખાલી લાંબી વાતો કરનારા કે યોજનાઓ કે ઠરાવો કરી બેસી રહેનારાઓ માટે લોકોને આ જમાનામાં વિશ્વાસ રહે તેમ નથી, સમાજ માગે છે રચનાત્મક કાર્ય.

સ્થા. જૈન સમાજ માટે, અત્યાર સુધી શ્રીકલ્પ સૂત્ર જેવું અગત્યનું મહાન સૂત્ર કોઈ પણ મહાત્માએ તૈયાર કરેલ નથી જે મહદ્ કાર્ય પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે પોતાની અખુટ જ્ઞાન-શકિતથી અનોખી રીતે તૈયાર કરી સમાજ સમક્ષ રજુ કર્યું છે અને આપણે આપણી અપૂર્ણતાને પૂર્ણ કરી દીધી છે જે મહાન ઉપકાર કોઈ કાળે ભૂલી શકાય એમ નથી.

પૂજ્યશ્રીની તબીયત વૃદ્ધાવસ્થાને કારણે નરમ ગરમ રહ્યા કરે છે તે છતાં શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય જુદા જુદા સ્થળોએ વિહારમાં પણ સતત ચાલુ જ રાખી રહ્યા છે હજુ બાકીના શાસ્ત્રો લખવાનું કાર્ય પાચથી સાત વર્ષ સુધીનું બાકી છે. આ અપૂર્ણ કાર્ય

ઝડપી બનાવવાને માટે સમિતીએ નિર્ણય લીધો છે અને તે મુજબ અમદાવાદમા જ પૂજ્યશ્રીને આ કાર્ય પૂર્ણ કરવા માટે સ્થીરવાસ બિરાજવાને વિનંતી કરવામાં આવી છે અને તે પ્રમાણે હાલમા જ વીરમગામથી વિહાર કરી તેઓશ્રી સરસપુરના ઉપાશ્રયે પધારી આ કાર્ય આગળ ધપાવશે. શાસ્રો છપાવવાનું કાર્ય મોટે ભાગે અમદાવાદમાંજ છે પૂજ્યશ્રી અમદાવાદમા બીરાજશે તેથી પંડીતો પણ ત્યાજ હશે જેથી પ્રુફ તપાસવાનું તેમજ છાપવાનું કાર્ય પણ ઝડપી બનશે

અમદાવાદ આ કાર્ય માટે વધુ સગવડતાવાળુ સમિતીને જોવામાં આવ્યું છે કારણ કે ત્યાં પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઇશ્વરલાલજી મહારાજ સ્થીરવાસ બિરાજે છે અને તેઓશ્રીનો આ કાર્યમા પૂર્ણ સહકાર છે તે ઉપરાંત સમિતીના પ્રમુખ મહાશય શેઠ શાતિલાલભાઇ ત્યાંજ હોવાથી અવારનવાર સલાહ સૂચના મેળવી શકાય. આ સિવાય ત્યાંના દરેક સંઘના અગ્રેસરોનો સપૂર્ણ સહકાર મળી રહ્યો છે શેઠ ઇશ્વરલાલ પુરૂષોત્તમદાસ, શેઠ કાંતિલાલ જીવણદાસ, શેઠ ભોગીલાલ છગનલાલ, શેઠ પોપટલાલ મોહનલાલ, શેઠ પોચાલાલ પીતામ્બરદાસ, શેઠ ચદુલાલ અમૃતલાલ, શેઠ લાલભાઇ મગળદાસ, શેઠ ચંદુલાલ છગનલાલ અને ગોસલીઆ હરીલાલ લાલચંદ વીગેરે અગ્રેસરોની આ કાર્ય માટે જે ધગશ જોવામા આવે છે તે જોતા અમદાવાદ આ કાર્ય સફળ રીતે પાર પાડશે તેમ અમોને સંપૂણ શ્રદ્ધા છે

સમિતીએ છેલ્લા અઢી વર્ષ થયા વ્યવસ્થિત કાર્ય કરવા માટે રાજકોટ મુકામે રીતસરની ઓફીસ ખોલી છે અને જેના મંત્રી તરીકે શ્રી સાકરચદ ભાઇચંદ શેઠ તમામ કાર્ય સંભાળી રહ્યા છે હાલની પ્રગતિ કેટલી ઝડપથી કેટલી આગળ વધી રહી છે તે નીચેના આકડાઓ જોવાથી ખાત્રી થઇ શકશે

૧૦ વર્ષની આખરે મેમ્બરોની સખ્યા	૧૧૩
૧૧મા વર્ષની આખરે ,, ,,	૧૬૮
૧૨મા ,, ,, ,, ,,	૨૩૭
તા ૩૦–૪–૫૭ના રોજ ,,	૩૩૫

૧૦ વર્ષની આખરે સમિતી પાસે લગભગ રૂા. ૬૦૦૦ની સીલીક હતી. જે સૂત્રોની છપાઇ કાગળ તેમજ પગાર ખર્ચ વીગેરે જતાં અત્યારે રૂા ૨૧૦૦૦ સીલીક છે

*

આપ આ સમિતિના કાર્યમાં કઇ રીતે .....

.... મદદગાર થઈ શકો ?

રૂ. ૫૦૦૦) ઓછામાં ઓછા આપીને સસ્થાના આદ્ય મુરબ્બીશ્રી તરીકે મુબારક નામ લખાવી શકો છો, આપનો ફોટો તથા આપનુ જીવનચરિત્ર શાસ્ત્રમાં છાપવામાં આવે છે

રૂ ૩૦૦૦) ઓછામા ઓછા આપીને આપના વડીલના સ્મરણાર્થે એક શાસ્ત્ર આપના નામથી છપાવી શકો છો સમીતિને એક શાસ્ત્ર છપાવવામાં લગભગ રૂા ૬૦૦૦)થી રૂા ૮૦૦૦) ખર્ચ થાય છે તેમ છતાં ત્રણ હજારમાં આપને નામે શાસ્ત્ર બહાર પાડવામાં આવશે

રૂા. ૨૫૧) ઓછામાં ઓછા આપીને લાઇફ મેમ્બર તરીકે આપનું નામ દાખલ કરાવી શકો છો આપને ૩૨ સૂત્રો તથા તેના તમામ ભાગો મફત મળી શકે છે. (રૂા ૫૦૦ ની કીમતનાં શાસ્ત્રો હફતે હફતે આપને મળી શકે છે)

સ્થાનકવાસી સમાજમા આ એક જ સસ્થા શાસ્ત્રો ચાર ભાષામાં પ્રગટ કરીને સર્વ ઉપયોગી વાંચન રજુ કરે છે આપને જ્યારે કોઈ શાસ્ત્રની જરૂર હોય ત્યારે તેમજ કોઈ સાધુ મુનીરાજને વહોરાવવાની ઇચ્છા હોય ત્યારે શાસ્ત્ર બીજેથી નહિ મંગાવતાં આ સમિતિ પાસેથી મગાવી લેવા વિનતી છે

એક અપીલ : ....!

૧ દીક્ષા પ્રસગે

૨ વરસીતપ અને બીજી તપશ્ચર્યાઓના પારણા પ્રસંગે

૩ મહાવીર જયંતી, પર્યુષણ, તથા દીવાળી જેવા તહેવાર પ્રસંગે.

૪ લગ્ન પ્રસગે.

૫ પુત્ર જન્મની ખુશાલીમાં

૬ વડીલોના સ્મરણાર્થે તેમની તિથી પ્રસગે

તેમજ બીજા સર અવસરે બનતી મદદ આ સંસ્થાને મોકલવા ખાસ નોધ રાખશો

પૂજ્ય મહાત્માશ્રી

તથા ....

મહાસતિજીઓને

નમ્ર પ્રાર્થના



પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રી રાત દીવસના અથાગ પરીશ્રમ સાથે એક કંતાનના કકડા પર બેસીને સમાજના ભવિષ્યના વારસદાર માટે આગમ સંશોધન કરી અણમોલો વારસો તૈયાર કરી રહ્યા છે, તે કાર્યમાં અનેક મહાત્માઓ પ્રશંસા બતાવીને સક્રીય સહકાર આપી રહ્યા છે. આપને અમારી નમ્ર વિનતી છે કે આવા મહદ કાર્યમાં ઉપદેશ દ્વારા મદદગાર થઈ શકો તેટલી સમાજને આપની જરૂર છે માટે વગર વીલંબે સારાએ જૈન સમાજના ઉત્કર્ષ કાર્યમાં આપનો ફાળો નોંધાવો.

* * *

સૂત્ર વાંચ્યા પછી આપશ્રીનો સ્વતંત્ર અભિપ્રાય તેમજ યોગ્ય સૂચનાઓ લખી મોકલવા વિનંતી.

પૂજ્ય મહાત્માશ્રી

તથા ....

મહાસતિજીઓને

નમ્ર પ્રાર્થના

✿

પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રી રાત દીવસના અથાગ પરીશ્રમ સાથે એક કંતાનના કકડા પર બેસીને સમાજના ભવિષ્યના વારસદાર માટે આગમ સંશોધન કરી અણુમોલો વારસો તૈયાર કરી રહ્યા છે, તે કાર્યમાં અનેક મહાત્માઓ પ્રશંસા બતાવીને સક્રીય સહકાર આપી રહ્યા છે. આપને અમારી નમ્ર વિનંતી છે કે આવા મહદ કાર્યમાં ઉપદેશ દ્વારા મદદગાર થઈ શકો તેટલી સમાજને આપની જરૂર છે માટે વગર વીલંબે સારાએ જૈન સમાજના ઉત્કર્ષ કાર્યમાં આપનો ફાળો નોંધાવો.

*　　　*　　　*

સૂત્ર વાંચ્યા પછી આપશ્રીનો સ્વતંત્ર અભિપ્રાય તેમજ યોગ્ય સૂચનાઓ લખી મોકલવા વિનંતી.